राम-भक्ति और उसकी हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्ति

(१२००-१७०० ई०)

Ram Bhakti and its expression in Hindi Literature

(1200-1700 A D)
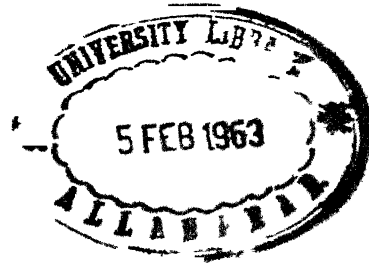
प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० फ़िल्० उपाधि के लिए प्रस्तुत

शोध-प्रबंध

लेखक

रामावतार एम० ए०

इलाहाबाद

जुलाई, १९६०

विषय सूची

राम भक्ति और उसकी हिन्दी साहित्य मे अभिव्यक्ति

१२ वीं श० ई० से १७०० वीं ख०ई० तक

कोष्ठकों में दी हुई संख्याएँ प्रबन्ध के पृष्ठों की हैं

भाग १

चतुर्थ अध्याय राम भक्ति सम्प्रदायों का विकास १२६-१५७

भाग २

पंचम अध्याय ' निर्गुण राम भक्ति के दार्शनिक आधार .१५८-२५२:

अष्टम अध्याय सगुण राम भक्ति के दार्शनिक आधार .३८५-४७७

<u>एकादश अध्याय निर्गुण तथा सगुण राम भक्ति का तुलनात्मक अध्ययन ५९४-६४७.</u>

संकेत और संकेत.

अ:	अध्याय	कैव.उप.	कैवल्योपनिषद्
अमरा.	अमरावती		
अथर्व.	अथर्ववेद	कौ.ब्रा:	कौषीतकी ब्राह्मण
अनु	अनुशासन पर्व	खं	खण्ड
अनुवा.	अनुवादक	ग.पु.	गरुड़ पुराण
अयो.कां.	अयोध्या काण्ड	गु.ग्रं,गु.ग्रं.सा'	गुरु ग्रंथ साहब
अ.रा.	अध्यात्म रामायण	गी:	गीता
अर.कां	अरण्य काण्ड	ग्रं.	ग्रंथावली
अहि.सं	अहिर्बुध्न्य संहिता	गोप.ब्रा	गोपथ ब्राह्मण
आ.भा	आनन्द भाष्य	गो.बा	गोरख बानी
ई.	ईसवी	छ.ला.ग्रं	छत्रसाल ग्रंथावली
ईशो	ईशोपनिषद्	छं	छंद
उप	उपनिषद्	छां.उप,छांदो	छांदोग्योपनिषद्
उ.कां	उत्तर काण्ड	ज.का	जन्मकाल
उ.सा.स प.	उत्तरी सावतकीसत परम्परा	ज.रा.ए.सो	जर्नल रायल एशियाटिक सोसाइटी.
उ.शा.च.	उत्तर। शास्त्र चपरित परंपरा		
ऋ.	ऋग्वेद	ज.सं	जन्म संवत्
ऋ.भा.भू.	ऋग्वेद भाष्य भूमिका	ज्ञा.गु.रे	ज्ञानगुदड़ी रेखते और भूलने
ऐ.ब्रा:	ऐतरेय ब्राह्मण	ज्ञा.स.द्वि.उ.	ज्ञान समुद्र द्वितीय उल्लास
ऐ.त	ऐतरेयोपनिषद्	टी:	टीकाकार
क.ग्रं.	कबीर ग्रंथावली	तै.आ,तै.उप	तैत्तिरीय आरण्यक, तैत्तिरीयोपनिषद्
कठ.कठो:	कठोपनिषद	~~तै.आ:~~	~~तैत्तिरीय आरण्यक~~
क.र, क.व:	कवित्त रत्नाकर, कबीर वचनावली	तै.ब्रा.	तैत्तिरीय ब्राह्मण
	कवितावली	तै.सं:	तैत्तिरीय संहिता

नं.	नम्बर
ना.पां.	नारद पांचरात्र
ना.पु.	नारद पुराण
ना.प्र.प.	नागरी प्रचारिणी पत्रिका
ना.प्र.स.का	नागरी प्रचारिणी सभा काशी
ना.भ.सू.	नारद भक्ती सूत्र
ना.सू	नारदीय सूक्त
पदा	पदावली
पा.	पाद
पा.का.भा.	पाणिनि कालीन भारतवर्ष
पा.गृ.सू.	पारस्कर गृह्य सूत्र
पा.सू.	पाणिनि सूत्र
पू	पूर्व
पृ.	पृष्ठ
प्र:	प्रकाश
प्रश्नो,प्रश्नो.उप.	प्रश्नोपनिषद्
ब.रा:	बरवैरामायण
बा.	बानी
बा.कां:	बालकाण्ड
बृह.वि.पु	बृहद्विष्णु पुराण
बृहदा,बृहदा.उप.	बृहदारण्यकोपनिषद्
बृहदा.वा.सा	बृहदारण्यक वार्तिक सार
ब्र.पु	ब्रह्म पुराण
~~बृह.वि.पु.~~	~~बृहद्विष्णु पुराण~~
ब्रा	ब्राह्मण
भा:	भाग
भाग.	भागवत
भा.सां.इ:	भारत का सांस्कृतिक इतिहास
महा.	महाभारत
मं.	मंत्र
मुं.उप.,मुंड	मुण्डकोपनिषद्
यजु	यजुर्वेद
यो:	योग दर्शन
यो.वा.	योगवाशिष्ठ
र.का	रचनाकाल
र.प्र.भ.	रसिक प्रकाश भक्तमाल
रा.च	रामचरित्र
रा.च ,रा.च.मा.	राम चरित मानस
रा.चं	राम चन्द्रिका
रा.भ.र.सं:	राम भक्ती में रसिक सम्प्रदाय
लिं.पु.	लिंग पुरान
वा.रा.	वाल्मीकि रामायण
वि.गी:	विज्ञान गीता
वि.प:	विनय पत्रिका
वि.पु.	विष्णु पुराण
वि.सं.	विक्रमी संवत्
वी.सिं.च.प्र:	वीर सिंह चरित्र प्रकाश
वें.प्रे.बं	वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई
वै.ध.र	वैष्णव धर्म रत्नाकर
वै.म.भा:	वैष्णव मताब्ज भास्कर
वै.सं	वैदिक संपत्ति
वै.सं.दी.	वैराग्य संदीपनी
श.	शताब्दी
शत:, शत.ब्रा:	शतपथ ब्राह्मण

श्वे:, श्वेता.	श्वेताश्वतरोपनिषद्
सत्यो	सत्योपाख्यान
सं.	संवत्
सं.क.द.अनु	संत कवि दरिया एक अनुशीलन
सं.का.	सन्त काव्य
संपा	सम्पादक
सं.सु.सा	संत सुधा सार
सां.द:	सांख्य दर्शन
सुं.कां.	सुन्दर काण्ड
सुं.ग्रं.	सुन्दर ग्रन्थावली
सू	सूत्र
सू.रा.च:,	सूर राम चरितावली
सू.वि.,सू.वि.प:	सूर विनय पत्रिका
स्कं.पु	स्कंद पुराण
ह.भ.र.सिं.	हरि भक्ति रसामृत सिन्धु
हनु	हनुमन्नाटक
ह.लि.	हस्त लिखित
ह.ले.नं.	हस्त लेख नम्बर
हि.को.म.सं.दे., हि.म.सं	हिन्दी को मराठी सन्तों की देन
हि.सा.	हिन्दी साहित्य

भूमिका

रामभक्ति का प्राचीन स्वरूप भारतीय दृष्टि से अभी तक ओझल था । भक्ति का उद्भव कब और कहाँ हुआ ? राम भक्ति का आविर्भाव काल क्या है ? राम भक्ति के विकास मे पुराणो और ११ वीं श ई तक के संस्कृत साहित्य का क्या योगदान है ? आलवार भक्तो के गानो मे राम भक्ति का कौन-सा स्वरूप मिलता है ? राम भक्ति को साम्प्रदायिक स्वरूप कब और किसके द्वारा प्राप्त हुआ ? निर्गुण और सगुण ब्रह्म के स्वरूप का विवाद कब और क्यों उत्पन्न हुआ ? प्राचीन नामोपासना और मध्ययुग की नामोपासना मे क्या अन्तर है ? प्रपत्ति और पाद-भावना का प्राचीन रूप क्या है ? वैदिक मोक्षभाव और मध्ययुगीन मोक्ष भाव में क्या अन्तर है ? निर्गुण और सगुण भक्तो की प्रेमोपासना में क्या अन्तर है ? निर्गुण काव्य मे सगुण ब्रह्म से सम्बन्धित नवधा, प्रपत्ति भक्ति आदि की अभिव्यक्ति हुई है अथवा नहीं ? निर्गुण काव्य में पौराणिक मोक्ष भाव मिलता है अथवा नहीं ? राम भक्ति हिन्दी साहित्य में मूर्ति, तीर्थ, नदी और ग्रन्थ पूजा का कौन-सा स्वरूप अभिव्यक्त हुआ है ? रामभक्त हिन्दी कवि एक देवोपासक है अथवा बहुदेवोपासक ? राम भक्ति की दृष्टि से कृष्ण भक्त कवियो का क्या योगदान है ? राम भक्ति पर विभिन्न विचारो का क्या प्रभाव पडा है ? और निर्गुण एवं सगुण राम भक्त कवियो की भक्ति साधना मे साम्य है अथवा वैषम्य ? ये कुछ ऐसे प्रश्न है जिन पर अभी तक गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं हुआ था ।

राम भक्ति की दृष्टि से १७ वीं श ई के बाद के साहित्य पर तो विस्तार से विचार हुआ है । इस सम्बन्ध मे डा० भगवतीप्रसाद सिंह की थीसिस `राम भक्ति हिन्दी साहित्य मे रसिक सम्प्रदाय` और श्री भुवनेश्वरी प्रसादमिश्र `माधव` की पुस्तक `राम भक्ति साहित्य मे मधुर उपासना` उल्लेखनीय है । किन्तु १७ वीं श ई पूर्व के राम साहित्य पर शोधपूर्वक किये गये अध्ययन का अभाव था । उपर्युक्त प्रश्नो का समाधान करते हुए प्रस्तुत प्रबन्ध मे इस अभाव को पूर्ण करने का प्रयत्न किया गया है ।

इस सम्बन्ध मे १२ वीं श ई से १७ वीं श ई तक के राम भक्त हिन्दी कवियों को निर्गुण और सगुण इन दो वर्गों में रख कर उनके अनुसार अलग अलग राम भक्ति के -

स्वरूप का विवेचन किया गया है। १२ वीं श ई से १७ वीं श ई के कालखंड की दृष्टि से निर्गुण रामभक्त कवियों में नामदेव सतवेणी, कबीर, रैदास, नवसइचना, सत पीपा, धन्ना, धमदास, सेन, कमाल, नानक, सतलाल, दादू, जगजीवनदास, बषना, रज्जबदास, मूलकदास, वाजिद जी, गरीबदास, सन बाबालाल, सुन्दरदास, भीषन जी, सतशरेदास निरजनी, सत प्राणनाथ, अनादास, स्वामी रामदास, धरनदास, दूलनदास, दरियादास बिहार वाले, दरियासाहब मारवाड वाले और किनाराम आदि है। अनावश्यक आकार वृद्धि को रोकने की दृष्टि से इन निर्गुण भक्तों में से नामदेव, कबीर, रैदास, नानक, दादू, सुन्दरदास, मूलकदास, जगजीवनसाहब, दरियादास बिहारवाले और दरियासाहब मारवाड वाले केवल इन दस कवियों के विचारों को लिया गया है। वस्तुत इस धारा के शेष कवियों में भी वही विचार मिलते हैं, जो इनमें मिलते हैं।

१२ वीं श ई से १७ वीं श. ई तक के बीच में सगुण भक्तों में भूपति, चैतनदास ईश्वरदास, तुलसीदास, सत जन जगवत, गोपाकवि, प्राणचन्द चौहान, केशवदास, मुनिलाल, माधवदास, सेनापति, हृदयराम, महाकवि नरहरदास, बारहट नरहर, रायचन्द, रविचन्द, राम दास, कवीन्द्र सरस्वती, राम कवि, छत्रसाल, लालदास, ताराकवि, देवीदास, बालानन्द, बखीराम, चदकवि, भवानी, बलरामदास, कुदरतीदास, रामभक्त श्री गोपीनाथाचार्य और राम्नाथ पंडित इत्यादि भक्त कवि हुए हैं। सगुण भक्ति धारा के कृष्ण भक्ति शाखा के भक्तों में से तानसेन, सूरदास, राजा टोडरमल, गोविन्दस्वामी, नरहरि, मीराबाई, कवि गग, बीरबल, रहीम, प्रवीन कविराय, मतिराम, अनन्य कवि, मतिमान, देव, वृन्द, भैया भगवतीदास और कवि वैताल प्रभृति ने रामभक्ति के प्रति भी अपनी श्रद्धा व्यक्त की है।

१६ वीं श.ई के बाद रामभक्ति धारा में रसिक भाव का भी विकास होने लगा था। १७ वीं श ई. तकके राम भक्ति हिन्दी साहित्य में रसिक भक्तों की दृष्टि से अग्रदास, नाभादास, प्रयागदास, मानदास, बालकृष्ण नायक और केवल कूबाजी आदि का पता चलता है। इस प्रकार १२ वीं श ई से १७ वीं श. ई तक के राम भक्ति साहित्य में सगुण भक्तों की काफी बडी सख्या ने योगदान दिया है। इनमें से बहुत से कवियों का साहित्य अनुपलब्ध है, अत सभी सगुण राम भक्तों के विचारों का सम्यक् रूप से अध्ययन प्रस्तुत करना कठिन था। फलत इस प्रबन्ध में सगुण राम भक्तों, कृष्ण भक्त -भक्तों और रसिक भक्तों में से ईश्वरदास, तुलसीदास, सूरदास, केशवदास, अग्रदास, सेनापति और नाभादास के भक्ति भाव की ही व्याख्या

की गई है। इन्ही के भाव और विचार ऐसा सगुण राम भक्तो की रचनाओ मे भी प्राय व्यक्त हुए है, इसलिए इन्हें सगुण रामभक्ति धारा के प्रतिनिधि कवि मान कर इन्ही का आधार ग्रहण किया गया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध दो भागो मे विभाजित है। इसके प्रथम भाग मे ४ अध्याय और द्वितीय भाग मे ७ अध्याय है और अन्त मे उपसंहार है। इस प्रकार यह प्रबन्ध ११ अध्यायो मे समाप्त हुआ है। प्रथम भाग हिन्दी राम भक्ति साहित्य की पूर्व पीठिका प्रस्तुत करता है। उसमें राम भक्ति के सिद्धान्तो और सम्प्रदायो के विकास का एक ऐतिहासिक दृष्टि से लेखा प्रस्तुत किया गया है। इसके प्रथम अध्याय मे भक्ति का उद्भव, उसके अर्थ और प्रकार के सम्बन्ध में विवेचन किया गया है। द्वितीय अध्याय मे परमार्थ साधना मे भक्ति के स्थान पर विचार किया गया है। तृतीय अध्यायमें राम भक्ति का उद्भव और विकास दिखाया गया है और चतुर्थ अध्याय मे राम भक्ति सम्प्रदाय का विकास प्रतिपादित किया गया है।

प्रबंध का द्वितीय भाग हिन्दी साहित्य मे रामभक्ति की अभिव्यक्ति से संबंध रखता है। इसमे उसके निर्गुण और सगुण रूपों को लेकर इनके प्रमुख कवि भक्तो की वाणियो के आधार पर विषय का विस्तृत विवेचन सात अध्यायो मे किया गया है। इस भाग के प्रथम अध्याय मे निर्गुण सन्तो के दार्शनिक विचारों की व्याख्या करते हुए द्वितीय अध्याय मे उनकी भक्ति साधना का विवेचन किया है। निर्गुण रामभक्ति मे लोक व्यवहार का क्या स्वरूप है, इसको स्पष्ट करने की दृष्टि से तृतीय अध्याय का आयोजन किया गया है। चतुर्थ, पंचम और षष्ठ अध्यायो में इसी प्रकार सगुण राम भक्ति के दार्शनिक आधार, सगुण राम भक्ति की साधना और उसके लोक व्यवहार का विवेचन किया गया है। इस भाग के सप्तम अध्याय मे तदनतर निर्गुण और सगुण रामभक्ति का तुलनात्मक अध्ययन किया है।

राम भक्ति की हिन्दी साहित्य में कौन कौन सी प्रवृत्तियाँ अभिव्यक्त हुई है और राम भक्ति हिन्दी साहित्य की राम-भक्ति की दृष्टि से अपनी क्या देन है, इसे अंत में उपसंहार के रूप में स्पष्ट किया गया है।

इस प्रबन्ध का द्वितीय भाग सर्वथा मौलिक है, सम्पूर्ण विवेचन के लिए आवश्यक सामग्री ऊपर उल्लिखित कवि-भक्तो की रचनाओ से सीधे प्राप्त की गई है और उसे मैंने सर्वथा अपने ढंग से व्यवहृत किया है। परिणामों में भी किसी विवेचन-ग्रंथ या निबंध की सहायता नही ली है, बल्कि जोपरिणाम सीधे उस सामग्री से

निकले है, उन्हीं को मैंने इस खण्ड में दिया ह ।

प्रथम भाग में भी प्राय प्राचीन भारतीय साहित्य के ग्रन्थो का अध्ययन कर उनसे सामग्री प्राप्त करने का यत्न किया गया है। आधुनिक विद्वानो के किए हुए कार्यों से भी आवश्यक लाभ उठाया गया है किन्तु परिणामो के संबंध मे वैज्ञानिक और ऐतिहासिक तटस्थता का निर्वाह करते हुए अपने विचारो को निस्संकोच और कभी कभी दो टूक ढग से भी रक्खा है। परपरागत विचारो के विरुद्ध किए गए इस प्रकार के मेरे कथन कभी कभी अनावश्यक रूप से कटु-कठोर लग सकते ह किन्तु विरोध केलिए विरोध का भावना उनमे नही मिलेगी ।

यह प्रबन्ध माननीय डा० माताप्रसाद गुप्त एम ए , डी०लिट् के योग्य और विद्वत्तापूर्ण निर्देशन मे लिखा गया है। डा० साहब ने समय समय पर जो योग्य और अनुभवपूर्ण सुझाव दिये है तथा अध्ययन मे रत रहने के लिए जो उत्साह और प्रेरणा प्रदान की है, उसी के परिणाम स्वरूप यह प्रबन्ध वर्तमान रूप को प्राप्त हुआ ह । डा० साहब के अनुपम निर्देशन के लिये मै हृदय से आभारी हूँ।

मै उन महानुभावों का भी धन्यवाद देता हूँ, जो अध्ययन कार्य मे प्रेरणा प्रदान करते रहे हैं।

प्रस्तुत प्रबन्ध को पूर्ण करने के लिये लगभग एक हजार पुस्तको का अवलोकन करना पडा है। अध्ययन कार्य मे प्रयाग विश्वविद्यालय के पुस्तकालय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के संग्रहालय, नागरी प्रचारिणी सभा के आर्य पुस्तकालय, काशी नरेश के निजी पुस्तकालय और बाराबंकी जैन मन्दिर के पुस्तकालय से सहायता प्राप्त हुई है। इन पुस्तकालयो के पुस्तकालयाध्यक्ष और कर्मचारियो ने आवश्यकतानुसार जो सहयोग प्रदान किया है, उसके लिये मै सभी महानुभावो को हृदय से धन्यवाद देता हूँ ।
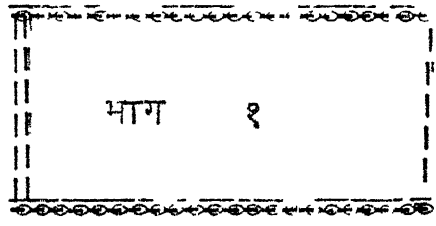
भाग १

प्रथम अध्याय

भक्ति का उद्भव

राम भक्ति के उद्भव से पूर्व पारमार्थिक साधन रूप में भक्ति का उद्भव किस प्रकार हुआ इस पर विचार कर लेना आवश्यक होगा। नीचे इस विषय पर यथासंभव संक्षेप मे विचार किया जा रहा है।

१ वेद और भक्ति वेद की ऋचाएँ देव प्राण से ओत-प्रोत हैं। देव का अर्थ जीवन होने से वेद जीवन काव्य देव-काव्य है --

` पश्य देवस्य काव्य न ममार न जीर्यति अथर्व० १०।८।३२।।

वेद जीवन-प्रवाह को सतत प्रवाहमय रखने के लिए ब्रह्म को साकार रूप में आबद्ध नहीं करता। वेद का कथन है कि ब्रह्म का कोई आकार प्रतिमा या उपमान नहीं है[१]। साकार रूप के अभाव में ब्रह्म से व्यक्तिगत संबंध स्थापित करना असंभव है और व्यक्तिगत संबंधों के अभाव मे भक्ति भी नहीं होती[२]।

वेद प्राण-काव्य होने से भक्ति का स्रोत नहीं है। वेद प्राण देव काव्य है, इस चरम सत्य को न मान कर डा० विजयेन्द्र स्नातक[३], डा० बेनीप्रसाद[४], जदुनाथ सिन्हा[५], आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी[६], पं० बलदेव उपाध्याय[७], श्रीकृष्ण दत्त भारद्वाज[८], डा० सील[९],

-थ---

१- यजु० ३२।३-३ ।। , श्वेता० ४।१६ ।।

२- `कलकत्ता ओरियण्टल सिरीज` न०ई०११-स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर` पृ० ३३५ डा० नगेन्द्रनाथ

३- `राधावल्लभ सम्प्रदाय -सिद्धान्त और साहित्य `पृ० १

४- `हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता` पृ० ४२

५- `कल्चरल हेरिटेज आफ इण्डिया` पृ०४८

६- `महाकवि सूरदास` पृ० १ ७ - `भागवत सम्प्रदाय `पृ० ६५-६६

८- `कल्याण` वर्ष २० अंक ५ ।।

९- `कम्पेरेटिव स्टडीज इन वैष्णविज्म एण्ड क्रिश्चियनिटी`

प्रभृति विद्वानों ने इन्द्र इत्यादि देवों को व्यक्तित्व के रूप में अंगीकृत कर यह स्वीकार किया है कि वेद भक्ति का आदि स्रोत है।

देवताओं का स्वरूप - वेद में वर्णित हुए देवताओं के संबंध में श्री अरविन्द का मत है कि 'देवताओं के नाम ही इस बात के द्योतक हैं कि ये केवल विशेषण हैं, वर्णन हैं, किसी स्वतंत्र व्यक्ति के वाचक नाम नहीं।[1] मैक्समूलर का भी यही विचार है कि वैदिक देव जीवित व्यक्ति नहीं थे, अपितु वे गुण-वाचक-प्रतीक हैं।[2] यास्क का कथन है कि देव जीवित प्राणी नहीं है, प्रत्युत वे जड पदार्थ है।[3] प० जगन्नाथ प्रसाद पंचोली गौड़ के मतानुसार इंद्र, वायु, अग्नि, रुद्र, मरुत, आदि देव शक्तियां हैं, वे कोई इच्छाधारी जीव या देवता नहीं है।[4]

२-वैदिक-साहित्य में इंद्र का अर्थ - इंद्र का अर्थ प्राण या जीवन है[5] - अथर्व. १६।७०।१.। विद्युत, प्राण और सूर्य रूप में इंद्र जीवन का पोषण करता है।[6] इंद्र अन्तरिक्ष पदार्थ, प्राण, विद्युत आदि है। ऋग्वेद ८।७६।२-३ मे इंद्र को मरुत, वायु सखा कहा है। यह वायु का सखा प्राण या विद्युत ही हो सकता है। निरुक्तकार दैवत-काण्ड १।२।१ का अभिमत है कि वायु और इन्द्र अन्तरिक्ष स्थानीय देव है।

ऋग्वेद १०।१९६।२ और यजुर्वेद २०।८० में इंद्र शब्द आत्मा और परमात्मा के लिए भी व्यवहृत हुआ है। आत्मा इंद्र' और परमात्मा इंद्र' को किसी प्रकार के प्रेमालाप से प्राप्त नहीं कर सकते ' क्योंकि दोनों ही रूप रहित हैं।

'३: पशुबलि और भक्ति - 'हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता में डा० बेनीप्रसाद ने हिन्दू भक्ति-सम्प्रदाय का आदि स्रोत ऋग्वेद स्वीकार करते हुए यहाँ तक कह दिया है कि देवताओं की भक्ति में मंत्रों का उच्चारण किया जाता था और घी, अन्न, दूध, मांस और सोम के द्वारा यज्ञ करके उनकी बलि दी जाती थी[7]।'

१- 'वेद रहस्य' पृ० १३
२- 'इण्डिया व्हाट कैन टीच अस ?' पृ० १६०-२१८
३- 'निरुक्त भाष्य उत्तरार्द्ध पृ० ४८१ प्रो० - चन्द्रमणि विद्यालंकार'
४- 'आर्य और वेद ' पृ० ३५
५- शतपथ ६।१।१।२, वृहदा० ३१।१।५।१२, छा०उप०२।२२।३ शा० मा०
६- वृहदा० उप०३।६।६ ' दी स्टैण्डर्ड संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी एल०आर०वैद्य पृ०८०२
७- 'हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता' पृ० ४२ प्र०ज्यो०. २।७

वेद में आये हुए सभी देवों का अर्थ प्राण है। प्राण का हनन करके प्राण देव की प्राप्ति होना असंभव है। वेद-देव-काव्य है। अतः उसमें देवत्व प्राप्ति के लिए ही विधान है। पशु-बलि इत्यादि कुकृत्यों द्वारा देवत्व से गिरने का विधान नहीं है।[1] ऋग्वेद ७।५।५ में तो यहाँ तक कहा है कि जो याजक गौ, घोड़े आदि पशुओं के अंगों से यज्ञ करते हैं, वे मूढ़ हैं।

'४ इंद्र-पद की प्राप्ति के साधन - वेद ऋ ३।८०।२: के अनुसार इंद्र-पद अमृत-पद की प्राप्ति इंद्र-शक्ति के वर्ष-वर्धन' के संबंध से ही हो सकती है। इंद्रशक्ति-वर्षा अथवा पुरुषार्थी में ही वृष्टि होती है। ऋ ८।४६।३। पुरुषार्थी से इंद्रशक्ति का विकास करना चाहिए - यजु०२१।३२। इंद्र परमात्मा' इंद्र-शक्ति प्राण-शक्ति से ही तुष्ट होता है --

' इंद्र इंद्रिये ... शर्यणावत्। ' ऋ ९।१०७।२ ॥

.५' भक्ति के अंग और वेद - वेद में किसी भी प्रकार की भक्ति की प्रवृत्तियाँ नहीं हैं। डा० विजयेन्द्र स्नातक, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी और कृष्णदत्त भारद्वाज ने ऋग्वेद के कुछ मंत्रों के आधार पर श्रवण-कीर्तन[2], स्मरण[3], विनय[4], अभिलाषा[5] आदि भक्त्यांगों को स्वीकार किया है।[6]

वेद में किसी भी देव का चेतन व्यक्तित्व नहीं है। चेतन-व्यक्तित्व के अभाव में श्रवण, कीर्तन, स्मरण, विनय, अभिलाषा इत्यादि मानवीय क्रिया-कलापों का अन्वेषण करना अयुक्तियुक्त है। पूर्ण मंत्रार्थ देखने से अवगत होता है कि श्रवण, कीर्तन, आदि भक्त्यांगों को वेद में हठात् सिद्ध किया गया है।

वेद में एक मंत्र आता है --

श्रवण - ' सेदु श्रवोभिर्युज्य चिदभ्यसत्।'

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने इस मंत्र का अर्थ किया है--' यह चेतन ... ध्यान गम्य परमात्मा को उसके यश श्रवण द्वारा प्राप्त करने का अभ्यास करे।'[6]

१- वेद मांसाहार और पशुबलि की निन्दा करता है--
क ऋ.१०।८६।६,८।४।१८,८।१०।१।१५ 'ख: अथर्व.१३।१।४६,६।६।६,१२।२।६
'ग: महा०अनु०पर्व ११५।५६,शां०पर्व २६५।६-१०।

२- ऋ १।१५६।२, ३- ऋ १।१५४।३ ४- ऋ.१।२५।१६

५- ऋ ८।४४।२३ ६ ऋ १।१५८।१

6-'महाकवि सूरदास' पृ० ३

मंत्रार्थ अवलोकन करने से स्पष्ट होता है कि 'अवोभि' और 'निदम्यसत्' की सादृश्यता पर 'भ्रमण' और 'अभ्यास' अर्थ खींच तान कर लिया है[1]। अवोभि का अर्थ है अव + भि = मारो मैं[2]। डा० विजयेन्द्र स्नातक ने 'अवोभि' के स्थान पर 'भुवोभि' चुन लिया है, जो अशुद्ध है[3]। यदि स्नातक जी के अनुसार 'भुवोभि' शब्द को ठीक माने तब भी उसका अर्थ भ्रमण न होकर त्याग Sacrifice है[4]। 'निदम्यसत्' का अर्थ भी अभ्यास नहीं, किन्तु नि + अभि + असू = पीतता है[5]।

'ग' कीर्तन - 'विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचम्।' ऋ० १।१५४।१ ।।

अर्थात् मैं अब विष्णु के वीरताओं का प्रकाशन करता हूं[6]।

इस मन्त्र का अर्थ विष्णु की वैयक्तिक लौकिक भक्ति परक लीलाओं से नहीं है। इस मन्त्र का अर्थ विष्णु के उन वीर-कर्मों से है जिनके द्वारा लोकों का मापन और धारण होता है[7]।

६ वेद और भक्ति शब्द - वेद में प्रत्यक्ष रूप से अनुराग सूचक भक्ति शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय का यह कथन कि वेद में भक्ति शब्द प्रेम के अर्थ में व्यवहृत हुआ है, निरर्थक है[9]। अथर्व वेद काण्ड ९। सूक्त ७६। म०३। पृ०१३६३ भाष्य में एक स्थान पर भक्ति शब्द आया है। सायण ने उसका अर्थ भाग, भागी : Share , Shareholder[10] किया है[11]।

१- 'महाकवि सूरदास' पृ० ३

२- 'ऋग्वेद संहिता' विधा मार्तण्ड पं० सीताराम शास्त्री 'ऋ० मं०१।१५६।२

३- राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य पृ०४

४- दी स्टैण्डर्ड इंगलिश संस्कृत डिक्शनरी एल० आर० वैद्य पृ० ७३३. ।

५- ऋग्वेद संहिता पृ० ४१६०

६- 'महाकवि सूरदास' पृ० ३

७- ऋ० सं० पृ० ४१२७, ४१२१ । वही ।

८- 'राधावल्लभ सम्प्रदाय' पृ० ३ ।। डा० विजेन्द्र स्नातक । ~~सम्~~ भागवत सम्प्रदाय पृ०६४ पं० बलदेव उपाध्याय ।

९- 'हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि' पृ०१२२ विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ।

१०- दी स्टैण्डर्ड इंगलिश संस्कृत डिक्शनरी एल०आर०वैद्य पृ० ५१७

११- अथर्ववेद संहिता पृ० ४७६ अनुवादक पं० रामचंद्र शर्मा ।

~~११- राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य पृ०४~~

७ भक्ति वैदिक है

शाण्डिल्य ने भक्ति को 'भक्ति प्रथम जिज्ञासा' १।२।६ कहा है। शाण्डिल्य भक्ति सूत्र 'शाण्डिल्य ऋषि का विरचित प्रतीत नहीं होता, क्योंकि औपनिषदिक शाण्डिल्य ऋषि[1] ने अन्तर जठर में ध्यान करने वाले ब्रह्म का प्रतिपादन नहीं किया है। भक्ति सूत्र के रचयिता शाण्डिल्य ने ब्रह्म को जन्मा कहा है।[2]

आचार्य क्षितिमोहन सेन रैदास[3] का एक कथन पुष्ट करते हुए कहते हैं कि भक्ति वैदिक है।[4]

वैदिक जीवन यज्ञ कर्म, श्रम प्रधान था।[5] उस समय देवताओं की कृपा और कोप, व्रत की भक्ति और भेद पर निर्भर नहीं थे।

८ ब्राह्मण ग्रन्थ और भक्ति

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ऋग्वेद के पुरुष सूक्त के आधार पर ईश्वर को नराकार Anthropomorphic रूप में चित्रित किया है। आपने शतपथ ब्राह्मण १३।६।१ के प्रमाण से यह भी सिद्ध किया है कि ईश्वर का नारायण नर समष्टि का आश्रय नाम ब्राह्मण काल में प्रसिद्ध हो[6] गया था। नारायण सगुण ब्रह्म का वह रूप है जो जगत् में नानारूप ग्रहण करता है।

ऋग्वेद पुरुषसूक्त में ब्रह्म का नराकार नहीं पुरुषाकार वर्णन है। ऋग्वेद का पुरुष नराकार-पुरुष नहीं है। वह विराट् पुरुष है। विराट्-पुरुष की मानव कल्पना से आसक्ति कराने की दृष्टि से असंख्य सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ दिशाये और लोकों को पुरुषांग कल्पित किया गया है। अनन्त लोक लोकान्तर उसके एक पाद में अवस्थित बताये गये हैं।[7] यह ब्रह्माण्ड कितना बड़ा है इसे कोई नहीं जानता,[8] और न कोई उसका वर्णन कर सकता है-- 'को अद्धा वेद क इह प्रवोचत।'

अनन्त ब्रह्माण्ड के अन्दर रहने वाले विराट् पुरुष के लिये नेति नेति कहना ही समुचित है। ~~उस पुरुष की कहीं सीमा दृष्टि में नहीं आती वह अनन्त है।~~

१- छान्दोग्यो उपनिषद् पृ० ३१२ शांकर भाष्यार्थ
२-'शाण्डिल्य भक्ति सूत्र' ४७,४८,४६' पृ०२७-२६ पं० रामनारायण दत्त शास्त्री
३-'संस्कृति संगम' 'पृ० ५६ 'भारतवर्ष में जाति भेद' पृ० ७८
४-'भक्ति न वेद बड़ाई' रैदास की बाणी' २४।५-६ ।।
५-'भारत का सांस्कृतिक इतिहास' हरिदत्त वेदालंकार' पृ० २३ ।।
६- ' सूरदास' आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'भक्ति का विकास ' पृ० ६-१० ।।
७- 'ऋग्वेदीय पुरुष सूक्त' १३,१४,३ पृ० १४ ।७६।७१ डा० सम्पूर्णानन्द ।
८- ऋ. १० ।१२६ । ६ ।।

जल और जीवों का नाम नारा है, ब्रह्म यत अर्थात् अवस्थान है, अथवा सब जीवों में व्याप्त परमात्मा का नाम नारायण है[1]। यह नारायण अवतारी पुरुष नहीं है। अवतारवाद की कल्पना गीता से पूर्व थी नहीं होगी। शतपथ ब्राह्मण का रचना-काल गीता से पूर्व है।

शतपथ ब्राह्मण २।१।२।३ के अनुसार नक्षत्र-संसार का क्या ऐसी अवस्था थी, जब कृत्तिका नक्षत्र ठीक पूर्व पर शेष सभी नक्षत्र प्राची-दिशा से जाते थे। दीक्षित महाशय के अनुसार ऐसी अवस्था ठीक चार हो चुकी है। परन्तु अन्तिम दशा जो इस काल से पूर्व हो चुकी है, विक्रम से लगभग ३००० वर्ष पहले हुई थी[2]। ब्राह्मण-ग्रन्थों का काल कुछ भी हो, यह निर्विवाद है कि शतपथ ब्राह्मण महाभारत-युद्ध से पूर्व वर्तमान था। यह हो सकता है कि कुछ अंश महाभारत के बाद उसमें सम्मिलित किया गया हो।

ब्राह्मण-काल में भक्ति के चिह्न नहीं हैं[3]। लोकमान्य तिलक के मतानुसार- 'वैदिक धर्म का अत्यन्त प्राचीन स्वरूप न तो भक्ति प्रधान न तो ज्ञान-प्रधान और न योग प्रधान ही था, किन्तु वह यज्ञमय अर्थात् कर्म-प्रधान था, और वेद-संहिता और ब्राह्मण ग्रन्थों में विशेषतः इसी यज्ञ-याग आदि कर्म-प्रधान धर्म का प्रतिपादन किया गया है[4]।' ब्राह्मण-काल में भक्ति के लक्षण अप्राप्य होने का ही यह परिणाम है कि ब्राह्मण-ग्रन्थों में अनुराग युक्त भक्ति शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है[5]।

.६ गीता और भक्ति

अवतारवाद की अवतारणा गीता में (४।७।८) स्पष्ट रूप से हुई है। अव्यक्त ब्रह्म की अपेक्षा व्यक्त ब्रह्म साकार-ब्रह्म की उपासना सरल और शीघ्र फलदायी है, यह गीता १२।५-६-७-८ में स्पष्ट किया है। गीता १२।१४-१५-१६-१७-१८-१९-२० में यह भी बताया है कि कौन से भक्त ईश्वर को अधिक प्रिय है। भगवान् ने गीता ९।२६,

---

१- 'सत्यार्थ प्रकाश' पृ० ८ ।।

२- 'वैदिक वाङ्मय का इतिहास' भा० २। ब्राह्मण और आरण्यक पृ० ९६-९७ 'भगवद्दत्त'

३- डा० सम्पूर्णानन्द ' पृ० १०९ कल्याण भक्ति अंक' १९५८ ।

४- 'गीता रहस्य' पृ० ५४०

५- 'राधा वल्लभ सम्प्रदाय' पृ० ३, भागवत सम्प्रदाय ' पृ० ६४ ।।

यह भी कहा है कि जो भक्त भक्ति-पूर्वक मुझे पत्र पुष्प फल तोयं अर्पण करता है उस शुद्ध बुद्धि युक्त भक्त की भेंट, मैं अनुरागपूर्वक ग्रहण करता हूँ। इन बातों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि गीता में भक्ति का चित्रण हुआ है। डा० सरनाम सिंह शर्मा 'अरुण' वैष्णव भक्ति का तात्त्विक निरूपण भागवद्गीता से मानते हैं।[1] किन्तु भक्ति-चरित गीता से प्रवाहित हुई यह सत्य एकांगी है क्योंकि गीता के उपर्युक्त कथनों से विरोधाभास है। गीता २।२०-२१ में ईश्वर को अजन्मा कहा है। आगे चल कर गीता में भगवान् ने अपने को अजन्मा कहते हुए, अपने जन्म का कारण माया बताया है।[2] मायावाद के संबंध में पद्मपुराण में शिवजी ने पार्वती से कहा है कि मायावाद असत् शास्त्र है। यह प्रच्छन्न बौद्ध-मत है।[3] गीता १२।५ में जहाँ अव्यक्तोपासना को क्लेशप्रद कहा है, वहाँ गीता ७।२४ में अव्यक्त ब्रह्म को व्यक्त मानने वाले को मन्द-बुद्धि कहा है। गीता में विरोधाभास को देखते हुए यह कहना उचित है कि मूल गीता में इतने श्लोक नहीं थे जितने वर्तमान गीता में है। मूल गीता में कोई परिवर्तन नहीं हुआ इसे सिद्ध करते हुए भी अंत में तिलक जी को यह कहना पड़ा कि वर्तमान गीता और महाभारत यही ग्रन्थ है जिनमें मूल स्वरूप से कालान्तर से परिवर्तन होता रहा, और जो इस समय गीता तथा महाभारत के रूप में उपलब्ध है, ये पहले के मूल ग्रन्थ नहीं हैं।[4]

भारत से एक महाभारत जावाद्वीप में गया था। उस महाभारत के भीष्म पर्व में एक गीता प्रकरण है, जिसमें वर्तमान गीता के १२, १६, १७ इन चार अध्यायों के श्लोक नहीं हैं।[5] प्रोफेसर गार्बे का कथन है कि मूल गीता में भक्ति संबंधित अंश किसी ने बाद में जोड़ा है।[6] इस संबंध में दिनकर का यह मत है कि पूजा प्रथा आर्यों की देन नहीं है। वह द्रविड़ अथवा औष्ट्रिक जाति की देन है। अतः पत्र-पुष्प-फल और तोय से पूजा करने की विधि का योग गीता में तब हुआ जब आर्य और द्रविड़ मिल कर एक हो गये थे।[7]

१- हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव' पृ०१४३

२- गीता ४।६ ।।　　　३-'मध्यकालीन धर्म साधना' पृ०१५ डा०हजारीप्रसाद द्विवेदी

४- गीता रहस्य' पृ० ५५८ ।।

५- वही　　पृ० ५६५ .स: मिस्टर एन. जी. देसाई की बालीद्वीप से एक गीता मिली है जो भीष्म पर्व के अन्दर है उसमें कुल ७० श्लोक ही हैं - वे०सं० रघुनन्दन शर्मा पृ०४९६

६- गीता रहस्य' पृ० ५४० ।।

७-' संस्कृति के चार अध्याय' प० ७७ ।।

कृष्ण ने गीता १०।२६ मे अपने को मुनियों मे कपिल मुनि बताया है। कपिल मुनि, कृष्ण कालके बहुत समय उपरान्त हुए। और कृष्ण ने अपने को जो कपिल मुनि कहा है इससे यह सिद्ध होता है कि यह प्रकरण १० अध्याय गीता मे बाद मे जोड़ा है। गीता की बाह्य और आन्तरिक परीक्षा करने के पश्चात् यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि वर्तमान गीता मूल गीता का विस्तृत स्वरूप है।[1] ऐसा ज्ञात होता है कि युद्ध-समय मे कृष्ण के मुख से निकली हुई गीता मे भक्त्यांश नहीं था।[2]

'१० महाभारत और भक्ति

महाभारत शान्ति पर्व के नारायणीयोपाख्यान के आधार पर श्री भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' ने भक्ति का उद्‌भव महाभारत से स्वीकार किया है। आपका यह भी कथन है कि महाभारत काल में नराकृति भगवान् की गूढ़ भक्ति एक विशेष सम्प्रदाय मे प्रचलित थी।[3] और रामचन्द्र शुक्ल का यह अभिमत है कि भक्ति का तात्त्विक निरूपण महाभारत काल मे हो चुका था।[4]

नारायणीयोपाख्यान मे महाभारतकार ने भीष्म से यह कहलाया है कि भागवत धर्म के आदि प्रवर्तक मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वशिष्ठ और स्वायम्भुव मनु थे। उनसे यह विद्या बृहस्पति को प्राप्त हुई। बृहस्पति से राजा वसु ने ग्रहण की। राजा वसु ने अहिंसक अश्वमेध-यज्ञ किया, जिसमे स्वयं यज्ञपुरुष भगवान् श्रीहरि ने आकर अपना भाग लिया। भगवान् के दर्शन केवल वसु उपरिचर को हुए। इस पक्षपात से बृहस्पति अप्रसन्न हुए। बृहस्पति के अप्रसन्न होने पर प्रजापति के पुत्रों ने उन्हें समझाया कि बिना भक्ति के भगवान् का दर्शन असंभव है।[5]

पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अंगिरा, मरीचि, अत्रि और वशिष्ठ प्रजापति की मानस सन्तानें हैं।[6] यह सन्तान संकल्प अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न हुई थी। सृष्ट्यारम्भ मे कोई मत, पथ न था। सृष्ट्यारंभ में आविर्भूत होने से यह मानस सन्तानें भागवत धर्म की आदि प्रवर्तक नहीं थी। भागवत धर्म की प्राचीनता सिद्ध करने के लिये यह उपाख्यान कल्पित किया गया है।

१- वैदिक सम्पत्ति पृ० ४९६ रघुनन्दन शर्मा।
२- उपनिषद् गीता के बाद की रचना है क्योंकि उपनिषदों में कृष्ण 'छां०उप० और परीक्षित 'बृहद०३।३ का नाम आता है। किन्तु गीता जो कि अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है उसका उपनिषदों मे कहीं कोई उद्धरण नहीं- इसके विपरीत गीतामे उपनिषदों के श्लोक तक उद्धृत हैं- तिलक ने भी इसे स्वीकार किया है। इससे यह प्रमाणित होता है कि वर्तमान गीता उपनिषदों के बाद की रचना है।
३- 'राममक्ति साहित्य मे मधुर उपासना' भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र पृ० १०१।
४- सूरदास' भक्ति का विकास पृ० २६ ।। ५ महा०शा०पर्व नारायणीयोपाख्यान।
६- भृगु पुलस्त्य पुलहं क्रतुमंगिरसं तथा। मरीचिं दक्षमत्रिं च वसिष्ठं चैव मानसान् ।।५।।-
प्रथम अंश। अ० ७। पृ० ३७ विष्णुपुराण, गीताप्रेस ।

१२ दर्शन और भक्ति

न्याय, सांख्य, योग और वेदान्त दर्शन में भक्ति शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। मीमांसा दर्शन में[1] लक्षणावृत्ति और वैशेषिक-दर्शन[2] में प्रशंसा के अर्थ में भक्ति शब्द व्यवहृत हुआ है। दर्शन शास्त्रों में साकारोपासना का नितान्त अभाव है। जैमिनि के मीमांसा सूत्रों में कर्म-प्रधान वेद धर्म का ही प्रतिपादन किया गया है- गीता रहस्य पृ०५४०-४१।

डा० उमेशमिश्र ने दर्शनों में भक्ति मानी है, किन्तु विद्वान् लेखक ने द र्शनों से एक भी उद्धरण नहीं दिया है -- कल्याण भक्ति-अंक पृ० ७४- वर्ष ३२-१९५८ ।

१३ उपनिषद् और भक्ति

केन-कठ-मुण्डक, ऐतरेय, तैत्तिरीय, प्रश्न, बृहदारण्यक, ईश, छान्दोग्य इत्यादि उपनिषदों में भक्ति शब्द व्यवहृत नहीं हुआ है। श्वेताश्वतरोपनिषद् २३।अ ६ पृ०२६२ शां०भा० में परमेश्वर के लिये भक्ति-शब्द का प्रयोग वैदिक साहित्य में प्रथम बार हुआ है-- 'यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।

तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥'

इस श्लोक को प० बलदेव उपाध्याय ने अपनी पुस्तक 'धर्म और दर्शन' पृ०३७ में कठोपनिषद् का मान कर उद्धृत किया है जो ठीक नहीं है।

श्वेताश्वरोपनिषद् में एक बार भक्ति-शब्द के प्रयोग को देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि उपनिषदों में भक्ति के बीज हैं। श्वेताश्वरोपनिषद् को अन्य ६ प्रामाणिक उपनिषदों के बाद की रचना माना जाता है। भक्तिवाद या साकारोपासना उपनिषदों के बाद की उपासना-प्रणाली है। उपनिषद् केवल दार्शनिक विवेचन से ही संबधित है[3]।

१४ पाणिनि और भक्ति

पाणिनि का एक सूत्र है 'वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन्' ४।३।९८ अर्थात् जिसकी वासुदेव में भक्ति हो उसे वासुदेवक और जिसकी अर्जुन में भक्ति हो उसे अर्जुनक कहना

१- ४३। मीमांसार्य्य भाष्य -'४३। पृ० ३६७ श्री पं० आर्यमुनि जी।

२- वैशेषिकार्य भाष्य' पृ० ४५६ आर्यमुनि

३-'हिस्ट्री आफ इण्डियन फिलासफी - इण्डियन मिस्टिसिज्म, मिस्टिसिज्म इन महाराष्ट्र' आर० डी० रानाडे पृ० १-२ ॥

चाहिए । पतंजलि ने अपने महाभाष्य में इस पर टीका करते हुए कहा है कि इस सूत्र में वासुदेव भक्ति का या भगवान् का नाम है[1]। पाणिनि के इन सूत्रों के आधार पर यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि पाणिनि के काल में भक्ति प्रचलित हो गई थी। पाणिनि के समय में भक्ति शब्द का अर्थ अन्न, भात या उबले हुए चावलों से था[2]।

.१५ भक्ति का उद्भव और मूर्ति-पूजा

मूर्ति-पूजा के साथ ही भक्ति भाव उत्पन्न हुआ है[3]। भास कवि ने प्रतिमा नाटक में राजा-दशरथ आदि की मूर्तियों का जो निर्माण किया है उससे लेकिन बोध होता है कि विक्रम पूर्व ३-४ शताब्दी से पहले मूर्ति-पूजन का भारत में रिवाज नहीं था। बुद्ध से पूर्व छान्दोग्योपनिषद् में कृष्ण-देवकी पुत्र के रूप में ही सम्मुख आते हैं छा०उप० ३।१७।६ पृ०३३३ शा०भा० । वहाँ कृष्ण को कहीं ईश्वरत्व प्रदान नहीं हुआ है।

प्रतिमा-पूजन का आरम्भ जैन और बौद्धों के द्वारा हुआ[4]। सर्वप्रथम गान्धार में बुद्ध की प्रतिमा स्थापित हुई[5]। पं० नेहरू का विचार है कि आरम्भ में बौद्धों ने यूनान के एक देवता अपोलो से उनकी बोधिसत्व की मूर्ति बनाई, किन्तु बाद में बुद्ध की प्रतिमाएँ भी बनने लगीं[6]। हिन्दुओं की विष्णु की प्रतिमाओं के प्रचार के पश्चात् विकसित हुई है। बुद्ध शब्द से बुद और फिर बुद से बुत शब्द बना है, बुद्ध की मूर्ति की पूजा[8] हुआ करती थी इसीलिये फारसी में बुद का अर्थ ही बुत हो गया। प्रतिमा-पूजन के सम्बंध में अलबेरूनी का विचार है कि 'आदि में मूर्तिपूजा न थी। प्रथम देवताओं और महापुरुषों की स्मृति में मूर्तियाँ बनीं, फिर वे मनुष्य और परमेश्वर के बीच वकील बनीं, फिर वे ईश्वर ही बन बैठीं।'[9]

१- आर० जी० भण्डारकर ज.रा. ए.सो. १६१० पृ० १६८-१७०

२- 'पाणिनि कालीन भारतवर्ष' डा० वासुदेवशरण अग्रवाल पृ० ११५

३- 'धर्म और दर्शन' पं० बलदेव उपाध्याय पृ० ४०

४- सत्यार्थ प्रकाश पृ० १८०, २०६, २०७ : ५- हमारी सांस्कृतिक एकता दिनकर पृ०१४३

६- 'डिस्कवरी आफ इण्डिया' पृ० १५२

९- अलबरूनी अरब और भारत के संबंध पृ० १८१ अनु० बाबू रामचंद्र वर्मा

१०- अलबेरूनी का निश्चय इतिहास रहस्य पं० रामचंद्र शर्मा पृ० २१६

बौद्ध विहारों में बुद्ध की प्रतिमा [illegible] पर पूजी जाती थी - इत्सिंग की भारत यात्रा पृ० २८, १७६ बाद में बौद्ध मठों में प्रतिमा-पूजन के नियम बनाये गये जिनके अनुसार प्रत्येक विहार की एक पवित्र प्रतिमा होती थी, जो एक विशेष मन्दिर में स्थापित की जाती थी। प्रतिमा स्थापित हो जाने पर भिक्षु को [illegible] उसे स्नान कराना पड़ता था[1]। बुद्ध की शिक्षा के अनुसार 'जब कोई भिक्षु पवित्र प्रतिमा के सम्मुख हो, या पूज्य महात्माओं के पास जाय तो रोग की अवस्था को छोड़ कर उसे नंगे रहना चाहिए।[2] भक्ति-भाव का यह प्रारम्भिक स्वरूप था। जातिकों ने इस स्वरूप को बौद्धों से ग्रहण किया। अतः ज्ञात होता है कि भक्ति के बीज जैन और बौद्धों के प्रतिमा-पूजन में प्राप्त होते हैं।

१६' बौद्ध-जैन साहित्य और भक्ति

भक्तिमान् पाली -भत्तिमा शब्द थेरगाथा ३७० में मिलता है---

' जो धीर गुरुओं के ज्ञान को समझता है

और प्रेम पूर्वक उसका आचरण करता है

वह पण्डित भक्तिमान् कहलाता है।[3] '

जातकों में भी भक्ति का उल्लेख हुआ है।[4]

जैन धर्म-ग्रन्थों में भी भक्ति के चिह्न मिलते हैं। आचार्य वसुनन्दि का कथा है कि फलों से पूजा करने वाला मनुष्य परम निर्वाण का सुरूप फल पाने वाला होता है।[5]

.१७' भक्ति व भागवत धर्म बुद्ध के बाद ही उद्भूत हुआ है। बुद्ध के बाद भागवत-धर्म के प्रमाण भी मिलते हैं। अर्थशास्त्र में मूर्ति-पूजा के प्रमाण मिलते हैं। चन्द्रगुप्त[6] काल में शैव और वैष्णावण आदि देव मूर्तियाँ मन्दिरों में स्थापित हो चुकी थीं। मेगस्थनीज़ ई०पू० ३ श० का कथन है कि मथुरा और कृष्णपुर में कृष्ण की पूजा होती थी। पतंजलि ई०पू०१५० के लगभग के भाष्य में भी वासुदेव का उल्लेख आर्य जाति के देवता के रूप में मिलता है।

१-`इत्सिंग की भारत यात्रा` पृ० २८,१७६
२- वही पृ० २८
३-`थेरगाथा २०६ कौसिय श्लोक ३७०। पृ०११३। अनु० भिक्षु धर्मरत्न एम०ए०
४-`गीता रहस्य` पृ० ५४६
५-` वसुनन्दि श्रावकाचार` पृ० १३६ ६- अर्थशास्त्र २।४।१४ काशी, पृ०-२५८ पा०का०मा० पृ० २५८, ३५१,३५४ ।।
७-`हमारी सांस्कृतिक एकता` दिनकर` पृ०५६
` सर आर०जी० भण्डारकर-`शैविज़्म एण्ड वैष्णाविज़्म पृ० ६ ।

बेसनगर के शिलालेख में देवाधिदेव वासुदेव के मानार्थ- गरुड़ध्वज की बात है। यह ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी के आरंभिक काल का माना जा सकता है।[1] नाना घाट गुफा लेख में संकर्षण व वासुदेव शब्द द्वन्द्व समास में पाये हैं। यह लेख ईसापूर्व पहली शताब्दी से पहले का है।[2] राजपूताने के घोसुण्डी शिलालेख में संकर्षण और वासुदेव के चतुर्दिक दीवाल निर्माण का उल्लेख है।[3]

लगभग ईसा की दो शताब्दी पूर्व तक्षशिला के यूनानी राजा एंटि आल्किडस का दूत हेलियोडोरस वैष्णव धर्म के भागवत सम्प्रदाय का अनुयायी था। उक्त कथन बेसनगर के लेख से सिद्ध है।[4] कार्लेके गुहा लेखों में दो यवनों के नाम धर्म और सिंहध्वज पाये गये हैं। यह शायद उषवदात का नाम संस्कृत है और वह वैष्णव धर्म का मानने वाला था।

महानारायण उपनिषद् ई०पू०२०० का प्रमाण है कि कृष्ण उस समय विष्णु के अवतार माने जाने लगे थे। धीरे धीरे वैष्णव धर्म इतना लोकप्रिय हुआ कि मौर्यकाल के राजाओं ने प्रतिमा-पूजन को अपनी आय का साधन बनाया था।[5] भक्ति-संबंधित यह प्रमाण ईसा से पूर्व और बुद्ध के उपरान्त के हैं।[6]

१८ <u>२४ अवतार</u>

समाज में साकारोपासना की प्रतिष्ठा के लिए जैनियों ने २४ तीर्थंकरों की कल्पना की थी, और बौद्धों ने बोधिसत्वों की कल्पना की थी। विद्वानों का ऐसा अनुमान है कि जैन और बौद्धों के अनुकरण पर ब्राह्मणों ने २४ अवतारों की कल्पना कर पौराणिक धर्म का स्वरूप खड़ा किया।[7]

१- ल्यूडर्स `लिस्ट आफ ब्राह्मी इन्सक्रिप्शन्स' नं० ६६६

२- वही नं० ११९२

३- वही नं० ६

४-`ओझा निबन्ध संग्रह' प्रथम भाग पृ० २२६-२३१-२३४ ।।

५-`भारतीय इतिहास की भूमिका' डा० राजबली पाण्डेय पृ० १८७ ।।

६-`भारतीय इतिहास की रूपरेखा' जयचंद्र विद्यालंकार पृ० ७५० ।।

७-`एन आउट लाइन आफ रिलिजस लिट्रेचर आफ इण्डिया' जे० एन० फर्क्यूहर पृ०१८४

.१६ भक्ति का उद्भव दक्षिण में हुआ

बौद्ध-धर्म से सिन्नि होकर भक्ति ने दक्षिण में जन्म ग्रहण किया । श्रीमद्भागवत में भक्ति का स्पष्ट सांगोपांग वर्णन हुआ है[१] । विद्वानों का विचार है कि भागवत पुराण लोपदेव द्वारा दक्षिण में ही लिखा गया था[२] । भक्ति का उज्ज्वल रूप पुराणों और सूत्र ग्रन्थों में ही दृष्टिगत होता है[३] । भक्ति की उत्पत्ति के संबंध में दिनकर का यह मत है कि आर्यों धर्म में चिन्तन की प्रधानता थी, किन्तु द्रविड़ धर्म में भावना का तेज था। दोनों के मिलन से जो भक्ति का दर्शन इस देश में उत्पन्न हुआ है - संस्कृति के चार अध्याय पृ०२८३ ।

भागवत के अनुसार भक्ति द्रविड़ देश में उत्पन्न हुई[६] इसे भक्ति अपनी कथा में स्वयं स्वीकार करती है --

' उत्पन्ना द्राविडे साहं वृद्धिं कर्णाटके गता ।

क्वचित् क्वचित् महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतागता ।। भा०१।४८।।

यही कथा पद्मपुराण के उत्तरखण्ड ५०।५१ में आई है । भागवत में एक स्थान पर भक्तों के जन्म के संबंध में कहा है कि इस कलि काल में अनेकों महापुरुष यत्र-तत्र जन्म लेंगे । उनमें से अधिकांश का जन्म द्रविड़ देश में ही होगा[४] । मध्ययुग के भक्तों में कबीर भी यह मानते है कि भक्ति द्रविड़ देश में उत्पन्न हुई है ---

' भक्ति द्रविड़ ऊपजी लाये रामानन्द ।

प्रगट किया कबीर ने सप्त-द्वीप नवखण्ड ।।

इन निदर्शनों से यह सिद्ध होता है कि भक्ति का जन्म द्रविड़ देश में हुआ और कर्णाटक में वह फली-फूली । भक्ति का आविर्भाव किसी अकस्मात् घटना या बाह्य प्रभाव से नहीं हुआ है । भक्ति-दर्शन मानवी-प्रवृत्तियों के परिवर्तन का फल है ।

.२० भक्ति का स्रोत विदेश

विश्व को अपने विचारों से पराभूत करने वाले कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने भक्ति का उद्भव-स्रोत विदेश माना है :-

---

१- `भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक रेखाएँ ` परशुराम चतुर्वेदी पृ० २ ।।

२- `भा०सा० इतिहास` हरिदत्त वेदालंकार` पृ०१०१ :ख` संस्कृति के चार अध्याय पृ०२६०।।
ग. रिलिजस लिटरेचर आफ इण्डिया` जे० एन० फर्कुहर पृ०२३१

३- `कलकत्ता ओरियण्टल सिरिज न०३०११ डा० नगेन्द्रनाथ पृ० ३३४
`बंगाल वैष्णाविज्म` विपिन चन्द्र पाल, `विश्वधर्म दर्शन` पृ०१८७

४- `भागवत` ११।५।३६-४०, `भागवत धर्म` पृ०१३४-१३५ श्री हरिभाऊ उपाध्याय.

१ डा० ग्रियर्सन का मत है कि प्राचीन काल में, [illegible] ईसाई [illegible] प्रान्त में थी[1]। दूसरी शताब्दी ई० में ही ईसाई [illegible] मालाबार में आकर बस गये थे[2]। इन ईसाइयों के प्रभाव से ही हिन्दुओं का भक्ति-मार्ग [illegible] दक्षिण से संपूर्ण भारत में फैला है[3]।

२ प्रोफेसर [illegible] विल्सन भी [illegible] है। उनका विचार है कि विभिन्न सम्प्रदायों के गुरुओं ने [illegible] प्रतिष्ठा के लिये भक्ति का प्रचार किया[3]।

३ प्रो० वेबर ने नारायणीयोपाख्यान का [illegible] यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि भागवत धर्म में वर्णित भक्ति-तत्व श्वेत द्वीप यूरोप देश से लाया गया है। भक्ति-तत्व [illegible] और [illegible] प्रभावित [illegible]।

४ डा० [illegible] का मत है कि मुसलमानों की धार्मिक असहिष्णुता का ही परिणाम था कि हिन्दुओं के भक्ति आन्दोलन का जन्म हुआ[4]।

२१ भक्ति का उद्भव स्रोत भारत ही है

उपर्युक्त मतों में [illegible] सत्यता नहीं है, क्योंकि [illegible] ईसाई और इस्लाम धर्म [illegible] भारत में [illegible] थे, उससे पूर्व भारत का भक्ति-भाव उन्मुक्त गगन में विहार कर रहा था। भक्ति भारत की उर्वर भूमि से ही प्रसूत हुई है[5]। डा० गोविन्दकर, गौरीचन्द्र ओझा[6], लोकमान्य तिलक[7], डा० राधाकृष्णन्[8], डा० हेमचन्द्र राय चौधरी[9], भंडारकर[10], श्री पाण्डेय रामावतार शर्मा[11], हापकिन्स[12], डा० वासुदेवशरण अग्रवाल[13],

---

१- ज०रा०ए०सो० १६०७ पृ० ३११-३४ ।। ~~रु~~ एनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन्स एण्ड एथिक्स - भा० २ डा० ग्रियर्सन का लेख 'भक्ति मार्ग' पृ० ५३६-५५१।।

२-'भारतीय इतिहास की रूपरेखा' भा०२पृ०११४१ जयचन्द्र विद्यालंकार।।

~~[illegible]~~ ३- प्रो० एच०एच०विल्सन'हिन्दू रेलिजन' पृ०२३२।।

४-'भारत का वृहद् इतिहास' भा०२ पृ०६।।

५- दी कल्चरल हेरिटेज आफ इण्डिया' सर रामकृष्ण सैन्ट्युरी,मैमोरियल भाग२पृ०४८

६-'ओझा निबन्ध संग्रह' पृ०२३४।७- गीता रहस्य' पृ० ५४६-४७ ।।

८-'इण्डियन फिलासफी' भा०१ पृ० ४५०-६६।।

६- अर्ली हिस्ट्री आफ दी वैष्णव सैक्ट' पृ०१६।।

१०- कलक्टिक वर्क्स आफ सर आर०जी०भण्डारकर भा०४ पृ०४१५।।

~~११- जर्नल रायल एशियाटिक सोसायटी १६१५ पृ०८४३-८४१।~~

~~१२ वही पृ० ८३६-४०।~~

११-'भारतीय ईश्वरवाद' पृ० ~~४५८~~ - ५७

१२- दी रिलीजन आफ इण्डिया पृ० ४३२ ।।

१३- पाणिनि कालीन भारतवर्ष पृ० ३५१ ।।

गार्बे[1], दिनकर[2], डा० कीथ[3] प्रभृति विद्वानों का भी मत है कि भक्ति भारत की ही उपज है। डा० कीथ ने यह भी सिद्ध किया है कि गोपाल कृष्ण की कथा पर क्राइस्ट की बाल-कथा का कोई प्रभाव नहीं है[4]। आभीरों द्वारा क्राइस्ट कथा का प्रचार हुआ है, श्री भंडारकर के इस मत को भी डा० कीथ ने निर्मूल सिद्ध किया है[5]।

·२२ बंगाल और भक्ति का उद्भव

श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य की सम्मति में वैष्णव भक्ति का प्रसार दक्षिण भारत से प्रवाहित न होकर बंगाल से हुआ है[6]। वैद्य जी इसे नवीन धर्म के नाम से आवद्ध करते हैं। वैद्य जी के उपर्युक्त विचार प्रमाणरहित हैं। दक्षिण से भक्ति के उद्भव की बात इतने व्यापक रूप से प्रचलित है कि उसका खण्डन करना सहज नहीं है[7]।

१- फिलासफी आफ एन्शियन्ट इण्डिया पृ० ८४ ।।

२- संस्कृति के चार अध्याय

३- जर्नल रायल एशियाटिक सोसाइटी १९१५ पृ० ८४३-८४४ ।।

४- वही पृ० ८३९-८४० ।।

५- वही पृ० ८४० ।।

६- हिस्ट्री आफ मेडिवल इण्डिया भा० ३ ~~चि०वि०वैद्य~~ पृ० ४

७- राधावल्लभ सम्प्रदाय डा० विजयेन्द्र स्नातक पृ० २५ ।।

अध्याय २

क' भक्ति का विकास

भारतीय साधना के इतिहास मे हम देखते है कि भक्ति के उद्भव के अनंतर निरंतर उसका महत्व बढ़ता ही गया। उसकी इस महत्व-वृद्धि का एक अति संक्षिप्त इतिहास नीचे दिया जा रहा है।

वैदिक साहित्य और भक्ति

प्रथम अध्याय मे यह बताया जा चुका है कि भक्ति वेद वाह्य है। भक्ति क्या है, इसकी वैदिक साहित्य मे कहीं पर भी व्याख्या नही हुई है। वैदिक साहित्य मे भक्ति की अपेक्षा आराधना, उपासना, वन्दना, नमस्कार, प्रार्थना, स्तवन आदि का अनेक स्थानों पर आयोजन हुआ है।

वैदिक ऋषियों की दृष्टि में ब्रह्म अनन्त और निराकार है। अत उन्होने ब्रह्म से मानवीय सम्बन्ध स्थापित करके आराधना और उपासना नही की है। उन्होने सान्त से अनन्त की ओर उत्तरण करने के लिए ही वन्दना की है। जैसे मध्यकाल के भक्तो ने भक्ति, भक्ति के लिए की ह, वैसे वैदिक दार्शनिको ने उपासना, उपासना के लिए नहीं की है।

वैदिक साहित्य में ब्रह्म-दर्शन के साधन

उनकी दृष्टि मे उपासना और स्तवन आदि साधन थे। ये साधन भी ब्रह्म-प्राप्ति के लिये न होकर कर्म, सत्य, ब्रह्मचर्य, ज्ञान और सत्याचरण पर आरूढ़ रहने के लिए थे। वैदिक साहित्य मे यह कहीं नहीं कहा गया है कि प्रार्थना, स्तवन, वन्दन, उपासना, आराधना पूजा-पाठ, भक्ति प्रेम-सेवा. के द्वारा ब्रह्म के दर्शन हो सकते हैं। इसके विपरीत वैदिक वाङ्मय में यह अनेक स्थानों पर कहा है कि कर्म, तप, ब्रह्मचर्य, सत्य, ज्ञान, श्रद्धा और सदाचार के द्वारा ब्रह्म-दर्शन ब्रह्म-प्राप्ति हो सकती है। नीचे इस विषय के विचार वैदिक साहित्य से उद्धृत किये जा रहे हैं -

सदाचार या सत्याचरण

आचार्यवान् पुरुष ही ब्रह्म को जानता है* छा० उप० ६।१४।२। पृ०६८, शा०भा०: विज्ञानवान्, संयतचित्त और सदा पवित्र रहने वाला पुरुष उस पद को प्राप्त कर लेता है,

जहाँ पुन जन्म नहीं होता कठ १।३।८-६ पृ०७६ शा भा । चित्-शुद्धि से ब्रह्म-प्राप्ति होती है - मु०उप० ३।१८,पृ०६६,३।१।६ पृ०१०१ । धर्म की पर सदाचार में है - अत सदाचार धारण करने योग्य है - मनु० ४।१५५ । जो पुरुष पाप-रहित है वही दिव्यता को प्राप्त होते है- ऋ १०।६३।४, यजु० १०।१८।२,१२।१२ : । जिसका बुरा आचरण है अर्थात् जो पाप-कर्मों से निवृत्त नहीं हुआ है, और जिसकी इन्द्रियाँ शांत नहीं हुई हैं, वह ब्रह्म को प्राप्त नहीं कर सकता कठ.१।२।२४ पृ० ७६: । यह निश्चित है कि अनाचारी, दुराचारी अथवा कदाचारी ब्रह्म को प्राप्त नहीं कर सकता । अत श्रुतियों में यह प्रार्थनायें की गई हैं कि जीव पाप-कर्म करते हुए भोग न भोगे - ऋ ७।८८।६ । वह ऋजु पथ को छोड़ कर अनृत पथ पर कर्म न करे । ऋ.१०।५७।१, यजु०४।२८ । जीवन का सर्वोत्तम मधु सत्याचरण में ही उपलब्ध हो सकता है । अत जीव स्वस्ति पथ पर चलने के लिए प्रार्थना करता है - ' स्वस्ति पन्थामनुरे' ऋ ५।५१।१५ ।

' अग्ने नय सुपथा राये स्मान् ।।' यजु. ४०।१७ ।।

' परि माग्ने दुश्चरिताद् बाधस्वा

मा सुचरिते भज ।। यजु १६।३० . ।।

ऋतपथ या देवयान मार्ग पर चलने वालों को मृत्यु नहीं सताती - अथर्व कांड १२।सूक्त २ .। सतपथ को ऋत पथ भी कहा है । कवि की उक्ति है कि ऋत-पथ पर चलना चाहिए - 'ऋतस्य पथा प्रेत' अथर्व ७।४५, ऋ १०।३७।६ ।

अन्त मे ऋग्वेद ६।७३।६ का कथन है कि जो ऋत और सत्य के पथ पर नहीं चलता अर्थात् जो व्यक्ति आचारहीन है वह सत्य के मार्ग से पार नहीं हो सकता---

' सर्वस्य तपसो मूलमाचार जगृहु परम् ।

ऋतस्य पन्थां न तरंति दुष्कृत ।। ऋ. ६।७३।६ ।।

अथर्ववेद ५।११।३ मनुष्य को आचरण से ही देखता है । महाभारत अनु १४६।१३७ में आचार की महत्ता ~~दिखाई है~~--- का उल्लेख हुआ है -

' सर्वागमानामाचार प्रथमं परिकल्पते ।

आचार प्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युत ।।'

मनु के अनुसार 'आचार परमोधर्म' है -- मनु० १।१०८ ।

सत्य

सत्य और सदाचार भिन्न साधन नहीं हैं । सत्य-आचार को ही सदाचार कहते है । सत्य और सदाचार एक होते हुए भी श्रुतियों ने सत्य को अलग स्थान दिया है --

' पुरुष सत्य से ही सत्य को जानता है -:बृहदा० ३।६।२३।पृ० ८१३:

यह सत्य की नौका के द्वारा भवसागर पार हो सकता है - ऋ ६।७३।१ ,ऐ०ब्रा० ८।१०, मनु० १२।८८ । सत्य ही जय को प्राप्त होता है मिथ्या नहीं । सत्य से देवयान मार्ग का विस्तार होता है, जहाँ सत्य का परम निधान है -- मुं० ३।१।६ पृ० ६६ ।

यह आत्मा सदा सत्य, तप, सम्यक् ज्ञान और ब्रह्मचर्य के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है -- मुण्ड० ३।१।५। पृ० ६४ ।

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य से ब्रह्म-दर्शन होता है मुण्ड० ३।१।५।पृ० ६४ । ब्रह्मचर्य से देवों ने मृत्यु को जीता था अर्थात् अमृतत्व प्राप्त किया था- अथर्व० ११।७।१९ । जो ज्ञाता है, वह ब्रह्मचर्य के द्वारा ही उस ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है। ब्रह्मचर्य के द्वारा पूजन करके ही पुरुष आत्मा को प्राप्त करता है ---

जो इस ब्रह्मलोक को ब्रह्मचर्य के द्वारा जानते हैं, उन्हीं को यह ब्रह्मलोक प्राप्त होता है -- छा० उप० ८।४।३ पृ० ८४० । ब्रह्मचर्य की महिमा के लिये अथर्ववेद का ब्रह्मचर्य सूक्त दृष्टव्य है। ब्रह्म पथ पर चलने से श्रद्धा का विकास होता है। क्योंकि श्रुतियों में ब्रह्म को सत्य कहा गया है यजु०१०।२९,कठो०२।२।२ और श्रद्धा में सत्य का आधान है।

श्रद्धा

वैदिक साहित्य में श्रद्धा का अर्थ सत्कार-सम्मान से नहीं है। श्रद्धा का अर्थ है सत्य पर स्थिर होना। श्रत् अर्थात् सत्य का जिसमें आधान हो वह श्रद्धा है[1]। सत्य की धारणा का नाम श्रद्धा है[2]। यजुर्वेद में यह कहा गया है कि प्रजापति ने अनृत में अश्रद्धा और सत्य में श्रद्धा को स्थित किया है। यजु० १९।३७। सत्य पर आरूढ़ रह कर या श्रद्धावान् बन कर ही परम सत्य ब्रह्म को प्राप्त किया जा सकता है यजु० १९।३० । प्रभु को सत्य वचन, सत्य-व्यवहार, श्रद्धा और तप द्वारा सम्पादित किया जाता है-- ऋ.६।११३।२ । श्रद्धा से ब्रह्म-प्राप्ति होती है -- मुंड०१।२।११ पृ० ४२, यजु० २०।२४, यजु० १९।७७, ऋ. ७।१०३।१२ । श्रद्धा और ज्ञान का अभिन्न संबंध है। श्रद्धा से ज्ञान प्राप्त होता है।

१- `उरु ज्योति`- डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ` पृ० ५४

२-`मानव-धर्म ` गीता-ज्ञान` अंक ७-८-९ सन् १९५१- पृ० २०२

ज्ञान

वैदिक साहित्य मे ज्ञान की अत्यन्त महिमा गाई गई है। ज्ञान-बिना ब्रह्म-दर्शन असंभव है। ज्ञान से ही ब्रह्म - दर्शन होता है।[1] ज्ञान से केवल ब्रह्म-दर्शन ही नहीं होते, प्रत्युत ज्ञान स्वयं ब्रह्म है।-- `प्रज्ञानं ब्रह्म` ऐत० उप० ३।३। ।
ब्रह्म का अभिज्ञान प्राप्त होने पर जीव-ब्रह्म-स्वरूप हो जाता है --

`स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति। मु० ३।२।६

मनु के मतानुसार स्वाध्याय, तप और ज्ञान से ब्रह्म-प्राप्ति होती है १२।१०३-१०४ मनु०स्मृ० आत्म-ज्ञान के अतिरिक्त मुक्ति का अन्य और कोई साधन नहीं है।[2]

सांख्य-दर्शन के अनुसार केवल विवेक से ही मोक्ष प्राप्त होती है।[3] विवेक-बुद्धि को प्राप्त करना ही सांख्य मत मे मुक्ति है। यही बात योग-दर्शन मे कही है।[4]
ज्ञान की परिभाषा - प्रधान (प्रकृति) से लेकर परमाणु पर्यन्त जो कुछ जड़-चेतन है उससे पृथक ईश्वर को जानना ज्ञान है।[5] ज्ञान का अर्जन तप के द्वारा होता है। अत तप भी परमार्थ प्राप्ति का मुख्य साधन माना गया है।

तप

तप से ब्रह्म का साक्षात्कार होता है - अथर्व० ११।७।१६,१६।४१।१, ऋ.६।१३।२, १।७२।५,६।८३।१, मुंड० ३।१।५, १।२।११ । हम अपने ध्येय को तप और श्रम के द्वारा ही प्राप्त कर सकते हैं - `यादृशिमन् धायि तपमस्यया विदत्` ऋ.५।४४।८. ।
जो तप नहीं करता उसे परमानन्द अपना ध्येय उपलब्ध नहीं होता। `ऋ.६।८३।१
ऋत, सत्य, श्रुत, शान्त, दम, शम, दान, यज्ञ आदि सभी तप रूप हैं ---

`ऋतं तप` सत्यं तप`, श्रुतं तप: शान्तं तपो
दमस्तप शमस्तपो दानं तपो यज्ञस्तपो भूर्भुव.
सुवब्रह्मैतदुपास्वैतत्तप।` तै० आरण्यक १०।८:।[6]

तप को कर्म और ब्रह्म भी कहा है ---

`पुरुष एवेद विश्वं कर्म तपो ब्रह्म परामृतम्।` `मुंड०२।१।१०:।

किन्तु यह तप-कर्म का ही एक रूप है।

१- प्रश्नोप० ४।१०-११, ६।६, श्वेता० ३।१०, मुंड० ३।१।५
२-`बृहदारण्यक वार्तिकसार` ७३७। पृ०१०१० ।।
३- सा०दर्शन ८४।१६५। पृ० ११५ अनुवादक तुलसीरामस्वामी
४- योग भाष्य- १-२ वाचस्पतिमिश्र तत्व वैशारदी १-२
५- मनु० २।२८ ६- बृहदारण्यक वार्तिकसार: भाग २।अ०१ ब्रा० ५।पृ०१२३६
६- श्री [illegible] भाषा पृ०३६-३७ अनुवादक श्री दुर्गाप्रसाद

कर्म

सर्वोपरि-शासक एव अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के नियामक परमात्मा का जो विधान है, उसका नाम कर्म है।[1] जड़-चेतन सब कुछ कर्म के ही अधीन है --`कर्माधीन जगत् सर्वम्`।[2] कर्म शब्द `कृ` धातु से बना है जिसका अर्थ है करना।[3] बृहदारण्यक उपनिषद् के अनुसार ब्रह्म ही पुरुषार्थ अथवा कर्म है।[4]

श्रुतियों के अनुसार कर्म श्रम करते हुए कुम्हार, लुहार, बढ़ई, चर्मकार आदि मर्त्य होते हुए भी अमृतत्व प्राप्त कर सकते हैं (ऋ० १।११०।८, ३।६०।२)।

तप कर्म और श्रम की महत्ता से सम्पूर्ण वैदिक साहित्य भरा पड़ा है। श्रम की गणना आध्यात्मिक विभूतियों एवं पार्थिव शक्तियों के साथ की गई है।[5] परम सुख की प्राप्ति कर्म के द्वारा ही होती है।[6] मनुष्य को कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करनी चाहिए, ब्रह्म-प्राप्ति के लिये इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है ---

` कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समा ।

एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।। यजु०४०।२, ईशो० २।।

पुरुषार्थी लोग आत्माग्नि के परमस्थान सुख-स्रोत को प्राप्त करते हैं--- ८।६७।६ । कर्म-श्रम की अपार महिमा के लिये निम्न मंत्र द्रष्टव्य हैं--

ऐ०ब्रा०७।१५, तै०सं० १।६।४४, ऋ १।७९।३, ४।३३।११, ८।६७।६, ६।६६।११, ८।४३।१४, यजु० १।६, श०ब्रा० ११।५।४।५, अथर्व० ३।५।६, तै०सं० १।१।६।३, ~~श०ब्रा० ८।२०।२~~, कौ०सू०३४।१५, तै०ब्रा०३।१।२।४, ऋ.३।६०।२, १।११०।४ ` ।

मनु के मतानुसार कर्म से मोक्ष सम्भव है - मनु०६।७५, ऋ १०।२२।८` ।

वेदोक्त कर्म करने योग्य है इसी से मोक्ष मिलता है ---

` वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रित ।

तद्धि कुर्वन्यथाशक्ति प्राप्नोति परमा गतिम् ।। मनु० ४।१४ ।

श्रुति-स्मृति में कहा हुआ आचार करना चाहिए -- .मनु० ४।१५५।

मनु ने केवल वेदार्थ विरोधी कर्मों के त्याग के लिये कहा है।[7] स्वाध्याय स्वरूप श्रेय

१-` कर्म मीमांसा-दर्शन ` भारद्वाज कृत, भाष्यकार-स्वामी ज्ञानानन्द जी पृ० २ ।।
२- वही पृ० ७
३- `कर्म योग` स्वामी विवेकानन्द पृ० १
४- बृहदा०वा०सा० १४३। पृ० २७९ ५- अथर्व० ११।६।१७, ८।६।६
६- अथर्व ० ६।२३।२
७- मनु० ४।१७

की अर्थात् कैवल्य की यदि इच्छा हो तो वह कैवल्य भी कर्म से ही सिद्ध होता है। उसकी प्राप्ति के लिए दूसरा उपाय नहीं है, क्योंकि श्रुतियों एवं स्मृतियों में पुरुषार्थ का साधन कर्म ही मुख्य है अन्य साधन नहीं[1]।

वैदिक साहित्य में जहाँ कर्म को जीवन-प्रद माना है, वहाँ कर्म-हीन व्यक्ति के लिये कहा है कि वह ब्रह्म को प्राप्त नहीं कर सकता - ऋ० ८।२।१८, ५।७४।१४

दान

वैदिक साहित्य में दान को भी परमानन्द प्राप्ति का साधन माना है--

`हिरण्यदा अमृतत्वं भजन्ते` ऋ० १०।१०७।२ ।

संयम

संयम से भी परम गति प्राप्त होती है - यजु० १३।२७ के अनुसार--

ब्रह्म-दर्शन के साधनों में समन्वय

वैदिक-वाङ्मय[3] में तप, कर्म, श्रम, सत्य, ज्ञान, ब्रह्मचर्य, सदाचार, संयम, श्रद्धा, दान और याज्ञिक-भाव ब्रह्म-प्राप्ति के साधन हैं। वैदिक साहित्य में स्थान-स्थान पर इनकी व्याख्यायें भी की गयी हैं। ये साधन देखने में अलग अलग प्रतीत होते हैं परन्तु विश्लेषण करने पर सबमें समन्वय मिलता है। इन साधनों को हम तीन वर्ग कर्म-ज्ञान-श्रद्धा या उपासना में बांट सकते हैं।

ज्ञान-कर्म-श्रद्धा अलग अलग अपने में पूर्ण साधन नहीं है। जीवन की सफल साधना त्रिविध साधनों के त्रिभुज समन्वय पर निर्भर है। वैदिक साहित्य में तीनों में वर्गभेद करके किसी को उत्कृष्ट और निकृष्ट नहीं कहा है।

समन्वय - ज्ञान, कर्म तथवा आचरण के लिए है ---

` सर्वमपि ज्ञान कर्मपर`- मीमांसा दर्शन ।

सोमेश्वर भट्ट ने तन्त्रवार्तिक की न्याय सुधा टीका में औपनिषदिक ज्ञान को कर्म-परक माना है - अ० १ पाद- २: ।

१- बृहदा० वा० सा० २१। पृ० ३७ ।।

३- गीता ४।३१

मनुस्मृति में यह कहा गया है कि ज्ञान-मय कर्म के बिना कोई भी फलदायक क्रिया नहीं कर सकता - 'न ह्यनध्यात्मवित् कश्चित् क्रियाफलमुपाश्नुते ।'

ज्ञान-युक्त या सत्य युक्त कर्म के प्रति जीवन की निष्ठा ही श्रद्धा है । जिसकी जितनी श्रद्धा होती है वह उतनी ही सफलता प्राप्त करता है । जिसकी जैसी श्रद्धा या भावना होती है वह वैसा ही बनता है अथवा जीव जैसा करता है वह वैसा ही पाता है-

' यथाकारी यथाचारी तथा भवति साधुकारी साधुर्भवति ।
पापकारी पापो भवति -पुण्य पुण्येन कर्मणा भवति- पाप पापेन ।
अथो खल्वाहु कामयम एवायं पुरुष इति स यथाकामो भवति तत्क्रतुर्भवति-
तत्क्रतुर्भवति तत् कर्म कुरुते यत् कर्म कुरुते-तदभिसम्पद्यते । बृहदा०४।४।५

' सत्वानुरुपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ।
श्रद्धामयो य पुरुषो यो यच्छ्रद्ध स एव स ।' गीता १७।३

ईश्वि
ऐसा लगता जैसे जैसे मानव जीवन में आलस्य अकर्मण्यता बढ़ती गई वैसे वैसे मानव ने तप ज्ञान कर्म का मार्ग छोड़ कर भक्ति का सरल मार्ग अपनाना आरम्भ कर दिया । विभिन्न भक्तो और आचार्यों ने कर्म ज्ञान की अपेक्षा भक्ति को श्रेष्ठ और शीघ्र फलदायी सिद्ध किया है ।

ज्ञान कर्म और भक्ति का अलग अलग विवेचन सर्वप्रथम गीता में हुआ है ।

क गीता में कर्म-ज्ञान और भक्ति

गीता में कर्म की अनिवार्यता पर बल दिया है गीता २।४७, ६।४०, ३।५-७-८-९-१४-१५-१६-१९-२०-२२-२३-२४-२५-२६-३०-३१, ४।१५ । गीता में यह भी कहा है कि कर्म से ब्रह्म दर्शन हो सकता है -- ५।६-१०. ---

' ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवा. ।
श्रद्धावन्तो न सूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभि ।। ३।३१।।
' ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना' ४।२४ ।।

:ख. ज्ञान

गीता में कर्म और ज्ञान को भी अत्यधिक महत्व दिया गया है । उसके अनुसार जिस प्रकार कर्म से ब्रह्म-दर्शन संभव है, उसी प्रकार ज्ञान से भी । घोर से घोर पापी भी से पापाम्बुधि पार कर सकता है ---

' अपि चेदसि पापेभ्य: सर्वेभ्य: पापकृत्तम: ।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ।। ४।३६।।

और ज्ञान से परम शान्ति प्राप्त होती है---

` श्रद्धावाल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ।।४।३९।।

एव आत्मज्ञानी कर्मी भी कर्म बन्धन में नहीं बंधता--

` योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय ।।४।४१

ज्ञानाग्नि से सर्व कर्म बन्धन नष्ट होते है गी०४।३७ । इस लोक में परम-गति प्राप्त करने के लिये ज्ञान के समान पवित्र अन्य कोई साधन नहीं है ४।३८ । ज्ञान से तत्त्व-दर्शन होता है ५।२६-२७-२८ । इस प्रकार के भक्तों में भगवान् कृष्ण को ज्ञानी भक्त सर्वाधिक प्रिय है ७।१६-१७. ।

यद्यपि गीता में कर्म और ज्ञान की महत्ता स्वीकार की है तथापि ज्ञान की अपेक्षा कर्म को श्रेष्ठ कहा है-- २।४६, ३।१, ४।१६ । गीता के बाह्य रूप को देखते हुए तो यह कहा जा सकता है कि गीता ने कर्म की अपेक्षा ज्ञान को श्रेष्ठ माना है, किन्तु गीता की अन्तरात्मा के अनुसार ज्ञान और कर्म समान फलप्रद हैं। जो गति ज्ञानियों को प्राप्त होती है वही कर्मयोगियों को -- ५।५ ।

ग कर्म की परिभाषा

गीता में कर्म उसे कहा है जो भूतों के भावों को उत्पन्न करता है--` भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः । ८।३।।

भाव दो प्रकार के होते है - शुभ और अशुभ । गीता के ७।१२-१३ अनुसार सत्, रज और तम यह तीन प्रकार के भाव है । शुभ भाव मुक्ति के कारण हैं और अशुभ बन्धन के । योग दर्शन १।५ में इनका क्लिष्ट और अक्लिष्ट वृत्तियों के रूप में वर्णन हुआ है । इन भावों का दैवी और आसुरी सम्पदा के रूप में भी विवेचन हुआ है (गी अ १६), इनमें दैवी सम्पदा मोक्ष-प्रदान करती है और आसुरी बन्धन में बांधती है ---

` दैवी संपद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता ।` गीता १६।५ ।

जिन कर्मों की उत्पत्ति आसुरी भावों से होती है उन्हीं की गीता ने निन्दा की है --:गीता १६।२३-२४, १७।५, १८।५-६-७-६-१०-११-१३-१४-१५-२३-१८-५६-६०' । गीता के अनुसार कल्याणकारी शुभ कर्म करने में कहीं और किसी समय भी दुर्गति नहीं होती है - ६।४० गीता ने यज्ञार्थ कर्मों का सर्वत्र समर्थन और पोषण किया है ४।२३,-२४ ३१-३२-३३, ५।११, ३।६, १८।५-६-७-६-१०-११-१३-१४-१५-१८-२३-५६-६० ।

घ. गीता में भक्ति

जैसा पहले कहा जा चुका है कि मूल गीता में भक्ति भाव कदाचित् नहीं था । भक्ति का प्रबल मार्ग बुद्ध के बाद आविर्भूत हुआ है । गीता ज्ञान कर्म और भक्ति के बीच का सेतु है । गीता ने जितनी मान्यता कर्म और ज्ञान को दी है, उतनी भक्ति को नहीं दी है । कर्म से मोक्ष प्राप्त होता है यह गीता के १६ श्लोकों में स्पष्ट रूप से कहा है । ज्ञान से ब्रह्म प्राप्ति होती है यह १५ श्लोकों में स्पष्ट किया है । योग से ब्रह्म का साक्षात्कार होता है यह १७ श्लोकों में व्यक्त हुआ है । गीता में योग और कर्म में विभेद नहीं किया गया है (गीता २।५०, १३।२५) । उसमें ज्ञान और कर्म के साथ योग का सम्बन्ध स्थापित करके ज्ञान और कर्म को ही व्यक्त किया है (अ३) । ज्ञान और योग को कर्म के साथ संयुक्त करके गीता ने मुख्य रूप से कर्म को ही प्रधान माना है ।

भक्ति से ब्रह्म-दर्शन होता है यह स्पष्ट रूप से तो केवल ६ श्लोकों में कहा गया है । गीता के अनुसार भक्ति के प्रकारों में श्रवण (१) और स्मरण (५) शरणागति (१) और कृपा से भी (१) परम गति प्राप्त हो सकती है । ज्ञान और भक्ति, भक्ति और योग, स्मरण और योग, ध्यान और स्मरण, योग और ज्ञान, भक्ति और ज्ञान को मोक्ष के लिये साथ साथ चला करके गीता ने समन्वय भाव को व्यक्त किया है ।

ज्ञान और कर्म में भक्ति श्रेष्ठ है इसका प्रारम्भिक रूप भी गीता में ही मिलता है । भगवान् ने भक्ति का विवेचन करते हुए अपने को जप रूप माना है । (१०।२५) । गीता के अनुसार ज्ञान-भक्ति के द्वारा ही उद्भूत होता है (१८।५५, १०।१०) । गीता ने यह माना है कि तप, दान, यज्ञ वेद से ब्रह्म-दर्शन नहीं हो सकते । अनन्य भक्ति से ही ब्रह्म-दर्शन आदि सब कुछ सम्भव है (११।५३) ।

अन्य मार्गों की तुलना में भक्ति मार्ग सरल है, यह भी सर्वप्रथम गीता में ही कहा गया है --

अनन्य चेता सततं योमां स्मरति नित्यश ।
तस्याह सुलभ पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिन ।।८।१४।।

गीता में जहाँ यह कहा गया है कि भक्ति से ज्ञान होता है (१८।५५) वहाँ यह भी कहा है कि ज्ञान से भक्ति होती है (१८।६६)। यदि भगवान् ने एक ओर यह

कहा है कि मैं यज्ञ में जप-पार हूँ तो दूसरी ओर यह भी कहा है कि मैं ज्ञानियों का ज्ञान हूँ १३।१७, १०।३८ ।

गीताकार ने ११।५३ यह कहा है कि ब्रह्म-दर्शन तप दान यज्ञ और वेद-ज्ञान से नहीं हो सकता वह केवल ११।५४ अनन्य भक्ति से ही सम्भव है। गीता का यह कथन गीता के मूल-धारा-प्रवाहके विपरीत है क्योंकि गीता मे दान ३।१३ यज्ञ ४।३१ ,४।३०,३।११,१७।२५,१८।५ वेद १७।२३,१६।२३-२४,१५।१८ को भी मोक्षप्रद बताया है।

यह निश्चित है कि गीता ने अन्य साधनों की अपेक्षा भक्ति को सरल और सुलभ साधन कहा है ८।४ । यह भी कहा है कि वेद, स्वाध्याय, यज्ञ, दान, उग्र,तप, क्रिया-कर्म आदि से ब्रह्म-दर्शन संभव न होकर केवल अनन्य भक्ति से ही सम्भव है १९।४८-५३ -५४ । यहाँ पर भक्ति की श्रेष्ठता सिद्ध की है। गीता में भक्ति की जो श्रेष्ठता सिद्ध की है वह अन्तविरोधपूर्ण है, क्योंकि कृष्ण ने यह भी कहा है कि विराट् रूप का दर्शन योग से ही संभव है ११।४७-८ । इसी स्थान पर उन्होंने यह भी कहा है कि यह विश्व रूप गुणों के अतिरिक्त किसी अन्य ने नहीं देखा है ११।४७ और न कोई दूसरा इसे देख ही सकता है ११।४८ । अर्जुन ने विराट् रूप के दर्शन केवल योग प्रभाव से किये थे। इस कथन के विरोध में यह कहना कि एक अनन्य भक्ति से ही सब कुछ संभव है। मूल गीता मे बाद को मिलाया गया प्रतीत होता है।

गीता की आत्मा यज्ञ-कर्म और ज्ञान से ही ओत-प्रोत है। गीता में भक्ति भाव मिलता अवश्य है किन्तु कृष्ण ने अर्जुन को स्पष्ट रूप में भक्त बनने के लिए कहीं पर भी नहीं कहा है किन्तु योगी बनने के लिए कहा है ६।४६. ।

कर्म निन्दा

गीता के उपरान्त ज्ञान और कर्म को हेय दिखाकर भक्ति को श्रेष्ठ सिद्ध करने की प्रवृत्ति भी चल पड़ी। कर्म और ज्ञान की निन्दा अकारण ही स्वीकार नहीं की गई। ऐसा ज्ञात होता है कि जैन और बौद्धों के सतत साम्प्रदायिक प्रयत्न के फलस्वरूप सन्यास-प्रधान-मत ने ज्ञान और कर्म के मार्गों को दुर्बल बनाया। जैसा बताया जा चुका है कि वैदिक दृष्टि में कर्म का अर्थ श्रम-क्रिया माना गया है। गति के द्वारा परम गति को प्राप्त करना जीवन का लक्ष्य है। वैदिक संहिताओं में मोक्ष शब्द का प्रयोग न होकर परम गति परम-स्थिति आदि शब्दों का ही प्रयोग हुआ है।

वैदिक विचार के विपरीत जैन बौद्ध और पौराणिक साहित्य में कर्म को बन्धन के रूप में माना गया है। जैन सम्प्रदाय में जिन शब्द का अर्थ है विजयी अर्थात् कर्म-बन्धन से मुक्त है।[1]

द्रव्य-संग्रह १४ में मुक्त जीव का अर्थ निष्कर्म है। जैनियों ने आकाश तक को क्रिया-रहित माना है -[2] द्रव्य संग्रह १६।२०, तत्वार्थ सार ३।३८ ।

पौराणिक साहित्य में कर्म, ज्ञान और भक्ति

कूर्म पुराण उत्तरार्द्ध ४।२५ में ज्ञान द्वारा आराधना करने वालों को प्रियतम भक्त कहा है।

'देवी-भागवत' के अनुसार भक्ति की जो पराकाष्ठा है वही ज्ञान है।[3] ज्ञान के उदय होने पर भक्ति और वैराग्य की पूर्णता सिद्ध होती है। श्रद्धा शील मुनि लोग वेद शास्त्र से उत्पन्न ज्ञान और वैराग्य युक्त भक्ति प्राप्त कर उसके द्वारा अपने भीतर ही आत्मा का दर्शन करते हैं।[4] जयाख्य संहिता १।३८ में यह माना है कि जब तक भगवत् तत्व का ज्ञान नहीं होता, तब तक मोक्ष दुर्लभ है।[5] भक्ति दर्शन के अनुसार भी

बिना ज्ञान के सुभक्ति नहीं हो सकती।[6] ईश्वर को सभी भक्त प्रिय हैं किन्तु प्रतिभा एवं ज्ञान सम्पन्न भक्त सर्वाधिक प्रिय है।

१- ए बार्थ 'रिलिजन्स आफ इण्डिया' पृ० १४२
२- वर्द्धमान पुराण १६।३१ :३: दे० भा० ७।३७ ।।२८।।
४- भागवत- १।२।१२
५- लिं०पु० भा० पृ० ३७
६- 'इण्डियन फिलासफी' भा०१ पृ०५६४ डा० राधाकृष्णन् ।

विष्णुपुराण मे नाम को मोक्षप्रद माना है । भगवान् ज्ञान रूप है । प्रभु स्वयं ही परा और अपरा विद्यायें है ।[1] उसमे यह भी कहा है कि ज्ञान से ही प्राप्ति होता है ।[2] और उसके अनुसार कर्म और ज्ञान ब्रह्म-प्राप्ति के साधन है -[3]

तत्प्राप्तिहेतुर्ज्ञान च कर्म चोक्त महामुने ।

देवीभागवत के अनुसार आराध्य को अर्पण किये गये कर्म ही पाप नाश करने मे समर्थ होते है । प्रत्येक व्यक्ति को वेदोक्त कर्म करने चाहिए । जो देवी की प्रसन्नता के निमित्त नित्य कर्मानुष्ठान करता है, उसकी भक्ति सात्त्विक है । सम्पूर्ण व्यापार प्रारब्ध और कर्मानुसार होता है, यह जानकर जो देवी ध्यान के अतिरिक्त देह रक्षादि के विषय मे चिन्ता नही करते, उनकी भक्ति परा भक्ति कहलाती है । इसमे देवी विचार के अतिरिक्त अन्य किसी विषय की चिन्ता नही रहती ।[4]

विष्णुपुराण के अनुसार कर्म वही है जो बन्धन का कारण न हो और विद्या भी वही है जो मुक्ति की साधिका हो । इसके अतिरिक्त अन्य कर्म केवल परिश्रम रूप एव अन्य ~~अन्य~~ विद्यायें कला-कौशल मात्र ही है -- वि०पु० १।१९।४१ ।।

भागवत के मतानुसार कर्म ही गुरु ईश्वर शत्रु-मित्र और उदासीन है । प्रत्येक मानव को कर्म की उपासना करनी चाहिए। कर्म के अनुसार ही अच्छी बुरी गतियों की प्राप्ति होती है । आजीविका के स्वमान साधन कर्म को छोड़ कर जो अन्य साधनो की उपासना करता है वह जार की उपासना करने वाली कुलटा की भाँति सुख प्राप्त नहीं करता -

---

१- विष्णुपुराण ७।६।२०-२१-२२,५।१।३४-३५-३६-३७-४१,३।३।३१,२।१५।३०,२।१२।४३-३९-४०, १।४।३९-४०-४१ ।।

२- वि० पु० ६।५।६०-६१-६२-६३-७० ।।

३- वि० पु० ६।५।६०-६१-६२-६३-७० ।।

४- देवीभागवत ८।६-२५-२६ स्कंध ७। अ० ३७ पृ० ७५६-७६१ ।।

भागवत के अनुसार सत्युग में ध्यान, त्रेता में यज्ञ और द्वापर में सेवा से जो फल प्राप्त होता है वही कलियुग में कीर्तन से प्राप्त होता है।[1] यही भाव विष्णु पुराण ६।२।१७ में व्यक्त किया गया है। जब सब वेद पुराण नष्ट हो जायेंगे, ब्राह्मण की कोई चिन्ता न करेगा, जप-तप नियमादि मिट जायेंगे तब कलियुग में केवल नाम स्मरण से मोक्ष मिलता रहेगा।[2] इस अत्यन्त दुष्ट कलियुग में यही एक महान् गुण है कि इसमें केवल कृष्ण का नाम सकीर्तन से ही मनुष्य को परम-पद प्राप्त हो जाता है।[3] जितने भी तपस्यात्मक और कर्मात्मक प्रायश्चित हैं, उन सब में श्रीकृष्ण स्मरण सर्वश्रेष्ठ है।[4] जिसकी निश्चल भक्ति है मुक्ति भी उसकी मुट्ठी में रहती है, फिर धर्म अर्थ काम से तो उसे लेना ही क्या।[5] भागवत् में कहा गया है कि भगवान् का सच्चा भक्त भगवान् के साथ एकीभाव सायुज्यमोक्ष की भी इच्छा नहीं करता।[6]

विष्णु पुराण के अनुसार भक्ति के बिना अन्तःकरण की शुद्धि असम्भव है।[7] बिना आराधना भक्ति के शाश्वत शान्ति असम्भव है।[8] मोक्ष-प्राप्ति भक्ति से ही मिलती है।[9]

भक्ति यज्ञ से भी श्रेष्ठ है।[10] प्रतिकूल या शत्रुभाव से भी भगवान् की साधना करके उन्हे प्राप्त किया जा सकता है।[11]

अतः स्पष्ट है कि पौराणिक धर्म की वृद्धि के साथ साथ भक्ति की महत्ता भी बढ़ती गई। भागवत पुराण में तो भक्ति को भगवान की प्राणाधिक प्रिया तक कहा है। ब्रह्म भक्ति के वश में है। भक्ति जीव को ब्रह्म के दर्शन करने योग्य बनाती है।[12]

भक्ति का प्रभाव इतना है कि भगवान् को नीच व्यक्तियों के घर जाना पड़ता है। भगवान् के भक्त चाण्डाल होने पर भी श्रेष्ठ और आर्य हैं।

बृहन्नारदीयपुराण ३२।३६ में कहा गया है कि ईश्वर भक्ति के द्वारा चाण्डाल भी ब्राह्मण से श्रेष्ठ हो सकता है तथा भक्तिविहीन ब्राह्मण भी श्वपाक और अधम हो सकता है।

१- भाग० १२।५।५२ ।।
२- ना०पु० १।४१।११५ ।।
३- वि०पु० २।६।४० ।।
४- वि०पु० २।६।३७ ।।
५- वही १।२०।२७ ।।
६- भाग० ३।२५।३४
७- भाग० ११।१४।२३।।
८- वि०पु० ५।२३।४३ ।।
९- भाग०११।१४।२५ ।। वि०पु० ८।६।१८ से३२ तक।। १०-वि०पु०८।६।२८-३०-३४ ।।
११- कल्याणभा० ४ ।अंक ६।१९८६ पृ० ५७६।। भाग २।३
१२- 'दी पंजाब ओरियन्टल संस्कृत सिरीज' नं०१४ पृ०४०
'दी फिलासफी आफ वैष्णव रिलिजन्स' गिरीन्द्र नारायण मलिक

शिव पुराण वायवीय संहिता ८।२५।२६ में कहा है कि मनुष्य पतित हो या कमलिन, पंडित हो या मूर्ख, सभी शिव के प्रसाद से तत्काल मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। योग्य भक्तों के पाप नष्ट करते हैं। भक्ति के प्रभाव से अजितेन्द्रिय भक्त जितेन्द्रिय बन जाता है-- ११।१४।१८ भगवान् का नाम सुनने या जपने से चाण्डाल भी पुण्यात्मा ब्राह्मणों के समान हो जाता है भाग० ३।३।३७।

इस भाव की पुष्टि गीता ने भी की है-- गी० ।।०६।३०-३१ ।

भक्ति की महानी अधिक है कि भक्त भक्ति की ही कामना करते हैं- भाग० १०।५१।५८:। भक्त प्रत्येक योनि में कर्मानुसार भ्रमण के लिये तत्पर रहते हैं किन्तु भक्ति छोड़ने के लिये तैयार नहीं है विoपुo १।२०।१८-१९ ।

भगवान् भक्तों के अधीन हैं।[1] ज्ञान-ध्यान-जप-तप-पाठ-पूजा-अध्ययन-अध्यापन-दानादि सब उपाय भक्ति की प्राप्ति के लिये है। ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्रादि देवता भक्ति करके ही उत्तम पद को प्राप्त हुए हैं।[2] अन्तःकरण की शुद्धि के लिए भक्ति ही परम-साधन है-- 'धर्मार्थ काममोक्षाणां ज्ञानवैराग्ययोरपि ।

अन्तःकरण शुद्धेश्च भक्तिः परमसाधनम् ।। '

भक्ति और मोक्ष

भक्ति शास्त्रों में भक्ति मोक्ष से भी उत्कृष्ट मानी गई है। मुक्ति-भक्ति की दासी है और ज्ञान वैराग्य पुत्र।[3] मुक्ति-भक्ति की सोलहवीं कला की भी समता नहीं कर सकती।[4]

लिंग पुराण के अनुसार परमेश्वर में भक्ति होने से मुक्ति मिलती है।[5]

देवी भागवत के अनुसार भक्ति से भक्त भगवान् बन जाता है।[6]

भागवत के अनुसार भक्ति से आत्मा की प्रसन्नता प्राप्त होती है - भाग०१।२।६' जिस प्रकार अग्नि में ईंधन भस्म हो जाता है उसी प्रकार भक्ति से विषय-मल नष्ट हो जाते हैं-- भाग०११।१४।१९. भक्ति - भाव से गोपियाँ, गौएँ, मृग, नाग तथा मूढ बुद्धि जीव भी ईश्वर को अनायास प्राप्त कर लेते हैं भाग० ११।१२।८ । योगियों के लिए भी भगवत्प्राप्ति के लिए भक्ति के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है 'भाग० ३।२५।१९: । भक्ति से मोक्ष मिलती है और भवजाल में भटकता हुआ जीव भगवान् के पावन नाम के स्मरण से तुरन्त ही मुक्त हो जाता है।--' १।११।४६,भाग०१।१।१४ विoपुo २।८।३७।।

१- भाग० ९।४।६३।
२- लिंग पुराण भाषा पृ० ३७
३- भाग० २।७ पृ०८
४- नारदपांचरात्र २।२।२
५- लिं० पु० पृ०३७
६- दे०भा० ७।३७।२७-१५

भक्ति-हीन मनुष्य को सत्य-दयायुक्त धर्म और तपोयुक्त विद्या भी पवित्र नहीं कर सकती[1]। ब्रह्म-प्राप्ति,योग, ज्ञान, विज्ञान, धर्मानुष्ठान,जप, तप, पाठ,त्याग से उतनी सुगम नहीं है जितनी भक्ति से[2]।

भक्ति की महत्ता के सम्मुख मुक्ति का कोई महत्व नहीं है। भगवान् अपने भक्तों को मुक्ति तो दे देते है, किन्तु भक्ति नहीं देते - भाग० ५।६।१८।

भागवत के अनुसार (उत्तर दायित्व) विश्व के कल्याण का सुधार भक्ति पर ही निर्भर है-- भाग० ७।६।६ ।

पौराणिक साहित्य में ज्ञान-कर्म-भक्ति के अतिरिक्त मोक्ष के अन्य साधन

विष्णु पुराण के अनुसार ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, स्वाध्याय,शौच, सन्तोष और तप का निष्काम सेवा मोक्ष-प्रद है[3]।

विष्णु पुराण के अनुसार - पुरुषोत्तम भगवान् स्वाध्याय, संयम द्वारा देखे जाते है।

ब्रह्म की प्राप्ति का कारण होने से स्वाध्याय और संयम ब्रह्म ही कहलाते हैं। योग और स्वाध्याय से ब्रह्म दर्शन होता है। ब्रह्म को मांसमय चक्षुओं से नहीं देखा जा सकता,उन्हे देखने के लिए स्वाध्याय और योग ही दो नेत्र है। क्लेशों को नष्ट करने वाले योग के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। योग से मोक्ष मिलती है। पुण्य-पाप का क्षय और क्लेशों की निवृत्ति होने पर जो अत्यन्त निर्मल हो जाता है, वही योगी उस परमात्मा का आश्रय लेता है, जहाँ से पुनः लौटना नहीं होता[4]। विष्णु पुराण के अनुसार

निःसंग रहने से भी मुक्ति मिलती है--

" निस्संगता मुक्तिपदं यतीनां
संगादशेष प्रभवन्ति दोषाः ।
आरूढयोगो विनिपात्यते घस्संगेन योगी किमुताल्पसिद्धिः ।।[5]

विशुद्ध चित्त, शुद्ध धन, प्रशस्त काल,योग्य-पात्र और परम भक्ति -- ये सब मनुष्य को इच्छित फल देते हैं। विद्या विनय, सदाचार, मैत्री, वैराग्य और कर्म से मोक्ष मिलती है। वर्णाश्रम धर्म के पालन से विष्णु की आराधना हो सकती है। प्रभु को संतुष्ट करने का इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है। यज्ञ, सदाचार,अनिन्दा,चुगली न करना, सत्य[6], अहिंसा,ब्रह्मचर्य निर्लोभिता, सेवा, और पर हित की इच्छा भी विष्णु को सन्तुष्ट कर सकते हैं।

१- भाग० ११।१४।२२ ।। २- भाग० ११।१४।२० ।।

३- वि०पु० ७।६।३६-३७-३८ ।

४- वि०पु०६।६।१,६।६।२,५।३०।५८,६।६।३,७।६।२५,२।८।१०३,१।२२।५४

५- वि०पु० ४।२।१२४ ६- वि०पु० ३।१४।२०,३।१२।४० से४५ तक,३।८।६-१२-१६ ।। ३।८।६ से १६ तक

भागवत १०।२।२६ में सत्य को भी मुक्ति का साधन माना गया है।

नारद भक्ति सूत्र में कर्मों का त्याग और ... इन दोनों भावों को स्वीकार किया गया है। प्रेमा-भक्ति निरोध स्वरूपा है। लौकिक और वैदिक कर्मों के त्याग को निरोध मान कर कर्म की अनावश्यकता दिखलाई है ना०भ०सू० ७-८ । उसके अनुसार लौकिक और वैदिक कर्म भगवान् के अनुकूल रह कर करने चाहिए ना०भ०सू०११-१२ । यही गीता का भी मत है १६।२४ । शास्त्रानुकूल कर्म न करने से पतन की सम्भावना है -

अन्यथा पातित्याशङ्कया सूत्र १३ ।

य शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।

न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ।।गी०१६।२३ ।।

नारद भक्ति के अनुसार भक्ति के साथ ज्ञान भी रह सकता है सूत्र २२ ज्ञान भक्ति का साधन है सू०२८ ।नारद के मत से भक्ति ज्ञान पर निर्भर नहीं है सूत्र२८।३० । उसके अनुसार प्रेम रूपा भक्ति के कर्म, ज्ञान और योग से श्रेष्ठ है सू० २५ । कुछ आचार्यों का यह मत है कि भक्ति और ज्ञान परस्पर एक दूसरे के आश्रित है सू०२६ ।किन्तु नारद के मत से भक्ति स्वयं फलरूपा है सू०३० ।

नारद -मत के अनुसार अन्य साधनों की अपेक्षा भक्ति सुलभ है सू०५८ ।भक्ति स्वय प्रमाण रूप है ' ५६ । भक्ति शान्त और परमानन्द रूपा है सू० ६० । नारद भक्ति सूत्र के अनुसार स्मरण करने पर भगवान् शीघ्र प्रकट होकर भक्तों को अपना अनुभव कराते हैं ८० ' । सर्व प्रकार से भगवान् की भक्ति ही श्रेष्ठ है '८१ ।

शाण्डिल्य सू० ४-५ के मत से भक्ति ज्ञान स्वरूपा नहीं है। शरणागति भक्ति भी ज्ञान रूप नही है। 'सू० ६ ' । वैसे शाण्डिल्य भक्ति सूत्र में ईश्वरनिष्ठ बुद्धि को मोक्ष प्रद माना है २६-३०-३१' ।

उसके अनुसार भक्ति क्रिया रूप भी नहीं है 'सू०७' । भक्ति मुख्य है। ज्ञान योगादि अन्य साधन भक्ति की अपेक्षा रखते हैं १०-११' । भगवान् ने कर्मकाण्डी, ज्ञानी और योगी इन सबकी अपेक्षा भक्त को ही श्रेष्ठ बताया है २२-२३: ।

भक्ति सूत्र वैजयन्ती मे भक्ति को अनन्त फलरूपा माना है -

"तत्त्व फलानन्त्यं"[१] ।।८।।

इस प्रकार वैदिक साहित्य मे ज्ञान, कर्म, तप, ब्रह्मचर्य, दान, सत्य आदि ब्रह्म प्राप्ति के प्रमुख साधन थे। वैदिक युग मे परमार्थ साधनो मे से किसी साधन को उत्कृष्ट और किसी को निकृष्ट सिद्ध करने की प्रवृत्ति नही थी। भक्ति धर्म के प्रसार के उपरान्त कर्म और ज्ञान को हेय दिखाकर, भक्ति को श्रेष्ठ सिद्ध करने की प्रवृत्ति बढती ही गई है। भक्ति को उत्कृष्ट सिद्ध करने के साथ साथ भक्तों ने भक्ति को साध्य रूप में भी ग्रहण किया है। भक्ति को साध्य मानने का परिणाम यह हुआ कि भक्तो ने भोग, ऐश्वर्य, स्वर्ग सुख, पृथ्वी का स्वामित्व, ब्रह्म-पद, योग-सिद्धि, और मोक्ष तक को ठुकराकर भक्ति के लिए ही कामना की है भाग १०।१६।३७। भक्ति को सर्वोपरि मानने का एक परिणाम यह भी हुआ है कि समाज मे विभिन्न देवो को सर्वोपरि मान कर बहुत से भक्ति सम्प्रदाय प्रचलित हो गए।

प्रारम्भ मे भक्ति ब्रह्म प्राप्ति के साधन के रूप में ग्रहण की गयी थी। बाद में जब भक्ति साध्य रूप में विकसित हो गई, तब भक्ति-प्राप्ति के लिये भक्ति के साधन और अन्तरायो का भी उल्लेख होने लगा।

ख भक्ति के साधन और अन्तराय

भक्ति स्वयं ब्रह्म प्राप्ति का एक साधन है। ब्रह्मप्राप्ति के साधनों में भक्ति को सर्वोच्च स्थान मिलने के बाद, भक्ति के विविध साधनो का विवेचन हुआ है। भक्ति के साधन भक्ति की पुष्टि और प्राप्ति मे सहायक माने गये है।

१- भक्ति सूत्र वैजयन्ती 'भाष्यकार' श्री हरिश्चन्द्र पृ० ५ ।।

~~उल्लेख किया है - वैसे भक्ति युग में साम्प्रदायिक सम्बन्धों की प्रमुखता की गई है।~~

भक्ति के अन्तराय -

~~भक्ति के अन्तराय~~ वैदिक साहित्य में भक्ति के अन्तरायों का तो उल्लेख नहीं हुआ है, किन्तु वैदिक साहित्य में छल, कपट, अज्ञान, अन्धकार, असत्य, द्वेष, अब्रह्मचर्य और अशौच आदि को जीवन पथ में विघ्न अवश्य माना है।-[1]

नारद और शाण्डिल्य के अनुसार भक्ति के अन्तराय -

नारद के अनुसार, काम, क्रोध, मोह, माया, लौकिक सम्बन्ध, त्रिगुण सत्व, रज, तम;, कर्म, कर्मफल, लोक हानि की चिन्ता, स्त्री, धन, नास्तिकता, अभिमान, दम्भ और तर्क भक्ति के अन्तराय हैं।-[2] शाण्डिल्य के अनुसार द्वेष, द्यूत-क्रीड़ा, हिंसा, और अज्ञान भक्ति मार्ग में बाधक है।-[3]

भक्ति के अन्तरायों मे द्वेष, अहंकार, महत्वाकांक्षा, क्रोध, मोह, दम्भ, हिंसा आदि के सम्बन्ध में कोई विशेष मत भेद नहीं है।- ये जीवन और भक्ति मार्ग दोनो के लिये बाधक है।- ब्रह्म प्राप्ति में कुसंगति भी महान बाधक है।- नारद भक्ति सूत्र के अनुसार तो दुष्ट पुरुषों का संग सदैव त्याज्य है - "दुःसंगः सर्वथैव त्याज्यः" सू० ४३ ।। भागवत के मतानुसार भी दुष्टों का संग कभी नहीं करना चाहिये।-[4] नारद पांचरात्र के मत से, अभक्तों का स्पर्श, दर्शन, वार्तालाप सदैव त्याज्य है और अभक्तों के साथ शयन, भोजन करने से पाप लगता है तथा दुष्टों का संग विषधर सर्प के समान है।-[5] किन्तु उपर्युक्त अन्तरायों के अतिरिक्त तर्क स्त्री, माया और काम अन्तराय मानने के सम्बन्ध में शास्त्रकारों का मतभेद है।- शास्त्रकारों की दृष्टि में ये जीवन के अन्तराय नहीं हैं।-[6] स्त्री तर्क काम आदि मनुष्य की जीवन में सहायता प्रदान करते हैं, केवल इनके अनुचित उपयोग से मानव हानि उठा सकता है।-

---

वैष्णव धर्म रत्नाकर" प० २६३-२५७-२५६ ।।

.१ यजु० ४०।१६, ऋ० ४।१।४, ८।१६।११, २।२६।११, ८०।२२।८, शत० १।४।६।४।।

२ ना० भ० सू०- ४४-४६-२७-४८-४६-६१-६३-६४-७४

३. शा० भ० सू० अ० १-२-३

.४ भाग० ३।३१।३२।३४ ।।

.५ ना० पां० रा० २।२।६ ।।

६ न्याय भाष्य १।१।१ ।। तै० आ० २।६।४।७, महा० १३।४६।१५, ऐत० ब्रा० ३३।१, शत० २।६।२।१४, अथर्व १६।५२।३, ६।२।१६ ।।

मध्यित ग्रन्थों में तर्क अनादरणीय माना गया है, किन्तु वैदिक साहित्य में तर्क को जीवन साधना में आवश्यक माना है ।

शास्त्रकारों ने तर्क को ऋषि कहा है -

' तर्कमृषिं निरुक्त ' पृ०८६५ ।।

तर्क ज्ञान का पोषक है । तर्क पर ही ज्ञान का विकास निर्भर है । न्याय-भाष्य १।१।१ के अनुसार तर्क प्रमाणों का सहायक है -' प्रमाणानामनुग्राहकस्तर्कः ' विद्याओं की श्रेणी में आन्वीक्षिकी विद्या का प्रधान स्थान है । आन्वीक्षिकी विद्या का म०भा० १००।३८ मनुस्मृति ७।४३ गौतम स्मृति ११।३ महाभारत शा० पर्व १८०।४७ बृहदारण्यक २।२।५ छान्दोग्योपनिषद् ७।१।२ और अर्थशास्त्र[1] में उल्लेख हुआ है ।

अर्थशास्त्र में यह भी कहा गया है कि विद्या से वही योग्य बनते हैं जो शुश्रूषा श्रवण ग्रहण, धारण-विज्ञान, ऊहापोह तत्त्व-निर्णय में विवेक तथा बुद्धि से काम लेते हैं[2] ।

प्राचीन काल में तर्क-विद्या, हेतु शास्त्र, हेतु विद्या, तर्कशास्त्र, वाद-विद्या, न्याय शास्त्र, वाकोवाक्य, तर्क विद्या आदि नामों से प्रसिद्ध थी[3] ।

कठोपनिषद् के इस वाक्य 'नैषा तर्केण मतिरापनेया' के आधार पर कुछ विद्वान् यह मत व्यक्त करते हैं कि अध्यात्म मार्ग में तर्क की आवश्यकता नहीं है । उपनिषदों में तर्क की अवहेलना नहीं की गई है। इस मंत्र के आधार पर भी यह नहीं कह सकते कि अध्यात्म-विद्या

१- अर्थशास्त्र १।२।७ ।।

२- काटिल्य अर्थशास्त्र पृ० ६ अनुवादक प्रो० प्राणनाथ विद्यालंकार ।।

३- भारतीय दर्शन पृ० १७८ डा० उमेशमिश्र ।।

में तक की आवश्यकता नहीं है। उसी ग्रन्थ के अन्तिम भाग में रामदास ने याचिका की कहा है कि मेरे समान प्रश्न करने वाला शिष्य प्राप्त हो -

प्रोक्तान्यैव उपानाय प्रेष्ठ-

सा त्वगाय [illegible]

त्वादृङ्गो भूयान्निकेत पृष्टा ।।१।२।९।।

ब्रह्मसूत्र २।१।११ में तर्क की निन्दा तो नहीं की है। उसमें केवल यह कहा है कि तर्कों की स्थिरता न होने पर अनुमानादि के द्वारा खण्डन का निषेध करना चाहिए। भर्तृहरि ने वाक्य-प्रदीप १।३४ में तर्क के परिवर्तनों पर विचार किया है। तर्क साम्प्रदायिक जीवन एक गुरु एक ग्रन्थ, साम्प्रदायिक वेष आदि का विरोधी है। ऐसा ज्ञात होता है कि सम्प्रदायों के आविष्कार के साथ साथ तर्क, ज्ञान, बुद्धि आदि की निन्दा होनी प्रारम्भ हुई है।

स्त्री

भक्ति ग्रन्थों में स्त्री भक्ति का अन्तराय मानी गयी है किन्तु वैदिक साहित्य ने स्त्री को जीवन विकास में सहायक माना है। वैदिक साहित्य में स्त्री सम्बन्धी जो उत्कृष्ट भाव व्यक्त हुए हैं, वे नीचे दिए जा रहे हैं।

वैदिक साहित्य के अनुसार स्त्री पुरुष का आधा भाग है। स्त्री के संग से पुरुष का जीवन पूर्ण होता है। स्त्री श्री का रूप है। वह घर की शोभा है। पत्नी पुरुष की श्रेष्ठ सखा है। पत्नी पति के लिए प्रतिष्ठा है।[2] वैदिक साहित्य के अनुसार अपत्नीक यज्ञ का अधिकारी नहीं होता।[3] यज्ञ का अर्थ विष्णु है - 'विष्णुर्वै यज्ञः' ऐत०ब्रा० १।१' निघण्टु ३।१७।

इस प्रकार यज्ञ का अर्थ विष्णु होने से बिना स्त्री के विष्णु को प्राप्त करना कठिन है। जहाँ नारी पूजन होता है वहाँ देवता रमण करते हैं। भूत भविष्य और समस्त जगत की उत्पत्ति का कारण स्त्री ही है।[4] उपनिषदों में स्त्री और पुरुष में कोई भेद नहीं किया गया है -

---

१- शत०५।२।१।१० तै०ब्रा० ३।३।३५, ऋ० १।१६४।८, बृहदा०१।४।१७ ।।

२- श्रिया वा एतद्रूपं यत्पत्न्य ते आ० २।६।४।७ ।। महा० १३।४६।१५।, ५।३८।११, १।४७।४०, ऐत०ब्रा० ३३।१, शत० २।६।२।१४

३- अयज्ञो वा एष यो पत्नीक ।।तै०ब्रा० २।२।२।६ ।।

४- ऐ०ब्रा० ३३।१, शत० २।६।२।१४, ३।३।१।१०, तै०ब्रा० २।२।६, मनु० ६।४५, ३।५६, पा०गृ०सू० १।७।२, महा० १३।४६।१५, ५।३८।११, १।७४।४० ।।

त्वं स्त्री त्वं पुमान असि त्वं कुमार उत वा कुमारी " श्वेता ४|३० || अथर्व- १०|८|२६

वैदिक साहित्य मे स्त्री निन्दा का लगभग अभाव है - स्त्री निन्दा के प्रादुर्भाव का कारण, कदाचित जैन और बौद्धो का सन्यास प्रधान धर्म है।-

जैन आचारांगसूत्र १|२|४|३ में स्त्रियों को दुख, मृत्यु और नरक का द्वार कहा है।- बौद्ध जातकों मे कहा है कि स्त्रियां पापिनी और दुराचारिणी होती है। अश्वघोष ने कहा है कि स्त्रियां मधुर वचनों से पुरुष का चित्त हरण करती है, पर क्रूर स्वभाव से उन्हें हानि पहुंचाती है - इनके वचनों में मधु और हृदय मे विष होता है -

" वचनेन हरन्ति वल्गुना निशितेन प्रहरन्ति चेतसा -

मधु तिष्ठति वाचि योषिता हालाहलं महद्विषम || "

कल्हण ने राजतरंगिणी मे कहा है कि स्त्रियां स्वभाव से ही विलासिनी होती है - उन पर कौन नियंत्रण कर सकता है -

" निसर्गतरला नार्य को नियंत्रयितु क्षम " ||-

सिद्ध एवं नाथ सम्प्रदाय, बौद्ध - सम्प्रदाय के ही रूपान्तर है - इन सम्प्रदायों मे नारी - निन्दा की गई है - गोरख-वाणी में कहा है -

" कनक कामिनी त्यागै दोइ- सो जोगेश्वर निरमै होइ -" गो० बा० पृ०३५ ||

" कदै न सोवै सुन्दरी सनकादिक के साथि -

जब तक कलंक लगा इसी काली हांडि हाथि || गो० बा० पृ० ७७ ||

" पासि बैठी सोमै नहीं साथि रमाई मुंडि |

गोरष कहै असतरी कहा सलह कर मुंडि || गो० बा० पृ० ७८

कनफटों का यह विश्वास है कि स्त्री- दर्शन से - घाव पक जाता है।-[2]

नाथों ने स्त्री को चोर, डाकू, शेरनी एवं मक्कार बिल्ली तक कहा है।-

मध्ययुग में एक वराहमिहिर ही ऐसे पुरुष हुये हैं जिन्होंने स्त्री की उपयोगिता और महत्ता को समझा है।- वराहमिहिर के मतानुसार जो स्त्रियों की निन्दा करता है, वह उस चोर की भाँति है जो स्वयं चोरी करके चोर चोर चिल्लाता है।[3]

:१. जातक - १|३००- ३०२- ३३८, २|१६७,३|२५०- ३४२

.२ नाथ सम्प्रदाय" डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी" पृ० १५ ||

३. बृहत्संहिता" अ०-७४ ||

इस प्रकार जैन बौद्ध,नाथ और सिद्धों के द्वारा की गई नारी निन्दा परवर्ती भक्ति प्रधान साहित्य में अभिव्यक्त हुई है ।

माया

वैदिक वाङ्मय में माया   भक्ति ग्रन्थों में माया को भक्ति का अन्तराय माना है किन्तु वैदिक वाङ्मय में माया शब्द, माया के अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ है।[1] वैदिक साहित्य में माया शब्द मायावाद के अर्थ में सर्वप्रथम श्वेताश्वरोपनिषद ४।१० में प्रयुक्त हुआ है।[2] कुछ विद्वानों ने श्वेताश्वतरोपनिषद् को १० प्रामाणिक उपनिषदों के बाहर और उनके अपेक्षा नया माना है। इस उपनिषद् के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि वैदिक साहित्य में मायावाद को स्थान था ।

मायावाद का जन्म

विद्वानों का मत है कि बौद्धों के माध्यमिक सम्प्रदाय के शून्यवाद से मायावाद का जन्म हुआ है। गौडपाद तथा शंकराचार्य ने शून्यवाद को थोड़ा सा बदल कर मायावाद का रूप दिया है।[3] पद्मपुराण का मत है कि मायावाद असत् है। वह प्रच्छन्न बौद्धमत ही है -

> शृणु देवि प्रवक्ष्यामि तामसानि यथा क्रमम-
> येषां श्रवणमात्रेण पातित्य ज्ञानिनामपि ।
> प्रथमं हि मयैवोक्तं शैव पाशुपतादिकम् ।।२४।।
> मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्ध मुच्यते-
> मयैव कथितं देवि कलौ ब्राह्मणरूपिणा।।२५।। पद्मपुराण पार्वती के प्रति शिव का कथन ।।

मायावाद के प्रचार के उपरान्त माया का विविध स्वरूप दृष्टिगत होता है। श्री मधुसूदनाचार्य ने पंचदशी पंचदशी चित्र-दीप प्रकरण १३३ में माया को ईश्वर की माता कहा है और ईश्वर एवं जीव को माया रूपी कामधेनु के दो बछड़े बताया है। आनन्द और विज्ञानमय जीव एवं ईश्वर माया और बुद्धि के वश में है। माया का दुर्घटत्व स्वयं सिद्ध है अतः माया के सम्बन्ध में तर्क नहीं करना चाहिए।[4]

१- अद्वैतवाद गंगाप्रसाद उपाध्याय माया वाला प्रकरण
२- दी डाक्ट्रीन आफ माया पृ० ५५ प्रभुदत्त शास्त्री
३- अद्वैतवाद पृ० १२६ ।।
४- पंचदशी पंचदशी चित्र दीप प्रकरण २३६-२२६-१३५-१३६ तक।।

पर विजय प्राप्त करके ही गौतम ने बुद्धत्व प्राप्त किया था।[१] बुद्ध के बाद बौद्ध पन्थों मे काम से बहुत अधिक संघर्ष करना पड़ा है। बौद्ध युग मे जब भिक्षु भिक्षुणी काम पर नियन्त्रण न कर सके तब काम का भयंकर रूप प्रकट हुआ। काम के इस भयंकर रूप के प्रति ही नाथ भक्तों और निर्गुण भक्तों तथा सगुण राम-भक्तों ने अपनी अनास्था व्यक्त की है।"

अहंकार, राग, द्वेष, छल, कपट, मिथ्या आदि को भक्ति सम्प्रदाय से पूर्ववर्ती जीवन के लिये हानिप्रद माना गया था। भक्ति धारा प्रवाहित होने के बाद उन्हें भक्ति के अन्तरायों के रूप में लेलिया। भक्ति सम्प्रदाय से पूर्व माया, स्त्री और काम जीवन पथ के विघ्न नहीं माने गए थे किन्तु भक्ति सम्प्रदाय में उन्हें अन्तराय माना है।

इस प्रकार पुराणों और भक्ति ग्रन्थों मे सत्य, दया, अहिंसा, सत्संग, सदाचार संयम, श्रद्धा, भगवत्कृपा और सेवा आदि भक्ति के साधन माने गये है। इन ग्रन्थों मे भक्ति के अन्तरायों की दृष्टि से काम, क्रोध, लोभ, माया, मोह, ग्लानि और स्त्री आदि भक्ति के अन्तराय माने गये है। किन्तु काम स्त्री, माया, गर्व, आदि वैदिक साहित्य में उपासना मार्ग मे अन्तराय नहीं माने गये है।

भक्ति ग्रन्थों मे भक्ति के साधन और अन्तरायों का विस्तृत विवेचन करके भक्ति को साध्य रूप प्रदान किया गया है।

ग भक्ति का स्वरूप

भक्ति के उद्भव और विकास का इतिहास संक्षेप मे देने के अनन्तर उसके स्वरूप का संक्षेप मे निरूपण किया जा रहा है।

भक्ति शब्द 'भज -सेवायाम' धातु में स्त्रियांक्तिन प्रत्यय लगने पर बनता है (पा०सू०३।३।९४)। भज् धातु का अर्थ सेवा करना है। मुख्य रूप से विविध आचार्यों ने भक्ति को सेवा और प्रेम रूपिणी माना है। वैसे भक्ति को प्रेम रूपा मानने वाले आचार्यों का बाहुल्य है।

१- दी गाड्स आफ नार्दन बुद्धिज्म 'इण्ट्रोडक्शन' पृ० २० ।।

नारद भक्ति सूत्रों का निर्माण आठवीं शताब्दी से पूर्व हो चुका था[1]। नारद के मतानुसार सारे कर्मों को भगवान् के अर्पण करना, और भगवान् का थोड़ा-सा विस्मरण होने से परम व्याकुल होना ही भक्ति है[2]। पाराशर्यनन्दन श्री वेदव्यास के मत से भगवान् की पूजा आदि में अनुराग ही भक्ति है[3]। शाण्डिल्य के मतानुसार भक्ति परा प्रेमरूपा है --

' सा परानुरक्तिरीश्वरे ' शा०भ०सू० २ ।

भागवत के अनुसार निष्काम भाव से भगवान् में लीन होना और श्री हरि में हेतु रहित प्रेम का होना ही भक्ति है[4] --

' न वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा संप्रसीदति ।। भाग० १।२।६।।

नारद पांचरात्र में भक्ति को प्रेम रूपा कहा है---

' स्नेहो भक्तिरिति ' ।।

नारद पांचरात्र के अनुसार इंद्रियों से की गयी भगवान् की वह सेवा भक्ति कहलाती है जो निर्मल और सर्वउपाधि रहित है---

' सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम् ।

हृषिकेशा हृषीकेश सेवन भक्तिरुच्यते ।।'

वृन्दारण्यकथार्तिकसार भा०१, पृ०४ के अनुसार 'तैलधारावदविच्छिन्न भगवत्स्वरूप-स्मरणात्मक ज्ञान भक्ति है ।

बल्लभाचार्य के मतानुसार श्री हरि के प्रति माहात्म्य ज्ञान युक्त जो सुदृढ़ और सर्वाधिक स्नेह है, वही भक्ति है ---

' माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढ सर्वतोऽधिक ।

स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तयामुक्तिर्न चान्यथा[5] ।।

१- ' भक्ति का विकास ' डा० मुंशीराम शर्मा पृ० ४०३

२- ' नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारिता तद्विस्मरणे परम व्याकुलतेति ' ना०भ०सू० १९।।

३- ' पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्य ।।ना०भ०सू०१६।।

४- भाग० ३।२५ ।३२-३३ ।।

५- ' तत्वदीप निबन्ध ' शास्त्रार्थ प्रकरण ' श्लोक ४६।।पृ० १२७।।

रामानुज ने विद्वानों का मत उद्धृत करते हुए कहा है कि स्नेहपूर्वक किया गया भगवद् ध्यान ही भक्ति है -

स्नेहपूर्वमनुध्यानं भक्तिरित्यभिधीयते बुधैः[1]।

मधुसूदन ने भक्ति रसायन १।३ में कहा है कि भगवद् धर्म विषयिणी द्रुत मन की धारावाहिक द्रुत मन की वृत्ति भक्ति है -

द्रुतस्य भगवद्धर्माद्धारावाहिकतां गता।
सर्वेशे मनसो वृत्तिर्भक्तिरित्यभिधीयते ।।

जीव गोस्वामी ने भक्ति सन्दर्भ में कहा है कि जिस प्रकार कामी पुरुषों का विषयों में अथवा इन्द्रियों का अपने अपने विषयों में स्वाभाविक आकर्षण रहता है, उसी प्रकार जब भक्त का भगवान् के प्रति स्वाभाविक भाव उत्पन्न होता है तब उसे राग प्रेमा-भक्ति कहते है -

तत्रविषयिणः स्वाभाविको विषयसंसर्गेच्छामयः ।
प्रेमा रागः यथा चक्षुरादीनां सौन्दर्यादौ तादृश एवात्र
भक्तस्य श्री भगवत्यपि राग इत्युच्यते ।।

श्रीत्र मुनिचरितामृतम् के अनुसार अति उत्कृष्ट प्रेम ही भक्ति है[2]। भक्ति-भागीरथी के अनुसार भक्ति का ही दूसरा नाम प्रेम है। भक्ति के वदन, ध्यान, उपासना आदि अनेक नाम है। महनीय महान् विषयों के प्रति प्रेम ही भक्ति है -

'महनीय विषये प्रीतिभक्ति[3]।'

इस प्रकार भक्ति के आचार्यों ने भक्ति का मूल स्वरूप सेवा परक होते हुए भी उसे प्रेम परक माना है। कदाचित् सामाजिक जीवन में रागात्मक भाव को प्रमुख स्थान प्राप्त होने का ही यह परिणाम हुआ कि भक्ति सेवा परक होते हुए भी मुख्य रूप से प्रेम परक मानी जाने लगी।

१- गीता पर रामानुज भाष्य ७।१ पृ० २२९

२- श्रीत्रमुनिचरितामृतम् पृ० २४३ ।।

३- भक्ति भागीरथी पृ० २०-२३-१९ ।।

ग भक्ति के प्रकार -

भक्ति शब्द " भज " धातु से बना है जिसका अर्थ सेवा करने से है । भक्ति का अर्थ सेवा होने के बाद भी, आचार्यों ने भक्ति को प्रेम प्रधान माना है । शास्त्रकारों ने भक्ति को प्रेम प्रधान मानकर, उसके विभिन्न प्रकारों का उल्लेख किया है । भक्ति के आचार्यों ने दास्य और सेव्य भाव की परिणति भी प्रेम में ही दिखलाई है ।

~~किसी भी वस्तु की प्राप्ति के लिये प्रयत्न और कुछ साधनों का होना आवश्यक है - ईश्वरीय प्रेम प्राप्त करने के लिये भी कुछ प्रयत्न और कुछ साधनों का होना आवश्यक है -~~

आचार्यों ने इसी प्रेम की प्राप्ति के लिये किये गये प्रयत्न और साधनों के आधार पर भक्ति के प्रकारों का उल्लेख किया है । इस प्रकार भक्ति के प्रकारों में, प्रथम साधन भक्ति आती है ।

साधन भक्ति -

साधन भक्ति में भक्त बाह्य साधनों द्वारा इष्टदेव की ओर अभिमुख होता है - अंत में साधन भक्ति का, भावभक्ति में ही पर्यवसान होता है -

" कृति साध्या भवेत् साध्यभावा सा साधनाभिधा ।-
नित्य सिद्धस्य भावस्य प्राकट्यं हृदि साध्यता ॥ " ह०भ०र०सि० २।२ ॥

साधन भक्ति के मर्यादा और राग के आधार पर, वैधी और रागानुगा दो भेद किये गये हैं । -

वैध और मर्यादा भक्ति .--

प्रेम मार्ग में विधि विधानों की अवहेलना प्राय हो जाती है । प्रेम मार्ग में मर्यादा का उल्लंघन न हो, इसी के लिये वैधी भक्ति का विधान है । भक्ति ग्रन्थों में शास्त्रानुसार की जाने वाली साधन भक्ति को, वैधी भक्ति कहा है -

" शासनेनैव शास्त्रस्य सा वैधी भक्तिरुच्यते । " भ० र० सि० २ ।४ ॥

" दैवी मीमांसा दर्शन रसपाद ११।३ में विधि विधानों के साथ की जाने वाली भक्ति को वैधी भक्ति कहा है -

" विधि साध्यमाना वैधी सोपान रूपा । "

हरिभक्ति रसामृतसिन्धु में वैधी भक्ति को साधन और मर्यादा भक्ति कहा है २।६० ।

रागानुगा भक्ति -

लौकिक जीवन में जिन साधनों से प्रेम प्राप्त किया जाता है, उनका ईश्वर य प्रेम प्राप्तिके लिये उपयोग करना रागात्मिका भक्ति है।

"दैव मीमांसा दर्शन" के रसपाद में महर्षि अंगिरा ने वैध और रागात्मिका भक्ति का वर्णन किया है। इस दर्शन के अनुसार रस का अनुभव, आनन्द एवं शान्ति देने वाली भक्ति को रागात्मिका भक्ति कहा है - -

"रसानुभाविकानन्द शान्तिप्रदा रागात्मिका" रसपाद १९।३ ।

बंगाल के वैष्णव सम्प्रदाय के अनुसार स्त्री - पुरुष के रत्यात्मक भावों का श्री कृष्ण के लिये उपयोग होना ही रागात्मिका भक्ति है।[1]

हरिभक्तिरसामृतसिन्धु २।६१ के अनुसार श्री कृष्ण के नित्य सिद्ध परिकर का श्री कृष्ण में जो रागात्मिका भक्ति है, उसके आदर्श का अनुसरण करने वाला साधन भक्ति रागानुगा भक्ति है - -

"विराजन्तीमभिव्यक्तं व्रजवासि जनादिषु -
रागात्मिकानुसृता या सा रागानुगोच्यते ।।"

गौणी भक्ति रागानुगा भक्ति में भगवान् के प्रति रत्यात्मक भावों का होना आवश्यक है। शास्त्रकारों ने वैधी और रागानुगा भक्ति को गौणी भक्ति के अन्तर्गत रखा है।- साधन साध्य की अपेक्षा सदैव गौण रहे हैं - साधनों को गौण स्थान मिलने के कारण ही साधन भक्ति को गौणी भक्ति के अन्तर्गत रखा है। उनका अस्तित्व यह है कि जैसे साधन, साध्य की प्राप्ति में सहायक होते हैं, वैसे ही गौणी भक्ति भी प्रेमाभक्ति की प्राप्ति मे सहायक होती है।-

~~गौणी भक्ति~~ -

नारदभक्ति सूत्र १।२०, २।५६ के अनुसार गौणी भक्ति पराभक्ति की प्राप्ति में हेतु है। और उस ~~गौणी भक्ति~~ से समाधि की सिद्धि होती है।-

गौणी भक्ति के गुण भेद से तीन सात्त्विकी, राजसी, तामसी विभाग किये गए हैं - -

"गौणी त्रिधा गुणभेदादार्तादिभेदाद्वा" ना० भ० सू० ५६ ।। मानी गई
आर्त, जिज्ञासा और अर्थार्थिता भेद से भी गौणी भक्ति तीन प्रकार की मानी गई है - ना० भ० सू० ५६ ।-

---

१. "बंगाल वैष्णाविज्म" विपिन चन्द्र पाल" पृ०४७ ।।

सात्त्विकी भक्ति -

जो भक्ति पाप नाश के लिये, समर्पण अथवा कर्तव्य भाव से की जाती है, वह सात्त्विकी है भाग ३।२६।१० ।।

राजसी भक्ति -

जो भक्ति कामना सहित, भेद दृष्टि पूर्वक, प्रतिमा पूजन के रूप में की जाती है वह राजसी है भाग ३।२८।६ ।।

तामसी भक्ति -

क्रोध, हिंसा, दम्भ और मत्सरता के साथ भेद - दृष्टि पूर्वक की जाने वाली भक्ति तामसी है भाग० ३।२६।८ ।।

देवी भागवत स्कंध ७।अ०३६।६-७-८-६। पृ० ७५६ में भी भक्ति के सात्त्विकी और तामसी भेद किये गये हैं।

इन त्रिविध भक्तियों में तामसी की अपेक्षा राजसी और राजसी की अपेक्षा सात्त्विकी भक्ति श्रेष्ठ मानी गई है - इसी प्रकार अर्थार्थी की अपेक्षा जिज्ञासु की और इन दोनों की अपेक्षा आर्तकी भक्ति श्रेष्ठ कही गई है "उत्तरस्मादुत्तरस्मात्पूर्वपूर्वा श्रेयाम भवति -" ना० भ० सू ५७ ।।

तन मन और वचन के भेद से साधन भक्ति को कायिकी, मानसी और वाचिकी तीन रूपों में विभाजित किया गया है।

कायिक भक्ति -

भगवान् की कथा सुनना भगवान् के मन्दिर में लीपना, झाड़ू देना, जल भरना, मूर्ति पर चंदन, कस्तूरी केशर आदि से लेप करना और मूर्ति के सम्मुख साष्टांग प्रणाम करना कायिकी भक्ति है - "कर्णाभ्यां तच्चरणमनिशं सज्जनानां मुखाब्जा

न्नित्यं सेवामधुरिपुगृहे मार्जनादि प्रकारैः -

अर्चां विष्णोर्विविध सुरभि द्रव्यलेपादि देहे

पंचांगाद्यैर्नमनमुदितं वंदनं कायिकंयिम् ।।६।।"[१]

मानसी भक्ति -

मन से भगवान् का स्मरण करना, भगवान् में सखा भाव रखना, देह को

---

१ वैष्णवधर्म रत्नाकर पृ० ३०६।

भगवान् के अर्पण करना, और अर्पण भाव में भरण पोषण की चिन्ता न करना मानसी भक्ति कही गई है —

त्रेधा भक्तिर्निगमविहिता केशवे मोक्षहेतु ।
सख्यं श्रद्धा स्मरणमनिशं मनदेहार्पणं च -
औदासीन्यं स्वतनुभरणे पोषणादौ स्वकार्ये
न्यस्यात्मानं भगवति हरौ मानसा भक्तिरेषा ।।[१]

वाचिकी भक्ति -

विष्णु के सहस्र नामों का कथन करना, भगवत गुणों का कीर्तन करना, भगवान की आज्ञानुसार दास्यभाव को पूर्ण करना और यह विश्व हरि रूप है, ऐसा वाचन करना वाचिकी भक्ति कही गई है —

विष्णोर्नाम्नां कथनमनिशं कीर्तनं तद्गुणानां
दास्यं कर्माखिलमपि कृतं केशवस्याज्ञयास्तु -
तत्संतुष्ट्यै स च मम गतिस्तस्य दासोऽस्मि नित्यं
सर्वं विश्वं हरिरिति वचो वाचिकी भक्तिरिष्टा ।।[२]

विभिन्न साधनों के आधार पर साधन भक्ति को १६ प्रकारों में विभाजित किया गया है —

~~साधन भक्ति~~ -

तुलसीमालिका कंठे शंख चक्रांकनं हरे -
धारणं चोर्ध्वपुंड्राणां तन्मंत्राणां परिग्रह -
कीर्तनं श्रवणं दास्यं वंदनं पादसेवनम् -
तत्पादोदकसेवा च तन्निवेदितभोजनम् ।।
तदीयानां च सेवा च द्वादशीव्रत निष्ठितम् -
तुलसी रोपणं विष्णोरर्चनं स्मरणं तथा -
भक्तिः षोडशधा प्रोक्ता भवबंधविमुक्तये ।। वै०ध० र० पृ०३१०-११ -

अर्थात कंठ में तुलसी की माला रखना, शंख चक्रों की छाप लगाना, व्दादश ऊर्ध्वपुंड्र धारण करना, ऊर्ध्वपुंड्र तिलक करने का मंत्र सीखना, कीर्तन करना, कथा सुनना, दासभाव रखना, वंदन करना, पादसेवन करना, चरणामृत लेना, भगवत्प्रसाद का भोजन करना,

---

१ वैष्णवधर्मरत्नाकर पृ० ३०६

२ वही पृ० ३१० ।।

भगवान् के दासों की सेवा करनी, आदर्श के व्रत में निष्ठा रखनी, तुलसी के विरवे रोपना, विष्णु का पूजन करना और भगवान् का स्मरण करना ऐसी यह १६ प्रकार की भक्ति मोक्ष प्रदान करती है।- भक्ति के उपर्युक्त में से अधिकतर साधनों का भागवत् स्कंध ११। अध्याय ११ में भी उल्लेख हुआ है।-

श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन अर्चन, वंदन, दास्य और सख्य भाव तथा आत्मनिवेदन, ईश्वरीय प्रेम प्राप्ति के साधन ही हैं।- ये सब साधन भक्ति के अन्तर्गत ही आते हैं - इस प्रकार नवधा भक्ति को भी साधन भक्ति के अन्तर्गत ही रख सकते हैं।-

नवधा भक्ति -

नवधा भक्ति, ईश्वरीय, प्रेम के विकास की ही विभिन्न दशायें है।-[१] नवधा भक्ति इन्द्रियों से सम्बन्धित है।- कहा गया है कि इन्द्रियों के विभिन्न व्यापारों से प्रेम- पुष्ट होता है।- अत नवधा - भक्ति भी प्रेमा- भक्ति को ही पुष्ट करती है।- नवधा भक्ति को प्रेमा भक्ति के साधन के रूप में समझना चाहिये।-

नवधा भक्ति का विकास -

शंकराचार्य ने भागवतों की उपासना पद्धति की पाँच - विधियाँ बताई हैं, जिनका परिवर्द्धित रूप नवधा- भक्ति है" ज्ञानामृत- सार" में ६ प्रकार की भक्ति बताई गई है, यह रचना शंकर के बाद, और भागवत के पूर्व की है।-" ज्ञानामृतसार की स्मरण, कीर्तन, वन्दन, पादसेवन, अर्चन और आत्म निवेदन में भागवत ने, श्रवण दास्य और सख्य भक्ति का योग करके नवधा- भक्ति का स्वरूप खड़ा किया है।-[२] ~~वात्सल्य भक्ति पाँच प्रकार की होती है - भक्ति भक्तों की रुचि, सख्य, दास्य, शान्त, एवं वात्सल्य भाव पर ही निर्भर करती है।~~[३]

प्रेम की प्रथम अवस्था भाव है - प्रेम ही विकास क्रम से, मान - प्रणाय राग, अनुराग, भाव और महाभाव के रूप में परिणत होता है।- रति, भावना भेद से शान्त दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर रति में रूपान्तरित हो जाती है।- रति - भेद से भगवद् भक्ति रस, शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर- रस में बदल जाती है।-

---

.१ " मालवीय कॉमेमोरेशन वाल्युम" पृ० ५४४ -

.२. " मध्यकालीन - धर्म- साधना" डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी" पृ० ११७ -

~~.३. " आर्य महिला - पत्रिका" जून १९४८- पृ० १०८ -~~

नवधा भक्ति और जीवन चर्या -

भक्त का जीवन किस प्रकार व्यस्त रहना चाहिये इसका विवेचन करते हुये - भागवत ने - नवधा भक्ति का रूप - उपस्थित किया है। भागवत के अनुसार भक्त का मन भगवान् कृष्ण के कमल चरणों में मग्न रहे, और वाक् विष्णु लोक के गुण गान में व्यस्त रहे, हाथ- हरि मन्दिर की सफाई में कान कृष्ण कथा के श्रवण में, नेत्र कृष्ण दर्शन में, तन सत्संग में, नासिका तुलसी की मीठी सुगन्ध में रसना भगवान् के भोगों के स्वाद में, पग तीर्थ - यात्रा में, मस्तक चरणों में, और भक्त की इच्छायें भगवान की सेवा में लगी रहें।[1]

नवधा भक्ति के रूप -

नवधा भक्ति के श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन ये नौ रूप हैं - -

" श्रवणं- कीर्तन विष्णोः- स्मरणं पादसेवनम् -
अर्चनं वन्दनं- दास्यं- सख्यमात्मानिवेदनम् ।। " भा०७।५।२३ ॥

श्रवणं भक्ति -

वैष्णव धर्म में श्रवण भक्ति मोक्ष प्रद मानी गई है, किन्तु सांख्य - दर्शनकार ने यह कहा है कि अनादि वासना के बलवती- होने से केवल - श्रवण- मात्र से उस मोक्ष की सिद्धि नहीं हो सकती।[2] -

हरि की लीलाओं, यश, गुण और नाम - महत्ता का सुनना ही श्रवण - भक्ति है।[3] भगवान् की कथा श्रवण करने से मुक्ति मिलती है भागवत ६।१०१ ।

कीर्तन भक्ति -

भगवान् के नाम, लीला, गुण - का उच्च - स्वर से गान करना ही कीर्तन है[4]। कीर्तन भक्ति, नामोपासना और स्मरण- भक्ति का ही एक रूप है। कीर्तन में भक्त अपने भावों को ध्वनि और संगीत के साथ व्यक्त करता है। जहाँ नामोपासना और स्मरण भक्ति वैयक्तिक- उपासना पद्धति है, वहाँ कीर्तन सांघिक है।

---

१ " भागवत १०।२६।१५ ॥
२: " अथ सांख्य दर्शन " १६७। पृ० ६६ . भाष्य तुलसी राम स्वामी " "
३ हरिभक्तिरसामृतसिन्धु पूर्व विभाग - लहरी २ - श्लोक ३२ ॥ .
४ वही २।३२ ॥ -

प्राचीन भारत में लय, ताल और स्वर के साथ ईश्वराधन करने की सांघिक पद्धति प्रचलित नहीं थी। प्राचीन साहित्य में कीर्तन शब्द का प्रयोग तो मिलता है, किन्तु यह प्रयोग सांघिक कीर्तन का द्योतक नहीं है। गीता ९।१४, ११।३६ में गुण- कीर्तन के अर्थ में, कीर्तन शब्द प्रयुक्त हुआ है। ब्र० पुराण और बृ० वि० बृहद्विष्णु - पुराण में यह शब्द नाम कीर्तन के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है - " सर्वारिष्टहरं चिरं रामनामानु कीर्तनम्- बृह०वि०पु० ।।
" जे वितरथ- फलं चैव रामनामानु कीर्तनम्- " ब्र० पु० ।।
विष्णु- पुराण में भी नाम - कीर्तन का प्रयोग हुआ है। वि पु ६।२।१६ ॥

स्वयम्भू- स्तोत्र जैन-धर्म ग्रन्थ में स्तुति और कीर्तन शब्द का प्रयोग हुआ है।[1] लय ताल युक्त सांघिक कीर्तन मध्ययुग की देन है। मध्ययुग में कथा - श्रवण और कीर्तन का विशेष महत्त्व था। कदाचित इससे पूर्व कर्मी भी इन दो साधनों पर इतना बल नहीं दिया गया था।[2] एक विद्वान का मत है कि इस्लाम- धर्म के सूफी अनुयायियों के संघबद्ध - धर्माचरण पर विशेष - बल देने के परिणाम स्वरूप हिन्दुओं ने धर्मसंरक्षणार्थ सांघिक कीर्तन पद्धति को अपनाया है।[3] कीर्तन - पद्धति प्रचलित होने के उपरान्त - वैष्णव धर्म- सम्प्रदाय में सर्वाधिक महत्त्व- नामोच्चारण और संकीर्तन को ही दिया गया है। महाप्रभु - चैतन्य ने भी जितना महत्त्व नामोच्चारण और संकीर्तन को दिया है, उतना अन्य किसी साधन को नहीं दिया।[4]

स्मरण- भक्ति - भगवान् के नाम, गुण, रूप और चरित्र का स्मरण करना, स्मरण भक्ति है। ब्रह्म को बार बार स्मरण करने वाला मन, ब्रह्म में ही लीन हो जाता है भाग० ११।१४।२७। ईश्वर के नाम और रूप का स्मरण करने से, पुनर्जन्म नहीं होता भाग १०।२।२७।श्रीकृष्ण के चरण कमलों की स्मृति सब पापों का नाश करती है भा० १२।१२।५४।

पादसेवन भक्ति —

विष्णु- भगवान् के चरणारविन्दों का स्मरण और सेवन ही पादसेवन भक्ति है। भागवत के अनुसार श्री भगवान् के चरण कमलों का प्रेमसहित चिन्तन करना चाहिये। चरणों के ध्यान से पाप राशि नष्ट हो जाती है भाग ३।२८।२१-२२। कृष्ण की चरणधूलि की शरण ग्रहण करने वाले भक्तजन स्वर्ग, ब्रह्मपद, पृथिवी का

---

१. " स्वयम्भू स्तोत्र " जैनागम- . स्तुति-परक जैनागम . पृ०२६- अनुवादक जुगुलकिशोर "
.२. " तुलसीदास " डा० रामरतन- भटनागर " पृ० ५५
.३. " भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक रेखायें " पृ० २६६ परशुराम चतुर्वेदी
४ " भारतीय - ईश्वरवाद " पृ० ४७६ - ८० "

स्वामित्व, गोपियाँ और मोक्ष पद का भी वाञ्छा नहीं करते भाग० १०।१६।३७।।

अर्चन भक्ति

भगवान् की सर्वांग-पूजा करना अर्चन भक्ति है। भक्त मानता है कि भगवान् के चरणों का अर्चन करना स्वर्ग, पृथ्वी और सम्पूर्ण सिद्धियों का मूल है भाग० १०।८१।१९।।

वन्दना भक्ति

ईश्वर को श्रद्धा सहित प्रणाम नमस्कार आदि करना वन्दन भक्ति है। भागवत ११।२।४ के अनुसार सम्पूर्ण भूतों को भगवद्भाव से प्रणाम करना चाहिए। अक्रूर जी स्नेह से विह्वल होकर कृष्ण और बलराम को दण्डवत् प्रणाम करते हैं - भाग० १०।३८।३४।।

दास्य-भक्ति

प्रेमपूर्वक भगवान् की सेवा करना और उनकी आज्ञा का पालन करना दास्य भक्ति है। गीता में कृष्ण ने अर्जुन से अपने प्रति कर्म करने के लिए कह कर दास्य भक्ति की ओर ही संकेत किया है। गीता के अनुसार भगवान् के लिए कर्म करने से भक्त सिद्धि को प्राप्त कर सकता है।[1]

सख्य भक्ति

ब्रह्म के साथ सख्य-भाव स्थापित करना सख्य भक्ति है। भागवत के अनुसार उनका भाग्य धन्य है, जिनके मित्र सनातन ब्रह्म हैं -

अहो भाग्यमहो भाग्य मन्दगोप व्रजौकसाम

यन्मित्र परमानन्द पूर्ण ब्रह्म सनातनम् ।।भाग० १०।१४।३२।।

श्री कृष्ण सुदामा के अंग-स्पर्श से अत्यन्त हर्षित हुए थे - भाग०१०।८०।१९ ।।

आत्मनिवेदन भक्ति

आत्मनिवेदन में विनय भाव मुख्य रूप से रहता है। विनय और प्रार्थना मानव की दिव्य शक्ति को जाग्रत करती है।[2] प्रार्थना स्वयं एक बहुत बड़ी शक्ति है।[3] भगवान् के सम्मुख विनय-प्रार्थना करना और आत्मसमर्पण करना विनय भक्ति है गीता ७।१४, ६।३२-३४,भाग०१।१९।३४,१।१३।१०,४।३०।३७,२।४।१८ ।

२- एट्रिब्यूट्स आफ गाड लुई रिचार्ड फरनैल पृ० २४५

१- अभ्यासे प्यसमर्थोसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन् सिद्धिमवाप्स्यसि ।।गीता १२।१०।।
वैष्णव धर्म रत्नाकर पृ० २८१-२८२-२८३-२८४-२८८-२८९।।

३- मैन दी अननोन पृ० १४१-१४३ एलेक्सिस्करेल ।।

नवधा भक्ति के बाद नारद भक्ति सूत्र की ११ आसक्तियाँ साधन भक्ति के रूप मे आती हैं ।

नारद-भक्ति सूत्र की ११ आसक्तियाँ

नारद भक्ति सूत्र के अनुसार प्रेमा-भक्ति एक होकर भी ११ प्रकार की है -

१ गुणमाहात्म्यासक्ति २ रूपासक्ति ३ पूजासक्ति ४ स्मरणासक्ति
५ दास्यासक्ति ६ सख्यासक्ति ७ कान्तासक्ति ८ वात्सल्यासक्ति[1] ।

नारद की ११ आसक्तियो मे से १,३,४,५,६,८ भागवत की नवधा भक्ति से मिलती है । भागवत की नवधा-भक्ति का मुख्य रूप से इन्द्रियो से सम्बन्ध है, श्रवण का श्रोतेन्द्रिय कीर्तन का रसनेन्द्रिय, स्मरण का मन और चित्त, पाद सेवन का हस्त और पाद से सबंध है । भागवत मे नेत्रेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय से सबंधित भक्ति का कोई विभाग नही है । नारद भक्ति सूत्र मे नेत्रेन्द्रिय से सम्बन्धित रूपासक्ति का उल्लेख हुआ है । मानव की स्पर्शेन्द्रिय का सम्बन्ध कान्तासक्ति, वात्सल्यासक्ति, तन्मयतासक्ति और परम विरहासक्ति से दिखाया जा सकता है ।

भक्ति मुख्य रूप से प्रेमरूपा है । प्रेम का नेत्र और स्पर्श से बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है । अतः भक्ति के प्रकारो मे दर्शन भक्ति और स्पर्श भक्ति की गणना होनी चाहिए।

दर्शन-भक्ति

दर्शन का सम्बन्ध सौन्दर्य से है । वेद मे परमात्मा को सौन्दर्य का स्रोत और समस्त भुवनो की शोभा कहा है । ब्रह्म का आलंकारिक वर्णन करते हुए यह भी कहा है कि परमात्मा सुन्दर है और उसका रूप दर्शनीय है ।

त्वद विश्वा सुभग सौभगान्यग्ने वियन्ति वनिनो न वया ।

---

[1] - ना० भ० सू० ८२ ।।

ुर्ष्ट ऎ्यिवा्जो वृत्रूने दिनोवृष्टि यो गिन्ग्णाम् ।। ऋ० ३।२३।१।।

राजा हि क भुवना नामभिश्री ऋ० १।७।६।१ ।

सरूपकृत्नूमूतये ऋ० १।४।१ ।।

भारतीय दर्शन मे रूप को जीवन मार्ग मे अवरोध उत्पन्न करने वाला भी माना गया है[1]। रूप अथवा सौन्दर्य से आकृष्ट होकर जीव का ब्रह्म मे लीन होना ही दर्शन भक्ति मानी जा सकती है ।

स्पर्श-भक्ति

जीव का स्पर्श द्वारा मोक्ष प्राप्त करना या ब्रह्म मे लीन होना स्पर्श भक्ति मानी जा सकती है । दर्शन और स्पर्श भक्ति को भी हम साधन भक्ति के अन्तर्गत रख सकते है क्योकि ये प्रेमाभिव्यक्ति में सहायक है । वैसे भक्ति ग्रन्थो मे दर्शन और स्पर्श भक्ति का उल्लेख नहीं हुआ है ।

शरणागति भक्ति

शरणागति भक्ति भी साधन भक्ति के अन्तर्गत ही आती है क्योकि इसमे जीव भगवान की शरण प्राप्त करने के लिए विविध साधनो के द्वारा प्रयत्न करता है । शरणागति भक्ति मे भक्त कहता है कि मै अपराधो का आलय हूँ, अकिञ्चन एवं निराश्रय हूँ भगवान् ही मेरा उद्धार कर सकते हैं[2]। शरणागत भाव को पुष्ट करने के लिये आनुकूल्य का संकल्प/प्रतिकूलता का परित्याग, संरक्षण का विश्वास, गोप्तृववरण/आत्म-निक्षेप और कार्पण्य का होना आवश्यक है । ये ६ भाव शरणागति भक्ति के साधन है -

आनुकूल्यस्य संकल्प प्रतिकूलस्य वर्जनम् ।
रक्षिष्यतीति विश्वासोगोप्तृत्वरण तथा ।।
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागति ।।[3]

१- भारतीय दर्शन डा० उमेशमिश्र पृ० १५५ ।।
२- अहि० सं० ३७।३१ ।।
३- वैष्णवधर्म रत्नाकर पृ० २१५ ।।

शरणागति भक्ति कायिकी, वाचिक और मानसी भेद से तीन प्रकार की कही गई है -

कायिकी प्रपत्ति -

भूमि पर साष्टांग शरण में पड़े हुये काग को देखकर, भगवान् ने कृपा करके उसका संरक्षण किया - काग का भगवान् को साष्टांग प्रणाम करना उसकी कायिकी प्रपत्ति है।[१]

वाचिकी प्रपत्ति -

सर्वलोकों का संरक्षण करने वाले राघव की शरण में जाने के लिये विभीषण जैसी प्रार्थना करना ही वाचिकी प्रपत्ति है।[२]

मानसी प्रपत्ति -

गजेन्द्र के समान मन में यह निश्चय करके कि भगवान् नारायण ही रक्षक हैं, एकाग्र मन से भगवान् की शरण में जाना मानसी प्रपत्ति है।[३]

छः प्रकार की शरणागति के सात्विकी, राजसी और तामसी भेद से १८ भेद और किये जाते हैं।[४]

साधन साध्य के लिये ही होते हैं। जीव की प्रथम अवस्था साधन अवस्था है और उसकी द्वितीय अवस्था साध्य अवस्था है। साध्य अवस्था में अथवा भगवत् प्राप्ति होने पर जीव की क्या दशा हो जाती है, भक्ति के द्वितीय वर्ग में इस का विवेचन हुआ है। जीव की साध्य सिद्ध अवस्था को आचार्यों ने परा, उत्तमा, अनन्य, निष्का प्रगल्भ आत्यन्तिकी, नैष्ठिकी, अव्याभिचारिणी, निर्गुणा, अहैतुकी, सिद्धा, दुर्लभा और प्रौढा भक्ति के नाम से अभिहित किया है।[५]

परा भक्ति -

भगवान् के दर्शन होने पर, जीव का भगवान में परम अनुराग हो जाता है - शाण्डिल्य मुनि के मत से भक्ति ईश्वर के प्रति परम अनुराग रूपा ही है - 'सा परानुरक्तिरीश्वरे ।।' सू० २।।

---

१ 'वैष्णव धर्म रत्नाकर' पृ०२१५

२ वही २१६

३. वही पृ० २१६

४. वही २१६

ईश्वर के प्रति परम अनुराग को ही पराभक्ति कहा जाता है - पराभक्ति में जीव ब्रह्ममय हो जाता है[1]। देवी भागवत ७।३७।११-१२ के अनुसार पराभक्ति में जीव का तैल धारा के सदृश अविच्छिन्न रूप से मन स्थिर रहता है - और प्रेम- भक्ति में जीव को देवी विचार के अतिरिक्त अन्य किसी विषय की चिन्ता नहीं रहती[2]। भागवत् ११।३१।२७-२८ के अनुसार भगवान् के अवतार, पराक्रम एवं बाल लीलाओं के श्रवण गायन से परा भक्ति उत्पन्न होती है।

अनन्य भक्ति -

पराभक्ति में जीव की चञ्चलता समाप्त हो जाती है, उसका मन पूर्ण रूप से भगवान् में अनुरक्त हो जाता है। जीव की इस अवस्था को अनन्य अवस्था भी कहा जाता है। नारद भक्ति सूत्र १० के अनुसार श्री हरि को छोड़कर अन्य आश्रयों के त्याग का नाम ही अनन्यता है -- "अन्याश्रयाणां त्यागोऽनन्यता"। शाण्डिल्य भक्ति सूत्र ९६ के अनुसार अनन्य भक्ति में बुद्धि का आत्यन्तिक लय होने पर मोक्ष मिलती है -- "अनन्य भक्तया तद्बुद्धिर्बुद्धि लयादत्यन्तम" -।

आत्यन्तिकी भक्ति -

अनन्य और आत्यन्तिकी भक्ति में कोई अन्तर नहीं है। जिसके द्वारा जीव त्रिगुणात्मिका माया को पार करके ईश्वरीय भाव को प्राप्त होता है, वह आत्यन्तिक भक्ति योग है --

"स एव भक्तियोगाख्य आत्यान्तिक उदाहृत ।-

येनातिव्रज्य त्रिगुणं मद्भावायोपपद्यते ।। भाग० ३।२९।१४।।

आत्यान्तिकी भक्ति में जीव माया के प्रभाव से बचता है, तो प्रगल्भ भक्ति में वह विषयों के प्रभाव से बचता है भाग० ११।१४।१८ ।

~~भागवत् में आत्यन्तिकी और प्रगल्भ भक्ति को प्रधान माना है।~~

अव्यभिचारिणी भक्ति -

अनन्य और परा भक्ति का दूसरा रूप अव्यभिचारिणी भक्ति है। भगवत् रूप होने पर जीव की वृत्ति अव्यभिचारिणी निश्चल हो जाती है। गीता

---

१ देवी भागवत ७।३७।१५-२७।।

२ वही ७।३७।२५-२९।।

में अव्यभिचारिणी भक्ति के लिये प्रार्थना की गई है - ४०।२५ । अव्यभिचारिणी भक्ति को अचला भक्ति भी कह सकते हैं । विष्णुपुराण १।२०।१६-२० में प्रह्लाद ने अचल भक्ति की प्रार्थना की है ।

निर्गुणा भक्ति -

'अव्यभिचारिणी भक्ति में मन का व्यभिचार चांचल्य बन्द हो जाता है । निर्गुणी भक्ति में भी जीव का मन पूर्ण रूप से भगवान् में लय रहता है । भगवान के गुण-श्रवण मात्र से भगवान् में अविच्छिन्न मनोगति का स्थिर होना ही निर्गुणा भक्ति है - -

'मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये ।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गंगाम्भसोऽम्बुधौ ॥
लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् ।
अहैतुक्य व्यवहिता या भक्ति पुरुषोत्तमे ।। भा० ३।२९।११-१२।।

पराभक्ति को प्रौढा और नैष्ठिकी भक्ति भी कहा गया है ।

प्रौढा और नैष्ठिकी भक्ति -

वृत्तियों के निरुद्ध हो जाने पर, परमात्मा का दर्शन होना ही प्रौढा भक्ति है[1] । नैष्ठिकी भक्ति में भी मन एक मात्र भगवान् में ही रत रहता है - श्री कृष्ण के भक्तों के संग में रहने से नैष्ठिकी भक्ति उत्पन्न होती है -

'सा च श्रीकृष्णभक्तेश्च कलां व नार्हति षोडशीम् ।
श्री कृष्ण भक्त संगेन भक्तिर्भवति नैष्ठिकी ।। ना० पां० रा० २।२।२

सिद्धा भक्ति -

जीव की परा अवस्था ही सिद्धावस्था है । खाते पीते उठते बैठते अर्थात् प्रत्येक क्षण, श्री हरि में अखंड स्मृति का रहना ही सिद्धा भक्ति है । कहा गया है कि सिद्धा भक्ति से प्राकृत लिंग शरीर भस्म हो जाता है -

'अनिमित्ता भागवती भक्ति सिद्धेर्गरीयसी ।
जरयत्याशु या कोशं निगीर्णमनलो यथा ।'[2]

दुर्लभा भक्ति -

सिद्धा अवस्था प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है - सिद्धा अवस्था दुर्लभ

---

१ राम भक्ति साहित्य में मधुर उपासना
२ . वैष्णव धर्म रत्नाकर' पृ० ३१२ ।

अवस्था है। जब यह दुर्लभ अवस्था प्राप्त हो जाती है, तब वह दुर्लभा भक्ति वाला पुरुष विश्व को विष्णुमय देखता है, वह विष्णु को ही नमस्कार करता है, और विष्णु की ही शरण में रहता है।[1]

सिद्धा अवस्था में जीव का ब्रह्म में अनन्य प्रेम रहता है - इस अवस्था में जीव आत्म संतुष्ट और आप्त काम रहता है। उपनिषदों में यह कहा है कि आप्तकाम को कोई स्पृहा नहीं रहती -

"आप्त कामस्य कास्पृहा -"।

निष्काम और अहैतुकी भक्ति -

सिद्धा और परा भक्ति में भी जीव की अपनी कोई इच्छा अवशेष नहीं रहती - इस अवस्था में जीव निष्काम रहता है। निष्काम अवस्था में वह भगवान् की सेवा के अतिरिक्त, मुक्ति आदि की भी कामना नहीं करता -

"सालोक्य सार्ष्टि सामीप्य सारूप्यैकत्वमप्युत।

दीयमानं न गृह्णाति बिना मत्सेवनं जनाः ।। भाग० स्कंध ० ३ ।।

भागवत् ३।२९।३२-३४ के अनुसार वेदोक्त कर्म में निरत रहने वाली इन्द्रियों का भगवान् में स्वाभाविक रूप से अवस्थित रहना ही निष्काम भक्ति है। निष्काम और अहैतुकी भक्ति में कोई तात्विक अन्तर नहीं है। सत्वमूर्ति श्री हरि के प्रति स्वाभाविकी प्रवृत्ति ही अहैतुकी भक्ति है भाग० ३।२५।३२-३३ ।

जीव के लिये परा, अनन्य, सिद्धा अथवा निष्काम अवस्था ही श्रेष्ठ और उत्तम अवस्था है, क्योंकि इसमें जीव ब्रह्म के साथ रहता है।

उत्तमा भक्ति -

इसी अवस्था को भक्ति ग्रन्थों में उत्तमा भक्ति कहा है। उत्तमा भक्ति ज्ञान और कर्म से मुक्त है, इसमें सब प्रकार की इच्छायें और अभिलाषायें समाप्त हो जाती हैं --

"अन्याभिलाषित शून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।

आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ।। ह० भ० र० सिं० १।९।

क्लेश दूर करने की शक्ति, शुभकार्य करने की शक्ति, मोक्ष के प्रति उदासीनता, सुदुर्लभता,

---

१ : वैष्णव धर्म रत्नाकर" पृ० ३१३- १४ ।।

सान्द्रानन्द की विशेषात्मा है प्रति नन्दरूपता और श्रीकृष्ण को आकर्षित करने की शक्ति, उत्तमा भक्ति के लक्षण हैं -

> क्लेशघ्नी शुभदा मोक्षलघुताकृत् सुदुर्लभा ।
> सान्द्रानन्द विशेषात्मा श्रीकृष्णाकर्षिणी च सा ।।[६०] भ०र० सिं० १।१२।।

वैष्णवधर्म रत्नाकर पृ०३१२ के अनुसार साध्यवर्ग की जितनी भक्तियाँ हैं वे सब परा भक्ति के ही विभिन्न रूप हैं ।

अतः साध्यवर्ग की जितनी भक्तियाँ हैं उन सब में समानता है । ये सभी भक्तियाँ जीव की चरम अवस्था, सिद्धावस्था अथवा प्रेममय अवस्था का प्रतिपादन करती हैं । साध्यवर्ग की भक्तियों के पूर्व जीव साधन भक्ति की अवस्था में रहता है । साधन भक्ति के द्वारा वह साध्य भक्ति को प्राप्त करता है ।

अध्याय ३

राम भक्ति का उद्भव और विकास

भारतीय साधना के इतिहास में भक्ति के उद्भव और विकास का संक्षिप्त परिचय देने के अनंतर नीचे इस अध्याय में राम भक्ति के उद्भव और विकास पर संक्षेप में विचार किया जा रहा है।

क राम भक्ति का उद्भव

वैदिक साहित्य

वैदिक साहित्य में राम[1], सीता[2], दशरथ[3], जनक[4], भरत[5], और इक्ष्वाकु[6] आदि रामायण के पात्रों का उल्लेख तो मिलता है किन्तु रामायण के कथापात्र का संबंध वेद से नहीं है। रामायण के राम, वैदिक साहित्य के राम से भिन्न हैं। ऋग्वेद में राम शब्द का प्रयोग रमण के अर्थ में हुआ है अथर्व ६।८३।३। अथर्ववेद में राम शब्द एक प्रकार की औषधि के रूप में भी प्रयुक्त हुआ है :-

नक्त जातस्योषधे रामे कृष्णो असिक्नि च अथर्व० १।२३।१।

तैत्तिरीय आरण्यक ५।८।१३ में 'राम' का अर्थ पुत्र है। सायण के अनुसार राम का अर्थ रमणीय पुत्र है।[7] निरुक्त के अनुसार 'राम' शब्द कृष्ण वाचक है।[8]

१- ऋ० १०।९३।१४, अथर्व १।३१।१ साम० १५।२।३ १५।३।५ ' यजु० २९।५६

२- ऋ ३।८।६, ४।५७।६-७

३- ऋ १।१२६।४

४- तै०ब्रा० ३।१०।९ ।।

५- यजु० १२।३४ ।।

६- अथर्व० १९।३९।९ ' शत १३।५।२।५

७- राम कथा उत्पत्ति और विकास ' डा० बुल्के पृ० ५ ॥

८- निरुक्त भाष्य उत्तरार्द्ध प्रो० चन्द्रमणि विद्यालंकार

भरत - वेद के भरत ऐतिहासिक पुरुष नहीं है। समस्त विश्व का भरण करने के कारण प्रजापति का नाम भरत है।[1] जगत् का पोषण करने से सूर्य, प्राण और अग्नि भी भरत कहे गए है।[2]

दशरथ- वैदिक संहिताओं में दशरथ शब्द केवल एक बार ही प्रयुक्त हुआ है - ऋ १।१२६।४ । डा० भगवतीप्रसाद सिंह ने दशरथ शब्द का प्रयोग ऋग्वेद के इस मंत्र २।१।११ में भी माना है।[3] ऋग्वेद के इस मंत्र में दशरथ शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। ऋग्वेद में दशरथ शब्द का अर्थ राजा दशरथ से नहीं है।

रावण- डा० भगवतीप्रसाद सिंह ने अथर्ववेद ४।६।१ में 'रावण' शब्द का प्रयोग स्वीकार किया है।[4] अथर्ववेद के इस मंत्र ४।६।१ में रावण शब्द का अभाव है।

इक्ष्वाकु- सूर्यवंश के आदि पुरुष राजा कहे जाते हैं किन्तु ऋग्वेद के इक्ष्वाकु का सम्बन्ध सूर्य वंश से नहीं है। ऋग्वेद में इक्ष्वाकु शब्द एक बार आया है-- ' यस्य इक्ष्वाकु उपव्रते रेवान् मरायी एधते दिवि इव पंच कृष्टय ' १०।६०।४ इस मंत्र का अर्थ स्पष्ट करते हुए अथर्ववेद में 'इक्ष्वाकु' का अर्थ औषधि दिया है --

यं त्वा वेद पूर्व इक्ष्वाकोर्य वा त्वा कुष्टकामय ।

न वायसो यं मात्स्यस्तस्मै नासि विश्व भेषज ॥ अथर्व. १६।३६।६

अर्थात् जिसको इक्ष्वाकु जानते हैं, कुष्ट काम्य और व्याध जानते हैं ऐसी यह 'इक्ष्वाकु सर्वौषधि है। सुश्रुत ४४।७, ४६।६ के अनुसार भी इक्ष्वाकु का अर्थ औषधि है।

सीता- ऋग्वेद में 'इन्द्र सीता' पाठ आया है ३।८।४।८ । पारस्करगृह्यसूत्र २।१७।४ में सीता इंद्र पत्नी कही गई है --

' यस्या भावे वैदिक लौकिकानां भूतिर्भवति कर्मणाम् ।

इंद्रपत्नीगुपह्वये सीता सा मे त्वनपायनी भूयात्कर्मणि स्वाहा ।।'

१- श०ब्रा० ६।८।१।४, १।४।३।२, १।५।१।८, कौ०ब्रा० ३।२

२- ऐ०ब्रा० २।२४, श०ब्रा० १।५।१।८, ४।६।७।२१

३- ' राम-भक्ति साहित्य में रसिक सम्प्रदाय' पृ० ३५

४- वही पृ० ३५

कृ. यजुर्वेदीय तैत्तिरीय ब्राह्मण २।३।१० के अनुसार सीता-सावित्री, प्रजापति की पुत्री है जो सोम-राजा के साथ विवाह करती है। वैदिक साहित्य में सीता का रूप में नारी नहीं है। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में सीता कृषि की अधिष्ठात्री देवी है[1]। सीता हल की नोक या हल से बनी हुई पंक्तियों का नाम है[2]।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि रामायण के किसी पात्र का सम्बन्ध वैदिक-साहित्य से नहीं है। राम एक ऐतिहासिक महापुरुष हैं। अतः रामायण न धर्मग्रन्थ है और न काल्पनिक रूपक। रामायण एक ऐतिहासिक महाकाव्य है। रामायण की ऐतिहासिकता में महर्षि वाल्मीकि को कोई सन्देह नहीं है --

`दिव्यमितिहासं पुरातनम् ।` युद्ध० सर्ग १२८।३२ पृ०४१६ ।।

कहा गया है कि रामचरित्र को छन्दबद्ध करने वाले प्रधान कवि च्यवन ऋषि थे[3]। उनकी रचना के कुछ श्लोक पतंजलि ने महाभाष्य में उद्धृत किये हैं। किन्हीं कारणों से च्यवन ऋषि की रचना प्रसिद्ध न हो सकी। बाद में च्यवन ऋषि कुलोत्पन्न वाल्मीकि ने राम-चरित को छन्दबद्ध किया था। विद्वानों का मत है कि आदि कवि वाल्मीकि ने जिस राम चरित्र को छन्दबद्ध किया था, उसमें राम-भक्ति का नितान्त अभाव था। भक्ति के उद्भव के कारणों में अवतारवाद प्रमुख कारण है। वाल्मीकि के राम अवतारी पुरुष नहीं हैं।

मूल वाल्मीकि रामायण के राम

यदि रामायण के मूल रूप में राम, विष्णु के अवतार होते तो कवि-वाल्मीकि तुलसी की भांति राम के ईश्वरत्व का निर्वाह अपने ग्रन्थ मे आदि से अंत तक करते। उनके राम विष्णु के अवतार नहीं है, यह इससे सिद्ध होता है कि रामायण के प्रधान पात्र - दशरथ, वशिष्ठ, विश्वामित्र, जनक, कौशल्या, सुमित्रा, कैकयी, सीता, लक्ष्मण, भरत सुग्रीव, हनुमान, बालि, विभीषण इत्यादि कोई भी राम को ईश्वर के नाम से

१- `राम कथा` कामिल बुल्के पृ० २६ ॥

२- `दी स्टैन्डर्ड संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी` पृ० ७८१

३- `बुद्ध-चरित्र` १।४३। अश्वघोष

सम्बोधित न कर के मानद[1], नरशार्दूल[2], नरोत्तम[3], नरपुंगव[4], नरर्षभ[5], नरेन्द्र[6], पुरुषर्षभ[7], पुरुषसिंह[8], मनुष्य[9], पुरुषर्षभ[10], महाबलवान[11], राघव[12], राजशार्दूल[13], रघूत्तम[14], आर्य[15] आर्यपुत्र[16], वीर[17], विशालाक्ष[18], रामचंद्र[19], राम[20], कमलनयन[21] राम, महात्मा राम[22], दशरथ-पुत्र राम[23] प्रभृति नामों से करते हैं। राम अपने को स्वयं मनुष्य कहते हैं ---

'आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम्।' वा रा ६।११७।११।।

मूल वाल्मीकि रामायण के राम विश्वविख्यात राजा थे। वे एक महापुरुष थे। उनका चरित्र विष्णु अयो०कां०२।४३ और देवताओं के समान शुद्ध था। चारित्र्य सम्पन्न और गुणालंकृत होने से ही राम को देव कहा गया है। रामायण में सज्जन-व्यक्तियों और राजा दशरथ को भी देव कहा गया है अयो०कां० १८।२८, १४।१५-८, सर्ग १३३। रामायण में एक तपस्वी विष्णु बा०कां० २६।४ और एक विष्णु राजा अयो०६।४ का भी वर्णन हुआ है। अवतारवाद की भावना के प्रचार के साथ इन गुण-सम्पन्न व्यक्तियों को ईश्वरत्व प्रदान कर दिया गया। विद्वानों का मत है कि ईसा के दो सौ वर्ष पूर्व तक समाज में राम का एक महापुरुष के रूप में आदर-सत्कार होता था[24]।

१- अयो०कां० २७।१६
२- बा का, अयो का
३- ,, १७।२०, २७।२
४- बा०कां० २३।३
५- ,, २६।१२
६- युo कां० १०८।६०-६१
७- सु०का० १७।३०
८- अयो०कां० ५०।३४
९- यु०कां० ११७।११
१०- ,, ५५।४
११- अयो०कां० १५।१४
१२- उ०कां० ४८।१२
१३- अयो०कां० २५।३
१४- अयो०कां० २५।२
१५- ,, ६६।३६
१६- ,, २७।४
१७- ,, २७।१३
१८- ,, २७।२०
१९- यु० का० १०२।३२
२०- अर०कां० ३७।१३
२१- बा०कां० २०।२
२२- अयो० का, अर० का
२३- सु०कां० ३४।३
२४- 'संस्कृति के चार अध्याय' दिनकर पृ० ६४-६५

वाल्मीकि रामायण और राम-भक्ति

सर्वप्रथम कदाचित् वाल्मीकि रामायण के प्रक्षिप्त अंशों और महाभारत के परवर्ती अंशों में रामावतार का निरूपण हुआ है। राम-चरित से संबंधित प्राचीन पर्वों द्रोण और शान्ति पर्वों में रामावतार का उल्लेख नहीं हुआ है। रामायण के प्रक्षिप्त अंश और महाभारत के परवर्ती पर्वों के अतिरिक्त अन्य किसी प्राचीन साहित्य में रामावतार और राम-भक्ति का कोई संकेत नहीं मिलता। भारत का महाभारत और रामायण का विशालकाय रूप ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के आस पास हुए प्रतीत होता है[१]। अतः रामायण और महाभारत के रामावतार से सम्बन्धित प्रसंगों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि रामावतार का बीजारोपण ईसा की प्रथम या द्वितीय शताब्दी पूर्व हो चुका था। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का यह मत है कि रामायण का वर्तमान रूप महाभारत के अर्वाचीन रूप से पूर्व अस्तित्व मे आ चुका था[२]।

मानव धर्मशास्त्र ईसा की दूसरी शताब्दी के आस पास में भी विष्णु के ६ अवतारों में राम का उल्लेख हुआ है।

राम को विष्णु का अवतार मानने के बाद ही उनकी भक्ति प्रारम्भ हुई है। वाल्मीकि रामायण के जिन काण्डों युद्ध और उत्तर काण्ड. में रामावतार का उल्लेख हुआ है। उनमें ही राम-भक्ति के संकेत मिलते हैं। उत्तरकाण्ड ४०।१४-१७ मे हनुमान ने राम से प्रथम वरदान में राम के चरणों में अनन्य भक्ति की अभ्यर्थना की थी। ~~रामायण का वर्तमान रूप ईसा की प्रथम श० ई० पूर्व के आस पास होने से यह कहा जा सकता है कि राम-भक्ति का बीज-वपन ईसा की प्रथम शताब्दी पूर्व हो चुका था।~~ वाल्मीकि रामायण का उत्तरकाण्ड प्रथम श. ई. पूर्व अस्तित्व में था, इसके प्रमाण अन्यत्र भी मिलते हैं। पं० बलदेव उपाध्याय तथा गौरी शंकर उपाध्याय का कथन है कि 'दशरथ जातक' जिसमें रामायण का वर्णन संक्षेप रूप मे उपलब्ध होता है उसमे पाली भाषा में रूपान्तरित उत्तरकाण्ड से एक श्लोक बिल्कुल मिलता हुआ है। इस जातक का

१- बुद्ध को ईश्वरत्व प्राप्त होने के बाद महाभारत को विशाल रूप प्राप्त हुआ प्रतीत होता है क्योंकि ~~महाभारत में बुद्ध का कई स्थानों पर प्रयोग हुआ है~~। महाभारत शान्ति पर्व '१९४-५८, ३०७-२७; ३४३-५२' मे बुद्ध तथा प्रतिबुद्ध शब्दों का प्रयोग हुआ है।

२- 'भारतीय वाङ्मय' भाग १। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ३५

समय विक्रमपूर्व तृतीय शतक माना जाता है । अत: मानना पड़ेगा कि उत्तरकाण्ड की रचना तृतीय शतक के पहले की है[1]।

उत्तरकाण्ड का रामकथा में संबन्धित भाग अवश्य ही दशरथ जातक से पूर्व का है, किन्तु रामायण का रामावतार से सुगुम्फित भाग, दशरथ जातक के पश्चात् का है । दिङ्नाग धोंगनाग का एक कुन्दमाला नाटक है जिसमें रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा का वर्णन है । कुन्दमाला का रचनाकाल २०० ई० के लगभग माना जाता है[2]। दिङ्नाग ने अपने कुन्दमाला नाटक में यह उल्लेख किया है कि वाल्मीकि ने सीता के निर्वासन तक रामायण की रचना की है । कुन्दमाला अंक ६-१४ ।।

अत: यह निष्कर्ष निकलता है कि उत्तरकाण्ड की रचना ईस्वी सन् २०० के पूर्व हो चुकी थी । बाद में उत्तरकाण्ड में प्रक्षिप्त सामग्री की भरमार हुई होगी । यह प्रक्षिप्त सामग्री अवतारवाद आख्यानों से अधिक सम्बन्धित है । यदि मान लिया जाये कि वाल्मीकि रामायण में अप्रक्षिप्त सामग्री का सम्मिश्रण प्रथम शती ईसा पूर्व में हुआ था तो प्रथम शती ईसा पूर्व में राम-भक्ति का गर्भरूप में व्यक्त हुआ मानना चाहिए ।

तेलकटाह गाथा बुद्धाब्द ३३६-८३ के अनुसार राम का ईश्वर के रूप में उल्लेख न होकर एक महापुरुष के रूप में हुआ है । अत: उसके द्वारा भी यही पुष्ट होता है कि इस काल में राम को ईश्वर नहीं माना गया था और न ही राम भक्ति प्रचलित थी ।

पाणिनि और राम-भक्ति

विश्वम्भरनाथ उपाध्याय राम-भक्ति का उद्भव पाणिनि के समय में मानते हैं[3]। अष्टाध्यायी में राममंदिर प्रासाद का उल्लेख हुआ है --

'प्रसादे धनपति राम केशववाराम् अष्टा० सप्तमी २।२।३४ ।।

उपर्युक्त प्रसंग को देख कर यह नहीं कहा जा सकता कि पाणिनि के युग में राम-भक्ति का प्रचार था । अष्टाध्यायी में जो राम प्रासाद का उल्लेख हुआ है, उसके संबंध में यह सन्देह है कि पाणिनि का आशय दाशरथि राम से था, अथवा बलराम, परशुराम या अन्य किसी राम से था ।

१- संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० २६ ।।

२- वही वी० वरदाचार्य, पृ० २२० ।।

३- हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि ' पृ० १३४ ।।

गुप्त-काल और राम-भक्ति

एक गुप्तकालीन मूर्ति में रावण को कैलाश पर्वत उठाने की चेष्टा में दिखाया है।[1] एल्लोरा की गुफा में पर्वत के स्थानों पर यह दृश्य उत्कीर्ण[2] हुआ मिलता है। इस प्रसंग का उल्लेख कालिदास ने भी मेघदूत पूर्वार्ध ५८ में किया है -- "दशमुख भुजोच्छ्वासित प्रस्थिसन्धेः कैलासस्य।"[3]

गुप्तकालीन मृण्मूर्तियों[4] द्वारा लक्ष्मण-शूर्पणखा दृश्य तथा वानर-युद्ध इत्यादि का पता चलता है।

श्री पी०वी० मिराशी :सरूप भारती-होशियारपुर पृ०२७२-७७ द्वारा वर्णित पन्ना प्रयागपुर में राम-कथा-संबंधी गुप्तकालीन कला कृतियों में 'भरत-भेंट' राम-जन्म, दशरथ का अन्तःपुर, सुमन्त्र द्वारा राम को वन में ले जाना, बाली-सुग्रीव युद्ध, राम द्वारा बाली-वध -- आदि का प्रदर्शन हुआ है।[5]

मथुरा के समीप १४ मील दूरस्थ पन्ताम में प्राप्त एक विशालकाय हनुमान प्रतिमा को कुमार स्वामी ने गुप्तकाल का स्वीकार किया है। किन्तु डा० वासुदेव-शरण अग्रवाल इसे ६वीं शैली की कलाकृति मानते हैं। इसी प्रसंग में डा० अग्रवाल ने दुदराजी की एक हनुमान-मूर्ति का उल्लेख किया है जिस पर अंकित लेख में तिथि ३१६ हर्ष संवत् ९२२ ई०' की है। सम्राट समुद्रगुप्त के एरण से प्राप्त[6] लेख में रामचंद्र के पूर्वजों की ओर संकेत किया है -- 'नृपतम' पृथु राघवाद्या'।

एक गुप्तकालीन मूर्ति में विभीषण की[7] शरणागति के अवसर पर राम द्वारा विभीषण का राज्य-तिलक दिखाया है।

१- मथुरा संग्रहालय रिपोर्ट १९३६ -
'जेम्स बर्जेस कृत ए गाइड टु एल्लोरा--कैव्ज -पृ०२४-२७-३१-३२-३३-४४-४७
'श्री शिवराम मूर्ति का लेख' जर्नल आफ गंगानाथ झा-रिसर्च इन्स्टीट्यूट-प्रयाग भा०८,अंक २-फरवरी १९५१

२- शोध-पत्रिका पृ०३

३- भगवतशरण उपाध्याय -'इण्डिया इन कालिदास' १९४७-प्रयाग,पृ०२४१ फुटनोट२४१

४-' इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट' १९२८,लन्दन,पृ०८७-आनन्द स्वामी '

५- शोध-पत्रिका पृ० ६

६- वही पृ० ७

७-' कैटालाग आफ दि म्यूजियम आर्कियोलाजी ऐट सारनाथ' 'दयाराम साहनी: पृ० ३२०

भारतीय शिला-लेखों में राम का नाम सर्वप्रथम नासिक के गुफा-लेखों में मिलता है[1]। गुप्त-काल के शिलालेखों में एक स्थान पर विष्णुवर्मन के शौर्य और प्रताप की तुलना राम से की गयी है[2]। नासिक के गुफा-लेख में एक राम-तीर्थ (?) का भी निर्देश मिलता है[3]।

नासिक के एक अन्य लेख में राम का दो बार उल्लेख हुआ है।

उपर्युक्त उद्धरणों में यह तो स्पष्ट है कि गुप्त काल में राम-कथा को अलौकिक स्वरूप प्राप्त हो गया था किन्तु इनसे यह स्पष्ट नहीं होता कि इस काल में राम-भक्ति का प्रचार था। ~~परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार रामावतार अथवा राम-भक्ति का उल्लेख गुप्त-काल के शिला-लेखों में अप्राप्य है[4]। किसी शिला-लेख या ताम्र-पत्र में किसी राम-पूजक सम्प्रदाय का उल्लेख नहीं मिलता। इससे यह स्पष्ट है कि प्राचीन काल में [illegible] प्रचलित नहीं थी, और न राम ईश्वर रूप में स्वीकृत थे।~~

डा० भगवतीप्रसाद सिंह ने मेघदूत के रामगिरि आश्रम में जनक तनया के स्नान के पुनीत जल और रघुपति की चरणांकित की लोक-वन्द्यता के वर्णन में कवि की अन्तस्थ राम-भक्ति मानी है[4]। चंद्रगुप्त द्वितीया की पुत्री प्रभावती गुप्ता भागवत रामगिरि स्वामिन की उपासिका थीं[5]।

राम-भक्ति और प्राचीन संस्कृत-साहित्य

प्रतिमा नाटक (भासकृत) के राजकीय प्रतिमागृह में राम के पूर्वजों की मूर्तियों का वर्णन मिलता है। भरत ने दशरथ के देहावसान का अनुमान दशरथ की प्रतिमा देख कर ही किया था। उत्तर-राम-चरित्र के अनुसार राम सीता को स्वजीवन संबंधी अनेक सन्दर्भ दिखाते हैं[6]। इस नाटक में यह भी स्पष्ट होता है कि राम-चरित्र से

१- राम-भक्ति साहित्य में रसिक सम्प्रदाय पृ०३७
२- वही पृ०३८
३- वही पृ०५०
~~४- वैष्णव धर्म परशुराम चतुर्वेदी पृ० ५४~~
४- 'राम-भक्ति में रसिक सम्प्रदाय' पृ० ४८
५- वही पृ० ४९
६- इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट १९२८, लन्दन पृ० ८७

संबंधित घटनाएँ कलाकृतियों द्वारा व्यक्त की जाती थीं- उ०रा०च० १।३६ राम की प्रतिमाओं का उल्लेख सर्वप्रथम मत्स्यपुराण ४२१ ई० मे मिलता है। वराह-मिहिर ने बृहत्संहिता पूर्वी शती मे राम की उपासना का वर्णन किया है। बृहत्संहिता ५७।३० के अनुसार राम की प्रतिमा की ऊँचाई १२० अंगुल मानी जाती है। अग्नि पुराण ४९।५ के अनुसार राम की प्रतिमाएँ द्विबाहु या चतुर्बाहु होनी चाहिए। वैसे साधारणतः राम की मूर्तियाँ द्विबाहु होती है। हयशीर्ष ८ पंचरात्र के अनुसार भी राम की प्रतिमाएँ द्विबाहु और चतुर्बाहु होनी चाहिए[1]।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण ३-८५-६२-३ में राम-लक्ष्मण -भरत एवं शत्रुघ्न की मूर्तियों को राजकीय वेष मे दिखाने के लिए कहागया है। कहा गया है कि सिर पर मौलि के स्थान पर किरीट-मुकुट होना चाहिए। वराह-मिहिर ने बृहत्संहिता मे राम मूर्तियों की निर्माण-विधि का भी वर्णन किया है[2]।

विष्णु हरिवंश ४००ई० वायुपुराण ५००ई० भागवतपुराण ७००ई० मार्कण्डेय ब्रह्माण्ड आदि प्राचीन पुराणों मे भी राम-कथा और रामावतार का निर्देश मिलता है।

राम-भक्ति और मूर्ति तथा शिला-लेख

६०० ई० की कला में देवगढ उत्तरप्रदेश के प्रसिद्ध दशावतार मन्दिर में राम-लक्ष्मण-सीता का अगस्त्याश्रम में लोपमुद्रा स्वागत, सूर्पणखा का लक्ष्मण द्वारा नासिका अवच्छेद और अहिल्योद्धार आदि के प्रसंगों का पता चलता है[3]। नालंदा के ७वीं श० के देवालय में धनुष-बाण लिए हुए राम का अहल्या द्वारा सम्मान, पंचवटी में सीता सहित राम, तीन सिर एव छः भुजाओं वाला रावण और उसके पास ही विषाद-ग्रस्त-सीता दिखलाई गयी हैं[4]।

१- शोध-पत्रिका पृ० ५ अंक ४ भा० ६ सं० २०११

२- अर्ली हिस्ट्री आफ वैष्णव सेक्ट पृ० १७४

३- शोध पत्रिका पृ० ६

४- वही पृ० ६

वैरवानसागम ग्रन्थ के अनुसार वैष्णव मंदिर के दक्षिण पूर्ववर्ती कोण में राम का देवालय होना चाहिए।[1]

कम्बोडिया के एक शिला-लेख ६२१ ई० से पता चलता है कि वहाँ अहर्निशि रामायण, महाभारत और पुराणों का पाठ होता था।[2] चम्पा के प्राचीन लेखों में राम को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए राम-कीर्ति का वर्णन किया गया है।[3]

प्रारंभिक चालुक्य शैली ७४०ई० के पट्ट-कदल नामक स्थान पर स्थित विरूपाक्ष देवालय में भी रामायण दृश्य उत्कीर्ण है।[4] ग्वालियर से २० मील उत्तर में पधावलि Padhavali नामक स्थान पर १०वीं०श०ई० के देवालय में भी रामायण संदर्भ उत्कीर्ण है।[5]

वाल्मीकि रामायण, प्राचीन संस्कृत साहित्य, मूर्तिलेखादि के आधार पर यह कहा जा सकता है कि राम भक्ति का प्रारम्भिक रूप ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में व्यक्त होने लगा था किन्तु ईसा पूर्व राम भक्ति का उद्भव होने पर भी यह कहना कदाचित् सार्थक है कि गुप्त-काल तक भारतीय जीवन में राम भक्ति का प्रचार अधिक नहीं हो पाया। इस काल तक सामान्य हिन्दू का दैनिक जीवन व्रत, उपवास, पूजा पाठ के नियमों से जटिल नहीं बना था।[6]

राम-भक्ति का साहित्यिक रूप

राम भक्ति का प्रारम्भिक प्राचीनतम रूप आलवार-भक्तों की रचनाओं में ही मिलता है। आलवारों का काल संवत् लगभग ५०० से लेकर १००० तक माना जाता है।[7] आलवारों में सर्वप्रसिद्ध आलवार नम्म वा शठकोप हैं।[8] शठकोप द्वारा विरचित सहस्र गीति ३।६।८ में माधुर्य-भाव की राम-भक्ति का स्वरूप मिलता है। शठकोपाचार्य राम के विशिष्ट उपासक माने गये है। उनकी रचनाओं में राम की शरणागति और माधुर्य-भक्ति का चित्रण हुआ है।[10] शठकोप ने राम-प्रतिमाओं

१- शोध पत्रिका पृ० ५ ।। :२ पी०एन०बोस, हिन्दू कालोनी आफ सिआम १९२७लाहौर पृ०११०

३- वही पृ० ११० ।। ४ शोध पत्रिका पृ० ७ :५ वही पृ० ८ ।।

६- भारत का सांस्कृतिक इतिहास : हरिदत्त वेदालंकार पृ०१६७

७- उत्तरीभारत की सन्त परम्परा . परशुराम चतुर्वेदी पृ० ८१ :८ वही पृ० ८२ ।।

९- भागवत सम्प्रदाय : पं० बलदेव उपाध्याय पृ० २६१

१०- नम्म आड्वार : जी० ए० नटेसन, मद्रास पृ० ६

की भी स्तुति की है। प्रपन्नामृत पृ०३६७ । सदाशिव-संहिता के अनुसार कलियुग में राम-तारक-मंत्र के उपदेष्टा श्री शठकोपाचार्य ही माने गये हैं।[1] इन्होंने तिरुपति में राम की प्रतिमा की स्थापना भी की थी।[2] शठकोप के शिष्य मधुर कवि की अयोध्या-यात्रा और सीता -राम - पूजा का उल्लेख मिलता है 'प्रपन्नामृत पृ० ३६२ ।

राम- भक्ति का प्राचीन रूप कुलशेखर की रचनाओं में भी मिलता है।[2] कुलशेखर ९वीं श ई. ने राम-भक्ति में तल्लीन होकर खर-दूषण-युद्ध का श्रवण कर, राम की सहायतार्थ अपनी सेना को सुसज्जित होने की आज्ञा दे दी थी।[4] कुलशेखर का रचना का पाँचवा अंश राम-भक्ति से संयुक्त है।[5] राम की प्रेरणा से इन्होंने अपनी पुत्री का विवाह श्री रंग देव के साथ कर दिया था प्रपन्नामृत पृ० २८५ । ये रामायण को वेदों के समान पवित्र मानते हैं .प्रपन्नामृत पृ० २८५ । संक्षेप में इन्होंने राम-कथा का वर्णन भी किया है।

गोदा आन्दाल राम में माधुर्य-भाव रखती थीं।

आलवार भक्तों के उपरान्त राम-भक्ति की दृष्टि से कंबन-कृत ९००-१०००ई०. रामायण उत्कृष्ट रचना है।

ऐसा माना गया है कि पौराणिक साहित्य की रचना दक्षिण में ही हुई है।[6] अतः पौराणिक साहित्य और आलवार भक्तों के साहित्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भक्ति के उद्भव की भाँति राम-भक्ति का उद्भव भी दक्षिण-भारत में ही हुआ है।[7] इस मत से दिनकर, ~~डा० भगवत्प्रसाद गुप्त,~~ डा० कामिल बुल्के,[8] डा० भगवती प्रसाद सिंह[9] आदि विद्वान् सहमत हैं।

१-` राम-रहस्यार्थं ` पृ४३-४४

२-` ~~राम-कथा ` बुल्के पृ० १५०~~ वही पृ० ४३-४४ ३ रामकथा बुल्के पृ० १५० ।।

४- `हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि ` विश्वम्भरनाथ उपाध्याय `पृ१३६

५-` राम-कथा` बुल्के पृ० १५०

६- `भारतीय संस्कृति का विकास `वैदिक धारा ` डा० मंगलदेव शास्त्री पृ०१३

७- `संस्कृति के चार अध्याय ` पृ० ७१

~~७- `हिन्दी साहित्य पुस्तक ` पृ०४४~~

८- `राम-कथा ` पृ० १५०

९- `राम-भक्ति मे रसिक संप्रदाय ` पृ० ४७

~~१०-~~

आचार्य-युग और भक्ति का स्वरूप विकास

आचार्य आलवारों के उत्तराधिकारी थे। राम-भक्ति का फुटकर रूप नाथमुनि, पुंडरीकाक्ष, यामुनाचार्य और माध्वाचार्य आदि की रचनाओं में मिलता है। इन आचार्यों के साहित्य के आधार पर राम-भक्ति का कोई व्यवस्थित स्वरूप अथवा राम-भक्ति-सम्प्रदाय का अस्तित्व नहीं माना जा सकता। रामानुजाचार्य द्वारा भी राम-[illegible] का कोई आयोजन नहीं हुआ है। रामानुजाचार्य के गद्यात्मक स्तोत्रों से राम की [illegible] रूप में की गयी स्तुति का कुछ आभास मिल सकता है[1]। रामानुजाचार्य ने रचनाओं में राम और कृष्ण का उल्लेख किया है श्री भाष्य २।२।४२।

रामानुज ने वि०सं० १०७३ अपने सम्प्रदाय में राम-पूजा और कृष्ण-पूजा को कोई स्थान नहीं दिया था। उनके आराध्य देव केवल नारायण थे। राम-पूजा का आरम्भ आगे चल कर उनकी शिष्य-परम्परा में हुआ था[2]। परशुराम चतुर्वेदी के मतानुसार रामोपासना का अधिक प्रचार वस्तुतः ईसवी-सन् की १२ वीं शताब्दी के पीछे होता है और क्रमशः राम-भक्ति एवं रामोपासना संबंधी संहिताओं तथा उपनिषदों की रचना होने लगती है। स्वामी रामानुजाचार्य द्वारा स्वयं प्रचलित किये गये मत में राम को कोई विशेष स्थान उपलब्ध नहीं था। वे विष्णु के ही उपासक थे[3]।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि १०-११-१२ वीं शताब्दी में राम-भक्ति को कोई विशेष स्थान प्राप्त नहीं हुआ था। राम केवल अवतार माने जाते थे। यत्र-तत्र उनकी अर्चना भी होती थी, किन्तु वह सुव्यवस्थित नहीं थी। तेरहवीं शताब्दी में हेमाद्रि ने व्रतखण्ड और वृद्ध-हारीत ने अपनी 'स्मृति' में रामोपासना का विधान दिया है।-
१२-१३ वीं श. के उपरान्त दक्षिण-भारत में राम-लक्ष्मण आदि की कांस्य तथा पाषाण प्रतिमाएँ पर्याप्त संख्या में बनने लगी थीं[4]। किन्तु इस काल में राम-भक्ति से संबंधित कोई सम्प्रदाय उत्पन्न नहीं हुआ था। यदि भंडारकर महोदय का फुटकर रामोपासना से तात्पर्य है तो उसका जन्म ईसा-पूर्व प्रथम शताब्दी में हो चुका था। यदि उनका तात्पर्य सैद्धान्तिक राम-भक्ति से है तो उसका स्वरूप रामानन्द के पूर्व किसी आचार्य ने प्रतिपादन नहीं किया है।

१- 'भागवत सम्प्रदाय' प० बलदेव उपाध्याय, पृ० २६२
२- 'ना०प्र०पत्रिका, भाग ४ संवत् १९८० पृ० ३३५ -डा० श्यामसुन्दरदास'
३- 'वैष्णव-धर्म' पृ० ६७
४- 'शोध-पत्रिका' पृ० ८

राम-भक्ति का सैद्धान्तिक विवेचन हिन्दी में सर्वप्रथम रामानन्द ने ही किया है[1]। इस सत्य से डा० माताप्रसाद गुप्त[2], परशुराम चतुर्वेदी[3], श्री भुवनेश्वरनाथ मिश्र माधव[4], श्री पाण्डेय रामावतार शर्मा[5], डा० कामिल बुल्के[6], श्री विश्वम्भरनाथ उपाध्याय[7], डा० श्यामसुन्दर दास[8], श्री अनन्त मराल शास्त्री[9] इत्यादि विद्वान् सहमत हैं।

स्वामी रामानन्द का जन्म काल १४ वीं श० के आस-पास समझा जाता है[10]। अत हिन्दी प्रदेश में राम-भक्ति का सैद्धान्तिक और साम्प्रदायिक स्वरूप १४ वीं श. ई. के पूर्व नहीं माना जा सकता।

राम-भक्ति का उद्भव दक्षिण-भारत में हुआ है। उत्तर भारत में राम-भक्ति का प्रचार करने वाले सर्वप्रथम प्रचारक महात्मा रामानन्द जी थे। वैसे राघवानंद जी का दक्षिण-भारत से आकर उत्तर-भारत में राम-मंत्र के प्रचार करने का दृष्टान्त `सिद्धान्त-तन्मात्रा` मंत्र प्रकरण-चौथी तरंग में मिलता है —

`बन्दे श्री राघवाचार्य रामानुजकुलोद्भवम् ।
याम्यादुत्तरमागत्य राम मन्त्र प्रचारकम् ।।`

`हरि-भक्त-रसामृत सिन्धु वेला` नामक ग्रन्थ से भी यही सिद्ध होता है कि राघवानंद ने दक्षिण से आकर उत्तरी-भारत में राम-मंत्र का प्रचार किया[11]। यह संभव है कि रामानंद ने राघवानंद से दीक्षा ली हो[12]। वैसे रामानन्द के संबंध में यह कहा जाता है कि वे दक्षिण में रह आये थे[13]। दिनकर ने रामानन्द को दक्षिण की आध्यात्मिक सन्तान माना है[14]। रामानन्द का किसी न किसी रूप में दक्षिण से अवश्य सम्बन्ध रहा है। रामानंद ने दक्षिण की राम-भक्ति को उत्तरी भारत में पल्लवित किया।

१-`मोनोग्राफ आन दी रिलिजस सेक्ट्स इन इण्डिया अमंग्स दी हिन्दूज `पृ०४८
२-`हिन्दी साहित्य पुस्तक ` पृ० ४
३-`वैष्णव धर्म ` पृ० ६७
४-`राम-भक्ति साहित्य में मधुर उपासना`
५-`भारतीय ईश्वरवाद ` पृ० ४८६
६-`राम-कथा` पृ० १५०
७-`हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि ` पृ० १३७
८- `हिन्दी साहित्य ` पृ० १८६
९-`राम-भक्ति-शाखा` आलोचनात्मक इतिहास ` पृ० ३
१०-`वैष्णव धर्म`परशुराम चतुर्वेदी` पृ०६७-१०८, उत्तरी भारत की संत परंपरा पृ०२२२, संत काव्य - पृ० १५४
११-`योग प्रवाह ` प्रथम संस्करण संवत् २००३- पृ० २२
१२-`भारतीय ईश्वरवाद` पृ०४८७
१३- `संस्कृति के चार अध्याय ` पृ० ७१-१२०, मोनोग्राफ आन दी रिलिजस सेक्ट्स इन इण्डिया अमंग्स दी हिन्दूज `पृ० १०
१४ `संस्कृति के चार अध्याय पृ० ७१-१२०

ग राम-भक्ति का विकास

राम-भक्ति के विकास के अन्तर्गत अवतारवाद, नामवाद, गणवाद, निर्गुण और सगुणवाद, ग्रन्थ-पूजा, व्यक्ति-पूजा, तीर्थ, मन्दिर और प्रतिमा पूजन, नाम-पूजा, गुरुदेव-पूजा, दास्य और माधुर्य-भाव की उपासना इत्यादि प्रवृत्तियाँ प्रमुख हैं। इन प्रवृत्तियों का मूल बाल्मीकि रामायण में नितान्त अभाव रहा होगा। बाल्मीकि के रामचरित्र में केवल धर्म, अर्थ और काम का ही विस्तार के साथ वर्णन हुआ होगा--उ०का०३।८ । राम-भक्ति से संबंधित उपर्युक्त प्रवृत्तियाँ, पौराणिक साहित्य को छोड़ कर, शेष संस्कृत राम-साहित्य में १२वीं श०तक अत्यल्प मात्रा में प्राप्त होती हैं।

अवतारवाद

राम-भक्ति के विकास में प्रथम प्रवृत्ति अवतारवाद की है। प्रथम राम अवतार माने गये तदनन्तर उनकी भक्ति आरम्भ हुई।

अवतारवाद की प्रतिष्ठा का कारण

वैदिक दर्शन के अनुसार कर्म, श्रम, और तप के द्वारा मनुष्य ब्रह्म पद तक पहुँच सकता है। जो व्यक्ति ब्रह्म तक पहुँच सकता है, वह ब्रह्म का अपने तक अवतरण गिरना नहीं चाहेगा। जिस व्यक्ति का जीवन कर्म श्रम और तप रहित है, वह ब्रह्म तक नहीं पहुँच सकता। जो मनुष्य ब्रह्म तक नहीं पहुँच सकता, वह ब्रह्म का अपनी आत्मा तक अवतार अवतरण चाहता है।[1] श्रम, कर्म और तप के अभाव में मानव ने अनन्त तक पहुँचने का कष्ट छोड़ कर, अनन्त को ही सान्त बना लिया। सान्त-भाव अवतारवाद का जनक है।

वैदिक साहित्य में अवतारवाद ~~का नितान्त अभाव है~~

वैदिक संहिताओं में अवतारवाद का नितान्त अभाव है। मनुस्मृति भी अवतारवाद का समर्थन नहीं करती। एच०याकोबी, एम०एम०विलियम, एच०राय चौधरी आदि विद्वानों के मतानुसार शतपथ ब्राह्मण से अवतारवाद का प्रारम्भ होता है।[2] शतपथ-ब्राह्मण के

१- 'आस्तिकवाद' गंगाप्रसाद उपाध्याय ' पृ० ४८८ ।

२- 'एच०याकोबी इनकारनेशन इ आर. इ. भाग ७।

' काने हिस्टरी आव धर्म शास्त्र, भाग २ - पार्ट २- पृ० ३१७

अनुसार प्रजापति के मत्स्य १।८।१।१ कूर्म ७।५।१।५ १४।१।२।११ तथा वाराह १४।१।२।११ आदि अवतार हुए। प्रजापति के वाराह वाले अवतार की कथा तैत्ति० स०७।१।५।१,* तैत्ति०ब्राह्मण १।१।३।` तथा काठक संहिता में भी मिलती है ८।२। वाल्मीकि रामायण २।११० में भी इसका उल्लेख हुआ है। प्रारंभ में वामनावतार का विष्णु से संबंध था, तथा वामन-अवतार की कथा तैत्तिरीय संहिता २।१।३।१ में भी मिलती है। तैत्तिरीय आरण्यक १०।१।६ और शतपथ ब्राह्मण १।२।५।१ में विष्णु के नृसिंहावतार की कथा का उल्लेख है।

ब्राह्मण साहित्य के उपर्युक्त उद्धरणों के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि ब्राह्मण-साहित्य में अवतारवाद मान्य था। डा० कामिल बुल्के यह तो मानते हैं कि ब्राह्मण-साहित्य में अवतारवाद विद्यमान था, किन्तु वे यह नहीं मानते कि उस समय अवतारों की कोई विशेष पूजा की जाती थी और न उनमें विष्णु का प्राधान्य था[1]। डा०मुंशीराम शर्मा ने ब्राह्मण-साहित्य की अवतारवादी कथाओं का भिन्न अर्थ देकर यह सिद्ध किया है कि ब्राह्मण साहित्य में अवतारवाद नहीं था। उनका कथन है कि `हमें तो इन कथाओं में अवतारवाद की गंध भी नहीं मिलती[2]।`

अवतारवाद का उद्भव

महाभारतकालीन जरथुस्त के समय में ईश्वर को पुरुषवत् मान लिया गया था। उस समय ईश्वर के नाम पर देवी-देवताओं की पूजा भी होने लगी थी। उसी समय जरथुस्त के महान् व्यक्तित्व ने साकारोपासना को नष्ट करके ब्रह्म के अनन्त भाव की संस्थापना की[3]।

---

* एम०एम० विलियम्स इ. विजडम` पृ० ३१८

` एच-राय-चौधरी अर्ली हिस्टरी आव वैष्णव सेक्ट पृ० ६६

१- `राम-कथा` बुल्के पृ०१४४।

२- `भक्ति का विकास` पृ० ३४३।

३- डा० एस०ए० कापड़िया -`दी टीचिंग्स आफ जोरोस्टेरियनिज्म एण्ड दी फिलासफी आफ पारसी रिलीजन` पृ० १६-१७।।

ऐसा माना गया है कि सर्वप्रथम बुद्ध को ईश्वर के पद पर प्रतिष्ठित किया गया, और बुद्ध को ईश्वर बनाने की प्रथा में अवतारवाद की ऐसी लहर फैली कि मनुष्य ने अपनी बुद्धि से ईश्वर के चित्र बनाने शुरू कर दिये[1]।

~~[illegible]~~ में अवतारवाद

समाज में जो अनुपम महान् आत्मायें थीं, उनके पावन चरित्र ने लोकरुचि के अनुसार अनेक अलौकिक घटनायें जोड़ कर उन्हें ईश्वरत्व प्रदान किया गया। इसी तत्त्व के अनुसार मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम अपने अलौकिक चरित्र के कारण ईश्वर के सिंहासन पर अधिष्ठित हुए।

सर्वप्रथम राम को विष्णु का अवतार वाल्मीकि रामायण के प्रक्षिप्त अंश में माना गया है। वाल्मीकि रामायण में राम-विष्णु के अवतार, बाल, अयोध्या, युद्ध और उत्तरकाण्ड में माने गये हैं। जो ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के लगभग मानी जा

वाल्मीकि-रामायण की प्रक्षिप्त-सामग्री के अनुसार, लगभग ईसा की प्रथम शताब्दी पूर्व राम-विष्णु के अवतार स्वीकार हुए।

महाभारत में रामावतार

रामायण की प्रक्षिप्त सामग्री के उपरान्त, स्पष्ट रूप से राम का अवतारत्व महाभारत के अंतिम संस्करण में मिलता है। महाभारत के प्रथम संस्करण का नाम जय काव्य था। इस काव्य में ८८०० श्लोक थे। दूसरे संस्करण का नाम `भारत` पड़ा। उस संस्करण में २४००० श्लोक चतुर्विंशतिसहस्री थे। वर्तमान महाभारत तृतीय संस्करण में एक लाख श्लोक शतसहस्री है -- महाभारत १-१-६१ पूना संस्करण।

वेदव्यास का `जय काव्य` और वैशम्पायन का `भारत काव्य` राम-विष्णु आदि के अवतारवादी आख्यानों से अछूता था। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का मत है कि व्यास का मूल भारत बिना उपाख्यानों के था। वर्तमान महाभारत में अनेकों उपाख्यान यथास्थान पिरो दिये गये हैं[2]। एक लाख श्लोकों वाले महाभारत के अरण्यपर्व में तीन स्थानों पर रामावतार का वर्णन हुआ है। बम्बई के निर्णयसागर प्रेस से प्रकाशित

१-`भारत में बाइबिल`- संतराम ~~ई०~~ प्रथम भाग पृ० ७२।

२-`कल्प वृक्ष` डा० वासुदेव शरण अग्रवाल` पृ० ६४।

हनुमन्नाटक के

अंक ८ श्लोक २४ में राम को मनुष्य मानने वाले को मूर्ख कहा है। दशावतार चरित में रामविष्णु के मेरा संज्ञा लक्ष्मी का अवतार माना गया है -- ८-७०-१०४ ।

सात्वत तंत्र के पूर्व विरचित पाञ्चरात्र संहिताओं में राम के साथ साथ उनके तीनों भ्राताओं को भी अवतार स्वीकार किया है। अहिर्बुध्न्य-संहिता में लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न को स्वयं भगवान् का ही अंशावतार बताया है -- अहि०सं० २०२।३८।६३-६४-६६

साम्प्रदायिक

उपनिषदों में रामावतार

श्री राम-पूर्व तापनीयोपनिषद् और श्री रामोत्तर तापनीयोपनिषद् में राम के अवतार का स्वरूप बदला गया है। इन उपनिषदों में राम-सर्वोपरि ब्रह्म के रूप में चित्रित हुए हैं। ब्रह्मा-विष्णु और शिव, ब्रह्म-राम की शक्तियाँ मान रहे हैं। श्री रामपूर्वतापनीयोपनिषद् के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव, ये तीनों मूर्तियाँ 'राम' के रकार पर आरूढ़ हैं, तथा उत्पत्ति, पालन एवं नाश की त्रिविध शक्तियाँ अथवा बिन्दु,नाद और बीज से प्रकट होने वाली रौद्री, ज्येष्ठा, एवं वामा-- ये त्रिविध-शक्तियाँ भी उन्हीं में स्थित हैं। राम का अक्षर विभाग इस प्रकार है --- र-आ-म-उ- इन रकार जो साक्षात् श्री राम का वाचक है तथा उस पर आरूढ़ जो आ, म और उ हैं वे क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव -- इन तीन देवों के और उपर्युक्त त्रिविध शक्तियों के वाचक हैं[1]।

श्री रामोत्तरतापनीयोपनिषद् में 'रा' यह बीज ही प्रणव है, तथा पुरुषोत्तम राम सम्पूर्ण परमेश्वर हैं। इनके चार पाद या अंश हैं, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, भरत तथा कौशल्या नन्दन श्री राम। ये चारों मिल कर ही सम्पूर्ण राम हैं। जैसे सब कुछ 'ओ३म्' है वैसे ही 'रां' भी है। रां और ॐ में माहात्म्य और महिमा की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं है[2]।

बौद्ध- और जैन -साहित्य में रामावतार

जैन और बौद्धों ने राम को विष्णु का अवतार स्वीकार नहीं किया है। न ही इन्होंने राम-भक्ति की दृष्टि से राम-कथा को ग्रहण किया है। बौद्धों ने बुद्ध को राम का पुनरावतार मान कर बौद्ध-मत के प्रसार के दृष्टिकोण से राम के व्यक्तित्व का उपयोग किया है।

१- राम तापनीयोपनिषद् पृ० ७-२१

जैनियों ने भी राम के व्यक्तित्व से जैन-धर्म के प्रचार में सहायता ली है। जैन-राम-साहित्य में राम-लक्ष्मण और रावण क्रमशः आठवें बलदेव वासुदेव और प्रतिवासुदेव माने गये हैं। रावण को प्रतिवासुदेव मान कर सर्वप्रथम जैनियों ने ही रावण के प्रति [illegible] व्यक्त की है।

तमिल-साहित्य में रामावतार

कंबन ने अपनी रामायण (१० वीं सदी) में राम को नारायण का अवतार माना है। तिरुमंगै आळ्वार ने विष्णु[1] के जो अवतारों की स्तुति गाई है, वह रामावतार पर बहुत ही अधिक मुग्ध हुए हैं।

अवतारवाद के कारण इस ग्रंथ में साकार सगुण ब्रह्म का निरूपण हुआ है। ब्रह्म को सगुण मानने के बाद ब्रह्म के सगुण और निर्गुण ये दो भेद किये गये।

वैदिक वाङमय में ~~सगुण और निर्गुणवाद का विकास नहीं है~~ वर्णन

वैदिक दृष्टि से ब्रह्म निर्गुण नहीं है। उपनिषदों में सगुण और निर्गुणवाद का कहीं पर भी विवाद उत्पन्न नहीं हुआ है।

केन, कठ, प्रश्न, मुंडक, माण्डूक्य, ईश, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, तैत्तिरीय और ऐतरेय आदि प्रामाणिक उपनिषदों में निर्गुण शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। केवल श्वेताश्वतरोपनिषद् ६।११ में एक बार निर्गुण शब्द का प्रयोग हुआ है--

` एको देवः सर्वभूतेषु गूढ सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्ष सर्वभूताधिवास साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ।।`

उपर्युक्त मंत्र के निर्गुण शब्द का अर्थ गुणरहित तत्व से नहीं है, क्योंकि इसी मंत्र में ब्रह्म के गुणों का 'एक देव सर्वव्यापक, सर्वभूतान्तरात्मा, कर्माध्यक्ष, सर्वभूताधिवास, साक्षी, चेतन ' वर्णन किया है। शंकराचार्य ने इस मंत्र के निर्गुण शब्द का अर्थ-उपाधि शून्य सत्वादि गुण-रहित किया है --

` केवलो निरुपाधिक निर्गुणः सत्वादिगुणरहित ` ।।११।। शां०भा०।।

अर्थात् ब्रह्म में घट-बढ, संकोच, प्रसार, सूक्ष्मत्व, स्थूलत्व या सत्व-रज-तम जैसे पदार्थ निष्ठ-गुण नहीं हैं।

१-` तमिल और उसका साहित्य` पृ० ६६ श्री पूर्णसोम सुन्दरम् ।`

निर्गुणवाद का उद्भव

ऐसा ज्ञात होता है कि निर्गुण और साकार एवं सगुण शब्द निर्गुण का के प्रवर्तन का आदि स्रोत बौद्ध-दर्शन है। शून्य के स्थान पर अधिष्ठित होने पर वादिन और ईश्वर दोनों दृष्टियों से सम्मानित होने लगे। दर्शन में ब्रह्म का आरोप ही सगुण-निर्गुण के आरोप का रूप है। ब्रह्म बुद्ध की उपासना साकार सगुण रूप में की गई थी। आगे चल कर साकारत्व के प्रतिक्रिया स्वरूप निराकारत्व और निर्गुणत्व का आविष्कार हुआ। सगुण निर्गुण के संघर्ष के परिणामस्वरूप दार्शनिक चिन्तन के अभाव में निर्गुण शब्द शून्य के अर्थ में प्रचलित हो गया।

निर्वाण और निर्गुण

बौद्धों में शून्य की पारमिता मान्यता थी। महायानी बौद्धों ने निर्वाण को शून्य कहा है।[1] शून्य अनिर्वचनीय होने से निर्वाण भी अवर्णनीय और अतर्कनीय है।[2] अनिर्वचनीय निर्वाण को आगे चल कर निर्गुण भी कहा गया है।[3]

समय के प्रवाह के साथ साथ योगाचारियों ने शून्य के साथ विज्ञान को मिलाया। फिर वज्रयान सिद्धान्त ने महासुख को निर्वाण में मिलाया। इस प्रकार शून्यवाद के तीन तत्व हुए, शून्य, विज्ञान और महासुख। यह धारणा वज्रयान मत के अनुकूल वज्र के सदृश दृढ़, अच्छेद्य, अभेद्य, और अविनाशी समझी गई है।[4] वज्रयानियों ने स्थिर किया कि शून्य, निरात्मा, और एक देवी है, उस देवी के सनातन क्रोड़ में बोधिचित्त या विज्ञान बन्द है, जो अनन्त ऐश्वर्यों के सुखों का उपभोग करता है।[5]

शून्य और निर्गुण - इस प्रकार अनिर्वचनीय शून्य से एक ओर सगुणवाद साकारवाद. का प्रचार हुआ, दूसरी ओर इसके विरोध में निर्गुणवाद का। सगुण और निर्गुणवाद का विरोध हिन्दी साहित्य में विकसित रूप में अभिव्यक्त हुआ है। वज्रयानी अपने तत्वज्ञान को रहस्यभरी भाषा में समझाया करते थे। वज्रयानियों की रहस्य-भरी भाषा और भावों को सिद्धों ने ग्रहण किया। सिद्धों ने भाषा में कविता करके यद्यपि अपने गुह्य विचारों को जनता के समझने लायक बना दिया था तथापि उनको यह

१-`सर्वदर्शन संग्रह``बौद्ध-दर्शन` पृ०१४ २-`दी डाक्ट्रीन आफ दी बुद्ध`पृ०४७५`जार्जग्रिम`
३-`बौद्ध दर्शन मीमांसा` पृ० १७४`पं० बलदेव उपाध्याय`
४-`बुद्धिष्ट एसोटेरिज़्म` पृ० २७।।
५-`भारतीय ईश्वरवाद` पृ० ३४३`डा० श्री रामावतार पाण्डेय`

निराकार मानते हैं, वे भी ब्रह्म के मानवी गुणों का उल्लेख करते है। इंजील और कुरान ने ब्रह्म को, ९ स्वेच्छाचारी कटुस्वभाव और मानवी भाव, विचार एवं त्रुटियों से वशीभूत रहने वाले सम्राट् के रूप मे वर्णन किया है[1]।

सगुण में निर्गुण का जकड़ा हुआ भाव, इस्लाम और ईसाई मत ने, सम्भवतः बौद्ध-धर्म से अपनाया है। मनरोन, डी ग्लिट और गिडिन के मतानुसार ईसाई मत ही बौद्ध धर्म से निकला है[2]।

वैष्णव धर्म मे २४ अवतारों और मूर्ति पूजा का भाव सम्भवतः बौद्ध धर्म से आया है। यही अवतारवाद, नामस्मरण, निर्गुणवाद का मूल उद्गम कारण है। मूल गीता मे अवतारवाद तथा तत्सम्बन्धित भक्ति-भाव नहीं थे।

गीता में सगुण-निर्गुण ब्रह्म

अवतारवाद के समर्थन में यह भी कहा जा सकता है कि मूल गीता में सगुण-निर्गुण-वाद का भी विवाद नहीं था। बुद्ध के बाद जब भारत का नवनिर्माण हुआ, तब मूल गीता में अवतारवाद, सगुणवाद और निर्गुणवाद के भाव जोड़े गये। श्रीमद्भगवद्गीता में ब्रह्म को निर्गुण कहकर भी सगुण कहा है---

> सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
>
> असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ।। १३।१४-३१।।

पौराणिक साहित्य में सगुण-निर्गुणवाद

गीता के बाद निर्गुण और सगुण ब्रह्म का सम्मिलित रूप पुराणों मे चरमोत्कर्ष अवस्था को प्राप्त हुआ है।

विष्णुपुराण मे ब्रह्म के सगुण निर्गुण रूप का विस्तार के साथ वर्णन हुआ है। विष्णुपुराण १।१६।७६ मे निर्गुण ब्रह्म को नमस्कार किया गया है। विष्णु-पुराण ६।५।८० के अनुसार निर्गुण का अर्थ गुणहीन भी है।

विष्णुपुराण में सगुण ब्रह्म का उल्लेख करते हुए सृष्टा, पालक, संहारक और त्रिमूर्तिधारी भगवान् को नमस्कार किया है[3]। भगवान का परतत्त्व रूप कोई नहीं जानता,

---

१- बाइबिल ` उत्पत्ति की पुस्तक` अ ४।८-६-१४-१६ , अ ६।६-७-१३-२२, अ.८। अ.२१।।
कुरान - अ ६६-४७-३७-४२-७६-६१-८-६ ।

२-` शापनहावर -`रिलीजन एण्ड अदर ऐसेज` पृ० ११६ ।।`एनसियन्ट इण्डिया`भा०२ पृ०३४०

३- वि०पु० १।१६।६५-६७-६६-७६ तथा १।१६।६६, १।२।६१ से ७० तक

देवगण उपकारी रूप की ही पूजा करते हैं। भक्त, गौ, ब्राह्मण, साधु हितकारी, ब्रह्मण्यदेव, भगवान् को नमस्कार करता है। देव, यक्ष, असुर, सिद्ध, नाग, गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, राक्षस, मनुष्य, पशु, पक्षी, पिपीलिका, सरीसृप, पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश, वायु, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, मन, बुद्धि, आत्मा, काल और गुण, इन सबके पारमार्थिक रूप अच्युत भगवान् ही हैं।[1] समस्त भूतों में भगवान ही जो गुणों का पराश्रित है, उनको नमस्कार है। विष्णुपुराण में ब्रह्म के सगुण निर्गुण रूप का साथ साथ भी उल्लेख हुआ है---

> 'गुणांजन गुणाधार निर्गुणात्मन् गुणास्थित ।
> मूर्तामूर्त महामूर्ते सूक्ष्ममूर्ते स्फुटास्फुट ।। विoपुo १।२०।८-८-६-१०-११।।

लगभग सभी पुराणों ने ब्रह्म के सगुण और निर्गुण रूप का विवेचन किया है। भागवत में ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनों रूपों की व्याख्या की है---

> 'रूप यत्त प्राहुरव्यक्तमाद्यं ब्रह्म ज्योतिर्निर्गुण निर्विकारम् ।
> सत्तामात्रं निर्विशेष निरीहं सत्वं साक्षाद्विष्णुरध्यात्मदीप ।। --
> १०।३।२४ ।।

श्रीमद्भागवत स्कंध३।अ २६।११-१२-१३-१४ में भक्तों के निर्गुण और सगुण दो भेद करते हुए यह कहा है कि 'जिस प्रकार गंगा का प्रवाह अखण्ड रूप से समुद्र की ओर प्रवाहित रहता है, उसी प्रकार मेरे गुणों के श्रवण मात्र से जिसके मन की गति अविच्छिन्न रूप से, निष्काम भाव और अनन्य प्रेम के साथ मुझमें लगी रहती है, वह निर्गुणभक्त है।

श्रीराम-तापनीयोपनिषद् और राम

श्री रामपूर्व और उत्तर तापनीयोपनिषद् में राम का साकार, निराकार, सगुण और निर्गुण स्वरूप अभिव्यक्त हुआ है। श्रीरामतापनीयोपनिषद् के राम दशरथ के गृह में आविर्भूत होने वाले, राक्षसों के संहारक, धर्मोपदेष्टा और परब्रह्म है। सत्य अनंत, आनन्द, और ज्ञानस्वरूप राम में योगिगण रमण करते हैं ---

> ' रमंते योगिनोऽनंते नित्यानंदे चिदात्मनि ।
> इति रामपदेनासौ परंब्रह्माभिधीयते ।। ६।।

---

[1] विo पुo १।१९ - ७६ तक, १।२-७० तक

ये राम व्यक्त एवं परोक्ष रहित, अद्वितीय, सच्चिदानन्द, स्वयंज्योति स्वरूप, कर्ता, भर्ता, हर्ता, जगत् प्राण और ... रूप में प्रकट होने वाले हैं। श्रीराम तापनीयोपनिषद्[1] में राम का रूप अत्यन्त सुन्दर और विविध भूषणों से भूषित माना है।

अध्यात्म रामायण में राम का रूप

अध्यात्मरामायण के राम विष्णु के अवतार हैं। वे प्रकृति से परे, परमात्मा, अनादि, आनन्दघन, अद्वितीय, पुरुषोत्तम, द्रष्टा, विश्वव्यापक, कर्ता, धर्ता, शुद्ध-बुद्ध, विज्ञानघन, ज्योतिस्वरूप, अविकाररहित, निरञ्जन, एवं माया के अधिष्ठाता हैं। ये राम न चलते हैं न ठहरते हैं, और न शोक, इच्छा त्याग करते हैं। ये आनन्दस्वरूप अचल और परिणामरहित हैं। अज्ञान के नष्ट होने पर मुनिजन जिनमें रमण करते हैं वे राम हैं।[2]

निर्गुण ब्रह्म और रामानुज

दार्शनिक क्षेत्र में रामानुज ने निर्गुण-ब्रह्म की व्याख्या की है। समस्त हेय गुणों से शून्य होने के कारण ब्रह्म निर्गुण कहलाता है--

' निर्गुणवादश्च परस्य ब्रह्मणो हेयगुणसम्बन्धादुपपद्यते ।' श्री भाष्य' पृ०८३।।

वैसे रामानुज किसी भी पदार्थ को निर्गुण नहीं मानते ।

रामानन्द और राम

रामानन्द ने राम के सगुण और निर्गुण दोनों रूप माने हैं। निकृष्ट और सत्वादि प्राकृत गुणों से रहित होने के कारण ब्रह्म निर्गुण है --

' निर्गता निकृष्टा सत्वादय प्राकृतागुणा यस्मात्तन्निर्गुणमिति
व्युत्पत्तेर्निकृष्टगुणराहित्य मेव निर्गुणत्वम् ।।' आनन्द भाष्य१।१।२।।

दिव्य-गुणों से युक्त होने के कारण ब्रह्म सगुण है---

१-' श्रीराम तापनीयोपनिषद् १-२-३-४-५-७-१४-१८-३१-३२-३३-२५-२६-२७-६।।

२-'अध्यात्मरामायण' बा०कां० १।१६ से २५ श्लोक तक, १।४३-,३।४०।।

` त्रिकगुणयन्येन न गुणात्मितत्त्वैव ब्रह्मणो-

निर्दिश इति न किन्दिदानन्दम् ।। आनन्दभाष्य ३।२।।

रामानन्द ने राम के सगुण और निर्गुण दोनों रूपों की मान्यता स्वीकार की है। रामानन्द ने ब्रह्म सूत्र ३।२।२२ के भाष्य में राम को कृपा, वात्सल्य, सौजन्य, सौशील्य और करुणायुक्त माना है। रामानन्द के राम, ब्रह्म, नित्य, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, कर्ता-धर्ता, हर्ता, अविनाशी, अनादि, अनन्त, अजर-अमर, अगोचर, उदार, सर्व-शक्तिमान्, शील-सौन्दर्ययुक्त, भक्त-वत्सल, सदाचार-परायण, कृपालु, दयालु, [illegible], शरणदाता, विष्णु, साक्षी, कूटस्थ, विधायक, रक्षक, स्वामी, अजेय, स्वतंत्र, निष्पाप, गुण-वारिधि दशरथ-पुत्र राम, जानकी-पति, प्रेम और वात्सल्य के भण्डार हैं।[1]

रामानन्द की एक रचना `रामाष्टक' मिलती है जिसमें रामानन्द ने राम के सगुण और अवतार-रूप का वर्णन किया है[2] -- किन्तु यह रचना रामानन्द की प्रतीत नहीं होती।

संस्कृत-राम-साहित्य ~~और पूर्व प्रमाण~~ से १३वीं शताब्दी तक में राम-भक्ति

अवतारवाद के कारण राम सगुण और निर्गुण दो रूपों में अभिव्यक्त हुए। राम का सगुण निर्गुण रूप निर्धारित होने पर राम भक्ति का सूत्रपात हुआ है। राम-भक्ति का प्रारम्भिक रूप ~~वाल्मीकि~~-वाल्मीकि-रामायण की प्राप्य-सामग्री में मिलता है। अयोध्याकाण्ड सर्ग ३१।१५-१८ पृ०११७ में राम ने स्वयं अपनी भक्ति का स्वरूप बताते हुए लक्ष्मण से कहा है कि गुरु-पूजा करने से, विधिवत् मेरी भक्ति भी होगी और अतुलनीय धर्म भी होगा--

` एव मयि चो भक्तिर्भविष्यति सुदर्शिता ।' ।।१८।।

उत्तरकाण्ड सर्ग ४०।१८ पृ० १३४ में हनुमान ने राम से प्रेम-प्रसून भक्ति के लिए प्रार्थना की है ---

` स्नेहो मे परमो राजस्त्वयि तिष्ठतु नित्यदा ।

भक्तिश्च-नियता वीर-भावो-नान्यत्र-गच्छतु ।।१६।।

१- `आनन्द भाष्य' सं०रघुवरदास वेदान्ती पृ०४ ।।

` श्री रामचरितपद्धति ' सं०रामनारायणदास पृ०८-२४।।

` वही सं०रामटहलदास पृ० ३४

` श्री वैष्णव मताब्ज भास्कर - रामटहलदास पृ०१-२-३-४-५-१२-१६-१७-२३

` वही `भगवदाचार्य पृ० १७३-१६६-२०१-२०६।।

२- `राम अष्टक' ह०लि०नं० पृ० २

'मघवन्मर्त्यं वा इदं शरीरमात्तं मृत्युना तदस्यामृतस्या-
शरीरस्यात्मनोऽधिष्ठानमात्तो वै सशरीरः प्रियाप्रियाभ्यां
न ह वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्त्यशरीरं
वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः । छान्दो० ८।१२।१।

वेद में जो 'देवाना प्रियो' शब्द का प्रयोग हुआ है उसी संबंध में बृहदारण्यकउपनिषद्
में कहा है कि देवताओं के प्रयोजन के लिये देवता प्रिय नहीं होते, अपने ही प्रयोजन के
लिए देवता प्रिय होते हैं--

'न वा अरे देवानां कामाय देवाः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय देवाः
प्रिया भवन्ति । बृहदा० २।४।५ ।।

ईश्वर में प्रिय अप्रिय आदि भाव नहीं है । ईश्वर का ब्रह्म के प्रति जो प्रेम कहा जाता
है वह ब्रह्म के लिये नहीं है । वस्तुतः जीव अपने से ही प्रेम करता है--

'मान भूवम् हि, भूयासम्, इति प्रेम आत्मनि ईक्ष्यते[1] ।। १६

प्रेम का परिपुष्ट रूप स्त्री और पुरुष में प्रस्फुटित होता है । किन्तु श्रुतियों के
मतानुसार आत्मा न स्त्री है और न पुरुष[2] । आत्मा का स्त्री और पुरुष न
होने से दार्शनिक दृष्टि से ब्रह्म में प्रेम सिद्ध नहीं होता ।

इस प्रकार वेद, ब्राह्मण-ग्रन्थों[3] और उपनिषदों में ईश्वरीय प्रेम प्रसंगों का नितान्त
अभाव है । शतपथ ब्राह्मण १।४।२।१८-१९-२० में यह कहा है कि हम देव, ब्राह्मणों
तथा प्रजा के लिए प्रिय वाणी का व्यवहार करें । परवर्ती वैदिक साहित्य प्रेमपरक
कविताओं से शून्य है ।

१- 'पंचदशी' पृ० ४७२ । रामावतार विद्याभास्कर ।

२- श्वेता० ५।१० ।।

३-'ब्राह्मणसाहित्य की अध्यात्म विधा मे प्रेम परक कविता की उपलब्धि नितान्त
अकाल्पनिक है ।' रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना' डा० बच्चनसिंह पृ० ७६

लौकिक प्रेम

प्रारंभिक क्लासिकल संस्कृत-साहित्य में, जीवन और ईश्वर के प्रेम प्रसंगों का सीधा अभाव है। इस काल के साहित्य में शृंगारिक कविताओं का भी अभाव है[1]। बुद्ध के समय तक प्रेम-प्रधान भक्ति तथा ~~[illegible]~~ शृंगार प्रधान कविताओं का स्पष्ट स्वरूप प्राप्त नहीं होता। इस काल तक प्रेम को लौकिक तत्त्व ही समझा जाता था। देश में विलासिता बढ़ने के बाद, काव्य में शृंगारी भाव का विकास हुआ। २ शताब्दी से ७ वीं शताब्दी ईस्वी तक का समय संस्कृत साहित्य में शृंगारी कविता का समय है। इस काल में हाल-सातवाहन, कालिदास, घटखर्पर, मयूर, चौर, भर्तृहरि और अमरुक, शृंगार-परक ~~[illegible]~~ काव्यों के महान् कवि हुए हैं। उद्भट, वामन, अभिनवगुप्त, रुद्र, भोज, क्षेमेन्द्र, [illegible], विद्याधर, मम्मट, जयदेव आदि ने शृंगारी प्रेम के गीत गाये हैं। भोज ने तो शृंगार को ही प्रधान रस माना है।

हिन्दी साहित्य में प्रेम ——

सिद्ध साहित्य में भी लौकिक प्रेम का ही चित्रण है। परिशुद्ध अवधूतिका नैरात्मा को योगिनी का नाम देकर सिद्ध गुण्डरीपा ने कहा है कि हे योगिनी! तेरे बिना मैं एक क्षण के लिए भी जीवित नहीं रह सकता, तेरे चुम्बन द्वारा मैं कमल रस का आस्वादन करता हूं---

'जोइनि तइँ बिनु खनहिं न जीवमि।
तो मुंह चुम्बी कमल रस पिवमि[2]॥

सिद्ध-शबरपा और कण्हपा आदि ने प्रेम के गीत गाये हैं।

ईश्वरीय प्रेम

सहजिया भिक्षु-भिक्षुणी[3] संन्यास धर्म में दीक्षित होने के उपरान्त, पुनः गृहस्थ धर्म में लौटने में असमर्थ थे। अतः बाद में इन्होंने लौकिक प्रेम को ईश्वरी प्रेम का रूप देने का प्रयत्न किया है। लौकिक प्रेम-धारा, भक्ति-धारा से मिलकर, अलौकिक प्रेम में बदल गई है।

अलौकिक प्रेम का आरम्भ

ईश्वरीय प्रेम का प्रारम्भिक साहित्यिक स्वरूप जैन रचनाओं, ~~अपभ्रंश और~~ पौराणिक साहित्य तथा आलवार भक्तों की वाणियों में मिलता है।

१- 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' डा० कीथ पृ० २२४

२- चर्यापद' डा० बागची का संस्करण' कलकत्ता' पृ०११०

३-'मध्यकालीन प्रेम-साधना' परशुराम चतुर्वेदी'

पाहुड दोहा १०० में अपने को स्त्री और आत्मा को प्रिय मानकर एकाकार होने का उल्लेख हुआ है।[1] 'परमप्पयासु' के अनुसार यदि कोई क्षण भर भी उस परमात्म-तत्व से अनुराग करे तो उसके समग्र पाप उसी प्रकार नष्ट हो जायेंगे जिस प्रकार अग्नि की एक चिनगारी से लकड़ियों का विशाल ढेर भस्म हो जाता है--

> जइ णिविसद्धु वि कु वि करइ परमप्पइ अणुराउ ।
> अग्गि-कणी जिम कट्ठ-गिरी डहइ असेसु वि पाउ ।।२।१४।।

विष्णुपुराण में कृष्ण के लौकिक प्रेम की झाँकी मिलती है किन्तु प्रेम साधना के क्षेत्र में प्रेमोपासना का स्पष्ट स्वरूप सर्वप्रथम श्रीमद्भागवत महापुराण में दृष्टिगत होता है।[2] संस्कृत में प्रेमकाव्यों की रचना यद्यपि भागवत से पूर्व हो चुकी थी। तथापि उनके रचयिता अवतारी पुरुष नहीं थे। अतः ये काव्य ग्रन्थ भक्तितत्व का प्रतिपादन नहीं करते।[3] भागवत लौकिक प्रेम के अनुरूप होने के कारण भक्ति तत्व का प्रतिपादन करती है।

आळ्वार भक्तों के प्रेम गीतों और भागवत के प्रेम गीतों में साम्य है। डा० फर्कुहर के अनुसार भागवत की रचना आळ्वार भक्तों के बीच दक्षिण भारत में ही हुई है।[4] प्रो० हूपर के मतानुसार श्रीमद्भागवत पुराण की भक्ति पद्धति और आळ्वार भक्तों की भक्ति-पद्धति में कोई अन्तर नहीं है। श्रीकृष्ण की मूर्ति की ओर टकटकी बाँध कर अपने भावों को व्यक्त करना, भगवान् का गुणानुवाद, ध्यान, भक्तों का सत्संग, प्रेम-भाव के साथ उनका आदर सत्कार, और श्रीकृष्ण-लीला का वर्णन करना आदि बातें भागवत और आळ्वारों में समान हैं।[5] आळ्वार भक्तों के गीतों में ईश्वरीय प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। नम्म आळ्वार ने माधुर्य भाव को प्रधानता दी है। इस भाव की पुष्टि के लिए वे स्त्री का रूप भी धारण किया करते थे। विरहिणी हंस को दूत बनाकर, अपने प्रियतम को संदेश भेजना चाहती है किन्तु हंस हंसिनी के साथ उड़ जाता है। विरहिणी विष्णु लोक तक अपना संदेश नहीं पहुंचा पाती।[6] नम्म आळ्वार ने विरहिणी की

१- 'अपभ्रंश साहित्य', प्रो० हरिवंश कोछड़, पृ० २६६ ।।
२- 'मध्यकालीन प्रेम साधना' परशुराम चतुर्वेदी, पृ० १८७
३- वही पृ० १८७
४- 'रिलीजस लिट्रेचर आफ इण्डिया' पृ० २३१
५- जे०एस०एन० हूपर 'हिम्स आफ दि आळ्वार' पृ० १८
६- 'हिम्स आफ दि आळ्वार्स' पृ० ६६

विभिन्न दशाओं का भी वर्णन है। आण्डाल १६ वर्ष तक कुंवारी रही और बाद में अपने प्रियतम विष्णु के साथ सशरीर सायुज्य को प्राप्त हो गई।[1]

आल्वार नम्मि शठकोप यह मानते थे कि पुरुष का रूप केवल भगवान् के ही उपयुक्त है और ईश्वर के लिए सम्पूर्ण विश्व स्त्रीवत् है। शठादि प्रेम में मतवाले होकर स्वयं भी स्त्री का रूप धारण कर लिया करते थे।[2]

आल्वार भक्तों और पौराणिक साहित्य की प्रेमा भक्ति राम भक्ति संस्कृत साहित्य में भी मिलती है किन्तु १२ वीं शताब्दी के पश्चात् के साहित्य को छोड़कर शेष संस्कृत साहित्य में आध्यात्मिक ढंग की प्रेमोपासना का लगभग अभाव है।

वाल्मीकि रामायण

वर्तमान वाल्मीकि रामायण में राम और सीता का लौकिक प्रेम अभिव्यक्त हुआ है। इस लौकिक प्रेम में, प्रेम का अश्लील रूप भी मिलता है। सीता-हरण के उपरान्त राम का चरित्र काम-भाव से ओत-प्रोत है। राम अपने को अनाथ, तिरस्कृत, और कामी कहते हैं।[3] युद्ध-काण्ड ५।४५ में राम ने संतप्त होकर कहा है कि मैं सीता के वियोग में आकुल हूँ। मेरी विकलता का कारण यह नहीं है कि प्रिया मुझसे दूर है, प्रत्युत मेरे शोक का कारण यह है कि सुन्दरी सीता की आयु ढल रही है।

१- तमिल और उसका साहित्य ' श्री पूर्णसोम सुन्दरम्, पृ० ६२

२- मध्यकालीन प्रेमा-साधना ' परशुराम चतुर्वेदी पृ०

३- कि० कां० ३०।६७ ।।

~~WWM~~ हनुमन्नाटक

इस नाटक के नाटककार ने संयोग शृंगार का विस्तीर्णता के साथ वर्णन किया है नाटककार ने शृंगार रस की पूर्ण रसनिष्पत्ति दिखाई है। स्नान स्थान, गन्ध, कामदेव के पांच बाणों के अतिरिक्त सख्य गण, वयावस्था, स्तन, स्फीत नामक चुम्बन, स्थान, ~~जिसको-पंचबाण~~, आलिंगन, अधररस-पान, कृपा सह रोमांचों और मदनसदन का चुंबन जिसको पंचबाण चुम्बन कहते हैं आंधाती, रसनापान, नेत्र, दृष्टि, गुरु, वेणा, दंत-- आदि का वर्णन करके, कवि ने रति-क्रीड़ा कर चुकने के बाद का भी वर्णन किया है - अंक २ ।

जानकी आनन्द के साथ उत्कंठित होकर प्राणनाथ को रिझाती हुई कहती हैं--" हे नाथ, आपके दोनों चरणों का ध्यान करते मैं आपकी दासी, उदात्तता युक्त मधुर वचन कहती हूँ कि हे प्रिय। ब्रह्मा ने मेरे मुख को गौरवयुक्त किया ही है, किन्तु अब आप भी मेरे मुख और अमृत की किरणों वाले चंद्रमण्डल का स्वाद लेकर निश्चय कीजिए अर्थात् यह बात बताइए कि मुख अथवा चंद्रमा किस में स्वाद अधिक है -- अंक २।२७।

सीता ने राम की अधर-माधुरी का पान किया और पान के बीड़े के चार ग्रासों को धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष रूप माना। राम ने भी जानकी के मधुर अधर को इच्छानुसार पीकर ब्रह्मप्राप्ति के समान सुख माना - अंक २।१४ ।

हनुमन्नाटक में राम के विरह का भी वर्णन हुआ है। राम वियोगाग्नि से दग्ध ह इधर उधर भटकते रहे हैं---

" हा जानकि प्रचलितोत्पलपद्मनेत्रे
हा मे मन कमल कानन राजहंसि ।
एष प्रिये तव वियोगज वह्नि दग्धो
दीनं प्रयामि भ्रमतो क्व विलोकयामि ।।अंक५।६।।

कवि ने वाल्मीकि की परम्परा को अपनाते हुए अपने प्रेम-वर्णन मे परकीया भाव नहीं आने दिया है। इस नाटक के राम और सीता, पत्नी और पति-व्रता हैं-- अंक ५।४७।।

लौकिक प्रेम को अलौकिकता की ओर उन्मुख करते हुए उन्होंने यह भी कहा है कि परिपूर्णकाम राम ने सीता के साथ इस प्रकार सम्भोग किया कि जैसे कोई स्वामी बन कर स्त्री को न अब भोगता है न कभी पहिले भोगा और न आगे भोगेगा ---

`सीतां मनोहरतां गिरमुद्गिरन्तीं-
मालिंग्य तन भुजे परिपूर्णकाम ।
रा स्याथा त्रिभुवनेष्वपि यथा न कोऽपि
रामा गुणेन भुजे न च मोदातीश ।। २।२८ ।। ववरी।।

स्वयंभू रामायण

स्वयमू कवि ने राम और सीता की प्रेम काम अवस्था का वर्णन किया है--
`देक्खु जो हि प्रति-प्रतिमा कुमारा । पवहि सरहि वेधु मन मारा ।।
सुणेउ मदन हणिया ललाटउ । वंधेउं का मोडेउं कुडालनु ।।
नंधेउं देश मनोज्ञिय चाना । उसरागेउ दश व भावस्था ।
चिंत प्राप्त स्थानांतरे लागै । दूजे प्रियगुण दर्शन लागै ।।
तिसरे श्वसै दीर्घ श्वासै । चौथे अनुर्घ वार विनासै ।।
पंचम दाहे अंग न बोलइ । छठे मुहहि न रुचहि तेरह ।।
सतयें भान न ग्रास लखै । अठये मुख्क-न गमनो नादे विज्जै ।।
नवये प्राणसदेहुहु हुके । दसवें मरब न कमपि चूके[1] ।।

दास्य भाव

प्रेम और दास्य भाव का अनन्य संबंध है । प्रेम से दास्य -भाव उत्पन्न होता है, अथवा दास्य भाव से प्रेम उत्पन्न होता है । राम-भक्ति में दास्य भाव का भी उल्लेख हुआ है ।

~~राम-भक्ति में दास्य भाव~~

वैदिक साहित्य ~~और दास्य भाव~~ - वैदिक साहित्य में ऐसा कोई कथन नहीं है जो यह सिद्ध करे कि दास वृत्ति या सेवा परिचर्या के द्वारा मनुष्य ब्रह्मदर्शन कर सकता है । जिन कर्मों और वृत्तियों के द्वारा मानव जीवन में दासता आती है, वेद में उनकी भर्त्सना की गयी है । अथर्ववेद .सू० ११ कां० ५ में यह कहा है कि दास बुद्धि की पूजा करने वाला अज्ञानी पदरज के समान है ।

मानव जीवन में तप, कर्म, श्रम, शक्ति और ज्ञान का मूल्य कम होते ही दास्य भाव का प्रारम्भ हुआ है ।

१-`हिन्दी काव्य धारा` राहुल सांकृत्यायन पृ० ६१-६३ ।।

राम-भक्ति-साहित्य में दास्य और रामानन्द

वाल्मीकि रामायण - मूल-वाल्मीकि रामायण में कदाचित् दास्य-भाव का अभाव था । वर्तमान वाल्मीकि रामायण में दास्य-भाव का रूप मिलता है ।

कैकेयी से भरत ने कहा है कि मैं राम को लौटा लाऊँगा और उनका दास बनकर जीवन व्यतीत करूँगा--

` निवर्तयित्वा रामं च तस्याहं दीप्ततेजसः ।

दासभूतो भविष्यामि सुस्थितेनान्तरात्मना ।। अयो० ७३।२७।।

चित्रकूट के प्रसंग में भी भरत ने अपने को राम का दास कहा है --

` एभिश्च सचिवैः सार्धं शिरसा याचितो मया ।

भ्रातुः शिष्यस्य दासस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ।। अयो० १०२।१२।।

बाल-काण्ड में राम ने स्वयं कहा है कि वे [illegible] आपके दास हैं-- बा०का० ३१।४ । हनुमान ने भी अपने को राम का दास बताया है---

` दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः । सु०का० ४२।३४।।

हनुमन्नाटक - हनुमन्नाटक में अंगद ने रावण को राम के दास्य-भाव को ग्रहण करने का सुझाव दिया है--

` सीतामर्पयरे राजाङ्कुतं दासत्वमंगीकुरु । हनु० ८।५०।।

श्रीरामपूर्वतापनीयोपनिषद्- श्रीराम पूर्व तापनीयोपनिषद् में यह कहा है कि राम मंत्र, राम-सेवकों को मोक्ष देने वाला है --

` इदं सर्वात्मकं यंत्रं प्रागुक्तमृषिसेवितं ।

सेवकानां मोक्षकरमायुरारोग्य वर्धनं ।। ६४।८२।पृ०५५। वें०प्रे० बंबई।।

मुक्तिकोपनिषद् - राम के प्रति सेवा-शुश्रूषा का भाव-मुक्तिकोपनिषद् में भी मिलता है ---

` भक्त्याशुश्रूषया रामं स्तुवन्नपप्रच्छ मारुति ।।अ० १।४।।

भगवान् राम ने स्वयं अपनी सेवा पर बल दिया है---

` सेवा पराय शिष्याय हितपुत्राय मारुते ।

मद्भक्ताय सुशीलाय कुलीनाय सुमेधसे ।।४६। अ० १ ।।

अध्यात्म रामायण- भक्त भगवान् की सेवा के सामने सालोक्य, सामीप्य, सार्ष्टि और सायुज्य यह चार प्रकार की मुक्ति भी ग्रहण नहीं करते[१]। अंगद ने अपने को रघुनाथ का

१- अ० रा० सर्ग ७।६६ । पृ० ३८४

दास कहा है । हनुमान ने भी अपने को राम का दास कहा है --

'दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्य परमात्मन । २३।सर्ग ३। सुं०का०

फलत संस्कृत राम साहित्य में दास्य भाव पर ऐसा आग्रह नहीं किया गया है जैसा कि पौराणिक और आलवार भक्तों के साहित्य मे किया गया है ।

पुराण पौराणिक साहित्य मे और विशेष रूप से श्रीमद्भागवत् मे दास्य-भाव को आध्यात्मिक रूप दिया गया है । विष्णु पुराण में यह कहा है कि शूद्र को अपने नाम के अन्त मे दास शब्द का प्रयोग करना चाहिए[1] । भागवत् ५।६।१८ में तो कृष्ण तक को किंकर कहा है । भागवत के मतानुसार भक्त मुक्ति की अपेक्षा भगवान् की सेवा पसन्द करते हैं भा० ३।२९।१३ । केवल सेवा की ही आकांक्षा करता है । ब्रह्मा जी की भी यह इच्छा है कि मुझे इस जन्म मे अथवा अन्य जन्म में अथवा किसी भी योनि में ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो कि मैं आपका दास होकर आपके चरणारविन्द की सेवा करूँ[2] । श्रीमद्आलवन्दारस्तोत्रम् में दास्य भाव का अच्छा चित्रण हुआ है ।[3]

भक्त भगवान् से कहता है कि मैं आपका अनुचर होकर कब आपको हर्षित करूँगा[4]। उस समय जिनके पंखों में ऋग्-यजु-साम इन तीनों वेदों की ध्वनि होती है ऐसे वेदत्रयीमय गरुड़जी आपकी, दास, सखा, वाहन, सिंहासन, ध्वजा, चाँदनी आदि रूप धारण करके समय समय पर सेवा करते हैं[5] । छत्र, चँवर, व्यजनादि भगवान् की परिचर्या के साधन हैं ।[6] भक्त कहता है कि मैं सदा आपका अनुचर होकर आपको कब प्रहर्षित करूंगा[7] । श्री यामुनाचार्य उस भृत्यभाव की कामना करते हैं, जो ध्यान करने में ब्रह्मा और रुद्रादिकों के लिए भी दुर्लभ है[8] । अन्य किसी स्थान पर ब्रह्मा होने की अपेक्षा भगवान् के दासों के यहाँ कीट पतंग का जन्म भी श्रेष्ठ है । जो भगवान् की सेवा में काम न

१- वि० पु० ३०।८ ।। २- भाग० १०।५१।५६, १०।१४।३० ।। ३-श्रीमदआलवान्दार स्तोत्रम ३५ पृ०६१-६८
४- वही ३५ पृ० ६८-६९ ५- वही -- ४४। पृ०६८ ।।
६- वही ४६। पृ० ७० ।। ७- वही ४८। पृ० ७२ ।।
८- वही ५० । पृ०७३ ।।

जाये ऐसे किसी पदार्थ की भी भक्त इच्छा नहीं रखता । भक्त का यह कथन है कि हे प्रभु । मै समस्त दोष सहित हूँ । मै संसार सागर से पार होकर कैसे आपकी सेवा को प्राप्त होऊँगा[1] ।

~~दास्य भक्ति और~~ रामानन्द

दास्य भक्ति की दृष्टि से रामानन्द ने पूर्व परम्परा मे कुछ परिवर्तन किया है । पूर्व परम्परा के अनुसार नामकरण संस्कार मे नाम के आगे दास शब्द लगाने का अधिकार शूद्र को ही था । रामानन्द ने इस शूद्र अधिकार को सभी वैष्णव मात्र के लिए निश्चित कर दिया ।

रामानन्द संप्रदाय के साम्प्रदायिक रूपाणी में पंच-संस्कार को प्रथम स्थान प्राप्त है[2] । इनमें एक संस्कार नामकरण संस्कार है । इस संस्कार के अनुसार शिष्य को वैष्णवों कोई दासांत नाम दिया जाता है[3] । रामानन्द के इस संस्कार का समाज पर इतना प्रभाव पड़ा कि न केवल राम और कृष्ण भक्त कवियों ने ही अपने नाम के आगे दास शब्द लगाया प्रत्युत समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति भी रामदास, कृष्णदास, गंगादास, सतदास, भगवदास, सेवादास, आदि नाम रखने लगे । नाम के आगे दास शब्द जोड़ने की परम्परा रामानन्द के पूर्व कदाचित् नहीं थी, क्योंकि रामानन्द स्वयं और अनेक पूर्वाचार्य नाम के आगे दास लगाने वाले संस्कार से वंचित हैं । क्षत्रिय वंशावली को भी देखने से पता चलता है कि प्राचीन काल मे कोई भी व्यक्ति अपने नाम के आगे दास नहीं लगाता था । ~~विदुर दासी पुत्र होने पर भी अपने नाम के आगे दास नहीं लगाता था~~। विदुर दासी पुत्र होने पर भी अपने नाम के आगे दास शब्द नहीं जोडते । इससे यह पता चलता है कि नाम के आगे ~~शर्मा, वर्मा, गुप्त~~, दास --शब्द जोड़ने की परम्परा प्राचीन नहीं है ।

दास्य नाम माहात्म्य मे कहा है कि यह नाम संस्कार समस्त पापो का नाश करने वाला, और पुण्य फल का देने वाला है ---

> 'नामकर्म प्रवक्ष्यामि पापनाशनमुत्तमम् ।।[4]
>
> 'तस्मात्पापानि नश्यन्ति पुण्यभागी भवेन्नर[5] ।।

१- वही ५८। पृ० ८० , ६० । पृ० ८१, ६५। पृ० ८८

२- रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ पृ० १८। ३- योजयेकाम दासान्तं भगन्नामपर्वकम्। तस्मात्पापानि नश्यन्ति पण्यभागीभिवेन्नर ।। वैष्णवधर्म रत्नाकर पृ० ८६

४- वही पृ० २७८

५- वही पृ० २७६

रामानन्द के मतानुसार भगवान् राम की सेवा ही भक्ति है।[१] रामानन्द ने दास्य भाव को परम धर्म और परमहित माना है -

दास्यमेव परं धर्मं दास्यमेव परंहितं ।

दास्येनैव भवेन्मुक्तिरन्यथा निरये व्रजेत् ।।[२]

जीव का एक मात्र मुख्यफल और प्रयोजन[३] भगवत् सेवा ही है।[४] भगवान् राम जीवों के लिए परम प्राप्य और एकमात्र उपाय है।[५] अतः ईर्ष्या द्वेष को त्याग कर, अंगों, पार्षदों और लक्ष्मण-सीता-सहित[६] राम के कैंकर्य में तत्पर रहना चाहिए। हनुमान् और लक्ष्मण राम के पार्षदों में से है।[७] राम अपने दिव्य धाम में अपने परिकरों से आवृत रहते है।[८] अतः परिचर्या से प्रसन्न होने वाले भगवान् राम के कैंकर्य को रामानन्द ने भक्त का प्रधान गुण माना है।[९] भगवान् जीवों के स्वामी है, अतः भक्त को उनकी सेवा के अतिरिक्त अन्य किसी देव की परिचर्या नहीं करनी चाहिए।[१०] रामानन्द ने अर्चावतार के कैंकर्य पर भी बल दिया है।[११] रामानन्द के अनुसार क्षत्रिय, ब्राह्मण, आदि सभी को भगवान् और भक्तों की सेवा करनी चाहिए।[१२] भगवद्भक्तों की सेवा से तीर्थयात्रा का फल मिलता है।[१३]

रामानन्द ने कायिकी, वाचिकी और मानसी सेवा का भी वर्णन किया है।

'क' कायिकी सेवा '

कायिकी सेवा को बाह्य सेवा भी कह सकते है। इसके अन्तर्गत भगवान् की पूजा के लिए सामग्री जुटाना, नित्य रूप से मन्दिर में झाड़ू बुहारू देना, अर्चा-विग्रहो की दिव्य सुगन्ध वस्त्र आभूषणादि द्वारा सप्रेम सेवा करना और साष्टांग प्रणाम करना कायिकी सेवा है।[१४]

१- श्री वैष्णव मताब्ज भास्कर, सम्पादक - रामटहलदास जी पृ० १०

२- रामानन्द ग्रन्थमाला पृ० ३५ ३ श्री वै०म०भा० रामटहलदास पृ० ४१ ।।

४ श्री वै०म०भा० पृ० ४-५ ।। ५' वही पृ० ५ ।। '६' वही पृ० २९ ।।

७' श्रीरामार्चन पद्धति रामटहलदास पृ० २४ ।। '८' श्री वै०म०भा० 'रामटहलदास पृ० ४१

९ श्री वै०म०भा० भगवदाचार्य पृ० १६७ ।। १० वही रामटहलदास पृ० ७५ ।।

११- वही भगवदाचार्य पृ० १६२ ।। १२ वही भगवदाचार्य पृ० १६१ ।।

१३- वही रामटहलदास पृ० १८

ख वाचिकी सेवा प्रभु के नाम-यश का कीर्तन और उनकी दासतावना, प्रभु की आज्ञा से मैं सब काम करता हूँ, प्रभु मेरी गति हैं, उपाय-उपेय प्रभु हैं, मैं प्रभु का किंकर हूँ, समस्त विश्व प्रभुमय है, मैं उनका सेवक हूँ, ऐसा भाव दृढ़ कर मुख से कहना वाचिकी सेवा भक्ति है।[1]

जो भगवान के दास नहीं होते वे दस सहस्र कल्प पर्यन्त नरक में वास करते हैं -

न दासा वासुदेवस्य सर्वलोकेश्वरस्य ये ।

तेषां हि नरके वास कल्पायुतशतैरपि ।।[2]

मानसी सेवा में भक्त भगवान् से कहता है कि मैं अपवित्र, आलस्य, नीच, दुरात्मा, असमर्थ, सेवा के अयोग्य पाप-पुंज और दुरात्मा हूँ। हे प्रभु, मुझ दीन-हीन के नैवेद्य की उपेक्षा न कीजिए, आपने गजराज विदुर, शबरी आदि के भोज्य पदार्थ स्वीकार किये थे[3]।

रामानन्द की एक हिन्दी रचना से भी मानसी सेवा का पता चलता है -

चरण माला राम मबदनर मेऊ तन तुलछी कर लीजै ।

आत्म-चंदन घस घस चरचू इस विधि सेवा कीजै ।

ग्यान जनेऊ ध्यान धोवती सुच का अंचला कीजै ।

काया-कुंभ प्रेम का पानी हर दरीया भर लीजै ।

दया अवार बबेक पुचौका उर इस्नान करीजै ।

इन्या पोहोप चढाऊं पूजा मनसा सेवा कीजै ।।३।।[4]

शरणागति या प्रपत्ति भाव

प्रेम, दास्य और सेवा भाव के पुष्ट होने पर प्रभु की शरण प्राप्त होती है। प्रभु की शरण मिलना ही शरणागति है। संस्कृत राम काव्य में प्रपत्ति भाव का उल्लेख हुआ है।

वाल्मीकि रामायण

वाल्मीकि रामायण के वर्तमान रूप के अनुसार भगवान् राम, सम्पूर्ण लोक को शरण देने वाले हैं। सिद्ध-गंधर्व यक्ष आदि सभी भगवान् की शरणमे जाते हैं। राम शरणागत को कभी भी नहीं ठुकराते। जो राम की शरण मे जाकर एक बार भी यह कहता है कि मैं तुम्हारा हूँ, उसे राम अभय प्रदान करते है —

१- रामानन्द ग्रन्थमाला पृ० ३ ।। २ वै० ध० र० पृ० २७६ ।।

३- श्री रामार्चन पद्धति रामनारायण दास पृ० २२

४- रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ पृ० २७ ना०प्र०स० काशी ।।

'मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथञ्चन ।
दोषो यद्यपि तस्य स्यात् सतामेतदगर्हितम् ।
सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ।
आनयैनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया ।
विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम् । य०का०१८।३,३३,३४।।

अध्यात्म रामायण - अध्यात्म रामायण में समुद्र ने राम से कहा है कि हे भक्तवत्सल राम । आप शरणागत लोक की मैं शरण हूँ । आप मुझे अभय प्रदान कीजिए ----

' शरणं ते व्रजामीश शरण्य भक्तवत्सल ।
अभयं देहि मे राम --- यु० कां० ३।७८।।

अध्यात्मरामायण को छोड़कर शेष समस्त राम साहित्य में १६वीं शताब्दी शरणागति का भक्ति की दृष्टि से कोई व्यवस्थित स्वरूप प्राप्त नहीं होता ।

पाद-भक्ति

दास्यभाव और शरणागति भाव का परिणाम ही पाद भक्ति है ।

वाल्मीकि रामायण के वर्तमान रूप से यह ज्ञात होता है कि शबरी ने रामलक्ष्मण के चरण स्पर्श किये और पाद्य आचमनीय आदि क्रियाएँ भी विधिपूर्वक की[1] । वाल्मीकि रामायण में राम के चरणों को सिर से प्रणाम करने का उल्लेख हुआ है[2] ।

हनुमान्नाटक में अंगद ने रावण को उपदेश देते हुए यह कहा है कि हे रावण । श्रीजानकी जी को लौटा दे और श्रीराम के चरणों की शरण ले---

'सीता मुञ्च भजस्व राम चरणं राज्यं चिराद्भुञ्ज्यताम् ।८।४६।।

अध्यात्मरामायण के अनुसार भगवान् परशुराम राम से पाद भक्ति की याचना करते हैं--

'अतस्त्वत्पादयुगले भक्तिर्मे जन्मजन्मनि ।
स्यात्त्वद्भक्तिमतां संगो विद्या याभ्यां विनश्यति ।। बा०का० ७।४२।।

१- वा०रा० अरण्यकां० ७४।३०-३१-३२-३३-३४
२- अयो० कां० ६८।६ ।।

पाद-भक्ति में पादुकायें

पाद भक्ति के अन्तर्गत राम की पादुकायें भी आती हैं। राम के चरणों में स्पर्श की हुई स्वर्णभूषित पादुकाओं से, भरत विश्व का योगक्षेम निर्वाह करते हुए १४ वर्ष तक राज्य करते रहे।[1] भरत ने पादुकाओं का ही अभिषेक करके राज्य पर स्थापित किया।[2] भरत जी सदैव पादुकाओं के आधीन रह कर राज्य संचालन करते थे।[3] श्रीराम को आते हुए देख कर भरत जी ने पादुकाएँ अपने सिर पर रख लीं--

'आर्यपादौ गृहीत्वा तु शिरसा धर्मकोविद । यु०कां०१२७।१७।।

पादुकाओं की भक्ति का वर्णन महाभारत वनपर्व २६१।६२-६३, २७७।३६ हनुमन्नाटक अंक १४ और अध्यात्म रामायण अयो०कां०सर्ग ६ यु०कां० सर्ग१४ में भी हुआ है।

ग्रन्थ-पूजा

भक्ति-भाव के विकास में जहाँ इष्टदेव के चरणों में अनुराग उमड़ता है वहाँ उनकी वाणी के प्रति श्रद्धा-भक्ति होना स्वाभाविक है। इष्टदेव की वाणी और उनके उपदेश के प्रति श्रद्धा भक्ति का विकास ही ग्रन्थ पूजा के रूप में परिणत होता है।

ग्रन्थ-पूजा के संबंध में अनुमान है कि इसका उद्भव बौद्ध धर्म की महायान शाखा द्वारा हुआ है। बौद्ध-सम्प्रदाय में अनेक ग्रन्थों के अध्ययन की कठिनाई से बचने के लिए ग्रन्थों के सूत्र बनाकर पाठ करने की पद्धति निकाली गयी। तिब्बत में प्रार्थना चक्र बनाकर उसमे सम्पूर्ण धर्मग्रन्थ रख देते हैं। प्रार्थना चक्र का एक चक्कर लगाने से उपासक को सभी धर्म ग्रन्थों के पढ़ने का फल मिल जाता है।[4] सद्धर्म पुंडरीक. ५।२२, १५।५-२२ और मिलिन्द प्रश्न ३-७-७ में यह कहा है कि बुद्ध के ग्रन्थों की पूजा करने से सद्गति मिल सकती है। इसके उपरान्त गीता के उत्तरवर्ती संस्करण गीता० १८।६७-६८-६९-७०-७१ मे ग्रन्थ और श्रवण भक्ति के प्रमाण मिलते हैं।

१- अयो० कां० ११२।२१-२३-२६ ।।
२- वही ११५।१६, ११५।२३
३- वही ११५।२४, यु०कां० १२५।३२ ।।
४- 'बुद्धिष्ट एसोटेरिज्म' बेनितोष भट्टाचार्य पृ० ३०-३१

' मुहूर्तानां प्रतिमा या दश च सहस्राण्यष्टौ च शतानि

भवन्त्येतावन्तो हि संवत्सरस्य मुहूर्ताः ।। श०ब्रा०१०।४।२।१८।

मनुस्मृति में 'प्रतिमानानां' शब्द का प्रयोग हुआ है इसका अर्थ तुलामान तराजू. अथवा प्रतिमान याप्रतिमा परिमाण है---

संक्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकः ।

प्रतिकुर्याच्च तत्सर्वं पंच दद्याच्छतानि च ।। मनु० ९।२८५।।

कुछ लोग प्रतिमा-शब्द का अर्थ मूर्ति लेते है। ऋषि दयानन्द ने उपर्युक्त मन्त्र से 'प्रतिमानां' शब्द का अर्थ तुलामान और प्रतिमान लिया है[1]।

मूर्ति-पूजा-पुराणों का विषय है। कदाचित् जैन और बौद्ध धर्मों के प्रभाव से मूर्ति-पूजा का प्रारम्भ हुआ है।

वाल्मीकि और मूर्ति-पूजा

मूल वाल्मीकि रामायण वैदिक जीवन पद्धति का ही प्रतिपादन करती थी। अतः मूल-वाल्मीकि रामायण में मूर्ति-पूजा का अभाव था। रामायण की प्रक्षिप्त सामग्री से मूर्ति-पूजा के संकेत मिलते हैं। वृक्ष, नदी, तीर्थ, समुद्र और लिंग मूर्ति-पूजा के अंग है। वर्तमान् रामायण में इन सबकी पूजा का वर्णन हुआ है।

पादुका, आसन[2] और पूजा आदि भी मूर्ति-पूजा के ही अंग हैं। इनकी पूजा का वर्णन भी वाल्मीकि रामायण में हुआ है।

मूर्ति और मन्दिर

राम-मूर्ति और राम-मंदिर का स्पष्ट रूप से साहित्यिक स्वरूप प्राप्त नहीं होता श्री हरिश्चन्द्र ने दो हजार वर्ष की पुरानी, वाराह, राम, लक्ष्मण और वासुदेव की मूर्तियों के सम्बन्ध में उल्लेख किया है[3]। लेखक ने राम-लक्ष्मण की मूर्तियों के संबंध में कोई प्रमाण नहीं दिया है। राम की मूर्तियों का स्पष्ट उल्लेख मत्स्य-पुराण ७ ई०श० में हुआ है[4]। वराहमिहिर ने वृहत्संहिता में राम मूर्तियों का वर्णन किया है[5]।

१- 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृ० ४१३।।

२- बा०रा०अयो०६१।३६, अयो०कां०११५।२४ ।।

३- 'वैष्णवता और भारतवर्ष' पृ०११।।

४- ' हिन्दू टैम्पुल स्टेला क्रैमरिश - द्वितीय खण्ड पृ० ३०६ ।।

५- अर्ली हिस्ट्री आफ वैष्णव सेक्ट रायचौधरी पृ० १७४ ।।

नाथ-मुनि ८२४-९२४ ई० के द्वारा आराधित कोदण्ड-पाणि-राम की मूर्ति तालाकीपर्वत पर बटेपियार मठ में अब तक विद्यमान है[1]। मध्वाचार्य ११६७ ई० ने रामायण वर्णित राम और सीता की मूर्तियों का पोर किया और अपने शिष्य नरहरितीर्थ को जगन्नाथ उड़ीसा से राम और सीता की मूर्तियाँ लाने को भेजा था[2]।- रामानुजाचार्य वि० सं० १०७३[3] ने यादवाद्रि पर स्वयं राम के सीता-विग्रह 'संपत्कुमार' की स्थापना की थी - प्रपन्नामृत पृ० ७५[4]। विजय नगर के राजा विरूपाक्ष द्वितीय ने द्वारा राम मन्दिर बनवाया था। राम-मन्दिर और मूर्तियों के संबंध में डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का मत है कि 'राम के विष्णु के अवतार होने हुए भी नवमी शताब्दी तक उनके मंदिरों या मूर्तियों के होने का कहीं पता नहीं लगता।[5]

तीर्थ-पूजा

वैदिक साहित्य

मूर्ति, मन्दिर और तीर्थ पूजा ये सब अत्यन्त प्राचीन काल-भक्ति के परिणाम हैं। भक्ति काल के अभाव में यह कहा जाता है कि तीर्थ-पूजा अवैदिक है। जो दुःखरूप समुद्र से पार करे वह तीर्थ है। अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेधपर्यन्त किसी यज्ञ की समाप्ति करके जो स्नान किया जाता है, उसको तीर्थ कहते हैं[6] --

' तीर्थेव प्रायणीयो तिरात्रस्तीर्थेन हि प्रस्नान्ति।

तीर्थ मेवोदयनीयो तिरात्रस्तीर्थेन ह्युत्स्नान्ति ।। शत०१२। अ०२। ब्रा०१ कं०१-५

छान्दोग्योपनिषद् अ० ८। खं० १५। पृ० ६४३। मे तीर्थ शब्द का प्रयोग शास्त्राज्ञा के अर्थ में हुआ है---

' सर्वेन्द्रियाणि सम्प्रतिष्ठाप्याहिंसन्सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्य -- ।'

१-'अर्ली हिस्ट्री आफ वैष्णव सेक्ट- राय चौधरी ' पृ० १७४
२- 'मध्यकालीन भारतीय संस्कृति' डा० ~~गौ०ही०~~ ओझा पृ० १५
३- 'रा०भं०र०सं०' डा० भगवतीप्रसाद सिंह ' पृ० ५७-५८
४- 'ए हिस्ट्री आफ साउथ इण्डिया' के० ए० नीलकंठ शास्त्री पृ० ४६४।।
५- ~~कहीं~~ म०का०भा० सं पृ० १३ डा० ~~गौ० ही०~~ ओझा।
६- ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृ० ४०५।।

तीर्थ शब्द की व्याख्या में पं॰ राचार्य ने कहा है--

'तीर्थनाम शास्त्रानुज्ञा -- ।' छा॰उप॰शां॰भा॰पृ॰ ६४६ ।।

महर्षि दयानन्द ने उपर्युक्त मन्त्र में प्रयुक्त तीर्थ शब्द की व्याख्या में कहा है कि वेदादि सत्य शास्त्रों का नाम तीर्थ है--

'यत्र वेदादिसत्यशास्त्राणां तीर्थसंज्ञा स्ति' ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृ॰४०८-९

'समानतीर्थे वासी । इत्यष्टाध्याय्याम् ।' अ॰ ४।पा॰४। सू॰१०७।।

इस सूत्र की व्याख्या में ऋषि-दयानन्द ने कहा है कि वेदादि-शास्त्रों को पढ़ाने वाला जो आचार्य है, उसका वेदादि शास्त्रों तथा माता-पिता और अतिथि का नाम तीर्थ है । ऋ॰वे॰भा॰भू॰ पृ॰४०६ । यही मत व्यास-स्मृति का है।[1]

उपर्युक्त तीर्थों में स्नान करने के योग्य, विद्यास्नातक, व्रतस्नातक और व्रतविद्यास्नातक होते हैं-- ऋ॰वे॰भा॰भू॰ पृ॰ ३६८ ।

'सतीर्थ्यो ब्रह्मचारीत्युदाहरणम् ।'

त्रयस्नातका भवन्ति । विद्यास्नातको व्रतस्नातको विद्याव्रतस्नातकश्चेति ।

यो विद्यां समाप्य व्रतमसमाप्य समावर्तते स व्रतस्नातक ।। पारस्करगृह्यसूत्रे

उपर्युक्त तीर्थों से प्राप्त होने वाला परमेश्वर भी तीर्थ ही है - उस तीर्थ को नमस्कार है --'नमस्तीर्थ्याय च ।'

'ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्तानिषङ्गिण ।।' यजु॰ १६।४२-६१।।

वैदिक तीर्थ शब्द को पौराणिक धर्म के अन्तर्गत गया, प्रयाग, काशी, चित्रकूट, रामेश्वरम् आदि तीर्थों में सीमित कर दिया गया । पौराणिक धर्म के प्रसार के साथ साथ सभी देवी-देवताओं, अवतारों से संबंधित तीर्थों का निर्माण हुआ है ।

राम से सम्बन्धित तीर्थ - वाल्मीकि रामायण की प्रक्षिप्त सामग्री में तीर्थ पूजा का विधान हुआ है । योग वाशिष्ठ के अनुसार राम ने तीर्थाटन के लिये इच्छा व्यक्त की थी[3] । हनुमान्नाटक में तीर्थ-पूजा तो अप्राप्य है किन्तु तीर्थ का वर्णन हुआ है । इस नाटक में राम के हाथ को तीर्थ माना है-'रघुनन्दन पाणितीर्थे' अंक१।२५ ।।

१-माता पित्रो परं तीर्थं गंगा गावो विशेषत ।
ब्राह्मणात्परम तीर्थं न भूत न भविष्यति ।। १२।। व्यास स्मृति । अ॰ ४।।

२- अयो॰ कां॰ ५२।८२-९० ।। अष्टादशस्मृति पृ॰३६७'

३- भाग १ । पृ॰ २० (यो॰ वा॰) ।

वह ब्रह्म एक है जो विविध रूपों में कल्पित किया गया है ---

`सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति ।` ऋ०१०।११४।।

` एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः । ऋ०१।१६४।४६ ।।

ब्रह्म एक है, उसमें जो नानात्व देखता है, वह मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होता है--

`मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ।। कठो०२।१।१०।।

शतपथ ब्राह्मण और बृहदारण्यकोपनिषद् में यह कहा गया है कि जो ब्रह्म को छोड़कर अन्य किसी देवता की उपासना करता है, वह देवताओं के पशु हैं--[1]

वेदों में देवों को केवल व्यक्तित्व प्राप्त नहीं हुआ है ।

[illegible]

देवों के केवल व्यक्तित्व के अभाव में यह नहीं कहा जा सकता कि आर्य बहुदेवोपासक थे। आर्य एक देवोपासक हैं -- जो ब्राह्मण, आरण्यक, स्मृति, गीता, महाभारत, उपनिषद् और निरुक्त आदि सभी मानते हैं ।

१- ब्राह्मण ग्रन्थ - ` योऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योऽसावन्योऽहमस्मीति।

न स वेद यथा पशुरेवस देवानाम् शतपथ का०१४।अ०४।।

२- आरण्यक वह आत्मा ईशान्, शम्भु,भव,रुद्र, प्रजापति, विश्वसृष्टा, हिरण्यगर्भ, सत्य, प्राण, हंस, शास्ता, अच्युत, विष्णु, नारायण प्रभृति नामों से कथित किया जाता है --- ` मैत्रायणी आरण्यक ` ७।७ ।।

३- स्मृति- `एतमेके वदन्त्याग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ।

इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्मशाश्वतम् ।` मनु० स्मृ० १२।१२३।।

४- गीता - १०।१६-४२, ११।१७-१८-१६-२१-२२-२६।।

५- महाभारत- `एकधा स द्विधा चैव बहुधा स एवहि ।

शतधा सहस्रधा चैव तथा शतसहस्रश ।। महा०अनु०१६०।४३।।

६- उपनिषद्- स ब्रह्मा स शिव सेन्द्र सोऽक्षर परम स्वराट ।

स एव विष्णु स प्राण स कालाग्नि स चंद्रमा। कैव०उप०८।पृ०१५-१६

१- ` योऽन्यां देवतामुपासतेऽन्योऽसा वन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेव स देवानाम् ।। बृहदा० १।४।१०, शत० १४।४ ।।

ऋग्वेद १।२४।२ के ही अनुसार अमर रहने वालों में सबसे पहले अग्नि देव का सुन्दर नाम लिया करें--

`अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम ।

स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च ।।`

अतः यह ब्रह्म ही वा वन्दनीय है। उसकी 'वन' नाम से उपासना करनी चाहिए। जो उसे इस प्रकार जानता है उसे सभी भूत अच्छी तरह चाहने लगते हैं --

`तद्ध तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यं स य एतदेवं वेदाभि हैनं सर्वाणि भूतानि संवाञ्छन्ति ।` केन० ४।६।।

ऋग्वेद १०।५४।४ में परमेश्वर का नाम विश्व-धारक माना गया है--`...ी धारिष्ठ... नाम ... कृणा ...न ।`

ऋग्वेद संहिता भा १०।पृ०६८३ पं० ... शर्मा में ... नाम या उत्तम नाम रखने के लिए कहा है --

` भूरि नाम वन्दमानो ... पिता वसो यदि ...ारे ।

...देवस्य ...ा ...ा सुन्...िनो ...ा ।।`

अथर्ववेद २०।६८।३ में यह कहा है कि प्रभु के नाम विविध वाणियों में विविध प्रकार के हैं -

`नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे ।`

छान्दोग्योपनिषद् :७।१।४-५ के अनुसार वेद, इतिहास पुराण, व्याकरण, श्राद्ध-कल्प, गणित, उत्पातज्ञान, तर्कशास्त्र, निरुक्त, वेदविद्या, भूतविद्या, क्षात्रविद्या, नक्षत्रविद्या, सर्पदेवजनविद्या, संगीतादि कला और शिल्पविद्या आदि सब नाम हैं। अतः नाम की उपासना करनी चाहिए। वह जो कि नाम की, यह ब्रह्म है, ऐसी उपासना करता है उसकी जहाँ तक नाम की गति होती है, वहाँ तक यथेच्छा गति हो जाती है ---।

श्रुति के मत में नाम से अधिक वाणी है---

`वाग्वाव नाम्नो भूयसी --। छा०उप०७।२।१ ।।

अतः नाम की अपेक्षा वाणी की ही उपासना करनी चाहिए--

`स यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्ते -- ।छां०उप० ७।२।७।।

बृहदारण्यकोपनिषद् के अनुसार विश्वदेव परमात्मा अनन्त है - अतः उसके नाम भी अनन्त हैं। आनन्त्य दर्शन के द्वारा जीव अनन्त लोक को ही जीत लेता है --- `नामेत्यनन्तं वै नामानन्ता विश्वेदेवा अनन्तमेव स तेन लोकं जयति--`

निरुक्त के नाम से भी ब्रह्म ही माना जाता है। यद्यपि व्याख्या यह भी है कि जो परमेश्वर के अनन्त गुण कर्म स्वभाव हैं, उनके अनन्त नाम भी हैं।[1] वैदिक साहित्य में ब्रह्म के नाम से ही कुछ उपासना का विधान है।[2] वैदिक साहित्य में नाम के प्रति विशेष भक्ति भाव व्यक्त नहीं हुए हैं। वैदिक साहित्य में नाम को ब्रह्म प्राप्ति का साधन नहीं माना है।

नामोपासना का विकास

बौद्ध ~~सम्प्रदाय~~ धर्म में नामोपासना

नाम-स्मरण से निर्वाण प्राप्त होता है यह सर्वप्रथम बौद्ध और जैन धर्म-ग्रन्थों में कहा गया है। मज्झिम निकाय २। ७८८, ५।२२, ११।२२ और मिलिन्द प्रश्न ३।७।७ में यह कहा है कि बुद्ध के नाम का स्मरण करते रहने से मनुष्य को निर्वाण प्राप्त हो सकता है। तिब्बत तथा अन्य देशों के बौद्ध-लोग ओम् मणिपद्मे हुँ का जाप करते हैं।

पौराणिक नामोपासना-

पौराणिक नामोपासना पर पूर्ववर्ती प्रभाव

गीता व स्मृति में नामोपासना

मनुस्मृति में मानस जप को सर्वोत्कृष्ट कहा है मनु०२।८५। गीता में कृष्ण ने कहा है कि जो अन्तकाल में मेरा स्मरण करता हुआ तन त्यागता है वह असंशय रूप से मुझको मिल जाता है -- गी०८।५। गीता ८।१३।१४ में यह भी कहा है कि जो भगवान् का भजन करता है उसके लिये ब्रह्म-प्राप्ति सुलभ है।

पौराणिक नामोपासना

पुराणों में यह कहा है कि ईश्वर के नाम उच्चारण से पापी और दुराचारी भी परम-गति प्राप्त कर सकता है। भागवत ६।२।१८ में यह कहा है कि अज्ञान से ही अथवा ज्ञान से भगवान् का नाम कीर्तन करने से पाप के समूह भस्म हो जाते हैं। भागवत के अनुसार तो अजामिल अपने पुत्र का नाम उच्चारण करके ही नारायण के धाम को चला गया।

१- सत्यार्थ प्रकाश पृ० १२

२- यजुर्वेद ४०।१७, प्रश्नोपनिषद् ५।२-३, ५।४-५-६-७, छां०उप०पृ० ३९-४०-४२-

'रा० रामाय नम 'मन्त्र समस्त पापों की राशि का नाश करने वाला है। श्रीराम संबंधी सम्पूर्ण मन्त्रों में यह षडाक्षर अत्यन्त श्रेष्ठ है। इस मत्र के ब्रह्मा- ऋषि, गायत्री छन्द, श्रीराम देवता, रा बीज और नम शक्ति है।[1]

पुराणों में रामोपासना

नारद पुराण में राम-नाम की जप-विधि भी बताई है। विभिन्न प्रकार की जप-विधि बताकर, उनका विभिन्न फल भी बताया है। जो मनुष्य गंगा तट पर, उपवास के साथ एक लाख जप करता है, वह त्रिमधुयुक्त-कमलों अथवा बेल के फूलों से दशांश -आहुति करके राज्य-लक्ष्मी प्राप्त कर सकता है।[2] नारद-पुराण में एकाक्षर नवाक्षर, दशाक्षर, त्रयोदशाक्षर और ३५ अक्षरों वाले मत्रों के फलों का उल्लेख हुआ है। ३५ अक्षरों वाला मन्त्र श्रीराम-पूर्वतापनीयोपनिषद् में भी मिलता है।

नृसिंह पुराण के अनुसार जीव, राम-नाम के द्वारा कर्मबन्धों से मुक्त हो सकता है। स्कन्द पुराण में राम-नाम-जप की महिमा का वर्णन हुआ है। बाल्मीकि ऋषि ने राम-नाम की जप से परम-सिद्धि प्राप्त की थी।[3] स्कन्द-पुराण.ब्राह्म-खण्ड-धर्मारण्य-माहात्म्य में व्यास जी ने कहा है कि जो लोग 'राम-राम-राम' इस मत्र का उच्चारण करते हैं उन्हें दुःख दुर्भाग्य और आधिव्याधि का भय नहीं रहता। उनकी आयु, सम्पत्ति और बल प्रतिदिन बढ़ते रहते है। राम का नाम लेने से मनुष्य भयंकर पाप से छूट जाता है। वह नरक में नहीं गिरता और प्रत्युत वह अक्षय गति को प्राप्त होता है।[4] स्कन्द-पुराण .उत्तर खण्ड उमा महेश्वर संवाद में एक श्रीराम-नाम द्वादश स्त्रोत्र दिया है, जिसकी केवल दो पक्ति उद्धृत की जाती है ---

' पंचमं लोक पूज्यं च। षष्ठं श्री जानकी पतिम्।
सप्तमं वासुदेव च। श्रीरामं चाष्टमं तथा॥

इस स्तोत्र के श्रवण और पठन से, कुष्ठ रोग, भय, दारिद्य, आदि नष्ट होकर ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।

१-'संक्षिप्त नारद विष्णु पुराणांक' कल्याण वर्ष २८ ' संख्या १ पृ० ३६७
२-'नारद विष्णु पुराणांक' कल्याण पृ० ३६८
३- 'स्कन्द पुराण' आवन्त्य खंड' अवन्ती क्षेत्र-माहात्म्य'
४- वही

साम्प्रदायिक उपनिषदों में राम नामोपासना

नारायणोपनिषद् मे यह बताया है कि जिसे गुरु से राम-नाम नहीं मिलता है नरक के अधिकारी है --

` न यस्य रामोऽस्ति मुलापविन्दे --
नरके वसेत्प ।।२।।[1]

श्रीराम पूर्व तापनीयोपनिषद् के अनुसार बीज रहित षडक्षर मन्त्रराज, मंत्री श्री राघव जी को सन्मुख कर देता है --

` यथा बीजात्मको मन्त्री मन्त्रिणोऽभिमुखो भवेत् ।। ३।२१।।

षडक्षर मंत्र के प्रभाव और फल के संबंध मे भगवान् श्री राम का कथन है कि - हे शिव काशी अविमुक्त क्षेत्र मे जो कोई भक्त द्वारा षडक्षर मंत्र से मारी पूजा-सेवा करेगा, वह ब्रह्म-हत्यादि पापो से मुक्त हो जायेगा । वह जीवित रहते हुए मन्त्रसिद्ध होगा, और मरने पर मुक्त होकर हमको प्राप्त होगा ।[2]

श्रीराम-पूर्व तापनीयोपनिषद् मे राम-नाम के विविध अर्थ, भगवान् के साकार तत्व की व्याख्या, मंत्र एव यंत्र का माहात्म्य दिया है । ऊ सच्चिदानन्द महाविष्णु श्रीहरि, रघुकुल मे श्री दशरथ के यहां अवतीर्ण होने के कारण राम कहलाते हैं ।

`रामायनम ` यह मंत्र वाचक है और भगवान् राम इसके वाच्य है, इन दोनो का सयोग सम्पूर्ण साधको को अभीष्ट फल प्रदान करता है । इन दोनों के संयोग से `रा रामाय नम ` यह षडक्षर मन्त्र बनता है ।[3]

अक्षरों का माला-मन्त्र-राज्याभिषिक भगवान् श्री राम से संबधित है । यह सगुण होने पर साधको के तीनो गुणो का नाशक है । मन्त्र निम्नप्रकार है---

` ऊ नमो भगवते रघुनन्दाय रक्षोघ्नाविशदाय मधुर प्रसन्नवदना-
यामिततेजसे बलाय-रामाय विष्णवे नम ऊ ।।[4]

१-`नारायणोपनिषद्` पृ० १०६ स्वामी विश्वेश्वरानन्द `
२-`श्रीराम तापनीयोपनिषद्` पृ० ११०
३- श्रीरामपूर्व तापनीयोपनिषद् `१२-१६
४- वही सम्पादक गोपीनाथ कविराज पृ० ६

श्री रामोत्तर-तापनीयोपनिषद् में षडक्षर मंत्र रां रामाय नमः को तारक मंत्र कहा है। इसके अतिरिक्त 'राम-पद के सहित चंद्राय नमः और भद्राय नमः, इन दो मंत्रों को भी तारक मन्त्र कहा है। भगवान् श्री राम का मन ही मन ध्यान करते हुए ब्रह्मा जी ने श्री राम के विविध गुणों को लेकर ४७ मंत्रों से उनकी स्तुति की थी। उनमें से एक मन्त्र इस प्रकार है -

'ॐ यो वै श्री राम-चन्द्र' स भगवानद्वैतपरमानन्दात्मा यत् पर ब्रह्म भूर्भुव स्वस्तस्मै वै नमो नमः ।।[१] २ ।।

रामतापनीयोपनिषद् में यह भी कहा है कि राम-नाम-भुवि में विख्यात है--[२]
' राम-नाम-भुवि ख्यात ।'

श्री मैथिली महोपनिषद् के अनुसार 'ॐ राम ' यह मन्त्र तीनों तापों से मुक्ति दिलाता है[३]। मुक्तिकोपनिषद् मे यह कहा है कि सनक, सनन्दन, वसिष्ठ, जाबालि, कश्यप, शुक आदि भगवद्भक्त महर्षिगण परब्रह्मज्ञानी निरन्तर रामचंद्र जी की स्तुति करते थे[४]। राम-नाम के माहात्म्य के संबंध मे भगवान् राम ने हनुमान् से कहा है कि राम-नाम-मोक्ष का देने वाला है। इसके भजन से दुराचारी भी परम गति प्राप्त करते हैं[५]।

संस्कृत रामकाव्य में नामोपासना

रघुवंश महाकाव्य मे यह बताया है कि नामस्मरण पवित्र करने वाला है। हनुमन्नाटक के अनुसार राम नाम कलि मल मथन और धर्म रूपी वृक्ष का बीज है--

'बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवताभूतये रामनाम ।' अंक १।१। पृ० ५।।

इस नाटक में रामनाम को मन्त्र भी कहा है 'अंक ४।१२'।।

राम-नाम के संबंध मे नारद-मुनि ने यह कहा है कि मेरा समस्त जीवन राम नाम पर निर्भर है--

राम नामैव नामैव मम जीवनम्[६] ।

१- 'श्री रामतापनीयोपनिषद् पृ०११-१२४ वे०बे०प्रे० बम्बई
२- वही गोपीनाथ कविराज पृ० ६
३- मैथिली महोपनिषद् .४ मुक्तिकोपनिषद् पृ० ५ ५ वही पृ० ११-१२
६- 'राम लव एण्ड डिवोशन्' अनन्त कृष्ण अय्यर 'पृ० ६ ।।

श्रीराम गीता पृ०६१ मे यह कहा है कि राम शब्द बीज है और प्रणव करता है । रामस्तवराज पृ०१ के अनुसार राम नाम के रूप मे मुक्ति मिलती है--

` श्री रामेतिपरं जाप्यं तारकं ब्रह्मसंज्ञकम् ।

ब्रह्महत्यादि पापघ्नमिति वेदविदो विदुः ।।६।।

श्री राम रामेति जना ये जपन्ति च सर्वदा ।

तेषां भुक्तिश्च मुक्तिश्च भविष्यति न संशयः ।।७।।

राममंत्र का प्रवर्तन और प्रचार

राम तारक मंत्र के उपदेश से साम्प्रदायिक रूप मे रामोपासना के प्रचार का श्रेय शठकोपाचार्य को दिया जाता है । इनकी साधना-भूमि वेंकटाचल है[1] । राम मंत्र राजमार्ग है । राम मन्त्र को जानकी जी ने प्रख्यात किया है । मन्त्रो के द्रष्टा ऋषि है । इस तथ्य के अनुसार राम मन्त्र की द्रष्टा श्री जानकी जी ऋषि बताई गई है[2]-- ` ॐ अस्य श्री रामषडक्षर मन्त्र राजस्य श्री जानकी ऋषि ।।`

राम-भक्ति में विरोध-भाव

राम-भक्ति के पल्लवित होने के बाद समाज मे यह भाव प्रचारित किया गया कि विरोध से हो या प्रेम से राम का स्मरण मात्र ही मुक्ति-प्रदाता है[3] ।

कंबन ने अपनी रामायण मे रावण से यह कहलवाया है कि `यदि मै लड़ाई मे मारा भी जाऊँ तो भी राम के साथ साथ मेरा नाम भी तब तक लिया जायेगा जब तक संसार में वेद गाये जाते रहेंगे । पौराणिक कथाओ के अनुसार रावण, बालि, मारीच,कबन्ध आदि विरोध भाव से राम-भक्ति करने वाले राम-भक्त माने गये है । पौराणिक विश्वास के अनुसार वाल्मीकि, ऋषि मरा-मरा का जप करने से ही परम-पद के अधिकारी हुए है ।

१-`राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय` डा० भगवतीप्रसाद सिंह पृ० ५२

२-`राम-भक्ति साहित्य मे मधुर उपासना` पृ० १२६

३- तमिल और उसका साहित्य `श्री पूर्ण-सोम-सुन्दरम् पृ० ७७

मोक्ष भाव

राम भक्ति के अन्तर्गत जितने प्रकार की भक्ति पद्धतियों का वर्णन हुआ है उन सब का एक मात्र लक्ष्य यही है कि सदैव राम का पार्श्वर्य बना रहे। जगत् के बंधनों से मुक्त होकर सदा राम के साथ रहना ही मोक्ष है।

वैदिक साहित्य और मोक्ष

वैदिक दर्शन में जीव के बन्ध और मोक्ष से संबंधित भाव व्यक्त नहीं हुए हैं। वैदिक संहिताओं में मोक्ष शब्द एक बार भी प्रयुक्त नहीं हुआ है। परम गति विशिष्ट कर्मों का परिणाम है। परिणाम सदैव सान्त अथवा समाप्त होने वाला होता है। अतः परमगति मिलने पर उसका समाप्त होना आवश्यक है। वैदिक संहिताओं में भी कहा है कि परमगति प्राप्त होने पर भी जीव का संसार में पुनर्जन्म आवश्यक है -

कस्य नून कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च ।।
अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च ।। ऋ० १।२४।१-२।

मोक्ष भाव की उत्पत्ति

ऐसा ज्ञात होता है कि निर्वाण और छुटकारे मोक्ष का भाव जैन और बौद्ध दर्शन से उद्भूत हुआ है। बौद्धों के निर्वाण के अनुकरण पर ही पौराणिक साहित्य में मोक्ष का विकास हुआ है। पौराणिक धर्म के अनुसार मोक्ष के उपरान्त आवागमन में नहीं पड़ना पड़ता।

राम-भक्ति साहित्य में मोक्ष

प्राचीन संस्कृत राम साहित्य में पौराणिक ढंग का मोक्ष का अभाव है। पौराणिक राम कथा में मोक्ष का भाव-वर्णन हुआ है। राम भक्ति साहित्य में मोक्ष का शास्त्रीय विवेचन रामानन्द ने किया है। रामानन्द ने मोक्ष धाम का दिव्य साकेत के रूप में वर्णन किया है। रामानन्द ने पौराणिक प्रकार की मुक्ति

सायुज्य सालोक्य आदि का भी उल्लेख किया है। वैकुण्ठ प्राप्त करके जीव ब्रह्म के साथ नित्य क्रीड़ा करता है। साकेत लोक दिव्य रत्नों से सुशोभित और कल्प-वृक्षों से सुशोभित है। साकेत में करोड़ों सूर्यों के प्रकाशमान सुवर्ण सिंहासन हैं, जिन पर भगवान् श्रीराम अपने दिव्य परिकरों के साथ विराजमान होते हैं। साकेत लोक को प्राप्त कर जीव का इस संसार में पुनरागमन नहीं होता।[१]

११ वीं श०ई० तक के संस्कृत राम साहित्य की रचना उस काल में हुई है, जिसमें राम भक्ति का विशेष प्रचार नहीं था। राम भक्ति के अल्प प्रभाव के कारण, पौराणिक और साम्प्रदायिक राम साहित्य को छोड़ कर शेष प्राचीन संस्कृत राम साहित्य में राम भक्ति और राम-भक्ति के अन्तर्गत अवतारवाद, ईश्वरीय प्रेम प्रेमा-भक्ति सेव्य भक्ति, प्रपत्ति भक्ति और मूर्तिपूजा, तीर्थ पूजा, आदि के प्रति उतना झुकाव दिखाई नहीं देता जितना कि पौराणिक और साम्प्रदायिक संस्कृत राम साहित्य ११वीं श०ई० के बाद काल में दिखायी देता है। संस्कृत राम साहित्य को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि साम्प्रदायिक संस्कृत राम साहित्य और राम भक्ति हिन्दी साहित्य की रचना ही राम भक्ति के विकास और पुष्टि के लिए हुई है। यदि प्राचीन संस्कृत राम-साहित्य राम के मानवीय स्वरूप को सम्मुख रखता है, तो पौराणिक और साम्प्रदायिक संस्कृत राम साहित्य और हिन्दी राम काव्य, राम के ईश्वरीय स्वरूप को सामने रखता है। हिन्दी राम काव्य, संस्कृत राम साहित्य की प्राचीन राम भक्ति को आत्मसात् करता हुआ, विकास की चरमस्थिति तक पहुँचा है।

~~श्रीरामोत्तरतापनीयोपनिषद् में 'राम' शब्द बीज ही प्रणव है तथा पुरुषोत्तम राम सम्पूर्ण परमेश्वर है। इनके चार पाद या अंश हैं लक्ष्मण, शत्रुघ्न, भरत तथा कौसल्यानन्दन श्रीराम। ये चारों मिल कर ही सम्पूर्ण राम हैं। जैसे सब कुछ ओंकार है वैसे ही राम भी है। राम और ॐ में साहित्य और परिभाषा की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं है।~~

१- श्री वैष्णव मताब्ज भास्कर भगवदाचार्य पृ० २०६-२१०।।
वही पं० रामटहल दास पृ० ४१।।
श्री रामार्चन पद्धति रामनारायण दास पृ० ४ ।।

अध्याय ४

राम भक्ति सम्प्रदायों का विकास

चतुर्थ अध्याय में श्री ` रुद्र आदि सम्प्रदायों का उल्लेख करते हुए १२ वीं शताब्दी से लेकर १७ वीं शताब्दी तक के राम भक्त कवियों के जीवन के सम्बन्ध में राम भक्ति की दृष्टि से संक्षिप्त परिचय दिया है। कालक्रम की दृष्टि से सभी प्रमुख कवियों का परिचय देते हुए सिक्ख गुरु, महाराष्ट्रीय राम भक्त कवि, और उन कृष्ण भक्त कवियों का जिनका राम भक्ति की दृष्टि से कुछ योगदान है, उल्लेख किया गया है। किन्तु मुख्य रूप से राम भक्ति धारा के सगुण और निर्गुण राम भक्तों का विवेचन किया गया है। यह विवेचन अत्यन्त संक्षेप मे किया जा रहा है।

(क) राम भक्ति मे सगुण सम्प्रदायों का विकास

राम भक्ति सम्प्रदाय संस्कृत राम भक्त कवियों की परम्परा को अपनाता हुआ १२ वीं शताब्दी के बाद तेजी से विकसित हुआ है।

डा० ईश्वरीप्रसाद, डा० अवधबिहारी पाण्डेय और श्री विश्वम्भरनाथ उपाध्याय का यह मत है कि शंकर के मायावाद और अद्वैत वाद की प्रतिक्रिया स्वरूप वैष्णव आचार्यों ने भक्ति भाव का उपदेश दिया[१]।

उपर्युक्त विद्वानों का कथन समीचीन नहीं है क्योंकि भक्ति का उद्भव शंकराचार्य के बहुत पूर्व हो चुका था[२]। पौराणिक धर्म का उद्भव ही भक्ति-धर्म का उद्भव है।

वैष्णव धर्म का जन्मस्थान दक्षिण माना गया है[३]। कदाचित् पौराणिक साहित्य की रचना भी अधिकतर दक्षिणी भारत मे हुई है[४]। भक्ति की सभी मूल-प्रवृत्तियाँ अवतारवा

१- मध्ययुग का संक्षिप्त इतिहास पृ० ३३, पूर्व-मध्यकालीन-भारत का इतिहास पृ०४३३
हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि पृ० १२२
२- प्रथम अध्याय देखिए।
३- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास डा० रामकुमार वर्मा पृ०२६५।
४- भारतीय संस्कृति का विकास `वैदिकधारा` डा० मंगलदेव शास्त्री।

सगुणवाद, ग्रन्थ, मन्दिर, मूर्ति और तीर्थ-पूजा, नाम-स्मरण, श्रावण, आत्मनिवेदन, और समर्पण, सख्य, दास्य, प्रभृति पौराणिक साहित्य में प्राप्य हैं।

आलवार भक्त और भक्ति आन्दोलन

पौराणिक धर्म के साथ साथ ही दक्षिण में आलवारों की रचनाओं में भक्ति-धर्म का प्रस्फुटन हुआ है। आलवारों की संख्या १२ बताई गई है। प्रपत्ति, शरणागति, आत्मसमर्पण, और प्रेम से विभूषित भक्ति का सम्यक् विकास और प्रचार आलवारों के साहित्य द्वारा ९८ से ई० पूर्व सम्पन्न हो चुका था। आलवारों की रचनाएँ तमिल भाषा में मिलती हैं। इनकी रचनाओं का संग्रह प्रबन्धम् कहलाता है। यह प्रबन्धम् असाम्प्रदायिक भक्ति आन्दोलन का द्योतक है[१]।

आलवारों के रचनात्मक तत्व ही रामानुज दर्शन के प्रेरणा-स्रोत हैं[२] और रामानुजाचार्य भी आलवारों की परम्परा में आते हैं[३]। श्री कृष्ण-स्वामी-आयंगर ने यह माना है कि वैष्णव-धर्म की संस्थापना रामानुज के द्वारा हुई है, और आलवार रामानुज के शिष्य थे[४]। श्रीकृष्ण स्वामी आयंगर का उपर्युक्त कथन ठीक नहीं है, क्योंकि वैष्णव-धर्म रामानुज के बहुत पूर्व उद्भूत हो चुका था, और आलवार युग के उपरान्त आचार्य युग में रामानुज का जन्म हुआ था।

रामानुजाचार्य ने वेद और तमिल प्रबन्धम् के बीच सन्तुलन रखने का भी प्रयत्न किया था, किन्तु यह सन्तुलन उनकी मृत्यु के बाद उनके शिष्य नहीं रख सके[५]।

आचार्य युग

आचार्यों में प्रथम आचार्य नाथमुनि ८२४-९२४ ई० हुए हैं[६]। नाथमुनि के बाद यामुनाचार्य, यामुनाचार्य के बाद रामानुजाचार्य का काल आता है। इन आचार्यों में

१- संस्कृति के चार अध्याय ' दिनकर '
२- वही पृ० २८३ ; गोस्वामी तुलसीदास जी की समन्वय साधना' भा०१-व्यौहार राजेन्द्र सिंह पृ०९३

शास्त्रीय आधारों के द्वारा अपने मतों की स्थापना का प्रयत्न किया । ६५० ई० के आस पास जब समाज में बुराइयों की वृद्धि हुई तब शठकोप महामुनि ने उसका विरोध किया । शठकोप के उपरान्त मुनिवाहन ने सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया । मुनिवाहन के पश्चात् यामुनाचार्य ने सामाजिक दोषों को दूर करने का प्रयत्न किया । कहा गया है कि यामुनाचार्य मुसलमान जाति के थे[1] किन्तु इनकी निष्ठा वैदिक धर्म में अधिक थी । ब्राह्मणों ने इन्हें मुसलमान होने के कारण अपने धर्म में दीक्षित नहीं किया । इसलिए अन्त में इन्हें शठकोप मुनि के सम्प्रदाय में मिलना पड़ा ।[2]

नाथमुनि के उत्तराधिकारियों में यामुनाचार्य और रामानुजाचार्य थे । रामानुज के बाद के आचार्यों में आनन्द तीर्थ या माध्व १३ वीं श०ई० एवं निम्बार्क उल्लेखनीय है ।[3]

शंकर के अद्वैतवाद की प्रतिक्रिया स्वरूप रामानुजाचार्य ने श्री, माध्वाचार्य ने ब्रह्म, विष्णु स्वामी ने रुद्र और निम्बकाचार्य ने सनकादि सम्प्रदाय की संस्थापना की ।वैष्णवों के इन चार सम्प्रदायों का विश्वास है कि नारायण के आदि शिष्य चार हैं । आदि शिष्यों की शिष्य परम्परा से ही वैष्णवों के चार मूल सम्प्रदाय निर्मित हुए है -

रामानुजं श्री स्वीचक्रे मध्वाचार्य चतुर्मुख ।
श्रीविष्णु स्वामिन रुद्रो निम्बादिक चतुसन ।। पद्मपुराण।।

श्री सम्प्रदाय विशिष्टाद्वैत

श्री सम्प्रदाय की धार्मिक शिक्षा नारायण के आदि शिष्य श्री से प्राप्त हुई । इसका दार्शनिक मत विशिष्टाद्वैत है ।विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय का प्रथम विवेचन यामुनाचार्य ने ६१६-१०४० ई० किया जो प्रबन्धम् के सम्पादक श्री नाथ मुनि रघुनाथाचार्य. के पुत्र अथवा पौत्र माने जाते है । रामानुजाचार्य का जन्म शक सं० ६३६ में हुआ था । रामानुजाचार्य ने चिदचिदविशिष्ट सविशेष अद्वैत-ब्रह्म को स्वीकार किया है । ब्रह्म- प्रकृति एवं पुरुष तीनों नित्य हैं । ब्रह्म अंगी है तथा प्रकृति और पुरुष उसके अंग हैं ।

प्रकृति अथवा अचित् ही माया है । वैसे रामानुजाचार्य के मत में माया मान्य नही है ।[4] जो जीव ब्रह्माभिमुख रहते है, वे जीव नित्य मुक्त और भगवान् के भक्त है । माया

१- एशियाटिक रिसर्चेज भा० १०, `बिलफोर्ड का लेख`
२- `धर्म इतिहास रहस्य` पं० रामचद्र जी शर्मा पृ० १२८६ ।।
३- भारत का सांस्कृतिक इतिहास `हरिदत्तवेदालंकार` पृ० १०१ ।।
४- रामानुजाचार्य विशिष्टाद्वैतिक भक्ति दर्शन `कैप्टेन डा०सरनाम-सिंह शर्मा अरुण` पृ०५।।

मुक्तजीव बद्ध हैं। सद्गुरु की कृपा से बद्ध जीवों के बन्धन छूट कर मोक्ष प्राप्त हो सकते हैं। ब्रह्म पाँच मुख्य रूपों में आविर्भूत होता है। ब्रह्म का प्रथम रूप 'पर' है, जिसमें वह वैकुण्ठ में शेषनाग पर सुशोभित होता है। शेषनाग पर विराजमान ब्रह्म लक्ष्मी-युक्त तथा हीरादि आवृत होकर शंखचक्रादि धारण करता है। इस रूप में मुक्तात्माओं को ब्रह्म के दर्शन होते हैं। ब्रह्म का दूसरा रूप व्यूह है जो वह सृष्टि की उत्पत्ति आदि के लिये धारण करता है।[1] पांचरात्र में संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध ये चतुर्व्यूह माने गये हैं।

उपर्युक्त दो रूपों के अतिरिक्त परमात्मा अपने को विभव, अन्तर्यामी एवं अर्चा मूर्तियों के रूप में भी व्यक्त करता है। रामानुज शेष अथवा लक्ष्मण के अवतार माने जाते हैं।[2]

रामानुजीय सम्प्रदाय ने भक्ति का अधिकार शूद्रों को नहीं दिया था। उनके अनुसार द्विज ही भक्ति के अधिकारी थे। शूद्रों के लिए केवल प्रपत्ति का मार्ग था। प्रपत्ति में साधक को भगवान् और गुरु के अनुग्रह पर रहना पड़ता है। ईश्वर और गुरु का अनुग्रह ही मोक्ष प्रदाता है।[3] ज्ञान, कर्म और भक्ति में भक्ति को श्रेष्ठ बताते हुए भी रामानुज ने प्रपत्ति का मार्ग सुगम बताया है। उनके अनुसार प्रपत्ति मार्ग में योग और अभ्यास की आवश्यकता नहीं है, भगवान् की शरण में जाने वाले को भगवान् तुरन्त अपना लेते हैं[4] और भक्ति मुक्ति का साधन है।[5] रामानुज की भक्ति, उपासना व ध्यान पर निर्भर थी, शृंगारपूर्ण भजनादिक पर नहीं, किन्तु शंखध्वनि, चरणामृत, एकादशीव्रत, तुलसी पत्र ग्रहण, ईश्वर भक्तों की सेवा और मंत्रोच्चारण पूजा-विधि में सम्मिलित थे।[6] इसी सम्प्रदाय के अनुसार तिलक, शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि चिह्नों के धारण करने से सद्गति मिलती है।[7]

१- ना०प्र० प० भा० ४ । सं० १९८०-रामावत-सम्प्रदाय पृ० ३२९-३३१ डा० श्यामसुन्दर दास

२- प्रपन्नामृत पृ० ४५०

३- भारतीय ईश्वर वाद ' श्री पं० रामावतार शर्मा पृ० ४६६-६७ ।।

४- 'संस्कृति के चार अध्याय ' पृ० २९५ - दिनकर ।

५- 'भागवत सम्प्रदाय ' पं० बलदेव उपाध्याय पृ० २१४

६- 'भारतीय ईश्वरवाद' पृ० ४६७

७- 'धर्म इतिहास रहस्य ' पृ० १८९

रामानुज के अनुसार वेद स्वत: प्रमाण है और उपनिषद् आदि भी वेद ही है। ईश्वर भक्तो के उद्धार और प्राणिमात्र के कल्याण के लिये अवतार होता है। अवतारो की प्रतिमाओ का पूजन भी उपासना है। रामानुज के सम्प्रदाय मे छूत-छूत का भी विचार किया जाता है।[1] किन्तु रामानुजाचार्य ने नारायण की प्रियाओं लक्ष्मी, भू और लीला का वर्णन किया है[2] किन्तु उनकी उपासना का कोई विधान नही किया है।

सनकादि सम्प्रदाय

जिस समय रामानुज का भक्ति आन्दोलन दक्षिण भारत मे चल रहा था, उस समय उसकी एक लहर निम्बार्क स्वामी के द्वारा उत्तरी भारत मे प्रवाहित हुई। निम्बार्क का सम्प्रदाय सनकादि है। इस सम्प्रदाय के मूल प्रवर्तक सनक और सनदन माने गए हैं। सनक सनंदन ने, कहा गया है कि, इस सम्प्रदाय की शिक्षा नारायण से ग्रहण की थी। इस सम्प्रदाय का प्रचार और प्रसार निम्बार्क ने किया। निम्बार्क का दार्शनिक मत द्वैताद्वैत है। निम्बार्क सम्प्रदायी मे किशोर श्रीकृष्ण की क्रमश स्वकीया तथा परकीया भाव की उपासना उचित समझी गई है।[3]

निम्बार्क स्वामी का निधन काल लगभग ११६२ ई० माना जाता है।[4]

ब्रह्म सम्प्रदाय

ब्रह्म सम्प्रदाय के आदि प्रवर्तक ब्रह्मा कहे जाते हैं। इस सम्प्रदाय का प्रचार मध्वाचार्य ने किया। इस सम्प्रदाय का दर्शन द्वैतवादी है। मध्वाचार्य का निधनकाल १२७६ ई० है।[5]

१२०० ई० के आस पास मध्वाचार्य ने रामानुज के भक्तिवाद पर विशेष बल दिया था। इस सम्प्रदाय मे विष्णु-पूजा की प्रधानता थी और हरिज्ञान से मोक्ष-प्राप्ति माना गया है।

१- धर्म इतिहास रहस्य पृ० १८६। २- भारतीय ईश्वरवाद पृ०४६७-४७०॥

३- भागवत सम्प्रदाय पं० बल्देव उपाध्याय पृ० ४३८॥

४- भारतीय ईश्वरवाद श्री पाण्डेय रामावतार शर्मा पृ० ४६८

५- वही पृ० ४६८॥

करिसान की प्राप्ति लगता, आत्म यिम, मण्णागति,गुरुसेवा,गुरुजान,स्वाध्याय, [illegible], भक्ति, निष्काम कर्म, विष्णु महिमा बोध, अनु त्याग और उपासना द्वारा संभव है।[1]

रुद्र सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक नारायण के शिष्य रुद्र माने जाते हैं। सर्वप्रथम इस सम्प्रदाय का प्रचार विष्णु स्वामी ने किया तदनन्तर वल्लभाचार्य ने। यह मत शुद्धाद्वैत है। वल्लभ-सम्प्रदाय में [illegible] बाल गोपाल को इष्ट मान कर वात्सल्य-भाव से उनमें रति करना ही भक्ति का मुख्य अंग माना गया है।[2]

आचार्य और भक्ति-आन्दोलन

रामानुज, निम्बार्क, वल्लभाचार्य और मध्वाचार्य आदि आचार्यों ने भक्ति आन्दोलन का जन प्रिय बनाया। इन्हीं आचार्यों ने वैष्णव धर्म का स्वरूप निर्धारित किया।[3] इन वैष्णव आचार्यों ने ही सर्वप्रथम भक्ति रस की व्याख्या तथा स्थापना साहित्य जगत् में की।[4] इन्हीं के द्वारा भक्ति-धर्म को दार्शनिक समर्थन प्राप्त हुआ। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के मतानुसार दक्षिण का वैष्णव मतवाद ही भक्ति आन्दोलन का मूल प्रेरक है।[5]

भक्ति दर्शन का सूत्रपात उत्तरीभारत मे वैष्णव आचार्यों के द्वारा ही हुआ है। आलवारो के प्रबन्धम् का प्रभाव इन्हीं आचार्यों के द्वारा उत्तरी-भारत मे आया।

~~आलवार संबंधी रचनाएं केवल तमिल भाषा में ही होती थीं।~~ आलवारो की रचनाएँ तमिल भाषा मे होने के कारण केवल एक विशेष क्षेत्र तक ही सीमित थीं। वैष्णवाचार्यों ने अपनी रचनाएँ तमिल और संस्कृत दोनो भाषाओं मे करके आलवारो की अपेक्षा अपने विचारो को अधिक लोकप्रिय किया।

१-`भारतीय ईश्वरवाद` श्री पांडेय रामावतार शर्मा पृ० ४६८ ।।
२- `भागवत सम्प्रदाय` पृ० २३८ :३: श्रीरामकृष्ण सैन्टुयरी मेमोरियल भा०२ पृ०८१।।
४-`भागवत सम्प्रदाय ` बलदेव उपाध्याय ` पृ० ५२६
५-`हिन्दी साहित्य की भूमिका` डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी शास्त्राचार्य पृ० २६

सत कवियो के उद्भव के पूर्व, आचार्य युग मे भक्ति-भाव का प्रसार अत्यल्प मात्रा मे ही हो पाया था । रामानुजाचार्य के सम्प्रदाय का प्रसार भी दक्षिण मे अधिक और उत्तर मे कम था[१] ।

आचार्य युग के पूर्व राम भक्ति आन्दोलन शिशु अवस्था मे था । यद्यपि संस्कृत प्राकृत, तमिल और कुछ विदेशी भाषाओं मे राम-चरित्र-संबंधित साहित्य प्राप्त होता है तथापि उसके द्वारा राम-भक्ति आन्दोलन का कोई व्यवस्थित स्वरूप उपलब्ध नहीं होता । आचार्य युग मे और उससे पूर्व राम के ब्रह्मत्व के स्तुगान आरम्भ हो गए थे । नाथ-सम्प्रदाय मे भी राम के ईश्वरत्व को अंगीकार किया गया है ।

नाथ सम्प्रदाय

गुरु गोरखनाथ का समय विक्रम की ११ वी शती है । गोरखनाथ ने ब्रह्म को राम कहा है --

> एही राजा राम आहि सर्बे अबासा ।
> ये ही पॉचौ तत बाबू सहजि प्रकासा ।
> ये ही पॉचौ तत बाबू समझि समाना ।
> बदत गोरख हम हरि पद जाना ।। 'गोरखबानी डा० पीताम्बर दत्त बड्थ्वाल पृ० १०० ।।
>
> कासौं झूझौ अवधू राइ, विषय न दीसै कोई ।
> जासौं अब झूझौ रे आत्मा राम सोई ।।१।। वही पृ० १३५ ।।

एक पद मत्स्येन्द्र नाथ जी का भी प्राप्त होता है । इस पद मे सेव्य भाव की भक्ति व्यक्त हुई है -

> जल कुवा है मांछली । खण्णा कुवा है मोर ।
> सेवग चाहे राम कू ।ज्यौ च्यन्तवत चन्द चकोर ।।१।।

गोरखनाथ विरचित रामरक्षा नाम के दो हस्त-लिखित ग्रन्थ प्राप्त है । गोरखनाथ जी की राम-रक्षा की एक प्रति, आर्य भाषा पुस्तकालय वाराणसी मे सुरक्षित

१- वैष्णविज्म एण्ड अदर माइनर रिलीजस सिस्टम ' भण्डारकर पृ० ५१-५७ ।।
२- गोरखनाथ एण्ड मेडीवल हिन्दू मिस्टीसिज्म डा० मोहनसिंह पृ० २ ।।
३- रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ प० २२ ।।

हस्तलिखित ग्रं०सं०८७३ पत्र सं०८३२ । किन्तु यह गोरखनाथ की प्रतीत नहीं होती। इन ग्रन्थों में राम-भक्ति का स्पष्ट रूप से चित्रण हुआ है- गोरखनाथ की ..... है कि ----

'राम रक्षा पाठ करै ।
गावै अनहद तूंर ।।[1]।।

श्री गोरखनाथ जी की तुलना में श्री रामानुजाचार्य की 'राम रक्षा (ग्रन्थ)' में भक्ति का अधिक उज्ज्वल और प्रौढ़ रूप मिलता है । निदर्शनार्थ निम्न पद द्रष्टव्य हैं --

'श्रीरामचन्द्राय नमः ऊँ संध्या तरणि सर्वदुःख निवारिणि ।
संध्या उच्चरे विघ्न टरै । पिंड प्राण की रक्षा श्रीनाथ निरंजन करै ।।१।।
श्रीराम रक्षा स्तोत्र मंत्र राजा राम चन्द्र उच्चरंत
लक्ष्मण कुमार सुनत श्री निरंकार नाथ पताप ......
सीता सुमंत सुख पाय सुनैते । ...... जो प्राणी पराग[2]।।

ऐसा प्रतीत होता है कि ये दोनों ग्रन्थ रामानन्द के बाद, रामानन्द सम्प्रदाय में गोरखनाथ और रामानुजाचार्य के नाम से प्रचलित किए गए हैं[3]। गोरखनाथ का मार्ग हठयोग का था । तुलसीदास ने गोरखनाथ को भक्ति विरोधी माना है[4]। भक्ति-विरोधी गोरखनाथ से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती थी कि उन्होंने भक्ति का अवलंब लिया होगा । रामानुजाचार्य के इष्टदेव राम नहीं थे[5]। अतएव इनसे भी यह आशा नहीं की जा सकती कि इन्होंने राम-रक्षा स्तोत्र की रचना की होगी ।

संत जयदेव

भक्ति-आन्दोलन में संत-परम्परा का प्रथम युग संत जयदेव से आरम्भ होता है[6]। भक्त जयदेव राजा कामार्णव सं० ११६६-१२१३ तथा राजा पुरुषोत्तम देव सं०१२२७-१२३७ के समकालीन थे । जयदेव ने राम के सम्बन्ध में कहा है कि अमृत तत्वमय राम-नाम के स्मरण से जन्म -जरा- तथा मरण आदि के भय नष्ट हो जाते हैं ---

---

१- रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ पृ० २२   २   वही   पृ० २,२४ ।।
३- ना०प्र०प०सं० १९९६ पृ० १४१-१४२-१४३
४- कवि०,उ० कां० छंद ८४ ।।   ५ `भक्ति का विकास` डा० मुंशीराम शर्मा पृ०३६५।।
६- संत काव्य `परशुराम चतुर्वेदी ` पृ० १३१ ।।

रामानन्द ने जाति-पाँति, छुआछूत, ऊँच-नीच के भाव को मिटाकर आन्तरिक शुद्धता पर जोर दिया। रामानन्द ने हिन्दी के माध्यम से अपने उपदेशों को सरल रूप दिया। कहा जाता है कि रामानन्द के शिष्य भवानन्द ने वेदान्त दर्शन को हिन्दी में व्याख्या करके हिन्दी को प्रश्रय दिया है[1]।

रामानन्द ने जातिवाद की लौह शृंखलाओं का छेदन-भेदन करके अपने सम्प्रदाय का विस्तार किया। अनन्तानन्द, भवानन्द, पीपा, कबीर, धन्ना, गालवानन्द आदि ब्राह्मण राजपूत जुलाहा, नाई, चमार इत्यादि जातियों के थे। रामानन्दी सम्प्रदाय में किसी भी वर्ण का व्यक्ति प्रवेश पा सकता था। भविष्यपुराण के अनुसार रामानन्द ने बहुत से म्लेच्छों को हिन्दू-धर्म में दीक्षित किया। भविष्यपुराण ३।४।२१-२३।।

रामानन्द सम्प्रदाय में सीता राम तथा लक्ष्मण का ध्यान किया जाता है। वैष्णव धर्म रत्नाकर पृ०१ में सीता राम लक्ष्मण के ध्यान का एक श्लोक आता है --

दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य वामे तु जनकात्मजा।
पुरतो मारुतिर्यस्य तं वन्दे रघुनन्दनम् ।।१।।

रामानन्द ने समाज के सम्मुख किसी तात्त्विक दर्शन का विवेचन न करके, समाज सुधार का रूप ही जनता के सामने रखा है। वस्तुतः रामानन्द समाज सुधारक थे[2]।

रामानन्द के शिष्य

रामानन्द के उपरान्त रामावत सम्प्रदाय को रामानन्द के शिष्यों ने विकसित किया। नाभादास के भक्तमाल के अनुसार अनन्तानन्द, सुखानन्द, योगानन्द, पीपा, सेन, कबीर, भावानन्द, धन्ना, गालवानन्द, रैदास, पद्मावती और सुरसरी -- ये रामानन्द के १२ शिष्य प्रशिष्य थे। भंडारकर के अनुसार रामानन्द के प्रसिद्ध शिष्यों में अनन्तानन्द, सुखानन्द, भवानन्द, गालवानन्द, कबीर, पीपा, धन्ना, और पद्मावती का नाम आता है[3]। जैतपाल, सावतसिंह, द्वारिकानाथ, अचलदास सुरसुरानन्द, ~~सुखानन्द, भावानन्द, पीपा, कबीर, सेन, धन्ना, रैदास, पद्मावती और सुरसरी~~ इत्यादि रामानन्द के ~~१२~~ शिष्य थे। रूपकला जी ने 'भक्तिसुधाबिन्दु स्वाद में रहस्यत्रयी के टीकाकार के मतानुसार स्वामी रामानन्द के १३ शिष्य माने हैं जिनमें सुरसरी नाम नहीं है, तथा रैदास को रामदास बताया है और योगानन्द एवं गालवानन्द दो नाम अधिक आए हैं। मौलाना रशीद ने तजकीरतुल फुकरा में रामानन्द के ५०० से भी अधिक शिष्य माने हैं। रामानन्द के तुरन्त बाद उनका कोई ऐसा योग्य शिष्य नहीं हुआ जो राम भक्ति को सर्व जनप्रिय बनाता। जो शिष्य हुए भी वे अपने नये सम्प्रदाय चलाने में लग गए।

१- इनकी १४ अध्यायों में लिखित हिन्दी में अमृतधार पुस्तक है- रिलीजस सेक्ट्स आफ हिंदूज़।

रामानन्द के उपरान्त राम भक्ति सम्प्रदाय का विकास हिन्दी भक्त कवियों के द्वारा हुआ[1]। राम भक्ति, हिन्दी साहित्य में निर्गुण और सगुण सम्प्रदायों में विभाजित होकर विकसित हुई है।

हिन्दी राम भक्ति में निर्गुण सम्प्रदायों का विकास

नामदेव - राम भक्ति हिन्दी सम्प्रदाय में सब से पहले नामदेव आते हैं। सन्त नामदेव का जन्मकाल सम्वत् १३२६ कहा जाता है[1] ये छीपी जाति के एक प्रसिद्ध सन्त थे। नामदेव के गुरु विसोबा खेचर[2] नामक एक सन्त थे, जो महाराष्ट्र के किसी ग्राम में रहा करते थे।

नामदेव के हिन्दी पदों के अनुसार भक्त को मुंह से राम नाम का स्मरण करना चाहिए और मन को ईश्वर की ओर लगाना चाहिए, किन्तु साथ ही उसे हाथों से अपना धंधा करते रहना चाहिए।[3]

नामदेव ने राम भक्ति सम्प्रदाय के आरम्भ में रामोपासना का प्रचार किया था।[4] इनकी रचनाओं में राम नाम का अधिकांश रूप में प्रयोग हुआ है।

नामदेव ने क्षुद्र देवों, देवताओं और तीर्थ पूजा की निन्दा की है और निर्गुणीवादी होते हुए भी उन्होंने सगुण राम को इष्टदेव के रूप में स्वीकार किया है --

दसरथ राम नन्द राजा मेरा रामचन्द

इनकी श्रद्धा और भक्ति ऐसी थी, जैसी एक बालक की अपनी माँ के प्रति होती है।[5]

नामदेव के नाम से कोई सम्प्रदाय तो प्रसिद्ध नहीं हुआ है किन्तु छीपी जाति की एक शाखा को नामदेव पन्थी कहा जाता है। नामदेव पंथी एकेश्वरवादी और कर्मकाण्ड आदि के विरोधी होते हैं, तथा ये अन्य छीपियों से धार्मिक विचारों के कारण अपने को अलग समझते हैं और अपने को नामदेव वंशी मानते हैं।[6]

नामदेव की ग्रन्थ रूप में तो कोई रचना प्राप्त नहीं होती। इनके कुछ पद आदि ग्रन्थ में संगृहीत हैं तथा कुछ पद मराठी संग्रहों में सन्निविष्ट हैं। नामदेव की रचनाओं के सम्बन्ध में यह कहा

(१) उ० भा० सं० परम्परा पृ० ११०

(२) श्री ज्ञानेश्वर चरित्र लक्ष्मण रामचन्द्र पांगरकर पृ० १३१ - ४ ।।

(३) गु० ग्रं० सा० पृ० १३७५ - ७६ ।।

(४) हिन्दीकाव्य में निर्गुण सम्प्रदाय डा० बड़थ्वाल पृ० ११ ।।

(५) मराठी साहित्य का इतिहास पृ० १६ ।।

(६) विलियम कुक, ट्राइब्स ऐंड कास्ट् पृ० २२५ ।।

जाता है कि इनकी मराठी रचनाएँ इनकी युवावस्था में लिखी गईं और इनके हिन्दी पद वृद्धावस्था में लिखे गए।[१]

राम भक्ति की निर्गुण धारा की दृष्टि से नामदेव का बहुत अधिक महत्व है। निर्गुण राम भक्तों ने नामदेव का भक्त के आदर्श की दृष्टि से बड़ी श्रद्धा से उल्लेख किया है।[२] विद्वानों का ऐसा अनुमान है कि नामदेव की रचनाओं का कबीर पर भी प्रभाव पड़ा है। कबीर की कुछ पंक्तियाँ तो नामदेव से मिलती हैं[३] ---

मैं बौरी मेरे राम भरतार , ता कारनि रचि करौं स्यंगार ।। क० ग्रं० पृ० २०३

मै बउरी मेरा रामु भतारु । रचि रचि ताकउ करउ सिगार ।। गु० ग्रं० पृ० ११६४ ।

नामदेव के उपरान्त और कबीर के पूर्व निर्गुण सम्प्रदाय की दृष्टि से सन्त त्रिलोचन सन्त बेणी और जालदेव का नाम भी उल्लेखनीय है। इन सन्तों में से जालदेव का कबीर पर कुछ प्रभाव माना जाता था। डा० ग्रियर्सन के मतानुसार जालदेव की कुछ महत्वपूर्ण बातों से कबीर भी प्रभावित हुए थे।[४]

सन्त त्रिलोचन , बेणी और सन्त सधना आदि का परवर्ती कवियों ने भक्ति के आदर्श में उल्लेख किया है।

सन्त कबीर - राम भक्ति निर्गुण सम्प्रदाय की दृष्टि से कबीर एक प्रकाश स्तम्भ के रूप में आते हैं, क्योंकि इस सम्प्रदाय की नींव को सुदृढ़ करने वाले महान सन्त ये ही हैं। कबीर सम्प्रदाय में कबीर शब्द को एक उपाधि मान कर उसका अर्थ सब से बड़ा किया भी गया है।[५] वस्तुत निर्गुण सन्तों में कबीर को सब से उच्च स्थान प्राप्त हुआ है।

कबीर का जन्म सम्बत १४५६ में माना जाता है। सम्भवत. कबीर का जन्म स्थान काशी रहा होगा , क्योंकि कबीर ने स्वय अपने को काशी का जुलाहा कहा है।[६] कबीर की रचनाओं से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये जाति के जुलाहे थे।

कबीर के गुरु के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद मिलता है। यह निश्चित रूप से कहना कठिन है कि इनके गुरु कौन थे। ऐतिहासिक प्रमाण के अभाव में रामानन्द[७], शेख तकी , पिताम्बर,र पीर आदि किसी को कबीर का गुरु नहीं माना जा सकता।

---

(१) सिख रिलीजन भा० ६ पृ० ३६ - ४० मेकालिफ ।

(२) कबीर ऐंड दि भक्ति मूवमेंट भा० १ पृ० ४८ - ४६ डा० मोहन सिंह ।।

(३) दे० अ० ६ ।।

(४) जर्नल आफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन ऐंड आयरलैंड, सन् १६१८,पृ०१५७-५

(५) हिन्दुई साहित्य का इतिहास पृ० १४ ।।

(६) क० ग्रं० पृ० २७० पृ० १८१ , पृ० १३१

(७) क० ग्रं० पृ० १८ - ६३ , रामानन्द - सम्प्रदाय पृ० ३६३ डा० बद्रीनारायण श्रीवास्तव

कबीर पर किसी एक मत की छाप नहीं है । जिस मत में जो अच्छा था , उसे स्वीकार करते हुए कबीर ने अपनी अनुभूति के आधार पर अपने मत का निर्धारण किया है । कबीर का कोई निश्चित गुरु न होने पर भी यह तो कहा ही जाता है कि कबीर को राम नाम का उपदेश रामानन्द से ही प्राप्त हुआ था ।[१]

कबीर किसी सम्प्रदाय विशेष के पक्ष में नहीं थे , अत उन्होंने जन समाज को जो शिक्षा दी थी वह सत्य , अहिंसा , परोपकार , सदाचार और धर्मयुक्त है । कबीर ने अपने सम्प्रदाय में सयम और सदाचार के पालन और पाखण्ड के विरोध का बराबर ध्यान रखा था ।

मुख्य रूप से कबीर का धर्म एकदेवोपासक है । अबुलफज़ल ने कबीर को एकेश्वरवादी माना है ।[२] कबीर ने समाज सुधार के प्रति जितना आग्रह किया है , उतना उन्होंने दर्शन के सिद्धान्तों का और नहीं किया है । सामाजिक कुरीतियों का खण्डन करते हुए कबीर ने ऐसे समाज की कल्पना की है जो वर्ण , वर्ग , जाति और ऊँच - नीच तथा धार्मिक मतवादों के विवाद से ऊपर है । यही कारण है कि कबीर ने खण्डनात्मक स्वरूप पर अधिक बल देते हुए[३] इनका विरोध किया है ।

कबीर ने अपने सार्वभौमिक धर्म को साम्प्रदायिक रूप देने की आवश्यकता नहीं समझी तथापि सहस्रों व्यक्ति उन्हें सम्प्रदाय विशेष के प्रवर्तक मानने में ही गौरव अनुभव करते हैं ।

कबीर का विचार नवीन पन्थ के निर्माण के प्रतिकूल होने पर भी , उनके अनुयायि मे पन्थ निर्माण का भाव आया , जिसके परिणाम स्वरूप कबीर पन्थ के नाम पर अनेक संप्रद प्रचलित हुए , और उनके मठ एवं तीर्थादि भी स्थापित हो गए । `अनुराग सागर` की रचना के समय (१८ वीं श० के अन्त तक) उत्तर प्रदेश से लेकर मध्यप्रदेश , उड़ीसा , गुजरात , काठि यावाड़ , बड़ौदा , बिहार आदि प्रदेशों तक कबीर पन्थ पूर्णरूप से प्रचलित हो गया था और उसकी भिन्न भिन्न शाखाओं के बीच पारस्परिक प्रतिस्पर्धा के भाव भी जागृत होने लगे थे ।[४]

आगे चलकर कबीर सम्प्रदाय काशी शाखा , छत्तीसगढ़ी शाखा , और धनौती शाखा में विभाजित हो गया । काशी शाखा और धनौती शाखा में अधिकतर पुरुष ही दीक्षित कि जाते हैं , किन्तु छत्तीसगढ़ी शाखा में स्त्रियों को भी स्थान दिया जाता है ।[५]

---

(१) हिन्दी साहित्य का इतिहास `रामचन्द्र शुक्ल` पृ० ७६ ।।

(२) हिन्दुई साहित्य का इतिहास पृ० १४ ।।

(३) कबीर एण्ड हिज फालोवरस पृ० ६८

(४) उ० भा० ~~की०~~ सं० प० पृ० २६४ ।।

(५) वही पृ० २७६

विभिन्न शाखाओं के शिष्यों में तिलक धारण और विभिन्न भेषों के कारण भिन्न्य दृष्टिगत होता है।[1] कबीर पन्थ की विभिन्न शाखाओं के सम्बन्ध में यह भी कहा जाता है कि कबीर चौरा शाखा वाले अधिक महत्व ज्ञान मार्ग, छत्तीसगढ़ी शाखा वाले कर्मकाण्ड और धनौती शाखा वाले भक्ति को देते हैं।[2]

इस प्रकार धीरे धीरे[3] कबीर सम्प्रदाय में कर्मकाण्ड बढ़ता गया और अन्त में उसने जटिल रूप धारण कर लिया। कबीर पन्थी कबीर के जन्मस्थान और मृत्युस्थान को तार्थ करके मानते हैं।

सम्प्रदाय की प्रतिष्टा स्थापित हो चुकने के उपरान्त कबीर पन्थी कबीर को ईश्वर[4] के रूप में पूजने लगे और वे उनकी पादुकाओं को धोकर उसके जल का पान तक करने लगे। कबीर पन्थ में कबीर के नाम से एक कबीर चालीसा मिलता है, जिसमें कबीर की उपासना करने का निरूपण किया गया है।[5] कबीर सम्प्रदाय[6] में दैनिक स्नान और प्रात_ सायं दोनो समय ईश्वर का भजन करना अनिवार्य माना जाता है।

कबीर सम्प्रदाय में सदाचार पर विशेष बल दिया जाता है। उसमें मांस और मदिरा आदि पदार्थों के सेवन का निषेध रहता है तथा उसमे दुश्चरित्र,[7] (स्त्रियों का सत्संग वर्जित माना गया है, एवं) असत्य भाषण और पर द्रव्य हरण को हेय समझा जाता है।

खोज मे अब तक कबीरदास के नाम पर छः[8] दर्जन के लगभग पुस्तकों का पता चला है। इनमें बहुत सी पुस्तकें कबीर की लिखी हुई नहीं हैं। कबीर विरचित पुस्तकों में बीजक, शब्दावली अनुराग सागर, अमरावती, ज्ञान गुदड़ी, रेखता और झूलने, साखी आदि ग्रन्थ प्रामाणिक माने जाते हैं।

धर्मदास और सुरतगोपालदास ये दो कबीर के शिष्य माने गए हैं। सुरतगोपालदास 'सुखनिधान' के संकलनकर्ता और धरमदास 'अमरमाल' के रचयिता माने जाते हैं। धरमदास ने कबीर की वाणियों का सं०१५२१ में संग्रह किया था। नानक और भागोदास भी कबीर के शिष्य माने

---

(१) वही पृ० २७६

(२) उ० भा० ~~की०~~ सं० प० पृ० २७६

(३) वही पृ० २८१-२८२-२८३ ।।

(४) दी रिलीजस क्येस्ट आफ इण्डिया 'फर्कुहर' पृ० १४३

(५) कबीर चालीसा लम्बासा फिजी द्वीप निवासी सन् १६३६

(६) कबीर एण्ड दी कबीर पन्थ पृ० ११३

(७) वही पृ० ११३

(८) कबीर पृ० १४ डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ।।

ए हैं।[1] सुरतगोपाल और भागोदास की रचनाओं के अभाव में य कहना कठिन है कि राम भक्ति की दृष्टि से इनका क्या योगदान है।

कबीर के उपरान्त शिवदयाल और तुलसी साहेब के अतिरिक्त शेष सभी निर्गुण भक्तों ने राम को ही अपना इष्टदेव माना है।[2]

रैदासी पन्थ - निर्गुण राम भक्ति सम्प्रदाय में कबीर पन्थ के उपरान्त रैदासी सम्प्रदाय का पता चलता है।

रैदास रामानन्द के शिष्य थे, और ये कबीर के समकालीन थे।[3] रैदास रामानन्द के शिष्य होते हुए भी कबीर के पथ पर ही चले। ये कबीर की भाँति निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे।

रैदास सत्य तत्व के उपासक थे, अतः इन्हें कोरे ज्ञान से कहीं अधिक सत्य की पूर्ण अनुभूति में ही आस्था थी। रैदास ने मुख्यरूप से सदाचार पर बल दिया है। इन्होंने ब्रह्म मिलन के लिए अष्ट अंगों की कल्पना की है,, जिसका मूल रूप तो आज दुर्लभ है, परन्तु गुरु परम्परा क्रम से प्राप्त उसका अष्टांग रूप इस प्रकार है (१) गुरु (२) सेवा (३) और सन्त ये उसके बाह्य अंग थे तथा (४) नाम (५) ध्यान और (६) प्रणति ये उसके भीतरी अंग थे, और (७) प्रेम एवं विलय अथवा समाधि उसकी अन्तिम अवस्था का द्योतक है, जिसके द्वारा साधक ब्रह्म में लीन होकर पूर्ण सिद्ध या सन्त बन जाता है।[4] इस प्रकार अष्टांग साधन के द्वारा रैदास ऐसी भक्ति-साधना का उपदेश करते हैं जिसका गृहस्थ भी अनुसरण करते हुए अपने लक्ष्य (राम) राम को प्राप्त कर सकते हैं।

भक्तमाल (नाभादास) के अनुसार रैदास ने सदाचार के जिन नियमों का उपदेश किया था, वे वेद शास्त्रादि के प्रतिकूल नहीं है।[5]

रैदास के नाम से एक रैदासी सम्प्रदाय का होना बताया जाता है, किन्तु किसी सुसंगठित रैदासी सम्प्रदाय का कोई प्रामाणिक विवरण प्राप्त नहीं होता, और[6] न इस सम्प्रदाय के मठों, मठाधारीशों और महन्तों का ही कोई ऐतिहासिक विवरण मिलता है।

रैदासी सम्प्रदाय के अनुयायी पंजाब राज्य के गुड़गाँव और रोहतक जिले एवं दिल्ली राज्य के कुछ भाग में पाए जाते हैं और बहुत से अनुयायी महाराष्ट्र और[7] राजपुताने में भी मिलते हैं। रैदास के अनुयायी गुजरात में रविदासी कहकर पुकारे जाते हैं।

---

(१) हिन्दुई साहित्य का इतिहास पृ० १०८ ।।

(२) निर्गुण स्कूल आफ हिन्दी पोएट्री पृ० १२४

(३) उ० भा० सं० प० पृ० २२३ - २२४

(४) उ० भा० सं० परम्परा पृ० २४५।

(५) भक्तमाल नाभादास : छप्पय ५६ ।।

(६) उ० भा० सं० प० पृ० २४६

महाराणा सांगा की धर्मपत्नी को रैदास की शिष्या समझा जाता है ।[1]

रैदासी या रविदासी सम्प्रदाय शब्द सम्भवतः चमार जाति के उन व्यक्तियों के समूह का द्योतक है जो एक प्रकार का धार्मिक जीवन व्यतीत करते हैं ।[2]

इस प्रकार रैदासी सम्प्रदाय निर्गुण राम भक्ति धारा में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है ।

रैदास के अनेक पद भिन्न भिन्न संग्रहों में पाए जाते हैं । अनुमान है कि इनकी बहुत सी रचनाएँ राजस्थान में हस्तलिखित रूप में सुरक्षित हैं जिन पर अभी तक पर्याप्त ध्यान नहीं गया है।[3] रैदास के कुछ पद गुरुग्रन्थ साहब में संगृहीत हैं । रैदास के पदों का एक संग्रह प्रयाग वेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित हुआ है । इसके बहुत से पद गुरुग्रन्थ साहब में आए हुए पदों से मिलते हैं ।

सेन सम्प्रदाय - सेन जाति के नाई थे । डा० ग्रियर्सन[4] और प्रो० विलसन[5] के अनुसार ये १४००ई० के आस पास वर्तमान थे । प्रो० रानाडे ने इनका समय सं० १५०५ (१४४८ई०) के निकट माना है।[6] सेन रामानन्द के शिष्य कहे गए हैं । अतएव इनका आविर्भाव १४३८ ई० के आस पास ही ठीक प्रतीत होता है ।[7] डा० ग्रियर्सन के अनुसार कभी सेन नाई के नाम से कोई पन्थ प्रचलित रहा होगा । परन्तु अब उसका कोई विवरण प्राप्त नहीं होता ।

सेन कवि का आदि ग्रन्थ में केवल एक पद सुरक्षित है , जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि इनकी राम भक्ति में आस्था थी ---

धूप दीप घृत साजि आरती वारने जाउ कमलापति
मंगला हरि मंगला नित मंगलु राजा राम राइ को
आतम दिउरा निरमल आती तूं हीं निरंजनु कमलापति
रामा भगति रामानन्दु जानै पूरन परमानन्दु बखानै
मदन मूरति भै तारि गुविन्दे सैनु भणै भजु परमानन्दे ।।४।।

गु० ग्रं० पृ० ६६५

---

(१) भक्तमाल टी० प्रियदास पृ० ४८३ - ४८५ ।।

(२) उ० भा० सं० पृ० २४६ ।।

(३) वही पृ० २४१

(४) दी माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान डा० ग्रियर्सन पृ० ७।

(५) रिलीजस सेक्ट्स आफ दी हिन्दूज पृ० ५६ ।।

संतकाव्य पृ० १५५ ।।

एन साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड इथिक्स भा० ३ पृ० ३८४ ।।

सिक्ख सम्प्रदाय   सिक्ख धर्म के आदि प्रवर्तक गुरु नानक देव थे। गुरु नानक का जन्म सं० १५२६ में राई भोई के तलवंडी नामक ग्राम में हुआ था। वैचारिक दृष्टि से नानक पर कबीर का काफी प्रभाव पड़ा था। कबीर के सदृश इन्होंने भक्ति, सत्संगति, और जीवन की क्षणभंगुरता आदि से सम्बन्धित अनेक पद कहे हैं। डा० फर्कुहर ने यह माना है कि नानक कबीर के शिष्य थे।[१] निर्गुण सम्प्रदाय में एकेश्वरवाद, ज्ञान, योग, और भक्ति से सम्बन्धित जिन विचारों का कबीर ने उपदेश किया, उन सब का नानक ने भी प्रतिपादन किया है। नानक ने कबीर की भाँति मूर्ति पूजा, ऊँच नीच और जातिवाद का विरोध किया है।

नानक का सिक्ख सम्प्रदाय निर्गुण विचार-धारा को विकसित करता हुआ, अंत में गुरु गोविन्द सिंह के नेतृत्व में आकर खालसा सम्प्रदाय में परिणत हो गया। इस सम्प्रदाय को, आत्मरक्षा, सुव्यवस्था और संगठन की भावना ने सिक्ख जाति का रूप दे दिया।[२]

सिक्ख सम्प्रदाय प्रारम्भिक अवस्था में दार्शनिकों का मतवाद न होकर सर्वसाधारण के लिए प्रस्तुत किया गया एक व्यावहारिक धर्म था। इस धर्म में सदाचार एवं उच्च चरित्र पर बल दिया गया है। इस धर्म के अनुसार आदर्श व्यक्ति वह है जिसमें ब्राह्मणों की आध्यात्मिकता, क्षत्रियों की आत्मरक्षा-भावना, वैश्यों की व्यवहार कुशलता एवं शूद्रों की लोक सेवा के साथ वर्तमान हो। इस प्रकार इस धर्म ने मनुष्य के सामाजिक स्वरूप पर काफी बल दिया है।

नानक ने अपने सम्प्रदाय में एक निश्चित साधना की रूप रेखा प्रस्तुत की है, और उसको आगे बढ़ाने वाली उसकी चार सीढ़ियों की ओर भी संकेत किया है। उनके अनुसार साधक की प्रथम अवस्था `धरम खंड` की है जिसमें वह अपने सभी कृत्यों को कर्तव्य के रूप में माना करता है। उसकी दूसरी अवस्था `ज्ञान खंड` कहलाती है जिसमें वह किसी बात को अपनाने की दृष्टि से ज्ञान को माध्यम मानता है। उसकी तीसरी अवस्था `करम खंड` है जिसमें वह अपने सभी कार्यों को स्वयं करने लगता है। साधक की चौथी अवस्था `सच खंड` कहलाती है। इसमें वह सत्य के वास्तविक प्रदेश में प्रवेश करता है। इस अंतिम स्थिति को प्राप्त करने वाला पुरुष पंच कहलाता है, जिसको आदर्श मान कर लोग कार्य करते हैं।[५]
सिक्ख गुरुओं ने उपर्युक्त साधना के अतिरिक्त भवसिन्धु से पार होने के लिए भक्ति, नामस्मरण, ईशप्रार्थना, योग, कर्म, ज्ञान और गुरु आदि का उल्लेख किया है।

---

(१) हिन्दी साहित्य डा० श्यामसुन्दर दास पृ० १५६ ।।
(२) माडर्न रिलीजस मूवमेंट इन इण्डिया पृ० ३३६ ।।
(३) उ०भा०की०सं०प०पृ० ३३८
(४) वही पृ० पृ० ३३६
(५) उत्तरी भारत की संत परम्परा` पृ० ३४७ ।

सिक्ख सम्प्रदाय में सर्वाधिक महत्व गुरु नानक को दिया गया है। गुरु नानक के बाद उनकी गद्दी पर बैठने वाले किसी भी गुरु ने अपने को नानक से भिन्न नहीं माना है। सभी गुरु अपने को नानक ही समझते रहे हैं, तथा उन्होंने अपनी रचनाओं में अपने को नानक ही कहा है। नानक के उपरान्त सिक्ख सम्प्रदाय को विकसित और पल्लवित करने वाले गुरु अंगद, अमरदास, रामदास, अर्जुन देव, हरगोविन्द, हरराय, हर कृष्ण राय, तेगबहादुर और गोविन्दसिंह हैं। इस सम्प्रदाय में गुरु अर्जुन-देव ने गुरु ग्रन्थ साहब का संग्रह किया था और गुरु हरगोविन्द ने सैन्य संगठन की नींव डाली थी।

आगे चलकर सिख सम्प्रदाय में, उदासी, निर्मला, नामधारी, सुथरा शाही, सेवापंथी, अकाली, भगतपंथी, गुलाबदासी और निरंकारी आदि सम्प्रदायों का निर्माण हुआ। इस प्रकार गुरु नानक का धार्मिक सम्प्रदाय धीरे धीरे साम्प्रदायिक स्वरूप प्राप्त करता गया। इस सम्प्रदाय के साम्प्रदायिक स्वरूप का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि जैसे वर्ष के भीतर छ: ऋतुएँ तथा १२ मास होते हैं, परन्तु सूर्य केवल एक ही होता है वैसे ही केवल एक गुरु सिख ही परमात्मा के दर्शन कर सकता है।१

सिख सम्प्रदाय के सभी गुरुओं की वाणियाँ आदिग्रंथ में संगृहीत हैं। इस सम्प्रदाय के धार्मिक सिद्धान्तों की दृष्टि से नानक की जपुजी और गुरु अर्जुन देव की सुखमनी भी उल्लेखनीय है।

निर्गुण राम भक्ति की दृष्टि से सिख सम्प्रदायका महत्वपूर्ण स्थान है। सिख गुरुओं ने राम नामोपासना को महत्व दिया है। दास्य, सख्य, प्रपत्ति और प्रेमा भक्ति की दृष्टि से भी इस सम्प्रदाय का पर्याप्त योग दान है।

लालपंथ : संतलाल मेव जाति के थे, जिनका जन्म सं० १५९७ में हुआ। लालपंथ में रामनाम के जप एवं कीर्तन को विशेष महत्व दिया जाता है। लालपंथी परमात्मा को `राम` कहकर ही पुकारा करते हैं।

लालदास की रचनाओं का एक संग्रह लालदास की चेतावनी के नाम से जयपुर के स्व० पुरोहित हरि नारायण जी के पुस्तकालय में हस्तलिखित रूप में सुरक्षित है। २

~~**मलूक पंथ :** मलूकदास का जन्म सं० १६३१ माना जाता है। मलूकदास ने किसी देवनाथ से पहले केवल नाम मात्र की दीक्षा ली थी, तथा इन्हें आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश कराने वाले कोई मुरार स्वामी थे।~~

---

१) वही पृ० ३५९ ।।

दादू

दादूदयाल का जन्मकाल सवत् १६०१ माना जाता है[1]। दादू के इस जन्म सवत के विषय मे प्राय सभी विद्वान् एकमत है[2]। दादू अकबर बादशाह के समकालीन थे। कहा जाता है कि अकबर की इनमे अत्यन्त श्रद्धा थी[3]। अकबर से इनकी भेंट का विवरण भी प्राप्त होता है। दादू और अकबर का चालीस दिन तक वार्तालाप हुआ था[4]। इसका उल्लेख करते हुए रज्जबदास ने अपने एक दोहे मे कहा है - अकबर साहि बुलाइया, गुरु दादू को आप।

साच झूठ ब्यौरौ हुआ, तब रह्यौ नाम परताप[5]।।

दादू का जन्म मुस्लिम परिवार मे हुआ था और मुसलमान गुरु के द्वारा ही इनको दीक्षा-दीक्षा हुई थी[6]। ऐतिहासिक दृष्टि से दादू रामानन्द की परम्परा मे आते है, लेकिन दादू पर विशेष रूप से कबीर का प्रभाव पड़ा[7] है। कहा जाता है कि दादू ने ब्रह्म सम्प्रदाय की स्थापना की थी जो आगे चल कर परब्रह्म सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुआ जो अब तक दादू पथ के नाम से अभिहित किया जाता है। दादू पंथ के अनुयायी जयपुर राज्य मे पाये जाते हैं। कबीर की भाँति दादू ने भी "मैं और तू" के भेदभाव को छोड कर सब को समान दृष्टि से देखने, तथा निर्गुण उपासना पर जोर दिया है।

दादू पथी प्राय बडे विद्याव्यसनी, चरित्रवान और सयमी होते है। ये अविवाहित रहते हैं। ये दादू द्वारों मे रहते हैं और गृहस्थो के लडकों को चेले बनाकर अपना पथ चलाते है। ये न तिलक लगाते है न चोटी रखते है और न गले मे कठी पहनते है। ये प्राय हाथ में सुमिरनी रखते है और जब मिलते हैं तब सत्य राम कह कर एक दूसरे का अभिवादन करते है[8]।

जयपुर राज्य मे नागा साधुओं[9] का एक जाति है जो बडी वीर है। ये सब दादू पन्थी है और सेना में सगठित रहते है। दादू के इष्टदेव राम ही थे। दादू की 'बानियों' मे ब्रह्म के अन्य नामो के साथ सर्वाधिक प्रयोग राम नाम का ही हुआ है। दादू ने लगभग ६७० बार राम

१- हिन्दुत्व रामदास गौड पृ० ७३७ 'हिन्दी साहित्य' डा० श्यामसुन्दरदास पृ० १६०, राजस्थान का पिंगल साहित्य पृ० १८१ , बानी पृ० १।।

२- उत्तरी भारत की सन्त परम्परा पृ० ४११ ।।

३- हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ७६।। ४- दीने इलाही पृ० १४१।।

५- निर्गुण स्कूल आफ हिन्दी पोएट्री पृ० २५६।।

६- राजस्थान का पिंगल साहित्य पृ० १८३ ।।

७- ए० सिक्स्टीन्थसेन्टुयरी इण्डिया मिस्टिक पृ० ७१-७२ शब्द ३४ ।। दी रिलीजस क्युस्ट आफ इण्डिया फर्कुहर पृ० १३६ ।।

८- राजस्थान का पिंगल साहित्य मोतीलाल मेनारिया पृ० १७८-७९।।

९- जीवन शोधन पृ० २८ कि० घ० मश्रुवाला ।।

न्याय का प्रयोग किया है। दादू और दादू शिष्यों का राम नाम के प्रचार में पर्याप्त योगदान है।

दादूपंथी समाज मुख्यतः चार भागों में विभाजित है - १- खालसा २- विरक्त ३- उतराधा और ४- नागा।

दादू के १५२ शिष्य थे जिनमें सुन्दरदास सर्वाधिक प्रसिद्ध हुए[1]। दादू का प्रधान शिष्य और उत्तराधिकारी उन्हीं का पुत्र गरीबदास था[2]। उनके दूसरे पुत्र का नाम मिस्कीनदास था। दादू के प्रधान शिष्यों का परिचय है -

१-रज्जब २- हरिदास निरंजनी ३- प्रागदास ४- जगजीवनदास ५- वाजिन्दजी ६-बनारसीदास ७- मोहनदास ८- जनगोपाल ९- संतदास १० - जगन्नाथदास ११- चैत्रदास १२- चपाराम १३- छोटे सुन्दरदास १४- बखना १५- घड़सीदास १६-माधोदास १७- शंकरदास १८- आसाराम १९- जमल जी २०- जग्गाजी २१- मिस्कीनदास २२-चतुर्भुजदास २३- गरीबदास इन शिष्यों में से कुछ का परिचय उपलब्ध होता है। पौड़ी हस्त लेख में गरीबदास रज्जबदास बखना, वनवारी, जगजीवन, मोहन और विधानदास की रचनाएँ उपस्थित है[3]। सुन्दरदास, निश्चलदास, रज्जब, जनगोपाल, जगन्नाथ, मोहनदास, क्षेमदास आदि अनेक शिष्य अच्छे कवि थे[4]।

दादू की रचनाओं की दृष्टि से उनकी वाणियों के संग्रह ही उपलब्ध होते हैं।

मलूक पंथ

मलूकदास का जन्म सं० १६३१ माना जाता है। मलूकदास ने किसी देवनाथ से पहले केवल नाम-मात्र की दीक्षा ली थी, तथा इन्हें आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश कराने वाले कोई मुरार-स्वामी थे[5]।

१- एरिक्सटिन्थ सेन्टुरी इण्डिया मिस्टिक डब्लू०जी०ओ०आर०आर०डी० पृ० १८५

२- वही पृ० १८५

३- हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय पृ० ७३ डा० ~~पी०द०~~ बड़थ्वाल ।।

४- हिन्दुत्व पृ० ७३७ ।।

५- उत्तरी भारत की संत परम्परा पृ० ५०७ ।।

मलूक के नुसार गुरु वचनों मे विश्वास, संत सेवा, नामस्मरण, ग्रा विचार, सत्य और संतोष का जीवन ग्रहण करने से आत्मा जागृत हो जाती है। मलूक के मत का यही सार है जिसे आत्म-ज्ञान भी कहा जाता है।[१]

कहा जाता है कि सिखों के नवें गुरु तेगबहादुरसिंह ने कड़ा नामक ग्राम में मलूकदास से भेंट और सत्संग किया था। मलूक के १२ शिष्यों में लालदास, रामदास, उदयराम, प्रभुदास, सुदामा आदि के नाम आते हैं, किन्तु इनका कोई परिचय प्राप्त नहीं होता।

मलूक ने अपने सम्प्रदाय का प्रचार स्वयं नहीं किया था और न ही इन्होंने किसी मत की स्थापना कि थी। यद्यपि इन्होंने अपने मत का स्वयं प्रचार नहीं किया तथापि इनके अनुयायियों की संख्या कम नहीं है। इनके अनुयायी पुरी और पटना से लेकर काबुल और मुल्तान तक पाये जाते हैं। मलूक पंथ की गद्दियाँ प्रयाग, लखनऊ, मुल्तान, काबुल, जयपुर, गुजरात, वृंदावन, पटना, और नैपाल तक में पायी जाती हैं।[२] अयोध्या-प्रसाद के अनंतर मलूक सम्प्रदाय की गद्दियाँ समाप्तप्राय समझी जाती हैं।

अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम।
दास मलूका कहत हैं, सब के दाता राम।।

डा० श्यामसुन्दर दास के अनुसार यह दोहा मलूक दास का ही है।[३] श्री परशुराम चतुर्वेदी ने इस दोहे को एक अन्य मलूकदास की रचना 'श्रीमलूक शतकम्' का माना है।[४] श्री चतुर्वेदी ने इसके तर्क में यह कहा है कि संत मलूकदास के लिये भाग्यवाद या अजगरी वृत्ति का अनुमोदन करना असम्भव था। चतुर्वेदी जी ने उपर्युक्त दोहे को एक अन्य मलूक की रचना सिद्ध करने की दृष्टि से जो तर्क दिया है वह ठीक प्रतीत नहीं होता, क्योंकि भाग्यवाद का उल्लेख, कबीर, तुलसी आदि, सभी मध्ययुगीन संतो ने किया है। अत: मलूकदास के लिये भाग्यवाद का अवलम्ब लेना असम्भव नहीं कहा जा सकता। लोक मत के अनुसार भी यह दोहा मलूकदास के नाम से ही विख्यात है।

---

(१) मलूकदास ~~जी~~ की बानी पृ० १७।।
(२) उ० भा० ~~की०~~ सं० प० पृ० ४१३।।
(३) हिन्दी साहित्य पृ० १६१
(४) उ० भा० ~~की०~~ सं० प० पृ० ५०४

संत प्राणानाथी सम्प्रदाय :

संत प्राणनाथ का जन्म संवत् १६७५ माना जाता है ।

प्राणनाथी सम्प्रदाय में जाति-पाँति और ऊँच नीच आदि का भेद भाव नहीं माना जाता । दीक्षा के अवसर पर इनके यहाँ हिन्दू मुसलमानों का सहभोज हुआ करता है । इनके सम्प्रदाय में तुलसी की माला, तिलक व कुंकुम आदि साम्प्रदायिक चिन्हों का भी प्रयोग किया जाता है । प्राणनाथी 'कुलजमें शरीफ' नामक पुस्तक की मन्दिर में पूजा भी किया करते हैं।[1] इनकी 'कुलजमे शरीफ' और 'कयामत नामा' पुस्तक हिन्दू मुस्लिम एकता की द्योतक है ।

प्रकाश ग्रंथ, षट् ऋतु, कलस, संबंध, किरतन, खुलास, खेल बात, प्रकरण इलाही, दुलहन सागर सिंगार, मारफत सागर, बड़े सिंगार और कयामत नामा आदि रचनाओं में राम भक्ति की दृष्टि से 'रामग्रंथ' महत्वपूर्ण है । इनकी सभी रचनाएँ अप्रकाशित हैं ।

इस सम्प्रदाय मे प्रत्येक साधक को अपनी परम्परागत प्रथाओं के पालन की स्वतन्त्रता रहती है ।[2]

सतनामी सम्प्रदाय :

सतनामी सम्प्रदाय की नारनौल, कोटवा, और छत्तीसगढ़ी ये तीन शाखाएँ मिलती हैं । सतनामी सम्प्रदाय की कोटवा शाखा का संगठन जगजीवन साहब ने किया था ।[3] डा० बर्थ्वाल के अनुसार जगजीवन साहब का जन्म संवत् १७२७ है ।

जगजीवन दास ने ईश्वर के लिये अधिकतर सतनाम का प्रयोग ~~किया है~~ करने के साथ-साथ अपने इष्टदेव के लिये राम नाम का प्रयोग किया है । इन्होंने साधक के लिये नैतिक नियमों का पालन आवश्यक माना है । इनके अनुसार जीवन सत्य, अहिंसा, परोपकार और संयम युक्त होना चाहिए ।

जगजीवन ने अपनी भक्ति साधना में नाम जप को अत्यधिक महत्व दिया है ।

शब्दसागर, ज्ञानप्रकाश, प्रथमग्रंथ, आगमपद्धति, महाप्रलय, प्रेमपंथ और अघविनाश इनकी इन सात पुस्तकों का उल्लेख मिलता है ।[4] इनकी इन पुस्तकों में से केवल शब्दसागर ही जगजीवन साहब की बानी के नाम से दो भागों में वेलवेडियर प्रेस प्रयाग से प्रकाशित हुआ है ।

---

(१) इन्फ्लुएंस आफ इस्लाम आन हिंदू कल्चर' पृ० १९८ - २०० डा० ताराचन्द

(२) दी० ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स आफ दि सेंट्रल प्राविंसेज' १९१६ भा० १ पृ० २९७ ।।

(३) दी० निर्गुण स्कूल आफ हिंदी पोएट्री' पृ० - २६४ ।।

(४) उ० भा० ~~कीक~~ सं० प० पृ० ५४५ ।।

सतनामी सम्प्रदाय में कुछ साम्प्रदायिक चिन्हों का प्रयोग आवश्यक माना गया है । कोटवा शाखा के सतनामी प्रायः लाल रंग के वस्त्र व टोपी पहना करते हैं और मिट्टी का टीका लगाते हैं ।

दरिया पंथ :

दरिया का जन्म काल सं० १७३१ है । दरिया ने अपने सम्प्रदाय में जिस भक्ति साधना का उपदेश दिया है वह कबीर की भक्ति - साधना से भिन्न नहीं है । दरिया और कबीर सम्प्रदाय के सिद्धान्तों में अन्तर बहुत कम है । दरिया ने उन्हीं सिद्धान्तों का प्रतिपादन कियाहै , जिनका कबीर ने किया था :-

सोई कहौं जो कहहि कबीरा । दरियादास पद पायो हीरा ।।

द० सा० पृ० ४८

दरिया अपने को कबीर का अवतार भी मानते थे ।[१] दरिया उसी सत्य-तत्व की खोज करते जिसकी कबीर ने की थी ----

ताहि खोजु जो खोजहिं कबीरा । अहठिनिरंतर सम्य गंभीरा ।। द०सा०

पृ० ४८

इस प्रकार भक्ति की दृष्टि से दरिया ने अपने पंथ में लगभग कबीर की भक्ति पद्धति का ही विवेचन किया है ।

दरिया सम्प्रदाय में मन्दिर , मस्जिद , जाति - पाँति , मूर्ति-पूजा, तीर्थ-यात्रा , कर्मकांड,योग और पाखंड इत्यादि को कोई स्थान प्राप्त नहीं है । उसमें सत्नाम या राम का जप तथा दरिया के शब्द और अन्य ग्रन्थों के पदों का सस्वर गान करना पर्याप्त समझा जाता है ,[२] और उसमें सत्य , अहिंसा , इन्द्रियनिग्रह , निरहंकार , स्वयमारोपित निर्धनता , निष्कपटता , सत्संग और भक्ति करना आवश्यक माना जाता है ।[३]

दरियापंथी साधू और गृहस्थ इन दो वर्गों में विभाजित रहते हैं । साधु घर-द्वार छोड़ कर सिर मुँड़वा कर रहते हैं (ज्ञान दीप नं० १७९ - ६ , ज्ञानमूल २६-१-३-) । प्रायः गृहस्थ टोपी पहना करते हैं । बुकानन का यह कहना है कि सभी श्रेणी के हिन्दू दरियापंथी साधू बन सकते हैं और साधु बनने पर सब एकसाथ भोजन करते हैं ।

दरिया सम्प्रदाय में अन्य धर्मावलम्बियों के हाथ का भोजन नहीं किया जाता । यह अपने साथ पानी पीने का भरुका अथवा कुल्हड़ भी रखा करते हैं ।

दरिया पंथ के अनुयायियों का मूलमंत्र ' वे वहा ' है , इनकी प्रार्थना की विधि ---

----

'कोरनिश' व सिजदा मुसलमानों के समाज से मिलती जुलती है।[1]

दरिया पन्थ का प्रचार उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों और बिहार प्रान्त में ही पाया था। इसकी प्रधान गद्दी धरकांधे में है, तथा अन्य और मठ क्रमशः तेलपा, तलैया सेसी, बंगी मिर्जापुर (जि० सारन) और मनुआ चौकि (जि० मुजफ्फरपुर) में वर्तमान है।[2]

दरिया (मारवाड़ वाले) : मारवाड़ के दरिया साहब का जन्म मारवाड़ के जैतारन नामक ग्राम में सं० १७३३ में हुआ था। ये भी बिहार के दरियादास की भाँति मुसलमान थे।

बिहार के दरिया की भाँति ये भी कबीर से प्रभावित थे। इन्होंने कबीर के प्रभाव को स्वयं स्वीकार किया है --------------

सोई कथ कबीर का, दादू का महराज।
सब सन्तन का बालमा, दरिया का सिरताज।। बानी पृ० ३८।।

इनके दीक्षागुरु प्रेमदयाल (बानी पृ० १) और आराध्य देव राम थे।

दरिया के अनुसार साधना की दृष्टि से राम नाम स्मरण ही सभी ग्रन्थों और मतों का सार है।[3] (अत: भक्त को नाम की ही साधना करनी चाहिए)।

दरिया पंथ में गृह त्याग आवश्यक नहीं माना गया है। दरिया-सम्प्रदाय में स्त्री-निन्दा नहीं की गई है (बानी पृ० ४३)।

इस प्रकार निर्गुण शाखा के उपर्युक्त विभिन्न सम्प्रदायों के प्रवर्तकों तथा भक्तों में से निम्नलिखित प्रमुख हैं -

नामदेव, कबीर, रैदास, नानक, दादू, सुन्दर दास, जगजीवनदास, मलूकदास और सन्त दरिया दास बिहार वाले तथा मारवाड़ वाले।

आगे राम भक्ति की हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्ति का जो विस्तृत निरूपण किया गया है, उसमें इन्हीं भक्तों की वाणियों को प्रमुख रूप से आधार बनाया गया है।

हिन्दी राम भक्ति धारा के सगुण सम्प्रदाय

तुलसी-पूर्व हिन्दी रामभक्ति धारा : सगुण राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय के आविर्भाव के पूर्व किसी सम्प्रदाय का पता नहीं चलता। यद्यपि वैसे सगुण राम भक्ति का संवर्धन और विकास स्वत: एक निश्चित भावधारा के रूप में होता रहा है।

सगुण राम भक्ति सम्प्रदायके आदि काल की दृष्टि से भूपती , चेतनदास, और ईश्वरदास आदि राम भक्त कवियों के नाम उल्लेखनीय हैं। भूपति का राम भक्ति सम्प्रदाय को क्या योगदान है, इसे तब तक कहना कठिन है जब तक इनकी कोई रचना प्राप्त नहीं होती। चेतनदास का राम भक्ति की दृष्टि से कोई महत्व नहीं है। इन्होंने अपनी एक पुस्तक 'प्रसंगपारिजात' में रामानन्द का जीवनवृत्त दिया है। यह रचना प्राकृत में कही जाती है और यह राम नाम लेकर समाप्त होती है। ईश्वरदास की 'भरतबिलाप' 'अंगद पैज' (अपूर्ण), और सीतावनवास (अपूर्ण) ये तीन रचनायें मिलती तो हैं किन्तु राम भक्ति का कोई विकसित स्वरूप इनमें प्राप्त नहीं होता।

गोस्वामी तुलसीदास : सगुण राम भक्ति का सांगोपांग वर्णन करने वाले कवि गोस्वामी तुलसीदास का जन्म संवत् १५८९ में माना गया है। यद्यपि तुलसी ने रामानन्द सम्प्रदाय के साम्प्रदायिक चिन्हों में माला, तिलक और तुलसी (दल) का उल्लेख तो किया है किन्तु उनका भक्ति भाव साम्प्रदायिक भावना से सर्वथा शून्य है।

तुलसी ने अपनी भक्ति-साधना में सर्वाधिक महत्व राम प्रेम और राम नाम-जप को दिया है। उनकी भक्ति साधना साम्प्रदायिक साधनाओं, आचार विचार (शास्त्र) नियम, व्रत आदि जटिल कर्म कांड से रहित है।

तुलसी ने अपनी भक्ति साधना को कठोर नियमों, जटिल विचारों, और कठिन पूजा पद्धति में उलझने न देकर, उसे सरल स्वरूप प्रदान करते हुए राम नाम जप को ही कलिकाल का धर्म माना है।

तुलसी ने न तो कभी किसी सम्प्रदाय की स्थापना का प्रयत्न किया, और न कभी गुरु बनने की ही कामना की। किन्तु फिर भी तुलसी का मानस १० करोड़ जनता का धर्मग्रन्थ बन गया, (यह ग्रन्थ हिन्दू समाज के छोटे, बड़े, धनी, निर्धनी[१], बालक और वृद्ध आदि प्रत्येक वर्ग द्वारा समान रूप से, पढ़ा[२], सुना और समझा जाता है) और उन्हें अन्य गुरुओं से भी अधिक सम्मान प्राप्त हुआ। यह कहा जाता है कि संत जन-जसवंत तुलसी के शिष्य थे।[३]

---

(१) अब्राहम जार्ज ग्रियर्सन 'हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास' पृ० १२४, १२५,१३३।।

(२) दी० रामायण आफ तुलसीदास' इन्ट्रोडक्शन एफ० एस० ग्राउस ।।

(३) ना० प्र० प० सं० २०१३ अंक १ वर्ष ६१ आचार्य विनय मोहन शर्मा का लेख - 'तुलसीदास के महाराष्ट्रीय शिष्य संत जन जसवंत'

इस प्रकार सगुण राम भक्ति अथवा राम भक्तों में साम्प्रदायिक वृत्ति का लगभग अभाव रहा है। सगुण राम भक्त कृष्ण चरित्र पर रचना करते रहे हैं और कृष्ण भक्त राम चरित्र पर। सगुण राम भक्ति में साम्प्रदायिक भाव का प्रादुर्भाव रसिक भक्तों के द्वारा होता है।

सगुण राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय :

राम भक्ति में रसिक भाव का आविर्भाव महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। समाज में रसिक भाव के आधिक्य और कृष्ण भक्ति के प्रबल प्रभाव के कारण, राम भक्ति में रसिक भाव का सूत्रपात हुआ। राम भक्ति हिन्दी साहित्य में १७ वीं श० ई० के बाद, राम के रसिक रूप को लेकर, विस्तृत काव्य रचना हुई है। परवर्ती संस्कृत राम भक्ति साहित्य में भी रसिक साहित्य की भरमार है।

रसिक सम्प्रदाय, जानकी, रहस्य, रसिक, जानकी वल्लभी और सिया सम्प्रदाय के नाम से अभिहित किया जाता है। रसिक भक्तों में रसिक नाम ही प्रचलित है। रसिक भक्त तिलक में श्री के नीचे बिन्दी लगाते हैं, और राम-रज में रंगे हुए वस्त्र पहिनते हैं। लीला विहार में मिथिला, अवध और चित्रकूट भाव मुख्य माने जाते हैं, और इसी क्रम के आधार पर स्वसुखी तत्सुखी और चित्सुखी उपासनाओं का क्रम प्रचलित हुआ है। जैसे कृष्ण को मथुरा में पूर्ण द्वारिका में पूर्णतर और वृन्दावन में पूर्णतम माना जाता है। वैसे ही राम को भी अवध में पूर्ण, मिथिला में पूर्णतर और चित्रकूट में पूर्णतम माना है। अधिकांश

रसिकोपासक चित्रकूट भाव से अष्टयाम पूजा करते हैं, जहाँ परकीया रति की पराकाष्ठा है।[1]

राम भक्ति सम्प्रदाय में भर्तृ भार्या भाव से पूजा करने वालों को रसिक कहा गया है - " ये भर्तृ भार्या भावेन श्रीराम भजते तेषामेव रसिकं त्वमुपपद्यते -।[2] रसिक सम्प्रदाय के आदि प्रवर्तक हनुमान जी माने गये हैं, जिन्हें श्री चारुशीला भी कहा जाता है।- इस सम्प्रदाय में व्यास, शुकदेव, वशिष्ठ पराशर आदि ऋषि मुनियों की भी गणना की गई है -। रसिक प्रकाश- भक्तमाल से यह पता चलता है कि रामानन्द के दादा गुरु श्री हर्यानन्द जी रसिक भाव के भी उपासक थे -।[3] राघवानन्द हर्यानन्द के शिष्य थे।- हर्यानन्द ने इन्हें रसिक सम्प्रदाय चलाने की आज्ञा दी थी -।[4] रामानन्द राघवानन्द के शिष्य थे-,[5] अतः ये भी रसिक सम्प्रदाय के भक्त माने गये। रसिक प्रकाश भक्तमाल के अनुसार रामानन्द, रामानुज सम्प्रदाय के अन्तर्गत सियाराम रहस्य उपासना के उद्धारक माने गये हैं --

" रामानुज स्वामिहु प्रतिज्ञा करि सदाचार
वैष्णव सब रहस्य को प्रचार करि गये हैं।-
बीच पाय सियाराम रहस्य उपासना की
मन्द रीति पेषि सदाचार नये नये हैं।--
तबही कृपाल निज भक्ति के दृढाइबे को
रामचन्द्र आपु स्वामी रामानन्द भये हैं।" र० प्र० भ०मा० पृ० १२ ।-

रामानन्द ने सीता को राम की प्रिया माना है और उनके अनुसार जीव भी राम के प्रिय हैं -।[6] रामानन्द ने जीव और ब्रह्म का " भार्या भर्तृत्व " या भोग्य भोक्तृत्व सम्बन्ध भी माना है।[7] सीता लक्ष्मण सहित राम के प्रति रागमय होना भक्ति के लिये आवश्यक है[8] एवं भगवान् में अनुराग ही पराभक्ति है।[9] इस प्रकार रामानन्द ने माधुर्यभाव का सिद्धान्त

---

१ " राम भक्ति में मधुर उपासना " श्री भुवनेश्वर नाथ मिश्र माधव " पृ० ११-१२ --
२. " श्री रामस्तवराज " भाष्यकार - " श्री हरिदास पृ० १६३ --
३. र० प्र० भ० मा० छप्पय ६। पृ०१०। .४. वही १०। पृ० १०।
५. श्री वै० म० मा० संपा० रामटहलदास जी पृ० १--
.६ वही पृ० ४-- ७ वही पृ० ७०- ७१
.८ वही पृ० १०-- ९ वही पृ० १० --

पक्ष तो स्वीकार किया है, किन्तु रसिक भाव को लेकर उन्होंने रचना कार्य नहीं किया है।- मुख्य रूप से रामानन्द ने प्रपत्ति- भक्ति ही स्वीकार की है -।

रसिक सम्प्रदाय के भक्त -

कहा गया है कि रामानन्द के शिष्य अनन्तानन्द जी शृंगारभाव के उपासक थे -। अनन्तानन्द के सभी शिष्य रसिकोपासक थे और उनके शिष्य कृष्णदास पयोहार ने योग और शृंगारभाव के समन्वय करने का प्रयत्न किया है। अनन्तानन्द की कोई भी रचना उपलब्ध नहीं है।- कृष्णदास पयोहारी के कील्हदास और अग्रदास ये दो मुख्य शिष्य थे - इनके अतिरिक्त इनके २२ शिष्य और थे।-

कहा गया है कि कील्हदास योगाभिमुख रहने पर भी रास-विहार में रत रहते थे।- कील्ह-जी माधुर्यभाव के उपासक थे और रात दिन रात भी रघुनन्दन स्वामी के ध्यान में मग्न रहते थे।

अग्रदास -

राम भक्ति हिन्दी साहित्य में अग्रदास जी रसिकभाव के मुख्य प्रचारक माने जाते हैं -। अग्रदास जी का जन्म, संवत् १६३२ - में राजस्थान में हुआ था -। इन्होंने रैवासा में अपनी गद्दी स्थापित की थी - यह स्थान जयपुर के पास है -। अग्रदास और अग्रअली एक ही व्यक्ति थे [2] -। ध्यान मंजरी, अष्टयाम, कुण्डलियाँ और शृंगार रस सागर इनकी रचनाएँ हैं।-

अग्रदास जी ने रंगमहल और विहार कुंजों आदि की स्थापना करवाई थी -। युगलप्रिया जाने अग्रदास को चन्द्रकला सीता जी की प्रिय सखी का अवतार माना है -। अग्रदास जी प्रातःकाल से ही श्री सीतापति अवधविहारी की सेवा में मग्न रहते थे।- इनका माधुर्य सम्प्रदाय अब तक विख्यात है [3] -।

नामादास -

नाभादास भी अग्रदास जी के शिष्य थे -। नाभादास को नाभाअली भी कहा जाता है [4] -। नाभादास का जन्म सं० १६५७ दक्षिण में किसी डोम वंश में हुआ था [5] -।

नाभादास जी को अग्रदास ने गलतागद्दी का आचार्य नियुक्त किया था।-

---

१ भक्तमाल - टी० हरिप्रपन्न पृ० ४६६

२ भक्तमाल सटीक पृ० ३२१ --

३ भक्तमाल टी० हरिप्रपन्न पृ० ४६५ --

४ भक्तमाल रुपकला जी पृ० ३४ -

कहा गया है कि मन्त्र दीक्षा के उपरान्त इनका नारायण दास नाम रखा गया ।[1]

प्रयागदास :

प्रयागदास जी अग्रदास जी के शिष्य थे । प्रयागदास रसिक भाव के उपासक थे । इन्हें श्री रघुनन्दन स्वामी के चरणों में मन वचन से प्रेम था ।[2]

मानदास :

मानदास ब्रज के निवासी थे । इनका जन्म संवत् १६८० है । इनके विरचित रागकल्पद्रुम में संगृहीत हैं । इन्होंने वाल्मीकीय रामायण हनुमन्नाटक इत्यादि राम काव्यों से सार लेकर बहुत ही सरल भाषा में राम चरित्र का वर्णन किया है । ये गोप्य केलि के प्रकट करने वाले माने जाते हैं ----

गोप्य केलि रघुनाथ की मानदास परगट करी ।। भक्तमाल रूपकलाजी
पृ० ७८२

बालकृष्ण :

बालकृष्ण भी रसिक सम्प्रदाय के साधक थे । इन्होंने "ध्यान मंजरी" में रसिक भाव का पोषण और संवर्द्धन किया है (दे० ध्यान मंजरी ह० लि० पृ० ३१) ।

१७ वीं० श० ई० के बाद रसिक सम्प्रदाय में अनेक रसिक भक्त हुए हैं । १७ वीं श० ई० के उपरान्त राम की रसिक लीला की सखियों के आधार पर रसिक सम्प्रदाय में स्वसुखी, और तत्सुखी भाव का आविर्भाव हुआ ।

स्वसुख भावना :

स्वसुख भावना के प्रवर्तक राम चरणदासजी माने जाते हैं । स्वसुख भाव के अनुसार रामपति हैं, और सखियाँ उनकी पत्नी । पति-पत्नी भाव को मानकर स्वसुख शाखा की साधना चली है ।

तत्सुख भावना :

तत्सुख शाखा के मूल प्रवर्तक के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता । बाल अली जी की रचना (सिद्धान्त तत्व बोध) में तत्सुख का प्रयोग साम्प्रदायिक अर्थ में हुआ है ।

---

(१) भक्त-माल रूपकला (सटीक) पृ० ६, ३६ ।।

(२) "भक्त माल" रूपकला जी पृ० ७८०, भक्त माल हरिप्रपन्न पृ० ५५०

तत्सुख भावना के अनुसार रति-क्रीड़ा में सीता द्वारा अनुभूत सुख को अपना ही सुख माना जाता है ।

<u>हनुमानोपासना:</u> राम भक्ति सम्प्रदाय के विकास के अन्तर्गत राम भक्ति की एक शाखा हनुमान उपासना के रूप में विकसित हुई । देश में वीर वृत्ति का अभाव भी हनुमानोपासना के उद्भव का कारण प्रतीत होता है[1] । महाभारत में हनुमान को सम्मान प्राप्त हो चुका था (अर्जुन के रथ की ध्वजा पर हनुमान का चित्र अंकित किया जाता था । दामोदरमिश्र का संस्कृत हनुमन्नाटक हनुमानोपासना की ओर इंगित करता है ।

हिन्दी राम भक्त कवियों में गोस्वामी तुलसीदास, संत जनजसवंत और कृष्ण भक्त कवियों मे सूरदास , नरहरि , वीरबल, और छत्र साल आदि ने हनुमान के प्रति भक्ति भाव व्यक्त करते हुए कुछ पदों की रचना की है[1] । हनुमान के प्रति भक्तिभाव की दृष्टि से हृदय राम कवि, उदयकवि और रामकवि आदि के हनुमन्नाटक तथा रायमल्ल पांडे का हनुमच्चरित्र (१६६६) महत्वपूर्ण है ।

<u>हनुमानोपासना</u> के उद्भव और विकास की दृष्टि से रामदास का स्थान सर्वोच्च है । रामदास ने दुष्टों के संहारक श्रीराम और हनुमान की उपासना प्रवर्तित की । उन्होंने हनुमानोपासना के प्रचार की दृष्टि से ११०० मठों की स्थापना की थी । महाराष्ट्र में ऐसा कोई ग्राम नहीं है जिसमें हनुमान का मन्दिर न हो ।[2] रामदास को हनुमान का अवतार भी बताया जाता है ।[3]

उत्तर भारत के प्रत्येक शिव मन्दिर में हनुमान की प्रतिमा मिलती है जो दीवार पर गीले सिन्दूर से रंगी रहती है । दक्षिण में भी सैकड़ों मारुति मन्दिर मिलते हैं । प्राय: हनुमान की पूजा पृथक देवता के रूप में न होकर, राम भक्त के रूप में की जाती है ।

हनुमानोपासना से सम्बन्धित एक धजपंथ का भी पता चलता है ,[4] जिसके मूल प्रवर्तक हनुमान जी माने गये हैं । किन्तु इस सम्प्रदाय का कोई स्वरूप प्राप्त नहीं होता

---

(१) अकबरी दरबार के हिन्दी कवि पृ० २९७ , ३५६
ना० प्र० प० सं० २०१३ पृ० १० , वि० प०(पदसंख्या २५ से ३६ तक) , दो० ब० २२९ , २३०, २३१ , २३२ , २३३ ।।
छ० सा० ग्र० पृ० ६० , ६४ , ६८ , ७० ।।
(२) साहित्य सन्देश संत साहित्य विशेषांक (~~[illegible]~~) पृ० १०२

इस प्रकार राम भक्ति सम्प्रदाय आलवार भक्तों और रामानुज तथा निम्बार्कादि आचार्यों का संयोग प्राप्त करता हुआ रामानन्द के द्वारा एक निश्चित और व्यवस्थित सम्प्रदाय का रूप धारण करता है । रामानन्द के बाद रामभक्ति सम्प्रदाय निर्गुण और सगुण इन दो धाराओं के रूप में विकसित होता है । अन्त में सगुण राम भक्ति, रसिक सम्प्रदाय का रूप धारण करके मन्द पड़ जाती है ।

इस प्रकार सगुण राम भक्ति शाखा के उपर्युक्त भक्तों और संप्रदाय प्रवर्तकों में सर्वप्रमुख हिन्दी भक्त कवि निम्नलिखित हैं - ईश्वरदास , गोस्वामी तुलसीदास , सूरदास, केशवदास, अग्रदास , सेनापति , और नाभादास इत्यादि । इन्हीं की रचनाओं और वाणियों के आधार पर आगे के अध्यायों में हिन्दी साहित्य में सगुण राम भक्ति का निरूपण किया जा रहा है ।

----

(३) मराठी साहित्य का इतिहास पृ० ४६ ।।

(४) नाथ सम्प्रदाय डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० ११ ।।

भाग २

अध्याय ५
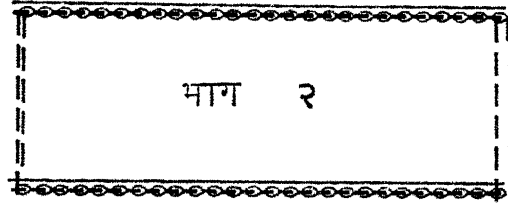
निर्गुण राम-भक्ति के दार्शनिक आधार

ब्रह्म, जीव, जगत्, माया और मोक्ष से सम्बन्धित दार्शनिक प्रश्न सदैव मनुष्य के सम्मुख गुत्थियों के रूप में उपस्थित रहे हैं। वैदिक संहिताओं, उपनिषदों, न्याय, वैशेषिक, योग, सांख्य, मीमांसा, वेदान्त, गीता और नानाविध धर्मों में इनके संबंध के दार्शनिक विचारों की ही व्याख्या की गई है। नीचे इन्हीं दार्शनिक गुत्थियों को निर्गुण राम भक्त कवियों के अनुसार सुलझाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

:क: ब्रह्म :राम: का स्वरूप

नामदेव

नामदेव के अनुसार ब्रह्म एक है। वही एक सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है, उस एक के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है। वह चराचर विश्व में इस प्रकार ओत-प्रोत है,[1] जिस प्रकार सहस्रों मणियाँ एक सूत्र में गुँथी रहती हैं:

> एक अनेक बिआपक पूरक जत देखउतत सोई।
> माइआ चित्र बचित्र बिमोहित बिरला बूझै कोई ।।
> सभु गोबिन्दु है, सभु गोबिन्दु है, गोबिन्दु बिनु नहीं कोई।[2]
> सूत एकु मणि सत सहस जैसे उतिपोति प्रभु सोई ।।

१- नामदेव के यह भाव गीता से मिलते हैं --

> मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय।
> मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ।। गीता ७।७

२- 'हिन्दी को मराठी सन्तों की देन' आचार्य विनय मोहन शर्मा पृ० २४१

ब्राह्मी सृष्टि में विचार करने पर घट घट मे व्याप्त एक ही ब्रह्म के दर्शन होते हैं । जहाँ जहाँ पर दृष्टि जाती है वहाँ वहाँ पर राम के ही दर्शन होते है । उनके अनुसार चराचर में व्याप्त यह ब्रह्म अनन्त और अन्तर्यामी है --

कहत नामदेऊ हरि की रचना देखहु रिदै बिचारीरी ।
घट घट अतरि निरतरि केवल एक मुरारी ।।
जह जंह देखऊ तह तह रामा ।
असथावर जगम कीट पतगम घटि घटि रामु समाना रे ।
एकल चिंता राखु अनता अउर तजहु सम आसा रे ।[1]
ऐसो रामराइ अतरजामी । जैसे दरपन माहि बदन परवानी ।' सतकाव्य पृ०१४९

नामदेव के अनुसार उस ब्रह्म का कोई कुल नहीं है । वह अकुल और निरंजन है-
सेविले गोपाल राइ अकुल निरजन ।।५६।। :हि०म०म० संतो की देन.पृ ०२६२

नामदेव ने निरजन शब्द का हिन्दी पदों मे निराकार ब्रह्म के लिए केवल एकबार ही प्रयोग किया है :वही पृ० ११९. नामदेव से पूर्व गोरखनाथ ने निरजन शब्द का ब्रह्म के अर्थ में प्रयोग किया है--

नाथ निरजन आरती गाऊं,गुरु दयाल अज्ञा जो पाऊं ।
सकल भवन उजियारा होई,देव निरंजन और न कोई ।।:गो०बा०पृ०१५७:

नामदेव के उपरान्त लगभग सभी निर्गुण भक्तों ने निरंजन शब्द का प्रयोग ब्रह्म के अर्थ मे किया है ।

नामदेव ने सर्वव्याप्त,घटघटवासी, अन्तर्यामी,अनन्त निकुल और निरंजन ब्रह्म का सगुण रूप में भी विवेचन किया है । नामदेव के निर्गुण ब्रह्म दशरथ के पुत्र हैं, जिन्होंने अहिल्या का उद्धार भी किया था । नामदेव ने अपने राम की अवतारी लीलाओं का भी उल्लेख किया है --

जसरथ राइ नंदु राजा मेरा रामचंदु ।३३। वही पृ० २५२

१- 'हिन्दी को मराठी सन्तों की देन ' ~~आ०वि०मो० शर्मा पृ०~~ आचार्य विनय मोहन शर्मा

गौतम नारि अहिलिआ तारी पावन केतक तारिअले ।३५। वही पृ० २५३
धनि धनि तू माता देवकी । जिह ग्रिह रमईआ कवलापती ।।
धनि धनि बनखड बिंद्राबना। जह खेलै स्री नाराइना ।
बेनु बजावै गोधनु चरै । नामे का सुआमी आनंदु करै ।। वही पृ०२५३
नामा कहै भगति बसि केसव अजहू बलि के दुआर खरो ।।३७।वही पृ०२५४

उपर्युक्त सगुण लीलाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि नामदेव निर्गुण भक्त होते हुए भी सगुण और अवतारी ब्रह्म मे आस्था रखते थे । ब्रह्म के अवतारी स्वरूप का उल्लेख करते हुए भी नामदेव ने ब्रह्म के किसी एक रूप में अपनी श्रद्धा केन्द्रित नहीं की है । उनकी दृष्टि मे ब्रह्म के अनन्त रूप हैं --

अनत रूप तेरे नाराइणा । ३८ । वही पृ० २५४।।

किन्तु नामदेव ने ब्रह्म के अनन्त रूपो का विवेचन और सगुणोपासना का खण्डन करके वही पृ० २५१: अपने ब्रह्म को प्राय. निर्गुण कोटि में ही रखा है ।

कबीर

कबीर ने श्रुति, योग, वेदान्त, पुराण और कुरान प्रतिपादित ब्रह्म का उल्लेख किया है । श्रुति,योग और वेदान्त दर्शन में यदि ब्रह्म का निर्गुण निराकार और परात्पर रूप मिलता है तो पुराण और कुरान मे ब्रह्म के निर्गुण और सगुण दोनो स्वरूप मिलते हैं । ये दोनो स्वरूप कबीर में भी मिलते हैं ।

ज्ञेय या अज्ञेय कोई भी तत्व क्यो न हो, उसका अभिज्ञान नाम के द्वारा ही किया जाता है । ब्रह्म अज्ञेय होते हुए भी नाम, शब्द, अक्षर और प्रणव रूप में प्रतिपादित किया गया है । कबीर ने भी ब्रह्म की, नाम, शब्द, अक्षर और प्रणव रूप मे व्याख्या की है ।

कबीरने अनिवर्चनीय ब्रह्म के लिए राम, कृष्णा, हरि, केशव, माधव, गोविन्द, मनोहर, बनवारी, गोपाल, मुकुन्द, मधुसूदन, मुरारी, दामोदर, बिष्णु, मदन, शालिग्राम, गोपीनाथ, नारायण, पचानन, निरंजन, शार्ङ्गपाणि, चतुर्भुज, भगवान् परब्रह्म, जगन्नाथ, जगदीश्वर, कमलाकांत, श्रीरंग, नरहरि, पुरुष,बीठुला,

---

१- केनोपनिषद् ४।६ में यह कहा है कि ब्रह्मनाम से प्रसिद्ध है ।

पुरुषोत्तम, करतार, दयाल, साहिब, साईं, राम, अल्ला, खुदा, करीम, आदि नामों का प्रयोग किया है।

किन्तु कबीर के अनुसार ब्रह्म के केवल उपर्युक्त नाम ही नहीं है, उसके अनन्त नाम है।[1] अनन्त नामों में जब आत्मभाव उत्पन्न होता है, तब साधु पुरुष को परमपद प्राप्त होता है -

अपरंपार का नाउ अनंत, कहै कबीर सोई भगवंत ।३२७। क०ग्र० पृ० १६६

अनंत नाम जब एक समाना, तब ही साध परम पद जाना ।

बिरला संत परम गति जानै, एक अनंत सो कहा बखानै ।शब्द०भा०२पृ०११५।।

ब्रह्म के अनेक, किन्तु अनन्त गुण और नामों का उल्लेख करके कबीर ने वैष्णव भक्तों के एक ब्रह्म की ओर ही संकेत किया है।

कबीर ने ब्रह्म के अनेक नामों का वर्णन करते हुए उनमें एक राम नाम के दर्शन ही किए हैं --

एक राम देख्या सबहिन मै, कहै मन माना ।।५२। क०ग्र० पृ०१०५

ब्रह्म के हरि, गोबिन्द, राम, केशव, कृष्ण, माधव इत्यादि नाम पौराणिक है, किन्तु कबीर ने सगुण अवतार के अर्थ मे इनका स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है।[2] इन नामो का अर्थ स्पष्ट करते हुए कबीर ने कहा है कि अलख निरजन देव ही अल्लाह है, जो विश्व में व्याप्त है वही विष्णु है, जिसने संसार की रचना की है, वह कृष्ण है, जो ब्रह्माण्ड को धारण करता है, वह गोविन्द है, युग युग में रहने वाला तत्व राम है और दस दरवाजों को खोलने वाला खुदा है -

अलह अलख निरजन देव, किहि बिधि करौं तुम्हारी सेव ।

बिश्न सोई जाको बिस्तार, सोई कृस्न जिनि कीयौ संसार।।

गोब्यंद ते ब्रह्महि गहै, सोई राम जे जुगि जुगि रहै ।।

अलह सोई जिनि उमति उपाई, दस दर खोलै सोई खुदाई ।।

१- बृहदारण्यकोपनिषद् में ब्रह्म केअनन्त नाम माने गये हैं -'नामेत्यनन्त वै नामानन्ता विश्वे देवा अनन्तमेव सतेन लोक जयति ।३।२।१२।, ब्रह्मसूत्र ३।२।२६।।

२-'कबीर' डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी पृ० ११६

उपनिषद् और गीता में जो क्षर न हो उसे अक्षर कहा गया है[1]।
नाम, प्रणव और शब्द सभी अक्षर पर निर्भर है। कबीर ने सारशब्द आदि
अक्षर नाम है। अक्षर और निरक्षर ही सतनाम है। अक्षर सत्य है और
उसके अतिरिक्त अन्य सब झूठ है। अक्षर मूल है, और अन्य सब नष्ट होने
वाला है। सद्गुरु के कथनानुसार अक्षर ही प्रमाण है -

आदि अक्षर ही नाम है, जाको सब विस्तार।
सतगुर दयाते पाइये, सतनाम निज सार।। अक्षरावती पृ०३ सन्१९०६ई०
अक्षर निःअक्षर सतनामा। अक्षर पांच झूठ सब जाना।
अक्षर मूल और सब जाई। बिन अक्षर नहि मा पतियाई।।
अक्षर ही परमान, सतगुरु कहे पुकार के।
गावै सुमिरन ध्यान, सब कहा परमान है। अक्षरावती पृ०६-७
यह अक्षर अरूप और निज आत्मा सार है। सम्पूर्ण जगत् इस अक्षर के
द्वारा ही व्यक्त हुआ है --

अक्षर है निज सार अरूपा। जाते सब जग धरा सरूपा।।३९।।
अक्षरावती पृ०२२

नाम, प्रणव, शब्द और अक्षर ब्रह्म का स्वरूप
बुद्धिगम्य है। बुद्धिगम्य ज्ञान सीमाओं के अन्तर्गत आता है। कबीर ने बुद्धिगम्य
ससीम या मूर्त ब्रह्म की व्याख्या करते हुए, ब्रह्म के मानवी गुणों और मानवी
लीलाओं का भी उल्लेख किया है। दया, करुणा, रूठना और रीझना
मानवी गुण और स्वभाव है। कबीर के राम मानवी गुणों से भी युक्त हैं।
वे गरीबनिवाज और भक्तवत्सल है। उनमें करुणा, दानशीलता, दया और
कृपाभाव आदि मानवी गुण भी हैं --

तुम्ह कृपाल दयाल दमोदर, भगत बछल भौ हारी।
कहै कबीर धीर मति राखहु, सासति करौ हमारी।१९१।
क०ग्रं० पृ० १५३ दे०पृ०१४८, १७२ भी

१- कठो० १।२।१६, गीता १५।१६

कबीर ने अपने राम को मीठा कहा है --

इह बिधि बासि सबै रस दीठा, राम नाम सा औरन मीठा ।।
।।६।।क०ग्रं० पृ० ८६।।

कबीर ने अपने राम को रस, रसायन, उदक, रत्न, मणि, चितामणि, हीरा, और अग्नि कह कर उनके पदार्थनिष्ठ गुणो की ओर भी संकेत किया है क०ग्रं०पृ०६६, १२३,१२७,१४६, १०६, बीजक पृ० १०२, संत कबीर पृ० ३ ।।

कबीर के मतानुसार ब्रह्म के बहुत से गुण हैं । जीव को ब्रह्म के गुणों का गान करना चाहिए । गुणग्रहण करने से मोक्ष प्राप्त होती है । कबीर ने अपने ब्रह्म को गुणवान् भी कहा है । ब्रह्म के गुणो को लिखना असम्भव है --

गोब्यंद के गुण बहुत हैं लिखे जु हिरदै माहि ।
कबीर सूता क्या करै, गुणन गोबिंद के गाइ ।।१४। क० ग्रं० पृ० ६।।
औगुन छोड़ि गुन गहै छिनक उतारै तीर ।१३।पृ० २ क०व०
जांनसि नही कस कथसि अयांनां, हम निरगुन तुम्ह सरगुन जांना ।क०ग्रं०पृ०२३०।
सात समंद की मसि करौं, लेखनि सब बनराइ ।
धरती सब कागद करौं, तऊ हरि गुण लिख्या न जाइ[1] ।। क०ग्रं० पृ०६२।

गुणों की अभिव्यक्ति भावों के रूप में होती है । भाव लौकिक सम्बन्धो के रूप में साकार स्वरूप धारण करते हैं । कर्ता, धर्ता और स्रष्टा आदि गुणो के आधार पर कबीर ने अपने राम को जनक, जननी, पति, राजा इत्यादि कह कर उसके साथ सुत और पत्नी के सम्बन्ध स्थापित किए हैं[2] । कबीर ने अपने राम को जनक और जननी आदि जो कहा है उसमें मानवी स्वभाव का भी समावेश हो गया है । मानव जीवन में यह देखा जाता है कि माता पिता अपनी संतान के अपराधो को क्षमा कर देते हैं, किन्तु ब्राह्मी जगत् में यह दृष्टिगत होता है कि जीव अपने कर्मों के अनुसार फल प्राप्त करता है[3] । कबीर राम में मानवी स्वरूप का आरोप करते हुए उनसे अपने अवगुणों

१- कबीर का यह भाव कुरान से प्रभावित है विचार विमर्श डा० चंद्रबली पाण्डेय पृ०२०
२- क० ग्रं० पृ० ६८, ८७, ८८।
३- 'राम राइ तेरी गति जाँणी न जाई ।
जो जस करि है सो तस पइहै, राजा राम नियाई ।२००।क०ग्रं० प०१५६।।

और अपराधों की क्षमा कराने के लिए अनुनय करते हैं --

हरि जननी मैं बालिक तेरा ।
काहे न औगुंण बकसहु मेरा ।।
सुत अपराध करै दिन केते, जननी कै चित रहै न तेते ।।१११। क०ग्रं० पृ०१२३।

नाम, प्रणव, शब्द, अक्षर, गुण और भावों के आधार पर ब्रह्म का जो विवेचन किया गया है, उसके कारण कबीर के ब्रह्म मे सगुणत्व आ गया है । कबीर के साहित्य मे ब्रह्म के सगुण और साकार स्वरूप से सम्बन्धित कुछ स्पष्ट उक्तियाँ भी मिलती है ।

कबीर ने ब्रह्म के अवतारी स्वरूप का स्पष्ट रूप से कही पर भी उल्लेख नहीं किया है, किन्तु उन्होंने वैष्णव धर्म में माने जाने वाले ब्रह्म के पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी अर्चावतार का उल्लेख अवश्य किया है ।

'१' <u>पर रूप</u> .

रामानुज .तत्त्वत्रय भाष्य पृ० १२४ ने भगवान् के पर रूप मे ऐश्वर्य, शक्ति, तेज, ज्ञान, बल, एव वीर्य यह छः गुण माने गए हैं । कबीर के राम में ये सभी गुण विद्यमान है -

जाकै सूरिज कोटि करैं परकास, कोटि महादेव गिरि कविलास ।
ब्रह्मा कोटि बेद ऊचरै, दुर्गा कोटि जाकै मर्दन करैं ।।
कोटि चद्रमा गहै चिराक, सु तेतीसु जीमै पाक ।
कोटि कूबेर जाकै भरै भंडार, लक्ष्मी कोटि करै सिंगार ।
इद्र कोटि जाकी सेवा करैं ।
विद्या कोटि सबै गुंण कहैं, पारब्रह्म कौ पार न लहैं ।।
असंखि कोटि जाकै जमावली, रांवण सेन्या जाथैं चली ।।
सहस बांह केहरि परांण, जरजोधन घाल्यौ खै मान[1] ।। क०ग्रं० पृ० २०२-२०३।

' दे० शब्दभा० १ पृ० ८६

---

[1]- गीता ११ । १६-२१-२२-३६-४०

'२' व्यूह रूप

व्यूह रूप से ब्रह्म सृष्टि का पालन और संहार करते है गीता अ० १०-११ । कबीर के राम स्रष्टा, पालक और हर्ता है -

मैं सिरजौ मैं मारता, मैं जारौ मैं खाउँ ।

जल अरु थल मै मै रमा, मौर निरजन नाउँ ।।बीजक पृ०११।

है प्रतिपाल काल नहिं वाके, ना कहूँ गया न आया ।।बीजक पृ० ३५।।

'३' विभव रूप

विभव रूप से भगवान् नर लीला किया करते हैं[1] । कबीर के राम ने भक्ति भाव के कारण नरसिंह रूप मे प्रकट होकर प्रह्लाद का उद्धार किया था --

खभा मैं प्रगट्यौ गिलारि, हरनाकस मार्‌यौ नख बिदारि ।

महापुरुष देवाधिप, नरस्यघ प्रकट कियौ भगति भेव ।।

कहै कबीर कोई लहै न पार, प्रहिलाद ऊबार्‌यौ अनेक बार ।।

क० ग्र० पृ० २१४ दे० पृ०३०७ भी.

:४ अन्तर्यामी रूप

अन्तर्यामी रूप से ब्रह्म जीव के अन्तर मे निवास करते है[2] । कबीर ने कठोपनिषद् की शैली में कहा है[3] --

जैसे बाढ़ी काष्ट ही काटै, अगिनि न काटै कोई ।

सब घटि अंतरि तूंही व्यापक, धरै सरूपै सोई ।।क०ग्रं० पृ० १०५-१४४।।

'५' अर्चावतार

अर्चावतार भक्ति की रुचि के अनुसार, मूर्ति में रहने वाली भगवान् की उपास्य मूर्ति है । कबीरदास ने मूर्ति पूजा का तो कहीं पर भी उल्लेख नही किया है किन्तु उनकी मूर्ति का संकेत अवश्य दिया है --

---

१- गीता ४।८ २- गीता १८।६१

३- अग्निर्यथैको भुवन प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपोबहिश्च।।कठो०२।२।९
~~भीतर~~- व [illegible] रत्नाकर पृ० ३६२
,, भारतीय दर्शन डा० उमेशमिश्र पृ० ४१४-१५

लोहा कंचन समि करि देखै, ते मूरति भगवाना ।।१८४।।क०ग्रं० पृ० १५०

प्रश्नोपनिषद् में ब्रह्म को १६ कलाओं[1] वाला कहा गया है -

तस्मै स हो वाच । इहैवान्त शरीरे सोम्य स पुरुषो यस्मिन्नेता षोडशकला प्रभवन्तीति ।।२।। प्रश्न ६।।

कबीर ने भी अपने ब्रह्म को १६ कलाओं वाला कह कर ब्रह्म के मूर्त रूप की ओर संकेत किया है --

सोलह कला सपूरण छाजा, अनहद के घरि बाजै बाजा ।२०२।क०ग्रं० पृ०१५७।

कबीर ने नाम, प्रणव, शब्द, अक्षर, रूप, गुण, भाव, और अवतारवाद तथा ब्रह्म की कलाओं के द्वारा, ब्रह्म के जिस व्यक्त, सगुण या साकार स्वरूप का चित्रण किया है, वह उपासना की दृष्टि से किया गया प्रतीत होता है, क्योंकि दार्शनिक क्षेत्र में कबीर ने अव्यक्त, निर्गुण, निराकार, नि स्सीम और परात्पर ब्रह्म का उल्लेख किया है । कबीर ने नाम, प्रणव, शब्द, अक्षर, रूप, गुण, भाव, अवतारी पुरुष और १६ कलाओं वाले ब्रह्म के प्रतिकूल अनाम, अबोल, निरक्षर, अरूप, निर्गुण, शून्य अज,अनादि और अकल ब्रह्म का प्रतिपादन करके ब्रह्म के निराकार और नेति नेति वाले स्वरूप का उल्लेख किया है ।

कबीर के ब्रह्म अनाम हैं, उनका न कोई स्थान है, न कोई ग्राम--

अविगति की गति क्या कहौं, जाके गाँव न ठाँव ।

गुन विहीना पेखना, क्या कहि लीजै नाँव ।।बीजक पृ० ६'दे०क०ग्रं०पृ०२३८

अनाम ब्रह्म को अबोल भी कह सकते हैं । कबीर ने अपने ब्रह्म को अबोल भी कहा है --

बोल अबोल अडोल अवाहक, ऐसी गतिया जा कीहै ।।१।।शब्दा०भा० २ पृ०११०

जहाँ बोलत तहँ अक्षर आया, जहँ अक्षर तहँ मनहिं दृढ़ाया ।

बोल अबोल है सोई, जिन्ह यह लखा सो बिरला होई ।।बीजक पृ० १०४।

:दे० पृ० २२४ पदपाठ,क०ग्रं० पृ०३१० भी

१- प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, मन, इन्द्रिय, अन्न,वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक और नाम ये १६ कलाएँ हैं । प्रश्नो० ६।४।:

जो ब्रह्म अनाम और अबोल है, उसे शब्दातीत और निरक्षर भी कहा जा सकता है। कठोपनिषद् :१।३।१५ में ब्रह्मको अशब्द कहा गया है। कबीर ने अपने राम को शब्दातीत कहा है, जो अधरद्वीप मे विराजमान् है --

सत्रह संख पै अघर द्वीप-जहँ, सब्दातीत बिराजै।

निरतै सखी बहु बिधि सोभा, अनहद बाजा बाजै ।।६।।शब्दा०मा०३पृ०१।।

शब्दातीत ब्रह्म को अक्षरो में आबद्ध नहीं किया जा सकता[1]। अक्षर मे ही निरक्षर ब्रह्म का वास रहता है। इस रहस्य को कोई ज्ञानी ही जान पाता है। विवेकशील पुरुष अक्षर का भेद न करके, उसमे निरक्षर का दर्शन करते हैं --

अच्छर में नि अच्छर होई। ज्ञानी होय सो बूझै कोई।।

ज्ञानी होय सो ज्ञान बिबेकी।अच्छर भेदी नि.अच्छर देखी।।३७।।

अखरावती पृ०२१।।

अनाम, अबोल, शब्दातीत और निरक्षर तत्त्व अरूप होता है। कबीर के ब्रह्म[2] अरूप, अरेख, अवर्ण, अजन्मा, अविज्ञात, अकथनीय और अरग, अगोत्र, हैं --

रूग खोज पीछैं नहीं, तूं तत अपरपार।

बिन परचै का जांनियें, सब झूठै अहंकार ।।

सुंनि असथूल रूप नही रेखा, द्रिष्टि अद्रिष्टि छिप्यौ नहीं पेखा।।

बरन अबरन कथ्यौ नहीं जाई,सकल अतीत घट रह्यौ समाई ।।

आदि अंति ताहि नही मधे, कथ्यौ न जाई आहि अकथे ।।

अपरपार उपजै नहीं बिनसै, जुगति न जांनियै कथियै कैसें ।।

जस कथियै तस होत नहीं, जस है तैसा सोइ।

कहत सुनत सुख उपजै, अरू परमारथ होइ ।।क०ग्रं० पृ० २३०।।

दे० पृ० १०० पद ३७ ।।

१- यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तम.।।गीता-१५।१८।।

२- कठो० ३।१५,बृहदा० ३।८।८

अबरन बरन स्याम नही पीत, हाहू जाइ न गावै गीत ।

अनहद सबद उठै फणकार, तहा प्रभु बैठे समरथसार ।।क०ग्रं०पृ०१६६ ।।

जाके जाति गोत कछु नाहीं । महिमा बरनि न जाय मो पाहीं।।

रूप अरूप तेहि नावँ ।बर्न अबर्न नहीं तेहि ठाँव ।।शब्दा०भा० पृ०११८।।

बरन बिबरजत ह्वै रह्या, ना सो स्याम न सेत ।

ना वो बारा ब्याह बराता, पीत पितबर स्याम न राता ।।क०ग्रं० पृ०२४२।।

निराकार और अरूप ब्रह्म का कोई परिमाण नहीं होता । अत कबीर का ब्रह्म न हल्का है और न भारी[1] --

भारी कहौं तो बहु डरौं, हलका कहौं तो फूंठा ।

मैं का जांणो राम कूं, नैनूं कबहु न दीठा ।।१।। कबीर डा० द्विवेदी पृ०३१३

जो ब्रह्म अरूप, अरेख, अवर्ण और अविज्ञात है, उसका कोई गुण भी नही होता । भाट्टमत मे रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, परिमाण, पृथकत्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व, एवं स्नेह ये १३ गुण माने गये हैं[2] । कबीर के ब्रह्म में उपर्युक्त गुण नही है । इन गुणो के अभाव में ही ब्रह्म को निर्गुण कहा जाता है । निर्गुण ब्रह्म का अर्थ गुण-रहित ब्रह्म से नहीं है । यदि कबीर निर्गुण ब्रह्म को गुणरहित मानते होते तो वे उनके अलौकिक गुणो का विवेचन नहीं करते । कबीर ने ब्रह्म के अलौकिक गुणो का उल्लेख किया है । कबीर के राम ज्योति स्वरूप, और दिव्य गुणो के समुद्र हैं । वे ज्ञान स्वरूप, आनन्द रूप, अलख, अनादि,अनन्त,अगोचर,अभय, अभग,अगम,अखड,अविनाशी, सर्वव्याप्त,क्षुधा,पिपासा से रहित कर्ता, धर्ता, हर्ता, कर्म फल प्रदाता और अनन्त भुजाओ वाले हैं[3]। श्रुतियों के अनुसार कबीर ने यह भी कहा है कि निर्गुण ब्रह्म का गुणो से कोई विरोध नहीं है, गुण में निर्गुण और निर्गुण मे गुण अवस्थित रहते हैं[4] ।

१- बृहदा० ३।८।८ २- पूर्व मीमासा पृ० ६५ गगानाथ झा ।

३- क०ग्रं० पृ०१८७,६८,२४१,१७८,१६६,१६२, क०व० पृ० ११५ ।।

४- संतो धोखा कासू कहिये ।

गुंण में निरगुंण निरगुंण में गुण है,

बाट छाड़ि क्यूं बहिये ।।क०ग्रं० पृ० १४६ ।।

ब्रह्मसूत्र ३।२।११-१२-१३-१४-१५-१६-१७-१८ , ब्रह्मबिन्दु उपनिषद् १२ ।।

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का यह मत है कि निर्गुण मत के आदि प्रवर्तक कबीर थे[1]। यह ठीक है कि निर्गुण हिन्दी साहित्य में निर्गुण मत का सुस्पष्ट और सुशृंखलित स्वरूप निर्धारित करने वाले प्रथम कवि कबीर ही थे, किन्तु कबीर के पूर्व निर्गुण ब्रह्म का प्रवर्तन नामदेव अपने हिन्दी पदों में कर चुके थे[2]।

कबीर के राम लौकिक और प्राकृतिक गुणों से रहित हैं -

राजस तामस सातिक निर्गुन, इनतैं आगे सोई ।।३।।शब्दा०भा० २ पृ०५१।।

वे अविगत अव्यक्त हैं। श्रुति,स्मृति,पुराण,व्याकरण,शेष,गरुड़,और कमला भी उनके मर्म को नहीं जान सकते। कबीर के मतानुसार ऐसे ही अव्यक्त निर्गुण ब्रह्मका जप करना चाहिए -

निरगुण राम निरगुंण राम जपहु रे भाई,अविगति की गति लखी न जाई।
चारि बेद जाकै सुंमृत पुराना, नौ व्याकरना मरम न जाना।
सेस नाग जाके गरूड़ समांना, चरन कंवल कवला नहीं जांना ।।
कहै कबीर जाकै भेद नाहीं। निज जन बैठे हरि की छाहीं ।।४६।क०ग्रं०पृ०१०४।

वह निर्गुण ब्रह्म वेदातीत, भेदातीत, पाप और पुण्य से परे, ज्ञान और ध्यान का अविषय, तीन लोकों से विवर्जित, और अनुपमेय है -

बेद बिवर्जित भेदबिबर्जित, बिबर्जित पापरू पुंन्यं ।।
ग्यानं बिबर्जित ध्यानं बिबर्जित, बिबर्जित अस्थूल सुंन्यं ।।
भेख बिबर्जित भीख बिबर्जित, बिबर्जित ड्यंभक रूप।
कहै कबीर तिहूं लोक बिबर्जित, ऐसा तत्व अनूपं ।।२२२०।क० ग्रं० पृ० १६३।।

श्वेताश्वरोपनिषद् में यह कहा गया है कि ब्रह्म हृदय में इस प्रकार व्याप्त है जिस प्रकार तिल में तेल व्याप्त रहता है[3]। इसी के अनुसार कबीर ने भी कहा है-

साहिब हम में साहिब तुम में, जैसे तेल तिलन में। शब्दा०भा०२ पृ०४७।।

१- डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' पृ० ३० ।।

२- 'हिन्दी को मराठी सन्तों की देन' आचार्य विनयमोहन शर्मा पृ० १३०।।

३- तिलेषु तैलं दधनीव सर्पिरापः स्रोतःस्वरणीषु चाग्निः।
एवमात्माऽऽत्मनि गृह्यतेऽसौ सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति ।।१।१५। श्वेता०

वह ब्रह्म बाहर और भीतर सब ओर व्याप्त है। वह न तो दृष्टि का विषय है और न मुष्टि का। वह अलख, अगम और अगोचर है, उसे ज्ञान पुस्तक.का विषय नहीं बनाया जा सकता। उसे वही जानते है, जो उसे पहिचानते हैं। जो उसे नहीं जानते, वे कथन पर विश्वास नहीं करेंगे -

ऐसा लो तत ऐसा लो मै केहि विधि कहौं गभीरा लो।
बाहर कहौं तो सत्गुरु लाजे भीतर कहौ तो झूठा लो।।
बाहर भीतर सकल निरंतर गुरु परतापै दीठा लो।
दृष्टि न मुष्टि अगम अगोचर, पुस्तक लिखा न जाई लो।
जिन पहिचाना तिन भल जाना कहे न को पतियाईलो।।पदा० पृ० २८।।

कबीर का यह मत है कि सगुण ब्रह्म .की उपासना में संसार अपने को भूला हुआ है, किन्तु निर्गुण ब्रह्म का कोई रहस्य नही जानता--

सरगुन में संसार भुलाना। निर्गुन का कोई भेद न जाना।।अखरावती पृ०१०

कबीर ने निर्गुण ब्रह्म के लिये निरजन शब्द का प्रयोग किया है। यह निरंजन[1] कर्त्ता और हर्त्ता है, जल और थल में व्याप्त ब्रह्म का नाम निरंजन है --

मैं सिरजौ मैं मारता, मैं जारौ मैं खाऊँ।
जल अरू थल मैं मैं रमा, मोर निरजन नाऊँ।।बीजक पृ०११।

कबीर ने एक स्थान पर निरंजन को ठग भी कहा है--

अवधू निरंजन जाल पसारा।
स्वर्ग पताल जीव मृत-मंडल, तीन लोक बिस्तारा।
ब्रह्मा बिस्नु सिव प्रगट कियो है, ताहि दियो सिर भारा।।१।।
ठाँव ठाँव तीरथ ब्रत थाप्यो, ठगने को संसारा।
माया मोह कठिन बिस्तारा,आपु भयो करतारा।।२।।शब्दा० भा०१ पृ०३०।

किन्तु ठग से कबीर का आशय कपटी और शैतान से नहीं है। कई पदों से यह स्पष्ट है कि काल से उनका मतलब निरंजन से नही है और ब्रह्म न तो उनकी दृष्टि मे ठग ही है और न ब्रह्म ज्ञान ह्रेय ही[2]।

१- श्वेताश्वतरोपनिषद् .३।१-२. में ब्रह्म को स्रष्टा कर्त्ता और शासक कहा गया है।
२- कबीर 'डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी' पृ० ६४-६५।।

निरंजन, कबीरदास के राम की भाँति सबसे न्यारा है। निरंजन राम के अतिरिक्त विश्व मे जो कुछ भी है, वह सब अजन है। ब्रमा, बिष्णु, शिव, देव, पुराण, विधा, पूजा, दान, पुण्य, तप, तीर्थ आदि सब अंजन है -

राम निरंजन न्यारा रे, अजन सकल पसारा रे।
अंजन उत्पति औ ओंकार, अजन माइया सब बिस्तार।।
अजन ब्रह्मा सकर इद्र, अजन गोपी संगी गोविद ।।
अजन वाणी अजन बेद, अजन कीया नाना भेद।
अजन विधा पाठ पुराण, अंजन फोकट कथहिं गियान।।
अजन पाती अजन देव, अंजन करि करै अंजन सेव।
अजन नाचै अंजन गावै, अजन भेष अनत दिखावै ।।
अजन कहा कहाँ लग केता, दान पुनि तप तीरथ जेता।
कहै कबीर विरला जागै। अजन छाड़ि निरंजन लागै।। क०ग्र० पद ३३६।।

वह निर्गुण ब्रह्म अनन्त है। वह निकट भी है और दूर भी[1], वह न निकट है और न दूर। वह सर्वव्याप्त है छदो० ७।२५।१

एक तैं अनँत है अनँत तैं एक है। ज्ञा०गु० रे० पृ०११।
नेड़ै थैं दूरि दूर थैं नियरा जिनि जैसा करि जाना। क०ग्र० पृ० ६०।।
नही सो दूरि नही सो नियरा, नही सो तात नहीं सो सियरा।।
कहै कबीर बिचारि करि, जिनि को खोजै दूरि।
ध्यान धरौ मन सुध्ध करि राम रह्या भरपूरि ॥ क०ग्र० पृ०२४३ २४२।।

औपनिषदिक शैली में कबीर ने यह भी कहा है कि वह अंगुष्ठ परिमाण वाला है[2]--

चलो जँह बसत पुरुष निबाँना।
अवगति गति जहँ गति गमनाही, दुइ अंगुल परिमाना।।१।। शब्दा०भा०२ पृ०६२

वह ब्रह्म इद्रियातीत होते हुए भी इन्द्रियों जैसे कार्य करता है। वह बिन पग चलता है, और पर बिना उड़ता है, नैत्र बिना देखता है और श्रवण बिना सुनता है[3]-

---

१- तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके।
तदन्ततरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यत.।।५।। ईशो०५। गीता १३।१५ मुं०३।१।७

२- अंगुष्ठमात्र. पुरुषोऽन्तरात्मा सदाजनाना हृदये सन्निविष्ट:।। कठो०२।३।१७ . २।१।१२ भी

३- गीता १३।१४, श्वेता० ३।१७-१९ अपाणिपादोजवनो ग्रहीतापश्यत्यचक्षु: स श्रृणोत्यकर्ण:।। ३।१९ श्वेता०।।

सतगुरु सोईं दया करि दीन्हा, ताते अनचिन्हार मै चीन्हा ।

बिन पग चलना बिन पर उड़ना, बिना चुच का चुगना ।

बिना नैन का देखन पेखन, बिन सरवन का सुनना ।।१।।

बिन हाथनि पाइन बिन काननि,बिन लोचन जग सूझै ।।

बिन मुख खाइ चरन बिन चाले, बिन जिम्या गुण गावै ।।क०ग्र० पृ०१४०।

उपर्युक्त भाव से सम्बन्धित कबीर के और भी पद मिलते हैं ।

जो ब्रह्म निर्गुण है उसमे किसी प्रकार के भाव भी नही हो सकते । कबीर का निर्गुण ब्रह्म भाव रहित है --

कह्या न उपजै उपन्या नही जाणै, भाव अभाव बिहूना ।

उदै अस्त जहां मति बुधि नाहीं, सहजि राम ल्यौ ब लीना ।। १७६।।क०ग्र०पृ०१४८।।

अभावास्था को शून्य भी कहा जा सकता है । कबीर ने अपने ब्रह्म को शून्य और निरालम्ब कहा है-

सून्य सहज मन सुमिरते ।प्रगट भई एक ज्योति ।

ताही पुरुष की मै बलिहारी ।निरालब जो होत ।।बीजक पृ०५।।

कबीर ने शून्य शब्द का प्रयोग बौद्ध दर्शन मे प्रयुक्त शून्य शब्द जैसा नही किया है ।

कबीर सहज शून्यावस्थामे भी रसास्वादन करते है -

'सहज सुनिमै जिनि रस चाख्या सतगुरु थै सुधि पाई ।

दास कबीरा इहि रसि माता कबहूं उछकि न जाई ।।क०ग्र०पृ०१११।।

अभाव और शून्य मे आकार की कल्पना नहीं की जा सकती । अत भाव रहित निर्गुण ब्रह्म से मातृ पितृ, सुत,पति,पत्नी जैसे साकार सम्बन्ध स्थापित नही किये जा सकते । इसी बात को पुष्ट करते हुए कबीर ने कहा है कि ब्रह्म न शब्द है और न स्वाद, उसके न कोई माता है और न कोई पिता, उसके सास श्वसुर आदि भी नही हैं, न वह पुरुषहै और न स्त्री, और न वह किसी प्रकार की क्रीड़ा ही करता है[१] --

ना तिस सबद न स्वाद न सोहा, ना तिहि मात पिता नही मोहा ।।

ना तिहि सास ससुर नहीं सारा, ना तिहि रोज न रोवनहारा ।।

ना तिहि सूतिग पातिग जातिग, ना तिहि माइ न देव क्यापिका।।

१- कबीर के ये भाव उपनिषदो से प्रभावित हैं --

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवाय नपुंसक:।। श्वेता०५।१०, अथर्व०१०।८।२७

ना तिहि जाति पांत्य कुल लीका, नां तिहि छोति पवित्र नही सीचा ।

पुरिष न नारि वैरै नही क्रीरा,घाम न धाम न व्यापै पीरा।।क०ग्र०२४२-२४३।।

श्रुतियो मे यह कहा गया है कि इस व्यक्त ब्रह्मांड के पार ब्रह्म के तीन पाद और अवस्थित है[1]। कबीर ने भी ब्रह्मांड के पार अपने ब्रह्म का अस्तित्व माना है । कबीर ने उपासना की दृष्टि से ब्रह्म मे जिन लौकिक रावधों का आरोप किया है, वे भी अलौकिक भाव से ही समाविष्ट हैं ।

कबीर ने ब्रह्म को जो पति कहा है, वह इस ब्रह्माड के पार रहने वाले पति है -

ब्रह्मंड पार वह पति सुंदर है, अब से भूलि जिनि जाव ।।४।।शब्दा०भा०२ पृ०७६।।

और जो पिंड और ब्रह्मांड से परे है, वही हरि है --

प्यड ब्रह्मड कथै सब कोई, वाकै आदि अरु अंत न होई ।

प्यड ब्रह्मंड छाड़िजे कथिये, कहै कबीर हरि सोई ।।१८०।।क०ग्र० पृ०१४६

जिस ब्रह्म का कोई लौकिक स्वरूप नहीं है, और जो भाव रहित है वह जन्मा नहीं होसकता । कबीर ने ब्रह्म के अवतारी स्वरूप का कई पदो मे खंडन किया है । कबीर के मतानुसार जो उत्पन्न और नष्ट होता है वह माया है ।ब्रह्म कालातीत है, वह न कही जाता है और न कही आता है[2]। दस अवतार ईश्वर की माया है ।कबीर के राम दशरथ के घर उत्पन्न नहीं हुए थे और न उन्होने लंका के राजा को सताया था --

सतो आवै जाय सो माया ।

प्रतिपाल काल नहि वाके, ना कहू गया न आया ।।

दस अवतार ईस्वरी माया, कर्ता कै जिन पूजा ।

कहैं कबीर सुनो हे संतो, उपजै खपै सो दूजा ।।बीजक पृ० ३५।।

ना जसरथ घरि औतरि आवा, ना लंका का राव संतावा।।क०ग्र०पृ०२४२-४३

अवतारी ब्रह्म की लीलाओं का प्रत्याख्यान करते हुए कबीर ने ब्रह्म के विश्व और विराट् रूप का एक चित्र उपस्थित किया है--

---

१- छादो० ३।१२।६

२- ब्रह्मसूत्र २।३।१७, कठो० १।२।१८ ।।

लोग कहै गोवरघनधारी, ताको मोहि अचमो भारी ।
अष्टकुली परबत जाके पग की रैना, सातौं सायर अजन नैना ।
ए उपमा हरि किती एक ओपै, अनेक मेर नख ऊपरि रोपै ।।
घरनि अकास अधर जिनि राखी, ताकी मुगधा कहै न साखी ।।
सिव बिरंचि नारद जस गावै, कहै कबीर वाको पार न पावैं ।।[१] क०ग्र०पृ०२०१।।

उस निराकार विराट् पुरुष का न कोई रूप है और न रेखा, उसका न कोई हस्त है और न पाद, वह कर्म, धर्म, योग और युक्तिविहीन है --

हाथ न वाके पाँव न वाके, रूप न वाके रेखा ।
बिना हाट हटवाई लावै, करै बयाई लेखा ।।
कर्म न वाके धर्म न वाके, जोग न वाके व जुक्ती।।बीजक पृ०५७-५८।।

जो ब्रह्म निर्गुण, भावरहित और अजन्मा है वह कलायुक्त नही हो सकता । प्रश्नोपनिषद् मे ब्रह्म को जहाँ १६ कलाओ वाला पुरुष कहागया है, वहाँ उसे कलारहित और अमृत भी कहा है -

स एषोऽकलोऽमृतो भवति प्रश्नो० ६।५। श्वेता० ६।१९,मुं०उप०२।२।९

कबीर ने भी १६ कलाओ वाले ब्रह्म को कलारहित कहा है --

लाघा है कछू लाघा है, ताकी पारिष कौन लहै ।
अबरन एक अकल अबिनासी, घटि घटि आपरहै ।।क०ग्र०पृ०१६६।।

अनाम, अशब्द, निरकार, अरूप, अजन्मा और निर्गुण ब्रह्म की व्याख्या करने के उपरान्त कबीर ने विविध वादो का प्रतिषेध करने की दृष्टिसे अपने ब्रह्म को सगुण और निर्गुण तथा साकार निराकार ब्रह्म से ऊपर प्रतिष्ठित किया है---

बेद कहै सरगुन के आगे, निरगुन का बिराम ।
सरगुन निरगुन तजहु सोहागिनि, जाइ पहुँच निज धाम ।।३।शब्दा० भा०२ पृ० ६२
नहिं निर्गुन नहिं सगुन भाई, नहिं सूच्छम अस्थूल ।
नहीं अच्छर नहिं अविगत भाई, ये सब जग के मूल ।।५।।शब्दा०भा०३ पृ०२
कोई ध्यावै निराकार को कोइ ध्यावै आकारा ।
वह तो इन दोऊ ते न्यारा, जानै जाननहारा ।।४।।शब्दा०भा०१ पृ०७६।।

१- गीता अ० ११ ।।

कबीर ने ब्रह्म को निराकार और निर्गुणत्व से परे बताकर योगदर्शन के अनुसार यह भी कहा है कि वह ब्रह्म कर्मरहित है यो०१।२४।

ता को करता कैसे कहिये, जो करमन हाथ बिकायो ।।शब्दा०भा०२ पृ०१७।

कर्म न वाके धर्म न वाको, जोग न वाके जुक्ती ।।बीजक पृ०५७-५८।।

सृष्टि के पूर्व ब्रह्म और ब्रह्माड का जो स्वरूप था उसका नासदीय सूक्त मे उल्लेख किया गया है । इसी के भाव साम्य पर कबीर नेभी अपने ब्रह्म का अनेक पदो शब्दा० भा०२ पृ० ११७,११८ क०ग्र० पृ०१६२' मे वणन किया है[१] --

जे नही उपज्या घरनि सरीरा, ताके पथि न सीच्या नीरा।

जा नही लागे सूरजि के बाना, सो मोहि आनि देहु को दाना।।

जब नही होते पवन नहीं पानी, जब नही होती सिष्टि उपानी।

जब नही होते प्यड न बासा, तब नही होते घरनि अकासा।।

जब नही होते सबद न स्वाद, तब नही होते बिधा न बाद ।।

जब नही होते गुरु न चेला, गम अगमे पथ अकेला ।।क०ग्र० पृ० २३८।।

अनाम, अबोल, अशब्द, निरंकार, अरूप, अगुण, अभाव, अजाना, अकर्मा अकल ब्रह्म और नासदीय सूक्त की शैली पर ब्रह्म का जोबिवेचन किया गया है, वह एक प्रकार से ब्रह्म का नकारात्मक और अभावात्मक स्वरूप हीहै । अब तक यह नही कहा गया कि ब्रह्म का स्वरूप क्या है ?

ब्रह्म का रूप स्पष्ट करते हुए प्रश्नोपनिषद् मे यह कहा गया है कि जिससे प्राण उत्पन्न होता है, वह ब्रह्म है ।.प्रश्नो० ३।१-२-३: ।उपनिषदो मे यह भी कहा गया है कि वह ब्रह्म सुख और आनन्द है ।[२] इसी के अनुरूप कबीर ने यह भी कहा है कि प्राण कहाँ से उत्पन्न होता है, और मृत जीव कहाँ समाविष्ट होता है, एवं इंद्रियाँ कहाँ विश्राम करती है 'अर्थात् जहाँ से प्राण उत्पन्न होते हैं,मृत जीव जहाँ समाविष्ट होता है और इद्रियाँ जहाँ विश्राम करती है वह ब्रह्म है । :

१- नासदासीन्नो सदासीत्तदानी नासीद्रजो नो व्योमा परोयत् ।
किमावरीव कुह कस्य शर्मन्नभ किमासिद्गहन गभीरं ।।१।।
व मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेत'।।
आनीदवात स्वधया तदेक तस्माद्धान्यन्नपर कि चनास।।२।ना०सू०ऋ०१०।१२९।।

२- बृहदा० ३।८।१२८ तैत्ति० ३।६, २।६, ब्रह्मसूत्र १।१।१२।।,३।३।११-१२-१३।।
'तैत्ति०३।१।।

सो कछू बिचारहु डित लोई ।

जाके रूप न रेख बरण नही कोई ।।

उपजै प्यड प्रान कहा थै आवै, मूवा जीव जाइ कहा समावै ।।

ईा कहा करहि बिश्रामा, सो कत गया जो कहता रामा।।[1]

पवनत तहा सबद न स्वादं, अलष निरजन बिधा न बादं ।।क०ग्र०पृ०१००।

कबीर ने ब्रह्म को सुखसिन्धु एव पूर्ण आनन्द भी कहा है -

कबीर सब सुख राम है, और दुखा की रासि ।।क०ग्र० पृ० ७६।।

सुख सागर मे परौ हो सजनी दुख को देहु बहाइ हो ।।शब्द०भा०२ पृ०१०७।।

पूर्न आनद है राम सोई ।।ज्ञान गुदड़ी पृ०६।।

ब्रह्म एक है या दो इस सबंध मे बहुत मतभेद है।मुसलमान कहते हैं कि खुदा एक है किन्तु कबीर इस मत से सहमत नहीं हैं। उनका ब्रह्म घट घट मे व्याप्त है --

मुसलमान कहै एक खुदाइ ।

कबीरा कौ स्वामी घटि घटि रह्यौ समाइ ।।३३०।।क०ग्र० पृ० २००।

कबीर ने कल्पनातीत ब्रह्म का उल्लेख करने के उपरान्त और मुसलमानो के एक ब्रह्म का निराकरण करने के बाद भी कुछ पदो मे एक ब्रह्म का उल्लेखकिया है --

कबीर एक न जांणिया,तौ बहु जांण्या क्या होइ ।

एक तै सब होत है, सब तै एक न होइ ।।६।।क०ग्रं० पृ० १६।।

तीनि भवन महि एको जोगी, कहहु कवनु है राजा ।।३।।संतकबीर पृ०२।

कबीर ने एक ब्रह्म का उल्लेख किया अवश्य है किन्तु कबीर का यह प्रतिपाद्य ब्रह्म नही है। कबीर का प्रतिपाद्य ब्रह्म एक और दो के भ्रम से परे, वह जैसा हैवैसा ही है--

एक कहौं तौ है नही, दुइ कहूं तो गारि ।

है जैसा तैसा रहै,कहै कबीर बिचारि ।।बीजक पृ० ६८।

:दे० पृ० ४७ भी ः

कबीर ने यह भी कहा है कि उस ब्रह्म को किसी पक्ष द्वारा नही समझाया जा सकता -

---

1- तैचि० ३।१

पषा पषी के पषाणी, सब जगत भुलाना ।

निरपष होइ हरि भजै सो साध स्याना ।।क० ग्र० पद० १८१ पृ० १४६।।

ब्रह्म और ब्रह्माड का विवेचन करने के उपरान्त श्रुतियो में यह कहा गया है कि ब्रह्म नेतिनेति है । उस ब्रह्म को कोई नही जानता और न उसका कोई प्रवचन कर सकता है -- बृह० २।३।६,केनो० १।३

क इत्था वेद यत्र स ।।१।२।२५

स वेत्ति वेद्य न च तस्यास्ति वेत्ता । श्वेता० ३।१६

उपनिषदों में यह भी कहा गया है कि जो यह कहता है कि मै ब्रह्म को जानता हूँ वह वस्तुत' उसे नहीं जानता 'केनोपनिषद् २।२-३ ।कबीर ने भी ब्रह्म का विवेचन करने के उपरान्त यह कहा है कि ब्रह्म का प्रवचन करना कठिन है । इस बात को कबीर ने अनेक पदों में स्पष्ट किया है । ब्रह्म क्या है, उनके अनुसार इसके संबंध में मौन रहना ही श्रेयस्कर है --

कहैं कबीर मुख कहा न जाई, ना कागद पर अंक चढ़ाई ।

मानो गूँगे सम गुड़ खाई,कैसे बचन उचारा हो ।१२।।कबीर पृ०२७७डा०द्विवेदी।

जो दीसै सो तो है नाहीं, है सो कहा न जाई ।

सैना बैना कहि समझाओं, गूँगे का गुँड भाई ।।१।।शब्दा०भा०१ पृ०७६

दे० क०ग्र० पृ० ६०,शब्दा०भा०३ पृ०१,२,५

ज्ञा० गु० रे० और झूलने 'पृ० ८ ।

तेरी कुदरति किन्हू न जानी, पीर मुरीद काजी मुसलमानी ।।

देवी देव सुर नर गण गंध्रप, ब्रह्मा देव महेसुर ।।

तेरी कुदरति तिनहूं न जानी ।।क०ग्रं०पृ० २२३।।

कबीर ने[1] मुक्तिकोपनिषद् के अनुसार यह भी कहा है कि वह 'ब्रह्म. उसी भाँति अज्ञात है जिसप्रकार दर्वी 'चम्मच. को पाक का रस अज्ञात रहता है --

अंध सो दर्पन बेद पुराना, दुर्बी कहा महारस जाना ।

जस खर चंदन लादेउ भारा,परिमल बास न जान गवारा।।बीजक ३२ पृ०१५।

१-अधीत्य चतुरो वेदान् सर्व शास्त्राण्यनेकश ।

ब्रह्म तत्वं न जानाति दर्वी पाकरसं यथा ।। मुक्ति० २।६५।।

रैदास

रैदास ने कबीर की भाँति ही ब्रह्म का विवेचन किया है। रैदास नाम ब्रह्म का उल्लेख करते हुए उनके विविध नामों में एकात्मभाव का दर्शन करते हैं --

कृस्न करीम राम हरि राघव, जब लग एक न पेखा।

बेद कतेब कुरान पुरानन, सहज एक नहिं देखा ।।४।।बा० पृ०४।।

रैदास ने ब्रह्म के नाम का उल्लेख किया अवश्य है किन्तु उनका उपास्यदेव देश के परे और अनाम है -

जोइ जोइ पूजिय सोइ सोइ काँची, सहज भावसत होई।

कह रैदास मैं ताहि को पूजूँ, जाके ठाँव नाँव नहि होई ।।बा०पृ०४।।

एक स्थान पर रैदास ने अपने ब्रह्म को चतुर्भुज कहा है --

माधो सगत सरति तुमारी, जगजीवन क्रिस्न मुरारी ।।

तुम मखतूल चतुरभुज, मैं बपुरो जस कीरा ।। बा० पृ० १६ ।।

किन्तु इसके आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि रैदास का ब्रह्म साकार है। रैदास का ब्रह्म निर्गुण और निराकार है। वह एक अनुपमेय, अखंड[1], पूर्ण, सर्वव्यापी अरूप और वर्ण अवर्ण से परे है --

ज्यौं तुम कारन केसवे, अतरलव लागी।

एक अनुपम अनुभवी, किमि होइ बिभागी ।।बा० पृ० ५

अबरन बरन कहै जनि कोई। घट घर व्यापि रह्यो हरि सोई ।।

बा० पृ० १६,७ मी

अबरन बरन रूप नहि जा के, कहँ लौं लाइ समाइ ।। पृ० ७

पूरन ब्रह्म बसै सब ठाँई। कह रैदास मिलै सुख साँई।।३।।पृ०२२

वह निरंजन ब्रह्म, निराकार, निर्लेप, निर्विकार, निश्चल, अजन्मा, निर्भय, अगम, अगोचर, अपार, अतर्कनीय, निर्गुण, आनन्दस्वरूप, अविनाशी, अनत, ज्ञानघन वर्जित सहज, शून्य, सत्य, एव बाहर भीतर गुप्त और प्रकट है। वह आदि मध्य और अत मे विद्यमान है। वह कनक और कनक अलकार की भाँति अद्वैत है।उसमे द्वैतभाव का नितान्त अभाव है -

---

१- अविभागोवचनात् ।।ब्रह्मसूत्र ४।२।१६।।

निरंजन निराकार निरलेपी, निरबीकार निसासी ।।३। पृ०७
निस्चल निराकार अज अनुपम, निरभय गति गोबिन्दा।
अगम अगोचर अच्छर अतरक, निरगुन अंत अनंदा ।५३।।
सदा अतीत ज्ञान घन बर्जित, निरबिकार अबिनासी ।
कह रैदास सुन्न सत, जिवन मुक्त निधि दासी ।।५३।४ ।।

मन मेरो सत सरूप बिचार ।
आदि अंत अनंत परमपद, संसा सकल निवारं ।।
करत आन अनुभवत आन, रस मिलै न बेगर होई ।
बाहर भीतर प्रगट गुप्त, घट घट प्रति और न कोई ।।५४।४
आदि हु एक अंत पुनि सोई, मध्य उपाइ जु कैसे ।
अहै एक पै भ्रम से दूजा, कनक अलंकृत जैसे ।।५४।।३ पृ० २५
कह रैदास प्रकास परमपद, का जप तप विधि पूजा ।
एक अनेक एक हरि कहौं कौन बिधि दूजा ।।४।।पृ० २६।।वाणी ।

रैदास ने नकारात्मक शैली का अनुसरण करते हुए यह कहा है कि वह न चाँद है, न सूरज, न रात है, न दिवस, न पृथ्वी है न आकाश, न कर्म है न अकर्म, न शुभ है न अशुभ, न पवन है न जल, न शीतल है न ऊष्ण, न योग है, न भोग और न क्रिया है। ऐसा जो ब्रह्म है वही सत्य स्वरूप है। कबीर की तरह रैदास के राम सगुणत्व और निर्गुणत्व से भी परे है --

चंद सूर नहिं रात दिवस नहिं, धरनि अकास न भाई ।
करम अकरम नहि सुभ आसुभ नहिं का कहि देहुँ बड़ाई ।।१।।
सीत बायु ऊसन नहिं सरवत, काम कुटिल नहिं होई ।
जोग न भोग क्रिया नहिं जाके, कहां नाम सत सोई ।।२।।
गगन धूर धूप नहि जाके, पवन पूर नहिं पानी ।
गुन निर्गुन कहियत नहिं जाके, कहौ तुम बात सयानी ।।३।।बा०पृ०७

ब्रह्म को जो निर्गुण निराकार आदि कहा जाता है, वह उसका वास्तविक स्वरूप नहीं है। ब्रह्म क्या है, यह कहना अत्यन्त कठिन है। वह जैसा है वैसा ही है, उसकी किसी से भी उपमा नहीं दी जा सकती। शिव ब्रह्मा सनकादि ब्रह्म का अंत नहीं जानते। जिस पर हरि की कृपा होती है, वही उसे जान पाता है, किन्तु वह भी उसका कथन नहीं कर सकता -

अविगति नाथ निरंजन देवा । मैं क्या जानू तुम्हरी सेवा ।
सिव सनकादिक अंत न पाये । ब्रह्मा खोजत जनम गँवाये ।।५७।३
जस तूँ तस तूँ तस तुहीँ, क्स उपमा दीजै ।।१६।३ पृ० १०
जापर कृपा सोई मत जानैं । गूँगी साकर कहा बखानैं ।।५६।६ पृ० २७

नानक

नानक ने ब्रह्म के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए काफी मात्रा में कबीर का ही अनुसरण किया है। नानक के मतानुसार गोविन्द गुण-निधान है। राम निर्गुण होते हुए भी गुणवान्[1] है, और उनके गुणों का अंत नहीं है --

गोविदु गुणी निधानु है अंतु न पाइआ जाइ ।। गु० ग्र०सा० म० १ पृ० ३३
निरगुण रामु गुणह बसि होइ । आपु निवारि बीचारि सोई ।।१।।गु०ग्र०पृ०२२

नानक के ब्रह्म का मानवी स्वभाव है और उसमें मानवी गुण भी हैं। वह ब्रह्म कृपालु और दयालु है। उसने दया करके डूबते हुए पत्थरों का उद्धार किया था यहाँ पर नानक का तात्पर्य सेतुबन्ध से प्रतीत होता है --

दइआ करहु किछु मिहर उपावहु, डुबदे पथर तारे ।।५ ।।म० १ पृ० १५६।।
तूं दइआलु किरपालु प्रभु सोई । तुधु बिन दूजा अवरु न कोई ।।२।।गु०ग्रं०पृ०१२६

सगुण ब्रह्म के उल्लेख के साथ साथ नानक ने उसके साकार स्वरूप का भी वर्णन किया है। ब्रह्म अवतार के द्वारा साकार स्वरूप धारण करता है। नानक के ब्रह्म ने कृपा करके प्रह्लाद का उद्धार किया था। नानक ने उनके दस अवतारों का भी उल्लेख किया है--

प्रभु नाराइणु गरब प्रहारी ।प्रह्लाद उधारे किरपा धारी ।।४।म०१ पृ०२२४।
सुनहु उपजे दस अवतारा । सृसटि उपाइ कीआ पासारा ।।पृ० १०३८।।
दे० गु०ग्र०सा० पृ० १३८६-६० भी

श्वेताश्वर और कठोपनिषद्[2] की शैली में नानक ने कहा है कि उस एक ब्रह्म की मूर्ति के अनेक रूप हैं --

तेरी मूरति एका बहुतु रूप ।।२।। पृ० ११६८ ।।

१- निरगुणु सरगुणु आपे सोई । ततु पछाणै सो पंडितु होई ।।१।।पृ० १२८।।

२- एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एक रूप बहुधा य करोति । कठो० २।२।१२;

औरवह सूपूर्ण कलाओं से युक्त है -

हरिरस पूरन सरब कला `गु० ग्र०सा० पृ० १३८६।।

ब्रह्म के सगुण, अवतारी और कलायुक्त स्वरूप को देखकर यह कहा जा सकता है कि वह साकार और ससीम है। किन्तु नानक का उपास्य देव निर्गुण और निराकार है। वह सबसे बड़ा[1] और अनन्त है। न उसकी कोई मा है और न बाप, न उसका कोई वर्ण है, और न रूप --

ब्रहि बड़ा कहाई अंतु न पाइआ। न तिसु बापु न माइ किनि तू जाइआ।
ना तिसु रूपु न रेख वरंन सबाइआ।ना तिसुभुख पिआस रजाधाइआ।।२।।
म०१ ।।पृ० १२७७।।

वह सर्वव्याप्त और घटवासी है -

आकासी पाताली तू त्रिभवणि रहिआ समाइ ।।२।। म०१पृ० ६२ ।।
जह जह देखा तह सुआमी। तू घटि घटि रविआ अंतरजामी ।।२।।पृ० ९६।।
वह अलख, अपार, मुक्त, सर्वव्यापक,अपरम्पार,कर्ता,स्रष्टा, धर्ता,हर्ता,व्यक्त,अव्यक्त और समर्थ है --

इसु गुफा महि अखुट भंडारा। तिसु विचि वसै हरि अलख अपारा ।।
आपे गुपतु परगटु है आपे गुर सबदी आपु वञावणिआ।१। पृ० १२४।।
आपे करता आपे भुगता। बंधन तोड़ सदा है मुकता।
सदा मुकतु आपे है सचा आपे अलखु लखावणिआ ।।४।।पृ०१२५।।
आपे करे करार आपे । आपे थापि उथापे आपि ।।
तुझते बाहरि कछू न होवै तूं आपे कारै लावणिआ ।।६।।
आपे मारि आपि जीवाए ।।
आदि पुरखु अपरंपरू आपे। आपे थापे थापि उथापे ।।२।।पृ० १२६।
करण कारण समरथु है कहु नानक बीचारि ।।२।।म०१।पृ० १४८ ।।

वह अडोल, अमोल, अमर,निरालम्ब,अगम,अगोचर, अकुल, अजाति, अयोनि, अभाव, और कालातीत और कर्मरहित है --

---

१- कठो० १।२।२०, श्वेता० ३।४।२०

तू एकंकार निरालमु राजा । तू आपि सवारहि जन की लाजा ।
अमरु अडोलु अपारु अमोलकु हरि असथिर थानि सुहाइआ ।। २।पृ० १०३६
अलग अपार अगम अगोचर ना तिसु कालु न करमा ।
जाति अजाति अजोनि समउ ना तिसु भाउ न भरमा ।।१।।गु०ग्र० पृ० ५६७।।

नानक ने निर्गुण ब्रह्म के लिये निरजन शब्द का भी प्रयोग किया है। यह निरजन अंजन मे व्याप्त रहता है --

अजन माहि निरजनु पाइआ, जोती जोति मिलावणिआ ।म०१ ।पृ०११२ ।
तैत्तिरीयोपनिषद् २।८[1] और कठोपनिषद् के अर्थ अनुरूप नानक ने यह कहा है कि वह ब्रह्म सत्य और निर्भय है, उसी के भय का शासन, पवन, पावक, पृथिवी, चद्र, सूर्य और धर्म आदि सभी मानते हैं -

मै विचि पवणु वहै सद वाउ । मै विचि घरती दबी भारि ।।
मै विचि इदु फिरै सिर भारि। मै विचि राजा धरम दुआरु।।
मै विचि सूरजु मै विचि चदु । कोह करोडी चलत न अतु ।।
मै विचि आलहि लख देरीआउ ।। मै विचि अगनि कढै वेगारि ।।
मै विचि सिध बुध सुरनाथ नानक निरभउ निरकारु सचु एकु ।।१।।म०१पृ०४६४।।

इस्लाम की भाँति नानक का ब्रह्म एक है। वही एक सृष्टि रूप मे स्वय विकसित होकर स्वय सब क्रीड़ाये करता है -

साहिबु मेरा एको है। एको है भाई एको है ।।१।।
आपे मारे आपे छोडै आपे लैवै देइ ।।
आपे वेखै आपे विगसै आपे नदरि करेइ ।।२।।म०पृ० ३५० गु०ग्र०

नानक ने ब्रह्म के सम्बन्ध मे यह कहा है कि वह सगुण, निर्गुण और निराकार है। वह एक बहुरूपो में अभिव्यक्त हो रहा है। उसी के भय से सभी देव चालित होते हैं। ब्रह्म के सम्बन्ध मे ये बोध वाक्य, उसके स्वरूप का थोड़ा बहुत परिचय भले ही देदें किन्तु उसका वास्तविक स्वरूप क्या है इसे कोई नहीं जान पाता। ब्रह्म ज्ञान गूँगे के स्वाद की भाँति अकथनीय है। वह अपनी गति मिति को स्वय ही जानता है।उसकी कुदरत का अन्य कोई कथन नहीं करसकता। इस भाव को नानक ने कई स्थानो पर स्पष्ट किया है --

---

१- भयादस्याग्निस्तपति भयात् तपति सूर्यः ।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पचमः ।२।३।३
भीषास्माद्वातः पवते । भीषोदेति सूर्यः ।भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च ।
मृत्युर्धावति पचम इति।। तै० उप० २।८।१ ।।

जिन चाखिआ सेई सादु जाणनि जिउ गुंगे मिठिआई ।।
अकथै का किआ कथीऐ भाई चालउ सदा रजाई ।।६।।गु०ग्र० पृ०६३५ ।
तेरी गति मिति तू है जाणा हि किआ को आखि बखाणै ।।
तू आपेगुपता आपे परगटु आपे समि रंगि माणै ।।७३। पृ०८४६।।
कहणा है किछु कहणु न जाइ । तउ कुदरति कीमति नही पाइ ।।१।।म० १
पृ० १५२ ।।

दादू

ब्रह्म के विविध नामों का उल्लेख करते हुए दादू ने उनमें एकात्मभाव स्थापित किया है । उस ब्रह्म के अनन्त नाम है । वही अलख इलाही और राम रहीम है --

दादू सिरजनहार के केते नाँव अनंत ।
चित आवै सो लीजिए, यौं साधू सुमिरैं संत ।।२३।।बा०भा०१ पृ०१६
अलख इलाही एकतूँ, तूँ हीं राम रहीम ।
तूँ हीं मालिक, मोहना, केसो नाउँ करीम ।।१।। बा० भा० २ पृ०६३।

दादू ने शब्द ब्रह्म का भी उल्लेख किया है । शब्द ब्रह्म समर्थ है । उसीने ही सब कुछ किया है -

एक सबद सब कुछ किया, ऐसा समरथ सोइ ।
आगैं पीछैं तौं करै जे बल हीणा होइ ।।१०।।बा०भा०१ पृ०१६६

ब्रह्म का प्रणव रूप नाम ब्रह्म के अन्तर्गत ही आता है । दादू ने एक स्थान पर आदि शब्द को ही ओंकार कहा है जो घट घट मे व्याप्त है--

आदि सबद ओंकार है, बोलै सब घट माहि ।।१२।।

दादू ने एक अन्य स्थान पर ओंकार कोनिर्गुण ब्रह्म न मान कर साकार रूप मे माना है --

निरंजन निराकार है, ओंकार आकार ।
दादू सब रग रूप सब, सब बिधि सब बिस्तार ।।११।।

नाम, शब्द, प्रणव, ब्रह्म के सगुण स्वरूप कीओर ही इंगित करते है । जितने अच्छे गुण हैं वे सभी दादू के ब्रह्म में अवस्थित हैं --

अही गुण तोर औगुण मोर गुसाईं ।।बा०भा०२।पृ०१०।।

गुणो के आधार पर ब्रह्म मे आकार की कल्पना की जा सकती है । दादू ने राम को सहज रूप और मूर्ति कह कर उसके ससीम रूप की ओर संकेत दिया है । दादू ने तीन पदों में राम की मूर्ति का उल्लेख किया है । दादू के अनुसार उस ब्रह्म की मूर्ति मन मे बसती है --

हम दादू उस देस के सहज रूप ता मांहि ।।२८ ।बा०भा०१ पृ० १७२।।

मूरति मन माहैं बसै सांसै सांस संभारि ।।५।।भा० १ पृ० १७

जिसके हृदय मे दया नही होती और बैर विरोध का भाव रहता है, उसको राम की मूर्ति नष्ट करती है --

बैर बिरोधी आत्मा, दया नहीं दिल माहिं ।

दादू मूरति राम की, ता कौं मारन जाहिं ।।३७। बा०भा०१ पृ०२३८।

किन्तु राम की मूर्ति से दादू का आशय राम के साकार स्वरूप से नहीं है, क्योंकि उन्होने सगुण और साकार स्वरूप का निराकरण किया है ।

कुरान के अनुसरण पर एक स्थान पर दादू ने यह कह कर कि ब्रह्म ~~के सगुण और~~ अर्श के ऊपर बैठा है, उसे ससीम स्वरूप प्रदान किया है -

अर्श ऊपर आप बैठा दोस्त दाना यार वे ।६५।३।बा०भा०२ पृ०४२

उपासना की दृष्टि से सभी निर्गुण भक्तो ने ब्रह्म के सगुण और साकार स्वरूप का आश्रयण लिया है किन्तु दार्शनिक दृष्टि से सभी सन्तो का उपास्य देव निर्गुण और निराकार है । ~~दादू के उपास्य देव निर्गुण और निराकार हैं।~~ दादू के उपास्य-देव निर्गुण राम हैं, इसे दादू ने स्वयं कई पदों में कहा है । दादू परब्रह्म, निर्मल निरंजन, अलख, अनादि और निर्गुण ब्रह्म को अपना उपास्य देव बतलाते हैं -

परब्रह्म परापरं, सो मम देव निरंजन ।

निराकार निर्मलं, तस्य दादू बन्दन ।।२।बा० भा० १ पृ० १

माया रूपी राम कूँ, सब कोई ध्यावै ।

अलख आदि अनादि है सो दादू गावै ।। १४०।। भा० १ पृ० १८९ ।।

निर्गुण राम रहै ल्यौ लाइ । सहजै सहजै मिलै हरि आइ ।। बा भा० पृ० १८६ ।।

दादू के राम मे कोई भी गुण व्याप्त नही है -

सहज सुन्नि सब ठौर है, सब घट सबही माहिं ।

तहा निरंजन रमि रह्या, कोइ गुण व्यापै नाहि ।।५६।।भा० १ पृ० ५१।।

~~निर्गुण राम रहै ल्यौ लाइ । सहजै सहज मिलै हरि आइ।।बा०भा०।पृ०१८६।।~~

उनके निराकार राम अनन्त भवन के राजा है -

निराकार तेरी आरती बलि जाउ अनत भवन के राइ ।।बा०भा०२ पृ०१७५

दादू के अनुसार जो कृत्रिम नहीं है, वह ब्रह्म है। ब्रह्म घटता बढ़ता नहीं, वह पूर्ण निश्चल और एक रस है, और वह जगत् मे क्रीड़ा करने नहीं आता-

किरतम नहीं सो ब्रह्म है, घटै बधै नहीं जाइ ।

पूरण निह्चल एक रस, जगति न नाचै आइ ।।१८।। बा० भा० १ पृ०१९२।।

वह कालातीत, अघट[1] और एक रस है। दादू ने कठोपनिषद् १।२।१८ और गीता २।२०,२३ के अनुरूप यह भी कहा है कि ब्रह्म न अग्नि से जलता है, न शस्त्र से कटता है, न जलमें डूबता है, न वह मिट्टी और गगन मे मिलता है -

ऐसा तत अनूपम भाई, मरै न जीवै काल न खाई ।

पावकि जरै न मार्‌यौ मरई, काट्यौ कटै न टार्‌यौ टरई ।।

आखिर खिरै नहिं लागै काई, सीत घाम जल डूबि न जाई ।।२।।

माटी मिलै न गगन बिलाई, अघट एकरस रह्या समाई ।।३।।बा०भा०२ ।पृ०६१।।

वह पुष्पवास से भी पतला है -

दादू ऐसा बड़ा अगाध है सूषिम जैसा अंग ।

पुहप बास थैं पातला, सोसदा हमारे सग ।।३०५।।बा०भा०१ पृ०७७।।

वह सामर्थ्यवान्, अवर्ण, अरूप, अरेख, अपार और सत्य है। वह न हल्का है, और न भारी, और उसकी माप तौल भी कुछ नहीं है[2] --

रूप न रेख बरण कहौं कैसा, तिन चरणौं चित रह्या समाइ।।१।।बा०भा०२ पृ०५।।

समरथ साईं साहिब मेरा ।दादू दास दीन है तेरा ।।४।।बा० भा०२ पृ० ७

नाहिं रे हम नाहीं रे । सत्य राम सब माहीं रे ।। सबद पृ० १४१।।

हलका भारी कह्या न जाइ । मोल माप नहिं रह्या समाइ ।।१।बा० पृ०२२।

दादू राम अगाध है, परिमित नाहीं पार । अबरण बरण न जाणिये,

दादू नाँव अधार।।१७।भा०१ पृ० १८।।

१- बृहदा० ३।८।८०

२- ब्रह्मसूत्र ३।२।२०

और वह आत्म तत्व में प्रकट रहता है -

राम तहाँ प्रगट रहै भरपूर । आतम कँवल जहाँ ।।सबद पृ० १४४ ।।

दादू ने अपने पूर्ववर्ती सन्तो की भाँति यह भी कहा है कि ब्रह्म कर्मरहित है योग० १।२४ ।--

कर्म फिरावै जीव कूँ, कर्मों कूँ करतार ।
करतार कूँ कोई नहीं, दादू फेरनहार ।।१६७।।भा०१ पृ० १४६ ।।
करमों के बस जीव है, करम रहित सो ब्रह्म ।
जहँ आतम तहँ परआत्मा, दादू भागा भर्म ।।२१।।भा०१ पृ० २३०।।

छादोग्योपनिषद् में कहा गया है कि भूमा ब्रह्म सुख है और अल्प 'संसार दु ख है-

यो वै भूमा तत्सुख नाल्पे सुखमस्ति ।।७।२३।१।।

इसी के अनुसार दादू ने कहा है कि ससार दु ख-सरिता है और राम सुख सिन्धु है -

दुख दरिया संसार है, सुख का सागर राम ।। बा० भा० १ पृ० १६।।

दादू ने यह भी कहा है कि वह इन्द्रियातीत होते हुए भी इन्द्रियों के सब कार्य करता है[1] -

'दादू' नैन बिन देखिबा, अग बिन पेखिबा,
रसन बिन बोलिबा, ब्रह्म सेती ।
श्रवन बिन सुणिबा, चरण बिन चलिबा,
चित्तबिन चित्यबा, सहज एती ।।१६४।बा०भा०१ पृ० ६६

'दे० भा०२ पृ० १०७,सबद पृ० ७३ भी:

दादू ने श्रुतियों[2] श्वेता०३।१४,१५,१६ यजु० ३१।१,२ अथर्व०१९।६।१-४ और गीता १३।१३' के अनुरूप ब्रह्म के विराट् रूपका भी उल्लेख किया है --

दादू सबै दिसा सौं, सारिखा, सबै दिसा मुख बैन ।
सबै दिसा श्रवनहु सुणै, सबै दिसा कर नैन ।।१। बा० २ पृ० २३।।

१- सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम ।
सर्वस्य प्रभुमीशान सर्वस्य शरण बृहत्।।१७।।
अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षु स श्रृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति वेद्य न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्य पुरुष महान्तम्।।१९। श्वेता०३।१७-१९-
गीता १३।१४

२- श्वेता० ३।३,यजु० १७।१९,अथर्व० १३।२।२६ ।।

सब दिसा पग सीस है, सब दिसा मन चैन ।

सब दिसा सनमुख रहै, सब दिसा अँग ऐन ।।

सब दिसि बक्ता सब दिसि श्रोता । सब दिसि देखनहार रे अल्ला।।सबद पृ०४१

श्रुतियों में निषेधात्मक ढग से भी ब्रह्म का स्वरूप स्पष्ट किया गया है । श्वेताश्वतरोपनिषद् में यह कहा गया है कि जब अज्ञानमय अन्धकार का सर्वथा अभाव हो जाता है, तब न दिन रहता है, और न रात । न सत रहता है और न असत्, तब एक मात्र शिव ही रहता है ४।१८ । दादू ने भी इसी प्रकार कहा है -

निर्मल तन निर्मल तत, निर्मल तत ऐसा ।

निर्गुण निज निधि निरंजन, जैसा है तैसा ।।

उत्पत्ति आकार नाहीं, रहिता गम राया ।१।।

सीत नहीं घाम नहीं, मोह नही माया ।।२।।

धरणी आकास अगम, चंद सूर नाहीं ।

रजनी निज दिवस नाहीं, पवना नहिं जाहीं ।३।

किरतम घट कला नाहीं, सकल रहित सोई ।

दादू निज अगम, निगम दूजा नाहिं कोई ।।४।।बा० भा०२ पृ० ३६।।दे०सबद२१।पृ०१४१ भी.

ब्रह्म का विविध रूपों में उल्लेख करने के उपरान्त दादू ने अपने ब्रह्म को सगुण व्यक्त और निर्गुण अव्यक्त' ब्रह्म से भी परे बताया है -

निर्गुण सगुण का कहे, नाँइ बिलबन होइ ।।१८।।भा०१ पृ० १८।।

सगुण और निर्गुण वाद से परे जो दादू का ब्रह्म है, वह एक और अद्वैत है--

दादू काया अतरि पाइया, सब देवन का देव ।१३।।

जहँ आतमराम संभालिए, तहं दूजा नाहीं और ।।१६३।।

दादू के दूजा नहीं, एकै आतम राम ।।१४।।बा० पृ० २७,८६,११५,सपा०मंगलदास स्वामी 'दे० भा० १ पृ० १६२'

दादू ने अपने राम को एक और अद्वैत कहा अवश्य है किन्तु उनका ब्रह्म सख्या से परे है उसके लिए यह नहीं कहा जा सकता कि वहएक है या दो-

एक कहूँ तो दोइ है दोइ कहूँ तो एक ।

यौं दादू हैरान, ज्यों है त्यों हीं देख ।।२४।।पृ० ८७।बा० भा०१

ब्रह्म के संबंध में यथार्थ बात तो यह है कि वह अविगत है -

दादू राम अगाध है, अबिगति लखै न कोइ ।।बा० भा०१।१८ पृ० १८।।

सुन्दरदास

सुन्दर की दृष्टि मे ब्रह्म के अनन्त नाम हैं, किन्तु ब्रह्म के नामों मे परस्परवैभिन्न नहीं है। ब्रह्म के नामो मे एकता होने पर भी सुन्दर के उपास्य देव राम हैं-

सहस्र नाम की कौन चलावै। नाम अनन्त पार को पावै।।१६।सुं०ग्रं०पृ० ६७

हिन्दू की हदि छाडिकै तजी तुरक की राह।

सुन्दर सहजै चीन्हिया एकै राम अलाह।।६।।सुं० ग्रं० पृ० ३०४।

राम नाम को छांड़ि कै और भजै ते मूढ़।

सुन्दर दुख पावै सदा जन्म जन्म वै रूढ़।।१८।सुं०ग्रं० पृ०६७७।।

सुन्दर ने नाम ब्रह्म का शब्द और प्रणव रूप में भी उल्लेख किया है -

बाणी मैं बहु भेद है सुन्दर विबिध प्रकार।

शब्द ब्रह्म परब्रह्म कौ जानैं जाननिहार।।२१।।सु०ग्रं० पृ० ७३७।।

औंम नमो नमो नमस्कार गुसाईं।। सुन्दरि ह०लि० ।

सुन्दरदास ने सगुण भक्तों के अनुरूप ब्रह्म के कुछ गुणो का वर्णन किया है। ब्रह्म में दया आदि मानवी गुण हैं। वे दीन दयाल हैं, और वे संतों का दुःख निवारण करते हैं[१] -

तुम प्रभु दीन दयाल मुरारी।

दुःख हरण दलिद्र निवारण, भक्तबछल संतनि हितकारी। सुं०ग्रं० पृ० ८५१।

सतनि कौं कोउ दुःख दे तब हरि करै सहाइ।

सुन्दर रांमै बाछरा सुनि करि दौरे गाइ।।५१।।सुं०ग्रं० पृ० ७४६।।

सुन्दर ने ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप के साथ साथ सगुण रूप को भी मान्यता दी है -

द्वै रूप ब्रह्म के जानैं। निर्गुण अरु सगुन छिपानैं।।

निर्गुण निज रूप नियारा।पुनि सगुन संत अवतारा।।ज्ञान समुद्र द्वितीयोल्लास।

ब्रह्म के सगुण स्वरूप के साथ ही सुन्दर ने उनके अवतारी स्वरूप की ओर भी संकेत दिया है -

सुन्दर जैसो भाव है तैसोई गोबिन्द।।१६।।

१- गीता ४।७-८

सुन्दर अपने भाव ते रूप चतुर्भुज होइ ।[१]

याकौ ऐसोई दूसै वाकैं रूप न कोइ ।।सु०ग्र०पृ० ७७०।।

धरती मापि एक डग करते । हाथौं ऊपर पर्बत धरते ।।३७।।सु०ग्रं०पृ० ३३७।।

सुन्दर ने नाम, शब्द, प्रणव, सगुण और अवतारी रूप मे ब्रह्म का जो विवेचन किया है उसके आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि उनका ब्रह्म साकार और ससीम है । सुन्दर ने नाम, शब्द सगुण और अवतारी ब्रह्म के प्रतिकूल अनाम, अशब्द, निर्गुण और निराकार ब्रह्म का विवेचन किया है ।

सुन्दर के ब्रह्म का न कोई मा है न बाप, न कोई कुल है न जाति, न कोई वर्ण है और न कोई नाम --

जाचिक देइ असीरा नाम लेइ काकौ रे ।

माइ बाप कुल जाति बरन नही वाकौ रे ।।१२।। सु०ग्र० पृ० ८२४।।

ब्रह्म तक शब्द की पहुँच नहीं है, और वह ब्रह्म ओंकार से परे है --

शब्द तहाॅ पहुचै नही बहु बिधि करै बखान ।

सुन्दर ऐसो आतमा अनुभव होइ प्रमान ।।२२।।पृ० ७६८। सु० ग्रं०

ऊं कार आदि उतपन्ना । ऊं कार त्रिधा भयौ भिन्ना ।

ऊंकार उरै यह माया । ऊं कार परै हरि राया ।।५।।सु० ग्र० पृ० २१७

सुन्दर के अनुसार ब्रह्म का साकार स्वरूप नहीं हो सकता, क्योंकि वह काल ग्रसित है -

काल ग्रसै आकार कौ जामें सकल उपाधि ।

निराकार निर्लेप है सुन्दर तहां न ब्याधि ।।४७।।सु०ग्र० पृ० ७७१।।

उनके दशों अवतार भी काल के ओदन बने थे -

कहत दश अवतार जगमें औतरे आई। काल तेउ झपटि लीने बस नहीं काई।।

सु० ग्र० पृ० ८६८।।

सुन्दर का उपास्यदेव अलख और निरंजन है -

अलख निरजन ध्यावउ और न जाचउ रे ।

कोटि मुक्ति देइ कोई तौ ताहि न राचउ रे ।।सु०ग्र० पृ० ८२३।।

१- गीता में ब्रह्म को चतुर्भुज कहा है 'गीता ११।४६।।:

सुन्दर ने कबीर के अनुसार यह भी कहा है कि अजन तो माया है और ब्रह्म निरजन है-

अजन यह माया करी आपु निरजन राइ ।

सुन्दर उपजत देषिये बहुस्यो जाइ बिलाइ।।१६। पृ०७६३ सु०ग्र०

निरजन ब्रह्म, सच्चिदानंद[1], अकेला और विराट् है -

सत् अरु चित आनदमय ब्रह्म बिशेषण तीन ।१।८१५।।

देह धरै यह जीव है, ईश्वर धरै बिराट।

कारज कारन भ्रम भये सुन्दर ब्रह्म निराट् ।।४०।।सु०ग्र० पृ० ८०५।

ब्रह्म सत्य जान्मिथ्यैत्यैवरूपो विनिश्चय ।२०। विवेक चूड़ामणि। ———→ -

शंकराचार्य के इस कथन के अनुरूप सुन्दरदास ने ब्रह्म को सत्य और जगत् को मिथ्या बताया है -

सुन्दर पहली ब्रह्म था अबहू ब्रह्म अखड ।

आगै हू यह ब्रह्म है मृषा पिण्ड ब्रह्मण्ड ।।३।। सु०ग्र० पृ० ८०१।।

सुन्दर के मतानुसार जो जगत् की रचना करके उससे अलग रहता है, वह राम[2] है ।जिसकी सत्ता से समस्त गुण क्रियाशील होते हैं, वह आत्मतत्व है । यही तत्व चेतन जगत् को नाना नृत्य कराता है । यह कर्ता, हर्ता और धर्ता है । ब्रह्मा, बिष्णु, महेश, काल, कर्म और सम्पूर्ण ब्रह्मांड इसके अनुशासन मे रहते है -

सांई तेरी अगम गति हिकमति की कुरबान ।

सब सिरजै न्यारा रहै सुन्दर यह है राम ।।४१।। पृ० ७६६।

जाकी सत्ता पाइ करि सब गुन ह्वै चैतन्य ।

सुन्दर सोई आतमा तुम जिनि जानहु अन्य ।।६।।पृ० ७७६।सु०ग्र०

रामहि चेतन जगत नचावै, रामहि नाना षेल षिलावै ।।५।।सु०ग्र० पृ० ८६६-६७

सुन्दर करता राम है, भरता और न कोइ ।

हरता बहुरि जानिये ऐसा समरथ सोइ ।।१८।।पृ० ७६३।

१-अपरोक्षानुभूति २४ ।। शंकराचार्य

२- तस्य कर्तारमपि मां विद्धकर्तारमव्ययम् ।।गीता ४।५-४ मी । ४।१३॥

जाकी आज्ञा में रहै ब्रह्म बिष्णु महेस । सुन्दर अवनि अनादि की धारि रहे सिर सेस ।
२२।।

सुन्दर आज्ञा में रहै काल धर्म जमदूत ।

गण गधर्व निशाचरा और जहां लगि भूत ।।२३।।

सुन्दर प्रभु की त्रास तें कंपै सब ब्रह्मंड ।।३१।।पृ० ७६४ ।सुं०ग्रं०

वह ब्रह्म न सोता है, और न जागता है -

सुन्दर सूता जीव है, जाग्या ब्रह्म स्वरूप ।

जागन सोवन तें परै सद्गुरु कह्या अनूप ।।५५।।सुं०ग्र० पृ० ६७०।।

वह अकथ, अग्रह्य, अमित, अपार, कलारहित, अमल, अज, अलख, अगाध, अविनाशी, अडोल अतोल, अमोल, अस्नेह, अखंड, अरूप, अरेख, और इन्द्रियरहित है -

अकह अगह अति अमित अपारा ।अकल अमल अज आम विचारा ।।

अलष अभेव लखै नहिं कोई । अति अगाध अविनाशी सोई ।।१०।।पृ०२१८

अडोल अतोल अमोल अमान । अदेह अछेह अनेहं निधान ।

न शेषं न अशेषं न रेषं न रूपं । नमस्ते नमस्ते नमस्ते अनूपं ।।४।।

न वक्त्रं न घ्राणं न कर्णं न अक्षं । न हस्तं न पादं न सीसं न लक्षं।।पृ०२८०सु०ग्र०

अखण्ड चिदानन्द देवाधिदेवं ।फणिन्द्रादिरुद्रादिसेवं ।।पृ० २७६।।

वह एकरस, अनादि और इन्द्रिय एव बुद्धि की पहुँच से परे है[1]। सुन्दर ने मुण्डकोपनिषद् के अनुसार यह भी कहा है कि ब्रह्म नेत्र वाणी/और न अन्य इन्द्रियों से ही ग्रहण किया जा सकता है[2] -

ताकौ आदि न अंत है मध्य कह्यौ नहिं जाइ ।

सुन्दर ऐसो आत्मा सब मे रह्यौ समाइ ।।

इन्द्रिय पहुँचै सकै नही मनहू की गमि नाहिं ।

सुन्दर जानै आपकौं आपु आपु ही माहि ।।२०।।

१- कठो० १।३।१०-११ ।।

२- न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा

नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा ।

ज्ञानप्रसादेन विशुद्ध सत्व-

बुद्धि हु पहुंचि सकै नहीं करै दूरि लग दौर ।
सुन्दर ऐसी आत्मा पहुंचि करौं और ।।२१।।

सुं० ग्र० पृ० ७६७-६८

श्रोत्र न जानत चक्षु न चानत जानत नांहि जु सूघत घ्रानै ।
ताहि स्पर्श तुचा न सकै पुनि जानत नांहि न जीभ बषानै ।।
ना मन जानत बुद्धि न जानत चित्त अहंकहि क्यौं पहिचानैं ।
सब्द हु सुन्दर जानि सकै नहि, आतमा आपु कौ आपु ही जानै ।।१०।।

सु० ग्रं० पृ० ६१८।।

ब्रह्म को इंद्रियाँ नहीं जानती, किन्तु वे ब्रह्म से ही शक्ति प्राप्त करती है, सुन्दर का यह कथन केनोपनिषद् १।।-२-४-५-६-७-८ से प्रभावित है -

राम बुलावै राम बुलावै, राम बिना यह स्वास न आवै ।
रामहिं श्रवनहुं शब्द सुनावै, रामहि नैनहुं रूप दिषावै ।।
रामहि नासा गन्ध लिवावै ~~रामहि नासा गन्ध लिवावै~~ रामहि रसना रसहि चषावै।

सुं० ग्रं० पृ० ८६६-६७:

सुन्दर ने नकारात्मक शैली में भी ब्रह्म का वर्णन किया है। वह न ऊष्मा है, न रक्त न पीत, न श्वेत और न कृष्ण, न छाया है न माया, न देश, न काल, न वृद्ध है और न बाल, न ह्रस्व है न दीर्घ, न मुक्त, न मौन, न वक्ता, न धूम्र, न तेज और न रात है न दिन ---[1]

न ग्राम न धामं न शील न चौष्णं । न रक्त न पीतं न श्वेत न कृष्णं ।
न छाया न माया न देशो न कालो । न जाग्रन्न स्वप्न वृद्धो न बालो।
न ह्रस्वं न दीर्घं न रम्य अरम्यं । नमस्ते नमस्ते नमस्ते अगम्यं ।।५।।
न बद्धं न मुक्त न मौनं न वक्तुं । न धूम्रं न तेजो न यामी न नक्तं ।।६।।पृ०२८०सुं०ग्रं०

दे० पृ० ७६७-६८ भी

नही नहीं करते रहने से ही ब्रह्म को पहिचान सकते हैं -

सुन्दर यह नहि यह नहिं यह तौ है भ्रम कूप ।
नाहि नाहिं करते रहैं सो है तेरौ रूप ।।२२।। पृ० ७७८ सु०ग्रं०

वह न सगुण है और न निर्गुण, न वह एक है न और न दो । नेति नेति कह कर भी वेद उसका भेद नहीं पा सके । ब्रह्म केसम्बन्ध में यही यथार्थ कथन है कि वह अकथ है-

न तहां सगुण न निर्गुण सारा । सु०ग्रं० पृ० ११४ ।।
नां वह सूक्ष्म स्थूल है ना वह एक दोइ । सुन्दर ऐसौ आतमा अनुभव ही गमि होइ।।
सु०ग्रं० पृ० ७९७-९८

तू अगाध तूं अगाध,तूं अगाध देवा ।
निगम नेति नेति कहैं, जानैं नहिं भेवा ।।पृ० ८५०।।
सदा रहै आनद में सुन्दर ब्रह्म समाइ ।
गूगा गुड कैसें कहै मनही मन मुसकाइ ।।५।।सुं०ग्रं० पृ० ७९६।।

जगजीवन साहेब .

सुन्दर[1] की भाँति जगजीवन के राम कुलाल हैं, जो बर्तन बनाते है किन्तु इस कुलाल का अन्त पाना कठिन है, शेष, शम्भु, ब्रह्मा, विष्णु, भी उसका अन्त नही पा सके --

साधो एक बासन गढ़ै कुम्हार ।
तेहि कुम्हार का अंत न पावौं, कैसे सिरजनहार ।।१।।बा० भा०२ पृ०४२
सेस सम्भु थके ब्रह्मा, बिस्नु तारी लाइ ।
है अपार अगाध गति प्रभु, कहूं नाहीँ पाइ ।।५।।बा०१ पृ० १-२।
वह कर्त्ता है, हर्त्ता है, वहजो कुछ चाहता है वह करता है --
करता हरता तुमहीँ आहहु, करौ मैं कौन निहोरा ।।२।।बा०भा०१ पृ० १४।
चहहु सुमेरहि किनका, कन सुमेरहि करहु ।
अहै सब बनाव तुम्हारा, गिरहिं अधरै धरहु ।।२।।बा०भा०१ पृ०३३-३७।
वह निर्गुण है, जगजीवन इसी निर्गुण ब्रह्म के उपासक हैं -
निर्गुन निहारि निरखहु अनत नाहींजाय ।
सीस दुइकर चरनन छूटि नाहीँ जाय ।।३। पृ० ४१ ।दे०भा०१ पृ० १४ भी .

---

[1]- सुं० ग्रं० १ पृ० ४७२ ।।

मूलकदास

मूलक की वाणियों में ब्रह्म का व्यक्त और अव्यक्त रूप अभिव्यक्त हुआ है। मूलक ने हरि की मूर्ति का उल्लेख किया है। इस मूर्ति पर वे बलिहारी होते हैं --

कहता मूलक मैं बिकाना हरि मूरत पर
जिसके दीदार से जुड़ता मेरा हिया है ।।१२।४ ।बा० पृ०३१।

गीता ४।७-८ के अनुसार मूलक ने यह भी कहा है कि ब्रह्म भक्तों का हित सपादन करने के लिए युग युग में विविध रूप धारण करता है -

नमो निरंजन निरंकार, अविगति पुरुष अलेख।
जिन संतन के हित धर्यो, जुग जुग नाना भेख ।।२३।।बा०पृ०३४ दे०पद २४

उपासना की दृष्टि से मूलक ने ब्रह्म के साकार, अवतारी और सगुण बा०पृ० २६,२७, २ स्वरूप का वर्णन अवश्य किया है, किन्तु दार्शनिक दृष्टि से मूलक का ब्रह्म अज और निर्गुण है। मूलकदास ने कई पदों में अवतारवाद का खंडन किया है। मूलक की दृष्टि मे दस अवतारों को देखकर मत भूलो ऐसे रूप अनेक हैं -

दस अवतार कहाँ तें आये, किनरे गढ़े करतार ।।बा० पृ० १५।।
दस औतार देखि मत भूलो, ऐसे रूप घनेरे ।।२।।बा०पृ० १६।

तैत्तिरीयोपनिषद् ३।४ मे मन को ब्रह्म कहा गया है। मूलक ने भी कहा है कि जो मन में है वही परमेश्वर है -

जोई मन सोई परमेसुर, कोइ बिरला अबधू जानै ।।२।।बा० पृ० १७।।

मूलक के ब्रह्म निर्गुण हैं। निर्गुण ब्रह्म का गुणगान कोई बिरला ही करसकता है --

कहत मूलका निरगुन के गुन, कोइ बड़भागी गावै ।।बा० पृ० १७

यह निर्गुण ब्रह्म सत्य है, और सब जीवों में व्याप्त है ---

साँचा तू गोपाल, साँच तेरा नाम है ।।२।१ पृ० ५ बा०।।
कुंजर चींटी पशू नर, सब में साहिब एक ।।२५।।बा० पृ० ३७।।

वह न कुछ खाता है और न कुछ पीता है, न वह सोता है, न जागता है, न वह मरता है न जीवित रहता है, वह इन्द्रियातीत होने हुए भी इन्द्रियों के कार्य करता है -

हमरे गुरु की अद्भुत लीला, ना कछु खाय न पीवै।
ना वह सोवै ना वह जागै ना वह मरै न जीवै ।।२।३।।

बिन पायन सब जग फिरि आवै, सो मेरा गुरु भाई ।
कह मलूक ताकी बलिहारी, जिन यह जुगत बताई ।।२।७।बा०पृ०२।।

दरियासाहब मारवाड़ वाले

संत दरिया के राम परब्रह्म हैं, वह निर्गुण, अलख, अभेव, अनादि, पूर्ण, अगोचर अगम, अपार और एक हैं --

नमो राम पर ब्रह्म जी, सतगुर संत अधारि ।
जन दरिया बंदन करै, पल पल वारू वारि ।।१।।बा० पृ०१
दरिया निरगुन राम है, सरगुन सतगुर देव ।
यह सुमिरावै राम को, वो है अलख अभेव ।।५०।।
आदि अनादि मेरा सॉंई ।
दृष्ट न मुष्ट है अगम अगोचर, यह सब माया उनही माई ।।१।।
दरिया सुमिरै एकहि राम, एक राम सारै सब काम ।।६।।बा०पृ०३४-३५।

ब्रह्म के विभव रूप से सम्बन्धित संत दरिया ने कबीर[1] से मिलता जुलता एक पद कहा है-[2]

कोट बिस्नु जा के अगवानी, संख चक्र सत सारंग पानी ।।२।।
कोट काल सकर कोतवाल, भैरव दुर्गा घरम बिचार ।।४।।
अनंत संत ठाढे दरबार, आठ सिधि नौ निधि द्वारपाल।।५।।
कोट बेद जाको जस गावै, बिद्या कोट जाको पार न पावै ।।६।।
कोट तेज जा के तपै रसोय, बरुन कोट जाके नीर समोय ।।८।।
चंद सूर जाके कोट चिराग, लक्ष्मी कोट जाके रांधै पाग ।।१०।बा०
दे० पूरा पद पृ० ३५-३६

किन्तु दरियादास अवतारवाद के समर्थक नही थे —

ब्रह्मा बिस्नू दस औतार, सुपना अंतर सब ब्यौहार ।।१४।।बा०पृ० २२।

१- क० ग्र० पृ० २०२ -२०३, शब्दा० भा० १ पृ० ८६
२- भगवान् के विभव रूप से सम्बन्धित एक पद संत दरिया का भी मिलता है
दरियासागर पृ० ५।।

तीन लोक और चौदह भुवन मे राम के समान अन्य कोई देव नही है, इस राम का कोई भी पार नहीं पा सक्ता, यह आदि और अतरहित है -

तीन लोक चौदह भवन, दरिया देखा जोय ।
राम सरीखा राम है, इसा न दूजा कोय ।।१६।।पृ० ३१।।
आदि अत मद्ध नहि जाकी, कोई पार न पावै ताकी ।।१७।।
जन दरिया के साहव जोई, तापर और न दूजा कोई ।।१८।वा०पृ०३५-३६ ।।

सत दरियादास बिहारवाले

दरिया ने ब्रह्म के लिए राम, कृष्ण, रहीम आदि नामो का प्रयोग करते हुए सबको समान माना है[1] -

तुम राम रहीम रमापति रवि हौ कलि मलि पापसमै हरता ।
तुम करम करीमा अलह पुर्ख हौ सतन्हि ताज सदा धरता ।।शब्दा०१ ८७।

दरिया के अनुसार ब्रह्म के अनन्त नाम है । एक से अनन्त का विस्तार होता है, और अंत मे पुन एक ही रहता है --

अनत नाम सकल बौराना । माया फद सब रहे भुलाना ।।
एकै सौं अनंत भौ, फूटि डारि बिस्तार ।
अतहू फिरि एक है, ताहि खोजु निजु सार ।।द० सागर पृ० २।।

नाम ब्रह्म के साथ ही दरिया की रचनाओं मे ब्रह्म के अवतारी स्वरूप का भी उल्लेख मिलता है । गीता के अनुसार दरिया ने यह कहा है कि ब्रह्म भक्तों के दु ख निवारण करने के लिए अवतरित होता है --

ताहित सरकार का दास आनि अवतरे हो जो नहि बुझै ताहि साहब बुझाई हो।
साहब हो सब संतन की पति राखि लियो अपने बलते ।
दरिया जो कहै तेरो नाम क्रिपाल सो दास के लाज सदातुम धारख।।
द० एक अनु० पृ० ६५ द० पृ० १३५ भी ।।

दरिया ने सगुण साकार ब्रह्म का उल्लेख तो किया है किन्तु उनका उपास्यदेव निर्गुण ब्रह्म है -

---

१- विस्तार के लिए देखिए - द०सा० १०-७-६५ ई,
दरिया एक अनुशीलन पृ० ६५, ५५ ।।

दरिया ने ब्रह्म के अवतारी स्वरूप का अनेक स्थानों पर खंडन किया है। ब्रह्म अविगत है। उसका कोई माता पिता नहीं है। अत न वह उत्पन्न होता है और न नष्ट होता है। उस पुरातन पुरुष का अवतार नहीं होता -

मछ कछ नाहि बराह सरूपा, वोए साहब है अबिगति रूपा।।३१ ५।
बोए साहब सामर्थ है, हारि जीति नहि जाए।
उपजि बिनसि खपए नाहीं, मातु पिता नही माए ।।द०एक अनु० पृ०४
परिमल पुर्ष मुआ नहि कबही नही हुआ नहि होगा ।।१८.१६ ।द०एक अनु०पृ०१३४
पुरुष पुरान ना होहि अवतारा। गाढ जोति करै उँजियारा।।द०सा० पृ०२

दरिया ने अपने राम को, आत्माराम, परशुराम, दशरथपुत्र राम से भिन्न पुरातन पुरुष कहा है। यह पुरुष निर्गुण है, उसमे कोई भी गुण नहीं है -

तीनि राम का करहु बिचारा, प्रथमहि आतमराम सवारा।
परसुराम दूजे यह कहई, तीजे तौ दसरथ ग्रिह अहई।।
चौथे ब्रह्म है पुर्ष पुराना, जाको जाप करहि भगवाना ।।द०एक अनु० पृ० ८।।

कहे दरिया वोय मरे ना जीवै निर्गुन पुर्ष निनार ।।वही पृ० ६६।।

उह गुन रहित तो एह गुन कैसे ढूँढ़त फिरै उदासी ।।वही पृ० १३८।।

दरिया के अनुसार वह हस्तपादरहित, रूप रेख विरहित, सत्य, सर्वव्यापक, अलिप्त, अखंड, अपार, अजर, अमर, अडोल, और एक है --

सो निर्गुन कथि कहै सनाथा। जाके हाथ पाँव नहि माथा।
निराकार आकार बिहूना। रूप रेख न अहै नमूना ।।द०सा० पृ०२०।
सब घट व्यापक एकै रामा। सरग पताल बसै सब धामा।।
एकै ब्रह्म सकल घट सोई। ताहि चिन्हहु सतसगति होइ ।।द०सा० पृ०३०
आपै साँच साँच है सोई। झूठा या जग जात बिगोई ।।द०सा०पृ० ५।
वार कहे फेरि पार बखाना, वह है ब्रह्म अलेप अमाना ।।१ ६ ।
बोए ब्रह्म अखंडित नाहि कहई, सो जिंदा जग जाग्रित अहई ।।१.८द०एक अनु० पृ०११
तुम छाड़ि दे लाज मुक्ति के खोजू अजर अमर अडोल है रे ।। पृ० ६८ वही

वह इन्द्रियातीत होते हुए भी इन्द्रियों का कार्य करता है --

बिनु पग चलै सुनै बिनु काना। बिनु कर निरति बेद करि जाना।।
बिनु चखु देखै सप्त पताला। बिनु पूरन ब्र परगट है काला ।।द०सा० पृ०

दरिया के राम सगुण और निर्गुण होते हुए भी सगुण और निर्गुण से परे हैं, वे त्रिगुणातीत हैं-

> अगुन कहे सरगुन कहे, कहेनिरंजन देव ।
> त्रिगुन अगुन तें भीन है, ता करता के सेव ।।द०एवअनु० पृ० १८१ पृ० १५
> जहा तक द्रिष्टि देखन में आवे सो माया का चीन्हा ।
> का निगुन का सगुन कहिये बोर ते दुइ से भीना ।। वही पृ० १३४।।

कबीर, रैदास, नानक, दादू और सुन्दरदास आदि निर्गुण भक्तो ने ब्रह्म के स्वरूप के सम्बन्ध मे जो विचार व्यक्त किये हैं, उनमें लगभग साम्यहै । सभी ने ब्रह्म का सगुण,साकार रूप मे उल्लेख करते हुए निर्गुण और निराकार ब्रह्म का प्रतिपादन किया है ।

ब्रह्म निर्गुण है या सगुण, निराकार है या साकार, वह एक है या दो, उसके सबंध में अन्तिम रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता । अत सभी सतो ने ब्रह्म को अविगत और अकथ कहा है ।

ख : जीव

जीव क्या है, और उसका ब्रह्म से क्या सबध है, नीचे इसका निर्गुण सन्तो के अनुसार विवेचन किया जा रहा है ।

नामदेव

दार्शनिक दृष्टि से नामदेव ने ब्रह्म और जीव मे कोई भेद नहीं मानाहै । ब्रह्म और जीव जल और जलतरग की भाँति अभिन्न है । ब्रह्म स्वय गाता, बजाता और नृत्य करता है ---

> जल तै तरंग तरंग ते है जलु कहन सुनन कऊ दूजा।
> आपहि गावै आपहि नाचै आप बजावै तूरा ।।हि को मराठी सतो की देन, पृ० २६१ ।।

कबीर

गीता १५।७: में यह कहा गया है कि जीव ब्रह्म का अंश है,[1] और वह प्रकृति

---

[1] वेदान्तदर्शन २।३।४३ -४४-४५ ; श्वेता० ६।१२-१३ वि०पु० ६।४।३६

से उत्पन्न त्रिगुणों के द्वारा देह में आबद्ध होता है १४।५ । कबीर ने यह भी कहा है कि जीव ब्रह्म का अंश है, और वह माया में फँसकर जीव नाम से ख्यात हुआ है --

कहु कबीर इहु राम की अंसु । जस कागद पर मिटै न मसु ।।१२६।क०ग्र०पृ०३०१।

जीवा कौ राजा कहैं, माया के आधीन ।१८। द०ग्र० पृ०३४।।

जीव कर्मों के द्वारा बन्धन में पड़ता है --

नाना गुन कर्म कीन्हे जीव बंधन दीन्हेऊ ।३६।।अनुरागसागर पृ०३३

जीव कर्मों के वश में है, यह कबीर ने अन्य स्थानों पर भी कहा है दे० बीजक पृ० ६१

क०ग्र० पृ० १८७, ज्ञखरा०पृ०२३

गीता में यह भी कहा गया है कि ब्रह्म प्रकृति में गर्भ को स्थापन करता है जिसके संयोग से सम्पूर्ण भूतों की उत्पत्ति होती है। समस्त योनियों में जो मूर्तियाँ उत्पन्न होती है, उन सब की योनि महद्ब्रह्म प्रकृति है, और उसमें बीज प्रदान करने वाला पिता ब्रह्म है गीता १४।३-४ रामानुजभाष्य। इसी भाव को व्यक्त करते हुए कबीर ने कहा है कि ब्रह्म वृक्ष है, उस पर माया रूपी फूल लगा हुआ है। उस फूल से तीन फल सत्व, रज, तम उत्पन्न हुए, जिनके संयोग से ८४ लाख योनियों की सृष्टि हुई है। इन योनियों में ब्रह्म बीज रूप में समाविष्ट है, अर्थात् ब्रह्म के द्वारा ही जीव जगत् में आया है --

ब्रह्म है बृच्छ ता फूल माया भई, फूल तैं तीन फल लिये उपाई।

लख चौरासी जौनि बाजी रची, ब्रह्म हीं बीज ता मैं रमाई ।।

ब्रह्म तै जीव औ जगत मे बहि रहा, बिखरिया खड ज्यों रेत समाई ।।

ज्ञान गुदड़ी पृ० १६ ।।

कर्म और भोग के कारण जीव और ब्रह्म का अन्तर स्पष्ट होता है। श्रुतियों[1] 'अथर्व० ६।१४, २० ऋ० १।१६४।२० श्वेता० ४।६-७-५' में जीव और ब्रह्म के अन्तर को स्पष्ट करते हुए यह कहा गया है कि एक ही वृक्ष पर दो पक्षी बैठे हुए हैं। इनमें से एक पक्षी 'जीवात्मा' तो फलोपभोग करता है, और दूसरा ईश्वर फलोपभोग न करता हुआ केवल देखता रहता है। इसी के भाव साम्य पर जीव और ब्रह्म के अन्तर को स्पष्ट करते हुए कबीर ने भी कहा है ---

चढ़ तरवर दो पंछी बोले, एक गुरू एक चेला।

चेला रहा सो रस चुन खाया, गुरू निरन्तर खेला ।।क०ग्रं० पृ० २२६।।

१- मुण्डकोपनिषद् ३।१।१

दो पदियों के रूपक के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कबीर द्वैतवाद के भी समर्थक थे। कबीर की रचनाओं में जीव और ब्रह्म के अन्तर से सम्बन्धित छन्द मिलते हैं, किन्तु जीव और ब्रह्म की अभिन्नता से संबंधित छन्दों की अपेक्षा वे नगण्य हैं। कबीर ने यह अनेक स्थानों पर कहा है कि जीव और ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है।

कबीर के मतानुसार जीव और ब्रह्म में कोई भेदनहीं है, जो जीव और ब्रह्म को अलग अलग मानते हैं उन्हें नर्क में पड़ना पड़ता है। वस्तुत जीव अहम् वही ब्रह्म है सोहं   बृह्दा० १।४।१० --

हम तौ एक एक करि जाना।
दोइ कहैं तिनही कौ दोजग, जिन नाहिन पहिचानां ।।५५।।क०ग्र०पृ०१०५।
सोह हंसा एक समान, काया के गुण आनहि आन ।।क०ग्र० पृ०१०५।।

श्वेताश्वतरोपनिषद् ४।४ में यह स्पष्ट किया गया है कि ब्रह्म स्वय ही नीले रग के पतग, हरे रंग और लाल आंखों वाले पक्षी, तोते, बिजली से युक्त मेघ, ऋतु और सप्त समुद्र के रूप में प्रकट हो रहा है। इसी भाव के आधार पर कबीर ने भी कहा है कि वह ब्रह्म स्वयं ही राम है और स्वय ही रावण है। वह आप ही कृष्ण है, और आप ही कंस। वह अपने आपका आप ही हनन करता है। वह आप ही भक्त और भगवान् है --

आपही रावण आप रघुनाथ जी, आपको आपही आप दलेरी।
आपही कृस्न है कंस है आप ही आपको आप आपहि हते री ।।
आपही भक्त भगवंत है आपही, और नहिं दूसरा अजी सुनै री ।।
ज्ञानगुदड़ी रेखते और झूलने पृ० ३७ ।।

रैदास :

रैदास ने जीव और ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं माना है। शंकराचार्य ने यह कहा है कि जैसे रज्जु में सर्प की प्रतीति मिथ्या है उसी प्रकार जीव भाव मिथ्या है 'अपरोक्षानुभूति ४४-५३'। रैदास ने जीव और ब्रह्म के अन्तरको मिथ्या माना है। जीव और ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है इसे सिद्ध करने केलिए रैदास ने यह कहा है कि जीव और ब्रह्म सरिता और सिन्धु के जल की भाँति अभिन्न हैं। वे जल और जलतरंग, कनक और कनक कुंडल की भाँति अभिन्न हैं -

माधौ भरम कैसेहु न बिलाई । ताते द्वैत दरसै आई ।
कनक कुंडल सूत पट जुदा, रजु भुजग भ्रम जैसा ।
जल तरंग पाहन प्रतिमा ज्यौं,ब्रह्म जीव द्विति ऐसा ।।५३।।१।।
बिमल एक रस उपजै, न बिनसै, उदय अस्त दोउ नाहीं।
बिगता बिगत घटै नहिं कबहूँ, बसत बसै सब माहीं ।।२।।बा० पृ०२५।।
रजु भुजंग रजनी परगासा, अस कछु भरम जनावा ।
समुभि परी मोहिं कनक अलंकृत अब कछु कहत न आवा ।१३ पृ०२५,१५ मी।
जब हम हुते तब तुम नाहीं, अबतुम हौ हम नाहीं ।
सरिता गवन कियौ लहर महोदधि, जल केवल जल माहीं ।।५२।वही पृ०२५।।

नानक

नानक के मतानुसार सभी जीव ब्रह्म के अंश हैं -
सभ महि जीउ जीउ है सोई घटि घटि रहिआ समाई ।।७।।गु०ग्र०पृ०१२७३।
और यह जीव घट घट में व्याप्त है -
सभ महि जीउ जीउ है सोई घटि घटि रहिआ समाई ।।७। गु०ग्र० पृ०१२७३
ब्रह्म आप ही जीवरूपमें कर्ता, भोक्ता और बंधन तोड कर मुक्त है -
आपे करता आपे भुगता । बधन तोड़े सदा है मुकता ।।
सदा मुकतु आपे है सचा आपे अलखु लखावणिआ ।।४।गु०ग्र०पृ०१२५।।
बस्तुत जीव और ब्रह्म मे कोइ अन्तर नहीं है । ब्रह्म स्वय ही योगीहै और स्वयं ही भोगी है, वह आप ही रसिआ, और परम संयोगी है -

आपे जोगी आपे भोगी । आपे रसीआ परम संजोगी ।।२।।गु०ग्रं० पृ०१०२१।

दादू :

दादूके मतानुसार जीव और ब्रह्म मे कोई भेद नहीं है । जैसे नमक और पानी मिल कर एक हो जाते हैं उसी प्रकार जब तन मन मिल कर एक हो जाते हैं,तब जीव और ब्रह्म मे कोई अन्तर नहीं रहता -
काचा उछलै ऊफणै, काया हाँडी माँहि ।
दादू पाका मिलि रहै, जीव ब्रह्म द्वै नाहिं ।।२२।बा०भा०२ पृ०२३१।।
तन मन बिलै यौं कीजिये, ज्यौं पाणी मैं लूँण ।
जीव ब्रह्म एकै भया, तब दूजा कहिये कूँण ।।१६७।।पृ० ६३बा० भा०१

जीव और ब्रह्म एक होते हुए भी कर्मों के कारण परस्पर भिन्न हैं। जीव कर्मों के वश में है और ब्रह्म कर्म रहित है -

कर्मों के बस जीव है, करम् रहित सो ब्रह्म ।

जहँ आतम तहँ परमात्मा, दादू भागा भर्म ।।२१।।बा०भा०१ पृ०२३०

किन्तु जीव और ब्रह्म में अन्तर तभी तक है जब तक कर्म शेष है। कर्मों से छूटने पर जीव ब्रह्म के समान बन जाता है -

दादू बंध्या जीव है, छूटा ब्रह्म समान ।

दादू दोनों देखिए दूजा नाही आन ।।२०।।बा०भा०१ पृ० २३०।

सभी जीव ८४लाख काया के वश में होकर अनन्त और अपार हो गए हैं, जो जीव देह को वश में रखते हैं, वे निरंजन और निराकार हैं -

काया के बसि जीव सब, ह्वै गये अनंत अपार ।

दादू काया बसि करै, निरंजन निराकार ।।१६।।पृ०२३० बा०भा०१ दे०१५ पृ०२३० मं

जीव कर्मों के बन्धन में पड़कर ब्रह्म से अलग हो जाते हैं किन्तु सच्चा गुरु मिलने पर, ब्रह्म की सेवा करने से, ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करने से और राम रसायन का पान करने से जीव ब्रह्म बन जाता है --

दादू ऐसा गुर मिल्या, जीव ब्रह्म करि लेइ ।।१३।पृ०२ भा०१,पृ० १३ भी बा०

जीव ब्रह्म सेवा करै, ब्रह्म बराबरि होइ।।

दादू जाणै ब्रह्म कौं ब्रह्म सरीखासोइ ।।८।।

राम रसाइन पीवताँ, जीव ब्रह्म ह्वै जाइ ।।१७।।पृ०८५-८६,बा०भा० १।।

सुन्दरदास

सुन्दर के मतानुसार जड़ के संयोग से ईश्वर निज रूप को भूल कर स्वयं ही जीव भाव को प्राप्त हुआ है -

सुन्दर जड़ कै संग तैं भूलि गयौ निज रूप ।

देषहु कैसौ भ्रम भयौ बूडि रह्यौ भवकूप ।।११।।सुं०ग्रं० पृ०७७२ ।।

सुन्दर ईश्वर आपही मानि लियौ जीवत्व ।।२५।। पृ० ७७३ ।।

एक अन्य स्थान पर सुन्दर ने यह भी कहा है कि ब्रह्म अहं भाव और ममता के कारण अपने स्वरूप को भूल कर स्वय ही जीव रूप को ग्रहण किया है सु०ग्र०७ पृ०८१५।
ब्रह्म और जीव रूप - ब्रह्म मे यह अन्तर है कि जीव सोता रहता है और ब्रह्म जागता रहता है[1] -

सुन्दर सूता जीव है जाग्य ब्रह्म स्वरूप ।।५५।।पृ० ६७० सुं०ग्र०

ब्रह्म से अलग हुआ जीव काम, क्रोध, लोभ, मोह, आदि ठगो की नगरी मे जाकर फँस गया है -

काम ठग क्रोध ठग लोभ ठग मोह ठग
ठगनि की नगरी मे जीव आइ पर्यो है ।।११।।पृ० ३६६ ।सुं०ग्रं०

यह नगरी जगत् एक वृक्ष है, जिस पर सुख दुःख रूपी अनेक फल लगे हुए हैं। जीव रूपी पक्षी इस वृक्ष पर बैठकर फलोपभोग करता है किन्तु ईश्वर रूपी पक्षी इन फलों का उपभोग नहीं करता। जीवात्मा जब फलोपभोग नही करता, तब वह ब्रह्म स्वरूप ही हो जाता है। सुन्दर ने इस रूपक को श्रुतियो से उद्धृत किया है-

सुखदु खानि फलानि अनेक नाना स्वादन पूर्त ।
तत्रात्मा विहगम तिष्ठति सुन्दर साक्षीभूत ।।२।।पृ० ६३६।।
तामें दो पक्षी बसहिं सदा समीप रहाहिं ।
एक भखै फल वृक्ष के एक कछू नहि षाहि ।।८।।
जीवातम परमातमा ये दो पक्षी जांन ।
सुन्दर फल तरु के जिं दोऊ एक समान ।।६।१० पृ० ६७१ सु०ग्र०[2]

जीव, कर्म, कर्म भोग, भ्रम, अज्ञान, काम क्रोध के कारण ब्रह्म से अलग हो गया है किन्तु सद्गुरु के द्वारा अज्ञानान्धकार अनावृत होने पर जीव, ब्रह्म-रूप होजाता है[3]। तब जिस प्रकार सलिला, सिन्धु मे मिल कर एक हो जाती है उसी प्रकार जीव और ब्रह्म मिल कर एक 'ब्रह्म होजाते हैं -

'सरिता मिलइ समुद्र हि भेद न कोई ।जीव मिलइ परब्रह्म हि ब्रह्म होइ।
पृ० ३७६ ।।सुं०ग्र०

१- य एष सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरुषो निर्मिमाण ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ।।कठो० २।२।८।।
२- द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।

सुन्दर ने जीव की चार अवस्थाओं स्वप्न,जाग्रत,सुषुप्ति,तुरिया का उल्लेख किया है पु०ग्रं० पृ० ७८१-८२-८३-८४-८५ । इनमे से स्वप्नावस्था में ही जीव और ब्रह्म का भेद रहता है । स्वप्न समाप्त होने पर जीव और ब्रह्म मे कोई भेद नही रहता। जीव की तीन अवस्थायें भ्रमरूप हैं, चौथी तुरीयावस्था ज्ञानमय है, इसमे जीव ब्रह्म स्वरूप हो जाता है --

कर्ता कर्म न भोगता पुद्गल जीव न कोइ ।
सुन्दर यह भ्रम स्वप्न में जागें एक न दोइ ।। १।।पृ० ८१७ सुं०ग्रं०
तीन अवस्था भेद है तीनों ही भ्रम रूप ।
चौथी तुरिया ज्ञानमय सुन्दर ब्रह्म स्वरूप ।।३१।।पृ० ७८५।।सुं० ग्रं०

इस प्रकार सुन्दर ने जीव और ब्रह्म की अभिन्नता को अनेक पदो मे स्पष्ट किया है सु०ग्रं० पृ० ७८१, ८१०, ८१५, ६७०, ६६७ ।

जगजीवनसाहेब

जगजीवन ने भी जीव और ब्रह्म मे कोई अन्तर नही माना है -
राम संत ते अंतर नाहीं । संत ते कबहूं न्यारे नाहीं ।।१०।।बा० मा०१ पृ०५४।

मलूकदास

मलूकदास के मतानुसार जीव और ब्रह्म में कोई भेद नही है । ब्रह्म स्वयही विभिन्न जीवोन के रूप में क्रीड़ा कर रहा है -

हमहिँ अस्व हमहीँ असवारा । हमहिँ दास हमहीँ सरदार ।।१०।
हमहीँ सूरज हमहीँ चदा ।हमहिँ भये नन्द के नन्दा ।।११।
हमहीँ दसरथ हमहीँ राम । हमरे क्रोध हमारे काम ।।१२।
साहेब मिलि तब साहिब होवै, ज्यौँ जल बूँद समावै ।।६।।बा०पृ०४।।

सत दरिया साहब 'मारवाड़ वाले'

सत दरिया साहब के अनुसार जीव और ब्रह्म एक ही हैं -
जहँ दरिया दुविधा नहीं, स्वामी सेवक एक ।।३८।।बा० पृ०१६।।

शेष- तयोरन्य: पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ।।६।।श्वेता०४।
समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्ट यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः।।७।।वही
३ परमात्मा अरु आतमा उपज्या यह अविवेक ।

संत दरिया बिहार वाले '

संत दरिया ने जीव और ब्रह्म की भिन्नता और अभिन्नता दोनों का उल्लेख किया है। दरिया के अनुसार जीव एक ऐसा पक्षी हंस है जो अपने असली घर से भटक गया है। यह जीव अजर और अमर है, परन्तु भटका कर यह मर्त्यलोक मे आ गया है ज्ञानस्वरोदय ७८,३३१। मर्त्यलोक में जीव ब्रह्म से भिन्न रहता है -

बिज से बिज उतपति किया, सो बिज सम है दीन्ह।
जीव जीव सम जीव है, ब्रह्म इन्हों भीन्ह ।।८०।। द० रु०अनु० पृ० १

किन्तु आत्मज्ञान के द्वारा जीव ब्रह्म की एकता प्राप्त कर सकता है --

' हिरदे होय बिबेक दृढ़ाई। अंतहु होय एक फिरि जाई ।।द०सागर पृ०२८।।

निर्गुण संतो ने जीव और ब्रह्म मे कोई अन्तर नही माना है। जड के संयोग से ब्रह्म ने ही जीव रूप धारण किया है। जीव जब द्वैत भाव भूल जाता है तब उसमे और ब्रह्म में कोई अन्तर नही रहता। यद्यपि निर्गुण संतों मे अद्वैत भाव के साथ साथ द्वैत भाव भी मिलता है तथापि उनमे जीव और ब्रह्म की अभिन्नता से संबंधित भावो अद्वैत भाव का ही प्राधान्य है।

'ग: जगत्

उपनिषदो के अनुसार जगत् जीव के उपभोग के लिए है।[1] जो जीव भोग में आसक्त होता है वह भवजाल में फसता है। जो भोग को छोड कर ब्रह्म की ओर देखता है वह जगत् जाल से निकल जाता है।[2] संतोके अनुसार यह नाना रूपों का रमणीक जगत् कैसा है जिसमें नाना प्रकार केजीव आसक्त हैं, नीचे संक्षेप में इसका विवेचन किया जा रहा है।

१- अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावाज्ज्ञात्वा देव मुच्यते सर्वपाशै ' ।।श्वे०१।८।।

२- श्वेता० १।६ -८-९-१० ।।

नामदेव

नामदेव के मतानुसार सृष्टि मे ब्रह्म व्याप्त है। यह सृष्टि जल और जलतरंग की भाँति ब्रह्म से भिन्न नहीं है, अर्थात् यह ब्रह्म का ही अभिव्यक्तिकरण है[1] -

कहत नामदेउ हरि की रचना देखहु रिदै बीचारी ।
घट घट अंतरि निरंतरि केवल मुरारी ।।
जलतरंग अरु फेन बुदबुदा जल ते भिन न होई ।
इहु परपंचु पारब्रह्म की लीला बिचरत आन न होई ।। हि०को०म०स० की देन पृ०

यह जगत् ब्रह्म से व्यक्त होने पर भी मिथ्या है -

मिथिआ मरमु अरु सुपनु मनोरथ मति पदारथु जानिआ ।
सुक्रित पंखीया मत पउ पिंजरे संसार माया जालु रे ।। १। पृ० २६६।।

श्वेताश्वतरोपनिषद् ३।८: मे जगत् को जाल कहा गया है। इस जगत् को नामदेव ने भी माया जाल कहा है -

मनु पखीया मत पउ पिंजरे, ससार माया जालु रे ।।१।।पृ०२६६ ।हि०को०म०सं० की देन

यह संसार समुद्र है जिसमें लोभ लहरे उठती रहती हैं। नामदेव के अनुसार इस ससार से गोविन्द ही उद्धार कर सकता है --

लोभ लहरि अति नीझर बाजै । काइआ डूबै केसवा ।
ससारू समुदे तारि गोबिदे ।तारिलै बाप बीठुला ।। हिं०को०म०सं० की देन पृ०२६०

कबीर :

कबीर के अनुसार सृष्टि के पूर्व व्यक्त जगत् का अभाव था[2] :कबीर डा०हजारीप्रसाद द्विवेदी पृ० २८० । वह ब्रह्म आनन्द के लिये खेल करता है, खेल के आनन्द से ही सृष्टि व्यक्त होती है, और यह सृष्टि खेल मे ही स्थित रहती है[3] --

---

१-नामदेव का यह भाव शंकर से प्रभावित है -
तरंगफेनभ्रमबुद्बुदादि सर्वं स्वरूपेण जल यथा तथा ।
चिदेव देहाद्यहमन्तमेतत सर्वं चिदेवैकरसं विशुद्धम् ।। विवेकचूडामणि ३६१।
२- ऐतरेयोपनिषद् १।१।१ तैत्ति०२।७ गीता, ८।१८,६,७,२।२८
३- शंकराचार्य ने यह माना है कि सृष्टि केवल लीला के लिए ही होती है
लोकवत्तु लीलाकैवल्यम् ।।ब्रह्मसूत्र शा०भा० २।१।३३।।

करता आनंद खेल लाई, ओंकार ते सृष्टि उपाई ।।
आनन्द धरती आनन्द आकास । आनन्द चंद सूर परकास ।।
आनन्द आदि अंत मध तारा । आनन्द अन्धकूप उजियारा।।
खेल का यह सकल पसारा । खेल मांहि रहै संसारा ।।कबीर डा०द्विवेदी पृ०२८१
दे० पूरा पद'

कबीर का यह भाव तैत्तिरीयोपनिषद् से प्रभावित है। इस उपनिषद् मे यह कहा गया है कि ब्रह्म आनन्द है, आनन्द से ही सम्पूर्ण प्राणी उत्पन्न होते है, और आनन्द मे ही जीवित रहते है, और अन्त में आनन्द मे ही प्रविष्ट करते है -

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात् । आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
आनन्देन जातानि जीवन्ति । आनन्द प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ।।तैति०३।६।।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में जीव, ब्रह्म और प्रकृति जगत् को अनादि और अजन्मा कहा गया है श्वेता०४।५ । कबीर ने इस भाव को इस प्रकार व्यक्त किया है कि पहले प्राण उत्पन्न हुआ कि पिण्ड, पहले रक्त उत्पन्न हुआ कि बीज, पहले बीज उत्पन्न हुआ कि खेत अर्थात् सभी साथ साथ उत्पन्न हुए अथवा सभी शाश्वत हैं। —

प्रथमे प्राण कि प्यंड प्रथमे प्रभू, प्रथमे रक्त कि रेतं ।
प्रथमे पुरिष कि नारि प्रथमे प्रभू, प्रथमे बीज कि खेतं ।।१६४।।क०ग्रं०पृ०१४२
दे० पूरा पद १४३

कबीर ने इसका भी उल्लेख किया है कि शब्द-ब्रह्म से सृष्टि का विकास होता है 'शब्दा०भा०१ ।पृ०४'। और उन्होंने यह भी माना है कि यह जगत् एक अण्ड रूप ओंकार से विकसित हुआ है --

एक अंड ओंकार तें सब जग भया पसार ।। 'बीजक पृ०१३ ।।

कबीर के मतानुसार यह जगत् ब्रह्म स्वरूप है। ब्रह्म ही अग्नि, पृथ्वी, पवन और पानी है। वह स्वयं ही बीज और अंकुर भी है -

सृष्टि यहा आपु है आपु यहा सृष्टि है, आपु ही अगिन छिति पवन पानी ।
आपुहि बीज है आपुही अंकुर है, रज औसत तम गुन बखानी ।।ज्ञानगुदड़ी रेखते और झूलने पृ०११।।

पुन कबीर के अनुसार ससार वृक्ष है, जो ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है। इस वृक्ष पर पाप और पुण्य दो फल लगे हुए हैं। इन फलों का स्वाद नानाप्रकार का है जिसका कथन नही किया जा सकता -

एक बिरख यहु जगत उपाया, समझि न परै बिखम तेरी माया ।
साखा तीनि पत्र जुग चारी, फल दोइ पाप पुनि अधिकारी ।।

स्वाद अनेक कथ्या नहीं जाही, किया चरित सो इन मे नाही । क०ग्र० पृ०२२६

जगत् के पाप पुण्य और नानात्मक स्वरूप को लेकर कबीर ने जगत् रूप मे उनकी निन्दा की है । कबीर के मतानुसार यह ससार मिथ्या है -

झूठ झूठ के छाडहू मिथ्या यह ससार ।।बीजक पृ० २४   दे० क०ग्र० पृ०२२६भी

जीव और जगत् का अन्तर बताते हुए कबीर ने यह कहा है कि यह ससार स्वप्न जैसा असत्य है और जीव स्वप्न के समान नही है --

ससार ऐसा सुपिनजैसा, जीव न सुपिन समान ।।क०ग्रं० पृ०१७१।।

कबीर ने ससार को स्वान रूप, कागज की पुडिया, काँटो की बाड़ी, झाड और झखार कहा है । उनके अनुसार इस जगत् में यम का साम्राज्य है --

स्वान रूप ससार है, भूकन दे झक मारि ।।१६२।।कबीर पृ० ३२४ डा०द्विवेदी

यह संसार कागद की पुडिया बूद पडे घुल जाना ।१।।

यह ससार काँट की बाडी, उलझ पुलझ मरि जाना है ।।२।।

यह संसार झाड औ झाँखर आग लगे बरि जाना है ।।३।।शब्दा०भा० १ पृ०३६

यही जगत् है जम को देसा । नाम भजे तब मिटै कलेसा ।।४२।।

अमरावती पृ० २२ ।।

कबीर के अनुसार जगत् का नानात्मक रूप मिथ्या है । जगत् का जो स्वरूप है वह ब्रह्ममय है । कबीर ने सरिता और सरिता जल के समान ब्रह्म और जगत् को अभिन्न ही कहा है --

दरियाव की लहर दरियाव है जी, दरियाव और लहर मे भिन्न कोयम् ।

उठे तो नीर है बैठो तो नीर है, कहो जो दूसरा किस तरह होयम् ।।

उसी का फेर के नामलहर धरा, लहर के कहे क्या नीर खोयम ।

जक्त ही फेर जब जक्त परब्रह्म में ज्ञान कर देख माल गोयम् ।२,५६ ।कबीर

पृ० २४१ डा० द्विवेदी ।।

रैदास

ब्रह्म सत्य और जगत् मिथ्या के अनुसार रैदास ने बाजीगर को सत्य और उसकी बाजी को मिथ्या कहा है --

बाजीगर सौं रचि रहा, बाजी का मरम न जाना ।

बाजी झूंठ साँच बाजीगर, जाना मन पतियाना ।।२।।पृ० ७ बानी ।।

रैदास के अनुसार यह ससार त्रिगुणात्मक है, इसको झूठी माया ने बहका रखा है --

त्रिबिध संसार कौन बिधि तिरबौ, जे दृढ नाव न गहे रे ।

नाव छाड़ि दे डूँगे बैठे, तौ दूना दु स सहे रे ।।४४।३। बा० पृ० २२

झूठी माया जग डहकाया तौ तिन ताप दहे रे ।।४४।४। पृ०२२ बा०

रैदास ने इस जगत् को प्रपंच और कुसुम के रंग जैसा भी कहा है -

ससार प्रपच गें व्याकुल परमानंदा, त्राहि त्राहि अनाथ गोबिंदा।।१।।बा०पृ०३४

जैसा रग कुसुंभ का रे, तैसा यह संसार रे ।

रमइया रंग मजीठ का, ताते भन रैदास ब्चिार रे ।।५।।बा० पृ० ३५।।

छादोग्योपनिषद् ६।२।३ के अनुसार एक ब्रह्म ही बहु रूपमें उत्पन्न हुआ है । इसी के अनुसार नानक ने कहा है -

तेरी मूरति एका बहुतु रूप ।।गु०ग्रं०सा० पृ० ११६८।।

नानक

नानक ने यह अनेक पदों मे कहा है कि इस जगत् की रचना ब्रह्म ने की है[१]। वह ब्रह्म जगत् रूप में स्वयं ही विकसित हो रहा है -

साहिबु मेरा एको है । एको है भाई एको है ।।१।

आपे मारे आपे छोड़ आपे लेवै देइ ।

आपे वेखै आपे विगसै आपे नदरि करेइ ।।म०१ पृ० ३५० गु०ग्रं०

वह अपनी आज्ञा से दस अवतारों की रचना करता है और सृष्टि उत्पन्न करके उसका विस्तार करता है । उसी ने देव, दानव, गधर्व आदि की भी सृष्टि की है । यह सृष्टि जगत् ब्रह्म की छाया है । सृष्टि के प्रारम्भ मे ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं, जो ब्रह्म रूपी कमल का पार नहीं पा सकते । जो कुछ उत्पन्न होता है, जगत् वह काल के वश में है -

हुकमि उपाए दस अउतारा । देव दानव अगणत अपारा ।।१३।।

सुंनहु उपजे दस अवतारा । सृसटि उपाइकीआ पासारा ।।

देव दानव गण गधरव साजे सभि लिखिआ करम कमाइदा।।१२।।

जगु तिस की छाइआ जिसु बापु न माइआ ।।२।। गु०ग्रं० पृ०१०३८।।

प्रथमे ब्रहमा कालै घरि आइआ । ब्रह्म कमलु पइआलि नपाइआ ।।

आगिआ नहीं लीनी भरमि भुलाइआ । ।१।।

जो उपजै सो कालि संघारिआ ।।१।।म०१ पृ० २२७ गु०ग्रं०

वह पाप पुण्य के संयोग से जगत् की रचना करके मोह रूपी ठग के द्वारा इसमें खो गया है व्याप्त हो गया :-

काइआ अंदरि पाप पुनु दुइ माई ।दुही मिलि कै स्रसटि उपाई ।।४।।म०१ पृ०१२६ गु०ग्र०

मोह ठगउली पाइकै तुधु आपहु जगतु खुआइआ ।।म०१ पृ०१३८ ।।वही

दादू

दादू के मतानुसार प्रथम ओंकार की उत्पत्ति हुई । ओंकार से पाँच तत्व, पाँच तत्वों से देह, और देह से वर्ण उत्पन्न हुए । ओंकार से पाप और पुण्य भी उत्पन्न हुए हैं—

ओंकार थैं ऊपजै, अरस परस सजोग ।

अंकुर बीज द्वै पाप पुन, यहि विधि जोग रु भोग ।।६।।

पहली कीया आप थैं, उतपति ओंकार ।

ओंकार थैं ऊपजै, पंच तत आकार ।।८।।

पच तत थैं घट भया, बहु विधि सब विस्तार ।

दादू घट थैं ऊपजै मैं तैं बरण विचार ।।६।। भा०१ पृ० १६६।।

यह जगत् दादू के अनुसार मिथ्या दुःख रूप और सेवल के सुख जैसा है --

सुपिनैं सब कुछ देखिए, जागै तै कुछ नाहिं ।

ऐसा यहु संसार है, समझि देखि मन माँहिं ।।१०।भा०१ पृ० ११६ बा० पद ७ और ११

दुख दरिया ससार है, सुख का सागर राम ।

सुख सागर चलि जाइये, दादू तजि बेकाम ।।२६।। भा० १ ।।पृ० १६

यहु ससार सेवल के सुख ज्यूँ, तापर तूँ जिनि फूलै ।।२।।भा०२ पृ० १३।।

सुन्दरदास :

जगत् रचना के सम्बन्ध में श्वेताश्वतरोपनिषद् :१।१-२' मे यह कहा गया है कि जगत् रचना के कारणों में कोई काल को कारण बताता है तो कोई स्वभाव[1] को और कोई कर्म को कारण बताता है तो कोई पंचभूतों को । इसी को व्यक्त करते हुए सुन्दरने कहा है --

' कोई थापत कर्म कौं कोई थापत काल ।

कौ कहै सृष्टि सुभाव तें सुन्दर बाइक जाल ।।२७।।

१- जैन और बौद्ध दर्शन में स्वभाववाद का व्यापक रूप मे उल्लेख हुआ है—सारस्वती भवन संस्कृत भट्ट उत्पल ने 'वृहत्संहिता' की टीका में :१।१७' में इसका उल्लेख किया है। न्याय सूत्र '४।१।२२ ' मे भी इसका उल्लेख मिलता है ।

न्याय दर्शन ने ईश्वर, मीमांसा ने कर्म और वैशेषिक ने काल को जगत् रचना का कारण माना है[1]। योगदर्शन मे योगवाद, सांख्य मे प्रकृति पुरुषवाद और वेदान्त में ब्रह्मवाद सृष्टिरचना के कारण माने गये है, किन्तु सुन्दर ने सृष्टि रचना का कारण ज्ञानवाद माना है -

सुन्दर कहत षट्शास्त्र माहि भयौ बाद ।

जाके अनुभव ज्ञानबाद में न बह्यौ है ।। १८।पृ० ६२१ ।।सुं०ग्रं० दे०पूरा पद

सुन्दर ने सृष्टि रचना के कारणो मे ज्ञानवाद के अतिरिक्त, ईश्वरवाद और पुरुष प्रकृतिवाद का भी उल्लेख किया है। उनके अनुसार राम ही इस जगत् को खेल खिलाते हैं अर्थात् कारण ब्रह्म से ही यह कार्य रूप जगत् उत्पन्न हुआ है। जैसे सूर्य और दर्पण के संयोग से अग्नि उत्पन्न होती है, वैसे ही पुरुष और प्रकृति के संयोग से जगत् उत्पन्न होता है --

रामहि चेतन जगत नचावै, रामहि नाना खेल खिलावै ।।५।।पृ० ८६७ सु०ग्रं०

कारन तें कारज भयौ कारन कारज एक ।

जैसे कनक तें कियौ सुन्दर घाट अनेक ।। १७।।सु०ग्रं० पृ० ८०३।।

एक ब्रह्म कारण जगत, कारण है बहु भाति ।

चारि षांनि बिस्तार यह, चौराशीलष जाति ।।२२।।पृ०७५ सु०ग्रं०

पुरुष प्रकृति सयोग जगत उपजत है ऐसे,

रवि दर्प्पण दृष्टात अग्नि उपजत है तैसे ।।पृ० ५८ वही ।

सुन्दरने जगत् और ब्रह्म का सम्बन्ध गीता '१३।२-३-४-५-६ के अनुसार क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के रूपमें भी स्पष्ट किया है --

शिष्य ये चौबीस तत्व जड जानहु तिनको क्षेत्र सु कहिये ।

पुनि चेतन एक और पच्चीस हि सांख्यादि मत सौं लहिये ।।[2]

सो है क्षेत्रज्ञ सबै को प्रेरक पुनि साक्षी बहु जानहुं ।

यह प्रकृति पुरुष को कीयौ निर्णय सद्गुरु कहै सु मानहुं ।।४७।।पृ०६६

१- कालवाद का उल्लेख वात्स्यायन ने कामसूत्र २।३५।३७ मे, ईश्वर-कृष्ण ने सांख्य कारिका ५० मे, उद्योतकर ने न्यायवार्तिक ४।१।२१ मे और गौड़पाद ने कारिका ८ मे किया है।

२- सांख्यदर्शन ६१-६२

गीता १।२-३-४[1] मे जगत् को अश्वत्थ वृक्ष कहा गया है, जिसकी मूल ऊपर है, और शाखाएँ नीचे। इसकी शाखाएँ ऊपर नीचे फैली हुई हैं। इसका शाखाएँ गुणो से बढायी गयी है और विषय इसकी कोपले हैं। इसीके अनुरूप सुन्दर ने भी कहा है -

दृष्यते वृक्ष एक अति चित्र।

अर्द्ध मूलमधोमुखशाखा जगम द्रुम शृणुमित्रं।

चतुर्विंश तत्वमिनिर्मित वाल' यस्य दलानि।

अन्योऽन्य वासनोदभव नस्य तरो कुसुमानि ।।१।।

सुखदु खानि फलानि अनेक नाना स्वाद न पूर्त ।।२।।पृ० ६३६ दे०पृ०६६-७०-७१

सुन्दर ने इस जगत् को मन का विस्तार भी कहा है। जगत् की सत्ता मन के द्वारा ही प्रतीत होती है। जब यह मन जगत् को देखता है तब यह जगत् रूप हो जाता है और जब यह ब्रह्म को देखता है तब ब्रह्म रूप हो जाता है -

मन ही जगत रूप होइ करि बिसतर्यो।

मन ही अलष रूप जगत् सौं न्यारो है। सुं०ग्रं० पृ० ४५३-५४

जब मन देषै जगत कौं जगत रूप ह्वै जाइ।

सुन्दर देषै ब्रह्म कौं तब मन ब्रह्म समाइ ।।५०।।पृ०७२६। सुं०ग्रं०

गीता के अनुसार यह जगत् ब्रह्म मे अवस्थित है किन्तु जगत् का कोई भी विकार ब्रह्म को नहीं लगता - गीता ६।४-५ इसी के अनुरूप सुन्दर ने कहा है-

तैसें ही सुन्दर यह ब्रह्म मैं जगत् सब,

ब्रह्म कौं न लागै कछु जगत बिकार है ।।३।।पृ०६१४।।सु०ग्रं०

सुन्दरदास के अनुसार जगत् और ब्रह्म अलग अलग नहीं हैं[2]। जीव जब ब्रह्म और जगत् को एक समझने लगता है तब उसका भ्रम दूर हो जाता है -

---

१-ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थ सनातन.।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ।।१।।कठो०२।३।१।।

२- सुन्दर ने जल और जल तरंग, सागर और बुदबुदे, एवं फेन तरग, के उद्धरणों से जगत् और ब्रह्म की अभिन्नता सिद्ध की है --

सुं०ग्रं० पृ० २१-२२ ' ८०३,। ३३। पृ० ८०४,४३, पृ० ८०५,१२ पृ० ८०२

सुन्दर जाने ब्रम में ब्रह्म जगत् द्वै नाहि ।।४०।।पृ० ६६६ सु०ग्रं०

आपु ब्रह्म जगत कौ एक करि जाने जब,

सुन्दर कहत वह ज्ञान भ्रम भाग है ।।१४।। पृ० ६३४

शंकर के अनुरूप सुन्दर ने ब्रह्म कोसत्य और जगत् कोमिथ्या कहा है -

मिथ्या सब संसार, दूसर सत्य सु ब्रह्म है ।।१०।।पृ० ३३ सु०ग्रं०

सुन्दर ने जगत् के मिथ्या रूप को स्पष्ट करने के लिए रज्जु और सर्प, मृग जल, चांदी और सीप, वध्या सुत और आकाश पुष्पके निदर्शन दिये हैं।[1] सुन्दर के अनुसार यह असत् जगत् अज्ञानी के लिये दुःख रूप है किन्तु ज्ञानी केलिए आनन्द स्वरूप है --

अज्ञानी कौं दुख कौ समूह जग जानिगत,

ज्ञानी कौं जगत सब आनन्द स्वरूप है ।।२१।। पद २२ भी दे० पृ०६३४-३६।।

जगजीवनदास

जगजीवनदास के अनुसार यह ससार झूँठा और पाप एव पुण्य का बाजार है-

झूँठि दुनियाँ झूठि माया, परि झूठ धन धाम ।।१।।बा०भा०२ पृ०६७।।

पाप पुन्न की यह बाजार है, सौदा करू मन माना ।

होइहि कूच ऊँच नहिं जानसि भूलसि नाहिं है वाना ।।३।।भा०१ पृ० ४६।।

मूलकदास

मूलकदास के मतानुसार यह जगत् भवसागर और फंदा है। क्रिया, कर्म, आचार ही जगत् का फँदा है। यह संसार प्रलय काल से भी भयंकर भवसागर है, जो ब्रह्म चिन्तन करते हैं वे इसमें डूबने से बच जाते हैं -

किरिया करम अचार भरम है, यही जगत का फंदा ।

माया जाल में बांधि अँडाया, क्या जाने नर अंधा ।।६।।७ की बा० पृ० २०।।

यह संसार बडो भौसागर, प्रलय काल ते भारी ।।

बूडत तैं या सोई बाचे, जेहि राखै करतारी ।।४।।बा० पृ० १७।।

१- सुं० ग्रं० पृ० ७२६, ८०५, ८३२ ।।

दरियासाहब मारवाड़ वाले

दरिया के मतानुसार सब जग अंधा है, इसमें कार्य अकार्य की परख नहीं हो पाती --

दरिया सब जग आँधरा, सूझ न काज अकाज।
भेष रता अंधा सबै, अधाई का राज।।२२। वा० पृ० २८-२६।।

निर्गुण सन्तों के अनुसार जगत् ब्रह्म का ही एक रूप है। जगत् का जो नानात्मक रूप दृष्टिगत होता है वह मिथ्या है। जीव जब चराचर जगत् में ब्रह्म के दर्शन करता है तब उसे ब्रह्म और जगत्, सरिता और सरिता जल की भाँति अभिन्न लगने लगता है। यह जगत् ब्रह्म की इ इच्छा से उत्पन्न होता है, और अंत में उसी मे विलीन हो जाता है।

निर्गुण सन्तों के अनुसार यह जगत् जीव के बन्धन का कारण है। यह जगत् भवजाल है, किन्त यह जगत् अज्ञानी व्यक्ति के लिए ही दु सरूप है, ज्ञानीके लिए तो यह आनन्दस्वरूप है।

'घ' माया

निर्गुण सन्तों के मतानुसार ब्रह्म सत्य है, और जीव ब्रह्म का अंश अथवा ब्रह्म ही है। ब्रह्म का अभिव्यक्तिकरण जगत् है। जगत् की प्रतीति मिथ्या है। जगत् का अस्तित्व और प्रतीति भव बन्धन और जाल है। जीव को भवजाल में फँसाने का कार्य माया करती है। जीव को जगत् की प्रतीति भी माया के कारण हीहोती है। माया के नष्ट होने पर जीव ब्रह्म की भिन्नता और जगत् ब्रह्म का भेद मिट जाता है। इस माया का अपना कोई अस्तित्व नहीं है। निर्गुण भक्तो ने भी माया के विस्तृत स्वरूप का उल्लेख किया है।

नामदेव '

नामदेव के अनुसार एक ही ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त है किन्तु माया के कारण जीव उसे चित्र विचित्र रूप में देख कर मोहित होता है ---

एक अनेक बिआपक पूरक जत देखउ तत सोई।
माइआ चित्र बचित्र बिमोहित बिरला बूझै कोई।।

यह माया झूँठी है जिसे देखकर मन भ्रम में पड़ता है -

झूठी माइआ देखिकै भूला रे मना।।पृ० २४३।।

नामदेव के अनुसार गर्भ योनि का नाम माया है। इस संसार मे जीव को तभी छुटकारा मिल सकता है जब वह माया मे लिप्त नहीं होता -

इह संसार ते तबही छूटउ जउ माइआ नह लपटाउ ।
माइआ नामु गरभ जोनि का तिह तजि दरसनु पावउ ।।गु०ग्रं० ३ पृ० ६३६।।

कबीर

कबीर के मतानुसार त्रिगुण ही माया है, उनके अनुसार जहाँ ब्रह्म ज्ञान रहता है, वहाँ पर माया नहीं रहती -

सत रज तम थें कीन्हीं माया चारि खानि बिस्तार उपाया ।। पृ० २२८
क० ग्रं० पृ० ३४ ।।
दे० पृ० १५०, २७२ क०ग्रं० मी

माया आदर माया मानु माया नहीं, तहा ब्रह्म गियान।।क०ग्रं० पृ० ११४।।

मन थें माया में कोई अन्तर नहीं है। माया मन में समाहित है[1]। कबीर ने जन्म मरण को भी माया कहा[2] है। यह माया रघुनाथ की है, जो जगत में जीवो का शिकार खेलने आई है। जगत् में आकर इसने मुनि, दिगम्बर, ब्राह्मण आदि सभी का शिकार किया है। राम की शरण में रह कर जीव इससे बच सकता है --

तू माया रघुनाथ की, खेलण चढी अहेड़ै ।
चतुर चिकारे चुणि चुणि मारे, कोई न छोड्या नेड़ ।।
मुनियर पीर डिगंबर मारे, जतन करंता जोगी ।
बेद पढंता बाह्मण मारा, सेवा करता स्वामी ।
साषित के तूं हरता करता, हरि भगतन के चेरी ।
दास कबीर रांम के सरनैं, ज्यूं लागी त्यू तोरी[3]।।१८७। क०ग्रं० पृ० १५१।।१२२।।
पृ० १२४ मी ।

राम की माया जगत् में द्वंद्व मचाती है। इसने सुरनर मुनि सबको नाच नचा रखा है। यह आशा रूपी डोरी में मन को बाधकर उसे कपि की भाँति नचाती है --

---

१- मन माया तो एक है माया मनहि समाए ।। पृ० ६७ ।।बीजक ।।
२- सतो आवै जाय सो माया । बीजक पृ० ३५
३- यह छद कुछ अतर केसाथ बीजक पृ०८० कहरा १२ मे भी आया है।

राम तेरी माया दुंद मचावै ।

गति मति वाकी समुझ परै नहिं, सुरनर मुनिहि नचावै ।।बीजक पृ० ३७

मन तोहि नाच नचावै माया ।

आसा डोरि लगाइ गले बिच,नट जिमि कपिहि नचाया ।।शब्दा० भा०२ पृ०८६।।

यह माया मीठी है जो छोड़ी नही जाती, अज्ञानी पुरुष को यह भोली बन कर खाती है। इसने अपनी शक्ति से सम्पूर्ण जगत् को मोहित कर रखा है -

मीठी मीठी माया तजी न जाई, अग्यानी पुरिष कौ भोलि भोलि खाई ।।

२३२।। क० ग्रं० पृ० १६६ ।।

ई माया जग मोहनी, मोहिस सब जग फार ।।बीजक पृ० २० ।।क०ग्रं०पृ०३३।६

पृ० ३५।३२ भी

कबीर के अनुसार माया महाठगिनी है। इसने अपनी मधुवाणी से त्रिगुण के द्वारा जीव को फँसा लिया है --

माया महाठगिनि हम जानी ।

तिगुंन फाँस लिये कर डोले, बोलै मधुरी बानी[2] ।। बीजक पृ० ५२-५३

दे०पूरा पद'

माया काल की खानि है, यह जहाँ जाती है वहाँ सुख नहीं रहता --

माया काल की खाणि है, धरि त्रिगुणी वपरीति ।

जहां जाइ तहां सुख नहीं, यहु माया की रीति ।।२५।।क०ग्रं० पृ० ३४

कबीर ने माया को वेश्या, पापिनी, डाकिनी आदि कह कर भी सम्बोधन किया है क०ग्रं० पृ० ३२, ३३, ३४, ३५ ।

माया सम्पूर्ण जगत् को अपने विविध रूपों द्वारा आकर्षित करके फँसाती है किन्तु यह भक्तों की दासी है --

माया दासी संत की, ऊभी देइ असीस ।।१०।। क०ग्रं० पृ० ३२।।

माया का अपना स्वरूप कुछ भी नहीं है। यह ब्रह्म का आधा शरीर है जो असत् है-

माया मेरी अर्ध सरीरी, औ भक्तन की दासी । ३।।शब्दा०भा०१पृ०१८

झूठी काया झूठी माया झूठ झूठ लखाए ।।५।।शब्दा भा० १ पृ०२६।।

पा०टि० १-यह पद शब्दावली 'भा० २ पृ० ३४ 'में भी आया है।

रैदास

रैदास ने माया का स्वरूप असत् माना है। रैदास केमतानुसार माया थोथी और झूठी है, यह जगत् को बहका कर त्रिविध तापों में जला रही है --

यह माया सब थोथरी रे, भगति दिस प्रतिहारी।
कह रैदास सतबचन गुरु के, सो जिवते न बिसारि।।७१।३। पृ०३५।।बा०
पृ० २६ भी

झूठी माया जग डहकाया तौं तिन ताप दहै रे।।४४।४ पृ०२२ बा०

यह माया ब्रह्म की है, किन्तु है बड़ी विकट -

ऐसवे बिकट माया तोर, ताते बिकल गति मति मोर।।३१।।१।।बा०पृ०१७।।

नानक

नानक ने भी कबीर के अनुसार माया को त्रिगुणात्मक माना है। जीव त्रिविध माया में फँसकर मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। बहु प्रकार की ममता ही माया है। सम्पूर्ण भुवन को प्रभु की माया ने मोहित कर रखा है। यह जीव का साथ नहीं देती, किन्तु माया और ज्ञान का कोई साथ नहीं है। मन का अंधा ही माया का बंधु है -

सासत्र बेद त्रै गुण है माइआ अंधुलउ धंधु कमाई।।३।।गु०ग्र० पृ०११२६
त्रिबिधि मनसा त्रिबिधि माइआ।।पड़ि पड़ि पंडित मोनी थके।
चउथे पद की सार न पावणिया।।५।।म०१।पृ०११७। गु०ग्रं० पृ०१२९ भी
माइआ ममता है बहुरंगी।।६।। पृ० १३४२।।
सगल भवन तेरी माइआ मोह।। पृ० ११६८।।
बाबा माइआ साथि न होइ।इनि माइआ जगु मोहिआ विरला बूझै कोइ।।
वही पृ० ५९५।।

माया का अंधुला माइआ का बंधु।।२।। पृ० ३५४। गु०ग्रं०सा०

उपनिषदों और गीता में माया प्रकृति[1] को शाश्वत माना गया है। नानक ने भी कहा है कि माया मरती नहीं --

ना मनु मरै न माइआ मरै।। गु० ग्रं० सा० पृ० १३४२।।

१- प्रकृति त्रिगुणात्मक है। नानक ने माया को त्रिगुणात्मक कहा है। अत माया शब्द प्रकृति का पर्याय भी हो सकता है -

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्।। श्वेता० ४।१०।।

दादू

दादू ने माया का निरूपण कबीर के अनुरूप ही किया है। जो उत्पन्न और नष्ट होता है, वह माया का रूप है -

उपजै बिनसै गुण धरै, यहु माया का रूप ।।१६।।बा०मा०१।पृ० १६२।।

अत: जब तक शरीर रहता है, तब तक ही माया रहती है -

जब लग काया तब लग माया, रहै निरन्तर अवधू राया ।।१।।बा०मा०२पृ०१५८।

माया मन के अन्दर उत्पन्न होती है। माया की शक्ति से अहंकार उत्पन्न होता है जो जीव को अंधा बनाता है -

दादू मन ही माया ऊपजै, मन हीं माया जाइ ।
मन हीं राता राम सौं, मन हीं रह्या समाइ ।।१३४।।मा०१ पृ० ११४ बा०

माया का बल देखि करि आया अनि अहंकार ।
अंध भया सूझै नहीं, का करिहै सिरजनहार ।।१६।।पृ० १२७ वही

जगत् में माया स्वयं ही ब्रह्म बन कर बैठी है, माया के कारण ब्रह्मा, बिष्णु और महेश को भी जन्म व लेना पड़ता है -

माया बैठी राम ह्वै, कहै मैं ही मोहन राइ ।
ब्रह्मा बिस्नु महेस लौं, जोनी आवै जाइ ।।१४३।।बा०पृ०१२६ ।।मा०१

दादू के अनुसार देह रूपी दीपक से माया रूपी प्रकाश उत्पन्न होता है जिस पर ८४ लाख जीव भस्म होते है --

दादू दीपक देह का, माया परगट होइ ।
चौरासी लख पंखिया, तहाँ परै सब कोइ।।११७।।पृ०१२७।।मा०१।।वही

दादू ने माया को डाकिनी, सापिनी, नटनी, और फाँसी कह कर, जीव के शत्रुरूप में उसका उल्लेख किया है[1]। दादू ने माया को जीव की शत्रु कहा भी है -

माया बैरिणी जीव की जिनि को लावै प्रीति।।१०२।।पृ०१२६।।बा०मा०१

यह माया राम की है जिसने सम्पूर्ण जगत् को आसक्त कर रखा है, किन्तु संतों की यह दासी है, ब्रह्म भक्ति उत्पन्न होनेपर माया का प्रभाव समाप्त हो जाता है --

दादू माया राम की, सब जगत बिगोया ।।११२।।मा०१ पृ०१२७।।वही

१- बा० मा० १ पृ० १३१,१३२,१२७,१२३,१२४,११८

चारि पदारथ मुक्ति बापुरी, अठ सिधि नौ निधि चेरी ।
माया दासि ताके आगैं, जहँ भक्ति निरजन तेरी ।।६६।।पृ०१२५ वही
ब्रह्म भगति जब ऊपजै, तब माया भगति विलाइ ।।६५।।भा०१ पृ०२२।।वही
माया चेरी सत की, दासी उस दरबार ।
ठकुराणी सब जगत् की, तीन्यूँ लोक मँझार।।६७।।पृ०१२५ ६८मी भा०१ वही

सुन्दरदास

सुन्दरदास के अनुसार माया जड़ है अत वह प्रेरक नही है, मोहिनी माया सप्त द्वीप और नाखड मे खेल खेलती है, वह ब्रह्मा, बिष्णु, और महेश की स्त्री बनी हुई है-

माया जड सु कहा करै हो प्रेरक और कोइ ।
ज्यौ बाजीगर पूतली हो हाथ नचावै सोइ ।।४।।
षेलत माया मोहनी हो सप्त दीप नौ षड ।।१।।सु०ग्र०पृ० ६२२ पृ०६१८,७७६मी।
ब्रह्मा सावत्री मिलि हो बिष्णु लक्ष्मी संग।
शकर गौरिप्रसिद्ध है हो्ये माया के रग ।।२।। सु ग्र० पृ०६२२।।

सुन्दर के मतानुसार माया दु ख का मूल है तथा यह मिथ्या और सॉपिनी है, जिसने सम्पूर्ण जगत् को अपना भक्ष्य बनाया है-

माया दुख को मूल ह, काया सुख नहि लेश ।।६।। पृ० ६६७।।
मायामिथ्या सापिनी जिनि सब जग षाया ।
मुखते मत्र उचरि के उनि मृतक जिवाया ।।५।।सु०ग्र० पृ० २२१।।

सुन्दर ने यह माना है कि माया बसंत के रूप में विविध खेल खेल रही है। यह गुण धारण करके कपट रूप में बैठी है। यह आप जन्म लेकर, आप ही उसे नष्ट करती है। माया कही पर कामिनी बनी हुई है तो कही पर कत। यह कहीं पर मारती है तो कहीं पर दया करती है, यह कहीं पर जाग रही है तो कहीं पर शयन कर रही है और कहीं पर रुदन मचा रही है तो कहीं पर हास्य बिखेर रही है। यह कहीं पर स्थूल है तो कहीं पर सूक्ष्म। यह तीन लोक में भरपूर है। ज्ञानोदय होनेपर माया का असत् रूप प्रकट हो जाता है --

हम देषि बसंत कियौ बिचार। यह माया षेलै अति अपार ।।
यहु छिन छिन माहि अनेक रग, पुनि कहुं बिछुरै कहु करै सग ।
यहु गुन धरि बैठी कपट माइ, यहु आपुहि जन मैं आप षाइ ।।१।।

यहु कहु कामिनि कहुं भई कन्त, यहु वहु मारि कहूं दयावत ।
यहु कहुं जागै कहु रही सोइ, यहु कहू हंसै वहूं उठै रोइ ।।२।।
यहु वहु मालनि कहुं भई फूल, यहु कहूं सूक्ष्म कहूं ह्वै स्थूल ।।३।।
यहु तीन लोक मे रही पूरी, भागी कहां कोई जाइ दूरि ।।
जो प्रगटै सुन्दर ज्ञान अग, तौ माया मृग जल रजु भुजग ।।४।। पृ० ६०२।।वही

जगजीवनसाहब

जगजीवनसाहब के अनुसार माया रामकी है, किन्तु यह असत् है -

माया यह सब है साँई की, आपुनि सब केहु गाई ।।१।।बा०मा०२ पृ०३६।।
झूँठी दुनियाँ झूठी माया, परि झूठे धन धाम ।।१।। मा०२ पृ० ६७।।वही

इस माया ने एक हिंडोले का प्रजन किया है, जिसमे ब्रह्मा,विष्णु, महेश, मुनि,इंद्र,गौरि, गणेश आदि सभी झूलते हैं । राम की माया का सुर नर मुनि कोई भी अत नहीं पा सका-

माया रच्यो हिंडोलना, सब कोइ झूल्यो आय ।
पैंग मार वहि घर गयो, काहू अंत न पाय ।।४।।
बिस्नु औ ब्रह्मा झूलेउ, झूल्यो आइ महेस ।
मुनि जन इदर झूलि सब, झूले गौरि गनेस ।।५।। बा० मा० २ पृ० ६४।।
साँई अजब तुम्हारी माया ।
सुरनर मुनि सब थकित भये हैं, काहु अंत न पाया ।।१।। मा० २ पृ० ११४।।वही

मलूकदास

मलूकदास के अनुसार माया और लोभ का घनिष्ठ सम्बन्ध है, जो माया के घर घर फिरता है, वह सच्चे गुरु कोप्राप्त नहीं कर सकता । माया काली नागिन है जिसने सम्पूर्ण संसार को डस लिया है -

जब लग जिव का लोभ न छूटै, तब लग तजै न माया ।
घर घर द्वार फिरै माया के, पूरा गुरु नहिं पाया ।।६।४।बा० पृ०१६
माया काली नागिनी जिन डसिया सब ससार हो ।।बा० पृ० ६।।१-२-३

मलूक कहते हैं कि माया मिश्री की छुरी है इस पर विश्वास नहीं करना चाहिए, यह ब्रह्म जीव को ब्रह्म से लड़ाती है --

माया मिसुरी की छुरी, मत कोई पतियाय ।
इन मारे रसबाद के, ब्रह्महिं ब्रह्म लड़ाय ।।७१।।पृ०३८ बा०

दरियासाहब मारवाड वाले

दरिया के अनुसार माया माया सब कहते है किन्तु उसका स्वरूप कोई नही जानता राम नाम के अभाव में जो कुछ शेष रहता है, वही माया है । राम की माया के पाप और पुण्य ये दो रूप है --

माया माया सब कहै, चीन्है नाही कोय ।

जन दरिया निज नाम विन, सबही माया होय ।।५०।।बा० पृ०३३

पाप पुन्न दोउ रूप हैं, उनही की माया ।।३।। पृ० ४८ ।।

जहाँ ब्रह्म चिन्तन होता है, वहाँ माया का सचार नही होता -

माया तहाँ न सचरै, जहाँ ब्रह्म का खेल ।

जन दरिया कैसे बने, रवि रजनी का मेल ।।४६।।बा० पृ०१९।।

संत दरिया बिहार वाले

संत दरिया के अनुसार माया प्रबल, अगम और त्रिगुणात्मक है । यह ओंकार से उत्पन्न हुई है, और इसका अन्त पाना अत्यन्त कठिन है -

माया प्रबल है अगम सरूपा, एहि तिर्गुन माया कर रूपा ।।३ ६।।ज्ञानदीपक
द०एक अनु० पृ० ७

ओंकार तें प्रगटी माया ।सोई नंद घर कृस्न कहाया ।।द०सागर पृ०५८।।

माया प्रबल केहु अन्त न पयऊ ,यह सब चरित्र बिश्नु से मयऊ ।।द०एक अनु०पृ०८।।

संत दरिया ने शंकर के अनुरूप माया को अनिवर्चनीय रूप प्रदान किया है । माया अविगत/अनन्त और ब्रह्म स्वरूपा है । यह अनल है जो अनेकों पतगो को जलाती ह । इसके अनन्त फंदे हैं जो ज्ञान को आच्छादित करते हैं --

माया अगम है अनंत अगाधी, तिर्गुन तेज समन्हि कंह बांधी ।।

माया अनल है बिखंम बेकारा, परै पतंग सकल तन जारा ।।

मुए जिवै नाहि ब्रह्म सरूपा, माया त्रिगुन है अबिगति रूपा ।।

माया प्रबल है फंद अनता, ज्ञान धेरि माया बिच तंता ।।द०एक अनु०पृ०१५।।

दरिया के मतानुसार काया रूपी द्रुम पर माया रूपी लता अच्छी प्रकार से लिपटी हुई है --

काया द्रुम माया लता, लपटि रहा बहु भांति ।

मधुकर मालति घ्रानि मे, पीवत है दिन राति ।।४८।।

दरिया ने माया को वेश्या, कालि नागिन, सर्पिनी, बाघिनी, आदि कह कर उसके अनिष्टकारी स्वरूप का भी प्रतिपादन किया है[1]। दरियाके अनुसार इस जगत् मे यह माया केवल सतो से डरती है --

साधुन्ह से भागि फिरै, कैसे परे मूजब ।।२१६ ।।द०एक०अनु० पृ० १८१।।

निर्गुण सन्तो ने माया को त्रिगुणात्मक, परन्तु असत् कहा है । भवसिन्धु से पार होने मे माया जीव के लिए सबसे बडा कंटक है। माया का सम्पूर्ण विश्व पर आधिपत्य है। माया की शक्ति अपार है। इसके चंगुल से ब्रह्मा, विष्णु और महेश तक नही बच सके । माया संतों के अतिरिक्त किसी से नहीं डरती । सन्तो की तो वह दासी बनकर रहती है। गीता और पुराणो मे मायाका जो सृजनात्मक स्वरूप उपलब्ध होता है, उसका निर्गुण सन्तो के माया निरूपण मे अभाव है। निर्गुण सतो ने मुख्य रूप से माया का विध्वंसक और अनिष्टकारी स्वरूप ही प्रतिपादित किया है।

: ङ॰ ' मोक्ष

जीव, ब्रह्म से अलग होकर जगत् में भटक रहा है। वह माया के मोहक आकर्षणों के कारण जगत् से परे होकर अपने मूल रूप मे नहीं मिल पाता । जीव का दुःखों या भवसिन्धु से छूटकर ब्रह्म से मिलना ही मोक्ष है। निर्गुण सन्तों ने इस मोक्ष का विविध रूपों में विस्तार के साथ उल्लेख किया है।

नामदेव

नामदेव ने मोक्ष के लिए निर्वाण पद का प्रयोग किया है। यह निर्वाण पद उनके अनुसार निर्मल है। निर्वाण प्राप्त करके जीव पुनरागमन के चक्र से बच जाता है-

'तूं हरि भजु मन मेरे पदु निरबानु। बहुरि न होईं तेरा आवन जानु।।पृ०२४३।।

निरमल निरबाणु पदु चीन्हि लीजै ।।पृ० २५३।।

वैष्णव धर्म के अनुसार नामदेव ने चार प्रकार की मुक्ति सायुज्य,सामीप्य,सारूप्य,सालोक्य का वर्णन किया है --

चारि मुकति चारै सिधि मिलि कै दूलह प्रभ की सरनि परिआ ।।
हिं०को०म० सतो की देन पृ० ३५४

१- दरिया एक अनुशीलन पृ० १०४, १०५, १८१ ।।

कबीर

कबीर ने मोक्ष को सुख दुःख से परे माना है -

दुख सुख से कोइ परे परम पद, तेहि पद रहा समाई ।।६।।शब्दा०भा०१ पृ०१६।।

मोक्ष के उपरान्त जीव ब्रह्म मे मिल जाता है, तब उसका पुनरागमन नहीं होता -

बहुरि हम काहे कू आवहिंगे ।

बिछुरे पंचतत की रचना, तब हम रामहि पावहिंगे ।।

कहै कबीर स्वामी सुख सागर, हंसहि हंस मिलावहिंगे ।।१५०।।क०ग्रं० पृ० १३७

दे० शब्दा० भा०१ पृ० ७० भी

कबीर ने जीवित रहते हुए मोक्ष प्राप्ति का समर्थन किया है[1]। जो जीवित रहते हुए मोक्ष प्राप्त कर लेता है, वही मुक्त है -

जीवित पावहु मोख दुवारा । अनभै सबद तत्व निजसार ।।पृ० ३०३ क०ग्रं०

जीवित मुक्त सोइ मुक्ता हो ।

जब लग जीवन मुक्ता नाहिं, तब लग दुख सुख भुगता हो ।।

देह संग ना होवै मुक्ता, मुए मुक्ति कहँ होइ हो ।

जीवत मर्म की फाँस न काटी, मुए मुक्ति की आसा हो ।।१।। शब्दा० भा०२

दे० क०व०पृ० १८ ,पृ० १०-११

मोक्ष के उपरान्त जीव इच्छानुसार कहीं भी जा सकता है[2] -

ह्वै अतीत बंधन तें छूटै जहँ इच्छा तहँ जाई हो ।३।शब्दा० भा०२ पृ०१०-११

कबीर के अनुसार मोक्ष के पश्चात् जीव जिस परमपद क०ग्रं० पृ० १६७ को प्राप्त करता है, वह अभय पद है[3] --

---

१- केनोपनिषद् में इसी जन्म में ब्रह्मतत्व प्राप्ति की चर्चा की गयी है --

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः ।।

भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति।।२।।५।।

२- मनुस्मृति ५।५ ।।

३- यः सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्म यत् परम् ।

अभयं तितीर्षतां पारं नाचिकेतं शकेमहि।।कठो०१।३।२

संतो सो अनभै पद गहिये ।

कला अतीत आदि निधि निर्मल, ताकू सदा बिचारत रहिये ।।क०ग्र० पृ०१३६

कबीर ने इस अभयपद या मोक्ष धाम को निर्वाणपद क०ग्र०पृ० २४३ सतलोक शब्दा० भा०२ पृ०१३ अमरलोक शब्दा० भा०२ पृ० ५२ परदेश शब्दा०भा०२ पृ० ८३ निजलोक ज्ञानगुदरी पृ०३ और वैकुण्ठ प्रभृति भी कहा है ।

कबीर ने अपने अमर लोक को कुछ ससीम स्वरूप भी प्रदान किया है । कबीर ने उसलोक को अधरद्वीप कहा है जो १७ सख पर स्थित है --

सत्रह संख पै अधर द्वीप जहँ, सब्दातीत विराजै ।।६।।शब्दा०भा०३ पृ०१

वह तीन लोक से परे है । वह लोक १२ कोस है । वह तीन शून्य के परे चौथा स्थान है । कबीर ने उसे सात समुद्र पार भी बताया है -

अवधू हंस देस है न्यारा ।

तीन लोक से बाहर डोले, करम भरम पचि हारा ।।शब्दा० भा०३ पृ० २३।।

द्वादस कोससाहिब के डेरा, तहाँ सुरत ठहरावे ।।३।।शब्दा० २ पृ० ५२।।

तीनसुन्न के पार बसतु है, चौथा तहँ अस्थाना ।।२।।पृ०६२ शब्दा० भा०२

सात समुद्र पार तोरा सासुर, लौटब कठिन करेरा+T, जहाँ कहुँ नाव न बेड़ा।।३।।

शब्दा० भा० २ पृ० ८५।।

कुरान में जन्नत का जो उल्लेख मिलता है उसमें सुन्दर युवतियो, बाग बगीचो, झरनो फुवारों, का वर्णन भी मिलता है । कबीर के ससीम सतलोक में भी ये वस्तुएँ प्राप्य है -

अलमस्त दिवानी, लाल भरी रंग जोबनियाँ ।

रस मगन भरी है, देखि लालन की सेजरियाँ ।।

कर पंखा डुलावे, संग सोहंग सहेलरियाँ ।

जहँ साहिब कबीर है, बिगसित पुहुप प्रकासनियाँ ।।४।।शब्दा० भा०३ पृ०१६-१७

आगे सतलोक है भाई सखन कोस तासु उँचाई ।

हीरा पन्ना लाल जड़ाई, जहँ अद्भुत खेल अपारा है ।।२६।।

बाग बगीचे खिली फुलवारी, अमृत नहरें हो रहि जारी ।२८।शब्दा०भा०२पृ०५७

तापर अगम महल इक न्यारा/सखन कोटि तासु बिस्तारा।।

बाग बावड़ी अमृत धारा, जहँ अधरी चलें फुहारा है ।।२६।।शब्दा०भा०२पृ०५८।।

किन्तु सत-लोक का यह विवरण कबीर की शेषवाणी से मेल नहीं खाता है । वैसे कबीर का मोक्षधाम साकार नहीं है, क्योंकि कबीर ने उसे शून्य और अशून्य से परे

बनाया है -

पुन्न कोटि वेगुन्न तें रहित होवै, तब धाम कबीर का पाइगे जी ।।

ज्ञानगुदड़ी रेखते और झूलने ।पृ० ४५।।

वैदिक संहिता में यह कहा गया है कि यह व्यक्त ब्रह्माण्ड ब्रह्म के एक पाद में अवस्थित है, ब्रह्म के तीन पाद इसके बाहर है, जो अमृत से युक्त हैं -

एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायाँश्च पुरुष ।

पादोऽस्य विश्वभूतानि त्रिपादस्यामृत दिवि।।३।।पुरुष सूक्त।।

कबीर ने भी उस लोक को जिसमें ब्रह्म का निवास है ब्रह्मांड के पार बताया है-

ब्रह्मंड पार वह पति सुन्दर है, अब से भूलि जिनि जाव ।।४।।शब्दा०भा०२ पृ०७६।।

वह लोक अकथनीय है, उसमें अनामी पुरुष रहता है -

तापर अकह लोक है भाई, पुरुष अनामी तहाँ रहाई ।

जो पहुँचा जानेगा वाही, कहन सुनन तें न्यारा है ।।२६।।शब्दा० भा०१पृ०७०।

वह लोक सबसे न्यारा है, जहाँ पर पूर्ण पुरुष का निवास है । वहाँ पर सुख दुःख सत्य, असत्य, पाप पुण्य, काया, माया और कर्मआदि कुछ नहीं है -

सखिया वा घर सब से न्यारा, जहँ पूरन पुरुस हमारा ।

जहँ नहिं सुख दुख साच झूठ नहिं, पाप न पुन्न पसारा ।।भा०३।शब्दा०पृ०२

वहँ काया न माया, कर्म नहीं कछु रेखनियाँ ।।४।। शब्दा० भा०३ पृ०१६-१७।।

कबीर ने यह भी कहा है कि मुक्ति उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम स्वर्ग और पाताल आदि कहीं पर भी अवस्थित नहीं है -

अर्थ धर्म और काम मोक्ष कछु, कवन दिसा बसे भाई ।

उत्तर कि दक्खिन की पच्छिम, स्वर्ग पताल कि माहीं ।।

पाप पुन्य की संका नाहीं, स्वर्ग नरक नहि जाहीं ।

कहँ कबीर सुनो हो संतो, जहाँ का पद है तहाँ समाहीं ।।बीजक ४२।पृ०४७

कठोपनिषद् '२।३।१५' मुण्डकोपनिषद् २।२।१० श्वेताश्वतरोपनिषद् ६।१४ और गीता १५।६ में यह कहा गया है कि वहाँ :ब्रह्मलोक में पर सूर्य, चन्द्र, तारे, विद्युत और अग्नि प्रकाशित नहीं होते । वहाँ पर पहुँच कर जीव का पुनरागमन नहीं होता -

न तद्भासयते सूर्यो न शशांकोन पावक ।

यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परम मम।।

इसी के अनुसार कबीर ने कहा है -[1]

१- दे० शब्दा० भा०३ पृ० ~~२-३-४-५-६~~,२३,६२,६४,६५,६०।।

नहिँ दिन रैन चन्द नहिँ सूरज, बिना जोति उँजियारा।।१।।शब्दा०भा०३पृ०२

जहा ऊगौ सूर न चदा, तहा देष्या एक अनदा।

उस आनद सू चित लाऊगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि आऊगा।।क०ग्र०पृ०६८

वस्तुत कबीर का ब्रह्म लोक अकथनीय है। गीता ७।३ मे यह कहागया है कि उस ब्रह्म को सहस्रो मनुष्यो मे से कोई एक ही प्राप्त कर सकता है। कबीर ने भी कहा है कि इस भवसिन्धु से कोई विरला जन ही पार हो सकता है -

बिरला जन कोइ उतरै पार ।।कबीर डा० द्विवेदी पृ० २४१।।

कबीर ने चार प्रकार की मोक्ष का उल्लेख करते हुए वैष्णव धर्म के अनुसार सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य, और सार्ष्टि मोक्ष का वर्णन किया है -

अतलोक को देयपयाना । चार मुक्ति पावैनिबाना ।।शब्दा०भा०२ पृ०११६।

सालोक्य- कामपरे हरि सिमिरियै ऐसा सिमरौ नित ।

अमरापुर बासा करहु हरि गया बहौरै वित।।क०ग्रं० पृ० २५०।।

सामीप्य कहै कबीर बरबहु दुख सहियै, राम प्रीति करि सग ही रहियै।।क०ग्रं०पृ०११७

सारूप्य एते औरत मरदा साजे ये सब रूप तुमारे ।।६। क०ग्रं० पृ० २६७।।

सायुज्य मै तैं तैं मैं ह्वै नाहीं, आपै अकल सकल घटमाँही ।।क०ग्र० पृ०१५७।।

सार्ष्टि कहै कबीर जिनि गया, अभिमाना, सो भगता भगवत समाना।।क०ग्र०पृ०१३२

कबीर ने मोक्ष और मोक्षधाम का उल्लेख करने के उपरान्त, भक्ति को मोक्ष से भी श्रेष्ठ माना है, और अत मैं सत्सगति को ही बैकुण्ठ कहा है -

जब लग हैं बैकुठ की आसा, तब लग नही हरि चरन निवासा।

कहै कबीर यहु कहियै काहि, साघ सगति बैकुठहि आहि।।२४।क०ग्र०पृ०६६।।

रैदास ·

रैदास ने मोक्षधाम को वैकुण्ठ कहा है। मोक्ष के उपरान्त पुनरावर्तन नही होता। रैदास के अनुसार भक्ति और मुक्ति की आशा करना व्यर्थ है, क्योंकि मन जहाँ जहाँ आशा करता है, वहा पर यह कुछ भी प्राप्त नहीं करता। जब मन परम पद की आशा और निराशा छोड देता है, तब यह सुखी होता है -

मूआ मुक्त बैकुंठ बास, जिवत यहाँ जसपावै रे ।।६२।।२।।बा०पृ०२७

कह रैदास निरजन ध्यावो ।जिस घर जावै सो बहुरि न आवौं।।बा०पृ०२७

जब लग भगति मुकति की आसा, परम तत्त्व सुनि गावै ।
जहँ जहँ आस घरत है यह मन, तहँतहँ कछू न पावै ।।३।।
छूटै आस निरास परमपद, तब सुख सति कर होई ।
कह रैदास जासों और करत है, परम तत्त्व अब सोई ।।४।।बा० पृ०३।।

कबीर के अनुसार रदास ने जीवन मुक्ति का भी उल्लेख किया है -

घृत कारन दधि मथै समान । जीवन मुक्ति सदा निरबान ।।१२। बा० पृ० २।।

नानक

भारतीय संस्कृति मे चार पुरुषार्थ माने गये ह, जिनमे मुक्ति परम पुरुषार्थ है । नानक ने मुक्ति को पदाथ पुरुषार्थ कहा ह-

चारि पदारथ कहै सभु कोई ।। सिमृति सासन पड़ित मुखि सोई ।
बिनु गुर अरथु बीचारु न पाइआ।मुकति पदारथु भगति हरि पाइआ।।२।म०१
गु०ग्र० पृ०१५४।।

गुरुनानक ने मोक्ष के लिए मुक्ति, बैकुण्ठ और परमपद का उल्लेख किया है ।[१] लालच छोडने से मुक्ति द्वार प्राप्त होता है -

लालच छोडि रहहु अपरपरि इउ पावहु मुकति दुआरा हे।।१।।गु०ग्र०पृ०१०३।

नानक ने कबीर के अनुसार मोक्षधाम को चौथा पद भी कहा है -

गुरपरसादि को विरला बूझै चउथै पदिलिव लावणिआ ।।१।।पृ०१२६,१२७।।

दादू

दादू,कबीर की भाँति ही जीवित रहतेहुए मोक्ष की आकांक्षा करते हैं -

जीवत जगपति ना मिलै, दादू बूडे सोय ।
मूवा पीछै भगति बतावैं, मूवा पीछै सेवा ।।६।।सतवाणी वर्ष २ अंक४
पृ० १५६,१६०,१६४,१६५ ।।

कबीर की भाँति दादू ने मुक्ति को फल और मोक्षधाम को अभयपद भी कहा है-

'दादू साँई सतगुर सेविये, भग्ति मुक्ति फल होइ ।
अमर अभयपद पाइये, काल न लागै कोई ।।५८।।बा०भा०१ पृ०६

दादू के अनुसार यह धाम अमरलोक है -

काल न लागइ आयु न छूटई ।
अमरलोक तहाँ अखिल सरीरा । व्याधि बिकार न व्यापइ पीरा।।
सब्द पृ० ७० ।।

दादू ने कबीर और गीता के अनुकरण पर मोक्ष धाम का उल्लेख करते हुए कहा है कि वहाँपर न सूर्य प्रकाशित होता है और न चन्द्र, वहाँ पर न माया है और न मोह, वहाँ पर सुख दुख भी कभी व्याप्त नहीं होता -

चलु दादू तहँ जाइये, जहँ चंद सूर नहिं जाइ ।
राति दिवस का गम नहीं, सहजैं रह्या समाइ ।।२४।।
चलु दादू तहँ पाइये, माया मोह थैं दूरि ।
सुख दुख को व्यापै नहीं, अबिनासी घर पूरि ।।२५।।बा०भा०१ पृ०१७२
: दे० पद २६-२७-२८-२९-३० भी

दादू ने कहा है कि जिस देश में निरजन का वास है वह दूर भी है और वह न दूर है न निकट -

सब हम देख्या सोधि करि, बेद पुरानौं माहिं ।
जहाँ निरजन पाइये, सो देस दूरि इन नाहिं ।।९८।।बा०भा०१।पृ०१४३।।
एक देस हम देखिया, नहिं नेडै नहिं दूरि ।
हम दादू उस देस के, रहे निरंजन दूरि ।।२९।बा०भा०१ पृ० १७२।।

दादू ने भी मोक्ष का उल्लेख करते हुए भागवत की सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य मुक्तियों का संकेत दिया है -

सालोक सगनि रहै, सामीप सन्मुख सोइ ।
सारूप सारीखा भया, साजुज एकै होइ ।।६०२।।भा०१ ।।पृ०६६।।बा०

किन्तु दादू ने मोक्ष को साध्य मानते हुए भी भक्ति को मोक्ष से अधिक महत्व दिया है -- दरसन दे, हौं तेरी मुकति न माँगौं रे ।।
सिद्धि न माँगौं रिद्धि न माँगौं तुमही माँगौं गोबिन्दा।।१।।बा०भा०२ पृ०१२३

सुन्दरदास

सुन्दर के अनुसार आत्मा और परमात्मा का मिलन ही मोक्ष है। कोई मुक्ति को आकाश के परे बताताहै, किन्तु वह धोखे मे है। आत्मा का अनुभव ही मोक्ष है या आशा और वासनाओं का समाप्त होना ही मोक्ष है*[१] -

---

१- सुन्दर का यह मोक्ष भाव योगदर्शन के अनुरूप है -
ततः क्लेशकर्मनिवृत्ति ।।४।३०।।
पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसव कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति।
वही४।३४।।
मु० उप०३।२।६ ब्रह्मसूत्र ४।४।२।।

आतम अरु परमात्मा कहन सुनन कौं दोइ।

सुन्दर तबही मुक्त है जबहि एकता होइ ।।३६।।पृ०८०५ ।सुं०ग्रं०

मुक्ति बतावत व्योम परि कहि धोखै के बैन ।

सुन्दर अनुभव आतमा उहै मुक्ति सुख चैन ।।३३।

सुन्दर साधन सब करै कहै मुक्ति हम जाहि ।

आत्मा के अनुभव बिना और मुक्ति कहुँ नाहिं ।।३५।।

दूरि करै सब वासना आशा रहै न कोइ ।

सुन्दर वहई मुक्ति है जीवत ही सुख होइ ।।३७।।पृ०७८६।।सुं०ग्रं०पृ०८७५-७६-७७मी

न्यायसूत्र ४।२।३८-४६,१।१।२ मे दु ख की आत्यन्तिक निवृत्ति को मोक्ष कहा है-

दु ख जन्म प्रवृत्ति दोष मिथ्या ज्ञानाना उत्तरोत्तराऽपाये तदनन्तरऽपायाद् अपवर्ग ।

मुक्ति अन्तिम पुरुषार्थ है । न्यायदर्शन के अनुसार सांख्य मे भी मोक्ष अवस्था मे दु ख का अभाव माना है -

अथत्रिविधदु खऽत्यंतनिवृत्ति अत्यंतपुरुषार्थ ।।१।१।

अत्यन्तदु खनिवृत्त्या कृतकृत्यता ।।६।५।।

न्याय और सांख्य के अनुसार सुन्दर ने भी मोक्ष में दु ख आदि बन्धनो का अभाव माना है-

जो बिचार यह ऊपजै तुरत मुक्त ह्वै जाइ ।

सुन्दर छूटै दुखन ते पद आनद समाइ ।।४४।।सुं०ग्रं० पृ० ७६२।।

मुक्ति के संबंध में सुन्दर का यह भी मत है कि बंध और मुक्ति शरीर की होती है, आत्मा इनसे प्रथक है[1] -

देह स्वर्ग अरु नरक है बंद मुक्ति पुनि देह ।

सुन्दर न्यारी आत्मा साक्षी कहियत येह ।।४७।।पृ० ७८० सुं०ग्रं०

कबीर और दादू की भाँति सुन्दर ने भी जीवित रहते हुए ही मोक्ष की कामना की है[2] -

सुन्दर कहत ऐसें, जीवत ही मुक्त होय।

मुयें ते मुक्ति कहैं तिनि कौं परिहरिये ।।२०।।सुं०ग्रं०पृ० ६१०।।दे० पृ०६१६ भी

१- ब्रह्मसूत्र ४।४।१० - १२-१३ , छा०उप० ८।१२।५-६-२,८।१३।१।।

२- इह चेदशकद् बोद्धुं प्राक् शरीरस्य विस्रस ।

तत सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते ।।कठो० २।३।४।।

मोक्ष के साथ साथ सुन्दर ने मोक्ष पद की व्याख्या की है। सुन्दर के अनुसार कोई ऐसा स्थान नहीं है जहाँ पर मुक्ति स्थित हो। निज स्वरूप को पहिचान कर एक रस रहना, और कुछ ग्रहण न करना, प्रत्युत त्याग करते रहना ही मोक्ष पद है। मोक्षपद चौथा पद है। यहाँ पर उत्पत्ति प्रलय, आदि कुछ नहीं होता-

निज स्वरूप कौं जानि अखंडित ज्यौं का त्यौं ही रहिये।
सुन्दरकछू गहै नहि त्यागै वहै मुक्तिपद कहिये ।।४।।
आदि न अन्त मध्य तहा नाही उतपति प्रलय न होई।
तीनहु गुन तें अगम अगोचर चौथा पद है सोई ।।३।।पृ० ८७५-७६-७७
दे० पूरा पद

सुन्दर ने मोक्ष के लिये परमपद, अमरपद, रामपुरी, निर्वाण पद, आदि का प्रयोग भी किया है सुं०ग्रं० पृ० ६६, ८६२, ८४४, ७४३, खोजरिपोर्ट सन् १६३५-३७, पृ०२५५।

जगजीवनदास :

जगजीवनदास के अनुसार मोक्ष में सभी दुःख, भ्रम और संकल्प नष्ट हो जाते हैं तथा मोक्ष के उपरान्त जीव का पुनरागमन नहीं होता -

निर्वान केवल भयो अम्मर, गयो कटि भ्रम जाल।
दुख दूरि दुबिधा सुख दै, जन जानि करि प्रतिपाल।।२।बा०भा०२ पृ०१२०।
जगजीवन बिनती यह मेरी, फिरि आवन नहिं होई।।४।बा०भा०२पृ०६।।

जगजीवन ने मोक्ष धाम को चौथा पद कहा है, जो गगन में स्थित है। इस लोक में पहुँचकर जीव को सुख और विश्राम मिलता है --

तबही सुख पैहौ बिस्राम ।।१।।
त्यागु सबैस आस मनते, गगन गांव बसाव ।पृ०११८।।
जगजीवन पहुंचा चौथे पद, गुरु कहँ सीस नवावै ।।५।।बा०भा०१ पृ०१२३।

मलूकदास :

मलूकदास के अनुसार मोक्ष में जन्म मरण से छुटकारा मिल जाता है। यह मोक्षधाम शून्यमहल में है जहाँ पर जीव और ब्रह्म शयन करते हैं -

आवागवन का संसय छूटा, काटी जम की फांसी ।।५।।बा०पृ०२३
सुन्न महल में महल हमारा, निरगुन सेज बिछाई।
चेला गुरु दोउ सैन हैं, बड़ी असाइस पाई ।।३।।बा०पृ०२३।।

दरियासाहब मारवाड वाले

दरिया ने मोक्ष के लिये निर्वाण, परम पद और चौथे पदका प्रयोग किया है। मोक्ष में जीव का अज्ञान और भ्रम मिट जाता है और वह जन्म मरण के चक्र से छूट जाता है --

भरम अंधेरा मिट गया, परसा पद निरबान ।।७।।बा०पृ०१

दरिया नावे नाम के, बिरला पावे कोय ।

जो पावे तो परमपद, आवागमन न होय ।।३८।।बा० पृ० ८

सरगुन निरगुन से मिला, चौथे पद मे बास ।।४५।।पृ० १६।।बा०

मोक्ष लोक मे बारह मास बसंत ऋतु रहता है और बिना बादल के मुक्ति नीर बरसता है -

बारह मास जह ऋतु बसंत । ध्यान धरै जह अनंत संत ।।६।।

त्रिकुटी सुखमन चुवत नीर । बिन बादल बरसै मुक्ति नीर।।७।।बा०पृ०३८

दरियादास बिहार वाले :

दरिया के अनुसार मुक्ति का अर्थ है यम के कठोर चंगुल से बच निकलना। शब्द०५६-१६ ।कबीर आदि संतो की भाँति दरिया जीवित रहते हुए मोक्ष प्राप्ति के पक्ष मे है --

जियतहि मुकुति होय तब साचा ।मुए चौरासी करि है नाचा ।।[1]

द०सा० पृ० ७१ द०एक अनु० पृ०३४।।

मोक्ष एक फल है जो गगन के आगे मिलता है --

आगे द्रिस्टि गगन के धावैं, खोजै प्रेम मुक्ति फल पावै ।द०एक अनु०पृ०४४

दरिया के अनुसार इन्द्रलोक, ब्रह्मलोक और वैकुण्ठ लोक मोक्ष धाम के पर्याय नहीं है, क्योंकि इनमे जन्म मरण से छुटकारा नहीं मिलता -

सो बैकुंठ अटल नहि भाई, फिरि भरमै चौरासी जाई ।।३० ४।।

ब्रह्म लोक ब्रह्म असथाना, तहा काल फिरि करै पयाना ।।३० ६।।

इन्द्रलोक कहं दानै धावै, दान करि फल इहै पावै ।।३० ८।।

एक निरंजन समझ न आवै, चीन्है बिना कोइ मुक्ति न पावै ।।३० ६।

द० एक अनु० पृ० ४१।।

१- कठो० २।३।४ ।।

दरिया ने मोक्षधाम के लिये अमरपुर शब्द० पृ०२९ छपलोक द०सा०पृ०२३ अभय पद द०सा०पृ०४ और अमरलोक द०सा०पृ०८ का प्रयोग किया है। दरिया के अनुसार मोक्ष धाम चौथा लोक है। तीनलोकों में तीन गुणों का विस्तार है, किन्तु चौथा लोक निर्गुण है, जिसका कोई मर्म नहीं जानता। यह लोक सबसे ऊपर और तीन लोकों के बाहर है-

तीनिलोक तिनि गुन फैलाई। चौथ लोक निर्गुन ले जाई।।
तीनि लोक तो बेद बखाना। चौथ लोक के मरन न जाना।।
द०सागर पृ०८

चौथा लोक सब ऊपरै, जहा पुरै निरबान।
उदिन कला परगास है, करो भजन निजु ध्यान ।।२४।द०एक अनु०पृ०५७

तीन लोक के बाहरे, सो सतगुरु का देस।
जो जन जानि बिचारहि, जम नहि पकरे केस ।।२२।।द०एक अनु०पृ०७।।

निर्गुण सन्तों ने दुःखों से मुक्त होने को मोक्ष कहा है। निर्गुण सत मोक्ष के उपरान्त पुनरागमन नहीं मानते और वे जीवित रहते हुए ही मोक्ष प्राप्ति के पक्ष में हैं। निर्गुण सन्तों ने मोक्षधाम को अमरलोक, अभयपद, सतलोक और निर्वाणपद आदि भी कहा है।

च: परमार्थ साधन

जीव का परमार्थ, मोक्ष अथवा ब्रह्म साक्षात्कार है। परमार्थ प्राप्ति के लिए जीव को साधना करनी पड़ती है। जिनसाधनों से मोक्ष उपलब्ध होता है वे परमार्थ साधन कहलाते हैं। यहाँ निर्गुण सन्तों के अनुसार परमार्थ साधनों का उल्लेख किया जा रहा है।

कठोपनिषद् १।२।८ में यह कहा गया है कि यह आत्मतत्व सहज समझ मे आनेवाला नहीं है। किसी ज्ञानी पुरुष से उपदेश प्राप्त किये बिना इस विषय मे मनुष्य का प्रवेश नहीं होता, क्योंकि आत्म-तत्व अत्यन्त सूक्ष्म है, और अतर्कनीय है। परमार्थ प्राप्ति के लिए प्रथम गुरु की आवश्यकता है। गुरु से ही ज्ञान प्राप्त होता है। गुरु से जो ज्ञान प्राप्त होता है वह आचरण या कर्म मे परिणत होने पर ही मोक्ष प्रदान करता है। गुरु ज्ञान, एवं कर्म के बाद परमार्थ साधनों में भक्ति, योग, सत्य आदि आते है।

नामदेव

नामदेव के मतानुसार जिनका भाग्य अच्छा है और जो गुरु की शरणा में है वे संत भवसिन्धु के पार हो जाते हैं -

जाके मसतकि लिखिउ करमा । सो भजि परि है गुर की सरना ।
कहत नामदेऊ इहु बिचारु । इह बिधि संतहु उतरहु पारु।।४५।।

हि०का०म०सं० की देन पृ० २५०।।

गुरु से ज्ञान प्राप्त होता है, नामदेव ने हिन्दू को अंधा और तुर्क को कांना बताकर दोनों से ज्ञानी को श्रेष्ठ बताया है -

हिंदू अंना तुरकू काणा। दोहां ते गिआनी सिआना ।।वही पृ० २५१।।

नामदेव की हिन्दी रचनाओं में कर्म का परमार्थ साधनों मे स्पष्ट उल्लेख नहीं हुआ है। नामदेव ने परमार्थ साधनो मे भक्ति को सर्वाधिक महत्व दिया है।उनके अनुसार केशव भी भक्ति के वश मे रहते हैं -

नामा कहै भगति बसि केसव अजहूँ बलि के दुआर खरो ।।३७।।वही पृ०२५४

नाम जप नवधा भक्ति का एक अंग है। राम नाम का जप करने से जीव भवसिन्धु के पार हो जाते हैं -

देवा पाहन तारीअले ।।राम कहत जन कसन तरे ।।१।।
तारी ले गनिका बिनु रूप कुबिजा बिआधि अजामलु तारीअले।।

गु०ग्रं० सा० पृ० ३४५।।

नामदेव के अनुसार राम नाम जप की बराबरी, तप दान और तीर्थादि साधनों में से कोई भी साधन नहीं कर सकता --

बानारसी तपु करै उलटि तीरथ मरै, अगनि दहै काइआ कलपु कीजै।।
असुमेध जगु कीजै सोना गरभादानु दीजै। राम नाम सरि तऊ न पूजै।।
कोटि जउ तीरथ करै तनु जउ हिवाले गारै राम नाम सरि तऊ न पूजै।।

गु० ग्रं० पृ० ९७३।।

नामदेव ने यह भी कहा है कि जो परधन और परदारा मे आसक्त नहीं होते,उनके निकट श्रीहरि निवास करते हैं-

परधन परदारा परहरि ।ताके निकटि बसै नरहरि।।हि०का०म०स०कीदेन पृ०२५५

कबीर

सिद्ध और नाथ भक्तों की परम्परा में आने के कारण कबीर ने गुरु को अत्यधिक महत्व दिया है। कबीर पंथ मे योग परम्पराके अनुकूल ही गुरु को महत्व दिया गया है[1]।

कबीर के मतानुसार गुरु के बिना शिष्य को ज्ञान मिलना असम्भव है। सारा संसार माया से दग्ध हो रहा है, गुरु ज्ञान से एक दो मनुष्य ही भवसिन्धु के पार हो पाते है -

माया दीपक नर पतँग, भ्रमि भ्रमि इवैं पड़त।
कहै कबीर गुर ग्यान थै, एक आध उबरंत ।।२०। क०ग्रं० पृ०३।।
पंडित पढ़ि गुन पचि मुए गुरु बिन मिलै न ज्ञान।
ज्ञान बिना नहिं मुक्ति है, सत सब्द परमान ।।३११।। क०व० पृ० ३१।।

कबीर ने गुरु और गोविन्द को एक मानते हुए भी[2] गुरु को गोविन्द से बड़ा माना है। तीन लोक और नौ खड में गुरु से बड़ा कोई नही है। जो गुरु करता है वही होता है। मुक्ति भी हरि के स्मरण से न मिल कर, गुरु के स्मरण से ही मिलती है। हरि के रुष्ट होने पर गुरु का आश्रय है किन्तु गुरु के रुष्ट होनेपर कही पर भी आश्रय नही है -

गुरु गोबिद तौ एक है दूजा यहु आकार ।।क०ग्रं० पृ०३
तीन लोक नौ खड में गुरु ते बड़ा न कोइ।
करता करै न करि सकै गुरु करै सो होइ ।।३१२।।
गुरु हैं बडे गोबिद तें मन में देखु बिचार।
हरि सुमिरै सो बार है गुरु सुमिरै सो पार ।।३०६।।
कबीरा ते नर अंध हैं गुरु को कहते और।
हरि रूठे गुरु ठौर है गुरु रूठे नहि ठौर[3]।।३०८।।क०व०पृ०३१-३२

कबीर के अनुसार सद्-गुरु के द्वारा ही मोक्ष प्राप्त होती है। अज्ञानी गुरु के द्वारा जीव अन्धकार में पड़ता है। अज्ञानी गुरु को यदि शिष्य भी अज्ञानी मिल जाये तो दोनों भवकूप मे पड़ते हैं। इस भाव को कठोपनिषद् और मुण्डकोपनिषद् १।२।८ में

१- दि निर्गुण स्कूल आफ हिन्दी पोएट्री पृ० १६७ फुटनोट ।
२- मुनि परशुराम सूत्र ३।६३ पृ०२१ मे गुरु को ईश्वर के बराबर माना है।
३- हरौ रुष्टे गुरु त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गुरुमेव प्रसादयेत ।।२३।।गुरु गीता।

शेष अगले पृष्ठ पर---

स्पष्ट किया गया है। कबीर ने भी इसी भाव के अनुरूप कहा है -

जाका गुर भी अंधला, चेला खरा निरंध।
अंधे अंधा ठेलिया, दून्यूं कूप पड़ंत ।।१५।।क०ग्रं० पृ० २ ।।

कबीर के अनुसार गुरु के द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है और ज्ञान मोक्षप्रद है-

पंडित पढि गुन पचि मुए गुरु बिन मिलै न ज्ञान।
ज्ञान बिना नहिं मुक्ति है सत सब्द परमान ।।द०व० ३११ पृ०३२।

कबीर के मतानुसार राम नाम ही ब्रह्म ज्ञान है। ज्ञान विचार के बिना जीवन व्यर्थ है। ज्ञान के साथ धर्म का संयोग है। ज्ञान से माया बन्धन कट जाते हैं। ज्ञानोदय होने पर निर्वाण पद की उपलब्धि होती है --

राजा राम नाम मोरा ब्रह्म ज्ञान। क० ग्रं० पृ० ३२७ ।।
जो मै ग्यांन बिचार न पाया, तौ मै यौं ही जन्म गवाया।।
क०ग्रं० पृ० १६७ -६८।।

जहाॅ ज्ञान तहॅ धर्म है जहाँ झूठ तहपाप। क०ग्रं० पृ० २६२।
हरि हिरदै एक ग्यान, ताथैं छूटि गई सब माया ।।२६७। क०ग्रं० पृ० १८६।
तन मन सोधि भयो जब ज्ञाना। तब लख पायो पद निर्वाना ।।२८।।ज्ञा०गुदड़ी २ पृ०२।।

कबीर ने कर्म को भवबन्धन का कारण मानते हुए भी उसे परमार्थ साधन माना है। एक पदावली में कबीर ने कर्म करने को कहा है और कर्म के आधार पर भवसिन्धु पार होने का उल्लेख किया है -

आवध राम सबै करम करिहूं।
सहज समाधि न जमथै डरिहूं ।।
कुंमरा ह्वै करि बासन धरिहूं, धोबी ह्वै मल धोऊं।
कहि कबीर मैंसागर तिरिहूं, आप तिरूं बप तारूं ।।३८६।क०ग्रं० पृ०२१७।।

सत्गुरु जो मोक्ष प्रदाता है, वह भी कर्म के द्वारा ही प्राप्त होता है-

कर्म होवै सति गुरु मिलै बैरागी अड़े।
मोको भव जल पारि उतारि बड़ा हैबै ।।५।।क०ग्रं० पृ० २६५।।

१- अविद्यायामन्तरे वर्तमाना स्वयं धीरा: पण्डितम्मन्यमाना:।
दन्द्रम्यमाणा: परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धा ।।५।।अ०१ वल्ली २। कठो०

किन्तु कर्म का लक्ष्य ज्ञान की प्राप्ति है, ज्ञान होने पर कर्म नष्ट हो जाते हैं -

ज्ञान के कारन करम कमाय । होय ज्ञान तब करम नसाय ।।८।।

शब्दा० भा० १ पृ० ३१।।

कर्म परमार्थ साधन है अवश्य, परन्तु कर्म करते हुए निष्कर्म रहना चाहिए[1]। निष्कर्म रहने से दुख द्वंद्व नष्ट होते हैं -

होय निहकर्म मिटै दुख द्वन्दा । अनुराग सागर पृ० ८४ ।।

करम करै नि करम रहे जो, ऐसी जुगत लखावै ।

सदा बिलास त्रास नहि मन मैं, भोग मै जोग जगावै ।।३।। शब्दा०भा०१ पृ०३ ।।

कबीर के मतानुसार कर्म और ज्ञान का भक्ति से कोई विरोध नहीं है[2]। कर्म से गुरु की प्राप्ति होती है और गुरु से ज्ञान और भक्ति की उपलब्धि होती है। निर्गुण संतो ने परमार्थ साधनो मे भक्ति को सर्वाधिक महत्व दिया है। कबीर के मतानुसार भक्ति से ब्रह्म प्राप्त होती है और भक्ति के बिना मुक्ति असम्भव है --

ब्रह्म कथि कथि अन्त न पाया । राम भगति बैठे घर आया ।।क०ग्र० पृ०२७५।।

कहै कबीर हरि भगति बिन मुक्ति नही रे मूल ।।क०ग्रं० पृ० २४६ ।।

नाम जप भक्ति का एक अंग है। नाम जप मोक्ष प्रदाता है। हरि नाम बिना मुक्ति नही मिलती । जिह्वा से राम नाम का अभ्यास करने पर, गर्भवास छूट जाता है। जिनके मन मे राम नाम स्थिर हो जाता है, वे निज रूप को पहिचान लेते हैं -

मुकति नहीं हरि नांव बिन, यौं कहै दास कबीर ।।१६।।क०ग्र० पृ०३७

जिभ्यां रांम नाम अभ्यास, कहै कबीर नजि गरभबास।।३७४।।पृ०२१३ क०ग्र०

रांम नाम जाका मन माना, तिनि तौ निज सरूप पहिचानां ।।क० ग्र० पृ०२२७।।

राम नाम ब्रह्म ज्ञान है। राम कहने से जीव राम ही बन जाता है --

राजा राम नाम मोरा ब्रह्म ज्ञान ।। क०ग्रं० पृ० ३२७ ।।

ज्यूं रांम कहै ते रांमै होई, दुख कलेस घालै सब खोई ।।क०ग्रं० पृ०२३६ ।।

१- गीता २।४७-४८-४९-५१ ।।

२- कबीर पदावली पृ० ६ ।।

कबीर ने शब्द साधना और नाम साधना मे कोई अन्तर नहीं माना है। जिस नाम के समान जगत् में अन्य कोई साधन नहीं है, वह शब्द में व्याप्त है -

नाम समान न जग कछु होई। सब्द में व्याप रहा है सोई।। अखरावतीपृ०६

कबीर के अनुसार अक्षर सत्य है और अन्य सभी ज्ञान झूठा है। सत्नाम तत्वसार है और सब ज्ञान झूठा है, इसके प्रमाण चारो युग हैं -

अक्खर साच झूठ सब ज्ञाना। सोई अक्खर मूल बखाना।।
सतगुरु दया ते अक्खर पाई। अक्खर ते हंसा घर जाई।।५।। अखरावतीपृ०३
सतजुग त्रेता द्वापर है और कलिजुग परमान।
तत्वसार सतनाम है और झूठ सब ज्ञान।। अखरावतीपृ०१२।।

कबीर के मतानुसार विवेकी और पंडित भी वही है जो शब्द और अक्षर को जानता है। जगत् से शब्द विवेकी का ही उद्धार होता है, शब्द के बिना मुक्ति प्राप्त नहीं होती -

उबरै सब्द बिबेकी सोई। सब्द बिना जग जाय बिगोई।। अखरावतीपृ० ६।।
बिना सब्द मुक्ति नहिं पावै। ज्ञानी होय सो यह अथावै।।१०। अखरावतीपृ०६

कबीर ने जहाँ ज्ञान से नाम को अधिक महत्व दिया है वहाँ उन्होंने शब्द और योग का साम्य दिखलाते हुए शब्द को प्रमुखता दी है --

सब्द जोति मन कहा करै, सहज जोग है येह।
सतनाम निज सार है, नाहि तो झूठी देह।। अखरावतीपृ० ८।।

ज्ञान और योग की अपेक्षा नाम को अत्यधिक महत्वदेते हुए, कबीर ने कर्म को तुलना में भी नाम को ही अधिक महत्व दिया है -

सुर नर मुनि करम भुलाना। होइ नि कर्म नहि नाम समाना।।
फिरि फिरि कर्म बंधन सब होई। नाम बिना नहि बाचै कोई।।२४।
अखरावती पृ० १४।।

कबीर के मतानुसार परमार्थ साधनों मे, कर्म, धर्म, जप, तप, योग, आदि किसी भी साधन के द्वारा शब्द को प्राप्त नहीं किया जा सकता। एक सतनाम बिना कोई भी पार नहीं हो सकता --

तीरथ बरत नेम जप लागा। काहू के मन धोखन भागा।।२।। अखरावतीपृ०२।।
जोग जज्ञ व्रत नेम साधना, कर्म धर्म ब्योपारा।।
सो तो मुक्ति जगत से न्यारी, कस छूटै जम द्वारा।।२।। शब्दा०भा०१ पृ०५।।

सतजुग त्रेता द्वापर बीता । काहु न हुई सब्द परतीता ।।

जप तप जोग सबन ठहराया । काहू न खोज सब्द का पाया ।।

कलजुग एको थिति ना होई । बिन सतनाम तरै नहि कोई ।।

जोनी संकट कबहुं न छूटै । पकरि पकरि जम सबहिन लूटै ।। अखरावती पृ० २।।

कबीर ने नाम को सत्य कहा है। परमार्थ साधनों में सत्य का उल्लेख करते हुए कबीर ने कहा है कि जिसके हृदय में सत्य है, उसके हृदय में राम का निवास रहता है -

साच बराबर तप नहीं । झूठ बराबर पाप ।

जाके हृदया साँच है , ताके हृदया आप ।। बीजक पृ० ११४

सत्य और सत्संग में कोई अन्तर नहीं है। सत्संग शब्द सत् और संग के योग से बना है। कबीर के विचारसे सत्संग और नाम जप में कोई अन्तर नहीं है। जीव को साधुओं का सत्संग करना चाहिए अथवा हरि का गुण कीर्तन। सत्संग के द्वारा ही कबीर ने भवसिन्धु पार किया था --

गुर प्रसाद साध की संगति,जग जीतै जाइ जुलाहा ।।क०ग्र० पृ०२२१।।

कै संगति करि साध की कै हरि के गुन गाइ ।।१०।।क०ग्र० पृ० २४६।।

साधु सेवा से व्याधि दूर होती है, और सहज में ही जीव मोक्ष प्राप्त कर लेता है --

साधुन सेवा कर मन मेरे, कोटिन व्याधि हरै ।।

कहत कबीर सुनो भाई साधो, सहज में जीव तरै ।।५।।शब्दा०भा०२ पृ०१

कबीर के गुरु कृपा और सत्संग,योग युक्ति से प्राप्त होता है। जिन्हें यह प्राप्त होताहै, वे पुन संसार में नहीं आते -

गुरु की कृपा साध की संगत, जोग जुक्ति तैं पावै ।

कहैं कबीर सुनो हो साधो, बहुरि न भव जाल आवै ।।५।।शब्दा०भा०१ पृ० ६५।।

ज्ञान और योग का समन्वय करते हुए कबीर ने योग को परमार्थ साधन माना है। जो मनुष्य योगयुक्ति जानतेहैं और ब्रह्म को अपने अन्दरही खोजते हैं, उन्हें मोक्ष मिलने में संशय नहीं रहता --

ज्ञानी जुगति से जोग धराई। सो जोगी भौ सिंधु तिराई ।।२३। अखरावती पृ०१३।

जे नर जोग जुगति करि जानैं, खोजैं आप सरीरा ।

तिनकूं मुकति का संसा नाहीं, कहत जुलाहा कबीरा।।३१७।क०ग्र०पृ०१६५।

कबीर ने परमार्थ साधनों मे क्षमा, एकाग्र मन, विश्वास, शील, सन्तोष आदि का भी परमार्थ साधनों की दृष्टि से उल्लेख किया है -

सील सतोष बिबेक छमा धरि, मोह के लहर तुटाव ।

कहै कबीर सुनो भाइ साधो, अमर लोक पहुँचावै ।।४।। शब्दा० पृ०१२।।

कबीर के अनुसार जिसके हृदय में क्षमा का वास रहता है, उसके हृदय मे ब्रह्म का निवास रहता है --

जहाँ ज्ञान तहँ धर्म है जहा झूठ तहं पाप ।

जहा लोभ तहँ काल है जहाँ खिमा तहँ आप ।।क०ग्रं० पृ० २६२।।

सत्य, क्षमा आदि भाव मन सेसम्बन्धित है । यदि मन मान जाये स्थिर होजाये तो ब्रह्म को जाना जा सकता है--

कहि कबीर मन मान्या । मन मान्या तौ हरि जान्या ।।क०ग्र०पृ०३१४।

किन्तु जब तक मन मे विश्वास उत्पन्न नहीं होता, तब तक मुक्ति नहीं मिलती --

करहु एक की टेक, मुक्ति नही परतीत बिनु ।।अखरा० पृ० २४।।

रैदास :

रैदास ने कबीर की भाँति ही परमार्थ साधनो का उल्लेख किया है । रैदास के मतानुसार ऐसा गुरु करना चाहिए कि पुनः न करना पडे -

सो गुरु करौं जो बहुरि न करना ।

ऐसो मरौं जो बहुरि न मरना ।।२।। बा० पृ० २६।।

गुरु से ज्ञान प्राप्त होता है । ज्ञान और विचार के साथ हरिचरणों मे चित लगाना चाहिए । विमल विवेक सुख से,सहज स्वरूप प्राप्त होता है, और तत्व विवेक के बिना, जीव नरक में पड़ता है --

ज्ञान बिचार चरन चित लावै, हरि की सरनि रहै रे ।।

कह रैदास बिमल बिबेक सुख, सहज सरूप सँभारा ।।३।।बा० पृ०७

कह रैदास बिबेक तत्त बिनु, सब मिलि नरक परीजै ।।४।।बा०पृ०३४।।

रैदास ने स्पष्ट रूप से परमार्थ साधनो में कर्म का उल्लेख नहीं किया है । कबीर के अनुरूप रैदास ने यह कहा है कि कर्म ज्ञान के लिये हीकिये जाते हैं और ज्ञानोदय होने पर कर्म नष्ट हो जाते हैं --

ज्ञानहि कारन करम कराई । उपजै ज्ञान त करम नसाई ।।४।।बा०पृ०२।।

गीता ४।१६-१७-१८ मे यह कहा गया है कि कर्म क्या है और अकर्म क्या है इसेठ विद्वान भी भूले हुए हैं । कर्म, अकर्म और विकर्म क्या है, इसे जानना चाहिए, कर्म की गति गहन है । इसीके अनुसार रैदास ने भी कहा है -

करम अकरम बिचारियै, सुनि सुनि बेद पुरान ।

सदा सदा हिरदै बसै, हरि बिन कौन हरै अभिमान।।२।।बा०पृ०१४।।

रैदास ने परमार्थ साधनो में भक्ति को सर्वाधिक महत्व दिया है । रैदास के अनुसार भक्ति मोक्ष प्रदायिनी है --

प्रेम भगति सों ऊधरे प्रगटन जन रैदास ।।बा०पृ०१।।

और नित्यप्रति दुष्कर्म करते रहने पर भी राम नाम जप से बैकुण्ठ प्राप्त होता है -

निसि बासर दुस्करम कमाई ।राम कहत बैकुंठे जाई।। २।। बा०पृ० ३२।।

तथा भगवत्-भजन से ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, क्षत्रिय, डोम, चंडाल, म्लेच्छ आदि पुनीत होकर, जगत् से पार हो गए हैं -

बाँमन बैस सूद अरु ख्यत्री डोम चडाल मलेच्छ किन सोई।

होइ पुनीत भगवंत भजन तै आपु तारि तारै कुल दोइ ।।सत सुधासार पृ०१८३
दे० पृ०१४-१५-२१

रैदास के अनुसार करोडो यज्ञ भी राम नाम की तुलना नही कर सकते -

कोटि जग्य जो कोई करै । राम नाम सम तउ न निस्तरै ।।५।।पृ० ३३ बा०

विष्णुपुराण . ६।२।१७ , भागवत १२।३।५२ और नारदपुराण १।४१।११५ के अनुसार सत्य, त्रेता और द्वापर मे सत्य, तप, यज्ञ पूजा आदि साधन थे किंतु कलियुग मे केवल हरिनाम ही मोक्षप्रद है । इसी के अनुसार रैदास ने भी कहा है-

सतजुग सत त्रेता तप करते, द्वापर पूजा अचार ।

तिहूँ जुगी तीनो दृष्टि, कलि केवल नाम अधार ।।४।।बा० पृ०१४।।

रैदास ने परमार्थ साधनो मे योग का स्पष्ट उल्लेख नही किया है । किन्तु उनके अनुसार आत्मस्थिरता और सर्वेच्छाओ के त्याग से भी मोक्ष मिलता है -

कह रैदास छूटी आस सब तब हरि ताही के पास ।

आत्मा थिर भई तब सबही निधि पाई ।।८।।बा० पृ० १३।।

नानक :

नानक के अनुसार सतगुरु मोक्षप्रदाता है । गुरु की शरण मे न आने से ब्रह्म नहीं मिलते -

गुर शरणि न आईऐ ब्रहमु न पाईऐ ।।६।।पृ० ६०३ ।।गु० ग्रं०

गुरु के बिना भक्ति और सत्संग भी नहीं मिलता -

बिनु गुर भगति न भाउ होइ ।।बिनु गुर संत न संगु देइ ।।३।।गु०ग्रं०पृ०११७०

नानक के अनुसार गुरु से परमार्थ सिद्धि मिलती है, वह सत्गुरु होना चाहिए । जिनका गुरु अज्ञानी होता है, उसको सरंक्षण नहीं मिलता -

गुरु जिना का अंधुला चेले नाही ठाउ ।।३।।म० १।।पृ० ५८ ।।वही

नानक ने गुरु के साथ साथ ज्ञान को भी महत्व दिया है । उनके अनुसार ज्ञानी वह है जो शब्द में रत रहता है, और जो स्वयं विचार करता है -

सो गिआनी जिनि सबदि लिवलाई।।५।।पृ० ८३१।।

कथता बकता सुनता सोई । आपु बीचारे सु गिआनी होई ।।१।।म०१ पृ०१५२।वही

नानक ने ज्ञान, धर्म और कर्म का समन्वय करते हुए कहा है कि कर्म यदि वृक्ष है तो धर्म उसकी हरीशाखा है, और ज्ञान उसके फल-फूल हैं -

करम पेडु साखा हरी धरमु फुलु फलु गिआनु ।।२।।पृ०११६८।।वही

नानक के अनुसार कर्म मोक्षप्रद है । कर्म से अमृत फल मिलता है और हरिनाम रत्न एवं मणि प्राप्त होती है । अध्यात्म कर्म नित्यप्रति करने चाहिए । जो अध्यात्म कर्म करता है, वह सच्चा है । बिना कर्म के संसार सिन्धु से पार होना कठिन है । कर्म और धर्म का तत्व जाने बिना मोक्ष मिलना कठिन है -

करम करतूति अमृत फलु लागा हरि नाम रतनु मनि पाइआ।।७।।

अधिआतम करम करे दिनु राती ।।६।।गु०ग्रं० पृ० १०३६।।

अधिआतम करम करे ता साचा । मुकति भेदु किआ जाणै काचा ।।पृ०२२३ म०१वही

अंतरि अगनि चिंता बहु जारे । विणु करमा कैसे उतरसि पारे ।।५।।पृ०६०३।वही

करम धरम की सार न जाणै सुरति मुकति किउ पाइए ।।८।।म०१ पृ०४३७।वही

नानक ने यह माना है कि भक्ति गुरु से प्राप्त होती है और कर्म से हरिनाम प्राप्त होता है तथा भक्ति से मोक्ष और ब्रह्म प्राप्ति होती है -

मुकति पदारथु भगति हरि पाइआ ।।२।।म०१। गु० ग्रं०

और सत्य शब्द और राम नाम बिना मुक्ति नहीं मिलती -

साचा सबद बिनु मुकति न कोइ ।।पृ० ६३८।।वही

राम नाम बिनु मुकति न सूझै आजु कालि पचि जाता है ।१।पृ०१०३१।गु०ग्रं०

नानक ने परमार्थ साधना में सर्वाधिक महत्व राम नाम को दिया है । उनके अनुसार राम नाम की समानता कोटि कर्म भी नहीं करसकते -

हरि नाम तुलि न पुजई जे लख कोटी करम कमाइ ।।२।।गु०ग्रं०पृ० ६२।

दान, पुण्य, हठयाग,व्रत, तप, कर्म, ज्ञान, ध्यान आदि साधन नाम जप की अपेक्षा हेय हैं -

हठु निग्रहु करि काइआ छीजै । वरतु तपनु करि मनु नही भीजै ।।
राम नाम सरि अवरु न पूजै ।१।चउसि पवनु सिंघासनु भीजै ।।
निउली करम खटु करम करीजै ।राम नाम बिनु बिरथा सासु लीजै ।।३।।
सतिगुर पूछि सगति जन कीजै ।मनु हरि राचै नही जनमि मरीजै ।।
राम नाम बिनु किआ करमु कीजै ।।७।। गु०ग्र० पृ० ६०५।।
नामु विसारि पचहि अभिमानु । नाम बिना किआ गिआन धिआनु।।
गुरमुखि पावहि दरगहि मानु ।।३।।पृ० ६०५।।गु० ग्र०

जप तप सजम करम न जाना नामु जपी प्रभ तेरा ।।३।।पृ० ८७८।।गु ग्र०
किछु पुन दान अनेक करणी नाम तुलि न समु सरे ।।४।।म०१। पृ० ५६६।।गु ग्र०

नानक ने परमार्थ साधनो मे योग को भी स्थान दिया है ।उनके अनुसार योग से अभयपद प्राप्त होता है -

नानक जीवतिआ मरि रहीऐ ऐसा जोगु कमाईऐ ।
बाजे बाझहु सिंङी बाजै तउ निरभउ पदु पाईऐ ।।
अंजन माहि निरंजनि रहीऐ जोग जुगति तउ पाईऐ ।।४।।पृ०७३०।।गु०ग्र०

नानक के अनुसार सत्संग से मुक्ति पदार्थ मिलता है -

माई रे संत जना की रेणु । सत सभा गुरु पाइये मुकति पदारथु धेणु।।१।पृ०१८।गु०ग्र०

और लालच को छोड कर अपरम्पार में रत रहने से मोक्ष की प्राप्ति होती है एव संतोष, शील, क्षमा, आत्मा और परमात्मा के परिज्ञान तथा गुरु शरण में रहने से जगत् से उद्धार होता है -

लालच छोडि रचहु अपरपरि इन्द्र पावहु मुकति दुआरा हे ।।१।।
सत संतोखि रहहु जन भाई । खिमा गहहु सतिगुर सरणाई ।।
आतमु चीनि परातमु चीनहु गुर सगति इहु निसतारा हे।। ८।।गु०ग्र०पृ०१०३०

दादू

दादू के अनुसार गुरु ज्ञान से अनेकों जीव कलियुग में ही अमर हो गए हैं और सतुगुरु के द्वारा भक्ति और मुक्ति भंडार प्राप्त होता है --

अमर भये गुर ज्ञान सौं, केते यहि कलि माँहिं ।
दादू गुर के ज्ञान बिन, केते मरि मरि जाहीं ।।१५०।बा०भा०१ पृ०१५।।

सतगुर मिलै तो पाइये, भगति मुकुति भडार ।

दादू सहजैं देखिये, साहिब का दीदार ।।५७।।बा० भा० १ पृ०८।।

ज्ञान गुरु से प्राप्त होता है । दादू ने उपनिषदों[1] के आधार पर यह कहा है कि ब्रह्म ज्ञान से जीव ब्रह्म जैसा बन जाता है-

दादू जाणै ब्रह्म कौ ब्रह्म सरीखा होय ।।सन्तबाणी वर्ष २ अंक ४ पृ० १५७

ज्ञान परमार्थ साधन है अवश्य किन्तु प्रेमा भक्ति के सम्मुख वह पगु ह -

प्रेम भगति जब ऊपजै, पगुल ज्ञान बिचार।। १२।।

दादू ने परमार्थ साधनों मे कर्म और योग का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है । कर्म के संबंध मे दादू ने केवल इतना ही कहा है कि जो जैसा करता है, उसको वैसा ही फल मिलता है । परमार्थ साधनों मे दादू ने भक्ति और नाम जप को ही प्रमुखता दी है। दादू के अनुसार भक्ति मोक्षप्रद है । भक्ति के सम्मुख मायादासी के समान रहती है -

माया दासी ताके आगैं । जहँ भक्ति निरजन तेरी ।

चारि पदारथ मुक्ति बापुरी अठ सिधि नौ निधि चेरी ।।बा०पृ०२१६।।

भगवत् भजन अथवा नाम जप से ब्रह्म का साक्षात्कार होता है । दादू की दृष्टि में समस्त साधन-सार भगवान् का नाम है --

तुम्हरे नाँइ लागि हरि जीवनि मेरा ।मेरे साधन सकल नॉव निज तेरा।।

दान पुन्न तप तीरथ मेरे, केवल नाँव तुम्हारा ।

तारणतिरण नॉव निज तेरा, तुम्ह ही एक अधारा ।

दादू अंग एक रस लागा, नॉव गहै भौ पारा ।।४।।बा०भा०२ पृ०८६-८७।।

दादू ने भक्ति के उपरान्त परमार्थ साधनों में सत्सग और एकाग्रता का उल्लेख किया है । सत्संग के सबंध में दादू ने कहा है कि साधु पुरुषों के सग से हरि मिलते है, और हरि के संग से साधु मिलते है -

'दादू हरि साधू यौं पाइए, अविगत के आराध।

साधू सगति हरि मिलैं हरि संगत थैं साध ।। १८२।।बा०पृ०६४।भा० १।।

मोक्ष के लिये एकाग्रता आवश्यक है । दादू के अनुसार मन के एकाग्र होने पर ब्रह्म दर्शन होते हैं - जब लगि यहु मन थिर नहीं, तब लगि परसन होइ ।

दादू मनवा भया, सहजि मिलैगा सोइ ।।१३।।बा०भा०१ पृ० १०४।।

१- स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति।।मुंडको पनिषद्।।३।२।९।।

सुन्दरदास

सुन्दर ने परमार्थ साधनों में गुरु को ब्रह्म से मिलाने वाला दलाल कहा है। सुन्दर के मतानुसार जो विद्या दान करता है वह विद्या गुरु है, जो ब्रह्म का साक्षात्कार कराता है वह सद्गुरु है। वस्तुत ब्रह्म और गुरु मे कोई अन्तर नहीं है। परमेश्वर में गुरु का वास है, और गुरु मे परमेश्वर का। गुरु और ईश्वर एक होते हुए भी गुरु का स्थान विशिष्ट है --

परमातमा सौं आतमा जुदे रहे बहु काल।
सुन्दर मेला करि दिया सद्गुरु मिले दलाल ।।४६।। पृ० ६७०।।
जो कोउ विद्या देत है सो विद्या गुरु होइ।
जीव ब्रह्म मेलाकरै सुन्दर सद्गुरु सोइ ।।५६।।पृ० ६७१।।
परमेश्वर महिं गुरु बसै परमेश्वर गुरु माहि।
सुन्दर दोऊ परस्पर भिन्न भाव सो नाहि ।।१।।पृ० २५६।।पृ०६७४ भी
परमेश्वर अरु परम गुरु, दोउ एक समान।
सुन्दर कहत विशेष यह, गुरुतें पावै ज्ञान ।।१।।

सुन्दर के अनुसार योग, भक्ति और ज्ञान आदि गुरु पर अवलम्बित हैं -

सद्गुरु ही तें ज्ञान ह्वै सद्गुरु ही तें ध्यान।
सुन्दर सद्गुरु ते लहै योग समाधि निदान ।।८७।।
सुन्दर सद्गुरु भक्तिमय भजनमई भजिराम।
सुखमय रसमय अमृतमय प्रेम मांहिं बिश्राम ।।६३।।पृ० ६७४ सु०ग्रं०

ज्ञान से ब्रह्म दर्शन होते हैं यह सुन्दर ने अनेक स्थानों पर कहा है सु०ग्रं० पृ०४५५, ६३४,८३७,८०७। सुन्दर ने कर्म और ज्ञान का समन्वय करते हुए कर्म को बैल और ज्ञान को सारथी कहा है। सुन्दरदास ने अंधे और पंगु की कथा के द्वारा यह भी स्पष्ट किया है कि ज्ञान और कर्म के समन्वय से ही जीव का उद्धार हो सकता है -

तुरीया सिंघासन कियौ तुरियातीत सुबोक। ज्ञान छत्र है सीस पर सुन्दर हर्ष न शोक। ।।२।।
रथ चौबीस हु तत्व को कर्म सुभासुभ बैल। सुन्दर ज्ञानी सारथी करै दशौ दिशि सैल। ।।३।।सु०ग्रं० पृ०८१३
ज्ञान क्रिया दोऊ मिलहि तबही होइ उबार।
यथा अंध के कंध पर पंगु होइ असवार ।।३।।पृ०८१६।।सु०ग्रं०

सुन्दर ने भक्ति को ब्रह्म की पुत्री कहा है जिसका संतो के साथ विवाह हुआ है-

भक्ति बिवाही सन्त जन, माया दासी संग ।

भक्ति सुता पर ब्रह्म की, आई इहिं संसार ।।२।।सु० ग्र० पृ०९८९-९९ ९९०।।

सूरदास के अनुसार स्मरण भक्ति से श्रीपति मिलते हैं। स्मरण में शील और संतोष का निवास है, तथा स्मरण से जीवन मुक्ति मिलती है -

सुमिरन तें श्रीपति मिलें सुमिरन तें सुखसार ।

सुमिरन तें परिश्रम बिना सुन्दर उतरे पार ।।५०।।

सुमिरन ही में शील है सुमिरन समिरन में संतोष ।

सुमिरन ही ते पाइये सुन्दर जीवन मोष ।।५५।।सु० ग्र० पृ० ६८०-८१।।

सुन्दर ने परमार्थ साधनों में भक्ति और नाम जप को अत्यधिक महत्व दिया है। योग, यज्ञ, तीर्थ, व्रत, दान, आदि साधनों का परमार्थ साधनों में वही स्थान है, जो नाना भाँति के व्यंजनों में नमक का होता है, और जप, तप, संयम आदि साधनों का वही महत्व है, जो शरीर के सम्पूर्ण श्रृंगार में नाक का है। किन्तु नाम के बराबर अन्य कोई धर्म नहीं है, नाम सम्पूर्ण साधनों का राजा है। नाम के सम्मुख जप, तप, दान, और व्रतादि खारे लगने लगते हैं। जो नाम जप करता है वह जपतपनियम आदि सभी साधनों को अनायास कर लेता है। श्रुति, स्मृति, पुराण और संतों का यही मत है कि नाम से निर्वाण पद प्राप्त होता है। सुन्दर ने नाम की महत्ता दिखलाने के लिए यह भी कहा है कि योग, यज्ञ, तप, तीर्थ, व्रत और दान आदि साधनों स से जो फल मिलता है, वह मिथ्या है --

योग यज्ञ तीरथ व्रत दाना, लौंन बिना ज्यौं बिंजन नाना ।। १।।

जप तप संजम साधन ऐसें, सकल सिंगार नाक बिन जैसें ।।२।।

हेमतुला बैठे कहा होई, नाम बराबरि धर्म न कोई ।।३।।

सुन्दर नाम सकल सिरताजा । नाम सकल साधन कौ राजा ।।४।।पृ०७६८।।

राम नाम बिन लेन कौं और बस्तु कहि कौन ।

सुदर जप तप दव दान व्रत लागे खारे लौन ।।१०।।

नाम लिया तिन सब किया सुंदर जप तप नेम ।

तीरथ अटन समान व्रत तुला बैठि दत्त पे हेम ।।१२।।पृ०७ ६७७।।सु०ग्र०

गुरु ज्ञान कौ विश्वास गहि जिनि भ्रमै दूजी ठौर रे ।

योग यज्ञ क्लेश तप व्रत नाम तुल्य न और रे ।।१।।पृ० ८३०।।

सब सन्त यौं ही कहत है श्रुति स्मृति ग्रन्थ पुरान रे।

दास सुन्दर नाम ते गति लहै पद निर्वान रे ।।२।।२।।पृ० ८३१।।

योग यज्ञ जप तप तीरथ व्रतादि दान, तिन हूं कौं फल सोऊ मिथ्याई बखानिये।पृ० ४६

सुन्दर ने योग को परमपद प्राप्ति का साधन माना है। योग युक्ति की साधना से जीव पर काल का प्रभाव नहीं पडता। योग मे सुन्दर ने अष्टाग योग और लययोग का उल्लेख किया है, और दोनो को परमार्थ साधन माना है -

योग सिद्धात सुनायो, अष्ट अग सयुक्त।
या साधन ब्रह्महि मिलै, तेऊ कहिये मुक्त ।।६०।।
यह लय योग अनूप है दरै ब्रह्म समान।
भाग्य बिना नहि पाइये सतगुरु कहै सुजान ।।३६।।सु०ग्र० पृ० ६६।

जिस योग और ज्ञान से ब्रह्मदर्शन होते है,वह सत्संग से ही उत्पन्न होता है। संत पुरुषो की सेवा करने से ब्रह्म प्राप्ति होती है -

जन सुन्दर सतसग ते उपजै अक्षय ज्ञान।
मुक्ति होय ससय मिटै पावै पद निर्बान ।।२२।।पृ० ७४३।
जन सुन्दर सतसग ते पावै दुर्लभ योग।
आतम परमातम मिलि दूरि होहिं सब रोग ।।२१।।पृ० ७४३।।
सन्तनि की सेवा किये सुन्दर रीझै आप।।५०।।पृ० ७४४,५०१ भी।

जीव को मुक्ति प्रदान करने के लिये ही जगत् मे सतपुरुषो का प्रादुर्भाव होता है-

सुन्दर आये सतजन मुक्त करन कौं जीव।
सबअज्ञान मिटाइ करि करत जीव ते सीव ।।१७।।पृ० ७४३ भी।

पीछे यह बताया गया है कि सुन्दरदास ने परमार्थ साधनो में अत्यधिक महत्व भक्ति और नाम जप को दिया है। सुन्दर नेपरमार्थ साधनो मे जितना महत्व भक्ति और नाम जप को दिया है, उन्होने उतना ही महत्व ब्रह्म विचार को दिया है -

सुन्दर साधन सब थके उपज्यौ हृदय बिचार।
श्रवन मनन निदिध्यास पुनि याही साधन सार ।।१।।
सुन्दर या साधन बिना दूजौ नहीं उपाइ।
निसदिन ब्रह्म विचार ते जीव ब्रह्म ह्वै जाइ ।।२।।
सुन्दर ब्रह्म बिचार है सब साधन कौ मूल।
याही मै आये सकल डाल पान फल फूल ।।१३।।सुं०ग्र० दे० पृ०७२९,७३२
७८७-८८-८९ ।।

जगजीवनदास

जगजीवनदास के मतानुसार जगत् के झंझटों को छोड कर गुरु मार्ग पर चलना चाहिए -

मन रे प्रभु सों चित लगाव ।

छाँडि दे जजात जक्त को, गुरु मारग माँ आव ।। १। भा०१ बा०पृ० ७४।

जगजीवन ने परमार्थ साधनों में भक्ति को ही प्रमुख रूप से ग्रहण किया है । राम नाम की रट से राम मिलते हैं और राम नाम का भजन करने वालों के समस्त काम सफल होते हैं --

राम राम रट लागि जेहि, आय मिले तेहि राम ।

जगजीवन तिन जनन के सफल भये सब काम ।। बा० भा० २ पृ० ०२५।।

तप, तीर्थ, व्रत, यज्ञ, दान आदि मे ध्यान के बिना उलझना व्यर्थ है -

तीर्थ व्रत तप करहि बहु बिधि, होम जग तपदान ।

यहि माँ पचि रहत निसि दिन, धर्यौ नाही ध्यान ।।४।। बा०भा०२ पृ०१३१४

जगजीवन ने परमार्थ साधनों में दया का भी उल्लेख किया है -

बिना दाया नाहीं छूटै, करै कोटि उपाय ।। २। भा०१ पृ०११६।।

मूलकदास

मूलक के अनुसार गुरुकृपा, भक्ति, आत्मनिरीक्षण, एकाग्रता, दया, दैन्यभाव आदि परमार्थ साधन है ।

मूलक के मतानुसार गुरुकृपा जीव को भवसिन्धु से पार करती है -

जीती बाजी गुर प्रताप तैं, माया मोह निवार ।

कहैं मूलक गुरु कृपा तैं, उतरा भव जाल पार ।। १।। बा० पृ० ३२।

और उनके अनुसार जीव भक्ति से भी भवसागर पार होता है -

भक्ति मजूरी दीजिए, कीजै भवजल पार ।

बौरत है माया मुझे गहे बाँह बरियार ।। २६।। बा० पृ०३४।।

मूलक यह कहते है कि आत्मान्वेषण से त्रिभुवन दिखलाई पड़ता है, और जब तक आत्माराम की पहिचान नही होती, तब तक करोडो बार पुराण सुनने पर भी मुक्ति नही मिल पाती -

आप खोजे त्रिभवन सूझै, अंधकार मिटि जाई ।१।। बा० प० १७।

मलूक के अनुसार मन को जीते बिना समस्त परमार्थ साधन क्लेशप्रद है। ब्रह्म जप तप से प्रसन्न नहीं होता। मन मे दया भाव रखने, उदासीन रहने और सब के दु ख को अपना दु ख समझने से ब्रह्म रीझता है -

मन जीते बिन जो करै, साधन सकल कलेश।
तिन का ज्ञान अज्ञान है, नाहिं गुरु उपदेस ।।६६।।बा०पृ०३८।।
ना वह रीझै जप तप कीन्है, ना आतम को जारे।
ना वह रीझै धोती टाँगै, ना काया के पखारे ।।१।।
दया करै मन राखै, घर मैं रहै उदासी।
अपना सा दुख सब का जानै, ताहि मिलै अविनासी ।।८।२।।
सहै कुसब्द बादहू त्यागै, छाडै गर्ब गुमाना।
यही रीझ मेरे निरंकार की, कहत मलूक दिवाना ।।८।।३।।बा०पृ०१६।।

दरियादास मारवाड वाले

दरिया के मतानुसार गुरु मुक्ति प्रदान करता है। राम के स्मरण करने से मोक्ष धाम प्राप्त होता है। सांख्ययोग, और नवधा भक्ति स्वप्न की रीति है, जीव को जागकर नाम तत्व से प्रेम करना चाहिए। तीर्थ, दान और जगप्रतिमा की सेवा स्वप्न है। तीनलोक और सभी धामो मे ढूँढकर देख लिया है कि तीर्थ, व्रत आदि राम के बिना व्यर्थ है -

सतगुरु दाता मुक्ति का, दरिया प्रेम दयाल।
किरपा कर चरनो लिया, मेटा सकल जंजाल।।४।।बा० भा०१
मन बाचा काया समेट कर, सुमिरै आतम राम।
दरिया नेडा नीपजै, जाय बसै निज धाम ।।२८।।बा० पृ० ७।।
सांख जोग नवधा भगति, यह सुपने की रीति।
दरिया जागै गुरु मुखी, जाकी तत्त नाम से प्रीत।।५।।
जप तप सँजम औ आचार, यह सब सुवपने के ब्यौहार।२।।
तीर्थदान जग प्रतिमा सेवा, यह सब सुपना लेवा देवा ।।३।।बा० पृ०२१।
दरिया तीनों लोक में ढूंढा सबही धाम।
तीर्थ बर्त बिधि करत बहु, बिना राम किन काम।।१८।।बा०पृ० ३०।।

दरियादास विहारवाले

संत दरिया के अनुसार सद्गुरु के वचनामृत प्राणियो के आत्मा को विशुद्ध बनाकर उन्हे अमरपुर का नागरिक बनाते है -

तिल को तेल फुलेल भयो, मेटा तिल का नाँव ।

सतगुर नाम समानेओ, बसेउ अमरपुर गाँव ।।द०एक अनु० पृ० १३१।।

दरिया के अनुसार गुरु से ज्ञान प्राप्त होता है । सतगुरु से जो ज्ञान प्राप्त होता है, उससे जीव को अचल मुक्ति प्राप्त होती है -

गुर बिन होहि न ज्ञान, ज्ञान न होखे भक्ति बिनु ।

करि देखो अनुमान, दया जबहि दिल मे बसे ।।द०एक अनु० पृ०१७।

ज्ञान रतन लिए चलता फिरता अचल मुक्ति सो पावै ।

ज्ञानी ज्ञाता सतगुर खोजो निरखि निरंतर धावै ।।वही पृ० १०८।।

दरिया ने परमार्थ साधनो में ज्ञान को महत्वपूर्ण स्थान दिया है । ज्ञान से मोक्ष प्राप्त होता है, दरिया ने यह अनेक स्थानो पर कहा है । दरिया ज्ञान को कितना अधिक महत्व देते थे, यह उनकी रचनाओ के नाम के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध में लगाने वाले ज्ञान शब्द से स्पष्ट है ।

पहले भक्ति तदनन्तर ज्ञान ऐसा दरिया साहब का मत है । द०सा० ५८ ८, भक्ति हेतु ० १.१, द० एक अनु० पृ० १२७ । दरिया ने यह कहा है कि भक्ति बिना ज्ञान नहीं होता-

ज्ञान न होखे भक्ति बिनु ।। द० एक अनु० पृ० १७।।

दरिया को भक्ति अत्यधिक प्रिय है -

कहे दरिया बारबार भक्ति है पियारी ।।वही पृ० १७२ ।।

क्योकि प्रेमा भक्ति के उत्पन्न होने पर मुक्ति मिलती है, और तीर्थ एवं व्रत इत्यादि साधन भक्ति के बिना फीके है -

प्रेम भगति जब ऊपजे, उतरि जाय भव पार ।

प्रेम प्रीति लगाय निहचे बहुरि न भवजल आवहिं ।।द०सा० पृ० २७-२८।

पद प्रयाग सो हरिपद नीका, तीरथबर्त भक्तिबिनु फीका ।।द०एक अनु० पृ०१६।

नाम जप भक्ति का एकअंग है । जीव नाम रूपी नौका से भवसिन्धु पार करता है-

भवजल अगम अपार, नाम बिना नहिं बाचहाँ ।

नौका नाम अधार, जो चाहो भव तरन को ।।पृ० ३५।।

दरिया ने योग और ज्ञान का भी समन्वय किया है। दरिया के अनुसार योगी वह है जो युक्ति जानता है और निर्मल ज्ञान को भजता है -

जोगिआ जो जुक्ति जानहि भजहि निर्मल ज्ञान । वही पृ० १०६।।

दरिया ने यौगिक क्रियाओं को दो भागों मे विभाजित किया है १ पिपीलक योग और २- विहगमयोग या ध्यान योग ।

पिपीलक योग और हठयोग एक ही हैं ।कहीं कहीं पर इसे दरिया ने कर्म योग भी कहा है वही पृ० ६४ । इस योग का अर्थ है कुण्डलिनी की पिण्ड से ब्रह्मांड तक की यात्रा वही पृ० १०३ । विहगम योग मे योगी शून्यगगन मे विचरण करते हुए अमृत पान करता है वही पृ० १०३ ।

ज्ञान,योग, भक्ति, इत्यादि के सम्पादन के लिए सत्सग आवश्यक है ।दरिया के अनुसार सत्सग से ब्रह्मप्राप्ति होतीहै --

बिनु दिल दया धरम नहिं लीला, बिनु सतसग मिटे नहि सोचा ।।वही पृ०५६

दरिया के अनुसार जहाँ सत्य है वहाँ प्रभु का निवास है। सत्य की नाव पर चढ कर जीव अमरपुर जा सकता है -

जहाँ साँच तहँ आपु हहिँ, निसि दिन होहिँ सहाय ।द०सा० पृ० १६।
सतनाव नर जो चढै, जाय अमरपुर गाव।
आवागमन रहित भयो, अजर अमरपुर निज ठांव ।।द०एक अनु० पृ० ७।

दरिया के अनुसार दया के बिना मुक्ति नहीं है। मन के जीतने पर जीत है और मन के हारने पर जीव भव बन्धन मे पडता है। ज्ञान की मथनी से मन को बिलोकर सुख उत्पन्न होता है -

जीव का दर्द बिनु बदगी बादि है दया बिनु मुक्ति नहि नर्क खानी ।वही पृ० ८२।।
मन के जीते जीतिये, मन हारे भौ हानि ।
मनहि बिलोय ज्ञान कर मथनी तब सुख उपजै जानि ।।द०सागर पृ० ३०।।

निर्गुण सन्तों ने परमार्थ साधनों में सबसे अधिक महत्व गुरु को दिया है। जीव गुरु कृपा से ही भवबन्धन काट कर ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है। कबीर, सुन्दरदास आदि सन्तों ने तो गुरु को ब्रह्म से बड़ा माना है। कबीर

दादू, सुन्दरदास इत्यादि सन्तो केअनुसार ज्ञान, भक्ति, औरमुक्ति गुरु के ही द्वारा प्राप्त होती है। निर्गुण सन्तो के अनुसार गुरु के उपरान्त ज्ञान,सत्सग, भक्ति और नाम जप का मुख्य रूप सु उल्लेख हुआ है। लगभग सभी निर्गुण सन्त इस बात से सहमत हैं कि भक्ति अथवा नाम जप समस्त परमार्थसाधनो का सार है। सुन्दरदास ने नाम जप के साथ साथ ब्रह्म विचार को भी परमार्थ साधनो का मूल माना है।

निर्गुण सन्तो ने उपर्युक्त साधनों के अतिरिक्त कर्म, योग, सत्य, दया, क्षमा प्रभृति का परमार्थ साधनो के रूप मे उल्लेख किया है।

अध्याय ६

निर्गुण राम भक्ति की साधना

भक्ति ग्रन्थों के अनुसार भक्ति के स्वरूप,अन्तराय और साधनों के संबंध में, इस प्रबंध के प्रथम भाग में वर्णन हो चुका है। इस अध्याय में निर्गुण संतों के अनुसार भक्ति के स्वरूप, आदर्श, साधन और अन्तरायों का उल्लेख किया जा रहा है।

क भक्ति का स्वरूप

नामदेव

शाण्डिल्य भक्ति सूत्र में यह कहा गया है कि भक्ति क्रियारूप नहीं है --

न क्रिया कृत्यनपेक्षणाज्ज्ञानवत् ।।१।७।।

यही बात नारद भक्ति सूत्र '८' और भागवत् १०।२६।३२ में कही गयी है।

इसी के अनुसार नामदेव ने कहा है कि जप, तप 'कर्म कुल और कर्महीन भगवान् के भक्त भवसिंधु पार हो गए हैं -

जपहीन, तपहीन, कुलहीन, क्रमहीन नामे वेसुआमी तेऊ तरे।। हि०को०म०सं०की दैन पृ०

नामदेव ने भगवान् के प्रति सेवा भाव का उल्लेख किया है। नामदेव के अनुसार अकुल,निरंजन गोपाल की सेवा करनी चाहिए -

सेवील गोपाल राइ अकुल निरंजन ।।५६।। हि०को०म०सं०की दैन,पृ०२६२ ।।

नामदेव ने ब्रह्म को पूर्ण स्वामी, और अपने को अपूर्ण सेवक भी कहा है --

कहत नामदेऊ तूं मेरे ठाकुर जनु ऊरा तू पूरा ।।५४।।वही पृ० २६१।।

नामदेव केवल कर्महीन भक्त भवसागर पार करते हैं, और उसके अनुसार कर्म शास्त्रों तक ही सीमित हैं --

सासत्र न होता वेदु न होता करमु कहाँ ते आइआ ।। वही पृ० २५२।।

शाण्डिल्य भक्ति सूत्र '४-५-६-१०-२८' में भक्ति को ज्ञानपरक न बताकर, केवल इतना ही कहा गया है कि जब तक चित्त की शुद्धि नहीं होती, तब तक ज्ञान आदि का अवलम्ब लेना चाहिए। नामदेव की भक्ति को जहाँ ज्ञानपरक नहीं कहा जा सकता वहाँ उसे ज्ञानविहीन भी नहीं कहा जा सकता। नामदेव ने ज्ञानी को

हिन्दू और मुसलमान भक्तो से श्रेष्ठ बताया है --

हिंदू अंन्हा तुरकु काणा ।।दुहा ते गिआनी सिआणा ।। गु०ग्रं०सा० पृ०८७५।।

शाण्डिल्य भक्ति सूत्र १६ में योग को भक्ति का अंग कहा गया है।
इसी के अनुरूप नामदेव ने भक्ति साधनामें योग की चर्चा की है। नामदेव के अनुसार चंद्र और सूर्य नाड़ी को सम करके जीव ब्रह्म से मिलसकता है, और वह हरि से चित्त लगाकर शून्य समाधि को प्राप्त कर सकता है --

चंदु सूरजु दुइ समकरि ब्रह्म ज्योति मिलि जाऊगी ।
नामा कहै चितु हरि सिऊ राता सुन्न समाधि समाऊगी ।।

हिं०को०म०सं० की देन, पृ० २५२

किन्तु नामदेव ने अपनी भक्ति साधनामें जहाँ योग को सहायक माना है वहाँ उन्होंने गीता और शांडिल्य भक्ति सूत्र के समान योगी से भक्त को श्रेष्ठ बताया है 'गीता ६।४६-४७,शां०भ०सू०२२'

काया कलप करैवर जीवै, ना कुछ खावै ना कुछ पीवै ।
गगन मंडल मों जोगध्यान, नाहीं नाहीं हरी नाम समान ।।३।।

वही पृ० २६७ ।।

शाण्डिल्य भक्ति सूत्र और नारद भक्तिसूत्र मे भक्ति प्रेम रूपा कही गई है।[1]
नामदेव ने प्रेम परक भक्ति का ही विवेचन किया है। प्रेम का पुष्ट औरप्रगाढ़ रूप पति पत्नी के सम्बन्ध में प्राप्त होता है। नामदेव ने अपनी प्रेमाभक्ति को ब्रह्म को पुरुष और जीव को स्त्री मान कर व्यक्त किया है --

मैं बउरी मेरा रामु भतारु। रचि रचि ता कउ करउ सिंगारु ।।१।।

गु०ग्रं०सा० पृ० ११६४

नामदेव ने अपने अनन्य प्रेम को कई छंदों में व्यक्त किया है।[2]

१- शां० भ० सू० २, ना० भ० सू० २ ।।

२- भगति करौं हरि के गन गावौं। आठ पहर अपने खसम को ध्यावौ ।।

नामदेव ने प्रेमा भक्ति के अन्तर्गत वियोग पक्ष का उल्लेख किया है। नामदेव ने विरह की व्याकुलता का वर्णन करते हुए कहा है कि भक्त को भगवान् के बिना इस प्रकार तड़पना चाहिए जैसे पानी के बिना मछली तड़पती है --

मोहि लागती तालाबेली। बछरा बिनु गाइ अकेली।
पानीआ बिनु ज्यूं मीनु तलफै। ऐसे राम नाम बिनु नामा कलपै ।।
संतसुधासार पृ० ५१।।

नामदेव की भाँति तालाबेली का कबीर, दादू और दरियासाहब :मारवाड़वाले ने भी उल्लेख किया है -

छोड्यो गेह नेह लगि तुमसे, भई चरन लौ लीन।
तालाबेलि होत घटभीतर, जैसे जल बिन मीन ।।२।।शब्दा०भा०२ पृ०७४।।

पीव पुकारै बिरहिनी, निसदिन रहै उदास।
राम राम दादू कहै, तालबेली प्यास।।३। बा०भा० १ पृ०३१।।

बिरह बियापी देह में, किया निरंतर बास।
तालाबेली जीव में, सिसके साँस उँसास ।।२।।दरियासाहबकी बा० पृ०६ ।।

नामदेव ने अपनी प्रेम परक भक्ति के अन्तर्गत दास्यभाव का जो उल्लेख किया है, वह दाम्पत्यभाव के अन्तर्गत ही किया गया प्रतीत होता है, क्योंकि पत्नी में अपने पति के प्रति प्रेम-भाव के साथ साथ दास्य भाव भी रहता ही है। किन्तु पति पत्नी में स्वामी और दासी अथवा छोटे-बड़े का भेदभाव नहीं रहता। इसी के अनुरूप नामदेव ने कहा है कि आत्मा न दास है और न ब्रह्म स्वामी प्रत्युत दोनों एक ही हैं -

प्रणवै नामा भए निहकामा को ठाकुरु को दासा रे ।।
हिं०को०म०सं० कीदेन पृ० २५४।।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि नामदेव की भक्ति प्रेमपरक है और योग एवं ज्ञान उनकी प्रेमा भक्ति के सहायक हैं। नामदेव प्रेमी भक्त ही थे, इसे कबीर ने भी प्रमाणित किया है --

गुर परसादी जयदेव नामा। भगति के प्रेम इनही है जाना ।।
क० ग्रं० क० पृ० ३२८ ।।

कबीर

शाण्डिल्य भक्ति सूत्र के अनुसार नामदेव ने भक्ति के जिस स्वरूप का उल्लेख किया है, उसी का कबीर ने विस्तृत विवेचन किया है। कबीर ने स्वय अपनी भक्तिको नारदीय भक्ति कहा है -

भगति नारदी मगन सरीरा, इहि बिधि भव तिरि कहै कबीरा ।।
२७८ ।। क० ग्रं० पृ० १८३ ।।

और नारदीय भक्ति प्रेम परक है -

सा त्वास्मिन् परमप्रेमरूपा ।। २ ।। ना० भ० सू०
नारदस्तु तदर्पिताखिला चारिता तद्विस्मरणे परमव्याकुलेति ।।१९।। वही ।।

अत कबीर की भक्ति भी प्रेमा भक्ति ही है --

प्रेम भगति ऐसी कीजिए, मुखि अमृत बरिषै चंद । क०ग्र०क० पृ० ५९

कबीर ने प्रेम भक्ति शब्द का कई पदों में प्रयोग किया है क०ग्र०पृ०९४,३२४,२९२ ।
कबीर के मतानुसार प्रेम के बिना 'मनुष्य' जीवन पशु के समान है --

प्रेम बिना पशु जीवना भक्ति बिना भगवंत ।। क० ष० क० ३७७। पृ०३८।।

प्रेमसुधा रस है, जिसका पान करने से जरा मरण का दु'ख मिट जाता है --

प्रेम सुधा रस पीवै कोइ । जरा मरण का दु ख फेरि न होइ ।।
क० ग्रं० क० पृ० ३०४ ।।

कबीर ने अपने को रामरस का रसिक भक्त. कहा है --

राम रसाइन रसिक हैं, अद्भुत गति बिस्तार जी ।क०ग्र०क० ३०।।पृ०९८।।

कबीर ने ब्रह्म को पुरुष और जीव को स्त्री मान कर, दाम्पत्यभाव के द्वारा अपने प्रेम की व्याख्या की है --

दुलहनी गावहु मंगलचार, हम घरि आये हो राजा राम भरतार ।।
कहै कबीर हम ब्याहि चले हैं, पुरिष एक अबिनासी ।१। क०ग्र० क० पृ०८७।।

किन्तु कबीर की दाम्पत्य रति लौकिक नहीं है। कबीर के मतानुसार जब तक संसारिक विषयों में रसासक्ति रहती है, तब तक :अलौकिक: प्रेम उत्पन्न नही होता -

जब लग रस तब लग नहि नेहू ।। १८८। क० ग्रं० पृ० पृ०३२२ ।।

नारद भक्ति सूत्र मे प्रेमा भक्ति का गुणमाहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति, कान्तासक्ति, वात्सल्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, तन्मयतासक्ति और परमविरहासक्ति के रूप मे उल्लेख किया गया है।[1] प्रेमा भक्ति के इन प्रकारों को कबीर ने भी व्यक्त किया है।

१: गुणमाहात्म्यासक्ति- गुणमाहात्म्यासक्ति मे भक्त भगवान् के गुण गान करके उन्हे रिझाता है। कबीर कहते हैं -

गोव्यंदा गुण गाईयैरे, ताथै भाई पाईये परम निधानं ।।

निरमल निरमल राम गुंण गावै, सो भगता मेरे मनि भावै ।।

क० ग्रं० ~~ब०~~ पृ० १२६-१२७

२: रूपासक्ति- रूपासक्ति मे भक्त भगवान् के रूपकी और आकर्षित होता है। कबीर कहते है -

बिन दरसन क्यू जीवहि मुरारी ।। क०ग्रं० पृ० १८५।।

बिरहिनि ऊठै भी पड़ै दरसन कारनि राम ।

मूवा पीछै देहुगे, सो दरसन किहि काम ।।७।। क० ग्रं० पृ० ८।।

३. पूजासक्ति - पूजासक्ति मे भक्त भगवान् की पूजा मे आसक्त रहता है। कबीर कहते हैं --

भाव प्रेम की पूजा, ताथैं भयौ देव थैं दूजा ।

जो इहि पद माहिं समाना, सो पूजनहार समांना ।। क०ग्रं० पृ० १८२।।

४ स्मरणासक्ति - कबीर का मन भगवद् स्मरण द्वारा भगवद् रूप हो जाता है--

मेरा मन सुमिरै राम कूं, मेरा मन रामहि आहि ।

अब मन रामहिं ह्वै रह्या, सीस नवावौं काहि ।। क० ग्रं० पृ०५।।

५. दास्यासक्ति- दास्यासक्ति में जीव ईश्वर की सेवा करता है। कबीर कहते हैं-

दीन दयाल कृपाल दमोदर भगति बछल मेहारी ।

कहत कबीर मीर जनि राखहु हरि सेवा करों तुमारी।।५०।क०ग्रं० पृ०२७६

१- ना० भ० सू० ८२ ।।

'६' सख्यासक्ति - सख्यासक्ति मे जीव भगवान् का सख्यत्व ग्रहण करता है। कबीर कहते हैं -

कबीर साथी सो किया, जाके सुख दु ख नही कोई।
हिलि मिलि ह्वै करि, खेलिस्यूं कदे बिछोह न होइ ।।क०ग्रं० पृ०८६।।

७ कान्तासक्ति - कान्तासक्तिमें जीव कान्ता भाव से भगवद् प्राप्ति करता है -। कबीर कहते हैं '-

कबीर सुंदरि यों कहै, सुणि हो कंत सुजांण।
बेगि मिलौ तुम आइ करि, नही तर तजौ पराण ।।क०ग्रं०पृ०८०।।

'८ वात्सल्यासक्ति- कबीर ने वात्सल्यवासक्ति के अन्तर्गत ब्रह्म को माता और जीव को पुत्र मान कर वात्सल्यभावकी व्याख्या की है -

हरि जननीं मैं बालिक तेरा, काहे न औगुंण बकसहु मेरा।
सुत अपराध करै दिन केते, जननी कै चित रहैं न तेते ।।
कर गहि केस करै जौ घाता। तऊ न हेत उतारै माता।
कहै कबीर एक बुधि बिचारी, बालक दुखी दुखी महतारी ।।क०ग्रं० पृ०१२३

:६' तन्मयतासक्ति- तन्मयतासक्ति में जीव और ब्रह्म एक हो जाते हैं। कबीर कहते हैं-

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।
अंक भरे भरि भेटिया, मन मै नाहीं धीर ।।
कहै कबीर ते क्यू मिलैं, जब लग दोइ सरीर ।। क०ग्रं० पृ०१४

:१०' आत्मनिवेदनासक्ति- आत्मनिवेदनासक्ति में जीव भगवान् से विनय करता है। कबीर कहते हैं -

बीनती एक रांम सुनि थोरी, अब न बचाइ राखि पति मोरी।
जैमसि लागी कुड़ावौ, अब मोहि जिनि बहु रूपक छावौ ।।
कहैं कबीर मेरी नाच उठावौ, तुम्हारे चरन कवल दिखलावौ ।।

'११: परमविरहासक्ति - कबीर ने जीवके परमविरह का उल्लेख करते हुए कहा है--

अंषड़िया झाई पड़ी, पंथ निहारि निहारि।
जीभड़िया छाला पड़या राम पुकारि पुकारि ।।क०ग्रं० पृ० ६।।

नारद ने भगवान् का विस्मरण होने पर परम व्याकुलता का उल्लेख किया है। 'सू०१६'। कबीर ने भी इस व्याकुलता का वर्णन किया है। कबीर ने विरह की तीव्रता

का उल्लेख करते हुए कहा है कि विरहिणि का शरीरविरहाग्नि मे जल कर अस्थि-पंजर मात्र शेष रह गया है। प्रिय के बिना बियोगिनी के प्राण स्थिर रहने कठिन हैं -

मांस गया पिंजर रहा ताकन लागे काग।
साहिब अजहु न आइया मंद हमारे भाग।। क०ग्रं० १६३। पृ०१७ ।।
हरि मेरा पीव भाइं, हरि मेरा पीव,
हरि बिन रहि न सकै मेरा जीव ।। क०ग्रं०११७ ।।पृ० १२५।।

कबीर का विरह - वर्णन भी अलौकिक ही है। कबीर के मतानुसार जो आत्मा सासारिक स्त्री पुरुषो के लिए विकल होतीहै, वह अपने शाश्वत पति को खो देती है -

इसु मरते को जे कोऊ रोवै, जो रोवै सोई पति खोवै ।।क०ग्रं०१२६ पृ०३०

कबीर ने प्रेमाभक्ति का व्यापक रूप मे विवेचन किया है। कबीर की भक्ति प्रेम परक होते हुए भी कर्म, ज्ञान और योग की अवज्ञा नहीं करती। कबीर ने यह अनेक पदों में कहा है कि कर्म के कारण ही जीव भवबन्धन में पड़ता है, और वह कर्मों के क्षीण होने पर ही भव बन्धन से पार हो सकता है।[1]

कबीर ने अपनी भक्ति में सेवा को भी स्थान दिया है। किन्तु कबीर के मतानुसार राम नाम के तत्व को जानना भी राम सेवा है --

राम राइ इहि सेवा भल मानैं, जे कोई रांम नाम तत जानैं।
।।२७६।। क०ग्रं० पृ० १८३ ।।

कबीर ने भक्तों को लिए साधु सेवा करना आवश्यक माना है। कबीर के मतानुसार साधुओं की सेवा ही हरि सेवा है, जहाँ पर साधु पुरुषो की सेवा नहीं होती, वहाँ पर हरि सेवा का नितान्त अभाव रहता है। जो सेवा करता है वही सेवक है और वही ब्रह्म को प्राप्त करता है --

---

१- नाना गुन मन कर्म कीन्हे जीव बंधन दीन्हेऊ ।।३६ ।। अनुरागसागर पृ० ३३
कर्मयोग है मन को फंदा। होय निहकर्म मिटे दुख द्वन्दा।। वही पृ० ८४
करम फंद में जुग जुग पड़िहो, फिर फिर जोनि मे भूली हो ।।३।।शब्दा०भा०१ पृ०३६।।
कर्म भवबन्धन का क्या कारण है, इसके लिए देखिए -शब्दा० भा०१ पृ०३८,६३,६१,७६ अनुराग सागर पृ० १५,शब्दा० भा०३ पृ० ३४,भा० २ पृ० १३,६१ १०६, [illegible] पृ०१ क० ग्र० प० २३६, २८० :

जा घर साध न सेवियहि हरि की सेवा नाहि ।

ते घर मरहट सारखे भूत बसहि तिन माहि ।। ८ मा० क०ग्र० पृ०२५५।।

सो सेवक व जो लाया सेव । तिनही पाये निरजन देव ।।क०ग्र०पृ०२८३।।

कबीर के अनुसार भक्त को जगत् में रहते हुए निष्काम कर्म करने चाहिए,[1] और उसे केवल आध्यात्मिक स्वार्थ की सिद्धि करनी चाहिए --

कबीरा राम सवारथी, जिनि छाड़ी तन की आस ।` क० ग्र० पृ० ७१

कबीर ने अपने को राम का सेवक कहा है, किन्तु वे राम के विरह मे दु खी है, जो जागते और रोते है । कबीर के अनुसार संसार सुखी है जो खाता और सोता है[2] -

दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै ।

सुखिया सब संसार है, खाये अरु सोवै ।। क० ग्रं० पृ० ११ ।।

कबीर की दास्यभक्ति प्रेमा भक्ति का ही एक अंग है । कबीरने दाम्पत्य भक्ति के अन्तर्गत ही दास्य भाव का उल्लेख किया है --

हम तो तुम्हरी दासी सजना, तुम हमरे भरतार ।

दीनदयाल दया करि आओ, समरथ सिरजनहार ।।४।।शब्दा० भा०२ पृ०७४।।

ब्रह्मसूत्र `३।४।१४-१५-१६-१७ में यह कहा गया है कि ब्रह्म विद्या:ज्ञान: से कर्मों का सर्वथा नाश हो जाता है । मुण्डकोपनिषद् में भी यह कहा गया है कि ब्रह्म को तत्व से जान लेने पर समस्त कर्म नष्ट हो जाते हैं --

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशया` ।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ।।मु०२।२।८।।

यही बात गीता `४।३७: में कही गयी है । इसीके अनुसार कबीर ने भी कहा है कि ज्ञानोदय होने पर सम्पूर्ण कर्म नष्ट हो जाते है -

ज्ञान के कारन करम कमाय । होय ज्ञान तब करम नसाय ।। शब्दा० भा०१ पृ०३१।।

१- शब्दा० भा० १ पृ० ३

२- कबीर का यह भाव कुछ कुछ गीता से मिलता है --

या निशा सर्वभूताना तस्यां जागर्ति संयमी ।

यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुने`।।

गीता ।।२।६९ ।।

कबीर के मतानुसार ज्ञान के कारण ही कर्मों का सौंदर्य है । ज्ञान की कंघी से कर्मों के० को संभालना चाहिए[1] । कबीर ने कर्म की सत्ता तब तक स्वीकार की है जब तक ज्ञान उत्पन्न नहीं होता । कबीर की प्रेमा भक्ति जहाँ कर्मपरक है, वहाँ वह ज्ञानपरक भी है । कबीर ने कई पदों में ज्ञ ज्ञान के महत्व को स्वीकार किया है[2] । कबीर ने एक पद में कहा है कि यदि मैं ज्ञान और विचार प्राप्त न कर सका तो मेरा जन्म व्यर्थ ही बीत जायेगा ।

` जो मैं ग्यांन बिचार न पाया । तो मैं यौंही जन्म गंवाया।।

क०ग्रं० पृ० १६७ ।।

उनके अनुसार अवधूत को ऐसा ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, जिससे उसे पुन भवबन्धन में न पड़ना पड़े --

अवधू ऐसा ज्ञान बिचारी, ज्यूं बहुरि न ह्वै संसारी ।।क० ग्रं०२०६ पृ०१५६

कबीर क ने ज्ञान की आंधी का उल्लेख किया है जिसमें भ्रम और माया नष्ट हो जाते हैं -

संतो भाई आई ग्यांन की आंधी रे ।

भ्रम की टाटी सबै उडांणी, माया रहै न बांधी ।।१६ ।।क०ग्रं०पृ० ६३

कबीर की प्रेम साधना में ज्ञान सहायक है । कबीर की सुन्दरी 'जीवात्मा शील,सुमति और ज्ञान आदि से अपना श्रृंगार करती है -

सील सुमति की चुनरी पहिरी, सत मति रंग रँगाय।

ज्ञान तेल सौं माग सँवारी, निर्भय सैंदुर लाय ।। शब्दा० भा०१ पृ०३३

कबीर की कई उक्तियाँ ऐसी हैं जिनमें यह कहा गया है कि ज्ञान भ्रम मात्र है[3] । कबीर ने जहाँ पर ज्ञान की निन्दा की है, वहाँ पर पुस्तकीय ज्ञान से उनका आशय है, ऐसा प्रतीत होता है[4] । कबीर ने पुस्तकीय ज्ञान में भी उसकी निन्दा की है जिस पर विचार नहीं किया जाता ।

१- ज्ञान की कंगही ले के सजनी, कर्म केस निवारू हो । ५ ।।शब्दा० भा०२ ।पृ०१०७

२- क० ग्रं० पृ० १२८

३- वही पृ० १७४

४- वही पृ० १६५

कबीर ने यह कहा है कि वेद झूठा नहीं है, झूठा वह है जो उस पर विचार नहीं करता --

बेद कीब कहहु मत झूठे झूठा जो न बिचारै । क० ग्रं० पृ० ३२३ ।।

शाण्डिल्य भक्ति सूत्र '१९ में योग को ज्ञान और भक्ति दोनों का अंग माना है । कबीर ने भी योग को ज्ञान और भक्ति की साधना में आवश्यक माना है । कबीर के अनुसार ज्ञानी, युक्ति से योग साधना करके भवसिन्धु पार कर सकता है -

ज्ञानी जुगति से जोग धराईं । सो जोगी भौ सिंधु तिराईं ।।अखरावती पृ०१३

योगदर्शन में चित्तवृत्तियों के निरोध को योग कहा है -

योगश्चित्तवृत्तिनिरोध ।।१।२।।

इसी के समान कबीर ने कहा है कि मन को वश में करना ही सहज योग है -

सो जोगी जो मन को चीन्हा । मन चीन्हे बिन जोग अधीना ।।१४।।

सबद खोजि मन बस करै, सहज जोग है येह ।। अखरावती पृ० ८।।

कबीर के अनुसार जो मनुष्य योग युक्ति के द्वारा अपने शरीर मे ब्रह्म का अन्वेषण करता है उसको मुक्ति मिलने में सशय नहीं रहता -

जे नर जोग जुगति करि जानैं, खोजैं आप सरीरा ।

तिनकूं मुकति का संसा नाहीं, कहत जुलाहा कबीरा ।।३१७। क०ग्रं०पृ० १९५।।

कबीर ने जैसे व्यर्थ के कर्मकाण्ड और अनावश्यक ज्ञान की निन्दा की है वैसे ही उन्होंने योग मे जो आडम्बर और ढोग आ गया था, उसकी निन्दा की है । कबीर के कई ऐसे पद हैं जिनमें भक्ति के सम्मुख योग को हेय समझा गया है[1] । फलत: कबीर की भक्ति के स्वरूप के संबंध में यह कहा जा सकता है कि वह मुख्य रूप से प्रेमपरक है, किन्तु वह ज्ञान और योग को भी लिए हुए है ।

रैदास : रैदास ने कबीर के समान ही भक्ति तत्व का विवेचन किया है । रैदास के अनुसार भक्ति प्रेमपरक है । जीव का प्रेमा भक्ति के द्वारा ही जगत् से उद्धार होता है-

जा देखे घिन ऊपजै, नरक कुंड में बास ।

प्रेम भगति सौं ऊधरै प्रगटत जन रैदास ।। बा० पृ० १

१- क० ग्रं० पृ० ९९, पृ० १३०

और जब तक प्रेमाभक्ति उत्पन्न नहीं होती, तब तक जीव उदास रहता है -

प्रेम भगति नहिं ऊपजै, ताते जन रैदास उदास ।७। बा०पृ०१४

कबीर के अनुसार भक्त और भगवान् के परस्पर दर्शन से प्रेम उत्पन्न होता है, और जब ब्रह्म से प्रेम उत्पन्न होता है तब लौकिक प्रेम टूट जाता है -

तूँ मोहिं देखै हौं तोहि देखूँ, प्रीति परस्पर होई ।।बा० पृ० ७।।

साची प्रीति हम तुमसिउ जोरी । तुमसिउ जोरि अवर संगि तोरी।
बा० पृ० २१८ ।।

यद्यपि रैदास ने अपनी प्रेमा भक्ति में कर्म को कोई विशेष स्थान नहीं दिया है, तथापि उनकी भक्ति लोकमर्यादा के प्रतिकूल नहीं है --

लोक बेद मेरे सुकृत बड़ाई । लोक लीक मोपै तजी न जाई ।।बा० पृ० ३८।

कर्म के संबंध मे रैदास का यह मत है कि जीव कर्मानुसार फल प्राप्त करता है -

जो कुछ बोया लुनिय सोई, ता मैं फेरफार कस होई ।। बा० पृ० २८।।

कबीर के समान रैदास ने भी यह कहा है कि कर्मों की आवश्यकता तभी तक रहती है जब तक ज्ञान उत्पन्न नही होता । ज्ञानोदय होने पर कर्म नष्ट हो जाते हैं --

ज्ञानहि कारन करम कराई । उपजै ज्ञान त करम नसाई ।।४ बा० पृ०२ ।।

रैदास ने अपनी भक्ति को दास्यभाव की भक्ति कहा है -

प्रभु जी तुम स्वामी हम दासा । ऐसी भक्ति करै रैदासा ।।बा० पृ०४२।।

तू साईं औसाहिब मेरा, खिजमतगार बंदा मैं तेरा ।

कह रैदास अंदेसा येही, बिन दरसन क्यौं जिवहि सनेही ।।बा०पृ०३०।।

मैं बेई नर तुहिं अंतरजामी ठाकुर थैं जन जानिय जन थैं स्वामी ।२।बा०पृ०१६।।

रैदास ने अपनी भक्ति के अन्तर्गत ज्ञान का भी उल्लेख किया है । रैदास के अनुसार मन के स्थिर होने पर विमल विवेक सुख होता है --

मन थिर होइ तो कोइ न सूझै, जानै जाननहारा ।

कह रैदास बिमल बिबेक सुख, सहज सरूप संभारा ।। बा० पृ० ७।।

ज्ञान बिचार चरन चित लावै, हरि की सरनि रहै रे ।। बा० पृ० २२।

रैदास ने भक्तिमार्ग मे कर्म और ज्ञान की उपयोगिता का तो उल्लेखकिया है, किन्तु उन्होने योग का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है ।

केवल योगमार्ग की सहज समाधि का रैदास ने उल्लेख किया है

तोड़ूँ न पाती पूजूँ न देवा । सहज समाधि करूँ हरि सेवा ।। बा०पृ० २७

रैदास ने अपनी भक्ति-साधना में कर्म, ज्ञान और योग को स्थान तो दिया है किंतु उन्होंने अपनी भक्ति में राम नाम को बहुत महत्व दिया है। उनके अनुसार भक्त राम नाम के बिना जो कुछ करता है, वह सब भ्रम है। ज्ञान का कथन इंद्रियों का निग्रह और योग साधना करना ही भक्ति नहीं है। रैदास के अनुसार अपना आपा नष्ट करने पर ही भक्ति प्राप्त होती है -

ऐसी भगति न होइ रे भाई ।

राम नाम बिन जो कछु करिए, सो सब भरम कहाई ।

भगति न रस दान भगति न कथै ज्ञान ।

भगति न इंद्री बाँधा भगति न जोग साधा ।

भगति न अहार घटाई ये सब करम कहाई ।।३।।

आपो गयो तब भगति पाई ऐसी भगति भाई ।

राम मिल्यो आपो गुन खोयो रिधि सिधि सबै गँवाई ।।७।बा० पृ०१२

रैदास के उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट होता है कि रैदास की भक्ति प्रेमा-भक्ति है, जो कर्म, ज्ञान और योग विवर्जित नहीं हैं, किन्तु उनकी भक्ति का अर्थ कर्म ज्ञान और योग मात्र नहीं है, उसका मुख्य तत्व राम-प्रेम है।

नानक नानक ने भी अपने पूर्ववर्ती संतों के समान ही भक्ति की व्याख्या की है। नानक के अनुसार बिना प्रेम के भक्ति नहीं होती -

विणु प्रीति भगति न होवई विणु सतिगुर न लगै पिआरु ।।

गु०ग्रं०सा० पृ० १२८६

और नानक की भक्ति भी प्रेमा भक्ति ही है। नानक के मतानुसार प्रिय के बिना दु:ख नहीं मिटता -

पिर बिनु दुखु न जाइ ।। १।। म० १।गु०ग्रं०सा० पृ० १८।।

उनके अनुसार जिसके हृदय में प्रेम उत्पन्न होता है, वह मुक्त हो जाता है -

जिसु अंतरि प्रीति लगै सो मुकता ।७।।गु०ग्रं०सा० पृ० १२२।।

नानक ने ब्रह्म को पुरुष और आत्मा को स्त्री मानकर अपना प्रेम व्यक्त किया है। वे कहते हैं कि सुन्दरी (आत्मा) अपने प्रिय के बिना एक क्षण भी नहीं रह सकती। प्रिय से बिना मिले उसे नींद भी नहीं आती। प्रिय निकट है किन्तु वह उसे दिखलाई नहीं देता, सत्गुरु के द्वारा ही वह दिखलाई देता है --

अपने पिआरे बिनु इकु खिनु रहि न सकउ बिन मिले नीद न पाई ।७।
पिरु नजीकि न बूझै बपुड़ी सतिगुरि दीआ दिखाई।।८।।गु०ग्रं०सा०पृ०१२७४।।

नानक ने भक्ति मार्ग मे कर्म, ज्ञान और योग का उल्लेख किया है। नानक ने कई पदों मे कर्म को भवबन्धन का कारण माना है[1]। और कई पदों में उन्होंने कर्म की आवश्यकता का भी उल्लेख किया है। नानक के अनुसार भक्ति और कर्म में विरोध नहीं है। कर्म रूपी बेल पर राम नाम रूपी फल लगता है -

करम करतूति बेलि बिसथारी रामनामु फलु हुआ ।गु०ग्रं०सा०१,पृ० ३५१
उनके अनुसार जिन कर्मों से सुख उत्पन्न होता है उन्हे करना चाहिए -

जितु करमि सुखु ऊपजै भाई करम करहु संसारी ।।२।।वही पृ० ६३५।।
किन्तु उनका कहना है कि मुक्ति कर्मों से न मिल कर भक्ति से ही मिलती है--

राम नाम बिनु मुकति न होई थाके करम कमाई हे ।६।पृ०१०२३।।
हरि भक्ति के उत्पन्न होने पर कर्म नष्ट हो जाते हैं -

हरि भगति सुहावी करमि भागु ।।३।। गु० ग्रं०सा० पृ०११७०।।

नानक के मतानुसार भक्त के लिए ज्ञान का आश्रय आवश्यक है। ज्ञान से जीव के अंत करण का अज्ञान रूपी अन्धकार नष्ट होकर प्रकाश उत्पन्न होता है। ज्ञान के प्रकाश से जीव ब्रह्म का साक्षात्कार करता है --

गुर गिआन अंजनु सचु नेत्रीपाइआ। अंतरि चानणु अगिआनु अंधेरु गवाइआ।
जोति जोति मिली मनु मानिआ हरि हरि सोभा पावणिआ।।३।।
गु० ग्रं० सा० पृ० १२४।।

किन्तु नानक ने ज्ञान को भक्ति की अपेक्षा निकृष्ट माना है[2]।

नानक ने कर्म और ज्ञान के साथ साथ योग को भी भक्ति के अनुकूल माना है। किन्तु कुछ पदों में उन्होंने योग की निन्दा भी की है :गु०ग्रं०सा० पृ० ६८: नानक के अनुसार योग से ब्रह्म का दर्शन किया जा सकता है --

गुरमुखि जोग सबदि आतमु चीनै हिरदै एकु मुरारी ।।१७।गु०ग्रं०सा० पृ०६०८।।

१-गु०ग्रं०सा० पृ०६३५,५६
बहु करम कमावै मुकति न पाए ।।४।।गु०ग्रं०सा० पृ०१२३
२- कथनै कहणि न छुटीऐ ना पड़ि पुसतक भार। काइआ सोच न पाईऐ बिनु हरि भगति पिआर ।।८।६। म०१।।पृ०५६।। गु० ग्रं०

योग से भक्त में साम्य भाव उत्पन्न होता है। नानक के मत से वही योगी है जो सब को एक दृष्टि से देखता है -

एक दृसटि करि समसरि जाणै जोगी कहीए सोई ।।गु०ग्र०सा० पृ० ७३०।।

इस प्रकार नानक की भक्ति के सबध में यह कहा जा सकता है कि वह प्रेमपरक होते हुए भी कर्म, ज्ञान और योग को लिए हुए हैं।

दादू दादू के मतानुसार भक्ति की व्याख्या सब करते हैं, परन्तु भक्ति क्या है यह कोई नहीं जानता। भगवान् की भक्ति तो देह में निरन्तर हो रही है --

भगति भगति सब को कहै, भगति न जाणै कोइ ।
दादू भक्ति भगवंत की देह निरंतर होइ ।।२७८।।बाणी पृ०१३६
संपा० मगलदास स्वामी'

कबीर की भाँति दादू की भी भक्ति प्रेमपरक है। कबीर के प्रभाव को दादू ने स्वय स्वीकार किया है --

दादू रहणी कबीर की ।१३।
जे थे कंत कबीर का, सोई बरवरि हूँ ।
मनसा वाचा कर्मना मैं और न करि हूँ ।। ६।। बाणी पृ० ३४८'वही'

दादू प्रेम के प्यासे हैं और वे प्रेम प्याले की कामना करते है --

दादू प्यासा प्रेम का साहिब राम पिलाइ ।७६। बा०भा०१।पृ०२२५।।
प्रेम पियाला भरि भरि दीजै, दादू दास तुम्हारा ।बा०भा०२ पृ०५७।।

राम रसायन त्रिभुवन का सार है, जो इस रस के रसिक हैं, वे ब्रह्म को प्राप्त करते हैं -

राम रसाइण त्रिभुवन सार । राम रसिक सब उतरे पार ।बा०भा०२ पृ०२६

दादू प्रेमा भक्ति की तुलना में रिद्धि,सिद्धि मोक्ष और कोटि वर्षों के जीवन को भी तुच्छ समझते हैं --

प्रेम पियाला राम रस, हमकौं भावै येहि ।
रिधि सिधि माँगैं मुकति फल, चाहैं तिनकौं देहि ।।८५।बा० पृ०६६।।
कोटि बरस क्या जीवणा, अमर भये क्या होइ ।
प्रेम भगति रस राम बिन, का दादू जीवनि सोइ ।।८६।बा०पृ०६६ भा०१

दादू ने अपनी प्रेमा भक्ति की दाम्पत्य रूप में व्याख्या की है । दादू राम की पत्नी हैं, और वे उनके पति -

हम नारी बहु अंग । दादू पुरुष हमारा एक है ।।५५।बा०पृ०१८४.
सं० मंगलदास स्वामी

दादू ने दाम्पत्य रति के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का उल्लेख किया है । दादू ने संयोग वर्णन में नख-शिख श्रृंगार का उल्लेख करते हुए प्रेम को ही मुख्य श्रृंगार माना है --

दादू सुंदरि खूब सौं, नखसिख साज सँवारि ।।भा०१ ।बा० पृ० ६४।।
प्रेम प्रीति सनेह बिन, सब झूठे सिंगार ।।
दादू आतम रतनहीं, क्यूं माने भर्तार ।।बा०पृ०२८७ ।।संपा०मंगलदास स्वामी।

दादू ने वियोग पक्ष का वर्णन करते हुए विरह के द्वारा प्रेमा भक्ति का उत्पन्न होना माना है, और कहा है कि विरह के द्वारा राम के पास पहुँचा जा सकता है --

प्रीति न उपजै बिरह बिन, प्रेम भगति क्यों होइ ।
सब झूठे दादू भाव बिन कोटि करै जे कोइ ।। ११०।।बा०भा०१ पृ०४०।।
बिरह बिचारा ले गया, दादू हम कौं आइ ।
जहँ अगम अगोचर राम था, तहँ बिरह बिना को जाइ ।।१४६।पृ०४४।।

अन्य संतों के राम से दादू की भक्ति में यह विशेषता है कि उनके राम भी विरहिणी और वे स्वयं विरही के रूप में आते हैं -

राम बिरहिनी ह्वै गया, बिरहिनि ह्वै गई राम।
दादू बिरहा बापुरा ऐसे करि गया काम ।।१४८। बा०भा०१।पृ०४४।।

दादू की प्रेमा भक्ति कर्म के प्रतिकूल नहीं है । दादू ने कर्म को भवबन्धन का कारण मानते हुए[1] भी, भक्ति साधना के लिए कर्म की आवश्यकता का उल्लेख किया है । उद्योग और सेवा एक प्रकार का कर्म ही है । दादू के मतानुसार उद्योग और सेवा भक्त को भगवान् से मिलाते हैं । दादू के अनुसार उद्यम में कोई अवगुण नहीं है प्रत्युत उद्यम में आनन्द ही है -

---

१- बानी भा० १ पृ० १८, १००, १२१, १२२, १६६ ।

'दादू उद्दिम औगुण को नहीं, जे करि जाणै कोइ ।
उद्दिम में आनंद है, जे साईं सेती होइ ।।१०।।बा०भा०१।पृ०१८५।।

दादू का सेवाभाव प्रेमाभक्ति के अनुकूल है। जिस प्रकार लौकिक जीवन मे पति पत्नी में द्वैत भाव नहीं रहता, और पत्नी प्रेम के कारण जिस प्रकार पति की सेवा करती है, उसी प्रकार आध्यात्मिक दाम्पत्य भाव मे जीव और ब्रह्म में द्वैत भाव नहीं रहता, और जीव समान भाव से ब्रह्म की सेवा करता है -

मैं जन सेवग द्वै नहीं, मेरा बिसराम ।
मेरा जब मुझ सारिखा, दादू कहै राम।।४।।बा०भा०२।पृ०७०।।
साईं सरीखी सेवा कीजे, तब सेवग सुख पावे ।।२५१।।बा०भा०१ पृ० ७२।।

दादू ने राम रस के पान को ही सेवा कहा है --

तेज पुंज को बिलसणा मिलि खेलै इक ठॉव ।
भरि भरि पीवै राम रस सेवा इसका नाँव।।२७४।बा०भा०१ पृ०७४

किन्तु सेवा के प्रभाव को दिखलाते हुए दादू ने कहा है कि जब सेवक स्वामी को वश में कर लेता है तब स्वामी स्वय सेवक की सेवा करता है +-

दादू' सेवग साईं बस किया सौंप्या सब परिवार ।
तब साहिब सेवा करै सेवग के दरबार ।।२७३।। बा०भा० १ पृ० ७४।।

दादू की प्रेमा भक्ति ज्ञान के अनुकूल भी है ।उनका कहना है कि जीव जब बिरह और ज्ञान अग्नि में अच्छी प्रकार से जलने लगता है, तब उसे राम दर्शन होते हैं-

बिरह अगिन तन जालिये, ज्ञान अगिनि दौं लाइ ।
दादू नख सिख परजलै, तब राम बुझावै आइ ।।१।।बा०भा०१पृ०३७।।

वे कहते हैं कि भक्त निर्मल ज्ञान के द्वारा ही भक्ति और प्रेम रस को प्राप्त कर सकता है --

निर्मल गुर का ज्ञान गहि, निर्मल भगति बिचार ।
निर्मल पाया प्रेम रस, छूटै सकल बिकार ।।३६।।बा०भा०१ पृ०४ ।।

किन्तु साध्य भक्ति ही है,दादू के मत से वही ज्ञानी और पंडित है जो राम में रत रहता है --

सोइ ज्ञानी सोइ पंडिता, जे राते भगवान ।।१७६।बा०भा०१ पृ०१५०।।

यद्यपि दादू ने योग का विस्तृत उल्लेख नही कियाहै। तथापि उनकी भक्ति योग के प्रतिकूल नहीं है। दादू ने योग के शरीर-पक्ष का खंडन करते हुए आत्म योग का वर्णन किया है। दाद के अनसार आत्मा योगी है, धैर्य कथा है, निश्चल आसन

और आगम पथ है, काया ही बनखंड और पाँच इंद्रियाँ ही पाँच शिष्य है, वह योगी ज्ञान गुफा में अकेला रहता है --

जोगिया बेरागी बाबा, रहै अकेला उनमनि लागा ।
आतमा जोगी धीरज कथा, निह्चल आसण आराम पथा।१।
सहजै मुद्रा अलख अधारी, अनहद सींगी रहणि हमारी ।।२।
काया बनखंड पाँचो चेला ज्ञान गुफा में रहै अकेला ।।३।
दादू दरसन कारनि जागै, निरंजन नगरी भिष्या माँगै ।।४।

बा० भा० २ पृ० ६२।।

कर्म, ज्ञान और योग मे जो ढोग-आडम्बर आ गया था दादू ने उसका खंडन करते हुए वास्तविक कर्म, ज्ञान और योग को भक्ति के अनुकूल चित्रण किया है। दादू कीभक्ति प्रेम परक है, और वह कर्म ज्ञान एव योग की त्रिवेणी का साथ लेकर विकसित हुई है। दादू की भक्ति प्रेम परक है, और वह कर्म ज्ञान और योग की त्रिवेणी को साथ लेकर विकसित हुई है। दादू की भक्ति मे विशेषता यह है कि उसमें भक्त तथा भगवान् समान भावों से सम्मिलित होते है। भगवान् के लिए भक्त में जिस विरह की तालाबेली होती है, वहीभगवान् में भक्त के लिए भी होती है, और इसी प्रकार भक्त यदि भगवान् को अपनी सेवा से वश मे कर लेता है तो भगवान् अपने सेवक के सेवक बन जाते है। अन्य भक्तो ने प्रेम के इस अन्योन्य-सम्बन्ध का विकास बहुत ही कम किया है।

सुन्दरदास : योगदर्शन .१।२ में चित्तवृत्ति निरोध को योग कहा गया है। किन्तु सुन्दर के अनुसार चित्तवृत्ति निरोध भक्ति है। चित्त का पूर्ण रूप से ब्रह्म मे समाहित होना ही भक्ति है, और यही प्रेम मार्ग है --

चित्त एक ईश्वर सौं नैकहूं न न्यारो होइ,
उहै भक्ति कहियत उहै प्रेम माग है ।।सुं०ग्रं०व० सं०२ पृ०६३४।।

सुन्दर के अनुसार ब्रह्म भाव का स्थिर होना भक्ति है --

सदा अखण्डित एक रस सोहं सोहं होइ ।
सुन्दर याही भक्ति है बूझै बिरला कोइ ।।५१।सुं०ग्रं०खं० २।पृ०६७०।।

सुन्दरदास ने भक्ति को ब्रह्म की पुत्री कहा है --

भक्ति सुतापर-ब्रह्म की आई इहि संसार ।
उत्तम वर ढूंढत फिरै, माया दासी लार ।।२।।सुं०ग्रं०पृ०१८६।।

यह भक्ति प्रेम परक है। सुन्दर ने प्रेमा भक्ति के लक्षण निर्धारित करते हुए कहा है कि प्रेमा भक्ति में कोई मर्यादा नही रहती, उसमे भक्त केवल ब्रह्म में ही आसक्त रहता है -

न लाज कांनि लोक की न वेद को कह्यो करै।
न शक भूत प्रेत की न देव यक्ष ते डरै।
सुनै न कान औरकी दृशै न और अक्षण।
कहै न मुक्ख और बात भक्ति प्रेम लक्षण।।३९।।
निशदिन हरि सौं चित्तासक्ती सदा ठग्यौ सो रहिये।
कोउ न जानि सकै यह भक्ति प्रेम लक्षण कहिये।।४०।पृ०२५।

सु०ग्र०भा० १

प्रेम मे नियम नही रहती और उसमे क्षुधा तथा तृषा भी नही लगती और नींद भी नहीं आती -

प्रेम लग्यौ परमेश्वर सौ तब भूलि गयौ सब ही घरबारा।
ज्यौ उनमत्त फिरै जितही तित नेकु रही न शरीर समारा।।
प्रेम के प्रभाव जैसो प्रेम तहा नेम कैसो,
सुन्दर कहत यह प्रेम ही की बात है।।४३।।
यह प्रेम भक्ति जाके घट होई,ताहि कछू न सुहावै।
पुनि भूष तृषा नहिं लागै वाकौं निशदिन नींद न आवै।।४४।।
प्रेम भक्ति यह मैं कही, जानै बिरला कोइ।।४५।।सु०ग्र०पृ०२४-२६-२७।
प्रीति की रीति नहीं कछु राषत जाति न पांति नहीकुल गारौ।
प्रेम के नेम कहू नहिं दीसत लाज न कांनि लग्यौ सब खारौ।।वहीपृ०६४

सुन्दर ने पूर्ववर्ती निर्गुण सन्तों के समान ही ईश्वर को पुरुष और आत्मा को स्त्री मान कर प्रेमा भक्ति का विवेचन किया है --

साहिब मेरा रामजी सुन्दर षिजमतिगार।
पाव पलोटै प्रीति सौ सदा रहै हुसियार।।३८।।पृ०६६४।।

सुन्दर ने प्रेमा भक्ति के संयोग और वियोग दोनों पक्षो का वर्णन भी किया है। सुन्दर ने संयोग वर्णन में हिंडोले में झूलने और फाग वर्णन का उल्लेख किया है।

सुन्दर ने कई पदोंमें कर्म को भवबन्धन का कारण माना है। 'सु०ग्र०पृ०४१२,६६१ ३५७,७०१. ।किन्तु उनकी प्रेमा भक्ति कर्म के अनुकूल है। सुन्दर के मतानुसार कर्म, भक्ति और ज्ञान का वेद मे वर्णन हुआ है। वेद और पुराण में यह कहा गया है

कि जो जैसा करता है उसको वैसा ही फल मिलता है। जीव अपने कर्मों के द्वारा ही जगत् से पार होता है -

कर्म भक्ति ज्ञान तीनों बेद में बषानि कहे,सुन्दर बतायौ गुरु वाही में लरक है।

सु०ग्रं०पृ०६३६।।

वेद पुरान कहे समुझावै । जैसा करै सु तैसा पावै ।।२६।।

अपनी करनी पार उतरना । संमुझि देषि निश्चै करि मरना ।।३०।।

सु०ग्रं० पृ३३६।।

सुन्दर एक निरंजन देव की सेवा के अतिरिक्त अन्य किसी देव की सेवा के पक्ष में नही है। जिस ब्रह्म से यह जगत् उत्पन्न हुआ है, सुन्दर उसी ब्रह्म का दास है --

आन देव की करै न सेवा । पूजै एक निरंजन देवा ।।७।।सु०ग्रं०पृ०६६५।।

पिंड ब्रह्माण्ड जहां तहां रे वा बिन और न कोइ । सुन्दर ताका दास है जातें सब पैदाइस होइ ।।४।। पृ० ८३०।।

सुन्दर दास के अनुसार आत्मा ब्रह्म की पत्नी है। वह पत्नी भाव से ही ब्रह्म की सेवा करती है। वह ब्रह्मकी पत्नी भी है और दास भी। सुन्दर की दृष्टि में इस दासी और स्वामी में कोई अन्तर नहीं है। ब्रह्म स्वय ही दास और स्वय ही स्वामी भी है --

ब्रह्म हि सूक्ष्म थूल जहां लग ब्रह्म हि साहिब ब्रह्म हि दासा।।२०।।सु०ग्रं०पृ०६५१।।

इस प्रकार सुन्दर ने दास्य और प्रेम भाव का जो उल्लेख किया है, उसमें परस्पर विरोध नहीं है और उनका दास्य भाव प्रेमा भक्ति के अन्तर्गत ही आता है।

सुन्दर की प्रेमा भक्ति ज्ञानपरक भी है। सुन्दर ने अपनी भक्ति साधना में ज्ञान को आवश्यक माना है। और सुन्दर ने यह भी कहा है कि कबीर,सोझा,पीपा,रैदास और दादू आदि ने ज्ञान प्राप्त किया था।[१]

जीव यदि ज्ञानदृष्टि के साथ कर्म नहीं करता तो वह भवकूप में पड़ता है। वह ज्ञान और कर्म के समन्वय के द्वारा मुक्त हो सकता है :--

---

१- सु० ग्रं० पृ० ८६३

इहै ज्ञान गहि नाम कबीरा पीवै अमृत प्याला ।
इहै ज्ञान गहि सोझा पीपा जन रैदास कमाला ।।७।।
इहै ज्ञान गहि यौं गुरु दादू चलि सन्तनि की चाला।
इहै ज्ञान पायौ जन सुन्दर जगतें भया निराला ।।८।।सु०ग्रं०पृ०८६३

क्रिया करत है बहुत विधि ज्ञान दृष्टि जो नाहि ।
अंध चलै मग जात है परै कूप के माहि ।।१।।
कूप अग्नि दौऊ बचिहिं तामै फेर न कोइ।
सुन्दर ज्ञान क्रिया बिना मुक्त कहे नहिं होइ।।४।।
क्रिया भक्ति हरि भजन है और क्रिया भ्रम जान।
ज्ञान ब्रह्म देषै सकल सुन्दर पद निर्बान।।५।। सुं० ग्रं० पृ० ८१७।।

सुन्दर ने प्रेम और ज्ञान में कोई भेद नहीं माना है । सुन्दर के अनुसार जो लक्षण प्रेमा भक्ति के हैं वही ज्ञानी के हैं --

सुनै न कान और की दृशै न और अक्षण ।
कहे न मुक्ख और बात भक्ति प्रेम लक्षण ।।३६।।
यह प्रेम भक्ति जाके घट होई, ताहि कछू न सुहावै ।
पुनि भूष तृषा नहिं लागै वाकौं, निशदिन नींद न आवै।।४४।।
पृ० २६-२७

सुन्दर ज्ञानी जगत में बिचरै सदा अलिप्त ।
यह गुन जानै देह के भूषौ रहै क तृप्त ।।१।।
देषै परि देषै नहीं सुनता सुनै न कान ।
जानै सब जानै नही सुन्दर ऐसा ज्ञान ।।३।। वही पृ० ८०७।।

सुन्दर ने भक्ति की व्याख्या में कहा है कि ब्रह्म में थिर वृत्ति ही भक्ति है अथवा भक्ति वह अवस्था है जिसमे जीव और ब्रह्म एकाकार हो जाते हैं सुं०ग्रं०पृ०६३४-६७०: ज्ञान की परिभाषा में भी सुन्दर ने यही कहा है-

आतम अनुभव ज्ञान है, प्रलय अग्नि की अंच ।
भस्म करै सब जारि के सुन्दर द्वैत प्रपंच ।।४६।वही पृ० ८००।।

सुन्दर ने ज्ञान और भक्ति का समन्वय करते हुए एक अन्य पद मे इस प्रकार कहा है कि उस वाणी का सत्कार करना चाहिए जिसमें भक्ति, ज्ञान और वैराग्य अवस्थित रहता है --

जा बांणी में पाइए भक्ति ज्ञान बैराग।
सुन्दर ताकौ आदरै और सकल कौ त्याग।।२३।।पृ०७३६।।

सुन्दर की भक्ति योग के अनुकूल है। उनके अनुसार जैसे ज्ञान और प्रेम से जीव और ब्रह्म का मिलन होता है वैसे ही योग से भी होता है[1] -

योगी तूं कहावै तौ तूं याहि योग कौं बिचारि,
आत्मा कौं जारि परमात्मा ही जानिये ।।२२। पृ० ६१०।।

सुन्दर ने योग का विस्तार के साथ उल्लेख किया है। सुन्दर ने राजयोग, लक्ष्ययोग, ज्ञानयोग, हठयोग, और ब्रह्मयोग का उल्लेख किया है सुं०ग्रं०पृ० १०४, १०३, १०६, १११ ११३

इस प्रकार सुन्दर की भक्ति प्रेमपरक है किन्तु वह वैराग्य ज्ञान और योग परक भी है।

जगजीवनदास : जगजीवनदास के अनुसार भगवान् का स्मरण करना और वादविवाद छोड़कर, किसी भी प्राणी को दुख न देते हुए सहज स्वभाव से रहना ही भक्ति मार्ग है अर्थात् ईश्वर का भजन करते हुए सहज भाव से रहना ही भक्ति है --

साधो भक्ति करै असकोइ।
अंतर दुइ अक्षर सुमिरै भक्त तबहीं होइ ।१।।
तजि बादबिवाद सब तें, दुक्ख नहिं केउ देइ।
रहै सहज सुभाव अपने भक्ति मारग सोइ ।।२।। बा०भा० २ पृ०३४ ।।

जगजीवनदास ने ब्रह्म को पुरुष और आत्मा को स्त्री मानकर प्रेमाभक्ति की व्याख्या की है। जगजीवन के मतानुसार सुन्दरी अपने प्रिय के नाम-रस मे छक गई है। जब से उसने विमल प्रेम रस का पान किया है तब से उसे कुछ अच्छा नहीं लगता। वह दिन रात राम नाम की रट में रत रहती है ---

अरी मैं तो नाम के रँग छकी।
जबतें चाख्यो बिमल प्रेम रस, तब तें कछु न सोहाई।
रैनि दिना धुनि लागि रही, कोउ केतो कहै समुफाई ।।१।।
बा० भा०२ पृ० ६।।

जगजीवन ने प्रेमा भक्ति के अन्तर्गत फाग की विविध क्रीड़ाओं का उल्लेख किया है। जगजीवन ने अपने पूर्ववर्ती संतों में नामदेव, कबीर, नानक, पीपा आदि को प्रेमी

१- योगदर्शन १।२-३

भक्त कहा है --

नानक कबीर नामदेव पीपा, सब हरि के हित प्यारे ।

जे जे वह रस पाइ मस्त भै, ते सब कुल उँजियारे ।।२।। बा०भा०२ पृ०१००।।

जगजीवन की प्रेमा भक्ति ज्ञान और योग के अनुकूल है ।

जगीवन ने अपने को ब्रह्म का दास कहा है । जगजीवन का दास्य भाव प्रेमा भक्ति के अन्तर्गत ही आता है क्योंकि वे राम की पत्नी के नाते उनकी दासी भी हैं --

मैं तो दास तुम्हार कहावौं ।

तुम तजि और न जानौं कोई, और सीस न नावौं ।१।।बा०भा०२ पृ० १०

मैं तो दासी कलपौं पिय बिनु घर आँगन न सुहाई ।।बा० भा०२ पृ० ११

जगजीवन की प्रेम परक भक्ति ज्ञान परक भी है । भगवान् की स्मरण-भक्तिसे हृदय मे ज्ञान उत्पन्न होता है । जग जीवन ब्रह्म से ज्ञान सीखने के लिए भी प्रार्थना करते है --

साधो रटत रटत रट लाई ।

अमृत नाम रहो रस चाखत, हिय माँ ज्ञान समाई ।।१।बा०भा०२। पृ०११०।।

हौ समरत्थ सिद्धि के दाता मोहि सिखावहु ज्ञाना।

करौं सो जानि जनाय देव जब धरौं चरन के ध्याना ।।२।। बा०भा०२ पृ०२५।।

जगजीवन की भक्ति में योग का भी उल्लेख मिलता है । सुन्दरी योगिनी बन कर अपने प्रिय का अन्वेषण करती है, किन्तु वह उसका अन्त नहीं पाती --

जोगिन ह्वै जग ढूँढेऊँ, पहिर्यो कुण्डल कान ।

पिय का अंत न पायऊँ खोजत जनम सिरान ।। २।।बा०भा० २ पृ०६३।।

इस प्रकार जगजीवन की भक्ति के सम्बन्ध मे यह कहा जा सकता है कि वह प्रेम परक होते हुए ज्ञान और योग के अनुकूल है ।

मूलकदास :

मूलकदास ने मुख्य रूप से प्रेम परक और दास्य भाव की भक्ति का ही उल्लेख किया है । मूलक के मतानुसार जीव प्रेम का प्याला पीकर संसार को भूल जाता है और वह अष्टयाम मतवाले हाथी की भाँति ब्रह्मानंद में झूमता रहता है ·

प्रेम पियाला पीवते, बिसरे सब साथी ।

आठ पहर यौं झूमते ज्यौं माता हाथी ।। ३।२।बा० पृ० ७।।

जो प्रेम के दुर्लभ पियाले का पान करता है वह चारो युग में मतवाला रहता है और अंत में भवसागर के पार होता है --

कठिन पियाला प्रेम का, पिये जो हरि के हाथ ।
चारो जुग माता रहे, उतरै जिय के साथ ।।२८।। बा० पृ० ३४।।

मलूक ने राम को पुरुष और आत्मा को स्त्री मान कर प्रेमा भक्ति का वर्णन किया है --

सदा सोहागिन नारि सो, जा के भतारा ।
मुख माँगे सुख देत हैं, जगजीवन प्यारा ।५।।१।।बा० पृ०३।।
ना उपजै ना बीनसै, संतन सुखदाई ।
कहैं मलूक यह जानिके मै प्रीति लगाई ।। ५।।४।। बा० पृ०३

मलूक की प्रेमा भक्ति दास्य भाव को लिए हुए है। मलूक के अनुसार जिस नगर में हरि के दास होते है, वही नगर अच्छी प्रकार से बसा हुआ है--

सोई सहर सुबस बसै, जहँ हरि के दासा ।
दरस किये सुख पाइये पूजै मन आसा ।।१।१।।बा० पृ० ८।।

मलूक सेवा के बदले मे भक्ति रूपी मजदूरी की कामना करते हैं -

सतन सेवा करौं, भक्ति मजूरी देहु ।।२५।। बा० पृ० ३४ ।।

दरियादास मारवाड़ वाले

दरिया के मतानुसार आत्मा का मल प्रेम रूपी साबुन से दूर किया जा सकता है। इस संसार में वही सुखी है जो प्रेमसहित सुधारस का पान करता है। जब राम मे मन समाहित होता है, तब श्रावण-वर्षा की भाँति प्रेम की लहरें उत्पन्न होती हैं:-

दरिया आतम मल भरा, कैसे निर्मल होय ।
साबन लावै प्रेम का, राम नाम जल धोय ।।४३।।
दरिया इस संसार में, सुखी एक है संत ।
पिये सुधारस प्रेम से, राम नाम निज तंत ।।४४।।
दरिया हिरदै राम से, जो कभु लागे मन ।
लहरें उठैं प्रेम की ज्यों सावन बरषा घन ।।३।।बा०पृ०८-१०-११-१३।।

दरिया के अनुसार व्यर्थ के विवाद छोड़ कर अनहद से प्रेम करना चाहिए। राम नाम से प्रेम न करना पशुओं की रीति है --

दरिया बहु बक्वाद तज कर अनहद सैनेह ।।२।। बा० पृ०२४।।

राम नाम से न्याहीं प्रीत, यह सबही पसुवी की रीत ।।५।। बा० पृ०५०।।

संत दरिया ने अपनी प्रेमा भक्ति की व्याख्या ब्रह्म को पुरुष और आत्मा को स्त्री मान कर की है --

अरस परस पिव के संगराती, होय रही पतिबरता ।

दुनिया भाव कछू नहि समझै, ज्यों समुँद समानी सलिता ।।२।।पृ०४३।।

दरिया के अनुसार मानव देह प्राप्त करके जीव को वह नाम रुपी जहाज प्राप्त करना चाहिए जिससे वह भवसागर से पार हो सके --

दरिया नर तन पाय कर, कीया चाहै काज ।

रावरंक दोनों तरैं, जो बैठे नाम जहाज ।।१०।। बा० पृ० ६।।

दरिया की दृष्टि में भक्ति की तुलना में कर्म और ज्ञान हेय है --

राम बिना फीका लगै, सब किरिया सास्तर ज्ञान ।

दरिया दीपक कह करै, उदय भया निज भान ।।५।। बा०पृ०५।।

दरिया ने ज्ञान और प्रेमा भक्ति का समन्वय करते हुए भी कहा है कि जहाँ पर जीव आनन्द हिलोरें लेता है, उस हृदय में ज्ञान का प्रकाश है और वह प्रेम से भरा हुआ है --

जन दरिया हिरदा बिचे, हुआ ज्ञान परकास ।

हौद भरा जहँ प्रेम का, तहं लेत हिलोरा दास ।।४।।बा०पृ० १३।।

दरिया की प्रेमा भक्ति योग के भी अनुकूल है । दरिया ने प्रेमा भक्ति का यौगिक ढंग से भी उल्लेख किया है ---

पतिब्रता पति मिली है लाग, जहँ गगन मंडल में परम भाग ।

अनहद बानी अगम खेल, जहँ दीपक जरै बिन बाती तेल ।।२।।

ररंकार धुन अरूप एक । सुरत गही उनही के टेक ।।६।।बा०पृ०३७-३८।।

संत दरिया बिहार वाले :

संत दरिया की भक्ति प्रेममूलक है । जब प्रेम भक्ति उत्पन्न होती है तब जीव भवसागर के पार हो जाता है । प्रेम से मोक्ष प्राप्त होता है, यह दरिया ने कई पदों मे कहा है : द.एक अनुशीलन पृ० ४३-४ : बिना प्रेम के भक्ति सुशोभित नहीं होती । भक्ति अंत:पुर की वह स्त्री है जो पिया के पास रहती है --

प्रेम भगति जब ऊपजै, उतिर जाय भव पार । द० सागर पृ० २७ ।।

बिना प्रेम नहि भगति है, कुंवल सुखै बिनु बारि ।।२०।।पृ० ४३६।द०एक अनुशीलन

प्रिया भवन बिच भगति है, रहे पिया के पास ।

मन उदास नहिं चाहिए चरन कवल की आस ।।२५।।द०एक अनुशीलन पृ०४६

दरिया ने ईश्वर को पुरुष और आत्मा को स्त्री मान कर प्रेम भाव व्यक्त किया है --

तुहु पिया तुहु पिया तुहु पिया मेरो । हौं पतनी पति नैननि हेरो । वही पृ० १७२।।

वही आत्मा ब्रह्म के साथ रहती है, जो सुख और आनन्द विलास करती है -

प्रेम आनंद सुख भरव बेलास ।सोइ सोहागिनि पिया के पास ।। वही पृ० १७३

दरिया के अनुसार प्रेम मार्ग पर चलना कठिन है[१]।

दरिया का यह मत है कि जीव को भक्ति करनीचाहिए और उसे कर्मों में नहीं फँसना चाहिए --

भक्ति करो भरम छोड़ो करम में मत तुम बूड़ि मरे ।

माया मोह के बसि के आरने रे सतनाम से मुख तुम जनि फेरे ।। वही पृ०६८।।

जीव कर्मों के कारण ही जगत् के बन्धन मे पड़ता है, यह दरिया ने कई पदों में कहा है । यधपि दरिया ने कर्म की निन्दा की है तथापि उन्होने यह भी कहा है कि बिना कर्म के मुक्ति प्राप्त नहीं होती --

यह मन जाना ब्रह्म दिढ़ाना, सोई सिद्ध कहावै ।

कर्म जोग बिनु जुगति न पावै, सतगुरु सब्द लखावै ।। वही पृ० ४७।।

दरिया ने भी अपनी प्रेमा भक्ति के अन्तर्गत दास्य भाव का उल्लेख किया है । दरिया राम के दास हैं और राम उनके स्वामी --

तुम मेरो साँईं मैं तोर दास, चरन कँवल चित मेरो पास ।।१।।

पल पल सुमिरौं नाम सुबास, जीवन जग मैं देखो दास ।।२।।वही पृ०४३।।

दरिया ने अपनी भक्ति साधना में प्रेम के उपरान्त ज्ञान को स्थान दिया है । दरिया के मतानुसार प्रथम भक्ति तदनन्तर ज्ञान उत्पन्न होता है ।ज्ञान पुरुष है और भक्ति नारी ---

पुरूष ज्ञान भगति है नारी । ज्ञानहि भगति बीच नहिँ डारी।

पहिलि भगति तब होखै ज्ञाना।पहिलि सत तब पुरुष अमाना।।

दरियासागर पृ० ३३।।

दरिया ने ज्ञान भक्ति का भी उल्लेख किया है --

ज्ञान भगति का भेद यह, दिल सागर मन लाय ।
पंडित बारहबानी होवै काल कबहि नहिं खाय ।। द०सागर पृ० ४६।।

भक्ति नारी है और ज्ञान पुरुष । अत दोनों मे कोई विरोध नहीं है । जिस प्रकार पत्नी अपने पति से मिल कर एक हो जाती है उसी प्रकार भक्ति एवं ज्ञान अन्त मिल कर एक हो जाते हैं '. द० एक अनु० पृ० १२७' ।

दरिया ने ज्ञान की भाँति योग का भी व्यापक रूप में उल्लेख किया है । दरिया का योग भक्ति मार्ग में सहायक है । दरिया के अनुसार योगी वह है जो मन को पहिचानता है, और जो मन को पहिचानता है वही ब्रह्म ज्ञान को जानता है --

ब्रह्म सपूरन ज्ञान उन्हि जाना, जोगी सो जो मन पहचाना ।। वही पृ० ५४

इस प्रकार दरिया की भक्ति योग ज्ञान और कर्म परक है अवश्य किन्तु उसकी मुख्य भित्ति प्रेम ही है ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि निर्गुण सन्तो की भक्ति प्रेमपरक है । किन्तु उनकी प्रेम परक भक्ति कर्म ज्ञान और योग के प्रतिकूल नहीं है । निर्गुण सन्तो ने अपने भक्ति भाव मे दास्य भाव को भी प्रेम की भाँति ही प्रमुख स्थान दिया है, परन्तु उनका दास्य भाव प्राय: दाम्पत्य भाव :प्रेमा भक्ति: से अलग नहीं है । सभी सन्तो ने ब्रह्म को पुरुष और आत्मा को स्त्री मान कर प्रेमभाव का उल्लेख किया है और प्रेम की प्रगाढ़ता के लिए ही उन्होंने प्रेम के अनुसार कर्म, ज्ञान और योग की तभी तक उपयोगिता है, जब तक पत्नी :आत्मा: अपने पति :ब्रह्म' से मिल कर एक नहीं हो जाती । निर्गुण सन्तों ने कर्म, ज्ञान और योग की निन्दा करते हुए भी, उनकी इस उपयोगिता का प्राय: वर्णन किया है ।

: ख : भक्ति के आदर्श

निर्गुण सन्तों के अनुसार भक्ति मुख्य रूप से प्रेम परक है । उन्होंने प्रेमा भक्ति की सिद्धि के लिए कुछ आदर्श सम्मुख रखे है । प्रेम की अनन्यता दिखलाने के लिए कुछ आदर्श तो उन्होने प्राणी जगत् के लिए हैं और कुछ आदर्शों के रूप में उन्होंने अपने पूर्ववर्ती सन्तो को ग्रहण किया है । निर्गुण सन्तों के अनुसार भक्ति के मुख्य मुख्य आदर्श कौन से हैं, इसका नीचे उल्लेख किया जा रहा है ।

नामदेव नामदेव ने भक्तों में विदुर, उग्रसैन, सुदामा, अजामिल, अहिल्या, गणिका कुब्जा, अंबरीष, बिभीषण, ध्रुव, प्रह्लाद और राजा बलि आदि का भक्ति के आदर्श के रूप में उल्लेख किया है। इन भक्तों की पुकार पर भगवान् ने इनका उद्धार किया था-

बिआधि अजामलु तारि अले। चरणबधिक जन तेऊ मुकति भए।
हउ बलि बलि जिन राम कहे। दासी सुत जनु बिदरु सुदामा उग्रसैन कउराज दिए।
हि० को० म० सं० की देन पृ० २४९।

देवा पाहन तारी अले। राम कहत जन कस न तरे।१।
तारी ले गनिका बिनु रूप कुबिजा बिआधि अजामलु तारीअले।१। गु०ग्र०सा० पृ० ३४५।।

अबरीष कूं दियौ अभयपद, राज बिभीषन अधिक करयौ।।
नौ निधि ठाकुर दई सुदामहि, ध्रुव जौ अटल अजहूँ न टरयौ।
भगत हेत मारयौ हरनाकुस, नृसिंह रूप ह्वै देह धरयौ।
नामा कहे भगति बस केसव, अजहू बलि के द्वार खरयौ।।१९।।
संत सुधासार पृ० ५४।।

गौतम नारि अहिलिआ तारी पावन केतक तारीअले।।
ऐसा अधमु अजाति नामदेऊ तऊ सरनागति आइअले।।३५। हि०को०म०सं० की देन पृ० २५३।।

गीता में यह कहा गया है कि भगवान् का आश्रय लेकर स्त्रियां, वैश्य, शूद्र और पापयोनि जीवन भी परमगति को प्राप्त कर लेते हैं, फिर पुण्ययोनि ब्राह्मणों और राजर्षि भक्तों के लिए तो कहना ही क्या --

मा हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्यु: पापयोनय:।
स्त्रियो वैश्यस्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।।९।३२।।
किं पुनर्ब्राह्मणा: पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।।३३।।

नामदेव ने उपर्युक्त भक्तों के उदाहरण से गीता के इसी भाव को आदर्श रूप में प्रतिष्ठित किया है।

नामदेव की भक्ति प्रेम परक है। अत: प्रेम की अनन्यता और प्रगाढ़ता दिखलाने के लिए नामदेव ने पति पत्नी के प्रेम का आदर्श प्रतिपादित किया है। नामदेव के अनुसार राम पति हैं और जीवन उनकी पत्नी --

मै बउरी मेरा रामु भतारु। रचि रचि ताकउ करउ सिंगारु।।१।।
गु०ग्र०सा० पृ० ११६४।।

पत्नी जीव: का पति 'ब्रह्म' के प्रति कैसा प्रेम होना चाहिए, इसके लिए नामदेव ने क्षुधा और तृषातुर, लोभी एवं कामी व्यक्ति और माता तथा सुत के प्रेम का आदर्श उपस्थित करते हुए कहा है कि जैसे कामी को काम, लोभी को धन, भूखे को भोजन, प्यासे को जल और माता को अपना पुत्र प्रिय होता है, वैसे ही भक्त के लिए राम प्रिय होते हैं --

जैसी भूखे प्रीति अनाज । तृखावन्त जल सेती काज ।
जैसी पर पुरषा रत नारी । लोभी नरु धन का हितकारी।
कामी पुरष कामनी पिआरी, ऐसी नामे प्रीति मुरारी ।।
जैसी प्रीति बारिक अरु माता । ऐसा हरि सेती मनुराता।।
प्रणवै नामदेउ लागी प्रीति। गोविन्दु बसै हमारै चीति ।।गु०ग्र०सा०पृ०११६४।।

नामदेव के उपर्युक्त भावों का आदर्श रूप में कबीर दादू और सुन्दरने भी उल्लेख किया है --

ज्यूं कामी कौं काम पियारा, ज्यूं प्यासे कूं नीर रे ।
जल ज्यों प्यारा माछरी, लोभी प्यारा दाम ।।
माता प्यारा बालक भक्त प्यारा नाम ।। क०ग्रं०पृ० १६२।।

ज्यूँ अमली के चित अमल है, सूरे के संग्राम ।
निरधन के चित धन बसै, यौं दादू के राम ।। बा० पृ० ३१ ।।

निर्धन ज्यों धन चाहे कामिनी को कन्त चाहे ।
ऐसी जाके चाह ताकों कछु न सुहात हैं ।। सु०ग्र० पृ० २६।।

नामदेव के अनुसार जीव का ब्रह्म से ऐसा प्रेम होना चाहिए, जैसा मूढ़ पुरुष का अपने परिवार से होता है ---

जैसी मूढ़ कुटंब पराइणा । ऐसी नामे प्रीति नराइणा।१।
नामे प्रीति नराइण लागी, सहज सुभाइ भइउ बैरागी।। गु०ग्रं०सा० पृ० ११६४।।

जीव का ब्रह्म से ऐसा प्रेम होना चाहिए जैसा मारवाड़ी का जल से, ऊंट का लता से, मृग का नाद से, पृथिवी का चंद्रमा से, भृंग का पुष्प से, कोकिल का आम्र से, चकवी का तोते से, हंसों का मानससरोवर से, तरुणी का पति से और बालक का खीर से रहता है ---

मारवाड़ी जैसे नीरू बालहा, बेलि बालहा करहला ।
जीउ कुरंक निसि नादु बालहा तिउ मेरै मनि रामईआ ।।१।।
तेरा नामु रूडो रूपु रूडो अति रंग रूड़ो मेरो रामईआ ।।
जिउ धरणी कउ इंदु बालहा, कुसम वासु जैसे भंवरला ।
जिउ कोकिल कउ अंबु बालहा, तिउ मेरै मनि रामईआ ।।२।।
चकवी कउ जैसे सूक बालहा, मानसरोवर हंसुला ।
जीउ तरुणी कउ कंतु बालहा, तिउ मेरै मनि रामईआ।।३।।
बारिक कउ जैसे षीरू बालहा, तिउ मेरै मनि रामईआ ।।४।।
साधिक सिध सगल मुनि चाहहि, बिरले काहू डीठुला। -
सगल भवन तेरो नामु बालहा, तिउ नामे मनि बीठुला ।।५।।संतकाव्य पृ० १४७।

जीव का ब्रह्म में ऐसा ध्यान होना चाहिए जैसा मृग का नाद में, मछुवे का मीन में, सुवर्णकार का आभूषण बनाने में, विषयी का परनारी मे और जुवारी का पांसे फेंकने में रहता है --

नाद भ्रमे जैसे मिरगाय । प्रान तजे बाको धिआनु न जाए ।।१।।
ऐसे रामा ऐसे हेरउ । राम छोड़ि चितु अनत न फेरउ ।।
जिउ मीना हेरै पसूआरा । सोना गढ़ते हिरै सुनारा ।।२।।
जिउ विषई हेरै परनारी । कउडा डारत हिरै जुआरी।।३।।
जह जह देखउ तह तह रामा । हरि के चरन नित धिआवै नामा ।।४।।
संतकाव्य पृ० १४७।।

नामदेव के उपर्युक्त आदर्शों का लगभग परवर्ती सभी सन्तों ने न्यूनाधिक्यके साथ उल्लेख किया है । नामदेव के उपरान्त कबीर, रैदास, दादू, सुन्दर आदि सन्तों ने भक्ति के आदर्श रूप में नामदेव का भी वर्णन किया है ।

कबीर : कबीर ने भक्ति के क्षेत्र में नारद कीभक्ति को अपना आदर्श माना है --
भगति नारदी मगन सरीरा, इहि बिधि भव तिरि कहै कबीरा।।२७८।
क० ग्रं० पृ० १८३।।

कबीर ने अपने पूर्ववर्ती संतों में से राजा भर्तृहरि [illegible], भील, गणिका, अजामिल, गज, जयदेव, नामदेव, [illegible], ध्रुव, प्रह्लाद, विभीषण, शुकदेव, अक्रूर,

और शंकर आदि का आदर्श रूप में उल्लेख किया है। इन भक्तों में से भील, गणिका, अजामिल आदि भक्त निम्न वर्ण के होते हुए भी केवल भगवत् कृपा और राम नाम के आधार पर शुभ गति को प्राप्त हुए हैं। गीता के अनुसार भगवद् भक्ति के लिए जाति वर्ण की अपेक्षा नहीं है। दुराचारी व्यक्ति भी भगवद् भजन के द्वारा शीघ्र साधु पद को प्राप्त कर लेता है :गीता ९।३०-३१-३२-३३.। उपर्युक्त भक्तों के उदाहरण से गीता के इसी भाव को नामदेव ने प्रतिपादित किया है और इसी भाव को कबीर ने प्रतिष्ठित किया है ---

भरथरी भूप भया बैरागी।
बिरह बियोगी बनि बनि ढूंढै, वाकी सुरति साहिब सौ लागी।
हसती घोड़ा गावै गढ़ गूडर, कनड़ा पा इक आगी।
जोगी हूवा जांणि जग जाता, सहर उजीणीं त्यागी।।
छत्र सिघासण चवर ढुंलता, राग रंग बहु आगी।
सेज रमैणी रंभा होती, तासौं प्रीति न लागी।।
सूर बीर गाढ़ा पग रोप्या, इह बिधि माया त्यागी।
सब सुख छाड़ि भज्या इक साहिब, गुरू गोरख ल्यौ लागी।।
मनसा बाचा हरि हरि भाखै, गंध्रप सुत बड़ भागी।।
कहै कबीर कुदर भजि करता, अमर भणे अणरागी।।२९९।।क०ग्रं० पृ०१८९।।

है हरि भजन कौ प्रवांन।
नींच पांवै ऊंच पदवी, बाजते नीसान।[1]
भजन कौ प्रताप ऐसो, तिरे जल पाषान।।
अधम भील अजाति गनिका चढ़े जात बिबांन।।
नव लख तारा चलै मंडल, चलैं ससिहर भांन।।
दास ध्रू कौं अटल पदवी, रांम कौ दीवांन।।
निगम जाकी साखि बोलै कहैं संत सुजांन।

- अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।।गीता ९।३०।।
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।। ९।३१।।

जन कबीर तेरी सरनि आयौ, राखि लेहु भगवान ।३०। वही० पृ० १६०।।
राजा अंबरीक के कारणि चक्र सुदरसन जारे ।
दास कबीर कौ ठाकुर ऐसौ, भगत की सरन ऊबारे ।। १२२। क०ग्र०पृ०१२७।।
अजामेल गज गनिका, पतित करम कीन्हा ।
तेऊ उतरि पारि गए, राम नांम लीन्हां ।।क०ग्र० पृ० १६६।।
मोकौ कहा पढ़ावसि आल जाल । मेरी पटिया लिखि देहु श्री गोपाल।।
नही छौड़ौ रे बाबा राम नाम । मेरो और पढ़न स्यो नहीं काम ।।
ओइ परम पुरुष देवाधिदेव । भगत हेत नरसिंघ भेव ।।
कहि कबीर को लखै न पार । प्रह्लाद उबारे अनिक बार ।। १४२।।वही पृ०३०७।
गुर परसादी जयदेव नामा । भगति के प्रेम इनही है जाना ।।२०८ वही पृ०३२८।
जागे सुकदेव अरु अक्रूर । हरणवन्त जागे [illegible] धरि लंकूर ।
[illegible] जागे चरण भवं । [illegible] जागे नामा जैदेव ।।
जागत सोवत बहु प्रकार । गुर मुखि जागे सोइ सार ।
इस देही के अधिक काम । कहि कबीर भजि राम नाम ।। १३१।।क०ग्रं०पृं० ३०२।।
राम जपौ जिय ऐसे ऐसे । ध्रुव प्रह्लाद जप्यौ हरि जैसे ।।क०ग्रं० पृ० ३२०।।
गोपीचदा और भर्थरी, पिहि प्रेम भरकासा ।।४।।
ध्रू प्रह्लाद भभीखन पीया, और पिया रेदासा।।५।।
प्रेमहि संत सदा मतवाला, एक नाम की आसा ।।६।।
कहे कबीर सुनो भाई साधो, मिटि गई भव कौ बासा ।।७।।शब्दा०भा०२ पृ०७।।

उपर्युक्त भक्तों में से राजा भर्तृहरि और गोरखनाथ ने ब्रह्म प्रेम के कारण संपूर्ण भोग और ऐश्वर्य को छोड़ कर त्याग का अनुपम आदर्श रखा है । ध्रुव,प्रह्लाद अजामिल गज, और गणिका के जीवन से कबीर ने राम नाम के प्रभाव काप्रतिपादन किया है । कबीर ने जयदेव और नामदेव को प्रेमा भक्ति के आदर्श रूप में ग्रहण किया है और उन्होंने गोपीचद, ध्रुव, प्रह्लाद, विभीषण और रैदास आदि संतो को भी प्रेम रस का रसिक माना है । कबीर ने केवल शंकर को दास्य भाव का भक्त माना है ।

नामदेव और कबीर ने जिन भक्तों और सन्तों का आदर्श रूप में उल्लेख किया है उनमें से अधिकांश पौराणिक है । इन पौराणिक भक्तो का रैदास, नानक, दादू सुन्दरदास, जगजीवनदास मलूक और [illegible] आदि सभी भक्तों ने उल्लेख किया है ।

कबीर की भक्ति प्रेमपरक है। कबीर ने प्रेम की अनन्यता दिखलाने की दृष्टि से कुछ भौतिक जगत् के आदर्श सम्मुख रखे हैं। कबीर ने अपनी प्रेमा भक्ति की ब्रह्म को पुरुष और आत्मा को स्त्री मान कर व्याख्या की है। कबीर राम की बधु हैं और राम उसके पति -

मैं बौरी मेरे राम भरतार, ता कारनि रचि करौ स्यांगर।। क०ग्रं०पृ०२०३।।

कबीर की यह पंक्ति नामदेव की पंक्ति से मिलती है --

मैं बउरी मेरा रामु भतारु। रचि रचि ताकउ करउ सिगारु।।१।।

गु०ग्रं० सा० पृ० ११६४।।

कबीर ने प्रेम के क्षेत्र में आत्मा के लिए पतिव्रता, सती, सुहागिन और विरहिणी स्त्री का आदर्श प्रतिपादित किया है। कबीर के मतानुसार पतिव्रता स्त्री हीपति को प्रिय होती है, और जो अपने पति को अपना तन मन और यौवन सब कुछ दे डालती है वही सुहागिन कहलाती है --

जौ पै पतिब्रता ह्वै नारी, कैसे ही रहौ सो पियहि पियारी।

तन मन जोवन सौंपि सरीरा, ताहि सुहागिनि कहै कबीरा।।१३६। क०ग्रं०पृ०१३३

उपनिषदों और वेदांत मे जिस एक ब्रह्म की उपासना का उल्लेख मिलता है, उसी का कबीर ने पतिव्रता के एक पति के रूप में चित्रण कियाहै। शतपथब्राह्मण 'अ०४।का०१४:' और बृहदारण्यकोपनिषद् १।४।१०: मे यह कहा गया है कि जो व्यक्ति एक ब्रह्म को छोड़ कर अन्य देवता की उपासना करता है वह देवताओं के मध्य पशु है। इसी के भाव साम्य पर कबीर ने कहा है कि जोपतिव्रता दूसरे पति को चाहती है, उसका भला नहीं होता --

पतिबर्ता नहिं सोय, जो पति तजि औरहि रते।।

वाका नीक न होय, दूजा पति जो पै लखे।। अखरावती पृ० ५।।

कबीर के अनुसार जीव का ब्रह्म से ऐसा प्रेम होना चाहिए जैसा सती स्त्री का अपने पति से होता है। जैसे सतीअपने पति के प्रेम के कारण अपने तन और कुटुम्ब को छोड देती है, वैसे ही जीव को सब कुछ छोड़ कर अपना मन ब्रह्म में लगाना चाहिए-

जो कोइ या बिधि मन को लगावै। मन के लगाये गुरु पावै।१।।

जैसे सती चढ़ी सत ऊपर, अपनी काया जरावै।

मातु पिता सब कुटुंब तियागै, सुरत पिया पर लावै।।५।।

धूप दीप नैवेद अरगजा, ज्ञान की आरत लावै ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, फेर जनम नहिँ पावैं ।।६।।शब्दा०भा० १पृ०६७

कबीर ने विरही आत्मा के लिए चातक और स्वाती बूँद का आदर्श रखा है। जैसे चातक स्वाति बूँद के बिना उदास रहता है वैसे ही जीव को ब्रह्म के बिना उदास विकल रहना चाहिए।

निस बासुर मन रहै उदासा, जैसे चातिग नीर पियासा ।
कहै कबीर अति आतुरताई, हमको बेगि मिलौ राम राई।।२२५।।
क० ग्रं० पृ० १६५ ।।

जीव का ब्रह्म से कैसा प्रेम होना चाहिए, इसके लिए कबीर ने नट, सर्प, जल भरने वाली स्त्री, चकोर, चातक, मृग, पतंग, कुमुदनी, कमल, हंस और मधुकर आदि का आदर्श प्रतिपादित किया है।

कबीर के अनुसार जीव का ब्रह्म में ऐसा ध्यान होना चाहिए जैसा नट विविध क्रीड़ायें करते हुए अपना ध्यान बांस पर रखता है, जैसा सर्प ओसकण का पान करता हुआ अपना ध्यान मणि पर रखता है, और जैसा ध्यान कूपसे जल भरने वाली स्त्री का रस्सी पर रहता है --

जो कोइ या बिधि मन को लगावै, मन के लगाये गुरु पावै ।१।।
जैसे नटवा चढ़त बाँस पर, ढोलिया ढोल बजावै ।
अपना बोझ धरै सिर ऊपर, सुरति बाँस पर लावै ।।२।।
जैसे भुवगम चरत बनी में, ओस चाटने आवै ।
कभी चाटै कभी मनि तन चितवै, मनि तज प्रान गँवावै ।।३।।
जैसे कामिनी भरत कूप जल, कर छोड़ बतरावै ।
अपना रँग सखियन सँग राचै, सुरति डोर पर लावै ।।४।।शब्दा०भा०१
पृ० ६६।।

जीव का ब्रह्म से ऐसा प्रेम होना चाहिए जैसा कूर्म का अपने अंडों से, चातक का स्वाति बूँद से, मधुकर का कमल सुगन्ध से और चकोर का चन्द्रमा से होता है --

जो कोइ येहि बिधि प्रीति लगावै ।
गुरु का नाम ध्यान ना छूटै, परगट ना [illegible] ।।१।।
कुरम सुतन को धरतु है ऊंचे, आप उद्र को धावै ।
निसु दिन सुरत रहै अंडन पर, पल भर ना बिसरावै ।।२।।

जैसे चात्रिक रटै स्वाँति कौ, सलिता निकुट ना आवै ।
दीनदयाल लगन हितकारी, स्वाँती जल पहुँचावै ।।३।।
फूटि सुगध कन्ज की जैसे, मधुकर के मन भावै ।
ह्वै गइ साँझि बधि गे सपुट, ऐसी भक्ति कहावै ।।४।।
जैसे चकोर ससी तन निरखै तन की सुधि बिसरावै ।।
ससि तन रहत एक टक्लागी, तब सीतल रस पावै ।।५।।
ऐसी जुगत करै जो कोई, तब सो भगत कहावै ।।
कहै कबीर सतगुरु की मूरति, तेहि प्रभु दरस दिखावै ।।६।।शब्दा० भा०३ पृ०१५

जैसे मृग नाद से और पतग का दीपक से अनुराग होता है वैसे ही जीव का ब्रह्म से होना चाहिए । जैसे जल और कमल का सम्बन्ध होता है वैसे ही जीव और ब्रह्म का होना चाहिए ।—

जैसे मृगा नाद सुनि धावै । मगन होय ब्याधा ढिग आवै ।
चित कछु सक न आवै ताही । देत सीस सौ नाही डराही।।
सुनि सुनि नाद सीस तिन्ह दीन्हा। ऐसो अनुरागी को चीन्हा।।
औ पतग कौ जैसो भाऊ । एसौ अनुरागी उर आऊ ।।
ऐसा लछन सुन धर्मदासा । ज्ञानी ज्ञान करै परकासा ।।अनुरागसागर पृ० १।।
जैसे क्वल पत्र जल बासा, ऐसे तुम साहिब हमदासा ।।२।।शब्दा०भा०१ पृ०१८
जैसे कुमुदनी का चद्र से स्नेह होता है वैसे ही जीव का ईश्वर से होना चाहिए-

जैसे चद्र कमोदनि रीती । गहे सिस्य अस गुरू परतीती।
ऐसी रहनि रहै वैरागी । जेहि गुरु प्रीति सोई अनुरागी ।।वही पृ०८६।।

शंकराचार्य के अनुसार कबीर ने कहा है कि जैसे कीट भृंग मे अपना अनन्य अनुराग रखता है और अन्त में प्रेम के कारण भृग रूप हो जाता है, वैसे ही जीव को ब्रह्म मे अनुराग रखना चाहिए[१] --

---

१- क्रियान्तरासक्तिमपास्य कीटको ध्यायन्नलित्वं ह्यलिभावमृच्छति ।
तथैव योगी परमात्मतत्वं ध्यात्वा समायाति तदेकनिष्ठया ।।३६०।।
विवेक चूड़ामणि ।

जैसे कीट भृंग लौ लाई, तैसे सलिता सिंधु समाई ।।४।।

कहैं कबीर मोरामन लागा । जैसे सौनै मिला सुहागा ।।६।।शब्दा०भा०१ पृ०१८।।

भृंग ज्यौं कीटि कौ पलटि भृंगै किया,

आप सम रंग दै लै उड़ाई ।।१।। शब्दा० भा० ४ ।पृ० १५।।

कबीर के अनुसार जीव को हंस के समान विवेकी और सिपाही की भाँति वीर हौना चाहिए । इस भवसिन्धु को हंस विवेक और सिपाही की वीरता से पार किया जा सकता है --

कोइ इक हंस बिबेकी होवे । सत्य सब्द जो गहे बिलोवे ।।

कोटि माहिं कोइ संत बिबेकी । जो मम बानी गहे परेखी ।।अनुरागसागर पृ०८८

जो हंसा तोरे प्यास छीर की, कूप नीर नहिं होई ।

यह तो नीर सकल ममता को, हंस तजा जस कोई[1] ।।२।।

षट दरसन पाखंड छानबे, भेष धरे सब कोई ।

चार बरन और बेद किताबें, हंस निराला होई ।।३।।शब्दा०भा०१ पृ०३४।।

कहैं कबीर कोइ खेलि है सूरमा, कायरां खेल यह होत नाहीं ।।

आसकी फाँस को काटि निर्भय भया, नाम रस रस्स कर गरक माहीं ।।२।।

ज्ञान समसेर को बांधि जोगी चढ़े, मार मन मीर रन धीर हूवा ।

खेत को जीत करि किसन सब पेलिया, मिला हरि माहिं अब नाहिं जूवा ।१।।

शब्दा० भा०१ पृ० ६२-६३।।

रैदास : रैदास ने गीता :६।३२-३३: के अनुसार कहा है कि ब्राह्मण,क्षत्रिय, वैश्य,शूद्र,डोम, चंडाल और म्लेच्छ आदि कोई भी क्यों न हो वह भगवद्भजन से पुनीत हो जाता है --

बाँभन बैस सूद अरु स्यत्री डोम चंडाल मलेच्छ किन सोइ ।

होइ पुनीत भगवंत भजन ते आपु तारि तारै कुल दोई ।३।संत सुधासार पृ०१८३

निम्नवर्ण के लोग भी भगवत् भजन से ब्रह्म कोप्राप्त कर लेते हैं, इसके लिए रैदासने अजामिल, गणिका, गज और नामदेव का आदर्श प्रस्तुत किया है --

---

१- चोकर

ऐसे जानि जपो रे जीव, जपि ल्यो राम न मरमो जीव ।।
गनिका थी किस करमा जोग । पर पुरुष सो रमती भोग ।।१।।
निसि बासर दुस्करम कमाई । राम कहत बैकुंठ जाई ।।२।।
नामदेव कहिये जाति कै ओछ । जाको जस गावै लोक ।।३।।बा० पृ० ३२-३३
अजामिल गज गनिका तारी, काटी कुंजर की पास रे ।
ऐसे दुरमत मुक्त कीये, तो क्यो न तरै रैदास रे ।।४८।३।बा०पृ० २३ ।।

रैदास ने विरही आत्मा के लिये चातक और कामी पुरुष की विकलता का आदर्श प्रतिपादित किया है --

इक अभिमानी चातृगा, बिचरत जग माँहीं ।
यद्यपि जल पूरन मही, कहूँ वा रुचि नाहीं ।।१।।
जैसे कामी देखि कामिनी, हृदय सूल उपजाई।
कोटि बैद बिधि ऊचरै वाकी बिथा न जाई ।।२।।
जो तेहि चाहै सो मिलै, आरत गति होई ।
कह रैदास यह गोप नहिं जानै सब कोई ।। ३।। बा० पृ० ५।।

नानक ' नानक ने आदर्श भक्तों मे प्रह्लाद, जैदेव, नामदेव, त्रिलोचन, कबीर, रैदास, बेणि आदि भक्तो का उल्लेख किया है --

दुरमति हरणाखसु दुराचारी । प्रभु नाराइणु गरब प्रहारी ।।
प्रह्लाद उधारे किरपा धारी ।।४।। म० १ ।।गु०ग्रं०सा० पृ० २२४ ।।

गुण गावै रविदासु भगतु जैदेव त्रिलोचन ।
नामा भगतु कबीरु सदा गावहि सम लोचन ।।
भगतु बेणि गुण रवै सहजि आतम रंगु माणै ।
जोग धिआनि गुर गिआनि बिना प्रभ अवरु न जाणै ।।
सुख देउ परीख्यतु गुण रवै गोतम रिखि जसु गाइओ ।।८।।
गु० ग्रं० सा० पृ० १३९० ।।

जीव और ब्रह्म में कैसा प्रेम होना चाहिए, इस संबंध मे नानक ने कई आदर्श प्रस्तुत किए हैं । नानक के अनुसार जीव और ब्रह्म में ऐसा प्रेम होना चाहिए, जैसा जल और कमल, मछली और जल, चातक और वर्षा, जल और दूध तथा सूर्य और चकवी में होता है --

रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि जैसी जल कमलेहि ।।
लहरी नालि पछाड़ीऐ भी विगसै असनेहि ।।
जल महि जीअ उपाइ कै बिनु जल मरणु तिनेहि ।।१।।

रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि जैसी मछुली नीर ।
जीउ अधिकाउ तिउ सुखु घणो मनि तनि साति सरीर ।।
बिनु जल घडी न जीवई प्रभु जाणै अभ पीर ।।२।।

रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि जैसी चात्रिक मेह ।।
सरभरि थल हरीआवले इक बूंद न पवई केह ।।३।।३।।

रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि जैसी जल दुध होइ ।
आवटणु आपे खवै दुध कउ खपणि न देइ ।।
आपे मेलि विछुनिआ सचि वडिआई देइ ।।४।।

रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि जैसी चकवी सूर ।।
खिनु पलु नीद न सोवई जाणै दूरि हजूरि ।।
मनमुखि सोझी ना पवै गुरमुखि सदा हजूरि ।।५।। गु०ग्रं०सा० पृ० ५६-६०।।

दादू : दादू के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शेष, सुखदेव, नारद, प्रह्लाद, ध्रुव, भर्तृहरि गोरखनाथ, गोपीचंद, नामदेव, कबीर रैदास, पीपा आदि भक्त भक्ति के आदर्श है । ये भक्त भगवत्भजन और भगवत् रस के भोक्ता रूपमे आदर्श माने जाते है --

राम बिमुख जग मरि मरि जाइ । जीवै संत रहै ल्यौलाइ ।।
लीन भये जे आतमरामा । सदा सजीवन कीये नामा ।।१।।
अमृत रसायण पीया । ता थैं अमर कबीरा कीया ।।२।।
राम राम कहि राम समाना । जन रैदास मिले भगवाना ।।३।।
आदि अंति केते काली जागे । अमर भये अबिनासी लागे ।।४।।
राम रमायण दादू माते । अबिचल भये राम रँग राते ।।५।।बा०भा०२
पृ० २०-२१।।

राम रस मीठा रे, कोइ पीवै साधु सुजाण ।
सदा रस पीवै प्रेम सौं, सो अबिनासी प्राण ।।

इहि रस मुनि लागे सबै, ब्रह्मा बिसुन महेस ।

सुर नर साधू संतजन, सो रस पीवै सेस ।।१।।

सिधि साधिक जोगी जती, सती सबै सुखदेव ।

पीवत अंत न आवई, ऐसा अलख अभेव ।।२।।

इहि रस राते नामदेव, पीपा अरु रैदास ।

पिवत कबीरा ना थक्या, अजहूँ प्रेम पियास ।।३।। बा०भा० २ पृ० २४।।

दादू भावै तहाँ छिपाइये, साच न छाना होइ। सेस रसातल गगन धू, परगट कहिये सोइ।।

'दादू' कहँ था नारद मुनि जना, कहाँ भगत प्रह्लाद ।

परगट तीनिउँ लोक मैं, सकल पुकारैं साध ।।१११।।

दादू कहँ सिव बैठा ध्यान धरि, कहाँ कबीरा नाम ।

सो क्यों छाना होइगा, जे रे कहैगा राम ।।११२।।

'दादू कहाँ लौन सुकदेव था, कहँ पीपा रैदास ।

दादू साचा क्यों छिपै, सकल लोक परकास ।।११३।।

:दादू कहँ था गोरख भरथरी, अनत सिधौं का मंत ।

परगट गोपीचंद है, दत्त कहै सब संत ।।११४।। बा०भा० १ पृ० २७

दादू ने प्रेमा भक्ति के क्षेत्र में पति पत्नी का आदर्श माना है। दादूके अनुसार ब्रह्म पुरुष है और आत्मा स्त्री -

दादू: पुरिष हमारा एकहै, हम नारी बहु अंग ।

जे जे जैसी ताहि सौं, खेलै तिसही रंग ।।५६।।बा०भा० १ पृ० ६७।।

दादू ने प्रेमा भक्ति के लिए पतिव्रता, सुहागिन और विरहिणी स्त्री का आदर्श प्रस्तुत किया है -- जो पै पतिव्रता ह्वै है नारी । सो धन भावै पिउहिं पियारी।।३।।

पीव पहिचानै आन न कोई । दादू सोई सुहागिन होई ।।बा०

भा० २ पृ०-२५।।

~~पीव पहिचानै आन न कोई। दादू सोई सुहागिन होई ।।३।।~~

~~बा०भा० २ पृष्ठ २५।।~~

पीव पुकारै बिरहिनी, निस दिन रहै उदास ।

राम राम दादू कहै, तालाबेली प्यास ।।३।।बा०भा० १।पृ० ३०।।

दादू ने विरहिणी के लिए चातक के विरह को आदर्श माना है -

मन चित चातृक ज्यूँ रटै, पिव पिव लागी प्यास ।

दादू दरसन कारनै, पुरवहु मेरी आस ।।४।।बा०भा० १ पृ० ३०

दादू ने प्रेम के क्षेत्र मे जल और मछली, अनलपक्षी और आकाश, मधुकर और गंध मृग और नाद, पतंग और दीपक, तथा इन्द्रिय और उनके विषय के प्रेम को आदर्श माना है --

ज्यौं जल मीन मीन तन तलफै । पिव बिन बज्र बिहावै रे ।।१।।
ऐसी प्रीति प्रेम की लागै । ज्यौं पखी पीव सुनावै रे ।।२।।बा०भा० २ पृ० ५६।।
ज्यूँ कुंजर के मन बसै, अनलपखि आकास ।
यूँ दादू का मन राम सौं, यूँ बैरागी बनखंड बास ।।२२।।
भंवरा लुबधी बास का, मोह्या नाद कुरंग ।
यौं दादू का मन राम सौं ज्यूं दीपक जोति पतंग ।।२३।।
स्रवना राते नाद सौं, नैना राते रूप ।
जिभ्या राती स्वाद कौं 'त्यौं दादू एक अनूप ।।२४।।बा०भा०१।पृ०३२।।

दादू के अनुसार जीव और ब्रह्म का ऐसा प्रेम होना चाहिए जैसा कीट और भृंग का होता है --

दादू भृंग कीट ज्यौं, सतगुर सेती होइ ।
आपसरीखे करि लिये, दूजा नाहीं कोइ ।। १४३।। बा० भा० १ पृ० १४।।

<u>सुन्दरदास</u> सुन्दर ने गीता .६।३२ नामदेव, कबीर और रैदास के अनुसार यह कहा है कि ब्रह्म निर्पेक्ष है वह भक्त का प्रेम देखता है, वर्ण नहीं --

सुन्दर भजन सबै करहु नारायण निरपेछ ।
प्रीति परम लेत हैं अंतिज हो कि मलेछ ।।३७।। सु०ग्र०पृ० ६७६

इसके लिए सुन्दर ने नामदेव और त्रिलोचन का आदर्श ग्रहण किया है --

राम नाम रंके भज्यौ त्रिलोचन राम ।
नामदेव भजि राम कौ सुन्दर सारे काम ।।४६।। सुं०ग्र० पृ० ६८०।।

सुन्दर ने भक्ति के प्रतीक आदर्श सन्तो का गुणों के अनुसार विभाजन किया है। सुन्दर के अनुसार ध्रुव दृढ़ ध्यान के आदर्श हैं, सनक, सनन्दन, और नारद आदि ब्रह्म बिचार करने वालों मे आदर्श रूप है, भक्त प्रह्लाद राम नाम जप के आदर्श हैं, शुकदेव ब्रह्म अनुराग के आदर्श हैं, गोरखनाथ और भर्तृहरि आदि परम वैराग्य के प्रतीक हैं, रामानन्द नामदेव, कबीर, रैदास और नानक आदि भक्त भक्ति के आदर्श हैं --

प्रथम सूर सतयुग मैं कहियै ध्रुव दृढ ध्यान लगायौ रे ।
माया छल करि छलनै आई डिग्यौ न बहुत डिगायौ रे ।।१।।
सनक सनन्दन नारद सूरा नौ योगेसुर न्यारा रे ।
तीनि गुण कौं त्यागि निरन्तर कीयौ ब्रह्मबिचारा रे ।।२।।
ऋषभदेव नृप सूरसिरोमनि जाइ बस्यौ बन माहीं रे ।
एक मेक ह्वै रह्यौ ब्रह्म सौं सुधि सरीर की नाहीं रे ।।३।।
जन प्रह्लाद जोध जोरावर पिता दई बहु त्रासा रे ।
राम नाम की टेक न छाड़ी प्रगट भयौ हरिदासा रे ।।४।।
सूरबीर दत्तात्रय ऐसौ बिचरत इच्छाचारी रे ।
भयौ सुतन्त्र नही परतन्त्रा सकल उपाधि निवारी रे ।।५।।
व्यासपुत्र शुकदेव शुभट अति जनमत भयौ विरक्ता रे ।
रम्भा मोहि सकी नहि ताकौं ब्रह्म अनुरक्ता रे ।।६।।
गोरषनाथ भरथरी सूरा कमधज गोपीचन्दा रे ।
चरपट कांणेरी चौरंगी व लीन भये तजि द्वन्दा रे ।।७।।
रामानन्द कियौ सूरातन काशीपुरी मझारी रे ।
लोक उपासक शिव के होते आनि भक्ति बिस्तारी रे ।।८।।
नामदेव अरु रंका बंका भयौ तिलोचन सूरा रे ।
भक्ति करी भय छाड़ि जगत कौ बाजहि तिनके तूरा रे ।।९।।
कलियुग माहि कियौ सूरातन दास कबीर निसंकारे ।।
ब्रह्म अग्नि परजारि पलक में जीति लियौ गढ़ बंका रे।।१०।।
जन रैदास साधि सूरातन बिप्रनि मार मचाई रे ।
सोझा पीपा सैन धना तिन जीतो बहुत लराई रे ।।११।।
अगद भुवन परस हरदासा ज्ञान गह्यौ हथियारा रे ।
नानक कान्ह बेण महाभट भलौ बजायौ सारा रे ।।१२।।

सुं०ग्रं० पृ० ८८२-८८३ ।।

निर्गुण सन्तों ने सहज भाव की भक्तिपर बल दिया है । सुन्दर के अनुसार सहज निरंजन सब में व्याप्त है । शंकर, सनकादिक, शुकदेव, शेष, हनुमान, ध्रुव, प्रह्लाद, नामदेव, कबीर, सोझा, पीपा, रैदास, और दादू सहजभाव की भक्ति के आदर्श हैं । इन्हीं संतो के सहज पथ का सुन्दरदास ने अनुगमन किया है --

सहज निरंजन सब मै सोई । सहजै संत मिलि सब कोई ।।
महजै शंकर लागै सेवा । सहजै सनकादिक शुकदेवा ।।१९।।
सहजै शेष भयौ लै लीना । सहजै हनुमान ततचीन्हा ।।
सहजै घ्रुव कीनी अह्लादा । सहज सुभाव ग्रह्यौ प्रह्लादा।।२०।।
नामदेव जब सहज पिछाना । आतमराम सकल मैं जाना ।
दास कबीर सहज सुख पाया । सब मैं पूरण ब्रह्म बताया ।।२२।।
सोभा पीपा सहज समाना । सैन धन्ना सहजैं रस पाना ।।
जन रैदास सहज कौ बन्दा । गुरु दादू सहजैं आनदा ।।२३।।
एकै सहज सुभाव गहि सतनि कियौ बिलास ।
मनसा बाचा कर्मना तिहिं पथि सुन्दरदास ।।२४।। सु०ग्रं० पृ० ३०६।।

प्रेम के क्षेत्र में सुन्दरदास ने आत्मा के लिए पतिव्रता स्त्री के आदर्श का उल्लेख किया है। सुन्दर के अनुसार राम पतिव्रता पर ही अनुरक्त होते हैं -

सुन्दर रीझै राम जी जाके पतिव्रता होइ ।।१५।। सुं०ग्रं० पृ० ६६१।।

सुन्दरदास ने पतिव्रता नारी केलिए पति ही को प्रेम, नियम, क्षेम, यज्ञ, योग, जप, तप, ज्ञान, ध्यान और तीर्थ आदि माना है। सुन्दर के अनुसार पतिके बिना कोई गति नहीं अत सब प्रकार से स्त्री के लिए एक मात्र पातिव्रत धर्म ही स्पृहणीय है --

पति ही सौ प्रेम होइ पति ही सौं नेम होइ पति ही सौं छैक होइ पति ही सौं रत है ।
पति हीहै यज्ञ योग पति ही है रस भोग, पति है जप तप पति ही कौ यत है ।
पति ही है ज्ञान ध्यान पति ही है पुन्य दान, पति ही तीरथ न्हान पति ही कौ मत है ।
पति बिन पति नाहि पति बिन गति नाहिं सुन्दर सकल बिधि एक पतिव्रत है ।७।
सु० ग्रं० पृ० ४७६- ४७७ ।।

ब्राह्मी प्रेम के क्षेत्र में सुन्दरदास ने जल और मीन, सर्प और मणि, चातक और स्वाति बूंद, रवि और कमल एव चकोर और शशि के आदर्शों का भी चित्रण किया है --

जल कौ सनेही मीन बिछुरत तजैप्रान, मणि बिन अहि जैसें जीवत न लहिये ।।
स्वांति बूंद के सनेही प्रगट जगत मांहि, एक सीप दूसरौ सु चातक ऊ कहिये।।
रवि कौ सनेही पुनि कवल सरोवर में ।ससि कौ सनेही ऊ चकोर जैसे रहिये।
तैसे ही सुन्दर एक प्रभु सौं सनेह जोरि, और कछु देखि काहू वोर नहिं बहिये।।८।।
सु० ग्रं० पृ० ८७७ ।।

नाद कद माला लैके बंदगी करी थी बैठ ।
मुफको भी लगा था अजामिल का हिसका ।।३।।
एते बदराहौं की बदी करी थी माफ ।
जन मूलक अजाती पर एती करी रिसका ।।४।।१०।।बा० पृ०३०।।

मूलक के अनुसार वह भक्त राम को प्रिय आदर्श है जो परदु ख से दु खी होता है --

परदुख दुखिया भक्त है, सो रामहिं प्यारा ।
एक पलक आय तैं, नहिं राखैं न्यारा ।।४।। बा० पृ० ८ ।।

संतदरिया मारवाड़ वाले ' सत दरिया ने कबीर और दादू को अपना आदर्श माना है --

सोई क्थ कबीर का, दादू का महराज ।
सब सतन का बालमा, दरिया का सिरताज ।।१७।।बा० पृ० ३०।।
दरिया ने भक्ति के लिए विहग गति के आदर्श का उल्लेख किया है --
भक्ति सार बिहंग गति, जहँ इच्छा तहँ जाय ।
श्री सतगुर रच्छा करै, बिघन न व्यापै ताय ।।२८।।बा०पृ० २६।।

संतदरिया 'बिहार वाले : संत दरिया ने भक्ति के आदर्शों का उल्लेख करते हुए कहा है कि जीव का ब्रह्म से ऐसा प्रेम होना चाहिए जैसा चातक का स्वाति बूंद से, चकोर का चंद्रमा से, माता का पुत्र से और कृषक का कृषि से होता है--

जैसे सीव सक्ति रस भोगी, एह गुन प्रेम है सदा संजोगी ।।
जैसे चात्रिक चित अनुरागा, रहत एक रस दुजा ना जागा ।।
जैसे चकोर चद चित लोभा, दीष्टि द्रिस्टि दिल इमि करि चोभा।।
जैसे मातु सूत हित जानी, पाले बहुबिधि पलकन्हि आनी ।।
जैसे दुखी सुखी धन पावे, जैवो आवे तैवो जतन करावे ।।
जैसे क्रीखी करै किसाना, निस बासर तेहि [illegible] समाना ।।
ऐसे चित गहि करो बिचारा, गहो प्रेम सतगुरु पद सारा।।
द० एक अनुशीलन पृ० ६० ।।

भक्ति के आदर्शों की दृष्टि से सभी निर्गुण सन्त एकमत है। नामदेव, कबीर, नानक, दादू इत्यादि निर्गुण भक्तों ने भक्ति के आदर्श रूप संतों मे ध्रुव, प्रह्लाद, गज, गणिका, अजामिल, अहिल्या, गोरखनाथ और जयदेव आदि का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त इन्होंने प्रेम के क्षेत्र में चातक और स्वाति बूँद, चकोर और चन्द्रमा, जल और मीन, सर्प और मणि, कमल और सूर्य, मधुप और कमलगंध, तथा कामी और कामिनी प्रभृति के पारस्परिक प्रेम को आदर्श माना है।

:ग भक्ति के साधन

पूर्ववर्ती एक अध्याय में यह बताया जा चुका है कि कर्म, ज्ञान और योगादि की भाँति भक्ति भी पहले परमार्थ साधन थी किन्तु जैसे जैसे भक्ति का महत्व बढ़ता गया, वैसे वैसे भक्ति साधन के स्थान पर साध्य मानी जाने लगी। नारद भक्ति सूत्र में यह कहा गया है कि भक्ति स्वयं फलरूपा, शान्तिरूपा और परमानन्द रूपा है - स्वयं फलरूपेति ब्रह्मकुमारा ।।३०।।

शान्तिरूपात्परमानन्दरूपाच्च ।।६०।।

जब भक्ति साध्य रूप मे ग्रहण होने लगी, तब उसके साधनों का भी उल्लेख होने लगा। भक्तिग्रन्थों के अनुसार, फल त्याग, लोक व्यवहार, सत्य, अहिंसा, शौच, दया, सदाचार, दान, आशा, अनहंकार, शुद्ध अन्न का सेवन, समर्पण भाव, प्रपत्ति भाव, सतोष और नवधा भक्ति आदि भक्ति के साधन हैं।[1] भक्ति के उपर्युक्त साधनों मे से सत्य, अहिंसा, आदि का गीता मे दैवी सम्पदा :१६। १-२-३-४-५: और योगदर्शन :समाधि और साधन पाद में यम नियम के नाम से उल्लेख किया गया है। नीचे निर्गुण संतों के अनुसार भक्ति के साधनों का उल्लेख किया जा रहा है।

नामदेव नामदेव के हिन्दी पदों में भक्ति के साधनों का विशद विवेचन नहीं मिलता। नामदेव के अनुसार मानव-जीवन के द्वारा भगवद्भजन होना चाहिए। जो नरदेह प्राप्त करके, भक्ति नहीं करता वह पशु है --

नर तनु पायो राम नहिं, गायो भूल्यो पशु हारारे।
सिर पर काल खड़ा शर साधे, नामदेव कहे पुकारा रे ।।८।।

हिन्दी को मराठी संतों की ~~हिन्दीको~~ देन पृ० २७०।।

1- ना०भ०सू० ६१-६२-७६-७७-७८-७९
शां०भ०सू० ५६-५७-५८-५९-६०-६१-६२-६३-६४-६५-७०-७१-७३-७४-६ ८४।।

प०उ० पष्ठ उलटिए

नामदेव ने भक्ति साधनों में गुरु के उपदेश और सत्संगति का उल्लेख अवश्य किया है --

राजा राम जपत को को न तरिउ, गुर उपदेसि साधकी संगति भगतु भगतु ताको नामु परिउ ।। वही पृ० २५४ ।।

कबीर : कबीर ने भक्ति के साधनों में मानवदेह, विश्वास, अनहंकार, सत्य, अहिंसा, सदाचार, व और संयम आदि का उल्लेख किया है।

कबीर के मतानुसार मानव जीवन भगवद् भजन का एक मुख्य साधन है। भगवद् भक्ति मानव जीवन का लाभ है। ऐतरेयोपनिषद् के अनुसार ब्रह्म की विविध कृतियों में से देवताओं को मनुष्य शरीर ही पसन्द आया। देवताओं के अनुसार मनुष्य शरीर परमात्मा की सुन्दर रचना है :--

ताभ्य: पुरुषमानयत्ता अब्रुवन सुकृत बतेति। पुरुषो वाव सुकृतम् ।ऐत०१।२।३।।
किन्तु कबीर के अनुसार मानव जीवन के लिए देवता भी ललचाते हैं। जब तक मनुष्य शरीर जीर्ण नहीं होता, तब तक भगवान् का भजन कर लेना चाहिए। यह मानव जीवन जीव के लिए एक अवसर है, जिसके द्वारा वह ईश्वर की सेवाकर सकता है। मानव जीवन के समाप्त होने पर जीव भगवद्भक्ति नहीं कर सकता --

भजि गोब्यंद भूलि जिनि जाहु, मनिसा जनम को एही लाहु ।।
या देही कूं लौचै देवा, सो देही करि हरि की सेवा ।।
जब लग जुरा रोग नहीं आया, तब लग काल ग्रसै नहि कामा ।।
जब लग हीण पड़ै नहीं बाणीं, तब लग भजि मन सारंगपाणीं।।
अब नहीं भजसि भजसि कब, माई आवैगा अंत भज्यौ नहीं जाई ।।
जे कछू करी सोईं ततसार, फिरि पछितावोगे वार न पार।।
सेवग सो जो लागे सेवा, तिनहीं पाया निरंजन देवा ।।
गुर मिलि जिनि के खुले कपाट, बहुरि न आवै जोनी बाट ।।
यहु तेरा औसर यहु तेरी बार, घट ही भीतरि सोचि बिचारि।।
कहै कबीर जीति भावै हारि, बहु बिधि कह्यौ पुकारि पुकारि।।३४८।। क० ग्र० पृ० २०५

शेष- भागवत ११।२।५३, ११।३।२९,३१ : ११।१९।२०-२४।। गीता १२।१३-२०।।
हरि भक्ति रसामृतसिन्धु पूर्वभाग लहरी ४।।
भक्ति रसायन प्रथम उल्लास ३२-३३-३४ ।।

जैन धर्म मे तन को मलिन और निर्गुणी कहा गया है[1]। बुद्ध ने तन को पापी गन्दा और दुर्गुण युक्त कहा है[2]। जैन और बौद्धमतो के समान तन निन्दा के भाव कबीर मे मिलते अवश्य हैं[3] किन्तु कबीर ने तन निन्दा के द्वारा इस भाव को व्यक्त किया है कि तन मर्त्य है अत: जीव को इसके श्रृंगार बनाव मे नहीं लगना चाहिए। राम नाम ही सत्य है अतएव जीव को मानव देह के द्वारा राम नाम का चिन्तन करना चाहिए --

कहै कबीर यहु तन काचा, सबद निरंजन राम नांम साचा।।१४२।।क०ग्रं०पृ०१३४
षीर षांड घृत प्यंड सवारा, प्रान गये ले बाहरि जारा ।।
चोवा चंदन चरचत अंगा, सोतन जरै काठ के संगा ।।
काम क्रोध घट भरे बिकारा, आपहि आप जरै ससारा ।।६४।।क०ग्रं०पृ०११८।।
नर देही बहुरि न पाईये, ताथै हरषि हरषि गुण गाईये ।। वही
पृ०१४५ ।।

कबीर के अनुसार भक्ति के लिए विश्वास आवश्यक है --
भाव भगति बिसवास बिन, कटै न संसै सूल । क०ग्रं० पृ० २४५।।
जब तै मन परतीति भई ।
तब तैं अवगुन छूटन लागे दिन दिन बाढ़त प्रीति नई ।।शब्दा०भा०१ पृ०३।।

उनके अनुसार भक्त का जब अहंकार मिट जाता है तब उसे ब्रह्म के दर्शन होते है --
तू तू करता तूं हुआ मुझ मे रही न हूं ।
जब आपा पर को मिटि गया जित देखौ तित तू ।।क०ग्रं० पृ०

पुन: उनके अनुसार भावभक्ति के लिए सत्य और शील का होना आवश्यक है --
साच सील का चौका दीजै, भाव भगति की सेवा कीजै ।।
भाव भगति की सेवा मानैं, सतगुर प्रगट कहै नहीं छानैं ।।क०ग्रं० पृ०२४५।।

शील, संतोष, विवेक और क्षमा से मोह के समाप्त होने पर जीव को अमर लोक कीप्राप्ति होती है --

---

१- जैन रहस्यवाद विषयक अपभ्रंश ग्रंथ १९ ।पृ० ७।।
२- धम्मपद पृ० ६२-६३-६४-६५ ।।
३- गंदी देही देखि न फूलिये संसार देखि न भूलिये ।।क०ग्रं० पृ० ६७ ।।

सील संतोष ~~सत्य~~ बिबेक छमा धरि, मोहके सहर लुटावैं ।

कहै कबीर सुनौ भाइ साधो अमर लोक पहुँचावै ।।४।।शब्दा०भा०३ पृ०१२।।

कबीर के मतानुसार दयाभाव भक्ति का अंग है अत: हृदय में दया रखनी चाहिए--

दया भाव चित राखु, भक्ति को अंग है । शब्द०भा०२ पृ०६७ ।।

कबीर के अनुसार भक्त को हिंसा नहीं करनी चाहिए। जो हिंसा करता है, उससे ईश्वर प्रसन्न नहीं होता -

दिन को रोजा रहत है, रात हनत है गाय ।

येहि खून वह बंदगी क्योंकर खुसी खोदाय ।। बीजक । पृ० २०।।

कबीर के अनुसार भक्ति की सिद्धि के लिए संयम और सदाचारपूर्ण जीवन आवश्यक है[1] । कबीर के मतानुसार हरि की भक्ति करते समय, विषय रस को छोड देना चाहिए, इन्द्रियों के संयमित होने पर सहज रूप से ब्रह्म की प्राप्ति होती है--

कबीर हरि की भगति करि, तजि बिषिया रस चौज ।

बार बार नहीं पाइए, मनिषा जन्म की मौज ।।३५।।क०ग्र० पृ०२४

चिंता चिति निवारिये फिरि बूझिये न कोइ ।

इंद्री पसर मिटाइये, सहजि मिलैगा सोइ ।।२।। वही पृ० २८ ।।

गीता में योगी के लिए समदृष्टि का उल्लेख किया गया है ६।२९ ।गीता .१२।१३-१४-१८-१९ में भगवान् के प्रिय भक्त उन्हें कहा गया है जिनमें सत्य और संतोष होता है तथा जो तृष्णारहित एव निन्दा और स्तुति में समान होते हैं । गीता के अनुरूप कबीर ने भी भक्त के गुणों का उल्लेख किया है ---

राम भजै सो जानिये, जाकै आतुर नांहीं ।

सत सतोष लीयें रहै, धीरज मन मांहीं ।।

जन कौं कांम क्रोध व्यापै नहीं, त्रिष्णां न जरावै ।

प्रफुलित आनंद मै गोब्यंद गुंण गावै ।।

१- काहे रे मन दह दिसि धावै, विषिया संगि सतोष न पावै ।।

कहै कबीर यहु सुख दिन चारि, तजि विषिया भजि चरन मुरारि ।।८७।।

क० ग्रं० पृ० ११६ ।।

जनकौ पर निधा भावै नहीं, अरु असति न भाषै ।
काल कलपनां मेटि करि, चरनूं चित राखै ।।
जन सम द्रिष्टी सीतल सदा, दुबिधा नहीं आनै ।
कहै कबीरा ता दास सूं, मेरा मन मानैं ।।३६३।।क०ग्रं० पृ० २०६ ।।

भक्ति ग्रन्थों में साध्य 'परा, प्रेमा, अनन्य भक्ति के लिए साधन भक्ति का होना आवश्यक माना गया है। साधन और साध्यवर्ग की भक्ति का वर्णन प्रथम भाग में किया जा चुका है। भक्ति ग्रन्थों के अनुसार कबीर ने भी साध्य-भक्ति की सिद्धि के लिये साधन वर्ग की भक्तियों का उल्लेख किया है।

साधन भक्ति के द्वारा जीव इष्ट देव की ओर आकृषित होता है +, और अंत में साधन भक्ति भाव भक्ति में मिल जाती है। कबीर ने कर्म, ज्ञान, जप, सयम आदि साधनों का परमार्थ साधन की दृष्टि से उल्लेख किया अवश्य है, परन्तु कबीर की दृष्टि में ये साधन भक्ति की सिद्धि के लिए ही हैं। कबीर के अनुसार भाव भक्ति के बिना जप, तप, संयम, तीर्थ, व्रत और स्नान का कोई मूल्य नहीं है --

क्या जप क्या तप सजंमा, क्या तीरथ ब्रत अस्नान ।
जौ पैं जुगति न जानिये, भाव भगति भगवान ।। क०ग्रं० पृ० १२६ ।।

योग, तप, दान आदि भक्ति के लिए ही है, भक्ति के बिना ये व्यर्थ है -

का जोग जगि तप दांनां, जौ तैं राम नांम नहीं जांनां ।।क०ग्रं० पृ०१७८।।

कबीर ने साधन वर्ग की भक्तियों में से रागानुगा प्रपत्ति और नवधा भक्तियों का उल्लेख किया है।

लौकिक जीवन में जिन साधनों से प्रेम उत्पन्न होता है उनका अलौकिक प्रेम के लिये उपयोग करना रागानुगा भक्ति है। कबीर ने इस रागानुगा भक्ति का उल्लेख किया है --

कहैं कबीर हंम ब्याहि चले हैं, पुरिष एक अबिनासी ।१।।
बहुत दिनन थैं मैं प्रीतम पाये, भाग बड़े घरि बैठे आये ।।
कहै कबीर मैं कछू न कीन्हां, सखी सुहाग राम मोहि दीन्हां।।२।।
चरननि लागि करौं बरियाईं, प्रेम प्रीति राखौं उरझाईं ।।
इत मन मंदिर रहौ नित चोषै, कहै कबीर परहु मति धोषै ।।३।।
क० ग्रं० पृ० ८७ ।।

कबीर ने प्रपत्ति भक्ति के ६ भेदों का भी उल्लेख किया है --

१ प्रतिकूल का वर्जन

इसमें जीव प्रतिकूल विषयों का त्याग करता है। कबीर कहते हैं --

जग सूं प्रीति न कीजिये, संमझि मन मेरा।
स्वाद हेत लपटाइये, को निकसै सूंरा ।। क०ग्रं० पृ० १५१।।

२ अनुकूल का संकल्प

इसमें जीव अनुकूल विषयों को ग्रहण करने के लिए संकल्प करता है। कबीर कहते हैं -

कहै कबीर हरि नांम न छाडूं, सहजैं होइ सु होई ।।२६३।।क०ग्रं० पृ० १८७

३ रक्षाणविषयक विश्वास

इस भक्ति में जीव को यह विश्वास रहता है कि ब्रह्म मेरा रक्षाण अवश्य करेंगे। कबीर कहते हैं --

मैं अपराधी जनम का नख सिख भरा बिकार।
तुम दाता दुख भंजना, मेरी करौ सम्हार ।। १८७।। क०व० पृ१६।
जिनि गाया बिसवास सू, तिन रांम रह्या भरपूरि ।।क०ग्रं० पृ० ५६।।

४: गोप्तृत्ववरण

गोप्तृत्ववरण में भक्त केवल गोप्ता भगवान् का ही वरण करता है। कबीर कहते हैं -

जे सुंदरि सांई भजे, तजि आन की आस।
ताहि न कबहुं परिहरै, पलक न छाडै पास ।। क०ग्रं० पृ० ८०।।

५: आत्मनिक्षेप :

आत्मनिक्षेप में जीव सब कुछ भगवान् को अर्पण कर देता है। कबीर कहते हैं - मेरा मुझमें कुछ नहीं जो कुछ है तोर।
तेरा तुझको सौंपते क्या लागत है मोर ।। क०व०१६४। पृ० २० ।।

६ 'कार्पण्य

कार्पण्य भक्ति मे दैन्य भाव प्रमुख रूप से रहता है । कबीर की कार्पण्य भक्ति में दीनता, हीनता, ग्लानि, दरिद्रता, लघुता आदि भाव विद्यमान है --

दीन गरीबी बंदगी साधन सों आधीन ।
ताके संग मैं यों रहूं ज्यों पानी संग मीन ।।५८७।।
सबते लघुताई भली लघुता ते सब होय ।। ५६६३।।
लघुता तै प्रभुता मिलै प्रभुता ते प्रभु दूरि ।
चीटी लै शक्कर चली हाथी के सिर धूरि ।।५६६।। क ब

कबीर ने अपने को राम का गुलाम कहा है । कबीर के अनुसार राम के समान कोई दाता नही है और जीव के समान कोई पापी --

मैं गुलाम मोहि बेचि गुंसाई, तन मन धन मेरा रामजी के तांई ।।
क० ग्रं० पृ० १२४ ।।
कहै कबीर सुनि केसवा, तूं सकल बियापी ।
तुम्ह समांनि दाता नहीं, हम से नहीं पापी ।। १७८।। क०ग्रं० पृ० १४८।।
पृ० २८४ ।।

कबीर के अनुसार यह शरणागत भाव पराभक्ति की प्राप्ति में सहायक है । कबीर राम की शरण में जाकर भक्ति करते हैं । राम की शरण में जाकर जीव उन्हें अपना बना लेता है और उनकी प्रेमाभक्ति में रत होता है --

नाउ मेरे खेती नाउं मेरे बारी, भगति करी मैं सरनि तुम्हारी ।३३३।।
अब हरि हूं अपनों करि लीनो प्रेम भगति मेरो मन भीनों ।।३३४।।
क० ग्रं० पृ० २०१ ।।

भगवद् गीता और शाण्डिल्य भक्ति सूत्र में यह कहा गया है कि कीर्तन आदि नवधा भक्ति पराभक्ति को सहायक है ---

परा कृत्यैव सर्वेषां तथा ह्याह ।८४। शा० भ० सू०
य इद परमं गुह्य मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्ति मयि परा कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशय' ।।१८।६८।।गीता ।।

शाण्डिल्य भक्ति सूत्र और विष्णुपुराण में स्मरण, कीर्तन, कथा-श्रवण और नमस्कार आदि भक्ति के साधन माने गए हैं । ये साधन आर्त भक्ति में प्रायश्चित रूप से कहे गए हैं --

स्मृतिकीर्त्यो कथादेश्चार्तौ प्रायश्चित्तभावात् ।।७४।। शां०म०सू०

प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तप. कर्मात्मकानि वै ।

यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरण परम् ।।वि०पु०।२।६।३५।।

स्मरण कीर्तन आदि साधन बाहर रह कर स्वतंत्र और पराभक्ति के साधन रूप से भीतर रह कर परतंत्र होते हैं। इस प्रकार ये साधन उभयरूप स हैं --

बहिरन्तरस्थमुभयमवेष्टिसववत् ।।७३।। शां० म०सू०

स्मरण, कीर्तन आदि नवधा भक्ति के रूपों को परा भक्ति के साधन रूप में ग्रहण किया गया है। कबीर ने भी नवधा भक्ति का प्रेमा भक्ति के साधन रूप में उल्लेख किया है।

'१' श्रवण भक्ति

श्रवण भक्ति मे भगवान् की कथा का श्रवण किया जाता है। कबीर ने कथाशब्द का प्रयोग तो किया है, किन्तु उनका कथा शब्द पौराणिक कथा का द्योतक नहीं है। कबीर ने पौराणिक कथा श्रवण का कई स्थानो पर खंडन किया है --

पाप काटन को कथा सुनावैं, करम करावैं नीचा।

बूड़त दोऊ परस्पर देखे, गहे बाँहि जम खींचा ।।७।। शब्दा० भा० १ पृ०३६।।

कबीर ने पौराणिक कथा-श्रवण का तो निराकरण किया है किन्तु उन्होने स्व निर्मित ग्रन्थों का श्रवण करना आवश्यक माना है। कबीर के अनुसार साखी ज्ञान की आँख है, जिसके बिना भवबन्धन का कटना असम्भव है --

साखी आँखी ज्ञान की, समुझ देखि मन माहिं।

बिनु साखी संसार का, झगरा छूटत नाहिं ।। बीजक पृ० १६।।

कबीर ने शब्द श्रवण और कथा श्रवण का उल्लेख सम्भवत अपने ग्रन्थो के लिए ही किया है। कबीर के अनुसार शब्द का श्रवण करने से सब संशय मिट जाते हैं। यह कथा श्रवण 'ग्रंथ भक्ति' भक्ति, भाव भक्ति की सहायक है --

सब्द सुनत संसा सब छूटा, श्रवन कपाट बजर था तूटा। क०ग्रं० पृ० २१९।।

कथा ग्रंथ होय द्वारे पर, भाव भक्ति समझावे।

काम क्रोध मद लोभ निवारे, हिलि मिलि गावे ।।३।।शब्दा० भा०३ पृ०१२।।

'२' कीर्तनभक्ति :

कबीर ने कथा कीर्तन भक्ति का उल्लेख किया है ---

कथा कीरतन मँगल महोछव, कर साधन की भीर ।

कमी न काज बिगरि है तेरो, सत सत कहत कबीर ।।४।। शब्दा० भा०२ पृ० ८६।।

किन्तु कीर्तन शब्द से कबीर का तात्पर्य पौराणिक कीर्तन से नहीं है। पौराणिक अथवा लोकप्रचलित कीर्तन का कबीर ने खंडन किया है। कबीर ने केवल हरि के गुणों के कीर्तन पर बल दिया है --

करता दीसै कीरतन, ऊंचा करि करि तूंड ।

जांणे बूझै कुछ नही, यौंही आंधा रुंड ।।५।। क० ग्र० पृ० ३८ ।।

कबीर प्रगट रांम कहि, छानैं रांम न गाइ ।

फूस क जौडा दूरि करि, ज्यू बहुरि न लागै लाइ ।।३६।। क० ग्र० पृ०७१।।

कंठ माला जिह्वा राम । सहस नाम लै लै करौ सलाम ।

कहत कबीर राम गुन गावौ । हिंदू तुरक दोऊ समझावौ ।।२१५।। क० व० पृ०

कबीर के अनुसार रामकीर्तन में ही भला है। अत: राम का कीर्तन नित्य प्रति होना चाहिए--

राम कहैं भला होइगा, नहि तर भला न होइ ।। क० ग्र० पृ० ४।।

सन्त प्रसाद भये मन निर्मल हरि कीर्तन महिं अनदिन जागा ।। क० ग्र० पृ० ३०३।।

३ स्मरण भक्ति .

स्मरण-भक्ति के अन्तर्गत भगवान् के नाम और गुणों का स्मरण किया जाता है। कबीर के अनुसार भगवान् का स्मरण करना ही सार है, और सब जंजाल है। भगवद् स्मरण से मोक्षप्राप्त होता है ---

कबीर सुमिरण सार है, और सकल जंजाल ।

आदि अंति सब सोधिया, दूजा देखौं काल ।। क० ग्रं० पृ० ५ ।।

ऐसा सिमरन कर मन माहि । बिनु सिमरन मुक्ति कत नाहिं ।।

जिह सिमरन करहि तू केल । दीपक बाँधि धर्यो तिन तेल ।।क०ग्रं० पृ० २६०।।

कबीर के मतानुसार नाम स्मरण से प्रेमा भक्ति की सिद्धि होती है --

भगति भजन हरि नाँव है दूजा दुक्ख अपार ।। क०व० पृ० ५।।

सबै रांम नांम ल्यौ लाई, रांम नांम कहि भगति दिढाई ।। क०ग्र० पृ० २२७।।

:४: पाद भक्ति :

कबीर ने ईश्वर के चरणों के प्रति भक्तिभाव व्यक्त करते हुए कहा है कि हरि

के चरणों में चित रखने से मोक्ष प्राप्त होता है। अत राम के चरणों मे प्रेम के साथ उलझे रहना चाहिए --

चरन कंवल चित लाइये, रांम नांम गुन गाइ।
हरि चरनू चित राखिये, तौ अमरापुर होइ।
कबीर हरि चरणौं चल्या, माया मोह थै टूटि ।।
चरननि लागि करौं बरियाईं। प्रेम प्रीति राखौ उरझाई ।।क०ग्रं० पृ०४६-७६-८९।।

५' अर्चन भक्ति .

कबीर में भी अर्चन-भक्ति है, किन्तु कबीर उस देवालय में पूजन करते हैं जिसकी कोई पार्थिव नींव नही है। कबीर उस देव की पूजा करना चाहते हैं,जो अशरीरी,अलख और निराकार है। नैवेद्य और पुजारी स्वयं ही देवालय मे विद्यमान है -

नींव बिहूंणा देहुरा, देह बिहूंणा देव।
कबीर तहा बिलंबिया करै अलख की सेव ।।४१।।
देवल मांहै देहुरी, तिल जेहैं बिस्तार।
मांहैं पाती मांहीं जल, मांहै पूजणहार ।।४२।। क०ग्रं० पृ०१५ ।।

'६' बन्दन भक्ति :

कबीर ईश्वर के चरणों की वन्दना करते हैं, जो परमानन्द देता है -

कहै कबीर चरन तोहि बंदा, घर में घर दे परमांनंदा ।।७६।।क०ग्रं० पृ०११३।।

'७: दास्यभक्ति :

कबीर ने दास्य भक्ति का विस्तार के साथ उल्लेख किया है। कबीर के अनुसार दास्य भाव राम भक्ति का एक साधन है। राम की सेवा से राम-भक्तिकी प्राप्ति होती है। राम-भक्ति के बिना सेवा निष्फल है। गुरू की सेवा से भक्ति प्राप्त होती है। कबीर सेवा के बदले मे भक्ति रूपी वेतन प्राप्त करते है --

तोरौ न पाती पूजौ न देवा। राम भगति बिन निहफल सेवा ।।क०ग्रं०पृ०३१६।
गुर सेवा करि भगति कमाई, जौ तैं मनिषा देही पाई ।। क०ग्रं० पृ०२०२।।

:८: सख्य भक्ति ·

कबीर ने राम को प्रिय मित्र कहा है। कबीर के अनुसार यह प्रिय मित्र बिना

प्रेम की पीड़ा का अनुभव बिना प्राप्त नही होता --

बिन रोयां क्यूं पाइए, प्रेम पियारा मित्त ।।क०ग्रं० २७। पृ० ६।।

किन्तु कबीर का साथी सुख दुख से ऊपर है, उसके साथ हिलमिल कर खेलने से कभी वियोग नही होता -

कबीर साथी सो किया, जाके सुख दुख न्नाही कोइ ।
हिलि मिलि ह्वै करि खेलिस्यूं, कदे बिछोह न होइ ।।१।।क०ग्रं० पृ०८६।।

:६' आत्मनिवेदन :

कबीर पिता राम से विनती और आत्मनिवेदन करते है --

बाप रांम सुंनि बीनती मोरी, तुम्ह सूं प्रगट लोगनिसू चोरी ।
पहले काम मुगध मति कीया, ता भै कंपै मेरा जीया ।।
राम राइ मेरा कह्या सुनीजै, पहले बकसि अब लेखा लीजै ।।
कहै कबीर बाप रांम राया, अबहूं सरनि तुम्हारी आया ।। क०ग्रं० पृ० २०७।

रैदास :

रैदास ने भक्ति के साधनो का कोई विशेष उल्लेख नहीं किया है । रैदास के अनुसार जीव का ब्रह्म को देखना और ब्रह्म का जीव को देखना प्रेमा भक्ति के लिए आवश्यक है --

तूँ मोहिँ देखै हौँ तोहि देखूँ, प्रीति परस्पर होईं ।।१।।
तूँ मोहिँ देखै हौँ तोहि देखूँ, प्रीति परस्पर होईं ।।१२।।२।।बा०पृ०७।।

रैदास ने नवधा भक्ति और प्रपत्ति भक्ति का पराभक्ति के साधन के रूप में उल्लेख किया है ---

हम जानौ प्रेम प्रेम रस जानै, नौबिधि भगति कराई ।
स्वाँग देखि सब ही जन लट्क्यो, फिरि यौं आन बंधाई ।।४।बा०पृ०४
आयौ हो आयौं देव तुम सरना । जनि कृपा कीजे अपनौ जना ।।
त्रिबिध जोनि बास जम को अगम त्रास, तुम्हरे भजन बिन भ्रमत फिरौं ।

बा० पृ० ६ ।।

दादू

दादू के अनुसार मानव जीवन अमूल्य है। इस जीवन के द्वारा राम के दर्शन होते हैं और उनकी प्रेमा भक्ति प्राप्त होती है। मानव देह बार बार प्राप्त नहीं होता, अत. जीव को इस अवसर को खोना नहीं चाहिए --

ऐसा जनम अमोलिक माई। जा मे आइ मिलै राम राई।। बा०भा०२पृ०१४
बार बार यहु तन नाही, नर नारायण देह।
दादू बहुरि न पाइये, जनम अमोलिक येह।।१५।।बा० भा० १ पृ० १०१।।
आपा पर सब दूरि करि, राम नाम रस लागि।
दादू औसर जात है, जागि सकै तो जागि।।१४।। पृ० १०१।।

मानव जीवन में रह कर भी जीव को कथन और कर्म में भेद नहीं करना चाहिए। दादू के अनुसार जो राम दर्शन की कामना करते हैं परन्तु उसके लिये कोई उपाय नहीं करते, वे अपने प्रिय को प्राप्त नहीं कर सकते। ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए कथन और कर्म मे भेद नहीं होना चाहिए --

अंतर गति औरै कुछ, मुख रसना कुछ और।
दादू करणी और कुछ, तिनकौं नाहीं ठौर।।१०६।।
दादू राम मिलन को कहत हैं, करते कुछ औरै।
ऐसे पिव क्यूं पाइये, समझि मन बौरे।।११०।बा०भा०१ पृ० १४४ ~~२०२~~।।

दादू के अनुसार दैन्य भाव से प्रेमा भक्ति की सिद्धि होती है --

'दादू: भाव भगति दीनता अंग। प्रेम प्रीति सदा तिहि संग।।८।
बा० भा० १, पृ० २०३।।

सुन्दरदास :

सुन्दरदास के अनुसार सर्वभाव, आत्मभाव, विश्वास, सत्वगुण, क्षमा, निर्मल मन दया, धृति, दीनता, एकाग्रता, इन्द्रियज्ञान, मानव देह, प्रपतिभाव और नवधा भक्ति, परामक्ति के साधन हैं।

सुन्दर के अनुसार मानव देह भगवद्भक्ति का मुख्य साधन है। मानव देह का निर्माण ही भक्ति करने के लिए ही हुआ है। जो मानव जीवन में रह कर भगवद्भजन नहीं करता, वह पशुओं से भी निकृष्ट है। मानव जीवन में हार जीत का खेल होता है जो खेल में विजयी होता है उसे जगत्पति मिलते हैं--

देह रच्यौ प्रभु भजन कौ सुन्दर नखसिख साज । सुं०ग्र० ७१५।।

तौहि लाभ कहा नर देह कौ ।

जौ नहि भजे जगतपति स्वामी तौ पशुवन में देह कौ ।। पृ० ८३२ ।।

सुंदर याही देह मे हारि जीति कौ षेल ।

जीतै सौ जगपति मिलै हारै माया मेल ।।३७।। पृ०६६६।।

सुन्दर के अनुसार मानव जीवन मे विश्वास का होना आवश्यक है --

सुन्दर धीरज धारि तू गहि प्रभु कौ बिश्वास ।

रिजक बनायौ राम जी आवै तेरे पास ।।५।। सु०ग्रं० पृ० ७१७।।

गीता[1] के अनुसार सुन्दरदास ने भी कहा है कि उठते बैठते, चलते फिरते, खाते पीते, सोते जागते, सभी स्थितियो में, सर्वभाव से, सर्वव्याप्त राम की पूजा करनी चाहिए-

बैठत राम हि ऊठत राम हि बोलत राम हि राम रह्यौ है ।

जीमत रामहि पीवत रामहि धी`मत रामहि राम गह्यौ है ।।

जागत रामहि सोवत रामहि जोवत रामहि राम लह्यौ है ।

देतहु रामहि लेतहु रामहि सुन्दर रामहि राम कह्यौ है ।।१।।

देषहु राम अदेषहु रामहि लेषहु राम अलेषहु रामै ।

एकहु राम अनेकहु राम हि शेष हु राम अशेषहु तामै ।। सु०ग्रं० पृ० ५०२-५०३।।

भक्तिके लिए इस सर्वभाव के साथ साथ आत्म भाव भी होना चाहिए । जीव का जैसा भाव होता है, वह वैसा ही बन जाता है । वह अपने भाव से ही ब्रह्म को भूलता है, और अपने भाव से ही आत्मज्ञानी बनता है । सुन्दर का यह भाव गीता से मिलता-जुलता है --

सत्वानुरूपासर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ।

श्रद्धामयोऽय पुरुषो यो यच्छ्रद्ध. स एव सः ।।३।। अ०१७।।

आपुनै भाव तैं आप बिसारत आपुनै भाव तै आतमज्ञानी ।

सुन्दर जैसो हि भाव है आपुनो तैसो हि होइ गयौ यह प्रानी ।।१२।।

सु० ग्र० पृ० ५७८ ।।

सुन्दर के अनुसार स[illegible]गुण युक्त अंत:करण में भक्ति का निवास रहता है ---

---

नैव किंचित्करोमी [illegible]क्तो मन्यते तत्ववित् ।

पश्यं[illegible]जिघ्र[illegible]गच्छन्स्वप[illegible]सन्।।८।।

प्रलपन्विसृजन्गृह्[illegible]न्निमिषन्नपि।

इन्द्रियाणीन्द्[illegible]र्तन्त इति धारयन् ।।९।।गीता अ० ५।।

सत्वगुण अंतह्करण जाके देषियत ।

क्रिया करि सुद्ध वाके भक्ति कौ निवास है । सुं० ग्र० पृ० ६३३।।

और चित्त की एकाग्रता से भक्ति प्राप्त होती है, और पंचेन्द्रिय ज्ञान से राम-भक्ति का फल मिलता है --

चित एक ईश्वर सौ नेकहू न न्यारौ होइ,

उहै भक्ति कहियत उहै प्रेम माग है ।।सुं० ग्र० पृ० ६३३-३४ ।।

यह पंच इंद्रिनि कौ ज्ञाना । कौ समुझै संत सुजाना ।

जो सीषै सुनै क गावै । सो राम भक्ति फल पावै ।।४१। वही पृ० १५०।।

तथा जिस भक्त का अंत करण पवित्र होता है, उसकी भक्ति ब्रह्म स्वीकार करते हैं--

जिस बंदे का पाक दिल, सो बंदा माकूल ।

सुन्दर उसकी बंदगी साईं करै कबूल ।।३।। पृ० ६८७ ।।

सुन्दर के अनुसार दया, छामा, धैर्य, और दैन्य भाव के साथ भक्ति का मेल मिलाप रहता है --

तब सन्तनि कै ढिग गईं, देषै शीतल रूप ।

छामा दया धृति दीनता, सब गुन अजब अनूप ।।५।।

तिन के लछाण देषि कै, भक्ति सुबोली आप ।

तुमतै मन राजी भयौ, मौ सौ करहु मिलाप ।।६।। सु० ग्रं० पृ० १८६।।

सुन्दर ने प्रपत्ति भक्ति का उल्लेख करते हुए कहा है कि राम की शरण मे जाने से छुटकारा मिलता है --

इहि काम लोक त्रय लूटे । कोइ शरण राम के छूटे ।।सु०ग्र० पृ०१२४।।

निर्गुण संतो में सुन्दरदास ने नवधा भक्ति का शास्त्रीय ढग से विवेचन किया है ।

:१: <u>श्रवण भक्ति</u> : सुन्दर के अनुसार भगवान् के निर्गुण सगुण रूप की तन मन से पूजा करना, हरि के गुणों को सुनकर उनका रसपान करना और संतो के बचन श्रवण करना, श्रवण भक्ति है --

शिष तोहि कहौ श्रुति वानी । सब संतनि साषि बषानी ।।

द्वै रूप ब्रह्म के जानै । निर्गुन अरु सगुन पिछानै ।।

निर्गुन निज रूप नियारा । पुनि सगुन संत अवतारा ।
निर्गुन की भक्ति सु मन सौं । सतन की मन अरु तन सौं ।।
एकाग्रहि चित जु राषै । हरि गुन सुनि सुनि रस चाषै ।
पुनि सुनै संत के बैना । यह श्रवण भक्ति मन चैना ।।

ज्ञान समुद्र पृ० १० ।।

.२ कीर्तन भक्ति '

हरि के गुणों का कीर्तन करना और सबसे प्रेम करना कीर्तन भक्ति है। सुन्दर ने ध्वनिसहित होने वाले कीर्तन का भी उल्लेख किया है --

हरि गुन रसना मुख गावै । अति सै करि प्रेम बढ़ावै ।
यह भक्ति कीरतन कहिये । पुनि गुरू प्रसाद तें लहिये ।।४। सुं०ग्रं० पृ०१९।।
तब स्तुति बहुविधि उच्चरै धुनि सहित लै लै नाम ।। सुन्दर दर्शन पृ० १०६ ।।

'३' स्मरण भक्ति :

सुन्दर के अनुसार स्मरण भक्ति दो प्रकार की है। एक में नाम का उच्चारण किया जाता है और दूसरी में हृदय में नाम स्थिर करना होता है --

अब समरन दोइ प्रकारा । इक रसना नाम उचारा ।
इक हृदय नाम ठहरावै । यह समरन भक्ति कहावै ।।

:ज्ञा०स०द्वि० उल्लास १९।१५'

'४' पादभक्ति :

सुन्दर के अनुसार भगवान् के चरण कमलों में नित्य लोटना, तथा एकनिष्ठ भाव से उन्हें दबाना, पाद सेवन भक्ति है --

नित चरन कमल महि लोटै । मनसा करि पाव पलोटै ।।
यह भक्ति चरन की सेवा । समुझावत है गुरु देवा ।। ज्ञा०स०द्वि०उ०१९।१६

:५: अर्चन भक्ति :

सुन्दर के अनुसार अर्चन भक्ति में भाव के साथ भाव के नैवेद्य से प्रभु का अर्चन किया जाता है। भाव की आरती से प्रभु को बारम्बार प्रणाम करना भी अर्चन भक्ति के अन्तर्गत आता है---

अब अरचना कौ भेद सुनि शिष देऊँ तोहि बताइ ।
आरोपिकै तहं भाव अपनौ हृदय मन लाइ ।।
रचि भाव कौ मंदिर अनुपम सकल मूरति माहि ।
पुनि भाव सिंहासन विराजै भाव बिनु कछु नाहिं ।।
निज भाव की तहँ करै पूजा बैठि सनमुख दास ।
निज भाव की सब सौंज आनै नित्य स्वामी पास ।।
पुनिभाव ही कौ कलश भरि धरि भाव नीर न्हवाइ ।
करि भाव ही के बसन बहु विधि अंग अंग बनाइ ।।
तँह भाव चंदन भाव केशरि भाव करि घसि लेहु ।
पुनि भाव ही करि चरचि स्वामी तिलक मस्तक देहु ।।
ले भाव ही के पुष्प उत्तम गुहि माल अनूप ।
पहिराइ प्रभु कौ निरषि नख शिख भाव षेवै धूप ।।
तँह भाव ही ले धरै भोजन भाव लावै भोग ।
पुनि भाव ही करिकै समर्पै सकल प्रभु कें योग ।।
तह भाव ही कौ जोइ दीपक भाव घृत करि सींचि ।
तहँ भाव ही की करै थाली धरै ताके बीचि ।।
तहँ भाव ही की घंट झालरि संष ताल मृदंग ।
तह भाव ही के शब्द नाना रहे अति से रंग ।।
यह भाव ही की आरती करि करै बहुत प्रनाम ।
तब स्तुति बहु बिधि उच्चरै धुनि सहित लै लै नाम ।।

ज्ञा०स०द्वि०उ० २१।१७।।

'६: <u>वन्दनभक्ति :</u>

सुन्दर के विचार से वन्दन भक्ति दो प्रकार की है । प्रथम प्रकार की भक्ति में तन को दंड के समान कड़ा और सीधा करके दंडवत करना तथा द्वितीय में मन सहित प्रभु के चरणों पर गिरना वन्दन भक्ति है --

वन्दन दोइ प्रकार कहौं शिष संभलियं ।
दंड समान करै तन सौ तन दंड दियें ।।
त्यौं मन सौ तन मध्य प्रभू कर पाइ परै ।
या विधि दोइ प्रकार सु वन्दन भक्ति करै ।।

:७: दास्यभक्ति

सुन्दर के अनुसार पतिव्रता जब पल भर के लिये भी पति का वचन खण्डत नहीं करती, और नित्यप्रति हाथ जोड़ कर भय सहित प्रभु से आज्ञा ज्ञात करती है, तब दास्य भक्ति होती है -

नित्य भय सौं रहै हस्त जोरे कहै। कहा प्रभु मोहि आज्ञा सु होई।
पलक पतिब्रता पति बचन खंडै नहीं। भक्ति दास्यत्व शिष जानि।
ज्ञा०स०द्वि०उ०२३।३२।।

८ सख्यभक्ति

सुन्दर के अनुसार नित्य हरि के साथ रहना, और श्रमपूर्वक हरि का हित करते रहना, तथा दृढ़ता पूर्वक सख्य भाव को धारण करना एवं मित्र का त्याग न करना सख्य भक्ति है --

सुनि शिष्य सखापन तोहि कहौं हरि आतम के नित सग रहै।
पलु छाड़त नाहि समीप सदा जितहीं जितकौं यह जीव बहै।।
अब तू फिरि कै हरि सौं हित राषहि होइ सखा दृढ़ भाव गहै।
इम सुन्दर मित्र न मित्र तजै यह भक्ति सखापन बेद कहै।।
ज्ञा० स० द्वि० उ० २३।२३।।

९ आत्मनिवेदन भक्ति

सुन्दरदास ने आत्मनिवेदन भक्तिके स्थान पर आत्मसमर्पण भक्ति का उल्लेख किया है। सुन्दर के अनुसार आत्मसमर्पण भक्ति में भक्त भगवान् को सब कुछ अर्पण कर देता है --

प्रथम समर्पन मन करै, दुतिय समर्पन देह।
तृतीय समर्पन धनकै, चतु. समर्पन गेह।।
गेहा दारा धनं। दास दासी जनं।।
बाज हाथी गनं। सर्वदै यौं मन।।
और जे मैमनं। है प्रभु ते तनं।।
शिष्य वानी सुन। आतमा अर्पनं।। ज्ञा०स०द्वि०उ० २३।३४।।

नवधा भक्ति प्रेमा भक्ति की साधन मात्र ही है। प्रेमा भक्ति के उत्पन्न होने पर नवधा-भक्ति की आवश्यकता नहीं रहती --

स्वास उस्वास उठ सब रोम चलै दृगनीर अखण्डित धारा।
सुन्दर कौन करै नवधा विधि छाकि पर्यो रस पी मतवारा।।
ज्ञा० स० द्वि० उ० २५।३८।।

जगजीवन साहब

जगजीवन के अनुसार विश्वास, नाम जप, अनासक्ति और शरणागति भक्ति के साधन हैं। संसारी लोग प्रभु की पूजा, विश्वास और आशा के साथ नहीं करते। वे भ्रम में पड कर कनक काया को नष्ट करते हैं। जो अनासक्त भाव और विश्वास के साथ प्रभु का स्मरण करता है, वह प्रभु का साक्षात्कार करता है --

बिन बिसवास आस नहिं पूजै, भूला सब ससारी।
दैही पाइ कनक काया की, डारिनि जनम बिगारी।।३। बा०पृ०२५ भा०२
रह्यौ अलिप्त लिप्त नहिं काहू, जिन जैसे मन लाई।
जगजीवन बिस्वास जिन सुमरा तहँ तस दरस दिखाई।।बा०भा०२ पृ०२१।।

जगजीवन के अनुसार तन मन को प्रभु के चरणों में अर्पण करके नित्य प्रति उनके चरणों में चित्त लगाना चाहिए, और गर्व को त्याग कर दैन्य भाव को ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि दैन्य .कार्पण्य भाव के समान अन्य कोई भाव नहीं है। जो दीन और अधीर होकर रहता है, उसको सबसे सम्मान मिलता है। विभीषण जब दीन होकर राम की शरण में गया, तब राम ने उसको प्रधानपद पर अधिष्ठित किया -

मैं तन मन तुम्ह पर वारा।
निसिदिन लागि चरन की छहियों, सूनों सैज निहारा।।१।।बा०भा०२पृ०३।।
दीनता सम और कछु नाहीं, तजि दे गर्ब गुमान।
रह्यौ दीन अधीन ह्वै कै, सो सब के मन मान।।१।।
बिभीखन जब दीन भयो है, ताहि कियो परधान।
दीन समान औरु कछु नाहीं, गावत बेद पुरान।।३।।बा०भा०२ पृ०१०६-१०

जगजीवन की दृष्टि से अजपाजाप के बिना भक्ति नहीं होती[1]।

जगजीवन के अनुसार वही भक्ति करता है और वही प्रभु का भक्त है जो दो अक्षरों का स्मरण करता है --

साधो भक्ति करै अस कोइ ।
अंतर दुइ अच्छर सुमिरै, भक्त तबहीं होइ ।।१।।बा०भा० २ पृ० ३४।।

मूलकदास

मूलकदास ने कबीर दादू आदि सन्तों की भाँति मनुष्य जीवन को भक्ति का साधन माना है । मनुष्य जन्म बड़े भाग्य से मिलता है --

मनुष जन्म दुर्लभ अहै, बड़ पुन्नै पाया ।
सोऊ अकारथ खोइया, नहिं ठौर लगाया ।।१।।४।बा० पृ० ११

मलूक के अनुसार मनुष्य जीवन दया और दैन्य भाव से युक्त होना चाहिए । मनुष्य को भगवान् की शरण में रह कर भगवद् स्मरण करना चाहिए । इसी से जीव को ब्रह्म दर्शन होते हैं --

एक दया और दीनता, ले रहिये भाई ।
चरन गहो जाय साध के रीझैं रघुराई ।।३।। बा० पृ० १६।।
अब तेरी शरन आयो राम ।।१।। बा० पृ० ५ ।।
अधम उधारन सब कहैं, प्रभु बिरद तुम्हारा ।
सुनि सरनागत आइया, तब पार उतारा ।।३।।३।।बा० पृ०२ ।।
यही बड़ा उपदेस है, परद्रोह न करिये ।
कहैं मलूक हरि सुमिर के भौसागर तरिए ।।४।।बा० पृ० १६।।

१- पढि पुरान गरंथ गीता, बक्त कीरति सोय ।
नही अजपा डोरि लागै, भक्ति कैसे होय ।।४।।बा०भा० १।पृ० १०।।

दरियासाहब मारवाड़ वाले

संत दरिया ने भक्ति के साधनों में साधन भक्ति के अन्तर्गत नवधा भक्ति का उल्लेख किया है । दरिया ने नवधा भक्ति में से स्मरण, वंदन और दास्य भक्ति का स्पष्ट उल्लेख किया है --

फूलों मे फल मान कर, भली बिभूति जाय ।
अति सीतल सुगंधिना, नवधा भक्ति उपाय ।।५२।। बा० पृ० ३३।।

दरिया के अनुसार राम अगाध है और वह आत्मा का आधार है, उसका स्मरण करने से सुख उत्पन्न होता है --

दरिया राम अगाध है आतम का आधार ।
सुमिरत ही सुख ऊपजै सहजहि मिटै बिकार ।।३६।।बा० पृ० ८।।

तथा दिन रात राम का स्मरण करना ही सम्पूर्ण ग्रन्थों का सार है --

सकल ग्रंथ का अर्थ है, सकल बात की बात ।
दरिया सुमिरन राम का, कर लीजै दिन रात ।।२६।।बा० पृ०७।।

दरिया ने दास्य भाव का उल्लेख करते हुए कहा है कि राम स्वामी है, और जीव उनका दास --

साहब मेरे राम हैं, मैं उनकी दासी ।
जो बान्या सो बन रहा, आज्ञा अबिनासी ।। बा० पृ० ४७।।

दरिया के अनुसार भक्ति के लिये मन का निर्मल होना आवश्यक है --

माला फेरे क्या भया, मन फाटे कर मार ।
दरिया मन को फेरिये, जामें बसै बिकार ।।२३।।बा०पृ० २६।।

संत दरिया बिहार वाले

दरिया के अनुसार मानव देह भक्ति का प्रमुख साधन है । मानव जीवन दुर्लभ है, एक बार नष्ट होने पर यह अवसर पुन: नहीं मिलता । जो नर देह को प्राप्त करके भक्ति नहीं करता वह नेत्रहीन कीट बनता है --

मानुख जन्म दुरलभ है भाई फिरि ऐसो नहि दाव ।।द० एक अनु० पृ०१४७।।
सुन्दर नर तव पाइके, भगति ना कीन्ह बिचारि ।
भयो क्रिमी बिनु नैन को, बास बिगिधि संवारि ।।११३।।वही पृ० १७।।

दरियाके अनुसार मानव जीवन मे रहते हुए भक्ति की सिद्धि के लिए जीव को दया और अहिंसा भाव को धारण करते हुए अपने मन को निर्मल और एकाग्र करना चाहिए।

जीव दया और भक्ति के बिना मर कर प्रेत भाव को प्राप्त होता है --

बिना दया औ भक्ति बिनु, मरि मरि होइहों प्रेत ।।४६६।।वही० पृ०१८१

दरिया के अनुसार हिंसा काफिर का लक्षण है और हिंसा करना महान् पाप है। जिसे नाम और यशकी इच्छा हो, उसे हिंसा और पर पीड़न से बचना चाहिए। दरिया के मतानुसार यदि हिंसा करनी है तो अपनी अनिष्टकारिणी वृत्तियों की हिंसा करनी चाहिए, जिससे स्वर्ग की प्राप्ति हो --

बदी को कातल करू भिश्ति पावै ।। द० एक अनु० पृ० १३७-१३८।।

भक्ति की सिद्धि की दृष्टि से भक्त का मन मुकुर निर्मल होना चाहिए --

मकुर मैलि नहि होय, दिलचसमा कहं साफ करू ।

सम घट एकै सोय, महल महरमी होय रहे ।।३०।।वही० पृ० १८।।

दरिया के अनुसार जमशेद के पास एक जादू का प्याला था और सिकन्दर के पास एक जादू का दर्पण था। उस दर्पण और प्याले को सामने रखते ही उनकी दृष्टि सौ योजन तक पहुँच जाती थी। किन्तु जमशेद के प्याले और सिकन्दर के दर्पण से भी श्रेष्ठ दिल का चश्मा है --

कहाँ जाम जमसेद है, कहाँ सिकन्दर ऐन ।

दिल चसमा सम ऊपरे, अबिगति सूझै जैन ।। वही० पृ० ८६।।

दरिया ने भक्त के लिए हृदय की पवित्रता पर विशेष बल दिया है।

दरिया ने साधन भक्ति के अन्तर्गत प्रपत्ति और नवधा भक्ति का वर्णन किया है। दरिया के अनुसार प्रभु के अतिरिक्त अन्य कोई शरण नहीं देता। जो ब्रह्म की शरण मे जाता है वह जगत् के पार हो जाता है --

तुम बिनु सरन राखै कवन ।

भक्त जन सब तुमहि जानत दनुज दानव दवन ।। वही० पृ० ११८।।

तेरी दरस के सुभ घरी ।

धन्य सभाग सोहाग जन को प्रेम मदिल भरी ।

जो जो आए सरन तेरी नाम की गति वरी ।। वही पृ० १२० ।।

दरिया ने नवधा भक्ति का उल्लेख करते हुए कहा है कि नवधा भक्ति को मन में स्थिर करना चाहिए । नवधा भक्ति की साधना सभी करते है, परन्तु मूल भक्ति किसी बिरले को ही प्राप्त होती है --

पचीसईं नवधा भग्ति मन लावै, मनमत ज्ञान नीसदिन गावै ।।वही पृ०४२।।
नौधा भगति सब मनहि बुझावै, मूल भगति बिरला कोइ पावै ।
जौं लगि मूल सब्द नहिं पावै । तौं लगि हंस लोक नहिं आवै ।।वही०पृ०६।

इस प्रकार निर्गुण संतो के अनुसार भक्ति के साधनो में मानव जीवन एक प्रमुख साधन है । यह साधन बार बार प्राप्त नहीं होता । जैन और बौद्ध मतों के समान निर्गुण संतों में तन निन्दा के भाव भी मिलते हैं किन्तु येभाव भगवत्‌भक्ति में सहायक है । भक्ति पथ पर चलने के लिए मानव जीवन मे दया, क्षमा, धृति, अनहंकार, विश्वास, अहिंसा, और सत्य आदि गुणो का होना निर्गुण संतों ने आवश्यक माना है । निर्गुण भक्तों ने साधन भक्ति के अन्तर्गत प्रपत्ति और नवधा भक्ति का भी उल्लेख किया है यद्यपि इनकी नवधा भक्ति के कुछ रूप पौराणिक नवधा भक्ति से भिन्न प्रकार से आते हैं ।

:घ: भक्ति के अनुकूल तत्व

भक्ति स्वय ही परमार्थ साधन है । भक्तो ने भक्ति को कठिन पथ कहा है । भक्ति कठिन पथ इसलिए है कि उसकी सिद्धि के लिये सत्य अहिंसा, दया, क्षमा, आदि गुणो के बिना भक्ति पथ पर चलना कठिन है । वैसे निर्गुण संतों ने नाम जप स्मरण-भक्ति में ही समस्त साधनों का समाहार मान लिया है । दादू के अनुसार ब्रह्म के नाम मे ही समस्त साधन समाहित है -

मेरे साधन सकल नाव निज तोरा ।।दादू का सब्द पृ० ७५।।

भक्ति के लिये अन्य किसी साधन की अपेक्षा नही है, किन्तु फिर भी भक्ति के कुछ ऐसे अनुकूल तत्व है जिनके द्वारा भक्ति शीघ्र प्राप्त होती है। भक्ति के अनुकूल- तत्वो मे गुरु कृपा, ईश्वर-कृपा, सत्संग, प्रेम, सेवा, और भाग्य आदि है ।

भक्ति के साधनों और अनुकूल तत्वो में कोई विशेष अन्तर नहीं है । भक्ति की सिद्धि के लिए भक्ति के साधनों की आवश्यकता है परन्तु ये साधन भक्ति के अनुकूल तत्वों के ऊपर निर्भर हैं । भक्ति के कौन कौन अनुकूल तत्व हैं नीचे निर्गुण संतों के अनुसार इसका उल्लेख किया जा रहा हैं ।

नामदेव :

नामदेव ने भक्ति के अनुकूल तत्वों की दृष्टि से स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है। नामदेव ने अनुकूल तत्वों के गुरु कृपा और सत्संगति का वर्णन किया है। नामदेव के अनुसार परम तत्व के दर्शन गुरु के द्वारा ही होते है --

खेचर भूचर तुलसीमाला गुर परसादी पाइआ।
नामा प्रणवै परम ततु है सतिगुर होइ लखाइआ ।। हि०को०म०स० की देन पृ० २५२।।

पुन., नामदेव के अनुसार भक्त को सत्संगति करनी चाहिए -

कहत नामदेव सन भई साधु, साधु संगत घरना रे ।।५।।

कबीर :

कबीर के अनुसार जप, तप, संयम, शुचि, ध्यान और ज्ञान सभी :कलि के बंदी हैं, किन्तु हरि कृपा से जीव का उद्धार होता है --

जप तप संजम सुचि ध्यान, बंदि परे सब सहित ग्यान।
कहि कबीर उबरे द्वै तीनि, जा परि गोबिंद कृपा कीन्ह ।।३८५।।
क०ग्रं० १ पृ०२१६।।

कबीर के अनुसार गुरु सेवा से भगवद्भक्ति प्राप्त होती है, परन्तु गुरु की प्राप्ति हरि कृपा से ही होती है --

गुर सेवा ते भगति कमाई। तब इह मानस देही पाई ।।कबीर पदावली पृ०६।।
जब गोविन्द कृपा करी, तब गुरु मिलिया आई ।।क०ग्र० १३।पृ० २।।
हरि जी कृपा करै जौ अपनी तौ गुर के सबद कमावहिगे ।।क०ग्र०पृ० २७१।।

कबीर ने गुरू रूप को मूलध्यान, गुरू पाद को मूल पूजा, और गुरू वचन को मूलनाम कहा है। कबीर का यह कथन गुरू गीता से प्रभावित है --

ध्यान मूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूल गुरोः पदम्।
मन्त्र मूल गुरोर्वाक्य मोक्ष मूल गुरोः कृपा।।गु० गीता ५०।।
मूल ध्यान गुरु रूप है मूल पूजा गुरू पांव।
मूल नाम गुरू बचन है, सब मूल सत भाव ।।अखरावती पृ० १०।।

साधु पुरुषों के संग और गुरू उपदेश से भाव भक्ति प्राप्त होती है --

साध संगत गुरूदेव, उहाँ चलि जाइये ।

भाव भक्ति उपदेस, तहाँ ते पाइये ।। शब्दा० भा०२ पृ० १०१।।

सत्सग करने से जीव की बिगड़ी हुई बात बन जाती है --

सतसग लागि रहो रे भाई, तेरी बिगरी बात बनिजाई।।शब्दा०भा०२ पृ०१३।

कबीर के अनुसार साधु पुरुषों की सेवा करनी चाहिए । साधु पुरुषों की सेवा से कोटि प्रकार की व्याधियाँ नष्ट होतीहै, और जीव भवसिन्धु के पार होता है। जीव को राम और सत इन दो की सेवाकरनी चाहिए । राम की सेवा करने से मोक्ष मिलता है और संत की सेवा करने से स्मरण भक्ति प्राप्त होतीहै --

साधु सेवा कर मन मेरे, कोटिन व्याधि हरे ।

कहत कबीर सुनो भाईसाधो, सहज में जीव तरे ।।५।।शब्द०भा०२ पृ० १।।

कबीर सेवा कौ दुइ भले एक सतु इकु रामु ।

राम जु दाता मुकति को संतु जपावै नामु ।।१४६।।क०ग्र० पृ० २६०।।

भक्ति प्रेम परक[1] है अत भक्ति की प्राप्ति के लिए प्रेम आवश्यक है । कबीर के अनुसार प्रेम भक्ति के हिडोले मे झूलने से सब सतो को विश्राम मिलता है --

हिडोलना तहाँ झूले आतम राम ।

प्रेम भगति हिडोलना, सब सतनि कौ विश्राम ।।क० ग्र० पृ० ६४।।

गुरु की कृपा से भक्ति के प्रेम को जयदेव और नामदेव ने जाना था । कबीर के अनुसार यह प्रेम मार्ग कठिन है --

गुरू परसादी जयदेव नामा । भगति के प्रेम इनही है जाना ।क०ग्र० पृ० ३२८।।

पिय कौ मारग कठिन है, खाँडे की धारा ।

डिगमिगैन तौ गिरि पड़े, नहिं उतरै पारा।।२।।शब्दा० भा०२।पृ०६७।

कबीर ने भक्ति के सूक्ष्म मार्ग का उल्लेख करते हुए भक्ति के अनुकूल तत्वो के सबध में कहा है कि भक्ति का मार्ग झीणा है । अत: इस मार्ग के साधक में इच्छा और अनिच्छा नही होनी चाहिए और उसे राम के चरणो मे प्रेम रत रहना चाहिए । जीव का शब्द मे ऐसा प्रेम होना चाहिए जैसा जल और मछली मे होता है । मान को त्याग कर दया, क्षमा और संतोष को ग्रहण करना चाहिए तथा सदैव परमार्थ मे रत रहना चाहिए और संत पुरुषों का सत्संग करते रहना चाहिए --

भक्ती का मारग फीना रे ।
नहिं अचाह नहिं चाहना चरनन लौ लीना रे ।।१।।
साध के सतसँग मैं रहै निस दिन मन मीना रे ।।२।।
सब्द मैं सुर्त ऐसे बसे जैसे जल मीना रे ।।३।।
मानमनी को यौं तजे जस तेली पीना रे ।।४।।
दया छिमा सतोष गहि रहै अति आधीना रे ।।५।।
परमारथ मैं देत सिर कछु बिलँब न कीना रे ।।६।।
कहैं कबीर मतभक्ति का परगट कह दीना रे ।।७।। शब्दा०भा० १पृ०१३।।

कबीर की दृष्टि से भक्ति के अनुकूल तत्वों में भय भी आवश्यक है[1] -

भय बिनु भक्ति न होय ।।६०२।।
भय बिनु भाव न ऊपजै भय बिनु होय न प्रीति ।
जब हृदय से भय गया मिटी सकल रस रीति ।।४२५।। क०व० पृ०

रैदास

रैदास के अनुसार सत्संग बिना भाव उत्पन्न नहीं होता, और भाव बिना भाव-भक्ति नहीं होती --

साधु सगत बिना भाव नहीं ऊपजै, भाव भगति क्यौं होइ तेरी ।।बा०पृ०३७।

भगवत्भक्ति हरिकृपा, गुरु कृपा और सत्संग आदि से मिलती है परन्तु रैदास के मतानुसार राम की भक्ति सरल नहीं है, वह बड़े भाग्यवान् व्यक्ति को ही प्राप्त होती है --

कह रैदास तेरी भगति दूरि है, भाग बड़े सो पावै ।।१६।।बा०पृ० ६।।

नानक

नानक के अनुसार गुरू के बिना भक्ति भाव उत्पन्न नहीं होता,[2] तथा भाग्य और गुरू के बिना सत्सग भी प्राप्त नहीं होता । प्रत्युत गुरू के द्वारा ही भक्ति-भाव प्राप्त होता है, यह नानक ने कई पदों में कहा है --

---

१- भय से भक्ति करै सबै भय से पूजा होय ।
भय पारस है जीव को निर्भय व होय न कोय।।४२६।।
कांचो मन अथिर थिर थिर काज करंत ।
ज्यों ज्यों नर निधड़क फिरत त्यों त्यों बाल हसंत।।क०व० पृ०४३-६१।।

२- माई रे गुर बिन भगति न होइ ।बिनु गुर भगति न पाईये जे लोचै सभु कोइ
गु० ग्रं० सा० पृ० ३१,५८, १४०, १५४

बिनु गुर भगति न भाउ होइ । बिनु गुर संत न संगु देइ ।।३।।
बिनु भागा सतसंगु न पाईऐ करमि मिलै हरिनामु हरि ।।
गुरि मनु मारिओ करि संजोगु । अहिनिसि रावे भगति जोगु ।।
गुरसंत सभा दुखु मिटै रोगु ।जन नानक हरि वरु सहज जोगु ।।४।।
गु० ग्रं० सा० पृ० ११७०-७२।।

गुरू के द्वारा ही चारो युगों में भक्ति उत्पन्न होती है, अन्य किसी मार्ग से भक्ति प्राप्त नही होती -

गुरमुखि भगति जुग चारे होई । होरतु भगति न पाए कोई।।८।।

नानक ने प्रेम को भक्ति का एक आवश्यक अनुकूल तत्व माना है । नानक के अनुसार प्रेम के बिना भक्ति प्राप्त नही होती --

बिणु प्रीति भगति न होवई, विणु सतिगुर न लगै पिआरु ।।पृ० १२८६।।गु०ग्र०

दादू

दादू के अनुसार जब गुरू गोविन्द कृपा करतेहैं, तब भ्रम का आवरण दूर होता है--

दादू पड़दा भरम का रहा सकल घटि छाइ ।।
गुरू गोबिंद किरपा करैं तो सहजैं हीं मिटि जाइ ।।७८।बा० भा० १ पृ० ८

जिस पर हरि की कृपा होती है, वही भाव प्रेम की पूजा करता है । भगवान् भक्त पर कृपा करके, उसमे उमगें उत्पन्न करता है और उसे निर्भय संग देता है --

तहं भाव प्रेम की पूजा होइ, जा परि किरपा जानै सोइ ।
कृपा करि हरि देइ उमंग, तह जन पायौ निर्भै संग ।।४।।बा०पृ० ६७५।
संपा० मंगलदास ।।

दादू के अनुसार सतुगुरु की प्राप्ति होने पर जीव को भक्ति और मुक्ति मिलती है--

सतगुर मिलै तो पाइये, भगति मुकति भंडार ।
दादू सहजै देखिए, साहिब का दीदार ।।५७।।बा० भा० १ पृ० ६।।

और जब संतों से भेंट होती है तब हरि भक्ति उपलब्ध होती है--

साध मिलै तब ऊपजै, हिरदै हरि का भाव ।
दादू संगति साध की, जब हरि करै पसाव ।।१८।।२१।।बा०भा० १ पृ०१५६-१६०

दादू के अनुसार प्रेम की परख प्रत्येक जीव को नहीं होती और जब तक प्रेम की परख नहीं होती तब तक वेद और पुराणों के पढ़ने सेकुछ नहीं होता -

दादू पाती प्रेम की, बिरला बाँचै कोइ ।

बेद पुरान पुस्तक पढ़ै, प्रेम बिना क्या होइ ।।११६ ।।बा०भा०१ पृ० ४

सुन्दरदास .

सुन्दर ने भक्ति के अनुकूल तत्वों में सप्रथम स्थान गुरु को दियाहै। सुन्दर के अनुसार गुरु स्वयं ही भक्तिमय, भजनमय और प्रेममय हैं। गुरुकृपा से ही प्रेम की वृद्धि और स्मरण-भक्ति सम्भव है। गुरु के बिना भक्ति का ज्ञान असम्भव है --

सुन्दर सद्गुरु भक्तिमय भजनमई भजि राम।

सुखमय रसमय अमृतमय प्रेम माहिं बिश्राम ।।६३।।सुं०ग्रं० पृ० ६७४।।

गुरु बिन ज्ञान नाहिं गुरु बिन ध्यान नाहिं, गुरु बिन आत्मा बिचार न लहतु है।

गुरु बिन प्रेम नाहिं गुरु बिन प्रीति नाहि,गुरु बिन सीलहू संतोष न गहतु है।१५।

गुरु के प्रसाद प्रेम प्रीति हू अधिक बाढ़ै,गुरु के प्रसाद राम नाम गुन गाइये ।१७।।

सुं० ग्रं० पृ० ३८६ ।।

नारद भक्ति के सूत्रमें यह कहा गया है कि महापुरुषों का संग दुर्लभ, अगम और अमोघ है। यह महापुरुषों का सत्संग ईश्वर की कृपासे ही प्राप्त होता है, क्योंकि भगवान् मे और उनके भक्त में भेद का अभाव है ---

महत्संगस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च ।।३९।।

लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव ।।४०।।

तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात् ।।४१।।ना०भ०सू०

नारद भक्ति सूत्र के अनुरूप ही सुन्दर ने कहा है --

राज साज सब होत है मन बंछित हू पाई ।

सुन्दर दुर्लभ संतजन बड़े भाग ते पाइ ।।२५।।सुं०ग्रं० पृ० ७४३।।

संतों की सेवा किये श्रीपति होहि प्रसन्न ।

सुन्दर भिन्न न जानिये हरि अरु हरि के जन्न ।।४७।।

सुन्दर हरि जन एकहैं भिन्न भाव कछु नाहिं ।

संतनि माहे हरि बसै संत बसै हरि माहिं ।।४८।।सुं०ग्रं०पृ० ७४४।।

सुन्दर के अनुसार भक्ति का विवाह सन्तों के साथ किया गया है। सत्संग से निर्गुण भक्ति उत्पन्न होती है और परब्रह्म में प्रेम उत्पन्न होकर जगत् में से विरक्ति होती है --

भक्ति बिवाही सन्तजन, माया दासी संग।
जुवती सौं निशिदिन रचैं, दासी सौं नहिं रंग ।।७।। सुं०ग्रं० पृ०६६०।।
जन सुन्दर सतसंग तै उपजै निर्गुन भक्ति।
प्रीति लगै परब्रह्म सौं तब तें होइ विरक्ति ।।१६।।वही पृ० ७४३।।

जगजीवन साहब :

जगजीवन साहब के अनुसार भगवत् कृपा केबिना भक्ति प्राप्त नही होती[1]। ईश्वर भक्ति का मिलना कठिन है, जव प्रभु की कृपा होती है तब ही वह प्राप्त होती है --

साधौ बिना किरपा भक्ति न होय।
रात दिन जो करै बंदगी, कबूल परै नहिं सोय ।।१।।बा०भा०१ पृ०१०५।
साँईं कठिन भक्ति है तेरी।
जिन काहू का सुमिरन आवा, जब किरपा भै तेरी ।।१।।बा०भा०१ पृ०३७।।

ब्रह्म की जिस पर कृपा होती है उसका वह संरक्षण भी करते है --

भा निबाहि बाँह गहि राख्यौ, किरपा जा पर होई।
जगजीवन न्यारे सबहीतें, जानै अंत न कोई ।।१।। बा०भा०२ पृ०१२० २१

और वह उसे दर्शन भी देते हैं -

जा पर भयौ राम दयाल।
दरस दै कर्म मेटि डार्‌यौ, तुरत कीन्ह निहाल ।।१ बा०भा०२पृ०१२०।।

जगजीवन के अनुसार गुरू कृपामात्र से किसी किसी जीव का उद्धार हो जाता है और जिस पर गुरू कृपा होती है वही भक्त कहलाता है -

कोइ कोइ उबरे गुरूकिरपा तें, जुक्ति माग तें पाई।
जगजीवन गृह ग्राम भवन सम चरन रहे लपटाई ।।६।।बा०भा०२ पृ०६१।

१- प्रभु बिन किरपा भक्ति न होय।
कर्म अघनतेहि मेटि डार्‌यौ मत्र सिखयौ सोय ।।१।।बा०भा०१ पृ० ६।।

सतगुरू पारस जेहिँ काँ बेधा, मन का मैल गा धोई ।

जगजीवन ते भक्त कहाये, सूरति बिलग न होई ।।१०।।बा०भा०२ पृ०३२।।

जगजीवन के अनुसार मानवदेह भक्ति का साधन है, किन्तु यह साधन बड़े भाग्य से प्राप्त होता है --

भाग बड़ नरदेह पायो, समुझि नहिँ मन आनि ।

अंत फिर पछिताइहौ, जब होइ तन की हानि ।।२।।बा०भा०२।पृ०३४।।

जिनका भाग्य होता है वह ब्रह्म के साथ रहते हैं -

एक समय जब मुरली बजायो, सब सुनि मोहि रह्यो रे ।

जिनके भाग भये पूर्बज के, ते वहि संग रह्यो रे ।।१।।भा०२ पृ० ८५।।

मूलकदास

मूलकदास के अनुसार जब ब्रह्म की कृपा होती है तब जीव को ब्रह्म अच्छा लगने लगता है --

कहता मूलककिसी मुल्क में बचाव नही ।

अब कीजे किरपा तब मेरे मन भावेगा ।।६।४।बा०पृ० ३०।।

और उनके अनुसार संतो के साथ सेवा करने से भक्ति प्राप्त होती है --

राम राम असरन सरन, मोहिँ आपन करि लेहु।

संतन संग सेवा करौ, भक्ति मजूरी देहु ।।२५।।बा०पृ० ३३-३४ ।।

मूलक के अनुसार भक्त को संतो की सेवा करनी चाहिए, पत्थर की पूजा करके मन को भ्रम में नहीं डालना चाहिए --

संतन की सेवा चित लावै । पाहन पूजि न मन भरमावै ।।४।।बा०पृ०१७।।

मूलकदास ने भक्ति के अनुकूल तत्वों मे भाग्य का भी उल्लेख किया है ।मूलक के अनुसार बड़े भाग्य से आत्मा जागता है --

बड़े भाग से आतम जागा । कहत मूलक सकल भ्रम भागा ।।१४।बा० पृ० १८।।

दरियासाहब मारवाड़ वाले :

दरिया के मतानुसार गुरू के बिना तत्व नाम का भेद प्राप्त नही होता -

साध कह्यो भगवंत कह्यो, कहे ग्रंथ और बेद ।

दरिया लहे न गुरू बिना, तत्व नाम का भेद ।।१।।बा० पृ० २२।।

दरिया ने कबीर के अनुसार ब्रह्म की भक्ति देने वालों और सब को नाम :स्मरण-

भक्ति का देने वाला कहा है --

दरिया साँचा राम है, फिर साँचा है संत ।

वह तो दाता मुक्ति का, वह मुख नाम कहत ।।२२।।बा० पृ० २५।।

दरियादास बिहार वाले :

दरिया के कथनानुसार ब्रह्म जब जीव पर कृपा करता है, तब वह सुखसागर प्राप्त करता है -

कृपावंत किरपा जब कीन्हा । दयासिंधु सुख सागर दीन्हा ।।द०सा० पृ० १

दरिया ने भक्ति के अनुकूल तत्वों मे ज्ञान, प्रेम, सत्संग और गुरु सेवा का उल्लेख किया है ---

निर्मल ज्ञान बिचारहु, भक्ति करहु लवलाय ।

सत सरन सतगुरु सेवा, आवागमन मेटाय ।।द० एक अनु० पृ० ५६।।

दरिया के अनुसार प्रेमके बिना भक्ति विवेक नहीं होता -

बिना प्रेम नाहि भक्ति बिबेखा, होए प्रेम रह गुर गमि पेखा।।वही पृ०५७

बिना प्रेम के पथ नहीं है, पंथ प्रेम के पास है, और बिना गुरु के ब्रह्म का दर्शन नही होता -

बिना प्रेम नहिं पंथ है, पथ प्रेम के पास ।

बिनु सतगुरु नहि दर्स है, का कहि कथै उदास ।।वही पृ० १८१।।

अन्य संतो की भाँति दरिया ने भी प्रेम को कठिन मार्ग कहा है -

प्रेम मारग बांको बड़ो, समुझि चढ़ै कोई जानि ।

ज्यो खाडो की धार है, सतगुर कहा बखानि ।।वही पृ० ४३।।

कबीर ने भय को प्रेमा भक्ति का अनुकूल तत्व माना है किन्तु दरिया ने प्रेम पंथ को भय रहित कहा है -

अति सोभा सुख सार, प्रेम पंथ भय रहित है। वही पृ० ६।।

इस प्रकार निर्गुण सन्तो ने भक्ति के अनुकूल तत्वों में हरि कृपा और गुरु कृपा को प्रमुख स्थान दिया है। इन संतो के अनुसार सत्संग, सेवा, प्रेम और भाग्य भक्ति की प्राप्ति के लिए आवश्यक है। भक्ति के अनुकूल तत्वो की दृष्टि से निर्गुण संतों में परस्पर कोई विशेष मतभेद नहीं है। निर्गुण संतो मे, भक्ति के अनुकूल तत्व भय के सम्बन्ध में कुछ मतभेद है। कबीर ने भय को भक्ति का अनुकूल तत्व माना है किन्तु दरिया ने प्रेमाभक्ति को भयरहित कहा है।

:ड ' भक्ति के अन्तराय

भक्ति ग्रन्थों में जहा भक्ति के साधन और उसके अनुकूल तत्वों का उल्लेख हुआ है, वहाँ उनमें भक्ति के अन्तरायों का भी वर्णन हुआ है। भक्ति ग्रन्थों के अनुरूप ही निर्गुण सन्तों ने भी भक्ति के अन्तरायों की ओर संकेत किया है। नीचे निर्गुण सतों के अनुसार भक्ति के प्रमुख अन्तरायों का वर्णन किया जा रहा है।

नामदेव

नामदेव ने भक्ति के अन्तरायों में कपट, गर्व, काम, क्रोध, निन्दा, परधनहरण और परदाराहरण का उल्लेख किया है।

नामदेव के अनुसार भक्त में कपट नहीं होना चाहिए -

छोड़ि छोड़ि रे पाखंडी मन कपटु न कीजै।

हरि का नामु नित नितहि लीजै ।।हि० को० म० स० की देन पृ० २५३।।

नामदेव के अनुसार भक्त में कपट के साथ साथ गर्व का भी अभाव होना चाहिए। मनुष्य को गर्व नहीं करना चाहिए क्योंकि एक दिन यह मिथ्या देह नष्ट हो जायगी। मानव को धन, रूप और यौवन के कारण भी अहंकार नहीं करना चाहिए -

हमरो करता रामु सनेही।

काहे रे नर गरबु करतहु, बिनसि जाई झूठी देही ।।वही पृ० २४५।।

धन जोबन रूप कारण, न कर गर्व गव्हार रे ।।२।। वही पृ० २६६।।

पुन: उनके मतानुसार भक्त को विषयों में आसक्त नहीं होना चाहिए। उसे माया से विमुख रह कर, काम क्रोध और तृष्णा से बचना चाहिए, क्योंकि ये जीव को जलाते है -

काए रे मन बिखिआ बन जाई। भूलौ रे ठग मूरी खाई ।।

जैसे मीनु पानी महि रहै। काल जाल की सुधि नही लहै ।।

जिह्वा सुआदी लीलित लोह। ऐसे कनिक कामनी बधिउ मोह ।।

जिउ मधुमाखी संचै अपार। मधुलीनो मुखि दीनी छारु ।।

गउ बाछ कउ संचै खीरु। गला बाधि दुहि लेइ अहीरु ।।

माइआ कारन स्रमु अति करै। सो माइआ लै गाडै धरै ।।

अति संचै समझै नही मूड। धनु धरती तनु होइ गइउ धूडि।।

काम क्रोध त्रिसना अति जरै।साध सगति कबहु नहि करै।।

कहत नामदेउ ताचा आनि।निरभै होइ भजीऐ भगवान।।वही पृ०२६१।।

तथा जो मनुष्य परधन और परदारा मे आसक्त नही होता, उसके निकट नरहरि निवास करते है -

परधन परदारा परहरि । ताके निकटि बसै नरहरि ।।वही पृ० २५५।

नामदेव के अनुसार वादविवाद भी भक्ति का अन्तराय है -

वादु विवादु काहू सिउ न कीजै । रसना राम रसाइनु पीजै ।।२।।

स०का० पृ० १४९।।

कबीर

कबीरदास के अनुसार काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, अहंकार, आडम्बर, हिंसा, तृष्णा, विषय वासना, असन्तोष, भ्रम, स्वार्थ, अज्ञान, तर्क, छल, लालच, माया, स्त्री और कुसंगति आदि भक्ति के अन्तराय है ।[1]

कबीर के अनुसार भक्त में साम्य भाव होना चाहिए । मनुष्य मे जब तक ऊच नीच असमानता का भाव रहता है तब तक वह नाना भ्रमों मे भूला रहता है । वह जब मै और मेरे पन के भाव को छोड़ देता है तब उसमे और राम में कोई अन्तर नही रहता, और तब राम स्वय जीव की सहायतार्थ प्रकट होते हैं -

जब लग ऊच नीच करि जाना, ते पसुवा भूले भ्रम नाना ।

कहि कबीर मै मेरी खोई, तबहि राम अवर नहि कोई ।।६६।।क०ग्र०पृ०२०५, १०९।

जब लग मेरी मेरी करै । तब लग काज एक न सरै ।

जबमेरी मेरी मिटी जाई । तब प्रभु काज सवारहि आई ।।वही पृ०२८७।।

कबीर के अनुसार काम भक्ति का मुख्य अन्तराय है । कबीर के मतानुसार मन की कल्पनाओ का नाम ही काम है[2] -

काम काम सब कोई कहै काम न चीन्है कोय ।

जेती मनकी कल्पना काम कहावै सोय ।।४९०।।क०व० पृ० ४९।।

१- क० ग्रं० पृ० ४३,४१,५,६,९,१०,२५,२७,२८,३०,३३,३४,३५,३६,३८,६८,७७,८२, ८३,३२,५५,१४९,१५५, १५६, ; क०व० पृ० १०,२३,४५,४६,६३ ।

२- इच्छामनोभवौ कामौ अमरकोश पृ० ११९ : बृहदारण्यक वार्तिकसार भा०२अ०४ प्रा० ४ पृ०२२९

जहाँ काम रहता है, वहाँ भगवद्भक्ति का अभाव रहता है। काम और भगवद्-नाम रवि और रजनी की भाँति एक साथ नही रह सकते -

जहाँ काम तहँ नाम नहि, जहाँ नाम नहि काम।

दोनो कबहूँ ना मिलै रबिरजनी इक ठाम[1] ।। ४८८ ।।क०व० पृ०४६।।

काम जहाँ भक्ति का अन्तराय है वहाँ वह परमार्थ साधन है। कामसूक्त मे काम को परमार्थ साधन के रूप मे उल्लेख किया गया है। गीता मे ब्रह्म को प्रजा उत्पन्न करने वाला और धर्म के अविरुद्ध काम कहा गया है[2] --

प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणमस्त्रि वासुकिः ।।१०।२८।।

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ।७।११।

इसी के अनुरूप कबीर ने भी कहा है --

काम मिलावै रांम कूं जे कोई जाणै राषि।

कबीर बिचारा क्या करै, जाकी सुखदेव बोलै साषि।।क०ग्रं०११।पृ०५१।।

गीता में यह कहा गया है कि काम से क्रोध और क्रोध से मोह उत्पन्न होता है २।६२-६३ । कबीर ने काम के साथ क्रोध का उल्लेख करते हुए यह कहा है कि कामी क्रोधी और लालची इनसे भक्ति सिद्ध नहीं होती-

कामी क्रोधी लालची इनसे भक्ति न होय।

भक्ति करै कोइ सूरमा जाति बरन कुल खोय ।। २८६।क०व० पृ० ०४६।।

कबीर के अनुसार मोह भी भक्त के लिए बाधक है क्योंकि जो व्यक्ति मोह में फँस गया उसका जगत् से उद्धार होना कठिन है --

मोह फंद सब फाँदिया कोइ न सकै निरबार।

कोइ साधु जन पारखी बिरला तत्व बिचार ।।५०।।वही पृ० ५०।।

कबीर के अनुसार जैसे कामी, क्रोधी, और लालची को भक्ति प्राप्त नही होती वैसे ही लोभी को भी प्राप्त नहीं होती-

---

१- कुछ अन्तर के साथ इसी भाव का एक पद शब्दावली में भी मिलता है --

काम बलवान तहँ नाम कहँ पाइये, नाम जहँ होय तहँ काम नाहीं।

शब्दा० भा० १ पृ० ६१।।

२- तैत्ति० ब्रा० २।२५।६

जब मन लागै लोभ सौ गया विषय में सोय ।

कहै कबीर विचारि के कस भक्ती धन होय ।।४९७।।क०व० पृ०५०।।

तेरा जन एक आध है कोई ।

काम क्रोध अरु लोभ विवर्जित,हरिपद चीन्हें सोई ।।क०ग्र० पृ०१५०।।

कबीर के अनुसार स्त्री भी भक्ति मार्ग में बाधक है। वह मनुष्य के तीनों ही सुखों को नष्ट कर देती है --

नारि नसावें तीनि सुख, जा नर पासैं होइ ।

भगति मुकति निज ग्यान मे, पैसिन सकई कोइ ।।१०।क०ग्रं० पृ० ४०।।

कबीर की दृष्टि से स्त्री बाघिनी है जो सभी मनुष्यों को भ्रष्ट करती है --

नैनों काजर लाइकै, गाढ़े बाँधे केस ।

हाथो मेंहदी लाइकै, बाघिनी खाया देस ।।

स्त्री भक्ति मार्ग मे अन्तराय है, अत: कबीर ने नाथ[1] और सिद्धो के समान स्त्रियों की अत्यधिक निन्दा की है[2]। महाभारत १३।४०।४-५ मे स्त्रियों को प्रज्वलित अग्नि, माया, उस्तरे की धार, विषऔर सर्प कहा गया है। इसी के अनुरूप कबीर ने भी स्त्री को पापिनी, भवकूप, फंदा, माया, बिष, दुर्गम घाटी, नर्ककुंड, अग्निलपट, विषफल, असत्य, सूली से भी अधिक तीक्ष्ण और अपवित्र कहा है[3]।

कबीर ने स्त्री को माया रूप माना है। कबीर के मतानुसार माया भी भक्ति मार्ग का एक प्रमुख अन्तराय है। माया का प्रभाव सर्वव्याप्त है। ब्रह्मा, बिष्णु भी माया के फंदे मे आबद्ध हैं। सुर नर मुनि सभी माया में फँसेहुए है। मीठी मीठी माया छोड़ी नहीं जाती, यह डाइन नित्यप्रति जीव को नाच नचाती है --

मायामन की मोहिनी, सुर नर रहे लुभाइ ।

इनि माया जग खाइया, माया कौं कोई न खाइ ।।२६।पद पाठ क०ग्र०३४।।

मीठी मीठी माया तजी न जाई,अग्यांनीं पुरिष कौं भोलि भोलि खाई।

वही पृ०१६६।

१- गोरखबाणी पृ० ३५,७७,७८ ।

२- क० ग्रं० पृ० ५५,१९५,१९७,२६२,२८०,२९५,२९६,३१४ ।।

३- क० ग्रं० पृ० ११६, १५१, १६६, ३५, ३४, ३३ ।।

माया जीव को राम से विमुख करती है और वह भक्ति में बाधक है --

कबीर माया पापणी, हरि सू करै हराम ।

मुखि कड़ियाली कुमति की, कहण न देई राम ।।४।। क०ग्रं० पृ०३२।।

कबीर के अनुसार कपट,अभिमान, त्रिष्णा और शंका भक्ति की प्राप्ति मे अंतराय है --

च्यंत तौ माधौ च्यंतामणि हरिपद रमैं उदासा ।

त्रिस्ना अरु अभिमांन रहित है, कहै कबीर सो दासा ।।१८४।।
क०ग्रं० पृ० १५०।।

अजहू न संक्या गई तुम्हारी,नांहि निसंक मिले बनवारी ।।

बहुत गरब गरबे सन्यासी, ब्रह्मचरित छूटी नही पासी।।१८२।।क०ग्रं० पृ०१४६।।

छाडि कपट भजौ रांम राई । कहै कबीर तिहू लोक बड़ाई ।।२३३। पृ०१६७।।

मान भी भक्त के लिए मार्ग में बाधक है । मान की अपेक्षा माया को छोड़ना सरल है। मान में बडे बड़े मुनि तक गल गए यह मान सबको खाता है -

माया तजी तौ का भया, मानि तजी नहीं जाइ ।

मानि बड़े मुनियर गिले, मानि सबनि कौ खाइ ।।१७।।क०ग्रं०पृ०३४,२५७।।

कबीर ने भक्त केलिए तर्क अथवा वाद विवाद को वर्जित माना है --

सर्वं भूत एकै करि जान्या चूके बाद बिबादा ।

कहि कबीर मैं पूरा पाया भये राम परसादा ।। १०० ।।क०ग्रं०पृ०२६४।।

नारद भक्ति सूत्र के अनुसार कुसंगति सदैव त्याज्य है --

दु:संगा सर्वथैव त्याज्य ` ।।४३।।

भागवत :३।३१।३२-३३-३४. के अनुसार दुष्ट मनुष्यों का संग कभी नहीं करना चाहिए । नारदपांचरात्र के मत से अभक्तों का स्पर्श, दर्शन, वार्तालाप सदैव त्याज्य है । अभक्तों के साथ शयन भोजन करने सेपाप लगता है । दुष्टो का संग विषधर सर्प के समान है 'ना०पां०रा० २।२।६। इन मतों के अनुसार कबीर ने भी कुसंगति को भक्ति का प्रधान अन्तराय माना है । कबीर के अनुसार मूर्ख व्यक्तियो का सग त्याज्य है तथा कुसंगति काल रूप है --

मूरिष संग न कीजिए लोहा जलि न तिराइ ।

कदली सीप भवंग मुषी, एक बूंद तिहुँ भाइ ।।२।।

मारी मरूं कुसंग की, केला काठै बेरि ।

वो हालै वो चीरिए, साषित संग न बेरि ।।४।।क०ग्रं०पृ० ४७।।

मेर नीसाणीं मीच की, कुसगति ही काल ।

कबीर कहै रे प्राणिया बाणीं ब्रह्म सँमाल ।।५।। वही पृ० ४८।।

रैदास

भक्ति के अन्तरायों की दृष्टि से रैदास ने आपा, बड़ाई, ऋद्धि, सिद्धि, चचलता संशय, तर्क, काम, क्रोध, लोभ, मद और माया का उल्लेख किया है[1]।

रैदास के अनुसार आपा, ऋद्धि सिद्धि और प्रशंसा भक्ति के अन्तराय हैं, इनके समाप्त होने पर भक्ति की प्राप्ति होती है --

आपा खोय भगति होत है, तब रहै अंतर उरझाई ।।७।। बा० पृ०५।।

भगति ऐसी सुनहु रे भाई । आइ भगति तब गई बड़ाई ।।बा० पृ० ६।।

आपो गयो तब भगति पाई ऐसी भगति भाई ।

राम मिल्यो आपोगुन खोयो रिधि सिधि सबै गँवाई ।।७।। बा० पृ०१३।।

रैदास के अनुसार भक्ति मार्ग में अहंकार बड़ा भारी बाधक है[2]। अहंकार को भक्ति का अन्तराय मानते हुए रैदास ने कहा है--

अति अहंकार उर माँ सत रज तम, ता मैं रह्यो उरझाई ।

कर्मन बंधि परयो कछू नहिं सूझै, स्वामी नाँव भुलाई ।।१।। बा०पृ०४।।

रैदासके अनुसार जिस व्यक्ति की बुद्धि चंचल होती है और जिसमें संयम काम, क्रोध, लोभ, मद, माया, मोह और तर्क होता है वहप्रभु की भक्ति नहीं कर सकता -

नरहरि चंचल है मति मेरी । कैसे भगति करूँ मैं तेरी ।।बा० पृ० ७।।

राम बिन संसय गाँठि न छूटै ।

काम किरोध लोभ मद माया, इन पचन मिलि लूटै ।।

रैदास राति न सोइये, दिवस न करिये स्वाद ।

अहनिसि हरिजी सुमिरिये, छाडि सकल प्रतिबाद ।।६।। पृ० १ ।।

काम बस मोहिहो करम फंदा ।

सक्ति सबंध कियो ज्ञान पद हरि लियो, हृदय बिस्वरूप तजि भयो अंधा ।।
बा० पृ० ३७।।

भगति चितऊँ तो मोह दुख व्यापही ।

मोह चितऊँ तो मेरी भगति जाई ।।बा० पृ० ३७।।

१- रैदास की बानी ' पृ० १२-१३-१५-२२ ।

२- राम लव् एण्ड ड्विोशन्' पी अनन्त कृष्णाव अय्यर पृ० ५१।।

नानक :

नानक के अनुसार काम, क्रोध, परनिंदा, लोभ, भ्रम, पाखंड,माया और स्त्री आदि भक्ति के अन्तराय है --

काम क्रोधु परहरु परनिंदा । लबु लोभु तजि होहु निचिंदा ।।
भ्रम का संगलु तोडि निराला हरि अंतरि हरि रसु पाइआ ।।१।।
गु० ग्र० सा० पृ० १०४१।।

परिहरि निंदा हरि भगति जागु ।हरि भगति सुहावी करमि भागु।।३।
वही पृ० ११७०।।

पाखंडी प्रेमु न पाईऐ खोटा पाजु खुआरु ।।१। म० १ पृ० ५४।।
माइआ मोहि सगल जगु छाइआ ।कामणि देखि कामि लोभाइआ।।
सुत कंचन सिउ हेतु बधाइआ । सभु किछु अपना इकु रामु पराइआ।१।
गु० ग्र० सा० पृ० १३४२।।

दादू :

दादू ने गर्व, आपा, मान प्रसिद्धि का भाव, इन्द्रियलम्पटता, चंचलता,काम, स्त्री, पाखंड, माया और चिंता को भक्ति मार्ग में बाधक माना है।

दादू के अनुसार जीव को गर्व नहीं करना चाहिए । गर्व से जीव का विनाश होता है और वह नरक में पड़ता है । गर्व से न भक्ति प्राप्त होती है और न ब्रह्म का साक्षात्कार ---

गरब न कीजिये रे, गरबै होइ बिनास ।
गरबैं गोविन्द ना मिलै, गरबैं नरकनिवास।।
गरबैं भाव न ऊपजै, गरबैं भगति न होइ ।
गरबैं पिव क्यों पाइये, गरब करै जिनि कोइ ।।३।।बा०भा०२ पृ०१६।।

आपा भक्ति का अन्तराय है । अत भक्त को आपा मिटाकर हरिभजन करना चाहिए --

आपा मेटै हरि भजै, तन मन तजै बिकार ।
निरबैरी सब जीव सौं, दादू यह मत सार ।।बा० भा०२ पृ० २४।।

जिस भक्त मे अपनी भक्ति प्रसिद्धि का भाव विद्यमान रहता है उसे राम भक्ति ~~मन-जन~~ अच्छी नहीं लगती --

राम भक्ति भावै नही, अपनी भगति का भाव ।। बा० पृ०२६४ स०[1] मंगलदास

और जो इन्द्रियो के आधीन है, तथा जिसका मन स्थिर नहीं है उसे भी राम की भक्ति का ज्ञान नहीं होता -

भगति न जाणै राम की, इंद्री के आधीन ।

दादू बध्या स्वाद सौं, ताथैं नाँव न लीन्ह।।६१।बा० भा०१ पृ० १४०।

यह मन अपना थिर नहीं, करि नहिं जाणै कोइ ।

दादू निर्मल देव की, सेवा क्यौं करि होइ ।।बा० भा०१ पृ०१११

काम भक्ति का एक मुख्य अन्तराय है। जैसे हाथी काम के वश में रहता है ऐसे ही जीव कामासक्त होकर काम के फंदे से नहीं निकल सकता -

जैसैं कुंजर काम बस, आप बंधाणा आइ ।

ऐसैं दादू हम भये क्यौं करि निकस्या जाइ ।।३४।।बा०भा०१ पृ०११६।।

काम शरीर के अन्दर रहने वाला चोर है जो तत्व वस्तु का हरण करके ले जाता है --

दादू. काम कठिन घटि चोर है, घर फौड़ै दिन रात ।

सोवत साह न जागई, तत बस्त ले जात ।।५३।।बा०भा०१ पृ०१२१।।

तन भक्ति का साधन है किन्तु यह काम के द्वारा जरजर हो जाता है --

ज्यौं घुन लागै काठ कौं लौहै लागै काट ।

काम किया घट जाजरा, दादू बारह बाट ।।५५।।बा०भा०१ पृ०१२१।।

स्त्री काम रूप है। अत. दादू के अनुसार स्त्री भक्ति मार्ग में बाधक है। जो व्यक्ति कामिनी को त्याग देता है वह जन्ममरण के चक्र से छूटकर ब्रह्म के पास रहता है --

जे नर कामिनि परिहरैं, ते छूटैं गर्भ बास ।

दादू ऊँधे मुख नहीं, रहैं निरंजन पास ।।१०६।।बा०भा०१ पृ०१२६।।

१- जैसें मरकट जीभ रस, आप बँधाणा अंध ।

ऐसैं दादू हम भये, क्यौंकरि छूटै फंध ।।३५।।बा०भा०१ पृ० ११६।।

दादू के अनुसार जिस भक्त मे पाखण्ड होता है, वह ब्रह्म को प्राप्त नहीं कर सकता-

दादू पाखड पीव न पाइये, जे अतरि साच न होइ ।
ऊपरि थैं क्यौंही रहौ, भीतर के मल धोइ ।। १६१। मा० १पृ० १४६

और जिसमें चिंता व्याप्त रहती है वह भक्त नष्ट होता है --

'दादू च्यंता कीयाँ कुछ नहीं, च्यंता जिव कूँ खाइ ।
हूणा था सो ह्वै रह्या, जाणा है सो जाइ ।। १४। बा०मा०१ पृ०१८६।

दादू के अनुसार माया जीव को बन्धन मे डालती है । मन हाथी है और माया हस्तिनी है तथा संसार सघन बन है जिसमे मूर्ख जीव निर्भय होकर रहता है ---

मन हस्ती माया हस्तिनी, सघन बन ससार ।
तामैं निर्भय ह्वै रह्या, दादू मुग्ध गँवार ।।५२।।मा०१ बा०पृ०१२१।

दादू के अनुसार कुसगति भी भक्ति का अन्तराय है । कुसगति माता पिता आदि किसी की भी क्यों न हो, वह सब की त्याज्य है -

दादू कुसंगति सब परहरि, माता पिता कुल कोइ ।। १०६।। पृ०३०८
सपा० मंगलदास ।।

सुन्दरदास

सुन्दर के मतानुसार काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, स्त्री, माया, इन्द्रिय-विषय, तर्क, हिंसा, गर्व, छल और तृष्णा आदि भक्ति के अन्तराय हैं ।

सुन्दर के अनुसार काम क्रोध, लोभ, मोह, इन्द्रियविषय मद मत्सर अहंकार, आशा, तृष्णा आदि शत्रुओं को नष्ट करके ही भक्त निश्चिन्त हो सकता है --

मारे काम क्रोध जिनि लोभ मोह पीसि डारे,
इन्द्री हू कतल करि कीयौ रजपूतौ है ।
मार्‍यौ मयमत्त मन मार्‍यौ अहंकार मीर,
मारे मद मच्छर उ ऐसौ रन रुतौ है ।।
मारी आसा तृष्णा सोऊ पापिनी सापिनी दोऊ
सब कौं प्रहारि निज पदई पहूंतौ है ।
सुन्दर कहत ऐसो साधु कोऊ सूरबीर,
बैरी सब मारि के निचिन्त होइ सूतौ है ।। ११। सुं०ग्रं० पृ०४८८-४८६।।

अमूल्य मनुष्य देह प्राप्त करके, मानव को यह विचार करना चाहिए कि काम, क्रोध लोभ और मोह इत्यादि ने दसों दिशाओं में लूट मचा रखी है --

पाई अमोलिक देह इहै नर क्यों न बिचार करैदिल अन्दर ।

काम हु क्रोध हु लोभ हु मोह हु लूटत हैं दस हूँदिसि द्वन्दर ।।वही पृ० ४०१।।

सुन्दर के अनुसार स्त्री, कामिनी, विष की बेल, नर्क कुण्ड, मानव को फंसाने वाली सघन बन, निन्दनीय और विकारयुक्त है --

नारी बिष बेलि बटी नख शिख देखिय ।।२

सुन्दर कहत नारी नरक को कुंड यह, नरक में जाइ परै सो नरक पाती है ।३।

सुन्दर कहत नारी नख शिख निंद रूप ताहि जे सराहैं तेतौ बड़ै गवार है।।४।।

पृ० ४३८-३६।।

सुन्दर ने माया का भी भक्ति के अन्तराय के रूप मे उल्लेख किया है । सुन्दर के अनुसार माया के माथे पर श्रृंग नहीं होते । माया भ्रम रूप है --

भ्रम जब भयौ तब माया ऐसौ नाम धर्यौ

भ्रम के गये तें एक ब्रह्म सरबंग है ।

सुन्दर कहत याकी दृष्टि ही कौ फेर भयौ

ब्रह्म अरु माया के तौ माथे नहि श्रृंग है ।।२३।।वही पृ० ६५२।।

जगजीवनदास :

जगजीवन दास के अनुसार तर्क, गर्व, कुसंगति, आदि भक्ति के अन्तराय हैं । अतएव भक्तको इनसे पृथक रहना चाहिए -

साधौ करै बिबाद नहि कोई ।

अपने मते मंत्र महँ लागहु, भजत रहु मन सोई ।।१।।

यहि जग महँ बंदे गरीब ह्वै रहना ।

साँई तें चित लाउ रे बंदे । तजि दे गर्ब गुमाना ।।१।।

तजहु बिषाद कुसंगति सबके, कठिन अहै यह धारा ।

सत्तनाम के बेड़ा बाँधहु, उतरन को भव पारा ।।२।। बा० मा० १पृ० ६८-६६।।

मलूकदास :

मलूक के अनुसार प्रपंच, आशा, तृष्णा, कपट, क्रोध, माया, काम, कनक, कामिनी, इन्द्रिय विषय, तर्क और गर्व आदि भक्ति मार्ग में बाधक है --

माया काली नागिनी, जिन डसिया सब ससार हो ।

क्या प्रपंच यह पच रचा ।

आसा तृष्ना सब घट व्यापी, मुनि गधर्व कोई न बचा ।।२।१।।

कपट की माला लिये, छापा मुद्रा तिलक दिये ।

बगल में पोथी दाबे, लायो फरफदगी ।।२।।

क्रोध तो काला नाग है, काम तो परघट काल ।

आप आपको खैंचते, मोहिं कर डाला बेहाल हो ।।२।१।

एक कनक और कामिनी, यह दोनो बटयार ।

मिसरी की छुरी गर लायके, इन मारा सब ससार हो ।।२।२।।

इन्द्री खाय गई जग सारा ।

निसदिन चरा करे बन काया । कोई न हाँक न हारा ।।३।१। बा०पृ०९-१०-११-१२

आपा मेटि न हरि भजे, तेई नर डूबे ।१।

गर्ब न कीजे बावरे, हरि गर्ब प्रहारी ।

गर्बहिं तें रावन गया, पाया दुख भारी ।।१।।

जरन खुदी रघुनाथ के, मन नाहिं सोहाती ।

जाके जिय अभिमान है, ताकी तोरत छाती ।।२।।बा० पृ०१८।।

मलूकबाद न कीजिए, क्रोधैं देव बहाय ।।५६।। पृ०३७-३८।।

मलूक ने कबीर की भाँति यह भी कहा है कि काम भक्ति का अन्तराय होते हुए भी ब्रह्म के दर्शन कराता है --

काम मिलावे राम को, जो राखे यह जीत ।

दास मलूक यों कहे, जो मन आवे परतीत ।।बा० पृ० ४०।।

दरियासाहब मारवाड़ वाले

दरिया के अनुसार राग और द्वेष भक्ति के अन्तराय हैं । रागद्वेष जीव के बधन के कारण हैं -

पाप पुन्न दोउ पाड़ पड़ोसी,अनत बासना नाती ।

राग द्वेष का बधन लागा, गिरह बना उतपाती ।।५।।बा०पृ० ५०।।

मध्यकाल में केवल वराहमिहिर ने यह कहा है कि जो स्त्रियों की निन्दा करता है वह उस चोरकी भाँति है, जो स्वय चोरी करके चोर चोर चिल्लाता है :बृहत्संहिता अ० ७४: ।निर्गुण भक्तो में से केवल [illegible]ब ने वराहमिहिर के मत का समर्थन

किया है। दरिया के अनुसार नारी-जगत् जननी है, मूर्ख लोग राम को भूल कर नारी निन्दा करते है --

नारी जननी जगत की, पाल पौस दे पौष।
मूरख राम बिसार कर, ताहि लगावै दोष ।।६३।।बा०पृ०३४।।

निर्गुण भक्तों में केवल दरिया ने नारी को भक्ति के प्रतिकूल नहीं माना है।

दरियादास बिहारवाले :

सत दरिया के अनुसार कनक, कामिनी, भ्रम, वाद-विवाद, काम, अहंकार, पाखंड, हिंसा, मोह और माया आदि भक्ति के प्रतिकूल तत्व हैं।

दरिया के मतानुसार कनक और कामिनी के फंद में फंसकर जीवन व्यर्थ हो जाता है :- जो व्यक्ति नारी का त्याग करता है वह भवसिन्धु से पार हो जाता है

कनक कामिनि के फंद में, लालची मन लपटाय।
कलपि कलपि जिव जाइ है, मिथ्या जनम गँवाय ।।द०सा० पृ० १६।।
जो जिव फंदे नारि से, सो नहिं बस हमार।
बस राखि नारी जो त्यागे, सो उतरै भवपार ।।द० एक अनु० पृ०१३।।

नारी काम रूप है। दरिया के अनुसार जीव काम और मोह में आसक्त होकर भगवद्-नाम को भूल जाता है ---

जग में कियो भलो नहि काम।
मंदिल मोह मदन तन व्यापेवो बिसरि गये निजु नाम ।।वही पृ०१४८।।

दरिया के अनुसार भक्त को भ्रम, वाद विवाद, अहंकार, पाखंड, और हिंसाभाव को छोड़ देना चाहिए। इनको धारण करने से भगवद्भक्ति की प्राप्ति नहीं होती --

अजपा जाप अनाहद नादा। तजि भव भर्म सो बादि बिबादा।
अमृत बुंद तहँ झरै निकंदा। ऐन :घर अँजोर मगनमन चंदा ।।
द० सा० पृ० ५६ ।।

दर्ब हरहि पर सोक ना हरहि, सो गुरू नर्क अघोर रहि परही।
वही पृ० ७।।

पाखंड से प्रभु मिलि ना काहू, कहो सुभाव सांच पतिवाहू ।।वही पृ०२१-२२।

पहिले दिल से बदी बिसारो, गरब गरूरि दूरि करि डारो ।।वही पृ०२३।

मलि करू खून पिवै जलि दारू, गर्ब गरूरि दूरि करि डारू ।

मोह माया मद तजेहु बिकारा, करहु भगति सतगुरु गुन सारा ।।३३।वही पृ०१८।।

दरिया के अनुसार दुविधा भक्ति मार्ग में विघ्न रूप है । जिस साधक मे दुविधा नही होती वह प्रभु को प्रिय होना है --

एकै कलम कागद है एकै एकै कौरान पुराना।

कहै दरिया जब दौबिधा तजिहौ तब प्रभु को मन माना ।। वही पृ० ६४।।

भक्ति के अन्तरायो की दृष्टि से निर्गुण संतो ने काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, माया, अहंकार, छल, कपट, चंचलता स्त्री और वाद विवाद का उल्लेख किया है । कबीर, दादू आदि सन्तो ने स्त्री को भक्ति माग मे विघ्न अवश्य माना है, किन्तु दरिया साहव मारवाड़ वाले ने स्त्री को भक्ति का अन्तराय नहीं माना है । कबीर और मलूकदास ने काम को भक्ति का अन्तराय मानते हुए भी नियंत्रित काम को परमार्थ सिद्धि मे विघ्न नहीं माना है ।

:च निर्गुण संतो की साधना का उनके दार्शनिक विचारो से सामजस्य

पूर्व अध्याय में निर्गुण संतों के दार्शनिक विचारों का विवेचन किया गया है । निर्गुण संतो के अनुसार एक मात्र सत्य-सत्ता ब्रह्म है । ब्रह्म ही जीव और जगत् रूप में अभिव्यक्त हो रहा है । जीव और जगत् का ब्रह्म से भिन्न रूप भ्रान्ति और माया के कारण दृष्टिगत होता है । वस्तुत: ब्रह्म और जगत् कनक और कुंडल, जल और तरंग की भाति अभिन्न हैं । जीव को जब ज्ञान होता है तब वह द्वैतभाव को भूल कर ब्रह्म मे समाहित हो जाता है । जीव का ब्रह्म रूप होना ही मोक्ष है ।

निर्गुण संतो के अनुसार जब जीव और ब्रह्म में कोई अन्तर नही है, तब भक्त और भगवान में भी कोई अन्तर नहीं होना चाहिए । साधना एक प्रकार की क्रिया अथवा कर्म है । विचार और कर्म क्रिया में कोई विरोध उत्पन्न न हो, इसी दृष्टि से निर्गुण संतों ने अपनी साधना की व्याख्या की है । लौकिक जीवन में पति पत्नी का संबंध समानता का माना गया है । पति पत्नी में न कोई छोटा है और न कोई बड़ा । पति और पत्नी के जीवन को बांधने वाला एक मात्र सूत्र प्रेम है । इसी के अनुरूप निर्गुण संतों ने ब्रह्म को पुरुष और आत्मा को स्त्री मान कर भक्ति भाव की व्याख्या की है । ब्रह्म पुरुष है और आत्मा स्त्री । अत: दोनों का एकाकार प्रेम के द्वारा ही हो सकता है ।

पत्नी प्रेम के द्वारा ही पति को प्राप्त कर सकती है। इस आदर्श के आधार पर यह कहा जा सकता है कि निर्गुण संतों की भक्ति प्रेमा भक्ति है।

निर्गुण सन्तों की भक्ति साधना में जो दास्य भाव मिलता है वह भी प्रेमा भक्ति के अन्तर्गत ही आता है[1]। जैसे पति और पत्नी में कोई अन्तर नही होता, वैसे ही निर्गुण संतो ने दास और स्वामी मे कोई अन्तर नहीं माना। निर्गुण संतों के अनुसार न कोई दास है और न कोई स्वामी --

प्रणवै नामा भए निहकामा को ठाकुरू को दासा रे ।।हिं०को०म०सं०कि देनपृ०२५४।।
ना मैं कहता ना मैं सुनता ना मैं सेवक स्वामी है हो।।१।।शब्दा०भा०२ पृ०१११

वस्तुत. सेवक और स्वामी में द्वैत भाव नहीं है। सेवक स्वामी ही है --

मैं जन सेवग द्वै नही, मेरा विसराम।
मेरा जन मुझ सारिखा, दादू कहै राम ।।४।।बा०भा०२ पृ० ७०।।

जीव ब्रह्म रूप ही है अथवा ब्रह्म ने ही जीव रूप धारण किया है। इसी भाव के अनुरूप अपने भक्ति भाव की व्याख्या करते हुए रैदासने कहाहै कि स्वामी ही सेवक है और सेवक ही स्वामी --

मैं कोई नर तुहिं अंतरजामी। ठाकुरथैं जन जानिये जनथैं स्वामी ।।२।।
तुम सबन मैं सब तुम माहीं। रैदास दास असमझि सी कहौं कहाँ हीं ।।३।।
बा० पृ० १६।।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि निर्गुण भक्तो का दास्य भाव पति-पत्नी के सेवा भाव जैसा ही है और वह प्रेमा भक्ति के अन्तर्गत है।

निर्गुण सन्तों के अनुसार जब जीव परमार्थ साधना के द्वारा जगत् भाव से मुक्त होकर ब्रह्म को प्राप्त करता है तब उसमें और ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं रहता। जीव का ब्रह्म भाव प्राप्त करना ही मोक्ष है। निर्गुण सन्तो ने अपनी भक्ति को मोक्ष भाव अथवा जीव और ब्रह्म के एकाकार होने के अनुरूप ही प्रतिपादित किया है।

१- अपना बल सब छांडि दे सेवै तन मन लाइ।
सुन्दर तब पिय रीझि करि सबै कण्ठ लगाई।।४२।।सुं०ग्रं०पृ० ६६४।।
दादू कर साईं की चाकरी, ये हरि नाँव न छोड़ि।
जाणा है उस देस कौं, प्रीति सौं जोड़ि ।।१३।।बा०भा० १पृ०१०१।।

कबीर के अनुसार मोक्ष के उपरान्त जीव ब्रह्म मे मिल जाता है --

बहुरि हम काहे कूं आवहिंगे ।
बिछुरे पंचतत की रचना तब हम रामहि पांवहिंगे ।।
कहे कबीर स्वामी सुख सागर, हंसहि हंस मिलावहिंगे।।१५०।
क०ग्रं० पृ० १३७।।

कबीर की प्रेमा भक्ति इसी मोक्ष भाव के अनुरूप है । कबीर के अनुसार प्रेमा भक्ति में जीव पत्नी ब्रह्म .पति से मिल जाता है --

किया स्यांगर मिलन के ताईं, काहे न मिलौ राजा राम गुसांईं।।
अब की बेर मिलन जौ पाऊं, कहे कबीर भौ जलि नहीं आऊं।।
११७।।क०ग्रं० पृ० १२५।।

सुन्दर के अनुसार आत्मा और परमात्मा का मिलन हीमोक्ष है --

आतम ह अरू परमात्मा, कहन सुनन कौं दोइ ।
सुन्दर तबही मुक्त है जबहि एकता होइ ।।३६। सु०ग्रं० पृ० ८०५।।

और इसी के अनुरूप जीव और ब्रह्म की अभिन्नता ही भक्ति है --

सदा अखंडित एक रस सोहं सोहं होइ ।
सुन्दर याही भक्ति है बूझै बिरला कोइ ।।५१।।सुं०ग्रं० खं०२ पृ० ६७०।।

जिस प्रकार निर्गुण सन्तों के दार्शनिक विचारों मे अद्वैत भाव झलकता है । वैसे ही उनकी भक्ति साधना में अद्वैत भाव दृष्टिगत होता है ।

जीव और ब्रह्मं कोई अन्तर नही है । इसी के फलस्वरूप निर्गुण संतों ने यह कहा है कि संत :भक्त और ब्रह्म मे कोई भेद नही है --

संता की मति कोई निंदहु संत राम है एको ।
कहु कबीर मैं सो गुरू पाया जाका नाउ बिबेको ।३०।।क०ग्रं० पृ०२७३।।
रैदास कहै जाके हृदै, रहै रैन दिन राम ।
सो भगता भगवंत सम, क्रोध न ब्यापै काम ।।३।।बा०पृ०१।।
जहँ राम तहँ संत जन, जहँ साधू तहँ राम ।
दादू दून्यूं एकठे, अरस परस बिसराम ।।१८१।।बा०भा०१ पृ०६४।।
दादू इस संसार में ये द्वै रतन अमोल ।
इक साईं अरु सतजन, इनका मोल न तोल ।।६०।दादू की बा० भा० १
पृ० १६३ ।।

सुन्दर हरिजन एकहै भिन्न भाव कछु नांहि ।
सतनि माहे हरि बसै सत बसै हरि माहि ।।४८।। सु०ग्रं० पृ० ७४५।।
राम संत तै अंतर नाहीं । संत तै कबहूं न्यारे नाही ।।१०।।

जगजीवनसाहब की शब्दावली भा० १ पृ० ५४।

निर्गुण सतों की भक्ति साधना उनके अद्वैत दर्शन केन अनुकूल ही है। निर्गुण संतों के अनुसार जो मोक्ष है, उसको जिन्होंने प्राप्त कर लिया, वही उनकी भक्ति साधना में भक्ति के व आदर्श माने गये हैं।

निर्गुण संतो के अनुसार मोक्ष औरभक्ति के स्वरूप में कोई अन्तर नहीं है। अत जहाँ उन्होंने मोक्ष प्राप्ति के साधनों का उल्लेखकिया है, वहाँ उन्होंने भक्ति के साधनों का भी उल्लेख किया है। परमार्थ मार्ग मे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, अहंकार आदि विघ्न समझे गए है[1]। निर्गुण संतों ने इन्ही विघ्नों को भक्ति के अन्तराय माना है।

१- यजु० ४०।१६, ऋ० ४।१४,८।१६ ।११, ऋ० १०।२२।८, शत० १।४।६।४ गीता १६।२१ ।।

अध्याय ७

निर्गुण राम भक्ति में लोक व्यवहार

नीचे निर्गुण संतो के अनुसार लोक व्यवहार का विवेचन किया जा रहा है ।

क. जीवन का लक्ष्य

नामदेव

नामदेव के अनुसार मानव जीवन का लक्ष्य भगवद् भक्ति करना है -

नर तनु पायो राम नहिं गायो भूल्यो पशु गवहारा रे ।
सिर पर काल खडा शर साधे, नामदेव कहे पुकारा रे ।।८।।

हि० को०म०सं०की देन पृ०२७०।।

तूं हरि भजु मन मेरे पदु निरबानु । बहुरि न होई तेरा आवन जानु।।पृ०२४३।

कबीर

जीवन लक्ष्य को स्पष्ट करते हुए कठोपनिषद् में यह कहा गया है कि स्त्री, पुत्र, सम्पत्ति, आयु आदि लौकिक भोग क्षणभंगुर हैं अत ये जीवन के लक्ष्य नहीं हो सकते[1]। कठोपनिषद् के अनुसार आत्म तत्व को प्राप्त करना ही जीवन का लक्ष्य है-

एतच्छ्रुत्वा सम्परिगृह्य मर्त्यः प्रवृत्य धर्म्यमणुमेतमाप्य ।
स मोदते मोदनीय-् हि लब्ध्वा विवृतःसद्म नचिकेतसंमन्ये।। १।२।१३।

मुण्डकोपनिषद् में जीवन का लक्ष्य स्पष्ट करते हुए यह कहा गया है कि उपासना द्वारा तीक्ष्ण किये गये आत्मा रूपी बाण से बिंधने वाला अक्षर ब्रह्म ही जीवन का लक्ष्य है। मुण्डकोपनिषद् के अनुसार ओंकार धनुष, आत्मा बाण और ब्रह्म उसका लक्ष्य है-

धनुर्गृहीत्वौपनिषद महास्त्रं शरं ह्युपासनिशितं सन्धयीत।
आयम्य तद् भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सौम्य विद्धि।।२।२।३।।

१- कठो० १।१।२५-२६-२७ . १।२।२-३-४-५-१२-१३ ।।

प्रणवो धनु शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।

अप्रमत्तेन वेद्धव्य शरवत्तन्मयो भवेत् ।।२।२।४ ।।

उपनिषदों के अनुसार ही कबीर ने जीवन लक्ष्य का स्पष्टीकरण किया है। कबीर के अनुसार स्त्री, पुत्र सपत्ति आदि भौतिक पदार्थ क्षणभंगुर हैं।[1] अत भौतिक विषय जीवन के लक्ष्य नही हो सकते । कबीर के मतानुसार आत्म तत्व का साक्षात्कार ही जीवन का लक्ष्य है। उसके अनुसार ऐसा जीवन व्यर्थ है जिसमे राजा राम से प्रेम उत्पन्न नहीं होता। भौतिक विषय बार बार मिलसकते हैं, किन्तु राम पुन: पुन प्राप्त नही होते । जो राम नाम का जप नही करता वह अंधा है, और वह यम के चंगुल मे फँसता है। सुत, दारा अंत समय में लुटेरे बन जाते हैं अर्थात् अन्तिम काल मे माया काम नही आती । अतएव जीव को राम नाम का जप करना चाहिए, जो जीव का जगत् से उद्धार करता है --

दारा सुत ग्रेह नेह, सपति अधिकाई ।।

यामै कछु नाहि तेरा, काल अवधि आई ।।क०ग्रं० पृ० १६६।।

जरि जाव ऐसा जीवनां, राजा राम सू प्रीति न होई ।

जन्म अमोलिक जात है, चेति न देखै कोई ।।

कहै कबीर चित चचला, सुनहू मूढ मति मोरी ।

विषिया फिरि फिरि आंवई, राजा रांम न मिलै बहोरी ।।१२७।

क०ग्रं० पृ० १२८-२६।।

राम न जपहु कहा भयौ अंधा, रांम बिना जम मेलै फंधा ।।

सुत दारा का किया पसारा, अंत को बेर भये बटपारा ।।

माया ऊपरि माया मांडी, साथ न चलै खोखरी हांडी।।

जपौ राम ज्यूं अति उबारै । गढी बांह कबीर पुकारै ।।१२८। पृ०१२६।[2]

कबीर के अनुसार आत्मतत्व का चिन्तन ही जीवन का लक्ष्य है -

जब थैं आतम तत बिचारा ।

तब निरबैर भया सबहिन थैं, काम क्रोध गहि डारा ।।क०ग्रं० पृ० १५०।।

१- बीजक पृ० ३०, शब्दा० भा० २ पृ० ३

२- शब्दा० भा० २ पृ० ६७ ।।

कहै कबीर उनि देसी सिधाये, बहुरि न इहि जगि मेला ।।२०७। पृ०१५८।।

जीवन का लक्ष्य ब्रह्म साक्षात्कार है[1]। इसका कबीर ने आत्मा को स्त्री और ब्रह्म को पुरुष मानकर, दोनों के प्रेम मिलन के रूप में भी उल्लेख किया है -

वै दिन कब आवैंगे माइ ।
जा कारनि हम देह धरी है, मिलिबौ अंगि लगाइ ।।
हौं जानूं जे हिल मिलि खेलू तनमन प्रान समाइ ।
या कामना करौ परपूरन, समरथ हौ राम राइ ।।
माहि उदासी माधौ चाहै, चितवत रैनि बिहाइ ।
सेज हमारी स्यंघ भई है, जब सोऊं तब खाइ ।।
यहु अरदास दास की सुनिये, तन की तपति बुझाइ।
कहै कबीर मिलें जे सांई ,मिलि करि मगल गाइ ।।३०६।।क०ग्रं पृ०१६१-६२

मुण्डकोपनिषद् के समान कबीर ने भी शब्द रूपी वाण से जीवन के लक्ष्य आत्मतत्व को भेदन करने के लिए कहा है -

सतगुर लई कमाण करि, बाहण लागा तीर ।
एक जु बाह्या प्रीति सू भीतरि रह्या सरीर ।।६।।
सतगुर साँचा सूरिवाँ, सबद जु बाह्या एक ।
लागत ही मै मिलि गया, पड़्या कलेजै छेक ।।७।क०ग्रं० पृ०१
सतगुर माऱ्या बाण भरि, धरि करि सूधी मूठि ।
अगि उघाडै लागिया, गई दवा सूं फूटि ।।८।।
हसै न बोलै उनमनी, चंचल मेल्ह्या मारि ।
कहै कबीर भीतरि भिधा, सतगुर हथियारि ।।६।।
गूगा हूवा बावला, बहरा हूवा कान ।
पाऊं थैं पगुल भया, सतगुर माऱ्या बाण ।।१०।।क०ग्रं० पृ०२।।

कबीर ने आत्म तत्व के चिन्तन अथवा ब्रह्म के साक्षात्कार को मोक्ष की कोटि में नहीं रखा है। उनके अनुसार राम का साक्षात्कार या उनके प्रेम भक्ति: की प्राप्ति मोक्ष से उत्कृष्ट है क्योंकि जीव को जब तक बैकुंठ की इच्छा रहती है,

---

१- बीजक पृ० ७४

तब तक उसे राम भक्ति की प्राप्ति नहीं होती।[1] कबीर के अनुसार यह प्रेम या राम भक्ति ही जीवन का लक्ष्य है। आत्म चिन्तन और राम के साक्षात्कार से कबीर का आशय सम्भवत राम प्रेम की प्राप्ति से ही है। कबीर ने आत्मा को स्त्री और राम को पति मान कर राम प्रेम को ही जीवन का लक्ष्य बताया है।

रैदास

कबीर की भाँति रैदास ने भी राम भक्ति को ही जीवन का लक्ष्य माना है -

हरि सा हीरा छाडि कै, करै आन की आस।
ते नर जमपुर जाहिगे, सत भाषै रैदास।।१।।बा० भा० पृ० १

दरसन दीजै राम दरसन दीजै। दरसन दीजै बिलँब न कीजै।
दरसन तोरा जीवन मोरा। बिन दरसन क्यों जिवै चकोरा।।८०।१।बा०पृ०३६

रैदास के अनुसार ससार से मन को हटाकर हरि मे समाहित करना और प्रत्येक समय उनकी चिन्तन करना जीवन का लक्ष्य है -

मैं अपनो मन हरि सौ जोर्‌यो। हरि सै जोरि सबन से तोर्‌यो।।३।।
सबही पहर तुम्हारी आसा। मन क्रम बचन कहै रैदास।।५०।४ बा०पृ०२४

नानक :

नानक के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु, महेश रुद्र और समस्त ससार रोगी है, अत: इनकी कामना करना व्यथ है जो हरि पद को पहिचाना है, वही मुक्त होता है --

~~रोगी ब्रह्म बैकुठ की अनसर, तब लग नही हरि चरन बिबनसर।~~

रोगी ब्रह्मा बिसनु सरुद्रा रोगी सगल संसारा।
हरि पदु चीनि भए से मुकते गुर का सबदु वीचारा।।४।।गु०ग्रं० पृ०११५३।

१- जब लग है बैकुंठ की आसा, तब लग नही हरि चरन निवासा।
कहै कबीर यहु कहिये काहि, साध सगति बैकुंठहि आहि।।२४।।क०ग्रं० पृ० ६६।

राम-मिलन हो नानक के जीवन का लक्ष्य है। राम मिलन से सुख प्राप्त होता है और जीव की तृष्णा ये नष्ट हो जाती है +

अपने पिआरे बिनु इकु खिनु रहि न सकउ बिन मिले नीद न पाई ।।७।
पिरु नजीकि न बूझै बपुडी सतिगुरि दीआ दिखाई ।।८।।
सहजि मिलिआ तब ही सुखु पाइआ तृसना सबदि बुझाई।।९।।
कहु नानक तुझ ते मनु मानिआ कीमति कहनु न जाई ।।१०।३।।गु०ग्रं०पृ०१२९

दादू

दादू के अनुसार जीव का ब्रह्म के समान बनना ही जीवन का लक्ष्य है। यह लक्ष्य जीवन का क्रमिक विकास करते रहने से प्राप्त होता है--

दादू सतगुर पसु माणास करै, माणास थैं सिध सोइ।
दादू सिध थैं देवता, देव निरंजन होइ ।।बा० मा०१ ।१२ पृ० २।
दादू ऐसा गुर मिल्या, जीव ब्रह्म करि लेइ ।।१३।।पृ०२।।

दादूने जीवन के लक्ष्य की दृष्टि से मोक्ष की अपेक्षा राम और उनके दर्शन को अधिक महत्व दिया है,तथा उन्होंने उन्ही के लोकमें चलने की कामना की है -

दरसन दे दरसन दे, हौं तौ तेरी मुकति न माँगौं रे ।।
सिद्धि न माँगौं रिद्धि न माँगौं, तुमही माँगौं गोबिंदा ।।१।बा०मा०२
पृ० १२३।।

चलु दादू तहँ जाइये, जहँ मरै न जीवै कोई ।
आवागमन भय को नहीं, सदा एक रस होइ ।।२३।।बा०१ पृ० १७१।।

भौतिक विषय अथवा संसार जीवन का लक्ष्य नहीं हो सकता, क्योंकि यह दु रूप है। राम ही जीवन का लक्ष्य होसकता है, क्योंकि वह सुख सिन्धु है। दादू के अनुसार दु ख रूप संसार को छोड़ कर सुख सिन्धु तक पहुँचना चाहिए -

दुख दरिया संसार है, सुख का सागर राम ।
सुख सागर चलि जाइये, दादू तजि बेकाम ।।२९।।बा०मा०१ पृ० १९।।

१- बा० मा० १ पृ० १०१

सुन्दरदास

सुन्दर के अनुसार राम-मिलन जीवन का लक्ष्य है। भव-रोग को दूर करने वाला वैद्य और औषधि राम ही है, अतः प्रत्येक समय राम का ही स्मरण करना चाहिए -

बैद हमारे राम जी औषधि हू है राम।

सुन्दर यहै उपाइ अब सुमिरन आठौ जाम ।।४।।सुंग्र० पृ० १००८।।

सुन्दर ने मुक्ति को भी जीवन का लक्ष्य माना है,[1] किन्तु उन्होंने मुक्ति की अपेक्षा भक्ति को अधिक महत्व दिया है -

अलष निरजन ध्यावउ और न जाचउ रे।

कोटि मुक्ति देइ कोई, तौनाहि न राचउ रे ।।सु०ग्र० पृ० ८२३।।

जगजीवन साहब :

जगजीवन के अनुसार सत्य ब्रह्म में समाहित होना और संसार के समस्त विषय को त्याग कर सत्तनाम के चरणों में रत रहना और उनके नाम का जप करना ही जीवन लक्ष्य है -

अरे मन रहहु चरन तें लाग। इत उत सकल देहु तुम त्याग ।।१।।

समिरहु मन सत्तनाम सकल घघ त्यागी ।।बा० भा०१ पृ० २८ ।।

एव जहाँ निर्गुण राम रहता है, वहीं पर जीव को अपना स्थान बनाना चाहिए-

कर मुकाम जहँ निर्गुन नाम। ए मन बैठि रहो तेहि के ढिग।।बा०भा०१। पृ० ११६।।

मलूकदास .

मलूक के अनुसार राम प्राप्ति जीवन का लक्ष्य है। सर्व संसार के जितने विषय हैं उनकी आशा छोड़ कर राम को प्राप्त करना चाहिए। यह राम जीव का प्राण और धर्म है -

कहत मलूकदास छोड़ दे पराई आस,

रामधनी पाय के अब काकी सरन जाइये ।।४।।बा०पृ०२६।।

राम मेरे प्रान रहमान मेरे दीन इमान,

भूल गयो भैया सब लोक लाज घोई है ।।२।।

छाँडि केसव राय मेरो दूसरो न कोई है ।।४।।बा० पृ०२८।।

दरियासाहब मारवाड़ वाले

अन्य सतो की भाँति दरिया ने भी जीवन का लक्ष्य राम-प्राप्ति को बताया है। दरिया के अनुसार राम सत्य और जगत् मिथ्या है। अतरव ससार को छोड़ कर राम के सम्मुख ~~नहीं~~ ही रहना चाहिए। यहराम ही जीव का आदि और अत है, राम के बिना अन्य सब भोग व्यर्थ हैं -

दरिया साँचा राम है और सकल ही झूठ।
सनमुख रहिये राम से, दे सबही को पूठ ।।२१। बा० पृ० २५।
आदि अन्त मेरा है राम, उन बिन और सकल बेकाम।।१।।बा०पृ०३७।।

दरियादास बिहार वाले

दरिया के अनुसार राम का साक्षात्कार ही जीवन का लक्ष्य है। इन्द्र और ब्रह्मा आदि काल के वश में हैं। अत ये सब जीवन का लक्ष्य नहीं हो सकते। जो निरजन पुरुष सम्पूर्ण ब्रह्मांड को खेल खिलाता है, उसको पहिचाने बिना कोई भी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। दरिया ने यह कहा है कि उस व्यक्ति का जीवन धन्य है, जिसे ज्ञान प्राप्त हो गया है और जो पुरातन पुरुष का स्मरण करता है। इस प्रकार दरिया के अनुसार राम का स्मरण करना ही जीवन का लक्ष्य है -

सत्तनाम है निर्गुन अधारा। ता के काल न करे अहारा।
इंद्र लोक इदर ओइ रहही। तिनहु के काल बिगुरचन करही।
ब्रह्म लोक ब्रह्मा अस्थाना। तिनहुँ के काल करै पिसमाना।।
एन निरंजन सभहि भुलावै। बिन चीन्हे कोइ मुक्ति न पावै।।
धन्य जिवन ताको है ज्ञाना। पुरुष पुरान जिन्ह सुमिरन ठाना।।
द० सा० पृ० १२-१३।।

इस प्रकार निर्गुण सन्तो के अनुसार राम का साक्षात्कार अथवा राम-भक्ति की प्राप्ति ही जीवन का लक्ष्य है। जीवन लक्ष्य के सम्बन्ध में निर्गुण भक्तो में कोई मतभेद नहीं है।

'ख' समाज का स्वरूप

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। अपने विचारो के अनुसार मानव समाज का निर्माण करता है। समाज मनुष्य के विचारों का मूर्तरूप है। निर्गुण सन्तोके अनुसार समाज का क्या स्वरूप है, नीचे इसका विवेचन किया जा रहा है।

नामदेव ·

नामदेव ने जिस समाज की कल्पना की है वह वर्णरहित है। जिस प्रकार नाना वर्ण की ग्रामो का दूध एक ही वर्ण का होता है उसी प्रकार तत्वत मनुष्य समाज भी एक ही वर्ण का है, उसमे ब्राह्मण और शूद्र जैसा वर्ण भेद नहीं है -

नाना वर्ण उनका एक वर्ण दुध, तुम कहाके ब्राह्मन हम कहाके सुद॥४॥

हि० को० म० सं० की देन पृ०२७०।

इसी प्रकार का एक छंद कबीर का भी मिलता है[1] -

साची बात कहै जे वासौ, सो फिरि कहै दिवाना तासू।

गोप भिन्न है एकै दूधा, कासूं कहिये बाह्मन सूदा॥क०ग्र० पृ० २४०॥

कबीर

कबीर के अनुसार मानव समाज मे न कोई छोटा है और न कोई बड़ा। कबीर ने जिस समाज की कल्पना की है उसमें कोई भी मध्यम निम्नतर वर्ग का व्यक्ति नहीं है। मध्यम निम्नतर वर्ग का व्यक्ति वह है जो राम नाम का स्मरण नहीं करता -

नहीं को ऊचा नही को नीचा, जाका प्यंड ताही का सीचा।

जे तूं बांमन बभनी जाया, तौ आंन बाट ह्वै काहे न आया॥

जे तू तुरक तुरकनीं जाया, तौ भीतरि खतना क्यूं न कराया॥

कहै कबीर मधिम नहीं कोई, सो मधिम जा मुखि राम न होई॥४१॥

क० ग्रं० पृ० १०२॥

सम्पूर्ण मनुष्य एक ब्रह्म से ही उत्पन्न हुए हैं अत उनमे न कोई ब्राह्मण है और न कोई शूद्र[2] -

एक बूंद एकै मल मूतर, एक चांम एक गूदा।

एक जोति थैं सब उतपनां, कौन बांह्मन कौन सूदा॥क०ग्र० पृ० १०६॥

कबीर ने जातिवाद का खंडन किया है। कबीर के अनुसार समाज मे जाति भेद नही होना चाहिए। कबीर के अनुसार समाज में संतो की ही एक जाति होनी चाहिए।

१- बीजक पृ० २४

२- बीजक पृ० २४, ५८ शब्दा०भा०१ पृ०६२
क० ग्रं० पृ० २८२

कबीरने सभी तत्वो में सतो को सबसे बड़ा माना है । समाज मे विविध जातियों के विस्तार से काल का प्रकोप ही बढ़ता है । कबीर के अनुसार भक्तो की कोई जाति नही होती -

सततजात न पूछो निरगुनियाँ ।
साध बराम्हन साध छत्री, साधे जाती बनियाँ ।
साधन माँ छत्तीस कौम है, टेढी तोर पुछनियाँ ।।१।।
साधे नाऊ साधे धोबी, साध जाति है बरियाँ ।
साधन माँ रैदास सत हैं, सुपुच ऋषि से भंगियाँ ।।२।।
हिन्दू तुर्क दुइ दीन बने है, कछू नाहिं पहिचनियाँ ।
लाखन जाति जगत माँ फैली, काल को फंद पसरियाँ।।३।।
सब तत्तन मा संत बड़े हैं, मब्द रूप जिन देहियाँ ।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, सतरूप वहिजनियाँ ।।४।।शब्दा०भा०१ पृ०६८

समाज मे वर्ण अवर्ण और धनवान् एव निर्धन की दृष्टि से भेदभाव नहीं होना चाहिए । कबीर के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कोई भी भक्त के समान नहीं हैं -

जेहि कुल भग्त भाग बड़ होई ।
गनिये न बरन रंक धनी, बिमल ब बास निजसोई ।।१।।
बाह्मन छत्री और बैस सुद्र सब, भग्त समान न कोई ।।२।।शब्दा०भा०३ पृ०१७।
साषत ब्राह्मण जिनि मिले, बैसनौ मिलो चंडाल ।
अंक माल दे भेटिए मानूं मिले गोपाल ।।१६।।क०ग्रं० पृ० ३६।।

रैदास .

रैदास ने समाज की विषमता के विषय का उल्लेख नहीं किया है । कदाचित् कारण यह है कि वे स्वय एक नीची समझी जाने वाली जाति के थे । किन्तु विनम्रता के कारण अपने को हीन जाति का बताने मे उन्होने कोई संकोच नहीं किया है -

ऐसी मेरी जाति बिख्यात चमारं । हृदय राम गोबिंद गुनसारं ।।ब०पृ०१९।
जाति भी ओछी जनम भी ओछा, ओछा करम हमारा ।
हम रैदास रामराई को, कह रैदास बिचारा ।।३।।बा० पृ० २०।।

नानक

नानक के अनुसार भी समाज मे वर्णभेद नही होना चाहिए -

वरन भेख नही ब्रह्मण खत्री ।

देउ न देहुणा गऊ गाइत्री ।।गुंग्र० १०।।पृ०१०३६।।

सुंदरदास

सुन्दर के अनुसार समाज में वर्णाश्रम का भेद नही होना चाहिए । समाज वर्णाश्रम का विभेद करने से उलझन मे पड जाता है -

गोरषधंधा वेद है वचन कही वहु भाति ।

सुन्दर उरझयौ जगत सब वर्णाश्रम की पांति ।।३५।।सु०ग्रं० पृ०६६७।।

दरिया

कबीर के समान संत दरिया ने भी कहा है कि समाज में जाति और वर्ण भेद नहीं होना चाहिए । सम्पूर्ण ब्रह्मांड मे एक ब्रह्म व्याप्त है। अत किसी को भी ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नहीं कहा जा सकता । जिस प्रकार एक ही प्रकार की मिट्टी से विभिन्न प्रकार के बर्तन बनते है उसीप्रकार एक ही ब्रह्म से सम्पूर्ण मनुष्य उत्पन्न हुए हैं -

बेद पढे का एह गुन पण्डित ।

एक ब्रह्म सकल घट भाषत अब कहिए किमि खंडित ।

ब्राह्मण छात्री बैस सुद्र सम हिंदु तुरुक किमि कहिए ।

मटी एक नाना बिधि बासन एक जिमी पर रहिए ।।द० एक अनु० पृ०६४

अत दरिया के अनुसार मनुष्य समाज मे जाति पाँति का भेद भाव नहीं होना चाहिए -

सतगुरु जाति-पाँति नहिँ लीजै । जाति खोजै तेहि पातक दीजै ।

द० सा० पृ० ४६।।

दरिया के अनुसार संतों की जाति नही पूछनी चाहिए । सतो की कोई जाति नही होती । और जिसको सच्चा ज्ञान प्राप्त हो जाता है उसे भी जाति की कोई चिन्ता नहीं रहती[१]। दरिया मनुष्य मात्र की केवल एक ही जाति मानते हैं।[२]

इस प्रकार निर्गुण सन्तो ने समाज का सांगोपांग वर्णन नहीं किया है। निर्गुण सन्तो के समय मे समाज मे जो जाति, वर्ण, और वर्ग भेद उत्पन्न हो गया था, उन्होने उसका खंडन करके वर्गविहीन समाज की कल्पना की है। निर्गुण सन्तो के अनुसार समाज मे न कोई छोटा होना चाहिए और न कोई बड़ा। सभी मनुष्य एक ब्रह्म से उत्पन्न हुए हैं अत सबको समान अधिकार होना चाहिए।

'ग धर्म का स्वरूप

धर्म और समाज परस्पर अभिन्न हैं। धर्म का समाज पर और समाज का धर्म पर गहरा प्रभाव पड़ता है। यदि समाज मे वर्ण, जाति, और वर्गभेद है, तो उसमे धर्म भी वर्ण, जाति और वर्ग से सम्बन्धित हो जाता है। जो समाज वर्ग वर्ण और जातिविहीन होता है, उसका धर्म व्यापक होता है। धर्म शब्द धृ धातु से बना है जिसका अर्थ होता है धारण करना। जो व्यक्ति और समाज के जीवन को धारण करता है वह धर्म है। निर्गुण सन्तो के अनुसार धर्म का क्या स्वरूप है, इसे नीचे इसका स्पष्टीकरण किया जा रहा है।

नामदेव '

नामदेव के अनुसार धर्म, ज्ञान प्रधान होना चाहिए। नामदेव ने एक स्थान पर कहा है कि हिन्दू और मुसलमान से ज्ञानी श्रेष्ठ है -

हिंदू अंना तुरकू काणा दोहा ते गिआनी सिआना। वही पृ० २५१। सं० ग्र०

नामदेव ने भैरव, भूत, शीतला, शिव, महामाई, और दुर्गा की पूजा को हेय कहा है। नामदेव के धर्म में वेद और पुराणो के स्थान पर नाम जप और योग साधना को ग्रहण किया गया है -

भैरऊ भूत सीतला धावै। खर बाहन ऊहु छार उड़ावै।।
हऊ तऊ एक रमईआ लैहऊ। आनदेव बदलावनि दैहऊ।।
सिव सिव करते जो नरु धिआवै। बरद चढे डमरू डमकावै।।
महामाई की पूजा करै। नर सै नारि होइ अउतरै।।
तू कहिअत ही आदि भवानी। मुकति की बरीआ कहा छपानी।।
वही० पृ० २५१।।

बेद पुरान सासत्र आनना गीत कबीत न गावऊगो ।

अखड मडल निरकार महि अनहद बेन बजावऊगो ।। वही पृ० २५२।।

बैरागी रामहि गावऊगो ।।

नामदेव के अनुसार पाखंड को धर्म मे कोई स्थान नही मिलना चाहिए । उनका धर्म भक्ति प्रधान है ।उन्होने यह कहा है कि तीर्थयात्रा करना और हिमालय पर प्राणान्त करना भी राम नाम जप के समान नहीं है -

छोडि छोडि रे पाखंडी मन कपटु न कीजै ।

हरि का नामु नित नित हि लीजै ।।

कोटि जऊ तीरथ करै तनु जऊ हिवाले गावै

राम नाम सरि तऊ न पूजै ।।वही पृ० २५२।।

कबीर

कबीर ने हिन्दू और मुसलमान धर्म के आडम्बर और पाखड का खडन करके एक ऐसे धर्म का स्वरूप उपस्थित किया है, जो वर्ण, जाति और वर्ग भेद से ऊपर, तथा छूआछूत, पाखंड, जडपूजा, तीर्थ,व्रत और नियम बन्धन से परे है । कबीर का धर्म सत्य, अहिंसा और दया प्रधान है[1]।

हिंदू और मुसलमानों के पाखंड का खडन करते हुए कबीर ने यह कहा है कि हिंदू और मुसलमान इन दोनो ने ब्रह्म-दर्शन का मार्ग प्राप्त नही किया है । हिंदुओ की हिंदुआई, तो देखो, जो वेश्याओं के पैरो के नीचे तो शयन करते हैं, किन्तु अपने गागर को छूने तक नहीं देते । ऐसे ही मुसलमान,पीर,औलिया मुर्गी मुर्गा खाकर तथा घर ही मे विवाह सम्बन्ध करके धर्म का स्वांग रचते हैं । कबीर ने हिन्दू और मुसलमान धर्म के पाखड की चुभती भाषा मे निन्दा की है[2] -

अरे इन दूहुन राह न पाई ।

हिंदू अपनी करै बड़ाई गागर छुवन न देई ।

बेस्या के पायन तर सोवै यह देखो हिंदुआई ।।१।।

मुसलमान के पीर औलिया मुर्गी मुर्गा खाई ।

खाला केरी बेटी ब्याहै घरहिं में करै सगाई ।।२।।

बाहर से इक मुर्दा लाये धोय धाय चढ़वाई ।

सब सखियाँ मिलि जेंवन बैठीं घर भर करै बड़ाई ।।३।।

हिंदुन की हिदुवाई देखी तुरकन की तुरकाई ।

कहैं कबीर सुनो भाई साधो कौन राह ह्वै जाई ।। शब्दा० भा०१ पृ०४२-४३।

कबीर मूर्ति पूजा और तीर्थ पूजा का खंडन करते हुए कहते है कि माला और तसबीह[1] 'सुमिरनी' फेरने वाले वेश्या के समान हैं, और मक्का तथा काशी जाने वालो के गले मे फाँसी पड़ती है। कबीर के अनुसार जो मढ़ियों और कबरो की पूजा करता है उसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है -

कोई फेरै माला कोई फेरै तसबी ।

देखो रे लोगो दोनों कसबी ।।२।।

कोई जावै मक्के कोई जावै कासी । दोऊ के गल बिच परि गइ फाँसी ।।३ ।।

कोइ पूजै मढ़ियाँ कोइ पूजै गोरों । दोऊ की मतियाँ हरि लइ चोरों ।।४।।

कहत कबीर सुनो भाई नर लोई । हम न किसीके न हमरा कोई ।।५।। शब्दा०भा०२ पृ० ११४।।

कबीर, के आडम्बर जड़पूजा, तीर्थ पूजा, व्रत नियम, षट्कर्म आचार, सध्या, तर्पण आदि के पक्ष में नहीं हैं, वे इनका खडन करते हुए कहते हैं[2] -

साधो भजन भेद है न्यारा ।

का माला मुद्रा के पहिरे, चंदन घसे लिलारा ।

मूंड मुड़ाये सिर जटा रखाये, अग लगाये छारा ।।१।।

का पानी पाहन के पूजे, कंदमूल फरहारा ।

कहा नेम तीरथ व्रत कीन्हें, जो नहिं तत्व बिचारा ।।२।।

का गाये का पढि दिखलाये, का भरमे ससारा ।

का सध्या तरपन के कीन्हे, का षट कर्म अचारा ।।३।।

जैसे बधिक ओट टाटी के, हाथ लिये विख चारा ।

ज्यौं बक ध्यान धरै घट भीतर अपने अंग बिकारा ।।४।। शब्दा० भा०२ पृ०१६।

कबीर के अनुसार धर्म में दया, ससार से उदासीनता, साम्य भाव, और सहिष्णुता होना आवश्यक है -

दाया राखि धरम को पालै, जग से रहै उदासी ।

अपना सा जिव सब का जानै, ताहि मिलै अबिनासी।।५।।

१- क० ग्र० पृ० १०६

२- ,, पृ० २०२

सहै कुसबद बाद को त्यागै, छाड़ै गर्ब गुमाना ।

सतनाम ताही को मिलि है, कहै कबीर सुजाना ।।६।।शब्दा० भा०२ पृ० १६।।

कबीर के मतानुसार धर्म हृदय मे रहने वाला अन्तभाव है, जिसके उपस्थित रहने से बहुत सुख उत्पन्न होता है -

सदा धर्म तेहि हृदया बसई, राम कसौठी कसतहि रहई ।

जौरि कसावै अनै जाई, सो बाउर आपुहि बौराई ।।६४।।बीजक पृ०२५।

जस जिव आप मिलै अस कोई, बहुत सुख हृदया होई ।।१७।।वही पृ० ६।।

कबीर ने 'जन्मना' वर्ण धर्म की जो निन्दा की है सम्भवत वह उनके हीन कर्मो के कारण की है । वैसे कबीर वण धर्म के विरोध मे नहीं है क्योंकि कबीर ने यह कहा है कि ब्राह्मण वर्ण धर्म बुरा नही है, किन्तु बुरे कर्म करने से कलियुग के ब्राह्मण खोटे हो गए हैं -

संतो पाड़े निपुन कसाई ।

बकरा मारि भैंसा पर धावे, दिल मे दर्द न आई ।।

करि अस्नान तिलक दै बैठे, बिधि से देवी पुजाई ।

आतम मारि पलक मे बिनसे रुधिर की नदी बहाई।।

अति पुनीत ऊँचे कुल कहिये, सभा माहि अधिकाई ।

इन्हते दीछा सब कोइ मागै, हँसि आवै मोहि माई ।।

पाप काटन को कथा सुनावै , कर्म करावै नीचा ।

बूड़त दोउ परस्पर देखा, यम लाये है खींचा ।।

गाय बधे तेहि तुरका कहिये, इन्हते वे क्या छोटे ।

कहै कबीर सुनो हे सतो, कलि मे ब्राह्मण खोटे ।।बीजक ११ पृ०३६-३७।।

कबीर ने चारों वर्णो का उल्लेख करते हुए भगवान् बुद्ध के समान यह भी कहा है कि ब्राह्मण वह है जो ब्रह्म को पहिचानता है[1]। कबीर के अनुसार क्षत्रिय वह है जो ज्ञान

१- यस्सालया न विज्जन्ति अजाय अकथकथी ।

अमतोगध अनुप्पत तमह ब्रूम ब्राह्मणाव ।।२९।।धम्मपद पृ० १६८।।

गम्भीरपज मेधावि मग्गामग्गस्स कोविदं ।

उत्तमत्थं अनुप्पत्त तमह ब्रूमि ब्राह्मणं ।।२१। वही पृ० १६५।।

माणस खाणे करहि निवाज । छुरी छुरी वगाइनि तिन गलि ताग ।
तिन घरि ब्रहमण पूरहिनाद । उनभि आवहि ओइ साद ।।
कूड़ी रासि कूडा वापारु । कूड़ु बोलि करहि आहारु ।।
सरम धरम का डेरा दूरि । गु०ग्रं० सा० पृ० ४७१।।

नानक हिन्दुओं की छुआछूत की निन्दा करते हुए कहते हैं कि सूतक रखना व्यर्थ है। सूतक रखने से बुराई दूर नही होती । नानक के अनुसार मन का सूतक लोभ और आंख का सूतक परधन और परस्त्री को देखना है -

सूतकु किउ करि रखीऐ सूतकु पवै रसोइ ।
नानक सूतकु एव नउतरै गिआनु उतारे धोइ ।।१।।
मन का सूतकु लोभु है जिह्वा सूतकु कूड़ु ।
अखी सूतकु वेखणा परत्रिअ परधन रूपु ।।
कंनी सूतकु कनि पै लाइतबारी खाहि ।
नानक हंसा आदमी बधे जमपुरि जाहि ।।२।।म०।।गु०ग्रं०पृ० ४७२।।

नानक के अनुसार भगवा वस्त्र धारण करके कोई व्यक्ति सन्यास धर्म का अधिकारी नहीं बन जाता -

इकि कंद मूलु चुणि खाहि वण खंडि वासा ।
इकि भगवा वेसु करि फिरहि जोगी संनिआसा ।।
अंदरि त्रिसना बहुतु छादन भोजन की आसा ।
बिरथा जनमु गवाइ न गिरही न उदासा ।।५।।गु०ग्रं० पृ० १४०।।

गीता के अनुसार ब्राह्मण के स्वभावज कर्म सयम शम दम तप, क्षमा, ज्ञान और विज्ञान आदि हैं १८।४२ । शौर्य, तेज, धृति, दक्षता, दान और युद्ध क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं १८।४३ । नानक ने लगभग गीताके अनुरूप ही वर्ण धर्म का उल्लेख करते हुए कहा है -

सो ब्रहमणु जो बिंदै ब्रहमु । जपु तपु संजमु कमावै करमु ।।
सील संतोख का रखै धरमु । बंधन तोड़ै होवै मुकतु ।।
सोई ब्रहमणु पूजण जुगतु ।।१६।।
खत्री सो जु करमा का सूरु । पुन दान का करै सरीरु ।।
खेतु पछाणै बीजै दानु । सो खत्री दरगह परवाणु ।।
लबु लोभु जे कूड़ु कमावै । अपणा कीता आपे पावै ।।१७।।गु०ग्रं०पृ० १४११।

नानक के अनुसार सृष्टिमें ~~एक ही वर्ण उत्पन्न हुआ~~, अपना अपना वास्तविक धर्म छोड कर सभी एक वर्ण हो गए हैं -

खत्रीआ त धरमु छोडिआ मलेछ भाखिआ गही ।
स्रिसटि सभ इक वरन होई धरमकी गति रही ।।३।।

पाराशर स्मृति मे यह कहा गया है कि कल्प कल्प में सत्य धर्म का क्षय होना है-

कल्पे कल्पे क्षाये सत्या पा० स्मृ०२०।।अष्टादश स्मृति से पृ० २६५।।

इसी के अनुसार नानक ने कहा कि युग युग मे धर्म का ह्रास होकर कलियुग मे धम का केवल एक चरण रह जाता है -

सतजुगि साचु कहै सभु कोई ।सचि वरतै साचा सोई ।।
मनि मुखि साचु कहै सभु कोई ।सचि वरतै साचा सोई ।।५।।
त्रेतै धरम कला इक चूकी । तीनि चरण इक दुबिधा सूकी।।
गुरमुखि होवै सु साचु वखाणै मनमुखि पचै अवाई हे ।।६।।
दइआ दुआपुरि अधी होइ । गुरमुखि साचु तिथाई हे ।।८।।
राजे धरमु करहि परथाए । आसा बंधे दानु कराए ।।
राम नाम बिनु मुकति न होई । थाके करम कमाई हे ।।६।।
कली काल महि इक कल राखी । बिनु गुर पूरे किनै न भाखी।।
मनमुखि कूड वरतै वरतारा बिनु सतिगुर भरमु न जाई हे ।।१३।।गु०ग्रं०पृ०१०२४-२३।

दादू

दादू के अनुसार धर्मान्तर्गत आडम्बर और पाखड का कोई स्थान नहीं होना चाहिए। आडम्बर औरपाखड का प्रत्याख्यान करने की दृष्टि से ही दादू ने पाषाण,महामाई, भैरव, भूत और तीर्थ पूजा की निंदा करके एक सत्य राम की उपासना पर बल दिया है --

पत्थर पीवे धोइकरि, पत्थर पूजे प्राण ।
अन्ति काल पत्थर भये, बहु बूडे यहि ज्ञान ।।१४०।।बा०भा०१ पृ०१४७।।
पाहण की पूजा करै, करि आतम घाता ।
निरमल नैन न आवई, दोजग दिसि जाता ।।१।।
पूजे देव दिहाड़िया, महामाई मानै ।
परगट देव निरंजना ताकी सेव न जानै ।।२।।

भैरौं भूत सब भरम के, पसु प्राणी ध्यावें ।
सिरजनहारा सबनि का, ता कूँ नहि पावै ।।३।।
आप सुवारथ मेदिनी, का का नहि करई ।
दादू साचे राम बिन, मरि मरि दुख भरई ।।४।।बा०भा०२ पृ०७६।।
दादू कोई दौडे द्वारिका, कोई कासी जाहिं ।
कोई मथुरा को चले, साहिब घट ही माँहि ।।१४७।।बा० भा०१
पृ० १४८।।

सुन्दरदास

नानक के समान सुन्दर ने भी वर्ण-धर्म का उल्लेख करते हुए कहा है कि ब्राह्मण वह है जो ब्रह्म को जानता है, क्षत्रिय वह है जो ज्ञान क्षत्र को धारण करके प्रजा का पालन करता है, वैश्य वह है जो ऐसा व्यापार करता है जिससे आत्मा को लाभ होता है, शूद्र वह है जो शूद्र देह को त्याग कर अपने स्वरूप मे समाहित होता है -

ब्राह्मण कहावै तौ तू आपु ही कौ ब्रह्म जानि, अति ही पवित्र सुख सागर मे न्हाइये।
क्षत्री तू कहावै तौ तू प्रजा प्रतिपाल करि सीस पर एक ज्ञान क्षत्र कौ फिराइये।।
वैश्य तूं कहावै तौ तू एक ही व्यापार जानि, आत्मा कौ लाभ होइ अनायास पाइये।
शूद्र तू कहावै तौ तूं शूद्र देह त्याग करि, सुन्दर कहत निज रूप मै समाइये ।।२५। सु ग्रं
~~वही~~ पृ० ६१२।।

सुन्दर ने गुण-भेद के आधार पर भी वर्ण धर्म की व्याख्या की है। सुन्दर के अनुसार शूद्र तमगुण प्रधान, वैश्य तमरज प्रधान, क्षत्रिय रजगुण प्रधान और ब्राह्मण सत्वगुण प्रधान है -

देहई कौं आपु मानि देहई सौं होइ रह्यौ, जड़ता अज्ञान तम शूद्र सोई जानिये।
इन्द्रिनि के व्यापारनि अत्यन्त निपुनि बुद्धि, तमोरज ~~बर्द्धमान~~ दुहुं करि वैश्य हू प्रमानिये।।
अतहकरण माहि अहंकार बुद्धि जाके, रजोगुण बर्द्धमान क्षत्री पहिचानिये ।।
सत्वगुण बुद्धि एक आत्मा बिचार जाके, सुन्दर कहत वह ब्राह्मन बखानिये।।१२।।
वही पृ० ६०६।।

इसी प्रकार सुन्दरदासने ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, बानप्रस्थ, और संन्यास धर्म आश्रम के लक्षण निर्धारित करते हुए कहा है कि ब्रह्मचारी वह है जो वेदप्रतिपादित ब्रह्म को जानता है, गृहस्थी वह है जो सुमति प्रिया से विवाह करके ज्ञान रूपी पुत्र उत्पन्न करता है, बानप्रस्थी वह है जो तन को वनवास समझ कर कर्म रूपी कदमूल का भक्षण कर लेता है और

संन्यासी वह है जो तीनों लोकों को त्याग देता है -

ब्रह्मचारी होइ तू बेद कौ बिचार देखि, नाही कौसमझि जोई कह्यौ वेद अंत है।
गृही तू कहावै तौ तू सुमति प्रिया वौ ब्याहि, जाके ज्ञान पत्र होइ उहि भाग्यवंत है।
बानप्रस्थ होइ तौ तू काया बनवास करि कर्म कंद मूल खाहि फलहू अनंत है।
सन्यासी कहावै तौ तू तीन्यौ लोक न्यास करि, सुन्दर परमहंस होइया सिघंत है।।

२६ ।।वही पृ०६१२।।

किन्तु सुन्दर के अनुसार भगवतभक्ति के समान अन्य कोई धर्म नहीं है -

नाम बराबर तोलिया तुलै न कोउ धर्म ।।सु०ग्र० पृ० ६७७-८४६ ।।

दरिया

सुन्दर के समान दरिया मारवाड़ वाले ने भी कहा है कि राम नाम सर्वधर्म का मूल है, इस धर्म के अतिरिक्त अन्य किसी धर्म से जीव के संशय नही मिट सकते-

दरिया दूजे धर्म से, संसय मिटै न सूल ।
राम नाम रटता रहै, सब धर्म का मूल ।।३६।।बा०पृ०८।।

मलूकदास

मलूकदास ने मुसलमानों के नमाज, रोजा, बाँग, और हिन्दुओं की मूर्तिपूजाकी निन्दा की है । मलूक के धर्म में चेतन ब्रह्म की पूजा को स्थान प्राप्त हुआ है । मलूक के अनुसार धर्म में हिंसा भाव नही होना चाहिए --

तौजी और निमाज न जानूँ, ना जानूँ धरि रोजा ।
बाँग जिकर तबही से बिसरी, जब से यह दिल खोजा ।।बा०पृ० ७।।
मूरत पूजै बहुत मति, नित नाम पुकारैं ।
कोटि कसाई तुल्य हैं जो आतम मारैं ।।३।।बा० पृ०८ ।।

मलूक के अनुसार संसार मे रह कर चेतन जीवों की पूजा करनी चाहिए । जगत् में जो प्राण दुखी हैं उनका दु ख दूर करके सबको सुख देना चाहिए । मनुष्य के हृदय मे दया और धर्म के भाव होने चाहिए --

जे दुखिया संसार मे, खोवौ तिनका दुक्ख ।
दलिदर सौंप मलूक को लोगन दीजे सुक्ख ।।५३।।बा० पृ० ३७।।
दया धर्म हिरदे बसै, बोलै अमृत बैन ।
तेई ऊँचे जानिये, जिनके नीचे नैन ।।५७।।बा०पृ०३७।।

वे कहते हैं हिन्दू मुसलमान सभी ब्रह्म की पूजा करते है किन्तु ब्रह्म उसकी पूजा करता है जो धर्मशील है -

सब कोउ साहिब बन्दते, हिन्दू मुसलमान ।
साहिब तिनको बन्दता, जिसका ठौर इमान ।।५६।।बा०पृ० ३७।।

दरिया बिहारवाले

दरिया ने गुण-मूलक वर्ण धर्म और मानव धर्म का उल्लेख किया है । दरिया के अनुसार ब्राह्मण वह है जो ब्रह्मचर्य का पालन करता है -

पंडित सोइ जो पढ़ि के बूझै जाति जनेऊ सोई ।
ब्रह्मचर्ज ते ब्राह्मन कहिये बरण अठारह होई ।।द०एक अनु० पृ० १२५।।

दरिया ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण माने है, किन्तु दरिया के अनुसार जिसने ब्रह्म दर्शन कर लिये, उसकी कोई जाति नहीं रहती -

ब्राह्मन क्षत्री बैस है, सुद्र रमैता जाति ।
अविगति जिन्ह पहचानिया, नाहि काहु की पाति ।।६०१ ।।वही पृ० १८४।।

दरिया के अनुसार संतों की कोई जाति नही होती -

जाति पाति नहि पूछिय पूछहु निर्मल ज्ञान ।
संत की जाति अजाति है, जिन्हि पायो पद निर्बान ।।४८३।।वही पृ०१८१

दरिया के अनुसार धर्म में दया भाव का होना आवश्यक है । दया के बिना धर्म व्यर्थ है -

दया बिना का धर्म बखाना, बिना दया किमि गुन पहिचाना ।।वही पृ०६०।

इस प्रकार निर्गुण सन्तो का धर्म वर्ण, वर्ग और जाति की सीमाओ में परिसीमित नही हैं । निर्गुण संतो का धर्म मानव धर्म है जिसमे हिन्दू मुसलमान सब को समानाधिकार है । निर्गुण सन्तो के अनुसार मानव धर्म मे सत्य, अहिंसा, दया, परोपकार और सहिष्णुता आदि गुण होने आवश्यक है । निर्गुण संतो ने वर्णाश्रम धर्म का भी उल्लेख किया है किन्तु वह गुणमूलक है उनके अनुसार ब्राह्मण वह है जो ब्रह्म को जानता है, क्षत्रिय वह है जो ज्ञान तलवार से पापी को नष्ट करता है, वैश्य वह है जो विषयो का त्याग करता है और शूद्र वह है जो शूद्र देह को त्याग कर ब्रह्म को प्राप्त करता है। और जन्मगत जातिभेद मे उनकी आस्था नही है ।

घ राजनीति

समाज और राज्य का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। समाज का प्रभाव राज्य पर और राज्य का प्रभाव समाज पर पडता है। जीवन का जो लक्ष्य होता है उसका समाज और राज्य दोनो पर प्रभाव पडता है। यदि जीवन का लक्ष्य भौतिक सुख की प्राप्ति हो तो समाज मे स्त्री, पुत्र, सम्पत्ति और राजपद को सर्वोपरि स्थान प्राप्त होगा। यदि जीवन का लक्ष्य ब्रह्म प्राप्ति हो तो समाज में स्त्री, पुत्र, सम्पत्ति अर्थ और राज्य आदि को गौण स्थान प्राप्त होगा। निर्गुण सन्तो का जीवन लक्ष्य ब्रह्म-प्राप्ति है। अत उन्होने सकीर्ण सामाजिक सम्बन्धो को असत् बतलाकर मानव धर्म अथवा मानव-प्रेम को प्रमुखता दी है। निर्गुण सन्तो का जीवन लक्ष्य ब्रह्म-प्राप्ति होने के कारण, उनके साहित्य मे राजनीति और अर्थनीति से सम्बन्धित विशेष सामग्री उपलब्ध नहीं होती।

~~नामदेव~~

कबीर

कबीर ने जिस राज्य का वर्णन किया है, वह लौकिक राज्य नही है, वह राज्य तीन लोकों से भिन्न है -[१]

जहँ सतगुरु खेलत ऋतु बसत। परम जोत जहँ साध सत।।१।।

तीन लोक से भिन्न राज। जहँ अनहद बाजा बजै बाज।।२।। शब्दा०भा०१पृ०८२।

कबीर के अनुसार बडे देशमें बड़ा राज्य होना चाहिए-

कबीर भलो मधुकरी नाना बिधि को नाजु।

दावा काहू को नहीं बडो देश बड़ राजु।।१००।। क०ग्र० पृ० २५६।।

राजा राम के राज्य में ऐसा न्याय है कि जो जैसा करता है उसको वैसा ही फल प्राप्त होता है -

राम राइ तेरी गति जाणी न जाई।

जो जस करिहै सो तस पइहै, राजा राम नियाई।।क०ग्र० पृ० १५६।।

१- सत सतोष ले लरनैं लागे, तोरे दस दरवाजा।
साध सगति अरु गुरु कीकृपा थै, पकर्यौ गढ को राजा।।
भगवत भीर सकति सुमिरण की काटि काल की पासी।
दास कबीर चढे गढ ऊपरि, राज दियौ अबिनासी।।३५६।। क०ग्र०पृ० २०८

कबीर के अनुसार राजा और प्रजा मे समानता का भाव रहना चाहिए -

धनवता अरु निर्धन मनई ताकी कछू न कानी रे।

राजा परजा सम करि मारै ऐसो काल बडानी रे।।क०ग्रं० पृ०२७४।।

दादू

दादू नेकबीर के समान ही राम राज्य का उल्लेख किया है। दादू के अनुसार जहाँ नाम और नीति का सयोग रहता है वहाँ पर सदाराम का राज्य रहताहै-

जहाँ नांव तहां नीति चाहिये, सदा राम का राज।।बा० पृ०१७८।संपा०मंगलदेव स्वामी

दादू के अनसार जीवन के राज्य में एक ही राजा होना चाहिए। जिस राज्य में एक राजा होता है, उसमें सुख और आनन्द मंगल है। जिस राज्य में दो राजा होते हैं, उसमे दुख और द्वन्द्व रहते हैं, तथा उस राज्य मे कोई सुखी नही रहता-

दादू नगरी चैन तब, जब इक राजी होइ।

दोइ राजी दुख दुंद में, सुखी न वैसे कोइ।।३२।।

इक राजी आनद है नगरी निह्चल वास।

राजा परजा सुखि बसै, दादू जोति प्रकास।।३३।।बा० भा०१ पृ० ११६।।

कबीर और दादू के अतिरिक्त अन्य निर्गुण सतो की वाणियो मे राजनैतिक बिचारो का अभाव है। कबीर और दादू के अनुसार ऐसी राज्य व्यवस्था होनी चाहिए जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को कर्मानुसार फल प्राप्त हो सके। राजा और प्रजा मे समानता का भाव रहना चाहिए। निर्गुण सन्तो ने जिस राज्य का उल्लेख किया है वह अलौकिक राज्य है। मलूकदास तो उस आध्यात्मिक राज्य के पक्ष में है जिसमे भगवद् भक्ति होती है। मलूक के अनुसार उस राज्य को छोड़ देना चाहिए जिसमे राम नाम का जप नहीं होता-

राम राम के नाम को, जहाँ नहीं लवलेस।

पानी तहाँ न पीजिये, परिहरिये सो देस।।५।।संसु०सार० भाग २ पृ०३६।

:ड : अर्थनीति

निर्गुण सन्तों ने अर्थनीति को भी आध्यात्मिक स्वरूप प्रदान किया है। कबीर ने अर्थपरता की निन्दा की है। कबीर के अनुसार समस्त संसार पेट के कारण 'ब्रह्म को भूला हुआहै -

नबही भूलाना पेट के घन्धा ।।१।। शब्दा० भा० २ पृ० ३९।।

हरि का सिमरन छाडिके पाल्यो बहुत कुटुम्ब ।

धंधा करता रहि गया भाई रहा न बघु ।।१९९।। क०ग्रं० पृ० २८२।।

उनके अनुसार खेती और पदार्थों का विनिमय आदि सब प्रपंच हैं -

क्या खेती क्या लेवा देवी परपंच झूठ गुमाना ।

कहि कबीर ते अंत बिगूते आया कालनिदाना ।।२१। क०ग्रं० पृ० २७०।।

कबीर के अनुसार[1] जीव को ऐसी अर्थव्यवस्था करनी चाहिए, जिससे लाभ के कारण मूल नष्ट न हो । लाभ को देखकर गर्व नहीं करना चाहिए । जो व्यापारी धन का संचय करता है वह अंत में पश्चाताप करता है क्योंकि इस संसार से प्रत्येक को प्रस्थान करना पड़ता है । जीव जब परलोक में जाता है यह धन उसका साथ नहीं देता । कोई भी भौतिक विषय जीव का सम्बन्धी नहीं है -

मन बनजारा जागि न सोई, लाहे कारनि मूल न खोई ।

लाहा देखि कहा गरबाना, गरब न कीजै मूरिख अयाना।।

जिनि धन सच्या सो पछिताना, साथी चलि गये हम भी जाना ।।

निस अंधियारी जागहु बंदे, छिटकन लागे सबही संधे ।।

किसका बंधू किसकी जोई, चल्या अकेला सगिन कोई ।।

ढरि गये मंदिर टूटे बंसा, सूके सरवर उड़ि गये हंसा ।।

पंच पदारथ भरिहै खेहा, जरि बरि जायगी कंचन देहा ।।

कहत कबीर सुनहु रे लोई, राम नाम बिन और न कोई ।।३६७। क०ग्रं०पृ०२११।

कबीर के अनुसार अर्थ नीति ऐसी नहीं होनी चाहिए जिसमें मूल घट कर ब्याज बढ़े । यह जीवन परमार्थ-साधना के लिए मिला है । यदि इसे लौकिक अर्थ साधना में नष्ट किया गया तो मानो पूँजी नष्ट करके सिर पर ब्याज बढ़ाया गया -

मेरे जैसे बनिज सौं कवन काज मूल घटै सिरि बधै ब्याज ।

बनिज छुटानौ पूजी टूटि, षाडू दहदिसि गयौ फूटि।।

कहै कबीर यहु जन्मवाद, सहजि समानूं रही लादि ।।३८३।। क०ग्रं०पृ०२१५।।

१- क० ग्रं० पृ० १९३

कबीर के अनुसार बाजार मे ब्रह्म रूपी हीरा क्रय-विक्रय होता है। ब्रह्म रूपी हीरे को खरीदने के लिये विशेष परख जौहरी की आवश्यकता है। ब्रह्म रूपी हीरे को प्रत्येक स्थान पर नहीं खोलना चाहिए ब्रह्म विद्या के लिये पात्र अपात्र का विचार कर चाहिए और इसे अच्छे प्रकार से गाँठ में बाँधकर अपने पथ पर चलते रहना चाहिए-

हरि हीरा जन जौहरी, सबन पसारी हाट।
जब आवै मन जौहरी, तब हीरो की साट।।
हीरा तहाँ न खोलिये जहाँ कुंजरो की हाट।
सहजहि गाँठी बाँधिये लगिये अपनी बाट।।
हीरा परा बजार मे, रहा छार लपटाय।
बहुतक मूरख पचि मुये, कोइ पारखी लिया उठाय।।बीजक पृ० १०२।।

कबीर के अनुसार इस संसार रूपी बाजार मे कोई कासा कोई तांबा कोई लौंग और कोई सुपारी अर्थात् भौतिक विषय खरीदता है किन्तु संत हरि नाम को खरीदते है।जीव को हरि नाम का व्यापारी होना चाहिए। अमूल्य हीरा मिलने पर भव-बन्धन नष्ट हो जाते हैं। अतः जीव को इसी सत्य पदार्थ का व्यापारी होना चाहिए[1] -

किनही बनज्या कासा तांबा किनही लौंग सुपारी।
सनहु बनज्या नाम गोविंद का ऐसी खेप हमारी।।
हरि के नाम के व्यापारी।
हीरा हाथ चढ़या निर्मोलिक छूटि गई संसारी।।
साचे लाए तौ सच लागे साचे के व्यापारी।
सांचौ वस्तु के भार चलाए पहुँचे जाइ भंडारी।।
आपहि रतन जवाहर मानिक आपै है पसारी।
आपै है दस दिसि आप चलावै निहचल है व्यापारी।।
मन करि बैल सुरति करि पैडा ज्ञान गोनि भरि डारी।
कहत कबीर सुनहु रे संतहु निबही खेप हमारी।।४४।क०ग्र० पृ०२७७।।

१- कोई आवै तौ दौलत माँगै, भेंट रुपैया लीजै जी।।४।।
कोई करावे ब्याह सगाई,सुनत गुसाँई रीझै जी।।५।।
साँचे का कोइ गाहक नाहीँ, झूठे जक्त पतीजै जी।।६।।शब्दा० भा०१ पृ० ६७।

संसार रूपी दिसावर में आकर राम नाम जप का लाभ प्राप्त करना चाहिए। संसार मे सबको लोभ प्रिय है तत इस जग मे कुशल व्यापारी वही है जो मूलको कम नही होने देता -

बोखौ बनज ब्यौपार करीजै, आइनै दिसावरि रे राम जपि लाहौ लीजै ।।
जब लग देखौ हाट पसारा, उठि मन बणियां रे, करि ले बणज सवारा।।
बेठो हो तुम्ह लाद लदाना, औघट घाटा रे चलना दूरि पयाना ।
खरा न खोटा ना परखाना, लाहे कारनि रे सब मूल हिराना ।।
सकल दुनी मै लोभ पियारा, मूल ज राखे रे सोई बनिजारा ।।
देस भला परिलोक बिरांना, जन दोइ चारि नरे पूछौ साध सयाना।।
सायर तीर वार न पारा, कहि समझावै रे कबीर बणिजारा ।। २३४।।
क० ग्र० पृ० १६७।।

इस दिसावर में बहुत से जीव अमृत को छोड़ कर विष का पान करते है और लाभ के भ्रम मे मूलधन तक नष्ट कर देते हैं, किन्तु कबीर उस धन को प्राप्त करते है जिससे आवागमन मे नही पडना पडता -

तब काहे भूलौ बनजारे, अब आयौ चाहै संगि हमारे ।।
जब हम बनजी लौंग सुपारी, तब तुम्ह काहे बनजी खारी ।।
जब हम बनजी परमल कस्तूरी, तब तुम्ह काहे बनजी कूरी ।।
अमृत छाडि हलाहल खाया, लाभ लाभ करि मूल गँवाया ।।
कहे कबीर हम ~~हलनहल~~ बनज्या सोई, जाथैं आवागमन न होई ।। २६१। क०ग्र०पृ० १८७

कबीर के अनुसार अर्थनीति ऐसी होनी चाहिए जिसमे कर न देना पडे। कबीर नये व्यापारी नहीं हैं, जो यम काल को कर दे। वे हरि नाम को लाद कर हरि के टांडे मे व्यापार के लिये जाते हैं -

रे जम नाहिं नवे ब्यौपारी, जे भरै जगाति तुम्हारी ।
बसुधा छाडि बनिज हम कीन्हो, लाद्यौ हरि कौ नांऊं ।
रांमनाम की गूंनि भराउं, हरि कै टांडै जाऊं ।।
जिनकै तुम्ह अगिवानी कहियत, सो पूंजी हंम पासा ।
अब तुम्हारी कछु नांहीं, कहै कबीरा दासा ।। २५४।। क०ग्र० पृ० १७४।।

कबीर के अनुसार जीव स्वयं ही ग्राहक और स्वयं ही बेचने वाला है। यदि जीव को राम बेचता है तो उसे कौन रखसकता है, और यदि उसे राम रखता है तो कौन उसे बेच सकता है --

आँनि ब्ध्वरा हाटि लगाग, नौ ग्राहक नौ बेचनहा ।।

बेचै नाम ता सार लौन, ता नाम नौ बेचौन ।।

कहै कबीर मैं तन मन वारूया, साहिब अपना किना बिसासा ।।११३।। श०ग० पृ०१०४।।

कबीर के अनुसार इस जगत मे यदि किसी की नौकरी करनी है तो केवल राम नाम की नौकरी करनी चाहिए । नाम की नौकरी करने से ही जीव को अमर लोक प्राप्त होता है । अपने नाम का व्यापारी बन कर बाजार मे जाना चाहिए । साधु और सन्त इस नाम के ग्राहक है । वस्तुएँ किस प्रकार बेचना चाहिए, इस सम्बन्ध मे कबीर ने कहा है कि शील और सन्तोष के दो पलडे लेकर तथा उनमे सुरति की डंडी लगाकर, ज्ञान के बांट से पूरा तौलना चाहिए । इस व्यापार मे काल तथा कष्ट का न होना ही लाभ है -

ऐसा करो नाम नौकरी ।

नाम विदेही निशु दिन सुमिरैं, नहिं भूलै छिन घरी ।।१।।

नाम विदेही जो जन पावै, कबहुँ न सुरति बिसरी ।।२।।

ऐसो शब्द सतगुरु से पावै, आवागवन हरी ।।३।।

कहै कबीर सुनो भाई साधो, पावै अमर नगरी ।।४।।

ब्योपारी निज नाम का हाटे चलु भाई ।

साध सत गहकी भये, गुरु हाट लगाई ।।

अग्र वस्तु एक मूल है सादागर लाई ।।१।।

सील सतोष पलरा भये, सुरति करि डाँडी ।

ज्ञान बटखरा चढ़ाइ के पूरा करूँ भाई ।।२।।

करि सौदा घर को चले, रोके दरबारी ।

लेखा माँगे बस्तु का, कहँ के ब्योपारी ।।३।।

कहै कबीर बैठे रहो, सिर लेहु हमारी ।

काल कष्ट ब्यापै नहीं, यही नफा तुम्हारी ।।७।। शब्दा० मा०३ पृ०८-६।

संसार रूपी बाजार में जीव को सतर्क रह कर व्यापार करना चाहिए । सद्गुरु ने जो माल खजाना दिया है, उसे युक्तिपूर्वक रखना चाहिए, उसमें से कुछ भी अंश घटने न पाये, प्रत्युत वह दिन प्रति दिन बढता ही रहे । व्यापारी को क्षमा, दया, शील और युक्ति के साथ बाजार में बैठना चाहिए, तथा धन प्राप्त होने पर उसे मतवाला न हो, प्रत्युत नित्यप्रति कमाई करते रहना चाहिए । जीव रूपी व्यापारी के पास जो धन है उसको हरण करने की दृष्टि से चोर घात लगाये बैठे हैं, अतः उसे

इनसे सतर्क रहना चाहिए—

अब मैं खबरदार रहो भाई ।

सतगुरु दीन्हा माल खजाना, राखो छुपन ताई ।।

पावकी घटने नहिं पावै, दिन दिन होत सवाई ।।१।।

छिमा शील को तरफी पहनै, जुगति लाँगोट ताई ।

दया की टोपी सिर पर देके, और अधिक बनि जाई ।।२।।

वस्तु पाय गाफिल मत रहना, निसि दिन रहो ब्वारी ।

घट के भीतर चोर लगतु हैं, बैठे घात लगाई ।।३।।

तन बंदूक सुमति का सिंगरा, प्रीति का गज ठहराई ।

सुरति पलीता हरदम सुलगै, ऊपर गज चढ़ाई ।।४।।

बाहर वाला खड़ा सिपाही, ज्ञान गम्य लखि दाई ।

साहेब कबीर गावहि दे हदी, हरदम लेत जगाई ।।५।। शब्दा० भा०१ पृ०४५।

कबीर के अनुसार यह बाजार पाप और पुण्य से युक्त है, इसमें धर्म का दण्ड ही कोतवाल है -

पाप पुन्न की हाट लगी है, धरम दण्ड दरवानी ।

पाँच सखी मिलि देखन आईं, एक से एक सियानी ।।३।।शब्दा०भा०१ पृ०४८।।

इस जगत में विषयों का बाजार लगा हुआ है, इसमें पाप और पुण्य दो बनिये बैठे हैं । इस बाजार में हीरे और लाल बिकते हैं -

ऊँची महलिया साहिब के हो, लगी बिषमी बजार ।

पाप पुन्न दोउ बनिया हो, हीरा लाल बिकात ।३। शब्दा० भा०२ पृ०४८।[1]

इसमें संसारी व्यक्ति विषयों का और साधु पुरुष सत्तनाम का व्यापार करते हैं -

कहै कबीर सुनो भाई साधो, या गति अगम अपार ।

सत नाम साधु जन लादैं, विष लादै संसार ।।४।। शब्दा० भा०२ पृ०५१।

संसार क्षणभंगुर है अतः इसमें रहते हुए अधिक अर्थ की कामना नहीं करनी चाहिए-

काहे कूं भींति बनाऊ टाटी, का जानू कहा परिहै माटी ।

काहे कूं मंदिर महल चिणाऊ, मूवां पीछै एक रहण न पाऊं।।

काहे कू छाऊं ऊंचउचेरा, साढ़े तीनि हाथ घर मेरा ।

कहै कबीर नर गरब न कीजै, जेता तन तेती भुइ लीजै ।।३६१।। क०ग्रं० पृ०२०८।।

१- शब्दा० भा० १ पृ० २५

क्योंकि जो सुख राम भजन में मिलता है वह अमीरी में नहीं मिलता। अतः [illegible] संसार में गरीबी में ही जीवन व्यतीत करना चाहिए -

मन लागो मेरो यार फकीरी में ।
जो सुख पावो नाम भजन में, सो सुख नहीं अमीरी में ।। ।।
भला बुरा सब को सुन लीजे, कर गुजरान गरीबी में ।।२।।शब्दा० भा०१ पृ०१५।

रैदास

कबीर की भाँति रैदास भी सांसारिक विषयों के व्यापार से सहमत नहीं है। रैदास के अनुसार इस संसार रूपी हाट में राम नाम रूपी धन ही प्राप्त करना चाहिए अन्य धन जीव का साथ नहीं देता। साधु संगति में अमूल्य वस्तु प्राप्त होती है जिसका नहीं मूल्य मिलता है -

हरि को टाँडो लादे जाइ रे, मैं बनिजारो राम को ।
राम नाम धनपाइयो, ताते सहज करूँ ब्योहार मैं।
औंघट घाट घनो घना रे, निरगुन बैल हमार रे ।
राम नाम धन लदियो, ताते बिषय लाद्यो संसार रे ।।१।।
अनतहि धन धर्यो रे, अनतहि ढूँढन जाइ रे ।
अनत को धरो न पाइये, ताते चाल्यो मूल गँवाइ रे ।।२।
रैन गँवाई सोइ करि, दिवस गँवायो खाइ रे ।
हीरा यह तन पाइ करि, कौड़ी बदले जाइ रे ।।३।।
साधु संगति पूँजी भई रे, बस्तु भई निर्मोल रे ।
सहज बरदवा लादि करि, चहुँ दिसि टाँडो मोल रे ।।४।।बा०पृ०३५।।

नानक

नानक के अनुसार सत्य का व्यापार होना चाहिए और उस व्यापार से सत्य का ही लाभ होना चाहिए -

साचउ बखरु लादीऐ लाभु सदा सचु रासि ।
साची दरगह बैसई भगति सची अरदासी।।
पति सिउ लेखा निबड़ै रामु नामु परगासि ।।७।।गु०ग्र० पृ०५५।

दादू

कबीर, रैदास के समान दादू भी राम नाम के खरीदार हैं -

राम नाम कूँ बणिजन बैठे, ताथैं माँड्या हाट ।

साईं सौं सौदा करैं, दादू खोलि कपाट ।।सा० १७६ ।भा०१ पृ० १५०।।

दादू के अनुसार जीव ब्रह्म की सम्पत्ति है, अत: उसे ब्रह्म को देकर उऋण होने में ही जीव का भला है -

जे सिर सौंप्या राम कौं, सो सिर भया सनाथ ।

दादू दे ऊरण भया, जिसका तिसके हाथ ।।४०।।

जिसका है तिसकौं चढै, दादू ऊरण होइ ।

पहिली देवै सो भला, पीछै तो सब कोइ ।।४१।।सा० भा०१ पृ० २११।

सुन्दरदास

सुन्दर के अनुसार इस संसार रूपी बाजार में नाना प्रकार के पदार्थ मिलते हैं । अत: उनमें से कोई अच्छा पदार्थ परख कर खरीदना चाहिए । इस बाजार में ग्राहक अनेकों प्रकार से ठगा जाता है । अतएव उसे विषय सुख को छोड़ कर हरिनाम रूपी हीरे को प्राप्त करना चाहिए --

सुन्दर सौदा कीजिए भली बस्तु कछु षाटि ।

नाना बिधि काटागरा उस बनिया की हाटि।।४२।।

सुदर विष बलि षार तजि ले केसरि कर्पूर ।

जौ तू हीरा लाल ले तौ तासौ नहि दूर ।।४३।।

सुदर ठगबाजी जगत यह निश्चय करि जानि।

पहले बहुत ठगाइयौ वहै घणी करिमानि ।।४४।।

सुन्दर ठग्यौ अनेक बार साबधान अब होइ ।

हीरा हरि कौ नाम है छाडि बिषै सुख लोह ।।४५।। सु० ग्र०

जीव का साहुकार राम है और जीव उसका बनिया अत: सुन्दरदास ऐसे बनिया है जो हरिनाम का व्यापार करता है । इससंसार में विविधि प्रकार का व्यापार हो रहा है । इस संसार रूपी बाजार में जीव सौदागर के रूप मे आया है । वह जैसा व्यापार करता है, उसको वैसा ही धन प्राप्त होता है । इस बाजार में जीव अपनी रुचिरानुसार अनेक प्रकार के पदार्थ खरीदते हैं किन्तु संत पुरुष हरि रूपी हीरे को प्राप्त करते हैं जिसके मिलने पर सभी दु:ख दारिद्र्य नष्ट हो जाते हैं -

हमरै गाहु समझ्या सौदा, हम ताके नाहि टोटा ।
यह हाट दई जिनि लाया, अपना करि जानि पठाया ।।
पूंजी कौ अंत न पारा, हम बहुत करि भण्डारा ।।१।।
लई वस्तु अमोलक भारी गव [illegible] विषै पति षारी।
भरि राख्यौ नव्हिं भांना, कोई षाली रह्यौ न कोना ।।२।।
जो गाहक लैन आवै, मन मान्यौ सौदा पावै ।
देषौ बहु भाति किराना, उठि जाइ न और दुकाना ।।३।।
सम्रथ की कोठी आयै, जब कोठी माल चहाये ।
बनियै हरिनाव निवारा, यह बनिया सुदरदासा ।।४।।
देषहु साइ समझ्या ऐसा, नो रहै अपगन केसा ।
यहु हाट रच्यौ ससारा, तामै बिबिध भाति ब्यौपारा।।
सब जीव सौदागर आया जिनि कनज्या तैसा पाया ।।१।।
किनहूं बनिजी षलि षारी, किनहुं लइ लौंग सुपारी ।
किनहूं लिये मूगा मोती, किनहूं लइ काच की पोति ।।२।।
किनहू लइ औषाधि मूरि, किनहूं केसर कस्तूरी ।
किनहूं लियौ वहुत कनाजा, किनहू लियौ लहसण प्याजा ।।३।।सु०ग्रं० पृ० ८८८।
संतनि लीयौ हरि हीरा, जिनक्यौं कीयौ हम सीरा ।
दुख दारिद्र निकट न आवै, यौं सुंदर बनिया गावै ।।४।।वही पृ० ८८६।।

सुंदर के अनुसार अर्थोपार्जन के लिए जीव को श्रम करने की आवश्यकता नही है । जीव का केवल राम पर विश्वास होना चाहिए वह प्रत्येक की जीविका का प्रबन्ध स्वयं करते है-

जलचर थलचर ब्योमचर सबकौ देत अहार ।
सुदर चिंता जिनि करै निसदिन बारबार ।।३।।
सुन्दर धीरज धारि तू गहि प्रभु कौ बिश्वास ।
रिजक बनायौ राम जी आवै तेरे पास ।।५।।
काहे कौ परिश्रम करै जिनि भटकै चहुं ओर।
घर बैठे ही आइ है, सुदर सांझ कि भोर ।।८।।
सुन्दर पशु पंषी जिते चूंन सबनिकौं देत ।
उनके सौदा कौनसा कहो कौन से षेत ।।१५।।

सुदर के अनुसार जीव को केवल हरि भजन करना चाहिए । नौकरी, व्यापार कृषि आदि धंधे कष्टप्रद है अत जीव को अर्थ व्यवस्था की आवश्यकता नहीं है[1]।

मूलकदास

मूलक के अनुसार व्यापारमें लालच नहीं करना चाहिए । लालची व्यापारी को दिन प्रति दिन हानि उठानी पड़ती है । ससार मेरहते हुए जीव को किसी पदार्थ की कामना नहीं करनी चाहिए क्योंकि मागने से उसे कुछ भी प्राप्त नहीं होता और बिना मांगे सब कुछ उपलब्ध हो जाता है -

सबसे लालच का मन खोटा ।
लालच नैं व्यापारी तिनि, दिन दिन आवै टोटा ।६।१।
मांगे तैं जग नाक सिकोरे, गोविंद भला न मानै ।
अनमांगे राम गले लगावै, बिरला कोइ जन जानै ॥
जो मांगे सो कछू न पावै, बिन मांगे हरि देता ।
कहैं मूलक नि नाम भजे जे, तजापन करि लेना ।।६।।बा०पृ०१६।।

मूलक के अनुसार राम नाम के बाजार में धर्म का ही सौदा करना चाहिए -

धर्महिं का सौदा भला, दाया जग ब्योहार ।
राम नाम की हाट ले, बैठा खोल किवार ।।१८।।बा० पृ० ३३।।

:च० कर्म सिद्धांत

भारतीय धर्म साधना में कर्म परमार्थ साधन माना गया है । जीव जैसे कर्म करता है, उसको वैसे ही फल प्राप्त होते हैं । भारतीय धर्मग्रन्थों के अनुसार शुभकर्म मोक्ष प्रदान करते हैं और अशुभ कर्म भव बन्धन का कारण बनते हैं[2]। कर्मों के अनुसार जीव विविध

१-सुदर सुख के कारनैं दुःख सहै बहु भाइ । को खेती को चाकरी कोउ बणज को जाइ।४६।
~~करे खेती के कारने दुःख सहै~~
पराधीन चाकर रहै खेती मैं संताप ।टोटौ आवै बणज मै सुन्दर हरि भजि आप।।४७।।सु० ग्र
इसी भाव का एक दोहा मूलकदास का मिलता है -

अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम ।
दास मूलका कहत हैं सब के दाता राम ।।हिंदी सा० डा०श्यामसुदरदास पृ०१६१।

२- गीता ३।९, १७।२६, बृहदा० ४।४।५

योनियों और विविध लोकों में भी भ्रमण करना है। गदीप ने यही भारतीय क्रम दिखाया है। लगभग सभी के अनुरूप निर्गुण सन्तों ने कर्म सिद्धान्त का उल्लेख किया है।

नामदेव

नामदेव ने कर्म सिद्धान्त का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है। गीता में यह कहा गया है कि कर्म ब्रह्म अर्थात् शरीर[1] से उत्पन्न हुआ है, और ब्रह्म अक्षर से उत्पन्न हुआ है-

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।।३।१५।।

इस प्रकार का ज्ञान वेद से होता है गीता १६।१५-१८ ।इस प्रकार कर्मविधान में वेद आवश्यक माना गया है। गीता में शास्त्र नियत कर्मों का भी उल्लेख मिलता है और ये कर्म जीव के लिए आवश्यक माने गये हैं -

नियतस्य तु सन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।।१८।७।

ऐसा लगता है कि नामदेव ने कर्म को बन्धन का कारण माना है। उन्होंने कहा है कि यदि शास्त्र और वेद न होते तो कर्म भी न होते -

चदु न होता सुरु न होता पानि पवनु मिलाइआ ।

सासत्र न होता बेदु न होता करमु कहाँ ते आइआ ।।सं०गो०म०स० के देन पृ०२५२।।

इसप्रकार नामदेव ने कर्म की उत्पत्ति शास्त्र और वेद से मानी है। कर्मों का सञ्चित कोष प्रारब्ध अथवा भाग्य कहलाता है। भाग्य कर्म के अन्तर्गत ही आता है। कर्म के अन्तर्गत आने वाले भाग्य का जीव स्वयं ही निर्माता है। कर्मों का चरम फल राम की प्राप्ति के लिए गुरु-शरणागति बताया है -

जाके मसतकि लिखिउ करमा ।

सो भजि परि है गुरकी सरना ।।वही पृ० २५७।।

कबीर

कबीर के अनुसार प्रारब्ध कर्म शुभ और अशुभ दो प्रकार के होते हैं[2] -

औरे मन धीरज काहे न धरै ।

सुभ औंर असुभ करम पूरवले, रती घटै न बढै ।।१।।शब्दा० भा० २ पृ० १।

१- अत्र च ब्रह्म शब्द निर्दिष्ट प्रकृति परिणामरूपशरीरम् ।।गीता ३।१५ रामानुज भाष्य।

२- न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते ।।गीता १८।१०।।

...दिया कबीर ने जहाँ कर्म को भवबन्धन का कारण माना है वहाँ उन्होंने उसे परमार्थ साधन भी माना है। ऐसा प्रतीत होता है कि कबीर ने शुभ कर्मों को परमार्थ साधन मे सहायक के रूप में लिया है और अशुभ कर्मों को बन्धन के रूप में। उपनिषदों और गीता मे कर्म को जीव के बन्धन का कारण माना[1] गया है। कबीर ने भी कई पदों में कर्म को भव बन्धन का कारण माना है[2]। कबीर के अनुसार सारा कर्म करके नाचता जो रहा है, और वह कर्म की बंसी मे मछली की भाँति फँसा हुआ है -

करम करि के जग बौराया, सक्ति भक्ति ते बाँधिनि माया ।। बीजक पृ० ७

कर्म की बंसी लाय के, पकर्यो जग सारा हो । वही पृ० ७० शब्दा०भा०१पृ०६१

इस संसार का राजा काल है जिसने कर्म जाल को फैला रखा है -

चल हंसा सतलोक हमारे, छोड़ो यह संसारा हो ।

यहि ससार काल है राजा, करम को जाल पसारा हो ।

चौदह खंड बसे जाके मुख, सब को करत अहार ए हो ।।१।।शब्दा०भा०२ पृ०१३।

और कर्म फंदा है जिसने जीवों को फँसा रखा है -

कर्म फंद जिव फंदिया, जप तप पूजा दान ।

जेहि बस्तु जिव काज होय, सो नहिं परी पिछान ।।अखरा० पृ०११।

भारतीय धर्म ग्रन्थों के अनुसार अशुभ कर्मों के द्वारा जीव को विविध योनियों और असूर्य लोकों में भ्रमण करना पड़ता है[3] --

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽवृता ।

तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनोजना ।।ईशो० ३।।

और उन्हें घोर नरक में गिरना पड़ता है -

प्रसक्ता काममोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ।।गी०१६।१६।।

१-गीता ४।१४, ३।३१ क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ।।८।।मुंड०२।२।८

२- क०ग्रं० पृ० २२८,१५७,शब्दा० भा० २ पृ० १८,१११,६१,शब्दा० भाग ३ पृ०३४।।

करम कोटि को ग्रेह रच्यो रे, नेह गये की आस रे । [illegible]

आपहिं आप बंधाइआ है लोचन मरहिं पियास रे । क०ग्रं० पृ० ८८

३- गी० १६।२० ।।

कबीर ने जीव के विविध योनियों में जन्म लेने और नरक में गिरने का उल्लेख किया है। उनका मत है कि भगवद् भजन के बिना जीव को अनेक योनियों में जन्म ग्रहण करना पड़ता है -

दिवाने मन भजन बिना दुख पैहो।
पहिला जनम भूत का पैहो, सात जनम पछिते हो।
काँटे पर नौ पानी पैहो, प्यासन ही मर जैहो ।।१।।
दूजा जनम सुवा का पैहो, बाग बसेरा लइहो।
टूटे पंख बाज मँडराने, अधफड़ प्रान गँवैहो ।।२।।
बाजीगर के बानर होइ हो, लकड़िन नाच नचैहो।
ऊँच नीच से हाथ पसारि हौ, माँगे भीख न पैहो ।।३।।
तेली के घर बैला होइहौ आँखिन ढाँप ढँपैहो।
कोसपचास घरै में चलिहो, बाहर होन न पैहो ।।४।।
पँचवाँ जनम ऊँट के पैहो, बिन तौले बोझ लदैहो।
बैठे से तो उठै न पैहो, घुरच घुरच मरि जैहो ।।५।।
धोबी घर के गदहा होइहौ, कटी घास न पैहो।
लादी लादि आपु चढ़ि बैठे लै घाटे पहुँचैहो ।।६।
पंछी माँ तौ कौवा होइहौ, करर करर गुहरैहो।
उड़ि के जाय मैला पर बैठो, गहिरे चोंच लगैहो ।।७।।
सतनाम की टेर न करिहौ, मनहीं मन पछितैहो।

कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, नरक निसानी पैहो ।।८।।शब्दा० भा०१।पृ० ४१
यही आकर्म से नर्क पापी पड़े, करम चंडाल की राह न्यारी ।।६।।शब्दा० भा०१पृ०३८।
इस प्रकार होने वाले जीव के विविध जन्मों को स्वीकार कर कबीर ने पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार किया है और इसलिए कबीर ने यह कहा है कि पुनर्जन्म को नष्ट करना चाहिए -

षोडस कवल जब चेतिया, तब मिलि गए श्री वनवारि रे।
जुरामरण भ्रम भाजिया, पुनरपि जनम निवारि रे ।।क०ग्रं० पृ० ८८

पाप कर्मों के कारण जीव का विविध योनियों में जन्म होता है। कबीर के अनुसार जितने भी पाप कर्म किये जाते हैं, वे तब प्रकट होते हैं जब धर्मराज हिसाब किताब पूछता है -[१]

१- धर्मराय जब लेखा माँगे, क्या मुख लैके जायगा ।।शब्दा० भा०१ पृ० ५०

कबीर जैसे पाप किये राखे नल दुराय ।

परगट भये निदान जब जब पूछै धर्मराय ।।९१।।क०ग्रं० पृ० २५३।।

इन पाप कर्मों के नष्ट होने पर जीव को मोक्ष प्राप्त होना है । कबीर के अनुसार कर्मों को काट कर कोयला बनाना चाहिए और उसमें ब्रह्म अग्नि प्रज्वलित करनी चाहिए[1]-

ऐसा लोह मनहि लोह सम नावै ।

करम जारि के कोइला करि दे, ब्रह्म अगिन परचावै ।

नाय तुय के निर्मल करि ले, शील के नीर बुझावै ।।१।।शब्दा०भा०२पृ०१०६।

कबीर के अनुसार जीव को निष्कर्म रहना चाहिए -

करम करै नि करम रहै जो, ऐसी जुगत लखावै ।

सदा विलास त्रासमन नहि मन मे, भोग में जोग जगावै ।।३।।शब्दा०भा०१ पृ० ३।।

भारतीय कर्म सिद्धान्त में एक बात यह मानी गयी है कि जीव कर्म करने में तो स्वतंत्र है किन्तु कर्मों के फल में उसका कुछ भी वश नहीं चलता - गीता२।४७ ... है ... कहा है कि जो जैसा कर्म करता है उसको वैसा ही फल मिलता है -

जो जस करिहै सो तस पइहै, राजा राम नियाई ।।क०ग्रं० पृ० १५६।।

अस्तु कबीर के अनुसार कर्म तभी तक के लिये है जब तक ज्ञान उत्पन्न नहीं होता । ज्ञानोदय होने पर सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं -

ज्ञान के कारन करम कमाय । होय ज्ञान तब करम नसाय ।।८।।शब्दा०भा०१ पृ० ३१।।

रैदास

रैदास के अनुसार मनुष्य जैसा कर्म करता है, उसको वैसा ही फल मिलता है -

जो कुछ बोया लुनिये सोई, ता मैं फेरफार कस होई ।।बा०३ पृ० २८।।

टिप्पणी शेष-

धरमराइ जब लेखा माँग्या, बाकी निकसी भारी ।

पांच किसांना भाजि गये हैं, जीव घर बाध्यौ पारी हो राम ।।क०ग्रं०पृ०१६३।

१- करम काटि कोइला किया, ब्रह्म अगिनि परिचार ।

लोभ मोह भ्रम जारिया, सतगुरु बड़े लुहार ।।१।।शब्दा० भा० २ पृ० २२।।

नाम सेनही होय, काग कुमति गति परिहरै ।

कलह करम सब खोय, हंस होय सतगुरु मिले ।।बखरा० पृ० ३।।

महा सो ध्यान मगन ह्वै बैठे, काट करम की छारा।।४।शब्दा० भा०१ पृ०४३

करम धरम की सार न जाणै सुरति मुकति किउ पाई ।।२।।वही पृ० ४३७।
इसके विपरीत नानक ने यह भी कहा है कि मोक्ष कर्मों से न प्राप्त होकर राम नाम के द्वारा प्राप्त होता है[1]। और उनके मतानुसार कर्म और धर्म व्यर्थ एवं बन्धन की आरसी हैं। गु० ग्र० पृ० ६३५। वे समस्त शुभ कर्मों का फल राम नाम को मानते हैं[2]। वे इसीलिये कर्म सुकर्म को अर्पित कर भक्ति को दृढ करने का उपदेश करते हैं —
करम सुकरम कराए आपे भगति दृड़ाम ।। वही० पृ० ६३५।।

दादू

दादू के अनुसार कर्म बन्धन का कारण है। कर्मों के द्वारा संसार स्वयं क्षीण हो रहा है। जैसे राहु, चन्द्रमा को और ग्रहण सूर्य को ग्रसता है वैसे ही कर्म जीव को ग्रस लेते हैं -

कर्म कुहाड़ा अंग बन, काटत बारम्बार ।
अपने हाथौं आप कौं, काटत है संसार ।।५८।
राहु गिलै ज्यौं चंद कौं गहण गिलै ज्यौं सूर ।
कर्म गिलै यौं जीव कौं, नखसिख लागै पूर ।।५६।।बा० भा०१ पृ० १२१।।

दादू के मतानुसार कर्मों के द्वारा कर्मों का नाश नहीं होता। जब मन ब्रह्म में स्थिर होता है तब सम्पूर्ण कर्मों का नाश होता है --

करमैं करम काटै नहीं, करमैं करम न जाइ ।
करमैं करम छूटै नहीं, करमैं करम बधाई ।।१०२।।
एक मुहूरत मन रहै, नाँव निरंजन पास ।
दादू तब ही देखताँ, सकल करम का नास ।।१००।बा० भा०१ पृ० ९७, १००

भ्रम और कर्म में जग बंधा हुआ है -

भरम करम जग बंधिया पंडित दिया भुलाइ । १३०।बा० भा०१ पृ०१३।।

कबीर के अनुसार दादू ने निष्कर्मताका भी उल्लेख किया है। दादू के अनुसार निष्कर्मी कर्मों के फंद को काट देता है -

निहकरमी सौं मन मिल्या, दादू काटि करम ।१३४।बा० भा०१ पृ०१३।।

~~कबीर के अनुसार दादू ने~~

और जो संयम से रहता है वह भी कर्म बन्धन में नहीं पड़ता -

साध सदा संजम रहै, मैला कदे न होइ ।
दादू पंक परसै नहीं, कर्म न लागै कोइ ।।८६।।बा०भा०१ पृ०१६६।।

१- राम नाम बिनु मुकति न होई थाके करम कमाई है ।।वही पृ० १०२३।।
२- करम करतूति बेलि बिसथारी राममामु फलु हुआ ।।गु०ग्र० पृ०३५१।।

सुन्दरदास

सुन्दर के अनुसार जीव अपनी इच्छा से नाना भाँति के कर्म करता है किन्तु उन कर्मों का फल दुःख होता है -

सुन्दर सुख के कारने करि कर्म करै बहु भाँति ।

कर्मनि कौ फल दुःख है तु भुगतै दिन राति ।।४६।।सु०ग्र० पृ०७०८।।

संपूर्ण संसार कर्म हिंडोले मे डोल रहा है। यह हिंडोला प्रकृति और पुरुष के संयोग से निर्मित है -

कर्म हिंडोला झूलत सब संसार । है निजोर अनादि कौ यह फिरत बारम्बार।।

यह प्रकृति पुरुष मिलाप राच्यौ, सदा करत हिलोल ।

सजि विविध रूप सिंगार भूषन पहरि आनि नोल ।।वही पृ० ८९६-९७।।

सुन्दर के अनुसार कर्म जीव को बन्धन मे डालता है -

एक कर्म बंधन ह्वै मोटा । ये बधा करमनि के पोटा ।

याही सीख सुनै दिन ताना । सुन्दर देह जगत सौं नाना ।।२।। वही पृ०३५८।।

और उनके अनुसार कर्म दो प्रकार के है - पाप और पुण्य । सुन्दर का यह मत है कि जो व्यक्ति जैसा कर्म करता है उसको वैसा ही फल मिलता है । जीव इस भवसिन्धु से अपने कर्मों के द्वारा ही पार होसकता है -

पाप पुन्य का ब्यौरा मागै । कागद लिखे तैरै आगै ।।

रती रती का ह्वै है गिरना । संमुफि देषि निश्चै करि मरना ।।२५।।

वेद पुरान कहै समुफावै । जैसा करै सु तैसा पावै ।।२६।।

अपनी करनी पार उतरना । समुफि देषि निश्चै करि मरना ।।३०।।वही पृ०३३५-३६

किन्तु सुन्दर के मतानुसार कर्मबन्धनों को ज्ञान के द्वारा काटा जा सकता है । ज्ञानी की सभी क्रियाएं ज्ञानयुक्त होती है अत उसे कायिक, वाचिक और मानसिक आदि कोई भी कर्म नहीं लगता । ज्ञानी ज्ञान से कर्म पाश को काट ड देता है । ज्ञानी मुक्त है उसे कोई भी कर्म बन्धन में नहीं डाल सकता -

काइक बाइक मानसी कर्म न लागै ताहि ।

सुन्दर ज्ञानी ज्ञानमय देहक्रिया सब आहि ।।६।।

पहले कियौ न अब करौं आगै की नहि आस ।

सुन्दर ज्ञानी ज्ञान करि काटै बंधन पास ।।१०।।पृ० ८०७।।

इंद्री कर्मनि कौं गृह तिन्ह न कबहू जोर ।

सुन्दर ज्ञानी मुक्त है कर्म न लागै कोर ।।६१।।वही पृ० ८१२।

गीता में यह कहा गया है कि ज्ञानी को अनासक्त होकर लोकसंग्रह की दृष्टि से कर्म करने चाहिए-

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत ।

कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ।।३।२५।।

इसी के अनुसार सुन्दरदास ने कहा है कि ज्ञानी को लोक आचरण की दृष्टि से शुभ कर्म करने चाहिए -

ज्ञानी शुभ कर्मनि करै लोक आचरण हेत ।

बहुत भांति के शब्द कहि सुन्दर शिक्षा देत ।।३६।।वही पृ०८१०।

सुन्दर ने कर्म के अन्तर्गत भाग्यवाद का भी वर्णन किया है। सुन्दर के अनुसार जो भाग्य में होता है वही मिलता है -

उद्दिम करि करि जोरी माया । कै कछु भाग्य लिख्यौ सो पाया ।

अजहू तृष्णा अधिक पसारी । अरना मनुषहु बूझि तुम्हारी ।२५।।

वही पृ० ३२५।।

<u>जगजीवन साहब</u>

पूर्ववर्ती संतो की भाँति जगजीवन साहब ने भी कर्म को बन्धन का कारण माना है, जिससे कोई बिरला पुरुष ही बच सकता है -

कर्म धागा साय बाँधा, हिंदु मुसलमान ।

खैंचि लीन्ह्यौ तोरि धागा बिरल कोइ बिलगान ।।३।।बा०भा०१ पृ०६६

जगजीवन साहब के अनुसार नामजप से पाप कर्म[1] क्षीण होते है और पाप कर्मों के नष्ट होने पर बड़े भाग्य से शुभ कर्म जागृत होते है -

निर्मल नाम जानि मन सुमिरै, अघ क्रम गे सब धोई ।

बड़े भाग करम तेहिं जागे, सतसंग चित समोई।।३।।बा० भा०२ पृ०२१

१- मेटु सबै गुनाह मेरे, पाप कर्म हराम ।

मलूकदास

मलूकदास के अनुसार कर्म बन्धन का कारण है -

पाने पहिरि करम की बेड़ी, नाग नाथ करि गाई।।२।।

बा० पृ०१३।।

दरिया

दरियासाहब मारवाड़ वाले के मतानुसार कर्मों का फल मिलता है किन्तु राम नामजप से कोटि कर्मों का नाश होता है -

दरिया सुमिरै राम को, कोटि कर्म की हान।

जम धार लाग का भय मिटै, ना काहू की कान।।१६।।बा०पृ०८।

दरिया

दरियादास बिहारवाले के अनुसार जीव उत्कृष्ट अथवा निकृष्ट योनि अपने कर्मानुसार प्राप्त करता है[1]। दरिया ने धर्मराज का भी उल्लेख किया है जो जीव के कर्मों का लेखा जोखा रखता है। गीता के अनुसार जैसे अग्नि इन्धन को भस्म कर देती है वैसे ही ज्ञानाग्नि सम्पूर्ण कर्मों को भस्म कर देती है -

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।

ज्ञानाग्नि सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा।।४।३७।।गीता

दरिया ने भी कहा है कि कर्म पर्वत ज्ञान बनेनने छेनी से और कर्म वन ज्ञान की कुल्हाडी से काटा जा सकता है -

कर्म पहार यह नाहि टरै, टारि सकै कोइ सत।

ज्ञान छेनी से काटिए यह सतगुर का मत।।८१६।।

कपट काटि खूंटा काटेव, काटि बेरलि भौ पात।

ज्ञान कुल्हाडरी कर्म बन काटि दिया सब गात।।८।७ द०एक अनु० पृ०१८४।

इस प्रकार निर्गुण सन्तो के अनुसार कर्म शुभ और अशुभ दो प्रकार के होते है। शुभ और अशुभ कर्मों के द्वारा जीव भव बन्धन मे फसता है। धर्मराज जीव के शुभ और अशुभ कर्मो का हिसाब किताब रखता है। अशुभ कर्मों के कारण जीव विविध योनियो में जन्म लेता रहता है। जीव जैसा कर्म करता है वह वैसा ही फल पाता है। इस प्रकार कर्म की गति टलने से भी नहीं टलती। निर्गुण सन्तो के अनुसार व्यक्ति को निष्काम

१- द० एक अनु० पृ० ८७-८८

भाव से जीव स्थिति की दृष्टि से दर्शन करने चाहिए । इनके अनुसार कर्मनिष्ठा कर्म भक्ति की प्राप्ति में सहायक होते हैं । निर्गुण सन्तो ने कर्मों का अस्तित्व तब तक माना है जब तक ज्ञान उत्पन्न नहीं होता । ज्ञान उत्पन्न होने पर उनके अनुसार सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं । कर्म बन्धन को काटने वाला सबसे बड़ा साधन ज्ञान है ।

परिणाम

ऊपर हम कह चुके हैं कि निर्गुण सन्तो के दार्शनिक विचारो के अनुसार इस ब्रह्माण्ड मे एक मात्र सत्ता राम ब्रह्म है । जीव और ब्रह्म अभिन्न है । जीव माया अथवा भ्रान्ति के कारण ही ब्रह्म से भिन्न दृष्टिगत होता है । माया के नष्ट होने पर जीव और ब्रह्म का भेद मिट जाता है । निर्गुण सन्तो के अनुसार माया और जगत् असत् है । जगत् और उसके स्त्री, पुत्र, आयु, सम्पत्ति रूप रंग, आदि भौतिक पदार्थों और विषयो को उनके नश्वर होने के कारण निर्गुण सन्तो ने जीवन का लक्ष्य नही माना है । राम शाश्वत है । जीव को उसी को प्राप्त करने से स्थायी सुख और आनन्द प्राप्त होता है । इसी दार्शनिक सत्य के अनुसार निर्गुण सन्तोने जगत् जाति परिवार, माता, पिता, भाई, बहिन, सम्पत्ति, रूप रंग और आयु आदि भौतिक सुखों को मिथ्या कह कर राम नाम अथवा राम को ही सत् कहा है और उसकी प्राप्ति को ही जीवन का लक्ष्य माना है ।

निर्गुण सन्तो के दार्शनिक बिचारो के अनुसार जब एक मात्र सत्य सत्ता राम ही है तब समाज और सामाजिक सम्बन्ध, समाज की राजनीति और अर्थनीति आदि सभी भौतिक स्वरूप का असत् होना उनके लिए स्वाभाविक है। इसी के परिणामस्वरूप निर्गुण सन्तों ने माता, पिता, भाई, बन्धु आदि समाजिक सम्बन्धो को मिथ्या बताकर इन सम्बन्धों का राम मे आरोपण किया है । ~~उनके अनुसार जीव का राम में आरोपण किया है~~। उनके अनुसार जीव का राम ही माता, पिता, सखा, मित्र, पति और गुरु आदि हैं ।

निर्गुण सन्तों के दार्शनिक विचारो में यह माना गया है कि चराचर में एक ही राम व्याप्त है । इस सिद्धान्त के अनुसार निर्गुण सन्तो ने लोक व्यवहार में इस तथ्य का प्रतिपादन किया है कि जब राम अवर्ण, निकुल, बरन, अकर्म[1], और

१- अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात्।

सर्वव्याप्त है तब मानव समाज में भी वर्ण, जाति, धर्म, और धन सम्पत्ति के आधार पर कोई वर्ग भेद नहीं होना चाहिए। जैसे राम एक है वैसे ही मानव समाज एक होना चाहिए।

ब्रह्म का कोई धर्म नहीं है। और निर्गुण सन्तों के अनुसार जीव ब्रह्म ही है। अतः उनके अनुसार जीव न हिन्दू है और न मुसलमान। ये जितने भी जातिगत और धर्मगत भेद हैं वे सब व्यर्थ हैं। जीव का यदि कोई धर्म है तो वह ब्रह्म का साक्षात्कार करना ही है। उनके अनुसार यदि वर्ण व्यवस्था को मानना है तो तो उसे इस रूप में मानना चाहिए जिससे किसी वर्ण में कोई विषमता उत्पन्न न हो। निर्गुण सन्तों ने वर्ण धर्म की गुण मूलक व्याख्या करते हुए कहा है कि जो ब्रह्म को जानता है वह ब्राह्मण है, जो ज्ञान की तलवार से पापों को नष्ट करता है, वह क्षत्रिय है, जो वासनाओं पर विजय प्राप्त करता है वह वैश्य है और जो सत् मार्ग पर चलता है वह शूद्र है। सब प्राणियों में एक ही ब्रह्म व्याप्त होने के कारण निर्गुण सन्तों ने धर्म के अन्तर्गत अहिंसा, सत्य, दया, क्षमा, सहिष्णुता आदि भावों का होना आवश्यक माना है।

ब्रह्म ही एक मात्र सत्य सत्ता होने के कारण निर्गुण सतों ने आध्यात्मिक राज्य और ब्रह्म नाम के व्यापार की चर्चा की है।

निर्गुण सन्तों की भक्ति प्रेम परक है। उनके अनुसार ईश्वर मे मन को समाहित करना अथवा ईश्वरीय प्रेम को प्राप्त करना ही भक्ति है। इसी के अनुरूप निर्गुण सन्तों ने राम अथवा राम प्रेम की प्राप्ति को जीवन का लक्ष्य माना है। निर्गुण सत जिस ब्रह्म से प्रेम करते है वह सर्वव्याप्त है। सर्वव्याप्त ब्रह्म से प्रेम करने से के कारण उन्होंने वर्ण, वर्ग और जातिगत भेद भावों की निन्दा करके ऐसे समाज और धर्म की कल्पनाकी है, जो ईश्वरीय प्रेम से ओतप्रोत हो।

निर्गुण सन्तों ने जिस प्रकार ब्रह्म और जीव तथा भगवान् और भक्त मे कोई अन्तर नहीं माना है उसी प्रकार उन्होंने राजा प्रजा मे कोई भेद न मान कर दोनों को समान स्तर पर रखा है। निर्गुण सन्तों ने जिस प्रकार अपनी भक्ति साधना मे प्रमुख स्थान ईश्वरीय प्रेम को दिया है उसी प्रकार उन्होंने अपनी अर्थनीति मे ईश्वरीय प्रेम अथवा एक ब्रह्म नाम या सत्पदार्थ के व्यापार को सर्वाधिक महत्व दिया है।

निर्गुण सन्तो की प्रेमा भक्ति कर्म के प्रतिकूल नही है। उन्होने ऐसे कर्म करने के लिये कहा है जो भक्ति साधना और लोकहित मे सहायक है। सभी निर्गुण मत शुद्ध लोक आचरण के पक्ष मे है।

इस प्रकार निर्गुण सन्तो ने दार्शनिक क्षेत्र में जिन विचारों को रखा है उन्ही के अनुरूप उन्होने अपनी भक्ति साधना की व्याख्या की है। निर्गुण सन्तो ने अपने दार्शनिक विचारो और भक्ति साधना के अनुसार ही लोक व्यवहार का प्रतिपादन किया है। निर्गुण सन्तो के दार्शनिक विचारो, भक्ति साधना और लोक-व्यवहार मे कोई विषमता नहीं है।

अध्याय ८
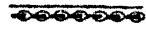
सगुण रामभक्ति के दार्शनिक आधार

जिस प्रकार निर्गुण रामभक्ति में दार्शनिक विचार विस्तृत और व्यापक रूप में मिलते हैं, उसी प्रकार सगुण राम भक्ति में भी मिलते हैं। सगुण राम भक्तों का ब्रह्म, जीव, जगत्, माया, मोक्ष और परमार्थ साधन के सम्बन्ध में जो मत है उसका नीचे उल्लेख किया जा रहा है।

ईश्वरदास

ईश्वरदास की रचनाओं में दार्शनिक विचारों का अभाव है। ईश्वरदास ने ब्रह्म राम के सम्बन्ध में केवल इतना ही कहा है कि वे दशरथ के पुत्र हैं और उनका रहस्य कोई नहीं जानता अर्थात् वे अकथनीय हैं -

उन्ह के पुत्र भये अनुरागी। बिधना लिखा भये अनुरागी ।।[1]
सरा चक्र धरु सारंग, दया करहु कुछु कहौ बखानी।
मरम न जानौं केसव तोरा, तुम्हरे चरन चितु लागै मोरा ।।[2]

गोस्वामी तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास ने ब्रह्म का विवेचन सगुण, निर्गुण अथवा साकार निराकार दोनों रूपों में किया है।

सगुण ब्रह्म का ज्ञान नाम और रूप में किया जाता है। तुलसीदास ने ब्रह्म के लिये राम रघुराज, रघुकुलमणि, रघुवीर, रघुपति, कौशलपति श्रीपति, इन्दिरापति, जानकीनाथ इन्दिरारमन, रमानाथ, रमारमन, रमेश, रमानिवास, श्रीरमण, श्रीरंग, पुरुष, परमात्मा, सच्चिदानंद, हरि, वासुदेव, ईश्वर, माधव, बिन्दुमाधव, केशव, नन्दकुमार, गोविन्द, भगवान्, सुरेश, विष्णु, जिष्णु, उरुगाय, त्रिभुवनधनी आदि नामों का प्रयोग किया है। बृहदारण्यकोपनिषद् में यह कहा गया है कि अनन्त ब्रह्म के अनन्त नाम हैं -

---

१- ईश्वरदास कृत सत्यवती तथा अन्य कृतियाँ `डा० शिवगोपाल मिश्र` पृ० ६७।
२- वही पृ० १३६

नामेत्यनन्तं वै नामानन्ता विश्वे देवा

अनन्तमेव स तेन लोक जयति ।। बृहदा० ३।२।१२।

इसी के अनुरूप तुलसीदास ने भी अनन्त ब्रह्म के अनन्त नाम माने है -

राम अनंत अनंत गुनानी । जन्म कर्म अनंत नामानी ।रा०च०मा०उ०का०५१।२।।

किन्तु तुलसी ने अनन्त नामों में सर्वाधिक महत्त्व राम नाम को दिया है। तुलसी के अनुसार राम नाम अन्य नामों की अपेक्षा अधिक पापनाशक है। राम नाम यदि सोम है तो तो अन्य नाम उडुगन है -

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका श्रुति कह अधिक एक ते एका ।

राम सकल नामन्ह ते अधिका । होउ नाथ अघखग गन बधिका ।।४।।वही पृ०६४४।

राका रजनी भगति तव राम नाम सोइ सोम ।

अपर नाम उडगन बिमल बसहुँ भगत उर ब्योम ।।४२।रा०च०मा० पृ०६४७

तुलसी ने नाम को ब्रह्म से अधिक महत्त्व दिया है। तुलसी के अनुसार रामनाम राम से बड़ा है, और राम से राम नाम अधिक वरदायक है -

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा । अकथ अगाध अनादि अनूपा ।।

मोरे मत बड नामु दुहुते किए जेहि जुग निज बस बूते ।। १।रा०च०मा०पृ०५५।।

निरगुन तें एहि भाँति बड नाम प्रभाउ अपार ।

कहउँ नामु बड़ राम ते निज बिचार अनुसार ।। २३।रा०च०मा०पृ०५६।।

उभय अगम जुग सुगम नामते । कहेउँ नामु बड़ ब्रह्म रामते ।।वही पृ०५५।।

ब्रह्म रामते नामु बड़ बरदायक बर दानि ।।दो०व०३१,रा०च०मा०पृ०५७।।

राम ते अधिक नाम करतब ।।२२८ ।।५।।वि०प० पृ० ३६४।।

तथा निर्गुण और सगुण ब्रह्म के बीच में नाम साक्षी रूप और दोनों का यथार्थ ज्ञान कराने वाला दुभाषिया है -

अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी । उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी ।।४।।

रा०च०मा०पृ०५४।।

नाम से रूप का ज्ञान प्राप्त होता है। तुलसी के अनुसार नाम और रूप ईश्वर की उपाधि है और ये अकथनीय, अनादि तथा सुबुद्धि से समझने मे आने वाले है -

नाम रूप दुइ ईस उपाधी । अकथ अनादि सुसामुझि साधी ।।१।।रा०च०मा०पृ०५३

नाम और रूप मे कौन बड़ा है और कौन छोटा, यह कहना अपराध है। रूप नाम के आधीन रहता है और नाम के बिना रूप का ज्ञान नहीं हो सकता -

को नव औट वचन अपारू । सुनि गुन भेद समुझिहहिं साधू ।।
देखिअहि रूप नाम आधीना । रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना ।।२।।

कोई भी रूप बिना नाम के पहचाना नहीं जा सकता और रूप के ज्ञान के अभाव में भी नाम का स्मरण करने मात्र से भी रूप का अभिज्ञान हो जाता है -

रूप बिशेष नाम बिनु जानें । करतल गत न परहिं पहिचानें ।।
सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें । आवत हृदयँ सनेह बिसेषें ।।३।।वही पृ०५४

नाम और रूप का अनन्य सम्बन्ध है । नाम और रूप का अधिक स्पष्ट ज्ञान अवतार या जन्म के द्वारा होता है । तुलसी ने अवतारवाद के द्वारा राम के साकार और सगुण रूप का विशद उल्लेख किया है ।

ब्रह्म का अवतार होता है अथवा नहीं । यदि ब्रह्म का अवतार होता है तो वह कैसे सम्भव है ? इस प्रश्न पर काफी मतभेद है । इस मतभेद का निवारण करते हुए गीता में यह कहा गया है कि अज अव्यय ब्रह्म अपनी प्रकृति को आधीन करके, स्वयं अपनी माया से जन्म लेता है -

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया।।गीता।। ४ ।६।।

भगवत्- गीता में अज अव्यय ब्रह्म के जन्म में माया कारण मानी गई है किन्तु तुलसीदास के अनुसार ब्रह्म माया और अपनी इच्छा से मनुज अवतार धारण करता है[1] -

निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज लागि ।
सगुन उपासक संग तहँ रहहिं मोच्छ सब त्यागि।।२६।। रा० च० मा० पृ०६७६
मायामानुषरूपिणौ रघुबरौ सद्धर्मवर्मौ हितौ ।
सीतान्वेषणतत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौ हि नः ।।१।।वही पृ० ६५३।।

१-दो०क० १२४।।रा०च०मा०१५१।१ पृ०१६१ ।।
यही अध्यात्म रामायण मे कहा गया है -
ज्ञात राम तवोदन्तं भूतं चागामिकं च यत् ।
जानामि त्वां परात्मान मायया कार्यमानुषम्।।२।६।३७,४।७।१८।।
मनुष्यभावपन्नं स्वेच्छया परमात्मनि ।।अ०रा०४।७।१९।।

ब्रह्म का अवतार क्यों होता है ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए गीता में आगे यह कहा गया है कि जब जब धर्म घटता है और पाप बढ़ता है, तब तब ब्रह्म का अवतार होता है । ब्रह्म का अवतार संत पुरुषों के रक्षण तथा दुर्जनों के नाश और धर्म की संस्थापना के लिये होता है -

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम।।६।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।।४।८।।

इस सम्बन्ध में गीता के अनुरूप ही तुलसी का मत है ।

जब जब होई धरम कै हानी । बाढ़हि असुर अधम अभिमानी ।।३।।
करहिं अनीति जाई नहिं बरनी । सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी।।
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा, हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ।।४।।
असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु ।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु ।।१२१।। रा० च० मा०पृ०१३८

तुलसी के अनुसार कृपासिंधु भगवान् जन हितार्थ ही शरीर धारण करते हैं -

सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं । कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं ।।१।।
वही पृ० १३८

राम जन्म के अनेक कारण हैं जो एक से एक बढ़कर हैं, परन्तु तुलसीदास ने राम जन्म के कारणों में से भक्त प्रेम, भूमिभार हरण, ब्राह्मण, सुर, साधु, संत, धेनु और धरणी[1] हित को मुख्य रूप से माना है -

राम जन्म के हेतु अनेका । परम बिचित्र एक ते एका ।।१।।वही पृ० १३८
बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार ।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गोपार ।।१९२।। वही पृ० १६४।

:१: अ० रा० १।१।१ ।।

व्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप ।
भगत हेतु नाना बिधि करत चरित्र अनूप ।।२०५।। वही। पृ० २०४
भगत भूमि भूसुर सुरभि सुर हित लागि कृपाल ।
करत चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटहि जगजाल ।।६३।। वही पृ० ४८
राम भगत हित नरतनु धारी। सहि संकट किए साधु सुखारी ।।
नामु सप्रेम जपत अनयासा । भगत होहि मुद मंगल बासा।।१।। वही
व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद ।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या के गोद ।।१९८।। वही। पृ० १९८
अगुन अरूप अलख अज जोई । भगत प्रेम बस सगुन सो होई ।।१।। वही
व्यापक बिस्व रूप भगवाना । तेहि धरि देह चरित कृत नाना ।।२।।
सो केवल भगतन हित लागी । परम कृपाल प्रनत अनुरागी ।।
जेहि जन पर ममता अति छोहू । जेहिं करुना करि कीन्ह न कोहू ।।३
वही पृ० ४५ ।

तुलसीदास ने रामावतार के जिन कारणों का ऊपर उल्लेख किया है, उन्होंने उनका विनय पत्रिका आदि अन्य ग्रन्थों में भी प्रतिपादन किया है[1]-

जयति सच्चिदव्यापकानंद परब्रह्म पद विग्रह व्यक्त लीलावतारी ।
विकल ब्रह्मादि, सुर, सिद्ध, संकोचवश, विमल गुण गेह नर देह धारी ।
जयति कौशलाधीश कल्याण कौशलसुता, कुशल कैवल्य फल चारु चारी
वेद बोधित करम धरम - धरनी धेनु, विप्र सेवक साधु मोदकारी
जयति ऋषि मखपाल, शमन सज्जन साल, शापवश मुनिबधू पापहारी ।
वि० प० ४३।
पृ० ७३

हरि का अवतार जिस कारण से होता है, वह कारण केवल यही है ऐसा नहीं कहा जा सकता । तुलसीदास ने रामावतार के कारणों में नारद

१- कवितावली पृ० १८० , गीतावली पृ० ६१, दोहावली ११३-११६-१७२ ..

शाप, जय और विजय (श्री हरि के दो द्वारपाल) का मव बन्धन से मुक्ति और जलन्धर दैत्य की स्त्री के शाप का भी उल्लेख किया है -

हरि अवतार हेतु जेहि होई । इदमित्थं कहि जाइ न सोई ।।१।।
रा० च० मा० पृ०१३७

एक जनम कर कारन एहा । जेहिं लगि राम धरी नर देहा ।।
पुनि अवतार कथा प्रभु केरी । सुनु मुनि बरनी कबिन्ह घनेरी ।।२।।
नारद श्राप दीन्ह एक बारा । कलप एक तेहि लगि अवतारा ।।वही पृ० १४० ।
बिप्र श्राप ते दूनउ भाई । तामस असुर देह तिन्ह पाई ।।
कनककसिपु अरु हाटक लोचन । जगत बिदित सुरपति मद मोचन ।।३।।
वही पृ० १३८
बिजई समर बीर बिख्याता । धरि बराह बपु एक निपाता ।।
होइ नरहरि दूसर पुनि मारा । जन प्रहलाद सुजस बिस्तारा ।।४।।
भए निसाचर जाइ तेइ महाबीर बलवान ।
कुंभकरन रावन सुभट सुर बिजई जग जान ।।१२२।।
मुकुत न भए हते भगवाना । तीनि जनम द्विज बचन प्रवाना ।।
एक बार तिन्ह के हित लागी । धरेउ सरीर भगत अनुरागी ।।१।।
कस्यप अदिति तहाँ पितु माता । दसरथ कौसल्या बिख्याता ।।
एक कलप एहि बिधि अवतारा । चरित्र पवित्र किए संसारा ।।२।।
छल करि टारेउ तासु ब्रत प्रभु सुर कारज कीन्ह ।
जब तेहिं जानेउ मरम तब श्राप कोप करि दीन्ह ।।१२३। वही पृ० १३९
तासु श्राप हरि दीन्ह प्रमाना । कौतुक निधि कृपाल भगवाना ।
तहाँ जलंधर रावन भयऊ । रन हति राम परम पद दयऊ ।।१।।
वही पृ० १४० ।

जब देव वर्ग असुर वर्ग से पीड़ित होता है, तब परब्रह्म परमेश्वर, मत्स्य कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन और परशुराम प्रभृति विविध अवतार लेकर सुरों का दुःख दूर करते हैं । (अ० रा० २।५।१४ से २० तक) ।

मीन कमठ सूकर नरहरी । बामन परसुराम बपु धरी ।।
जब जब नाथ सुरन्ह दुखु पायो । नाना तनु धरि तुम्हइँ नसायो ।।४।
पृ० ८५१ ।

जिस ब्रह्म का वेद और पंडित इस प्रकार वर्णन करते है और जिसका मुनिगण ध्यान धरते है, वही दशरथ नन्दन भगवान् राम है -

जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान ।
सोइ दसरथ सुत भगत हित कौसलपति भगवान ।।११८।। वही पृ० १३५

जिन कारणों से ब्रह्म विविध अवतार धारण करता है, उन्हीं कारणों से वह सूर्यवंश (दशरथ कुल) मे अंशों सहित अथवा चार भाइयों सहित अपनी परागशक्ति के साथ मनुज अवतार लेते हैं[1] -

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा । तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेषा।।
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा । लेहउँ दिनकर बंस उदारा ।।१।।
कस्यप अदिति महातप कीन्हा । तिन्ह कहुँ मैं पूरब बर दीन्हा ।।
ते दसरथ कौसल्या रूपा । कोसलपुरी प्रगट नर भूपा ।।२।।
तिन्ह कें गृह अवतरिहउँ जाई । रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई ।।
नारद बचन सत्य सब करिहउँ । परम सक्ति समेत अवतरिहउँ ।।३।।
हरिहउँ सकल भूमि गरुआई । निर्भय होहु देव समुदाई ।।
गगन ब्रह्म बानी सुनि काना । तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना ।।४।।
वही पृ० १८६।।

उन्होंने (ब्रह्म ने) चैत्र मास में नवमी के दिन राम के रूप में जन्म लिया[2] -

नौमि तिथि मधुमास पुनीता । सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता।।
मध्य दिवस अति सीत न घामा । पावन काल लोक बिश्रामा ।।१।।
वही पृ० १९२ ।।

:१: अ० रा० १।२।२७-२८ ।।
:२: रा०च० मा० पृ० ६६ ।।

तुलसी ने यही बात गीतावली में कही है -

चैत चारु नौमी तिथि सित पख, मध्य- गगन- गत- भानु ।
नखत जोग ग्रह लगन भले दिन मंगल- मोद- निधानु ।। गी० व० ।२।। २॥

तुलसी के मतानुसार असंख्य लोकों में राम का अलग अलग अवतार होता है -

प्रति ब्रह्मांड राम अवतारा । देखउँ बाल विनोद अपारा । ४।। रा० च० मा० पृ० ६४३।

विशिष्टाद्वैत मत के अनुसार ब्रह्म के पर व्यूह, विभव, अंतर्यामी और अर्चावतार ये पाँच प्रकार के अवतार होते हैं । तुलसी ने भी इन अवतारों का उल्लेख किया है ।

(१) पररूप - ऐश्वर्य, शक्ति, तेज, ज्ञान, बल एवं वीर्य यह ६ गुण ब्रह्म के पर रूप में माने गये हैं । तुलसी ने भी राम के इन गुणों का उल्लेख किया है । तुलसी के अनुसार राम अनन्त ऐश्वर्य सम्पन्न सहस्त्रों दुर्गाओं के समान शक्तिवान्, सहस्त्र कोटि सूर्यों के समान तेजवान्, करोड़ो शारदाओं के समान बल बुद्धि युक्त, अनन्त ज्ञान सम्पन्न तथा अनन्त वीर्यवान् हैं -

रामु काम सत कोटि सुभग तन । दुर्गा कोटि अमित अरि मर्दन ।
सक्र कोटि सत सरिस बिलासा । नभ सत कोटि अमित अवकासा ।।४।।
मरुत कोटि सत बिपुल बल रबि सत कोटि प्रकास ।
ससि सत कोटि सुसीतल समन सकल भव त्रास ।।६१।।
काल कोटि सत सरिस अति दुस्तर दुर्ग दुरंत ।
धूमकेतु सत कोटि सम दुराधरष भगवंत ।।६१ (ख) ।।
प्रभु अगाध सत कोटि पताला । समन कोटि सत सरिस कराला ।।
तीरथ अमित कोटि सम पावन । नाम अखिल अघ पूग नसावन ।।१।।
हिमगिरि कोटि अचल रघुबीरा । सिंधु कोटि सत सम गंभीरा ।।
काम धेनु सत कोटि समाना । सकल काम दायक भगवाना ।।२।।
सारद कोटि अमित चतुराई । बिधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई ।।
बिष्नु कोटि सम पालन कर्ता । रुद्र कोटि सत सम संहर्ता ।।३।
धनद कोटि सत सम धनवाना । माया कोटि प्रपंच निधाना ।।
भार धरन सत कोटि अहीसा । निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा ।।४।।

(२) व्यूह रूप -

ब्रह्म व्यूह रूप से सृष्टि का पालन और संहार करते हैं। तुलसी के राम भी सृष्टि का पालन और संहार करते हैं -

सारद कोटि अमित चतुराई । बिधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई ।।
बिष्नु कोटि सम पालन कर्ता । रुद्र कोटि सत सम संहर्ता ।।३।।
रा० च० मा० पृ० ६५३

जाके बल बिरंचि हरि ईसा । पालत सृजत हरत दससीसा ।।३।।
वही पृ० ७०४

(३) विभव रूप :-

ब्रह्म जिस रूप से नर लीला करता है वह उसका विभव रूप कहलाता है। तुलसी ने राम के विभव रूप का विस्तार के साथ वर्णन किया है -

हरि ब्यापक सर्वत्र समाना । प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना ।।
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं । कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं ।।३।
रा० च० मा० पृ०१८७

भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप ।
किए चरित्र पावन परम प्राकृत नर अनुरूप ।।११३।। दो० ७० ।

धरहु जो बिबिध देह सुरत्राता । तुम्ह से सठन्ह सिखावनु दाता ।।४।। वही पृ०७०४

सुद्ध सच्चिदानंदमय कंद भानुकुल केतु ।
चरित्र करत नर अनुहरत संसृति सागर सेतु ।।८७।। वही पृ० ४०३ ।

(४) ~~अन्तर्यामी~~ अन्तर्यामी रूप -

अन्तर्यामी रूप से ब्रह्म सभी प्राणियों के अन्तरतम मे व्याप्त रहता है (गीता १८ ।६१) तुलसी ने भी राम के अन्तर्यामी रूप का उल्लेख किया है -

जानतहूँ पूछिअ कस स्वामी । सबदरसी तुम्ह अंतरजामी ।। वही पृ०६०५
तुम्ह ब्रह्मादि जनक जग स्वामी । ब्रह्म सकल उर अंतरजामी ।। वही पृ०१६०
प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासं ।।७।। पृ० ६६४ ।।
प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी । ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी ।। वही पृ० ६३५

(५) अर्चावतार :-

अर्चावतार ब्रह्म का वह रूप है जो भक्त की रुचि के अनुसार मूर्ति में विद्यमान रहता है। तुलसी के अनुसार सीता स्वयंवर में भक्त गण अपनी अपनी भावनानुसार राम की मूर्ति का दर्शन कर रहे हैं -

जिन्ह के रही भावना जैसी । प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी ।।२।।

तेहि महा निर्धारा । मनहुँ वीर रसु धरें सरीरा ।।
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी, मनहुँ भयानक मूरति भारी ।।३।।
रहे असुर छल छोनिप बेषा । तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा ।।
पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई । नर भूषन लोचन सुखदाई ।।४।।
नारि बिलोकहिं हरषि हियँ निज निज रुचि अनुरूप ।
जनु सोहत सिंगार धरि मूरति परम अनूप ।।२४१।।
बिदुषन्ह प्रभु बिराटमय दीसा । बहु मुख कर पग लोचन सीसा ।।
जनक जाति अवलोकहिं कैसे । सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे ।।१।।
सहित बिदेह बिलोकहिं रानी । सिसु सम प्रीति न जाति बखानी ।।
जोगिन्ह परम तत्वमय भासा । सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा ।।२।।
हरि भगतन्ह देखे दोउ भ्राता । इष्टदेव इव सब सुख दाता ।।
रामहि चितव भायँ जेहिं सीया । सो सनेहु सुखु नहिं कथनीया ।।३।।

रा० च० मा० पृ० २३२-३

तुलसी ने ब्रह्म के चतुर्भुज, बाल और तरुण इन तीन रूपों का वर्णन किया है । तुलसीने ब्रह्म के चतुर्भुज रूप का गीता, भागवत और अध्यात्मरामायण के अनुरूप वर्णन किया है । गीता में जिस चतुर्भुज ब्रह्म का उल्लेख मिलता है, वह मुकुट धारी, गदाधारी और हाथ में चक्र धारण किये हुए हैं -

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव ।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्त्रबाहो भव विश्वमूर्ते ।। गी० ११।४६।।

भागवत पुराण के बालकृष्ण, देवकी को अपना चतुर्भुज रूप दिखलाते है -

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शंखगदायुदायुधम ।
श्री वत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्रपयोद सौभगम् ।।

गीता और भागवत के अनुकरण पर ही अध्यात्म रामायण में ब्रह्म के चतुर्भुज रूप का उल्लेख किया गया है । अध्यात्म रामायण के अनुसार चतुर्भुज ब्रह्म शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किए हुए हैं । इन चतुर्भुज ब्रह्म को पुत्र रूप से प्रकट हुए देखकर कौसल्या ने व्याकुल होकर यह कहा कि हे देव देव । आपको नमस्कार है, आप शंख, चक्र, गदा धारण करने वाले अच्युत, अनन्त और पूर्ण पुरुषोत्तम हैं । वेद-वादी-गण आपको इन्द्रियातीत और ज्ञान स्वरूप बतलाते हैं । आपके उदर में अनेकों ब्रह्मांड परमाणुओं के समान दिखलाई पड़ते हैं । आपके

से जन्म लिया है कौशल्या ब्रह्म के चतुर्भुज रूप को देखकर यह कहने लगीं कि इस अलौकिक स्वरूप का उपसंहार कीजिए और आनन्ददायक बालरूप को धारण कीजिए । फिर ब्रह्म बाल रूप धारण कर के रोने लगे ----

सहस्रार्कप्रतीकाश. किरीटी कुंचितालक. ।
शंखचक्र गदा पद्म वनमाला विराजित ।।१७।।
दृष्ट्वा तं परमात्मानं कौसल्या विस्मयाकुला ।
हर्षाश्रुपूर्णनयना नत्वा प्रांजलिरब्रवीत ।।१६।।
देवदेव नमस्तेऽस्तु शंख चक्र च गदाधर ।
परमात्माच्युतोऽनन्त: पूर्णस्त्वं पुरुषोत्तम. ।।२०।।
वदन्त्यगोचरं वाचां बुद्ध्यादीनामतीन्द्रियम् ।
त्वां वेदवादिन: सत्तामात्रं ज्ञानैकविग्रहम् ।।२१।।
अज्ञानध्वान्तचित्तानां व्यक्त स्व सुमेधसाम् ।
जठरे तव दृश्यन्ते ब्रह्माण्डा. परमाणव:।।२५अध्यात्म रामायण बालकांड सर्ग ३।।

उपसंहर विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम् ।
दर्शयस्व महानन्दबालभावं सुकोमलम् ।
ललितालिं नालापैस्तरिष्याम्युत्कट तम.।।बा०कां०३२६।।
इत्युक्त्वा मातरं रामो बालो भूत्वा रुरोद ह ।
बालत्वेउपीन्द्र नीलाभो विशालाक्षोऽति सुन्दर' ।।वही ३।३५।।

राम के इस रूप का वर्णन आनन्दरामायण 'सारकाण्ड सर्ग ३: पद्मपुराण .उत्तरकांड अ०२६६ और राम रहस्य :सर्ग ३ मे भी मिलता है । तुलसी की कौसल्या ने जिस चतुर्भुज रूप का दर्शन किया था वह अध्यात्मरामायण से प्रभावित है-----

भए प्रकट कृपाला ~~दीनदयाला~~ कौसल्या हितकारी ।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी ।।
लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुज चारी ।
भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभासिन्धु खरारी ।।१।।
कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनंता ।
माया गुन ग्यानातीत अमाना बेद पुरान भनंता ।।

सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता ।।२।।
ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै ।
मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै ।।
उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै ।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै ।।३।।
माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा ।
कीजै सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा ।।
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा ।
यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा ।।४।।
रा०च०मा०पृ० १९२-१९३

ब्रह्म :राम का बाल रूप कैसा है ? इसका वर्णन करते हुए तुलसी ने कहा है कि राम का श्याम शरीर करोड़ों कामदेवों की शोभा से युक्त है । राम के बाल रूप का वर्णन वेद और शेषजी भी नहीं कर सकते ----

काम कोटि छबि स्याम सरीरा । नील कंज बारिद गंभीरा ।।
अरुन चरन पंकज नख जोति । कमल दलन्हि बैठे जनु मोती।।१।।
रा०च०मा०पृ०१९८।।
रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति सेषा । सो जानइ सपनेहुँ जेहिं देखा।।६।।
वही पृ०१९९

तुलसीदास ने :राम: के बाल रूप का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है । गीतावली के अनुसार यद्यपि बुद्धि,आयु, रूप, शील और गुणों में चारों भाई समान रूप से सुन्दर हैं,तथापि राम तो सम्पूर्ण लोकों के नेत्ररूप चकोर के लिये चन्द्रमा हैं----

जद्यपि बुधि, बय, रूप सील, गुन समै चारु चार्यो भाई ।
तदपि लोक लोचन चकोर ससि राम भगत सुखदाई ।।गी०१६।२

सम्पूर्ण गुणों के धाम ब्रह्म अपने बाल रूप में शोभायमान हैं । उनके एक एक अंग पर करोड़ों कामदेवों की शोभा निछावर है ----

राजत सिसुरूप राम सकल गुन निकाम धाम,
कौतुकी कृपालु ब्रह्म जानु पानि चारी ।
नीलकंज जलदपुंज मरकतमनि सरिस स्याम
काम कोटि सोभा अंग अंग उपर वारी ।।१।। गीतावली बा०का० २४।१।।

तुलसी के अनुसार मुनिजन भी योग, समाधि और वैराग्य को भूल कर राम के बाल रूप की लीलाओं को देखते हैं। जो व्यक्ति इस रस :बाल लीला: के रसिक नहीं हैं, वे व्यर्थ ही संसार में जीवित रहते हैं। किन्तु तुलसी के अनुसार उनका भाग्य प्रशंसनीय है जिनके मन बालरूप राम के अनुराग में रंगे हुए हैं----

बाल केलि अवलोकि मातु सब मुदित मगन आनँद न अमाये ।।६।।
देखत नभ घन ओट चरित मुनि जोग समाधि बिरति बिसराये ।
तुलसिदास जे रसिक न यहि रस ते नर जड़ जीवत जग जाये ।।गी०बा०कां०
३२।६-७।।

तुलसी सराहैं भाग तिन्हके, जिन्हके हिये
डिम-रामरूप-अनुराग-रग रये हैं ।।गी०बा०कां०११।४।।

कवितावली के अनुसार यदि मन में राम का ऐसा बालरूप न बसा तो संसार में जीवित र रहने से क्या लाभ ? ब्रह्म के ऐसे बालरूप से प्रेम हुए बिना जप योग और समाधि आदि भी व्यर्थ हैं----

अरबिंदु सो आननु रूप मरंदु अनंदित लोचन भृंग पिएँ ।
मन मोन बस्यौ अस बालकु जौं तुलसी फलु कौन जिएँ।।बा०कां०३ ख्ली
तुलसी अस बालक सों नहिं नेहु कहा जप जोग समाधि किएँ ।
नरवे खर सूकर स्वान समान कहौ जग में फलु कौन जिएँ ।।बा०कां०६

बरवै रामायण के अनुसार राम के बाल रूप की तुलना कामदेव के रूप से भी नहीं की जा सकती ---

काम रूप सम तुलसी राम सरूप ।
को कबि समसरि करै परै भवकूप ।।ब०रा०बा० कां०६।।

इस प्रकार तुलसी के कागभुशुण्डि जी राम के बाल रूप के ही उपासक हैं----

तब तब अवधिपुरी मैं जाऊँ । बाल चरित बिलोकि हरषाऊँ ।
जन्म महोत्सव देखउँ जाई । बरष पाँच तहँ रहउँ लोभाई ।।२।।
इष्टदेव मम बालक रामा । सोभा बपुष कोटि सत कोटि सत कामा ।
निज प्रभु बदन निहारि निहारी। लोचन सुफल करउँ उरगारी ।।३।।

लघु बायस बपु धरि हरि संगा । देखउँ बाल चरित बहु रंगा ।।४।।
रा०च०मा०पृ० ३८।।

तुलसी ने राम के विराट् रूप का भी उल्लेख किया है । ब्रह्म के विराट् रूप का उल्लेख वेद,उपनिषद् और गीता में भी मिलता है[१]। श्वेताश्वतरोपनिषद् के अनुसार ब्रह्म सब ओर मुख,सिर और ग्रीवा वाला है । वह सब जगह हाथ पैर वाला, आँख,सिर और मुखवाला तथा सब ओर कानों वाला है । वह पुरुष सहस्रों शीर्ष वाला, सहस्रों आँख वाला और सहस्रों पैर वाला है----

सर्वाननशिरोग्रीव: सर्वभूतगुहाशय: ।
सर्व व्यापी स भगवांस्तस्मात् सर्व गत: शिव: ।।११।।
सर्वत: पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वत. श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ।।१६।।
सहस्राशीर्षा पुरुष. सहस्राक्ष. सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद् दशांग गुलम् ।।१४।।श्वेता०अ०३।।

इसी के अनुरूप तुलसी ने भी ब्रह्म के विराट् रूप का वर्णन किया है---

बिदुषन्ह प्रभु बिराट मय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा ।।
जनक जाति अवलोकहिं कैसें । सजन सगे प्रिय लागहिं जैसें ।।१।।रा०च०
मा० पृ० २३३

गीता में ब्रह्म के विराट् रूप के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि वह रूप अनेक मुख नेत्र वाला, अनेक अद्भुत दर्शनवाला, अनन्त रूप और सब ओर मुख वाला था[२]----

अनेक वक्त्र नयन मनेका दभुत दर्शनम् ।
अनेक दिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ।।१०।।
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्य गन्धानुलेपनम् ।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ।।११।।

१- यजुर्वेद ३१।१-२, अथर्व०१९।६।१-४
२- गीता ११ । २३, २४

वह अनेक बाहु, उदर, मुख और नेत्रों से युक्त तथा सब ओर से अनन्त रूप वाला है----

अनेक बाहू दरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतो नन्तरूपम् ।
नान्तं न मध्यं न पुनस्त वादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ।।१६।।

:वह रूप: अनन्त शक्ति शाली और अनन्त भुजाओं से युक्त चन्द्र सूर्य के समान नेत्र वाला और प्रज्वलित अग्नि के समान मुख वाला है ----

अनादिमध्यान्त मनन्तवीर्य मनन्तबाहुं शशि सूर्य नेत्रम् ।
पश्यामि त्वां दीप्तहुता शवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ।।१९।।

इस विराट् रूप में आदित्य, वसु, रुद्र अश्विनीकुमार और मरुत जगत् आदि सभी थे :गी०११।५-६-७[2]:। गीता के अनुसार तुलसी ने भी ब्रह्म के विश्वरूप के सम्बन्ध में कहा है ----

देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड ।
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड ।।२०१।।
अगनित रबि ससि सिव चतुरानन । बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन ।।
काल कर्म गुन ग्यान सुभाऊ । सोउ देखा जो सुना न कोऊ ।।१।।रा०च०
मा०पृ०२०१
बिदुषन्ह प्रभु बिराटमय दीसा । बहु मुख कर पग लोचन सीसा ।।वहीपृ०२३३
उदर माझ सुनु अंडज राया । देखेउँ बहु ब्रह्मांड निकाया ।।
अति बिचित्र तहँ लोक अनेका । रचना अधिक एकते एका ।।२।।
कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा । अगनित उडगन रबि रजनीसा ।।
अगनित लोकपाल जम काला । अगनित भूधर भूमि बिसाला ।। ३।।

१- गीता ११ । २२

२- पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान् ।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दीप्तान् ।। ११। १५।। गीता

सागर सरि सर बिपिन अपारा । नाना भाँति सृष्टि बिस्तारा ।।
सुर मुनि सिद्ध नाग नर किन्नर । चारि प्रकार जीव सचराचर ।।४।।

जो नहिं देखा नहिं सुना जो मनहूँ न समाइ ।
सो सब अद्भुत देखेउँ बरनि कवनिबिधि जाई।। ८०।।रा०च०मा०पृ०६४२

उपनिषदों में ब्रह्म का विराट् पुरुष के रूप में भी चित्रण किया गया है । मुण्डकोपनिषद् के अनुसार इस ब्रह्म का अग्नि मस्तक चन्द्र और सूर्य नेत्र, सब दिशाएँ कान, वेद वाणी, वायु प्राण और जगत् हृदय है ----

अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग् विवृताश्च वेदाः ।
वायु प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ।।
मुंड०२।१।४।।

उपनिषदों की शैली के अनुसार तुलसी ने भी ब्रह्म का विराट् पुरुष के रूप में उल्लेख किया है।[2] विराट् पुरुष के वर्णन में श्रुतियों के प्रभाव को तुलसी स्वयं मानते हैं---

बिस्वरूप रघुबंस मनि करहु बचन बिस्वासु ।
लोक कल्पना बेद कर अंग अंग प्रति जासु ।।१४।।

पद पाताल सीस अज धामा । अपर लोक अँग अँग बिश्रामा ।
भृकुटि बिलास भयंकर काला । नयन दिवाकर कच घनमाला ।।१।।
जासु घ्रान अस्विनीकुमारा । निसि अरु दिवस निमेष अपारा ।।
श्रवन दिसा दस बेद बखानी । मारुत स्वास निगम निज बानी ।।२।।
अधर लोभ जम दसन कराला । माया हास बाहु दिगपाला ।।
आनन अनल अंबुपति जीहा । उतपति पालन प्रलय समीहा ।।३।।
रोम राजि अष्टादस भारा । अस्थि सैल सरिता नस जारा ।।
उदर उदधि अधगो जातना । जगमय प्रभु का बहु कलपना ।।४।।

१- पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ।।गीता० ११।६।।
२- तुलसी के विराट् पुरुष का वर्णन अध्यात्म रामायण से भी काफी मात्रा में मिलता है
अ०रा० ३।६।३६-३७-३८-३६-४०-४१-४२-४३-४४-४५-४६ ।।

अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान ।

मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान् ।।१५।।रा०च०मा०पृ०७५२-५३।।

नाम और रूप गुणों से युक्त होता है ।तुलसी के अनुसार राम के अनन्त गुण हैं,[१] श्रुति, शेष, शारदा, शम्भु और सनक भी राम के गुणों का अन्त नहीं पा सकते--

राम अनंत अनंत गुन, अमित कथा बिस्तार ।

सुनि आचरजु न मानिहहिं जिन्ह कें बिमल बिचार ।।३३।।रा०च०मा० पृ० ६६

सारद सेस महेस बिधि आगम निगम पुरान ।

नेति नेति कहि जासु गुन करहिं निरंतर गान ।।१२।। वही पृ० ४४।।

जगत प्रकाशक राम माया के स्वामी , ज्ञान और गुणों के धाम हैं ---

जगत् प्रकास्य प्रकासक रामू । मायाधीस ग्यान गुन धामू ।।४।। वही० पृ० १३४

तुलसी इन्हीं सगुण ब्रह्म के उपासक हैं । तुलसी के अनुसार मुनि शरभंग जी, मुनि अगस्त्य जी के शिष्य श्री सुतीक्ष्ण जी, देवराज इन्द्र, जनक और वेद आदि ब्रह्म के सगुण रूप के उपासक हैं, और वे इसी रूप की कामना करते हैं । श्री वैष्णवधर्मरत्नाकर में यह कहा गया है कि ऐसे राम की वन्दना करनी चाहिए जिनके दक्षिण भाग में लक्ष्मण जी तथा वाम भाग में जनकपुत्री श्री जानकी जी विराजमान हैं----

दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य वामे तु जनकात्मजा ।

पुरतो मारुतिर्यस्य तं वन्दे रघुनन्दनम् ।।१।। वै० धर्म०-रत्ना०पृ० १

गोस्वामी तुलसीदास जी के शरभंग, इन्द्र और सुतीक्ष्ण राम के ऐसे ही सगुण रूप के[२] उपासक हैं जिनके साथ लक्ष्मण और श्री जानकी जी भी विद्यमान हैं -----

---

१- रा०च०मा० २।पृ०१८।। राम नाम गुन चरित सुहाए। जनम करम अगनित श्रुति गाए।
जथा अनंत राम भगवाना। तथा कथा कीरति गुन नाना ।।४।
रा०च०मा०पृ०१३२।।

हरि गुन नाम अपार कथा रूप अगनित अमित।
मैं निज मति अनुसार कहउँ उमा सादर सुनहु ।।१२०।।:च:वहीपृ०१३७

२- व०रा०३।२।३४, मानसं श्यामलं रूपं सीतालक्ष्मणसंयुक्तम् ।

रामु बाम दिसि जानकी, लषन दाहिनी ओर ।
ध्यान सकल कल्यानमय, सुरतरु तुलसी तोर ।।१।।वै॰सदी० पृ० ५।।
सीता अनुज समेत प्रभु नील जलद तनु स्याम ।
मम हियँ बसहु निरंतर सगुन रूप श्रीराम ।।८।।रा०च०मा०पृ०६०५।।
जदपि बिरज ब्यापक अबिनासी । सब के हृदयँ निरंतर बासी ।।
तदपि अनुज श्री सहित खरारी । बसतु मनसि मम कानन चारी ।।६।।
वही पृ० ६०६
अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम ।
मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निहकाम ।।११।। वही पृ० ६१०
बैदेहि अनुज समेत । मम हृदयँ करहु निकेत ।।
मोहि जानिऐ निज दास। दे भक्ति रमानिवास ।।८।।वही पृ०८५५
जे जानहिं ते जानहुँ स्वामी । सगुन अगुण उर अंतरजामी ।।
जो कोसलपति राजिव नयना। करउ सो राम हृदय मम अयना ।।१०।।
वही पृ० ६०६
कोउ ब्रह्म निर्गुन ध्याव । अव्यक्त जेहि श्रुति गाव ।।
मोहि भाव कोसल भूप । श्रीराम सगुन सरूप ।।७।। वही पृ० ८५५
जे ब्रह्म अजमद्वैत मनुभवगम्य मन पर ध्यावहीं ।
ते कहहुँ जानहुँ नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीं ।।६।। वही पृ०८८३।।
जोरि पंकरुह पानि सुहाय । बोले बचन प्रेम जनु जाए ।।
राम करौं केहि भाँति प्रसंसा । मुनि महेस मन मानस हंसा ।।२।।
करहिं जोग जोगी जेहि लागी । कोहु मोहु ममता मदु त्यागी ।।
ब्यापक ब्रह्मु अलखु अविनासी । चिदानंदु निरगुन गुन रासी ।।३।।
मन समेत जेहि जान न बानी । तरकि न सकहिं सकल अनुमानी ।।
महिमा निगमु नेति कहि कहई । जो तिहुँ काल एक रस रहई ।।४।।
नयन विषय मो कहुँ भयउ सो समस्त सुख मूल ।
सकल लाभु जग जीव कहँ भएँ ईसु अनुकूल ।। ३४१।। वही पृ० ३१६-३१७।।
निर्गुणोपासक की अपेक्षा सगुणोपासक श्रेष्ठ बताया गया है गी०१२।१-

गीता के अनुसार तुलसी ने भी सगुण भक्त को भगवान् का प्रिय भक्त कहा है ---

सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम ।
ते नर प्रान समान मम जिन्ह के द्विज पद प्रेम ।।४८।। वही पृ० ७२७।। रा०-च०

जेहि पूँछउँ सोइ मुनि अस कहई । ईस्वर सर्ब भूतमय अहई ।।
निर्गुन मत नहिं मोहि सोहाई । सगुन ब्रह्म रति उर अधिकाई ।।रा०च०
पृ० ९७३

बिबिध भाँति मोहि मुनि समुझावा। निर्गुन मत मम हृदयँ न आवा ।।
पुनि मैं कहेउँ नाइ पद सीसा । सगुन उपासन कहहु मुनीसा ।।४।।
राम भगति जल मम मन मीना । किमि बिलगाइ मुनीस प्रबीना ।।
सोइ उपदेस कहहु करि दाया । निज नयनन्हि देखौं रघुराया ।।५।।वही
पृ० ९७४

तुलसी का सगुण ब्रह्म के सम्बन्ध में यह भी मत है कि ब्रह्म की लीलाओं का रहस्य पूर्ण रूप से समझना कठिन है । किन्तु सगुण रूप की अपेक्षा निर्गुण रूप का समझना सरल है । राम के सगुण रूप को कुछ बुद्धिमान व्यक्ति ही समझ पाते हैं । बुद्धिहीन व्यक्ति तो उसे देख कर मोह में पड़ जाते हैं ----

चरित राम के सगुन भवानी । तर्कि न जाहिं बुद्धि बल बानी ।।
अस बिचारि जे तग्य बिरागी। रामहि भजहिं तर्क सब त्यागी ।।१।।
रा०च०पृ० ८०७।।

निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ ।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ ।।७३:ख:वही पृ०९३६

गिरिजा सुनहु राम के लीला। सुरहित दनुज बिमोह नसीला।।४।।
वही पृ० १३१।।

राम देखि सुनि चरित तुम्हारे । जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे ।।
तुम्ह जो कहहु करहु सबु साँचा । जस काछिअ तस चाहिअ नाचा ।।४।।
वही पृ० ४३५।।

असि रघुपति लीला उरगारी । दनुज बिमोहनि जन सुखकारी ।।
जे मति मलिन बिषय बस कामी। प्रभु पर मोह धरहिं इमि स्वामी।।२।।

ब्रह्म का नाम रूप और गुणों के रूप में विवेचन करने के उपरान्त तुलसी ने यह भी कहा है कि नाम रूप और गुणों के द्वारा ब्रह्म के जिस स्वरूप का उल्लेख किया जाता है वह वास्तविक नहीं है। ब्रह्म का वास्तविक रूप अव्यक्त और निर्गुण है। अव्यक्त ब्रह्म व्यक्त होकर जो सगुण लीलाएँ करता है वह एक नट की भावना से करता है। जिस प्रकार नट क्रीड़ा की दृष्टि से विविध रूप धारण करता हुआ भी उन रूपों से स्वयं पृथक रहता है उसी प्रकार ब्रह्म व्यक्त या सगुण लीलाएँ करता हुआ उनसे परे रहता है----

जथा अनेक बेष धरि नृत्य करइ नट कोइ ।
सोइ सोइ भाव देखावइ आपुन होइ न सोइ ।।७२:ख: वही पृ० ६३५।।

गीता में यह कहा गया है कि बुद्धिहीन व्यक्ति ब्रह्म के सर्वोत्तम, अविनाशी और परमभावको न जानकर उस अव्यक्त को व्यक्त मान लेते हैं ----

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ।। गी० ७।२४।।

इसी भाव को स्पष्ट करते हुए तुलसी ने यह कहा है कि मोह के कारण ही मनुष्य उस अनादि ब्रह्म को मनुष्य मान लेता है। गरुड़ जी अनादि ब्रह्म को मनुष्य मानने के कारण पछताते हैं ----

पाछिल मोह समुझि पछिताना। ब्रह्म अनादि मनुज करि माना ।।
पुनि पुनि काग चरन सिरु नावा। जानि राम सम प्रेम बढ़ावा।।३।।
रा०च० वही पृ० ६५४

जाम्बुवान ने भी अंगद से यही कहा है कि निर्गुण ब्रह्म को मनुष्य मत समझो[1]। वस्तुतः ब्रह्म अव्यक्त और निर्गुण ही है। वह व्यक्त और सगुण रूप भक्तों के कारण धारण कर लेता है। व्यापक, कलारहित, इच्छारहित, अजन्मा अनाम और अरूप ब्रह्म

१- जामवंत अंगद दुख देखी। कहीं कथा उपदेस बिसेषी ।।
तात राम कहुँ नर जनि मानहु। निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु ।।६।।
रा०च०मा० पृ० ६७८ ।।

भक्तों के हित के लिये ही नानाविध चरित्र करता है ----

व्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप ।
भगत हेतु नाना बिधि करत चरित्र अनूप ।।२०५।। वही पृ० २०४।।

निर्गुण ब्रह्म और सगुण ब्रह्म का भेद स्पष्ट करते हुए[१] शिव पार्वती से यह कहते हैं कि सगुण और निर्गुण ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है । मुनि, पुराण, पंडित और वेद का भी ऐसा मत है । जो ब्रह्म निर्गुण, अरूप, अलख और अजन्मा है, वही भक्तों के प्रेम वश सगुण हो जाया करता है । वस्तुत: निर्गुण और सगुण ब्रह्म में ऐसे ही कोई अन्तर नहीं है जैसे जल और ओले में कोई अन्तर नहीं होता---

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा । गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा ।।
अगुन अरूप अलख अज जोई । भगत प्रेम बस सगुन सो होई ।।१।।
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे । जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसे ।।
जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा । तेहि किमि कहिअ बिमोह प्रसंगा ।।२।।
वही पृ० १३३

जनक सुतीक्ष्ण जटायु, वेद और सनकादि ने भी निर्गुण ब्रह्म को सगुण कहा है । इनकी दृष्टि में निर्गुण और सगुण ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है ----

करहिं जोग जोगी जेहि लागी । कोहु मोहु ममता मदु त्यागी ।।
व्यापकु ब्रह्मु अलखु अबिनासी । चिदानंदु निरगुन गुन रासी ।।३।।वही पृ० ३१७

निर्गुण सगुण बिषम सम रूपं । ज्ञान गिरा गोतीतमनूपं ।।
अमलमखिल मन वषमपारं । नौमि राम भंजन महि भारं ।।६।।वही पृ०६०९
जय राम रूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही ।।१।। वही पृ० ६३६।।
जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने ।।१।। वही पृ० ८८२।।
जय निर्गुन जय जय गुन सागर । सुख मंदिर सुंदर अति नागर ।।२।।वही पृ० ६०३।।

१- अ०रा० ४।६।६६

निर्गुण संतों की भाँति गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी ब्र॰ करने के लिये निरंजन शब्द का प्रयोग किया है ----

ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद ।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या के गोद ।।१९८।।वही पृ० १९८।।

वे तुलसी का निर्गुण निरंजन ब्रह्म भेद रहित, सर्वव्यापक, और मायापति होते हुए भी मायारहित :विरज: है----

अस बिचारि मन माहिं भजिअ महामाया पतिहि ।।१४०।।वही पृ० १५३
ब्रह्म सो ब्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद ।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद ।।५०।। वही पृ० ८१।।
मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत बिमल मन जेहि ध्यावहीं
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं ।।
सोइ रामु ब्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति माया धनी ।। वही पृ०८१।।

यह पुराण प्रसिद्ध, प्रकाश के भण्डार, सब रूपों में प्रकट सत्य, जीव, माया और जगत् के स्वामी और जगत प्रकाशक है -----

पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ ।
रघुकु[illegible]नि मम स्वामि सोइ कहि सिवँ नायउ माथ ।।११६।।वही पृ०१३४

जगत प्रकास्य प्रकासक रामू । मायाधीस ग्यान गुन धामू ।।
जासु सत्यता तें जड़ माया । भास सत्य इव मोह सहाया ।।४।।
वही पृ० १३४

१- जय जय [illegible] बिनासी सब घट बासी ब्यापक परमानंदा ।
अबिगत गोतीतं चरित पुनीतं माया रहित मुकुंदा ।।
जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी बिगत मोह मुनिबृंदा ।।२।।रा॰च॰मा॰पृ०१८८

अध्यात्म रामायण में भी ब्रह्म के सम्बन्ध में ऐसा ही कहा गया है -----

विश्वोद्भवस्थितिलयादिषु हेतुमेकं मायाश्रयं विगतमायमचिन्त्यमूर्तिम् ।।१।१।२।।

कठोपनिषद् के अनुसार ब्रह्म मन वाणी बुद्धि एवं तर्क गम्य नहीं है-----

न नरेणावरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः ।
अनन्य प्रोक्ते गतिरत्र नास्ति अणीयान् ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात् ।।
कठोप० १।२।८।।

इसी के अनुरूप तुलसी ने कहा है -----

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी । मत हमार अस सुनहि सयानी ।।
तदपि संत मुनि बेद पुराना। जस कछु कहहिं स्वमति अनुमाना ।।२।।
रा०-प० वही पृ० १३८

वह [illegible] और निरुपाधि है । उसके अंश से अनेको शिव। ब्रह्मा और विष्णु उत्पन्न होते हैं, तथा उन्हीं के अंश से गुणों की खान अगणित लक्ष्मी, पार्वती और ब्रह्माणी उत्पन्न होती है और उनकी भौंह के संकेत से जगत् की रचना होती है ----

नेति नेति जेहि बेद निरूपा । निजानंद निरूपाधि अनूपा ।।
संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस ते नाना ।।३।।
वही पृ० १५५।।

जासु अंस उपजहिं गुनखानी । अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी ।।
भृकुटि विलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई ।।२।।
वही पृ० १५८

और वह शुद्ध और सच्चिदानन्द है ----

निसि बासर ध्यावहिं गुन गन गावहिं जयति सच्चिदानंदा ।।२।।
वही पृ० १८८।।

सुद्ध सच्चिदानंदमय कंद भानुकूल केतु ।
चरित करत नर अनुहरत संसृति सागर सेतु ।।८७।। वही पृ० ४०३।।

तुलसी के राम परमार्थ स्वरूप, अव्यक्त, अलख, अनादि और विकाररहित हैं----

राम ब्रह्म परमारथ रूपा । अबिगत अलख अनादि अनूपा ।।
सकल बिकार रहित गतभेदा । कहि नित नेति निरूपहिं बेदा ।।१।।
पृ० ४०८।।

उन में न राग है और न रोष, और न वे किसी का पाप पुण्य तथा गुण दोष ही ग्रहण करते हैं। वे निर्गुण, निर्लेप, मान रहित और एक रस हैं ----

जद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पाप पूनु गुन दोषू ।।
करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा ।।२।।
तदपि करहिं सम बिषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा ।।
अगुन अलेप अमान एक रस। रामु सगुन भए भगत पेम बस ।।३।।वही पृ० ५०७।।

प्रश्नोपनिषद् मे यह कहा गया है कि प्राण परमात्मा से उत्पन्न होता है और वह परमात्मा के ही आश्रित रहता है -----

आत्मन एष प्राणो जायते यथैषा पुरुषे छायै तस्मिन्नेतदा
ततं मनोकृतेनायात्यस्मिञ्छरीरे ।। प्रश्नो० ३।३।। मुंड०२।१।३।।

ऐसा ही तुलसी ने भी कहा है कि राम प्राणों के भी प्राण और आत्मा के भी आत्मा हैं ----

प्रान प्रान के जीव के जीव सुख के सुख राम।।२६०।। वही पृ० ५६४ रा०च०

श्वेताश्वतरोपनिषद् के अनुसार ब्रह्म समस्त इन्द्रियों से रहित होने पर भी समस्त इन्द्रियों के विषयों को जानता है। वह हस्तपाद रहित होने पर भी समस्त वस्तुओं को ग्रहण करने वाला और वेगपूर्वक सर्वत्र गमन करने वाला है। वह नेत्र-विहीन होते हुए भी सब कुछ देखता है और श्रोत्र रहित होकर भी सब कुछ सुनता है--

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत् ।।१७।।
अपाणिपादो जवनो गृहीता पश्यत्यचक्षु: स शृणोत्यकर्ण:।
सवेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ।।२
श्वेता० ३।१६।।

उपनिषदों के अनुसार तुलसी ने भी कहा है ----

आदि अंत कोउ जासु न पावा । मति अनुमानि निगम अस गावा ।।२।
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना ।।
आनन रहित सकल रस भोगी । बिनु बानी बकता बड़ जोगी ।।३।।
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। गृहइ घ्रान बिनु बास असेषा ।।
असि सब भाँति अलौकिक करनी । महिमा जासु जाइ नहिं बरनी ।।४।।
रा०च० वही पृ० १३५।।

सुनत लखत श्रुति नयन बिनु, रसना बिनु रस लेत ।
बास नासिका बिनु लहै, परसै बिना निकेत ।। वै० संदी० ३।।

तुलसी ने ब्रह्म का नाम, रूप, गुण और निर्गुण रूप में विवेचन करने के उपरान्त ब्रह्म के सम्बन्ध में यह कहा है कि अन्तिम रूप से ब्रह्म का जानना कठिन है । इस जगत में अभी तक उसे कोई भी नहीं जान पाया । वस्तुत: वह अविगत, अकथ और नेति नेति है । तुलसी का यह कथन उपनिषदों से प्रभावित है ----

सवेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहु रूपं पुरुषं महान्तम् ।।
श्वेता० ३।१६।।

मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र स: ।। कठो० १।२।२५।।

सारद श्रुति सेषा रिषय असेषा जा कहुँ कोउ नहिं जाना ।
जेहि दीन पिआरे बेद पुकारे द्रवउ सो श्रीभगवाना ।।४।। वही पृ० १८८।।
राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धि पर ।
अविगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह ।।१२६।। पृ० ४३५।।

संक्षेप में तुलसी के ब्रह्म के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि वह नाम, रूप और गुण युक्त होते हुए निर्गुण भी हैं तथा अव्यक्त होते हुए व्यक्त भी हैं ।

सूरदास :

सूर के राम सगुण और निर्गुण दोनों हैं । सूर के निर्गुण ब्रह्म भूभार उतारने के लिये सगुण साकार रूप धारण करते हैं ---

अब ये भूभार उतारन कारन, प्रगटे स्याम सरीर।।१।। सूर राम चरितावली

पद १

यह भू भार उतारन रघुपति, बहुत कृपिन सुख देन ।
बनोबास कौं चले सिया सँग, सुख निधि राजिव नैन ।।२०८।।सूर राम-
चरितावली पृ० २२६

यही बात गुरु बसिष्ठ ने भरत से कही है[१]।

राम जन्म क्यो हुआ ? इसके अन्य कारणों में सूर ने तुलसी के समान जय विजय को दिया गया विप्र श्राप माना है । जय विजय को असुरत्व से मुक्त करने की दृष्टि से ही ब्रह्म ने वराह और नरसिंह अवतार लिया था, तथा उन्हीं को रावण और कुम्भकरण की योनि से मुक्त करने के लिये राजा दशरथ के घर रामावतार लिया---

जय अरु बिजय पारषद दोइ । बिप्र सराप असुर भए सोइ ।
एक बराह रूप धरि मार्यौ । इक नरसिंह रूप संहार्यौ ।।
रावन कुम्भकरन सोइ भए । रामजनम तिन कैं हित लए ।।
दसरथ नृपति अजोध्या राव । ताके गृह कियौ आबिरभाव।।वही पृ० ६

सूर के अनुसार राम ने नवमी के दिन चतुर्व्यूह के रूप में पूर्णावतार लिया[२]----

पुष्य नक्षत्र, नौमी जु परमदिन, लग्न सुद्ध, सुभ बार ।
प्रगट भए दसरथ गृह , पूरन चतुर्व्यूह अवतार ।।
तीनौं व्यूह संगलै प्रकटे, [illegible] श्रीराम ।
संकर्षन प्रद्युम्न, लच्छमन भरत महा सुख धाम ।।
शत्रुघ्नहि अनिरुध कह्यितु हैं, चतुर्व्यूह निज रूप ।
रामचंद्र प्रगटे जब गृह में, हरषे कौसल भूप ।।वही पृ० २१४।।

१- गुरु बसिष्ठ मुनि कह्यौ भरत सौं राम ब्रह्म अवतार ।
बन में जाय बहुत मुनि तारैं, दूर करैं भुव भार ।। वही पृ० २३०

२- बासुदेव , यौं कहत बेद में, हैं पूरन अवतार । वही पृ० २११।।

सृष्टि मे जितनी भी योनियाँ हैं उन सबका निर्माण ब्रह्मा करता है , किन्तु कृष्ण ने जिस मनुष्य योनि में जन्म लिया, वह विधि की बनाई हुई नही है:अर्थात् कृष्ण ने अपनी शक्ति से ही मानव जन्म गृहण किया:------

अदभुत बधू लिए सँग डोलत, देखत त्रिभुवन मोहैं ।।
परम सुसील सुलच्छन जोरी, बिधि की रची न होइ ।
काकी तिन कौं उपमा दीजे, देह घरे धौं कोइ ।। वही पृ० ३०

सूर के राम का निज रूप विश्वरूप है । वे अशरण शरण, भक्त वत्सल, करुणामय उदार, कल्पतरु और रणधीर हैं----

असरन सरन उदार कल्पतरु, राम चंद्र रनधीर ।
रिपु भ्राता जान्यौ जु बिभीषन, निस्वर कुटिल सरीर।।वही पृ०२३८।।
भक्त बछल करुनामय प्रभुकौं, `सूरदास` जस गायौ ।। वही पृ० १२७।।

सूर के अवतारी कृष्ण त्रिभुवन पति श्रीपति, अन्तर्यामी, पूर्ण पुरुष आनन्द स्वरूप और अविगत हैं, एव वेद, पुराण और शास्त्र उसकी महिमा के गान गाते हैं ---

कागभुसुंड गरुड़ सौं भाष्यौं, राम चरित अवतार ।
सकल बेद अरु सास्त्र कह्यौ है, राम चंद्र जस सार ।। वही पृ०२१२।।
बार बार श्रीपति कहैं, धीवर नहिं मानै । वही पृ० २६।।

अपने अंस आप हरि प्रगटे, पुरुषोत्तम निज रूप ।
नारायन भुव भार हरौ है, अति आनंद स्वरूप ।। वही पृ० २११
जाकी चरन रेनु की महि मैं, सुनियत अधिक बड़ाई ।
`सूरदास` प्रभु अगनित महिमा, बेद पुराननि गाई ।।वही पृ० २४।।
चित्रकूट तें चले खीन तन, मन बिस्राम न पायौ ।
सूरदास बलि गयौ राम कैं, निगम नेति जिहिं गायौ ।। वही पृ० ३६।।
हौ जगदीस, कहा कहौं तुम सौं। तुम बल तेज मुरारी ।
`सूरदास` सुनो सब संतौं, अबिगत की गति न्यारी ।। वही पृ० ११८।
`सूर` सेवकहिं हरि बड़ाई, तुम त्रिभुवन के नायक ।। वही पृ० १८६।

राम चंद पूरन पुरुषोत्तम , नैक नयन जब हेरै । वही पृ० २८८
अंतरजामी हौ रघुबीर ।
करुनासिंधु अकाल कल्पतरु, जानत जन की पीर ।।वही पृ० २९०।।

ब्रह्म नेति नेति है । उसकी महिमा का पार पाना कठिन है । वाल्मीकि शेष शिव और सरस्वती भी उसकी महिमा का पार नहीं पा सके----

राम विहार करेउ नाना बिधि, बाल्मीकि मुनि गायौ ।
बरनत चरित बिस्तार कोटि सत तऊ पार नहिं पायौ ।।
`सूर` समुद्र की बूँद भई यह, कबि बरनन कहा करि है ।
कहत चरित रघुनाथ, सरस्वति बौरी मति अनुसरि है ।। वही पृ० २४९
सेष सहस मुख रटत निरंतर, तऊ न पावत पार ।।
सहस वर्ष लौं ध्यान कियौ सिव, राम चरित सुख सार ।
अवगाहन करि कै सब देख्यौ, तऊ न पायौ पार ।। वही पृ० २९२।।

सूर के अनुसार सती ने शिव से यह प्रश्न किया था कि पूर्ण ब्रह्म कौन है ? इस प्रश्न के उत्तर में शिव ने कहा कहा था कि राम और गोविन्द ही पूर्ण ब्रह्म हैं---

बिती समाधि, सती तब पूछ्यौ कहौ मरम गुरु ईस ।
काकौ ध्यान करत उर अंतर, को पूरन जगदीस ।
तब सिव कहेउ राम अरु गोबिंद परम इष्ट इक मेरे ।
सहस बर्ष लौं ध्यान करत हौं, राम कृष्ण सुख केरे । वही पृ० २९२।।

केशवदास

तुलसी के समान केशव ने भी ईश्वर का नाम रूप अवतार: सगुण और निर्गुण रूप में विवेचन किया है । केशव ने ब्रह्म के लिये राम नाम का प्रयोग किया है । केशव के अनुसार राम नाम का उच्चारण स्वयं सिद्ध है -----

कहैगौ सबै श्री राम ताको । स्वयं सिद्ध हैं शुद्ध उच्चार जाको ।।५।।
नाम-वर्णन

नाम और रूप का घनिष्ठ सम्बन्ध है । केशव के अनुसार एक ही ब्रह्म अनेक रूप धारण करता है । केशव के राम गुण रूप हैं ।वे अपने रजोगुण रूप से सृष्टि रचना करते हैं, सत्वगुण से उसका रक्षण करते हैं और तमोगुण से उसका संहार करते हैं । केशव के राम के ब्रह्मा विष्णु और महेश ये तीन रूप हैं,जिनके द्वारा

तुम ही गुण रूप गुणी तुम ठाये। तुम एक ते रूप अनेक बनाये ।।
इक है जो रजोगुण रूप तिहारो। तेहि सृष्टि रची विधि नाम बिहारो
रा०चं०२०।१७ पृ०३५६

गुण सत्व धरे तुम रक्षक जाको। अबविष्णु कहै सिगरो जग ताको ।।
तुमही जग रुद्र सरूप सँहारो । कहिये तेहि मध्य तमोगुण मारो।।२०।१८।
पृ० ३६०

केशव के अनुसार राम ही संसार रूप हैं और सब संसार उन्हीं में स्थित है । राम ने संसार मे सब जीवों के कृत्यों की सीमा निर्धारित की है । जब कोई जीव अपनी मर्यादा का उल्लंघन करता है, तब उसको नष्ट करने के लिये राम कोई न कोई अवतार धारण करते हैं ----

तुमही जग हौ जग है तुमही में । तुमही विरची मरजाद दुनी में ।
मरजादहिं छोड़त जानत जाको। तबही अवतार धरो तुम ताको ।।२०।१६।
पृ० ३६०

ये राम विविध रूपों मे अवतार लेकर लोक मे मर्यादा की स्थापना करते हैं----

तुमही धर कच्छप वेष धरोजू । तुम मीन है वेदन को उधरो जू
तुमही जग यज्ञ बराह भये जू । छिति छीन लई हिरनाक्ष ह्ये जू ।।२०।।
तुमही नरसिंह को रूप सँवारो। प्रह्लाद को दीरघ दुःख बिदारो ।।
तुमही बलि बावन वेष छलो जू । भृगुनन्दन ह्वै छिति छत्र दलो जू।।वही
२०।११ पृ० ३६०

तुमही यह रावण दुष्ट सँहार्यो। धरणी मह बूड़त धर्म उबार्यो ।
तुमही पुनि कृष्ण को रूप धरोगे । हति दुष्टन को भुव भार हरोगे ।।२२।
तुम बौध सरूप दयाहिं धरोगे । पुनि कल्कि ह्वै म्लेच्छ समूह हरोगे ।।
यहि भाँति अनेक सरूप तिहारे । अपनी मरजाद के काज संवारे ।।२३।।
पृ०२० पृ० ३६१।।

१- शुद्ध बोधैकघन, [illegible]म, अब बौद्ध अवतार वंदे कृपाल ।।वि०प०५२।८।।

केशव के राम ईश्वर के अवतार हैं । जब व्यंग्यपूर्ण वचनों से परशुराम यह न समझ सके कि रामावतार हो चुका तब, राम और महादेव में उन्हे स्वयं स्पष्ट शब्दो में राम का अवतार समझाया है ----

भगन कियो भवधनुष साल तुमको अब सालौं ।
नष्ट करौं विधि सृष्टि ईश आसन से चालौं ।।
सकल लोक संहरहु संस सिरते घर डारौं ।
सप्त सिंधु मिलि जाहि होइ सबही तम भारौं ।।
अति अमल जोति नारायणी कह केशव बुझि जाय बर ।
भृगुनंद सँभारु कुठार मै कियो सरासन युक्त सर ।।रा०चं०७।४२।।
भृगुनन्दन सुनिये, मन महँ गुनिये, रघुनन्दन निरदोषी ।
निजु ये अविकारी, सब सुखकारी, सबही बिधि सन्तोषी ।
एकै तुम दोऊ और न कोऊ, एकै नाम कहाये ।
आयुर्बल खूट्यों धनुष जु टूट्यो मैं तन मन सुख पाये ।। वही ७।४५।।

तुलसी की भाँति अवतारवाद के कारणों में केशव ने भी यह माना है कि भगवान् का अवतार भक्तों के प्रेम और लोक मर्यादा के संरक्षण के लिये होता है ----

सब को समान नहिं बैर नेह, सब भक्तन कारन धरत देह।वही७।४६।४७।।
राजसुता एक मंत्र सुनो अब , चाहत हौं भुव भार हर्यो सब।।वही १२।१२
भार के उतारिबे को अवतरे रामचन्द्र । वही १४।३८।।

केशवदास कहते हैं कि जो लोभ, मोह, मद और काम के वश में नहीं है, वे राम साक्षात् परब्रह्म हैं और अवतारों में सर्वश्रेष्ठ अवतार हैं---

मन लोभ मोह मद काम वश भये न केशवदास मणि ।
सोई पर ब्रह्म श्री राम हैं अवतार अवतार मणि ।।वही १।१७।।

केशव के राम सगुण और निर्गुण दोनो हैं । श्रीराम स्तुति में ब्रह्मा जी कहते हैं कि राम अन्तर्यामी और चौदह लोकों को आनन्द देने वाले हैं----

राम सदा तुम अंतरयामी । लोक चतुर्दश के अभिरामी ।।
निर्गुण एक तुम्हें जग जानै । एक सदा गुण वंत बखानै ।।वही २०।१५

जगत् में राम की ज्योति व्याप्त है । केशव के राम का न कोई आदि है और न कोई अंत, उनका न कोई रूप हैं और न कोई परिमाण(माप तोल) —

ज्यभो

ज्योति जो जग मध्य तिहारी । जाय कही नइ सुनी न निहारी ।
कोउ कहे परिमान न ताको । आदि न अंत न रूप न जाको ।।वही२०।२६

वे (राम)आदि देव हैं और वे सब संसार का भेद जानते हैं । ब्रह्मा विष्णु, महेश, सूर्य, चद्र और अग्नि उनके अंशावतार हैं -----

कह कुशल कहौं तुम आदि देव । सब जानत हौ संसार भेव ।।
विधि विष्णु शंभु रवि ससि उदार। सब पावकादि अंशावतार।।
वही २०।५४।।

ब्रह्मा से लेकर परमाणु पर्यन्त राम ही (व्याप्त) हैं, वे अज (अजन्मा) और अनंत हैं---

ब्रह्मादि सकल परमाणु अंत । तुमही हौ रघुपति अज अनंत ।।वही
२०।५५

श्री राम वंदना में केशव ने राम को पूर्ण और नेति नेति कहा है । केशव के अनुसार राम का रूप अणिमा सिद्धि, और उनका गुण कथन गरिमा सिद्धि को देने वाला है, उनकी भक्ति महिमा सिद्धि और नाम-जप मुक्ति को देने वाला है----

पूरण पुराण अरु पुरुष पुराणपरिपूरण ।
बताबै न बतावै और उक्ति को ।
दरशन देत जिन्हें दरशन समुझै न ,
नेति नेति कहैं वेद छाँड़ि आन युक्ति को ।
रूप देहि अणिमाहि गुण देहि गरिमाहि,
भक्ति देहि महिमाहि नाम देहि मुक्ति को ।।वही १।३।।

केशव के अनुसार जनक जी ने विश्वामित्र के द्वारा (राम रूप में) उसी ज्योति का साक्षात्कार किया था जिसका दर्शन करने के लिये सिद्ध लोग समाधि लगाते हैं तथा जिसे योगियों ने कभी नहीं देखा और जिसका ब्रह्मा भी ठीक प्रकार से वर्णन नहीं कर सकते और जो महादेव के मन रूपी समुद्र में सदैव बसती है तथा जिसका न कोई रूप है और न कोई रंग और न कोई चिन्ह और जिसे वेद अनन्त और अनादि कहते हैं---

सिद्धि समाधि सजै अजहूँ न कहूँ जग जोगिन देखन पाई ।
रुद्र के चित्र समुद्र बसै नित ब्रह्महु के बरनी नहिं जाई ।।

रूप न रंग न रेख विसेष अनादि अनन्त जु बेद न गाई ।

केशव गाधि के नन्द हमैं वह ज्योति सो मूरतिवन्त दिखाई ।।वही ६।१८

केशव के राम समस्त भुवनो के भर्त्ता और ब्रह्मा रुद्रादि के कर्त्ता हैं[1] ----

अखिल भुवन भर्ता ब्रह्म रुद्रादि कर्ता । वही ६।२७।।

राम के स्वरूप के सम्बन्ध में मारीच रावण को समझाता हुआ कहता है कि ये राम मनुष्य नहीं प्रत्युत ये समस्त लोक और जल-थलादि में व्याप्त हैं---

रामहि मानुष कै जनि जानो । पूरन चौदह लोक बखानो ।।

जाहु जहाँ सिय लै सुन देखौं । हौं हरि को जलहू थल लेखौं ।।वही १२।६।

ये निर्गुण, सुख स्वरूप[2] अनुपमेय, जगत नियंता, सर्वज्ञ, सब को समरूप समझने वाले और जगत्पति रूप से जागने वाले हैं-----

महानिर्गुणी नाम ताको न लीजै । सदा दास मोपै कृपा क्यों न कीजै।।

वही १३।५६

सुखकंद हैं । रघुनन्द जू ।। जग यों कहै । जगबंद जू ।। वही १।१३।।

तुम हौ सब लायक श्रीरघुनायक, उपमा दीजै काहि ।

मुनि मानस रंता, जगत नियंता, आदिहु अन्त न जाहि ।। वही ३४।३६

तुम हौ सरवज्ञ सदा सुखदाई । अरु है सबको समरूप सदाई ।

जग सोवत है जगतीपति जागै । अपने अपने सब मारग लागै ।।वही ३४।७

केशव के राम अपरिमित, अबाध, अकल(१६ कलाओं से रहित), अजर, अमर, अवर्ण, अद्भुत, अच्युत, अमल, अनंग, असंग, सर्वशक्तिवान, नित्य नवीन, निरीह, निर्विकार, अविकृत, अखंड, मुक्त, अभेद्य, मायारहित, असीम, आदि मध्य और अंत तक एक रहने वाले, सर्वज्ञ, एवं देवाधिदेव है । विधि, हरि, हर और वेद उसे जोऽसि सोऽसि आदि शब्दों से पुकारते हैं------

---

१- श्रीराम नारायण लोककर्ता । ब्रह्मादि रुद्रादिक दुःखहर्ता । वही १७।१५।।

२- तदेतदिति मन्यन्तेऽनिर्देश्यं परमं सुखम् । कठो० २।२।१४।।

जाको नाहीं आदि अंत अमित अबाधि युत अकल अरूप अज चित्त में अतुर है।
अमर अजर अज अद्भुत अवर्ण अंग अच्युत अनाम्य सुरसना_ रतु है ।।
अमल अनंग अति अदार असंग अरु अस्तुत अदृष्ट देखिबे को परसतु है ।
विधि हरि हर वेद कहत जोसि सोसि केशवदास ताकहं प्रणामहि करतु है।।
विज्ञानगीता २१।पृ० १०४।।

अनादि अंतहीन है, जु नित्य ही नवीन है ।
अरूप है अमेय है, अमाय है अभेद है ।।
निरीह निर्विकार है सुमध्य अध्यहार है ।
अकृत मै अखंडित्वै अशेष जीव मंडित्वै ।
समस्त शक्ति युक्त है सुदेव देव मुक्त है ।।वि गी० ३९-४१।पृ० ८०।।

तुम आदि मध्य अवसान एक । अरु जीव जन्म समुझे अनेक ।।रामचं०२५।१।।
तुम हौ अनन्त अनादि सर्वग सर्वदा सर्वज्ञ ।
अब एक हौ कि अनेक हौ महिमा न जानत अज्ञ ।। रामचं० २७।१।।

केशव के अनुसार जिस ब्रह्म का महादेव ध्यान करते हैं, उसका वास्तविक स्वरूप क्या है, यह बताना अत्यन्त कठिन है-----

गुनी एक रूपी सुनो वेद गावैं ,
महादेव जाको सदा चित्त लावैं ।।वही १।१४।।
विरंचि गुण देखै । गिरा गुणनि लेखै ।
अनंत मुख गावै । विशेष हि न पावै ।। वही १।१५।।

अग्रदास

अग्रदास के राम अवतारी [illegible] हैं । अग्रदास ने उनके २४ अवतारों का भी उल्लेख किया है-----

जै जै मीन बराह कमठ नर हरी बली बावन ।।
[illegible] रघुबीर वीस्नु कीरति जग पावन ।।
बुध कल्की व्यास पृथु हरी हंस मन्वंतर ।
~~जग्य-सखी-दत्त-कपिलदेव-सनकादि~~
जग्य रिषभ है ग्रीव ध्रुव वर दे नयनंवर ।।

चौविश रूप लीला रू वीर श्री अग्रदास गुरपदघरो ।।१।।

अग्रदास ने रामानन्द, विष्णुस्वामी, माध्वाचार्य और नित्यानन्द को भी हरि का अवतार माना है ----

चौबीस प्रथम हरि बपु धर्यौ चतुर व्युह कल्युग प्रगट ।
श्री रामानन्द उदार सुधानीधी अवनी कर पतउ ।
वीस्नु स्वामी वोहित सेट, संसार पार कर
माध्वाचार्य मेघा भुतिसर उसर भरीआ नीत्यानंद आदित्यहर ।।
ध्यान जुहरीआ जन म कर्म भागवत धर्म संग दाइ थापी अघट ।
चौबीस प्रथम हरी वधु धर्यो चतुरवुह कल्जुग प्रगट ।।२।।पृ०१।।
(राम छप्पय ह०लि०(अवतारवाद) नं०६५१)

अग्रदास के सगुण राम रघुवंश भूषण, सुखराशि, पापों को नष्ट करने वाले और सच्चिदानन्द हैं----

कुमरौ श्री रघुवीर धीर रघुवंश विभूषण
सरण गइ सुख रासि हरत अघ सागर दूषण।।१।। ध्यान मंजरी
(ह०लि०)पृ०१

अस राजत रघवीर धीर आसन सुषकारी ।
रूप सच्चिदानन्द वाम दिसि जनक कुमारी ।।४७।। वही पृ० ६।।

राम नित्य प्रति सुन्दर लगते हैं उनके रूप को देख कर करोड़ो सूर्य लज्जित हो जाते हैं---

षोडस वरष किसोर राम नित ही सुंदर राजे ।
राम रूप को निरषि विभाकर कोटिक लाजे ।।४६।। वही पृ० ३।।

इन राम की ब्रह्मा और देवादि सब चरण सेवा करते हैं-----

यह ध्यान उर धरै स्वयं तन सुफल करेवा ।
भव चतुरानन आदि चरण वैंदै सब देवा ।। ७०।।वही पृ० ५।।

और इन जगत स्वामी राम के रूप का वर्णन करना कठिन है----

जगत ईसको रूप वर्णन कहै कौन अधिक मति ।
कहा वल्प षधोत मानुं के निकट करै युति ।।७५।। वही पृ० ६।।

अग्रदास ने राम के अवतारी और रसिक रूप का उल्लेख किया है ।

सेनापति:

सेनापति के अनुसार ब्रह्म के दो रूप हैं सगुण और निर्गुण । नेत्रों से देखने पर उनका अनुपम विश्वरूप दृष्टिगत होता है और बुद्धि से विचारने पर वे निराकार तथा निराधार प्रतीत होते हैं----

दृगन सौं देखै, विस्वरूप है अनूप जाकौं,
बुद्धि सौं बिचारै निराकार निरधार है ।।क०रत्ना०५।१।।पृ०९७।।

यह निर्गुण ब्रह्म विविध अवतार धारण करके पृथिवी का भार हरण करता है और भक्तों का संकट दूर करता है । सेनापति ब्रह्म के अवतारों में से केवल एक गुणों के धाम राजा राम का गुण गान करते हैं । ये राम पूर्ण पुरुष हृषीकेश(इन्द्रियों के स्वामी) और गुणों के धाम हैं । सेनापति इन्हीं की बार बार विनती करते हैं----

बहुरि बराह अवतार भयौ, किधौं दिन
बिन ही प्रलय प्रगटत प्रले काल के ।
सेनापति फेरि सुरासुर हैं मथत किधौं, छिपै छीरधर त्रास असनि कराल के।।
वही ४।४८।।

पाल्यौ प्रहलाद, गज ग्राह तें उबार्यौ जिन,
जाकौ नाभि कमल, बिधाता हू कौं भौन है । वही ५।३
कीनौ है प्रसाद, मोटि डार्यौ है बिबाद दौरि
पाल्यौ प्रहलाद, रछा कीनी दुरदन की । वही ५।१५ पृ० १०१।।
सेनापति जानी बातें सब अवतारन में ,
एक राजा राम गुन धाम करि गायौ है ।। वही ४।७० पृ० ९५।।
पूरन पुरुष, हृषीकेश गुनधाम राम,
सेनापति ताहि बिनवत बार बार है ।। वही ५।१।।पृ० ९७।।

सेनापति के राम अवतारी पुरुष भी हैं । उनके अनुसार पूर्ण पुरुष(राम) का पूर्णावतार हुआ है----

तेज पुंज रूरौ, चंद भूरौ न समान जाके,
पूरौ अवतार भयौ पूरन पुरुष कौं ।। वही ४।७।पृ० ७९।।

सेनापति के सगुण राम तीन लोकों के नायक और तिलक हैं । ये (राम) सुख के धाम, जगत के कर्ता, धर्ता, कमला के भर्ता और विपत्ति के हर्ता हैं----

राजा राम तीनि लोक नाइक बखानिये ।। वही ४।४

ऐसे थोरी उकति, जुगति करि सेनापति,

राजा राम तीनि लोक तिलक रिफाइये ।। वही ४।५।। पृ० ७५।।

जगत कौं करतार, बिस्व हू कौं भरतार,

हिय में निहार, सब ही निहारियत है ।। वही ५।१८। पृ० १०२

जगत कौं करता है, धराहू कौं धरता है ,

कमला कौं भरता है हरता बिपति कौं ।। वही ५।७। पृ० ६६

जग अभिराम, लोक बेद जाकौं नाम महा

राज मनि राम, धाम सेनापति सुख कौं । वही ४।७।पृ० ७६

सेनापति के राम सीतापति और भगवान् हैं, उनकी अनन्त महिमा है----

महिमा अनंत सिय कंत राम भगवंत,

सेनापति संत भागिवंत काहू पायौ है ।। वही ५।६।।

सेनापति के सगुण और साकार राम निर्गुण और निराकार भी हैं । श्वेताश्वतरोपनिषद् में यह कहागया है कि उस परमात्मा की कोई प्रतिमा नहीं है (अर्थात् उसका साकार स्वरूप नहीं)

नैनम् ऊर्ध्व न तिर्यंच न मध्ये परिजग्रभत्

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यश: ।। श्वेता ४।१६।।

सेनापति ने कहा है कि धातु या काष्ठ की प्रतिमा को ब्रह्म नहीं समझना चाहिए। प्रतिमा को ढकने वाले पुष्पों के नीचे भगवान् की मूर्ति विराजमान नहीं है । ब्रह्म को निरंजन समझ कर परम पद प्राप्त करना चाहिए, मन्दिर के बीच में कुछ नहीं है---

धातु, सिला, दार, निरधार प्रतिमा कौं सार,

सौंन करतार तू बिचार बैठि गेह रे ।

राखु दीठि अंतर, कछू न सून अंतर है ,

जीभ कौं निरंतर जपाउ तू हरे हरे ।।

मंजन बिमल सेनापति मन रंजन तू,

जानि कै निरंजन परम पद लेह रे ।

कर न सँदेह रे कही मैं चित देह रे

कहा है बीच देहरे कहा है बीच देह रे ।। वही ५।३१। पृ० १०६।।

सेनापति के निर्गुण निरंजन राम, रूप,वर्ण और जन्म मरण रहित हैं---

रूप रेख न बरन, उतपति न मरन जाके,

कर न चरन जाके चरन कौं जल है ।। वही ५।६२। पृ०११५।।

वे सत्य स्वरूप महामाया के ईश दीनबन्धु और दयासिन्धु हैं---

राम सत्यसंघ दयासिन्धु दीनबन्धु यह

रीति है तिहारी तीनि लोक मांफ गाई है ।। वही पृ० १२२

ईस महामाया हूं कौं निगमन गायौं है ।। वही पृ० ६८।।

इनका वेद यश गान करते हैं, सनकादि ध्यान करते हैं, महायोगी योग साधना करते हैं, और सम्पूर्ण जगत इनका यज्ञ और जप करता है । अनेक यत्न करने पर ब्रह्मा और सनकादि भी इनका दर्शन नहीं कर पाते । वस्तुत: इनकी महिमा अगम है । निगम भी इनका पार नहीं पा सकते---

ध्यावैं सनकादि जाहि गावैं बेद बंदी सदा

सेवा कै रिफावै सेस, रबि, ससि पौन है ।।

जाकौं महा जोगी, जोग साधन करत हठि,

जाकौं चतुरानन अनेक जतनन भात,

जाकौं सब जगत करत जग्य जाप है ।

होत है न जाकौं सनकादि कौं मिलाप है ।। वही पृ० १११।।

अगम अपार, जाकी महिमा कौ पारावार

सेवै बार बार परिवार सुरपति कौं । वही पृ० ६६।।

सेनापति राम कौं प्रताप अद्भुत जाहि

गावत निगम, पै न पार वे परत है । वही पृ० ८८।।

नामादास

नामादास के राम सगुण और साकार राम हैं । वे कृपा के रूप, सुहृद, सुजान, सुशील, और अपार हैं, उनके समान प्रेम को निभाने वाला दूसरा कोई नहीं है----

राम कृपा को रूप, वन्दौं श्री गुरू अग पद ।

जिनको सुयश अनूप, दशधा सम्पति धनद जिमि ।।१।।

सुहृद सुजान सुशील सब, जे प्रभु रूप अपार ।

कोउ न राम सम दूसरो नेह [illegible] हार।। १५६।।रामाष्याम

पृ० १,१८।।

नामाद [illegible] स्थान हैं, सखियाँ उनके अंग अंग के रूप की [illegible] ा है---

राम कुँवर छबि देखन लागी । अँग अँग श्याम रूप अनुरागी ।।
त्रिदश वर्ष मुग्धाकोउ श्यामा। मध्यकाम केलि विश्रामा ।।१७५।। वही

पृ० २०।।

सगुण राम भक्तों के अनुसार ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दो रूप हैं । निर्गुण ब्रह्म भक्तों के प्रेम और गो द्विज, ब्राह्मण और धर्म का संरक्षण करने के कारण अवतार गृहण करता है । सगुण ब्रह्म नाम और स्वरूप में व्यक्त होता है । किन्तु निर्गुण ब्रह्म अनाम अरूप, अज, अनादि, अखंड, एकरस, सर्वव्यापक और अव्यक्त होता है । ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप क्या है, यह बताना अत्यन्त कठिन है । उस ब्रह्म (राम) के सम्बन्ध में नेति नेति कहना ही ठीक है ।

(ख) जीव

ब्रह्म और जीव के पारस्परिक सम्बन्ध की दृष्टि से दर्शन शास्त्रों में गम्भीर मतभेद मिलता है । कुछ दार्शनिकों का यह मत है कि जीव और ब्रह्म एक हैं और कुछ दार्शनिकों का यह मत है कि जीव और ब्रह्म भिन्न भिन्न हैं । जीव के सम्बन्ध में सगुण राम भक्तों का क्या मत है, नीचे इसका विवेचन किया जा रहा है ।

गोस्वामी तुलसीदास:

प्रश्नोपनिषद् में जीव को देखने वाला, स्पर्श करने वाला, सुनने वाला, सूँघने वाला, स्वाद लेने वाला मनन करने वाला, जानने वाला और कर्म करने वाला कहा गया है । यह जीव अक्षर ब्रह्म में भलीभाँति स्थित रहता है----

एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा
कर्ता विज्ञानात्मा पुरुषः स परेऽक्षर आत्मनि संप्रतिष्ठते।। प्रश्नो० ४।९।।

श्वेताश्वतरोपनिषद् के अनुसार जीव सूर्य के समान ज्योति स्वरूप, संकल्प, अहंकार तथा बुद्धि और शरीर के गुणों से युक्त है----

अंगुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः संकल्पाहंकारसमन्वितो यः ।
बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव आराग्रमात्रो ह्यपरोऽपि दृष्टः।।श्वेता०५।८

उपर्युक्त गुणों के आधार पर उपनिषदों में जीव और ब्रह्म में अन्तर माना गया है[1]।
लगभग उपनिषदों के अनुसार ही गोस्वामी तुलसीदास ने जीव के गुण धर्म का उल्लेख करके जीव और ब्रह्म में अन्तर माना है। तुलसी के अनुसार हर्ष, शोक, ज्ञान, अज्ञान, अहंता और अहंकार ये सब जीव के धर्म हैं, राम(इनसे भिन्न) व्यापक ब्रह्म, परमानन्द स्वरूप परात्पर और पुराण पुरुष हैं----

हरष बिषाद ग्यान अग्याना। जीव धर्म अहमिति अभिमाना ।।
राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानंद परेस पुराना ।।रा०च०मा०४।।पृ०१३

उपनिषदों में यह कहा गया है कि जीव, ब्रह्म की सहायता से ही विषयों का अनुभव करता है अथवा जीव जिसकी कृपा से विषयों का अनुभव करता है वही ब्रह्म है[2] ---

येन रूपं रसं गन्धं शब्दान्स्पर्शांश्च मैथुनान् ।
एतेनैव विजानाति किमत्र परिशिष्यते ।। एतद्वै तत् ।। कठो०२।१।३।।

प्रश्नोपनिषद् में यह कहा गया है कि इन्द्रिय और उनके विषय तथा विज्ञानस्वरूप जीवात्मा आदि सभी ब्रह्म के आश्रित हैं[3] (प्रश्नो ४।७।८)--

विज्ञानात्मा सह देवैश्च सर्वैः प्राण भूतानि संप्रतिष्ठन्ति यत्र ।
तदक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य ससर्वज्ञः सर्वमेवाविवेशेति ।। प्रश्नो० ४।११।।

ऐतरेयोपनिषद् के अनुसार ब्रह्म के बिना जीव के लिये इन्द्रियों द्वारा [illegible] कार्य सम्पन्न कर लेना असम्भव है(ऐत०१।३।११)।
उपनिषदों के समान ही तुलसी ने कहा है कि जगत इन्द्रियाँ और जीवात्मा का परम प्रकाशक अनादि ब्रह्म अयोध्यापति श्री राम हैं(अर्थात् जीव की सत्ता भी ब्रह्म पर निर्भर है)-

जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यान गुन धामू ।।४।।
विषय करन सुर जीव समेता। सकल एक तें एक सचेता ।।
सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई।।३।।रा०च०मा० पृ०१३४।।

१-जीव और ब्रह्म के अन्तर की दृष्टि से निम्नलिखित मन्त्र दृष्टव्य हैं---
कठो०१।२।२०, १।३।१-४-१०-११-१२, २।१।६, २।३।५
श्वेता० ३।२०, मुंड ३।१-२, श्वेता० १।६
२- स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ येनानुपश्यति ।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति।। कठो०२।१।४।।
३- कठो० २।२।८।। कठो० २।२।१५, मुंड-२।२।१०, श्वेता ६।१४,१।८,ऐत-३।१।

जीव ब्रह्म के नियन्त्रण में रहता है और ब्रह्म किसी के भी नियंत्रण में नहीं रहता[1]। इस भाव को स्पष्ट करते हुए श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा गया है कि जीव अज्ञानी और असमर्थ है तथा ब्रह्म सर्वज्ञ और सर्वसमर्थ है किन्तु जीव और ब्रह्म ये दोनों ही अजन्मा हैं। अनादि और क्षरशील एक तीसरी शक्ति प्रकृति है, जिसको भोगने वाला जीव अमृत स्वरूप और अविनाशी है। ये जीव और प्रकृति ईश्वर के शासन में रहते हैं[2] ------

ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशनीशावजा ह्येका भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता।
अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्ता त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत् ।।१।९।।
क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः।
तस्याभिध्यानाद योजनात् तत्वभावाद् भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः ।।
श्वेता॰ १।१०।।

ब्रह्म एक है और जीव अनेक हैं। यह (ब्रह्म) अकेला ही बहुत से अक्रिय जीवों का शासक है। वह एक बहुत से नित्य और चेतन आत्माओं के कर्मफल भोग का विधान करता है[3]। यह जीव ब्रह्म ज्ञान के अभाव में अनेक कल्पों तक नाना लोक और योनियों में शरीर धारण करने को विवश होता है[4] (कठो॰ २।३।४)। जीव जगत के विषयों का भोक्ता बना रहने के कारण प्रकृति के आधीन असमर्थ होकर उसमें बंध जाता है---

संयुक्तमेतद् क्षरमक्षरं च व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः।
अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावा-ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ।।
श्वेता॰ १।८।।

१- न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके न चेशिता नैव च तस्य लिंगम्।
स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः।।श्वेता ६।९।।

२- गीता ७।४-५-१५-१६, १५।१७।। श्वेता॰ ३।२।। , ४।१३

३- श्वेता॰ ६।१२-१३-१६, कठो॰ २।१३

४- श्वेता॰ १।६।।

यह जीव ब्रह्म द्वारा निर्मित इस जगत मे माया के द्वारा भलीभाँति बँधा हुआ है---

छन्दांसि यज्ञा, क्रतवो व्रतानि भूतं भव्यं यच्च वेदा वदन्ति।
अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत् तस्मिश्चान्यो मायया संनिरुद्धः।।
श्वेता-४।६।।

उपनिषदों के समान ही तुलसी ने जीव के स्वरूप का विवेचन किया है । तुलसी के अनुसार जीव की गति ईश्वर के आधीन है । यह जीव माया के वश में है और माया ईश्वर के वश में है । जीव पराधीन है और ईश्वर स्वाधीन । जीव अनेक हैं और ब्रह्म एक । माया के वश में रहने वाला परिच्छिन्न जड़ जीव क्या ईश्वर के समान हो सकता है यह अविनाशी जीव चार आकरो और ८४ लाख योनियों में चक्कर लगाता रहता है । यह माया की प्रेरणा से काल, कर्म, स्वभाव और गुण से घिरा हुआ सदा भटकता रहता है और जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्र को उतार कर नये वस्त्र पहिनाता है उसी प्रकार जीव पुराने शरीर को छोड़ कर नये शरीर धारण करता है

ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई । गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई ।।
आकर चारि लच्छ चौरासी । जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी ।।२।।
फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा ।।
कबहुँक करि करुना नर देही । देत ईस बिनु हेतु सनेही।।३।।रा०च०मा०
पृ० ६९१

तात जायँ जियँ करहु गलानी। ईस अधीन जीव गति जानी ।।
तीनि काल तिभुवन मत मोरे । पुन्यसिलोक तात तुर तोरे ।।३।।
वही पृ० ५४३

१- जोइ तनु धरउँ तजउँ पुनि अनायास हरिजान ।
जिमि नूतन पट पहिरइ नर परिहरइ पुरान ।। १०६(ग) रा०च०मा०पृ० ६७२।।
तुलना कीजिए----

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।। गी-२।२२।।

इसी भाव का एक श्लोक अध्यात्म रामायण में भी आया है----

देही प्राक्तनदेहोत्थकर्मणा देहवान्पुनः । तद्देहोत्थेन च पुनर्एवं देहः सदात्मनः
।।१०।।
यथा त्यजति वै जीर्णं [illegible] वासो गृह्णाति नूतनम् । [illegible]

ग्यान अखंड एक सीताबर । माया बस्य जीव सचराचर ।।२।।
जौं सब कें रह ग्यान एक रस । ईस्वर जीवहि भेद कहहु कस।।
माया बस्य जीव अभिमानी । ईस बस्य माया गुन खानी ।।३।।
परबस जीव स्वबस भगवंता । जीव अनेक एक श्रीकंता ।।
मुधा भेद जद्यपि कृत माया । बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया ।।४।।
वही पृ० ६४०।।

क्रोध कि द्वैतबुद्धि बिनु द्वैत कि बिनु अग्यान ।
मायाबस परिछिन्न जड़ जीव कि ईस समान[1] ।। १११(ख)वही पृ० ६७५।।
ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई । गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई ।।
आकुरचारि लच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी।।२।।
फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा ।।३।।वही पृ०६९१

तुलसी के अनुसार जीव अपने कर्मों के कारण ही सुख दु.ख का भोग करता है----
जीवन्ह करम बस सुख दुख भागी। जाइअ अवध देव हित लागी।।२।।वही पृ०३४४

यह जीव पंच भौतिक शरीर से भिन्न और नित्य है----
प्रगट सो तनु तव आगे सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा।।
उपजा ग्यान चरन तब लागी । लीन्हेसि परम भगति बर मागी ।।३।।
वही पृ० ६६५।

पुन: उनके मतानुसार जो माया ईस्वर और अपने स्वरूप को नहीं जानता वह जीव है, जो (जीव को कर्मानुसार) बन्धन और मोक्ष प्रदान करता है और जो सबसे परे तथा माया का प्रेरक है वही ईश्वर है----

माया ईस न आपु कहुँ जान कहिअ सो जीव ।
बंध मोच्छ प्रद सर्ब पर माया प्रेरक सीव ।।१५।।वही पृ० ६१५।।

तुलसी ने विषयी, साधक और सिद्ध इन तीन प्रकार के जीवों के साथ ही (अण्डज, स्वेदज, उद्भिज, जरायुज) चार प्रकार के अनन्त जीवों का भी उल्लेख किया है[2]।

१- जौं अस हिसिषा करहिं नर जड़ बिबेक अभिमान ।
परहिं कलप भरि नरक महुँ जीव कि ईस समान।।रा०च०मा०६९।।पृ०६९५।।

२- बिषई साधक सिद्ध सयाने । त्रिबिध जीव जग बेद बखाने ।।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि तुलसी ने जीव और ब्रह्म में तात्विक अन्तर माना है । तुलसी साहित्य में कुछ कथन ऐसे भी मिलते हैं जिनमें जीव और ब्रह्म मे कोई तात्विक भेद नहीं है । अंश और अंशी में गुण धर्म की दृष्टि से कुछ अन्तर नहीं होता, उनमें केवल मात्रा भेद होता है । गीता में जीव को ब्रह्म का सनातन अंश कहा गया है----

ममैवांशो जीव लोके जीव भूत: सनातन: ।

मन: षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ।।गी०१५।७।।

तुलसी ने भी जीव को ब्रह्म का अंश माना है-----

ईश्वर अंस जीव अबिनासी । चेतन अमल सहज सुख रासी।।१।।

वही पृ० ६८२

यह जीव माया के वशीभूत होकर[1] तोते और बानर की भाँति अपने आप बंध गया अर्थात् जड चेतन में ग्रन्थि पड़ गई । यद्यपि यह ग्रन्थि मिथ्या है,तथापि उसके छूटने में कठिनाई) है । जब से जड़ और चेतन में ग्रन्थि पड़ी है तभी से जीव संसारी बना है----

सो मायाबस भयउ गोसाईं । बंध्यों कीर मरकट की नाईं ।।

जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई । जदपि मृषा छूटत कठिनई ।।२।।

तब से जीव भयउ संसारी । छूट न ग्रंथि न होई सुखारी ।।

श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई।।३।। वही पृ० ६८२।।

यह जीव माया से छूटा हुआ तब समझा जायेगा जब यह समस्त विषयों से विरक्त हो जायेगा[2]-----

एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी । परमारथी प्रपंच बियोगी ।।

जानिअ तबहिं जीव जग जागा । जब सब विषय बिलास बिरागा।। वही पृ० ४०७

राम की दुस्तर माया के वशीभूत होकर जीव भव पंथ में भटक गया है । तीनों प्रकार के दु:खों से वही जीव छूटता है, जिसे कृपा करके राम देख लेते हैं----

---

१- तव माया बस फिरउँ भुलाना । ता ते मैं नहिं प्रभु पहिचाना ।।५।।वही पृ०६५५।।

२- गीता २।६६।।

तव विषम माया ब—स सुरासुर नाग नर अग जग हरे ।
भव पंथ भ्रमत अमित दिवस निसि काल कर्म गुननि भरे ।।
जे नाथ करि करुना बिलोके त्रिबिधि दुख ते निर्बहे ।
भव खेद छेदन दच्छ हम कहुँ रच्छ राम नमा महे ।।२।।वही पृ०८८२

वस्तुत: माया से मुक्त होने पर जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं रहता । तुलसी की कुछ उक्तियाँ और भी हैं जिनमें जीव और ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं माना गया है----

सुरसरि जल कृत वारूनि जाना । कबहुँ न संत करहिं तेहि पाना ।।
सुरसरि मिले सो पावन जैसें । ईस अनीसहि अंतरु तैसें ।।१।। वही
पृ० ६५

मन गोतीत अमल अबि नासी। निर्बिकार निरबधि सुखरासी ।।
सो तैं ताहि तोहि नहीं भेदा । बारि बीचि इव गावहिं बेदा ।।३।।
वही पृ० ६७४

जीव और ब्रह्म में भेद है और नहीं भी है । इन दोनो बातों का तुलसी ने विनय पत्रिका में भी उल्लेख किया है । विनय पत्रिका के अनुसार जीव जड़ और माया के आधीन है और राम ईश्वर और मायापति हैं----

वसुखद सुप्रभु तुम सो जगमाहीं। श्रवन-नयन मन गोचर नाहीं।।
हौ जड़ जीव ईस रघुराया। तुम मायापति हौं बस माया।।३।।वि०प०१७७।।

तुलसीदास ने अपने को जीव और दास तथा राम को ब्रह्म और स्वामी मानकर द्वैतभाव को ही स्वीकार किया है----

तू दयालु दीन हौं तू दानि हौं भिखारी ।
हौं प्रसिद्ध पातकी तू पाप पुंज हारी ।।१।।
नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मोसो ?
मो समान आरत नहि आरतिहर तोसो ।।२।।
ब्रह्म तू हौं जीव तू है ठाकुर हौं चेरो ।
तात मात गुरू सखा तू सब बिधि हितु मेरो ।।३।।वि०प०७९।।

इस द्वैतभाव को तुलसी ने अनेक पदों में व्यक्त किया है ।

तुलसीदास ने जीव और ब्रह्म मे अभेद मानते हुए कहा है कि जीव और ब्रह्म में जो द्वैत भासित होता है वह मनका विकार मात्र है । यदि मन के विकार नष्ट हो जायें तो जीव को द्वैतभाव से उ-न्न संसारिक सुख और अपार शोक न हो----

जौं निज मन परिहरै विकारा ।

तौ कत द्वैत जनित संसृति दुख संसय सोक अपारा।।वि०प०१२४।।१।

(जीव और भगवान एक ही हैं) जीव जब से भगवान से अलग हुआ है तब से वह माया के वश में होकर अपने (सच्चिदानन्द) स्वरूप को भूल गया है । साधु पुरुषों का सेवन करने से जीव का द्वैत भय नष्ट हो जाता है-----

जिव जब ते हरिते बिलगान्यौं । तब तें देह गेह निज जान्यौ ।

माया बस स्वरूप बिसरायो । तेहि भ्रम तें दारुन दुख पायो ।।वि०प० १३६।१

सेवत साधु द्वैत भय भागै । श्री रघुबीर चरन लय लागै ।

देह जनित बिकार सब त्यागै । तब फिरि निज स्वरूप अनुरागै ।।वही पृ० १३६।११।।

इस प्रकार तुलसी साहित्य में द्वैत और अद्वैत भाव से सम्बन्धित कथन मिलते हैं । इनके आधार पर तुलसी को द्वैतवादी और अद्वैतवादी दोनों कहा जा सकता है । किन्तु तुलसी के अन्तर्भाव को व देखते हुए यह कहना समुचित है कि तुलसी जीव और ब्रह्म में अंशांशी सम्बन्ध मानते हैं अंशांशीभाव से ही तुलसी ने अपने भक्ति भाव का उल्लेख किया है । यदि तुलसी द्वैतभाव के समर्थक होते तो वह माया से मुक्त हुए जीवों(सन्तों) को ब्रह्म के समान कभी न कहते-----

प्रबल भव जनित त्रै व्याधि भैषज भगति भक्त भैषज्यमद्वैतदरसी ।

संत भगवंत अंतर निरंतर नहीं किमपि मति मलिन कह दासतुलसी ।।

वि०प० ५७।६।।

तन करि मन करि बचन करि, काहू दूषत नाहिं ।

तुलसी ऐसे संत जन राम रूप जग माहिं ।।२३।। वै०संदी० पृ० ११।।

केशवदास
------

१ केशवदास के अनुसार जगत में जिसे ब्रह्म नाम से पुकारते हैं उसी के प्रतिबिम्ब जीव कहलाते हैं ----

सब जानि बूझियत मोहि राम । सुनिये सो कहौं जग ब्रह्मनाम ।।

तिनके अशेष प्रति बिंबजाल । तेइ जीव जानि जग में कृपाल।।२५।२।।

रा०च०उत्तरार्ध

और जिस प्रकार सूर्य से उसकी किरणों उत्पन्न होकर अंत में उसी में समाहित हो जाती हैं उसी प्रकार जीव ब्रह्म से उत्पन्न होकर उसी में लीन हो जाते हैं ।[२]

यह जीव लोभ मोह मद और काम के वश होकर अपने सहज रूप(ब्रह्म रूप) को भूल जाता है-----

लोभ मद मोह बस काम जब ही भयो ।
मूलि गयो निज बोधि तिनसों गयो ।। रा०च० उत्तरार्ध २५।३।।

जीव और ब्रह्म के सम्बन्ध में केशव का यह मत है कि ब्रह्म आदि मध्य और अन्त इन तीनों अवस्थाओं में एक सा रहता है (अर्थात् वह कभी परिवर्तित नहीं होता) और जीव बार बार जन्म धारण करता रहता है---

तुम आदि मध्य अवसान एक। अरु जीव जन्म समुझै अनेक ।।
तुमही जु रची रचना बिचारि । तेहि कौन भाँति समझौ मुरारि।।वही २५।६।।

यह जीव कर्मों के वश में है और जहाँ उसकी वासना ले जाती है उसे वहीं जाना पड़ता है---

जित लै जैहै बासना तित ह्वै है लीन ।
जतन कहौ कैसे करै जीव बापुरो दीन ।। वही २५।४।।

केशव ने जीव की बद्ध मुक्त और विदेह ये तीन अवस्थायें मानी हैं(अर्थात केशव के अनुसार जीव बद्ध मुक्त और विदेह तीन प्रकार के हैं) अपनी माया के कारण ही जीव बन्धन में पड़ते हैं और ये मन बचन और शरीर से कुत्सित कर्म करते हैं----

जीव बँधे सब आपनि माया । कीन्हें कुकर्म मनोबच काया ।।
जीवन चिन्ह प्रबोधन आनो । जीवन मुक्त को मर्म बखानों।।वही २५।१६।।

जिस प्रकार पुष्प रस, रूप और गन्ध से युक्त होने पर भी उनके प्रभाव को नहीं जानता उसी प्रकार त्रिदश मय जीव माया मोह के कारण अपनी प्रभुता(ब्रह्म स्वरूप) को भूल जाता है·

ज्यों रस रूप सुगंधमय, पुष्प सदा सुखराउ।
पुष्प न जानत जानिये, ताको तनिक प्रभाउ।।

शेष१- अनाद्यविद्योद्भवबुद्धिबिम्बित[illegible] जीव:प्रकाशोऽयमितीर्यते चित: । अ०रा०७।५।४०।।
शेष२- उपजत ज्यों चित्र रूप ते जीवन तिहि बिधि जात ।
रवि ते उपजत अंशु ज्यों रवि ही मांझ समात ।।वि०गी०प्र० १८।।पृ० ७८।।
३- मरणहिं जीवन तजहीं । मरि मरि जन्म न भजहीं ।।१।। रा०चं० २४।१।।

त्यों सब जीव चिंदश मय, वर्णत जीवन मुक्त ।
भूलि जात प्रभुता सबै, महामोह संयुक्त ।।वि०गी०२७,२८ पृ० ७६।।

केशव के अनुसार मुक्त जीव वह है जो अन्तर बाह्य शुद्ध है और जो कर्म करता हुआ कर्मों मे लिप्त नहीं होता । मुक्त जीव वह है जो बाहर से तो मूर्ख सा प्रतीत होता है, किन्तु अंत:करणसे ज्ञानवान होता है----

बाहर हूँ अति शुद्ध हिये हूँ । जाहि न लागत कर्म किये हूँ ।।
बाहर मूढ़ सु अंतस यानो । ताकहँ जीवन मुक्त बखानो ।।रा०च० २५।१७।।

जो जीव सभी जीवों को आत्मवत् समझता है और जिसका अहंभाव मिट जाता है,उसके लिये क्या बन्धन और क्या मुक्ति----

आपन सों अवलोकिये सबही युक्त अयुक्त ।
अहं भाव मिटि जाय जो कौन बद्ध को मुक्त ।।वही २५।१८।।

केशवदास ने उस जीव को विदेहावस्था में माना है जो ब्रह्म में रत रहता है और जो दृश्य और अदृश्य सम्पूर्ण जगत् को रूपक मात्र समझता है----

देखत हूँ अनदेखत हूँ लिखि रूपक से न सरूप को धावैं ।
आपु अनिच्छ चले परइच्छ की केशवदास सदापति पावै ।।
कर्म अकर्मनि लीन नहीं निज निज पायज ज्यों जल अंक लावै ।
ह्वै अति भक्त चिदानंद मध्यनि लोग संदेह बिदेह कहावै ।।वि०गी०३३।पृ०१२१

केशव के अनुसार जीव की अनेक कोटियाँ हैं किन्तु मुख्य रूप से उनकी उत्तम मध्यम और अधम ये तीन कोटियाँ हैं----

उपजत माया संगते, जीव होत बहुरूप ।
उत्तम मध्यम अधम सब, सुनि लीजै मन भूप ।।१६।।
उत्तम ते प्रभु शासन संमत । है जग सों न कहूँ कबहुँ रत ।।
कौनहूँ एक प्रसाद ते भूपति। होतु हैं शासन भंग महामति।।२०।।

१- वि०गी० ३२।पृ०१२१।।
ईशो०६-७, गीता ६।३०-३२

आपुहि आपुन क्यों करि दंडहि। कारज साधत हैं तिह खंडहि।।
औरहु आपुने पंथ लावैं । ते सब मध्यम जीव कहावैं ।।२१।।
जिनको न कछू अपने प्रभु की सुधि। बहु भांति बढ़ावत हैं मन की बुधि।
सुनिहूँ सुनि वेद पुराननि के मत । होत तऊ बहु पापनि सों रत ।।२४।।
ते अति अधम बखानिये, जीव अनेक प्रकार ।
सदा सुयोनि कुयोनि में, भ्रमत रहें संसार ।।२५।।
उत्तम मध्यम अधम अति, जीव ते केशवदास ।
अपने अपने औसरें, जैय प्रभु के पास।।२६।।वि०गी०पृ०७६।।

तुलसी और केशव के अतिरिक्त अन्य सगुण राम भक्तों ने जीव का दार्शनिक दृष्टि से स्पष्ट विवेचन नहीं किया है ।

इस प्रकार सगुण राम भक्तों में तुलसी ने जीव को ब्रह्म का अंश और केशव ने ब्रह्म का प्रतिबिम्ब माना है । सगुण भक्तों के अनुसार माया के कारण जीव ब्रह्म से अलग होकर माया जाल में फँसा है और व उनके अनुसार माया से मुक्त होने पर जीव और ब्रह्म में कोई तात्विक भेद नहीं रहता ।

(ग) जगत्

तुलसीदास-- उपनिषदों के अनुसार यह जगत् तप बल से उत्पन्न हुआ है----

तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते ।
अन्नात्प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम् ।।८।।
यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः ।
तस्मादेतद् ब्रह्म नाम रूपमन्नं च जायते ।। मुं० १।१।९।।

उपनिषदों के समान ही तुलसीदास ने जगत् रचना में तप को कारण माना है---

तप बल रचइ प्रपंचु बिधाता। तप बल बिष्नु सकल जग त्राता ।।
तप बल संभु करहिं संघारा । तप बल सेषु धरइ महिभारा ।।२।।
तप अधार सब सृष्टि भवानी। करहि जाइ तपु अस जियँ जानी।।३।।रा०च०
मा०पृ० ६७।।

तुलसी के मतानुसार ब्रह्मा विष्णु और महेश इस जगत् के कर्ता, धर्ता और हर्ता हैं, और ये तीनों राम के अंश से उत्पन्न हुए हैं (अर्थात् यह सृष्टि ब्रह्म का ही एक अंश है)[१]

नेति नेति जेहि बेद निरूपा। निजानंद निरूपाधि अनूपा ।।
संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना।।३।। रा०च०मा०
पृ० १५५

इस जगत् के कर्ता राम हैं । इस जगत् के निमित्त और उपादान कारण भी राम ही हैं । तुलसी के मतानुसार[२] राम स्वयं ही विश्व रूप(जगत् रूप) हैं । तुलसी का यह मत उपनिषदों से प्रभावित है-----

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण ।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्।।मुं०२।२।११

भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्।।श्वेता०१।१२।।
एष ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः[३] ।
स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनांस्तिष्ठति सर्वतोमुखः।।श्वेता
२।१६

जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार।।६।।रा०च०मा० पृ० ३७।।

१- गीता १०।४२

२- मनु० १७।१६, अथर्व० १३।२।२६।। श्वेता ३।३, ऐत १।२।१।।
श्वेता० २।७, गीता ७।७, ४।७-८-५, १०।३६, कठो २।३।२

अध्यात्म रामायण में भी ऐसा ही कहा गया है—

विकाररहितं शुद्धं ज्ञानरूपं श्रुतिर्जगौ ।
त्वां सज्जादाका [illegible] प्याह सा श्रुतिः।।६।।८।४०।।

३- यजु० ३२।४।।

जग कारन तारन भव भंजन धरनी भार ।
की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार।।१।।वही पृ०६५५।।
अखिल विश्व यह मोर उपाया। सब पर मोहि बराबरि दाया।।४।।पृ०६४८
जेहिं सृष्टि उपाई त्रिविध बनाई संग सहाय न दूजा ।
सो करउ अघारी चिंत हमारी जानिअ भगति न पूजा।।वही पृ० १८८।।
जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि ।
बंदउँ सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि।।७।(ग)वही पृ० ३६
आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल थल नभ बासी।।
सीयराम मय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।१।।वही
पृ० ३६।।
सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत ।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत ।।३।।वही पृ० ६५६।।
बिस्वरूप रघुबंस मनि करहु बचन बिस्वासु ।
लोक कल्पना बेद कर अंग अंग प्रति जासु ।।१४।। वही पृ० ७५२।।

संसारवृक्षस्वरूप(राम) को नमस्कार करते हुए तुलसी कहते हैं कि इस विटप का मूल अव्यक्त (प्रकृति) है जो अनादि है, इसके चार त्वचाएँ छः तनें, पच्चीस शाखाएँ (सांख्य के २५ तत्व) अनेकों पत्ते और फूल हैं, इस वृक्ष पर कड़वे और मीठे दो प्रकार के फल लगे हैं, और इस पर एक ही बेल है जो उसी के आश्रित रहती है, इस बेल पर नित्य नये पत्ते और फूल निकलते रहते हैं----

अव्यक्तमूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने ।
षट कंध साखा पंच बीस अनेक पर्न सुमन घने ।।
फल जुगल बिधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे ।
पल्लवत फूलत नवल नित संसार बिटप नमामहे ।।५।। रा०च०मा०पृ०८८३।।

राम स्वयं ही जगत् रूप हैं । विनय पत्रिका में इसका स्पष्टीकरण करते हुए तुलसी ने कहा है कि राम अखिल ब्रह्मांड के स्वामी, विश्वरूप और विश्व की मर्यादा हैं। मूल प्रकृति, महत्तत्व, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध सत्व, रज, तम, सम्पूर्ण देवता, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ, प्राण(१०) चित्त, आत्मा, काल, परमाणु और चैतन्य शक्ति आदि सभी राम का ही रूप है । प्रकट और अप्रकट सभी कुछ राम है । राम की

रूप से सम्पूर्ण विश्व में रम रहे हैं और यह जगत् उनके अंश में स्थित है। राम सब मे ऐसे ही ओतप्रोत हैं, जैसे वस्त्र में सूत, घड़े में मिट्टी और आभूषणों में स्वर्ण ओत प्रोत रहता है----

देव-

विश्व विख्यात विश्वेश, विश्वायतन, विश्वमरजाद, व्यालारिगामी ब्रह्म,

वरदेश, वागीश, व्यापक, विमल, विपुल, बलवान, निर्वान स्वामी।।१

प्रकृति, महतत्व, शब्दादि गुण, देवता व्योम, मरुदग्नि, अमलांबु, उर्वी।

बुद्धि, मन, इन्द्रिय, प्राण, चित्तातमा, काल, परमाणु, [illegible] गुर्वी।।

सर्वमेवात्र त्वद्रूप भूपालमणि। व्यक्तमव्यक्त, गतभेद, विष्णो।

भुवन भवदंश, कामारि-वंदित, पदद्वंद्व मंदाकिनी जनक जिष्णो।।

[illegible]

आदिमध्यांत, भगवंत। त्वं सर्वगतमीश, पश्यन्ति ये ब्रह्मवादी

यथा पट तंतु घट मृत्तिका सर्प स्रग, दारु करि, कनक कटकांगदादी।।४।।

वि०प० ५४।।

जगत् रचना के सम्बन्ध में जहाँ ब्रह्म को ही निमित्त और उपादान कारण माना जाता है वहाँ ब्रह्म को केवल निमित्त कारण और प्रकृति या माया को उपादान कारण भी माना जाता है। गीता में यह कहा गया है कि ब्रह्म अपनी प्रकृति आधीन करके सृष्टि की रचना करते हैं(९।८)। ब्रह्म की अध्यक्षता में प्रकृति चराचर विश्व की रचना करती है-----

[illegible]ण प्रकृतिः सूयते सचराचरं।

हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते।। गी० ९।१०।।

पुरुष और प्रकृति दोनों ही अनादि हैं। इस प्रकृति से ही त्रिगुण और विकार उत्पन्न होते हैं[1] (गी० १३।१९)। कार्य और करण की उत्पत्ति का हेतु[2] प्रकृति ही है---

कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः [illegible] तिरुच्यते।

पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते।। गी०१३।२०।।

श्वेताश्वतरोपनिषद् के अनुसार भी अजा प्रकृति के द्वारा ही जगत् का सृजन होता है---

---

१- गीता १४।५

२- गीता १४।१

अजामेकां लोहित शुक्ल कृष्णां बह्वी: प्रजा: सृजमानां सरूपा: ।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनु शेते जहात्येनां भुक्त भोगामजोऽन्य: ।।

श्वेता० ४।५।।

गीता और उपनिषदों के समान ही तुलसी ने[1] ब्रह्म को जगत् का निमित्त कारण और प्रकृति को उपादान कारण माना है---

ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै ।।रा०च०मा०पृ० १६३।।
राम देखावहिं अनुजहि रचना । कहि मृदु मधुर मनोहर बचना ।।
लव निमेष महुँ भुवन निकाया। रचइ जासु अनुसासन माया।।२।। वही पृ०२२०।।

श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी ।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की।।वही पृ०४३४।।
मारे निसिचर केहिं अपराधा । कहु सठ तोहि न प्रान कइ बाधा।।
सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया । पाइ जासु बल बिरचति माया ।।२।।
जाके बल बिरंचि हरि ईसा । पालत सृजत हरत दससीसा ।।
जा बल सीस धरत सहसानन । अंडकोस समेत गिरि कानन ।।३।।वही पृ० ७०४।।

मम माया संभव संसारा । जीव चराचर बिबिधि प्रकारा।।२।।वही पृ०६४७।।

४तुलसी

किन्तु तुलसी के अनुसार यह जगत असत् और जीव के[2] बन्धन का कारण है । तुलसी ने जगत् के मिथ्यापन का कई पदों में उल्लेख किया है। तुलसी के मतानुसार जैसे सीप में चाँदी की और सूर्य की किरणों में[3] पानी की प्रतीति मिथ्या है वैसे ही यह संसार भगवान् के आश्रित रहने पर भी असत् है----

---

१- रा०च०मा० सुं० कां० ५८।१-२ पृ० ७३६
तुलना कीजिए अध्यात्मरामायण ६।४।४१-४२।।

२- रा०च०मा० पृ० १३०, ३०,
वि०प० ६६।४, ७३।१-२, १२०।१-२

३- असर्पभूतेऽहिविभावनं यथा रज्ज्वादिके तद्वदपीश्वरे जगत् ।।अ०रा० ७।५।३७।।
तावत्सत्यं जगद्भाति शुक्तिकारजतं यथा । यावन्न ज्ञायते ज्ञानं चेतसानन्यगामिना।।
अ०रा०७।३।२३।।

रजत सीप महुँ भास जिमि जथा भानु कर बारि ।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ भ्रम न सकइ कोउ टारि ।।११७।।
एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई।।
जौं सपनें सिर काटै कोई । बिनु जागे न दूरि दुख होई ।।१।।वही पृ०१३५

यद्यपि तुलसी ने विनयपत्रिका के कई पदों मे जगत् को मिथ्या माना है तथापि उनका एक पदप ऐसा भी मिलता है जिसमें उन्होंने जगत् को न सत्य कहा है और न असत्य तथा न सत्य असत्य ----

कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम , सो आपन पहिचानै ।।१११।४।।

तुलसी के केवल इस एक पद के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि तुलसी का जगत् के मिथ्यात्व में ~~विलक्षण~~ विश्वास नही था । जगत् असत्य है, अधिकांश रूप में तुलसी ~~ब~~ ने इसी मत का प्रतिपादन किया है । तुलसी ने जिस भक्तिमार्ग और लोक व्यवहार की चर्चा की है उसे भी देखते हुए यह कहा जा सकता है कि तुलसी का जगत् के मिथ्यापन मे विश्वास था ।

तुलसी के अनुसार यह जगत् दुःख रूप है । यह संसार भव रोग है जो भगवत्कृपा के बिना दूर नहीं होता और यह जगत् कपट का घर है ----

अस बिचारि जे परम सयाने। भजहिं मोहि संसृति दुख जाने।।३।।रा०च०मा० पृ० ६०६।।

कबहुँ देव ! जग धनमय रिपुमय कबहुँ नारिमय भासै ।
संसृति संनिपात दारून दुख बिनु हरि कृपा न नासै ।।४।।
संजम, जप, तप, नेम, धरम, ब्रत बहु भेषज समुदाई ।
तुलसीदास भव रोग रामपद-प्रेमहीन नहिं जाई ।।५।। वि०प०८१।।
मैं तोहिं अब जान्यो संसार ।
बाँधि न सकहिं मोहि हरिके बल, प्रगट कपट आगार ।।१।।
देखत ही कमनीय, कछू नाहिंन पुनि किये बिचार ।
ज्यों कदलीतरु-मध्य । [illegible], कबहुँ न निकसत सार ।।२।।
तेरे लिये जनम अनेक मैं फिरत न पायो पार ।
[illegible] भाइ-मृगजल सरिता महँ बोर्‌यो हौं बारहिं बार ।।३।।
सुनु खल ! छल बल कोटि किये बस होहिं न भगत उदार ।।
[illegible] सहाय जहाँ बसि अब, जेहि हृदय न [illegible] ।।४।।

तासों करहु चातुरी जो नहिं जानै मरम तुम्हार ।
सो परि डरै मरै रजु-अहि तें, बूझै नहिं व्यवहार ।।५।।
निज हित सुनु सठ ! हठ न करहि, जो चहहि कुसल परिवार।
तुलसिदास प्रभुके दासनि तजि भजहिं जहाँ मद मार ।।६।।वि०प०१८८।।

तुलसी के अनुसार यह संसार, कर्म, वासना, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, गर्व(अहंकार), मत्सर, छल, दम्भ, कपट, पाखंड, भोगविलास, विषय सुख, माया, पाप और दु.ख से परिपूर्ण है----

संसार-कांतार अति घोर, गंभीर, घन, गहन, तरुकर्मसंकुल, मुरारी।
वासना वल्लि खर- कंटकाकुल विपुल, निबिड़ विटपाटवी कठिन भारी।।२।।
विविध चितवृत्ति- खग निकर श्येनोलूकं, काक बक गृध्र आमिष अहारी।
अखिल खल, निपुण छल, छिद्र निरखत सदा, जीवजन पथिकमनखेदकारी।।३।।
क्रोध करि मत्त मृगराज कंदर्प मद दर्पवृक भालु अति उग्रकर्मा ।
महिष मत्सर क्रूर लोभ शूकररूप फेरु छल दंभ मार्जारधर्मा ।।४।।
कपट मर्कट विकट व्याघ्र पाखण्डमुख दुखद मृग व्रात उत्पात कर्ता ।
हृदय अवलोकि यह शोक शरणागतं पाहि मां पाहि भो विश्व भर्ता ।।५।।
प्रबल अहंकार दुरघट महीधर, महामोह गिरि गुहा निविड़ांधकारं ।
चित्त वेताल, मनुजाद मन प्रेतगन रोग भोगौघ वृश्चिक विकारं ।।६।।
विषय सुख लालसा दंश मशकादि खल झिल्लि रूपादि सब सर्प स्वामी।
तत्र आक्षिप्त तव विषम माया नाथ, अंध मैं, मंद व्यालादगामी ।।७।।
घोर अवगाह भव आपगा पापजलपूर, दुष्प्रेक्ष्य दुस्तर अपारा ।
मकर षड्वर्ग गो नक्र चक्राकुला कूल शुभ अशुभ दुख तीव्र धारा ।।८।।
सकल सघट पोच शोचवश सर्वदा दासतुलसी विषम गहन ग्रस्तं ।
त्राहि रघुवंश भूषण कृपा कर, कठिन काल विकराल कलित्रास त्रस्तं।।९।।
वि०प० ५९।।

केशवदास :

केशवदास के अनुसार ब्रह्म ज्योति की इच्छा से मतिमान नारायण उत्पन्न हुए और उनसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए और ब्रह्मा से जगत् की प्रतिष्ठा हुई----

ताकी इच्छा ते भये नारायण मति निष्ठ ।
तिनते चतुरानन भये तिनते जगत प्रतिष्ठा।रा०चं० १।७।।

किया जा सकता है, इसी ज्योति से जगत् की उत्पत्ति स्थिति और उसका संहार होता है[1]----

सकल शक्ति अनुमानिये अद्भुत ज्योति प्रकाश ।
जाते जग को होत है उत्पति थिति अरु नाश ।।वही २५।१५।।

केशव के अनुसार वह ब्रह्म लोकों की रचना करने में समर्थ है । जैसे ही वह लोकों की रचना करने का विचार करता है, वैसे ही भूमि आकाश आदि उत्पन्न हो जाते हैं----

इहि विधि की चित चातुरी, तिनको कहा अकत्थ ।
लोकन की रचना रुचिर, रचिबे को समरत्थ ।।२५।२५।।वही
लोकन की रचना रचिबे को जहीं परिपूरण बुद्धि विचारी ।
ह्वै गए केशवदास तहीं सब भूमि अकाश प्रकाशित भारी ।।
शुद्ध सलाक समान लसी अति रोषमयी दृग दीठि तिहारी ।
होत भये तब सूर सुधाधर पावक शुभ्र सुधा रगधारी ।।२५।२६।।

केशव के राम स्वयं ही जगत् रूप हुए हैं । एक राम ही अनेक रूप धारण करता है । ये राम अपने रजोगुण या ब्रह्मा रूप से सृष्टि रचना करते हैं सत्वगुण अथवा विष्णु रूप[2] से जगत् का संरक्षण करते हैं और तमगुण या रुद्र रूप से जगत् का संहार करते हैं---

तुम ही गुण रूप गुणी तुम ठाये , तुम एक ते रूप अनेक बनाये ।
इक है जो रजोगुण रूप तिहारो। तेहि सृष्टि रची विधि नाम बिहारो
वही ।।१७।।
प्रकाश २०।

गुण सत्व धरे तुम रक्षक जाको । अब विष्णु कहै सिगरो जग ताको ।।
तुमही जग रुद्र सरूप सँहारो । कहिये तेहि मध्य तमोगुण भारो।।वही२०
१८।।

तुमही जग हौ जग है तुमही में । तुमही विरची मरजाद दुनी में।।२०।१९।

ब्रह्मा से लेकर परमाणु पर्यन्त राम ही राम हैं । ब्रह्मा, विष्णु, शम्भु, रवि, शशि और अग्नि आदि सभी इन राम ही के अंश हैं और जगत् में इन राम की ज्योति ही प्रकाशित है

१- यद्यपि जग करता पालक हरता, परिपूरण बेदन गाये ।रा०च०११।१५।।वही १६।१०

२- एष एव रजोयुक्तो ब्रह्माभूद्विश्वभावन:।
सत्वाविष्टो विष्णुस्त्रि जगत्प्रतिपालक:।।अ०रा०२।५।१३।।,३।२।१०

ब्रह्मादि सकल परमाणु अंत । तुमही हो रघुपति अज अनंत ।।२०।५५
विधि विष्णु शंभु रवि शशि उदार। अज नागनादि अंशावतार।।२०।५४।।
ज्योति जो जग मध्य तिहारी । जाय कही न सुनी न निहारी।।२०।१६।।

विज्ञान गीता के अनुसार सृष्टि का कारण मन है और सृष्टि की उत्पत्ति ईश तथा माया के संसर्ग से होती है (वि०गी०पृ०६-१०-१२०)।
किन्तु केशव के अनुसार यह संसार मिथ्या, अनित्य और दु:खपूर्ण है----

झूठो रे झूठो जग राम की दोहाई काहू ।
साचे को कियो है ताते सांचो सो लगतु है।।कविप्रिया पृ०१०६
जग माँझ है दुख जाल । सुख है कहा यहि काल ।।२३।१२।।

तुलसी और केशव के अतिरिक्त अन्य सगुण राम भक्तों ने जगत् के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से लगभग कुछ नहीं कहा है ।
सगुण राम भक्तों में तुलसी और केशव के अनुसार यह जगत् ब्रह्म के द्वारा रचा गया है। राम ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश के रूप में इस जगत का निर्माण, पालन और संहार करते हैं । राम स्वयं ही जगत रूप हैं । वे माया और प्रकृति के सहयोग से जगत् रचना करते हैं । किन्तु ब्रह्म के द्वारा निर्मित जगत असत् और दु:ख रूप है ।

(घ) माया

श्वेताश्वतरोपनिषद् (४।१०) के अनुसार माया और प्रकृति में कोई अन्तर नहीं माना गया है । ब्रह्म सूत्र के अनुसार माया ब्रह्म की एक शक्ति मानी गई है जो उससे अभिन्न रहती है (ब्रह्म सूत्र २।१।६) सगुण राम भक्तों के अनुसार माया का क्या स्वरूप है, नीचे इसका विवेचन किया जा रहा है ।

गोस्वामी तुलसीदास:

तुलसी के अनुसार माया राम की शक्ति है । इस शक्ति को सीता और पार्वती भी कहा गया है । सीता राम की माया है जिससे संसार का उद्भव, स्थिति और संहार होता है ----

आगें रामु लखनु बने पाछें। तापस बेष बिराजत काछें ।।
उभय बीच सिय सोहति कैसें। ब्रह्म जीव बिच माया जैसें।।१।।रा०च०मा०
पृ०४३१।।

तुम्ह माया भगवान सिव सकल जगत पितु मातु ।
नाइ चरन सिर मुनि चले पुनि पुनि हरषत गातु ।।८१।।वही पृ०१०४
बाम भाग सोभति अनुकूला। आदिसक्ति छबिनिधि जग मूला ।।१।।
जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी।।
भृकुटी बिलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई।।२।।वही
पृ०१५८।।

उद्भवस्थिति संहार कारिणीं क्लेशहारिणीम् ।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं राम वल्लभाम् ।।५।। वही पृ० २६।।

और जितनी भी माया है वे सब सीता की माया के अन्तर्गत आती हैं[1]

तुलसी के अनुसार समस्त संसार को उत्पन्न करने वाली आदि शक्ति माया है---

जे सुनि सादर नर बड़भागी। भव तरिहहिं ममता मद त्यागी।।
आदिसक्ति जेहिं जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया।।२।।
रा०च०पृ०१६१।।

और राम की माया गूलर के विशाल वृक्ष के समान है, अनेक ब्रह्माण्ड जिसके फल हैं---
ऊमरि तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्मांड अनेक निकाया।।३।। वही
पृ० ६९२।।

ब्रह्मादि देव, असुर और समस्त संसार राम की माया के वश में है-----
यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।रा०च०मा०पृ०३०

१- लखा न मरमु राम बिनु काहूँ। माया सब सिय माया माहूँ।।२।। रा०च०मा०
पृ० ५३४।

यह माया राम की प्रेरणा से ही जगत् का निर्माण करती है[1]। माया स्वत: निर्बल है, यह राम की शक्ति से ही ब्रह्मांड की रचना करती है। माया राम का आश्रय प्राप्त करके ही सत्य प्रतीत होती है। यह माया स्वयं जड़ है। यह राम की सत्ता से ही चैतन्य होती है-----

तव प्रेरित मायाँ उपजाए। सृष्टि हेतु सब ग्रंथनि गाए ।।
प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहें सुख लहई।।२।।वही पृ० ७३६

सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया ।।२।।वही पृ०७०४

जासु सत्यता तें जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया।।४।।वही १३४
जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहि भजहिं जीव ते धन्य ।।११६(ख)वही पृ० ६८७।।

इस प्रकार माया राम की दासी है और राम उसके स्वामी पति और ईश हैं---
सो दासी रघुबीर समुझें मिथ्या सोपि।
छूट न राम कृपा बिनु नाथ कहउँ पद रोपि।।७१(ख)वही पृ०६३४
अस जियँ जानि भजहिं मुनि माया पति भगवान ।।६२(ख) पृ० ६२७
जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यान गुन धामू ।।४।।वही पृ० १३४

अत: यह माया राम की दासी होने के कारण राम के संकेत पर चलती है और उनसे भयभीत भी रहती है[2]----

जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहुँ न पावा ।।
सोइ प्रभु भ्रू बिलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा।।१।।वही पृ०६३४

जीव चराचर बस कै राखे। सो माया प्रभु सों भय माखे ।।२।।वही पृ०१६६।
देखी माया सब बिधि गाढ़ी। अति सभीत जोरें कर ठाढ़ी।।वही पृ०२०१।

तुलसी के अनुसार माया जगत् रचना के अतिरिक्त जीव को भवबन्धन में डालने का काम भी करती है। ज्ञानी,मुनि, शिव, ब्रह्मा और छोटे बड़े आदि सभी माया के वश में हैं------

---

१- अ०रा० १।१।३४।।

यह प्रसंग मैं कहा भवानी । हरिमायाँ मोहहिं मुनि ग्यानी।।
प्रभु कौतुकी प्रनत हितकारी। सेवत सुलभ सकल दुखहारी।।४।।वही पृ० १५२

जासु प्रबल माया बस सिव बिरंचि बड़ छोट ।
ताहि दिखावइ निसिचर निज माया मति खोट।।५१।। वही पृ०७८७।।
मन महुँ करइ बिचार बिधाता । माया बस कबि कोबिद ग्याता।।
हरि माया कर अमिति प्रभावा। बिपुल बार जेहिं मोहि नचावा।।
वही पृ० ६२४
तव माया बस [illegible] भुलाना। ता ते मैं नहिं प्रभु पहिचाना।।५।।पृ०६५५
नाथ जीव तव मायाँ मोहा। सो निस्तरइ तुम्हरेहिं छोहा।।१।।वही पृ०६५६
माया बस्य जीव अभिमानी। ईस बस्य माया गुन खानी।।३।।वही पृ० ६४०

जीव और ब्रह्म में जो भेद प्रतीत होता है, वह मायाकृत होने के कारण मिथ्या है------

मुधा भेद जद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया।।४।।
पृ० ६४०

किन्तु अभिमानी जीव ही माया के वश में रहते हैं । यह माया भगवान के भक्त और उनकी भक्ति से डरती है-----

ढ मायापति सेवक सन माया। करइ त उलटि परइ सुरराया।।१।।पृ०५०६।।
भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया।।३।। वही पृ०६८२।।

तुलसी के अनुसार माया से ही अनेक गुण और दोष उत्पन्न हुए हैं, तथा इन्द्रिय और उनके विषय भी मायाकृत ही हैं-----

सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक ।
गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक ।।४१।।वही पृ० ६०६
गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई।।२।।पृ०६१२।।

तुलसी के मतानुसार मैं और मेरा तू और तेरा- यही माया है[१]----

मैं अरु मोर तोर त तैं माया। जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया।।१।।वही पृ०६९४

~~-तुलसी-ने~~

तुलसी ने माया के परिवार का भी उल्लेख किया है जो अत्यन्त विस्तृत है । काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, तृष्णा, प्रभुता, स्त्री, त्रिगुण, मान, यौवन, ममता, शोक, चिन्ता, मनोरथ, दम्भ, और पाखंड आदि माया के परिवार के सदस्य और उसकी सेना के वीर योद्धा हैं, जो संसार में जीवों को परास्त और मलिन करते हैं-----

तुम्ह निज मोह कही खग साईं। सो नहिं कछु आचरज गोसाईं।।
नारद भव बिरंचि सनकादि। जे मुनिनायक आतमबादी ।।३।।वही पृ०९३३
मोह न अंध कीन्ह केहि केहि । को जग काम नचाव न जेही ।।
तृस्नाँ केहि न कीन्ह बौराहा। केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा।।४।।
ग्यानी तापस सूर कबि कोबिद गुन आगार ।
केहि कै लोभ बिडंबना कीन्हि न एहिं संसार।।७०(क)।।
श्री मद बक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि ।
मृगलोचनि के नैन सर को अस लाग न जाहि ।।७०(ख)।।
गुनकृत सन्यपात नहिं केही । कोउ न मान मद तजेउ निबेही ।।
जोबन ज्वर केहि नहिं बलकावा। ममता केहि कर जस न नसावा।।१।।
मच्छर काहि कलंक न लावा। काहि न सोक समीर डोलावा ।।
चिन्ता साँपिनि को नहिं खाया । को जग जाहि न ब्यापी माया।।२।।
कीट मनोरथ दारु सरीरा, जेहि न लाग घुन को अस धीरा।।
सुत बित लोक ईषना तीनी। केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी।।३।।
यह सब माया कर परिवारा। प्रबल अमिति को बरनै पारा।।
सिव चतुरानन जाहि डेराहीं। अपर जीव केहि लेखे माहीं।।४।।
ब्यापि रहेउ संसार महुँ माया कटक प्रचंड ।
सेनापति कामादि भट दंभ कपट पाषंड।।७१(ख)वही पृ०९३३-३४

१- अ०रा० ३।४।२९-३२।।

गोस्वामी तुलसीदास ने राम की माया का विद्या और अविद्या के रूप मे भी उल्लेख किया है । अविद्या यदि जीव को भव बन्धन में डालती हैं तो विद्या उसे उससे बचाती है।[1] यह विद्या माया जगत् की रचना में भी सहयोग प्रदान करती है----

तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ । विद्या अपर अविद्या दोऊ ।।२।।
एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा। जा बस जीव परा भवकूपा ।।
एक रचइ जग गुन बस जाकें । प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें।।३।।पृ०६१४।।
ऐसेहिं हरि बिनु भजन खगेसा। मिटइ न जीवन्ह केर कलेसा।।
हरि सेवकहि न ब्याप अविद्या। प्रभु प्रेरित ब्यापइ तेहि विद्या।।१।।
पृ०६४१

तुलसीदास ने माया के दो स्वरूपों विद्या और अविद्या का वर्णन किया है । विद्या को (प्रकृति) अनादि (सत्) कहा गया है और अविद्या को दार[2]। अनुमान है कि तुलसीदास ने माया के विद्या वाले स्वरूप का सीता और पार्वती के रूप में वर्णन करके उसे अनादि कहा है और माया के अविद्या वाले स्वरूप को असत् कहा है-----

अजा अनादि सक्ति अबिनासिनि। सदा संभु अरधंग निवासिनि।।
जग संभव पालन लय कारिनि। निज इच्छा लीला बपु धारिनि।।२।।
वही पृ० ११८।।
बाम भाग सोमति अनुकूला । आदिसक्ति छबिनिधि जगमूला ।।१।।पृ०१५८।।
सो दासी रघुबीर कै समुझे मिथ्या सोपि ।
छूट न राम कृपा बिनु नाथ कहउँ पद रोपि ।।७१(ख)।।वही पृ० ६३०।।

सूरदास

सूर के अनुसार माया जीव को फँसाने वाली एक शक्ति है । माया का भक्तों पर कोई प्रभाव नहीं होता । माया में छल कपट करने की भी अद्भुत शक्ति है । सूर के अनुसार सीता (राम की) माया है-----

---

१- श्वेता०२।४।३३-३४

२- प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि। गीता १३।१९।।
श्वेता० ४।५, ४।१०।।

किरपा करि निज धाम पठायौ, अपनौ रूप दिखाय ।
वाके आस्रम कोउ बसत है, माया लगत न ताय।।सू०रा०ब०पृ०२२६।।
माया करी बहुत नाना बिधि, सब कौं राम निवारे । वही पृ० २३८।।
धरि कै कपट बेस भिक्षुक कौ, दसकंधर तहँ आय ।
हरि लीन्ही छिन में माया करि, अपने रथ बैठाय।।
जब माया-सीता नहिं देखी, जिय में भए उदास ।
पूछन लगे राम द्रुमगन सौं, बहुत बढ़ी दुख रास।।वही पृ०२३४।।

केशवदास

डा० राम रत्न भटनागर ने यह कहा है कि "केशव ने कहीं भी माया का उल्लेख नहीं किया है, न माया सम्बन्धी विचार का ही कहीं प्रकाशन किया है । जान पड़ता है, माया सिद्धान्त उन्हें मान्य नहीं है।[1] डा० भटनागर का यह कथन ठीक प्रतीत नहीं होता क्योंकि केशव ने माया का स्पष्ट रूप से निरूपण किया है ।

केशव के अनुसार माया ब्रह्म के साथ रहती है । इस माया के चंगुल से कोई भी नहीं बच पाता । सभी जीव अपनी अपनी माया(अहं) में बंधे हुए हैं-----

जनु माया अच्छर सहित देखि । कै पत्री निश्चयदानि लेखि ।। रा०चं० १३।८१।।

उठो हठी होहु न काज कीजै । कहौं कछू राम सो मानि लीजै ।
अदोष तेरो सुत मातु सोहै । सो कौन माया इनकी न मोहै।।४२।। पृ०१०।।

जीव बँधे सब आपनि माया । कीन्हें कुकर्म मनोब च काया।वही २५।१६।।

तुलसी के समान केशव ने यह भी कहा है कि राम ब्रह्म हैं, लक्ष्मण जीव, और सीता माया[2]------

---

१- केशवदास एक अध्ययन डा० राम रतन भटनागर पृ० ८१

२- अग्रे ।स्या म्यहं पश्चात्वमन्वेहि धनुर्धर: ।
आवयोर्मध्यमा सीता मायेवात्मपरात्मनो: ।।३।१।१३ अ०रा०

आगे राम लखन पुनि पाछे । मुनिवर वेष बने अति आछे ।।
उभय बीच श्री सोहइ कैसी । ब्रह्म जीव बिच माया जैसी ।।रा०च०मा०
पृ०६०४।।

राम आगे चले मध्य सीता चली । बंधु पाछे भये सोभ सो-मै भली ।।
देखि देही सबै कोटिधा कै भनो । जीव जीवेश के बीच माया मनो ।।७।।
पू० ११।। रा०च०

केशव के अनुसार यह सीता योगमाया भी है-----

हुजे कृपाल गहिजे जनकात्मजा या ।
योगीश ईश तुम हौ यह योग माया ।। वही२०।१३।।

विज्ञान गीता के अनुसार संसृति और माया में कोई अन्तर नहीं है और यह माया मोह की अनुगामिनी है । संभ्रम और विभ्रम माया के पुत्र हैं । माया के कारण भ्रम में पड़कर जीव काल्पनिक सृष्टि को सत्य मान लेता है-----

संसृति नाम कहावति माया । जानहु ताकहँ मोह की जाया ।।
सम्भ्रम विभ्रम संतति जाकी । स्वप्न समान कथा सब ताकी।।२८।।
वि०गी०पृ०६३

अग्रदास

अग्रदास के अनुसार माया वह (शक्ति) है जिस में जीव आसक्त रहता है-----

महतो दुरो पुकार मों, को कहि वैरी होय ।
को कहि वैरी होय, जीव माया मों राच्यो ।। कुण्डलिया पृ० ३

सेनापति

सेनापति के अनुसार महामाया ब्रह्म की (एक शक्ति) है । इस माया के विलास से जीव उदास होकर ब्रह्म की शरण में जाता है-----

लछि ललना है, सारदाऊ रसना है जा कौ,
ईस महामाया हू कौं निगम गायौ है । क० रत्ना०६।पृ०६८।।
माया के बिलास, तातै ह्वै करि उदास, हरि
दासन की मनवी में वापहू ...।।वही पृ० ११८।।

इस प्रकार सगुण राम भक्तों के अनुसार माया राम की शक्ति है । यह शक्ति (माया) राम की प्रेरणा से जगत् रचना करती है । इस माया के विद्या और अविद्या दो रूप हैं । यह माया अपने अविद्या वाले रूप से जीवों को फँसाकर उन्हें भव बन्धन में डालती है । यह माया इतनी प्रबल है कि इसके चंगुल से मुनि ज्ञानी भी नहीं बच पाते। काम क्रोध, लोभ, मोह आदि इस माया के परिवार के सदस्य हैं । मैं और मेरा, तू और तेरा यही माया का स्वरूप है । यह माया अत्यन्त प्रबल होने पर भी भक्ति से डरा करती है।

(च) मोक्ष

मोक्ष जीवन का अन्तिम पुरुषार्थ है । मोक्ष के सम्बन्ध में धर्म ग्रन्थों में मतभेद पाया जाता है । मोक्ष के सम्बन्ध में कुछ दर्शनशास्त्रियों का तो यह कहना है कि मोक्ष के उपरान्त जीव आवागमन में नहीं पड़ता और वह ब्रह्म में ही लीन हो जाता है । कुछ दार्शनिकों का यह कहना है कि मोक्ष के उपरान्त भी जीव का पुनरागमन होता है । नीचे सगुण राम भक्तों के अनुसार मोक्ष के स्वरूप का उल्लेख किया जा रहा है ।

गोस्वामी तुलसीदास

गीता के अनुसार ब्रह्म लोक (मोक्ष) को प्राप्त करके जीव पुनः संसार में नहीं लौटता -----

तत: पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूय: ।।१५।४
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।। गी० १५।६।।

गीता के समान ही तुलसीदास ने कहा है कि राम के परम धाम को प्राप्त करके जीव संसार में नहीं आता----

राम धामदा पुरी सुहावनि। लोक समस्त बिदित अति पावनि।।
चारि खानि जग जीव अपारा । अवध तजें तनु नहिं संसारा ।।रा०च०
२।पृ०६७

और यही रघुपति पुर है----

जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं । सुख संपति नाना बिधि पावहिं ।।
सुर दुर्लभ सुख करि जग माहीं । अंतकाल रघुपति पुर जाहीं ।।२।। रा०च० मा०पृ० ८८६।।

तुलसीदास ने मोक्ष के लिये निर्वाण शब्द का भी प्रयोग किया है-----

रामचन्द्र के भजन बिनु जो चह पद निर्बान ।
ग्यानवंत अपि सो नर पसु बिनु पूँछ बिषान ।।७८(क)।।

यह निर्वाण पद क्लेश और दु:खों से रहित है । यह पद सुख स्वरूप है । तुलसी के अनुसार दु:खों से छुटकारा ही मोक्ष है------

कासीं मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम बल करउँ बिसोकी ।।
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुबर सब उर अंतरजामी।।१।। वही पृ० १३५।।

और मोक्ष एक प्रकार का सुख है----

तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई । रहि न सकइ हरि भगति बिहाई ।।वही पृ० ६८६।।

यह मोक्ष सुख अथवा कैवल्य रूप परम पद अत्यन्त दुर्लभ है ----

अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम बद ।। वही पृ०६८६।।

तुलसी का मोक्ष भाव पौराणिक ढंग का है । तुलसी ने भागवत पुराण की पाँच प्रकार(सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य, सालोक्य, सार्ष्टि) की मुक्ति का वर्णन किया है ।

(१) सामीप्य

सामीप्य मोक्ष में जीव ब्रह्म के समीप निवास पाता है । तुलसी कहते हैं-----

जन्म भूमि मम पुरी । उत्तर दिसि बह सरजू पावनि ।।
जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा । मम समीप नर पावहिं बासा ।।३।।रा०च० पृ०८७३

आरत दीन अनाथ को रघुनाथु करैं निज हाथ की छाहैं ।।११।। क०पृ० १६०

(२) सारूप्य

सारू प्य मोक्ष में जीव भगवान् का रूप धारण करता है । तुलसी कहते हैं-----

मम दरसन फल परम अनूपा । जीव पाव निज सहज सरूपा।।५।।

रा०च०मा०पृ०६४९

(३) सायुज्य

तुलसी[१] के अनुसार जो रामेश्वर पर गंगा जल चढ़ाता है वह सायुज्य मोक्ष प्राप्त करता है----

जे रामेश्वर दरसनु करिहहिं । ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं ।।

जो गंगाजलु आनि चढ़ाइहि। सो साजुज्य मुक्ति नर पाइहि।१। वही ७४२

(४) सालोक्य

सालोक्य मोक्ष वह है जिसमें जीव ब्रह्म लोक प्राप्त करता है । तुलसी के अनुसार मृग, बानर, राक्षस, ताड़का, मारीच, संत, विभीषण, कबंध, शबरी, शुक और बालि आदि मृत्यु के उपरान्त ब्रह्म लोक प्राप्त करते हैं[२]-----

जे सकाम नर सुनहिं जो गावहिं । सुख संपति नाना बिधि पावहिं ।।

सुर दुर्लभ सुख करि जग माहीं । अंत काल रघुपति पुर जाहीं ।।२।।

पृ०८८६।।

करेहु कल्प भरि राजु तुम्ह मोहि सुमिरेहु मन माहिं ।

पुनि मम धाम पाइहहु जहाँ संत सब जाहिं ।।११६(घ) पृ० ८५६।।

(५) सार्ष्टि

सार्ष्टि(मोक्ष) में जीव मुक्त होकर भगवान के समान ऐश्वर्य वाला हो जाता है । तुलसी के अनुसार जटायु (गीध) सार्ष्टि मोक्ष प्राप्त करता है-----

---

१- सेतुबन्धे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा रामेश्वरं हरम् ।

संकर नियता मृत्वा गत्वा वा [illegible] नरः ।।३।।

आनीय गंगासलिलं रामेशमभिषिच्य च ।

समुद्रे [illegible] ।।४।। [illegible]

ये सिगरे गुण हैं हुत जानो । थावर जीवन मुक्त बखानो ।
जानि सबै गुण दोषन छोड़ै । जीवन मुक्तन के पद मन्डै ।।२५।१६।।

सेनापति

सेनापतिके अनुसार जन्म मरण से छूटकर अमर होना ही मोक्ष है ----

सेनापति जग में जे राखे ते अमर कीने,
ताकी संग लीने, दै मुकति निज साथ की ।क०रत्ना० ४।७२
~~सेनापति-ने-मोक्ष~~
सेनापति ने मोक्ष के लिये निर्वाण शब्द का भी प्रयोग किया है-----

तू है निरवान कौं निदान ज्ञान ध्यान करै
तेरौ चतुरानन, वसैया नाभि मौन कौं । वही ५।३०
सेनापति के अनुसार यह मोक्ष ही परमपद है------

राखौं और साधन, चलौंगौ मन साधन कै,
बिना जोग साधन परम पद पाइहौं । क०र० ५।८३।।

सगुण राम भक्तों के अनुसार भवबन्धन से छुटकारा ही मोक्ष है । मोक्ष प्राप्त होने के उपरान्त जीव का पुनरागमन नहीं होता । मोक्ष जीव की वह अवस्था है जिसमें वह जन्म मरण से छूट कर सुख और आनन्द मय रहता है ।

→

(च) परमार्थ साधन

ब्रह्म प्राप्ति के लिए जिन उपायों या साधनों को अपनाया जाता है , वे परमार्थ साधन कहलाते हैं । वैदिक साहित्य में परमार्थ साधनों की दृष्टि से गुरु , ज्ञान , कर्म , तप , ब्रह्मचर्य , श्रद्धा , सत्य , संयम और सदाचार आदि का उल्लेख मिलता है । सगुण राम भक्तों के अनुसार कौन कौन परमार्थ साधन हैं , इसका नीचे उल्लेख किया जा रहा है ।

ईश्वरदास : ईश्वरदास के अनुसार राम नाम का जप और रामचरित्र (भरतविलाप) का श्रवण और गायन परमार्थ सिद्धि के साधन हैं ----

साच नाम एक है , गुरु गोविन्द सहाइ ।

जे प्रानी गुनबो करे , जम का कहा बसाइ ।।१।। ईश्वरदास कृत सत्यवती तथा अन्य कृतियाँ पृ० १३६ ।।

भरत बिलाप कीन्ह मन लाय । गोवै सुनते जन्म फल पाइ ।।

हरै पाप धरम होव मूक राय ।। वही पृ० १०२ ।।

गोस्वामी तुलसी दास :

(१) मानव देह: परमार्थ सिद्धि मनुष्य जन्म में ही सम्भव है । अत: परमार्थ साधन की दृष्टि से सर्वप्रथम मनुष्य जन्म का होना आवश्यक है । तुलसीदास के अनुसार नर देह के समान अन्य कोई देह नहीं है (जिसमें परमार्थ साधना हो सके) । चराचर जीव इसी देह की याचना करते हैं । यह मानव देह नरक , स्वर्ग और मोक्ष का सोपान है , तथा ज्ञान वैराग्य और भक्ति का देने वाला है ----

नर तन सम नहिं कवनिउ देही । जीव चराचर जाचत तेही ।।

नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी । ग्यान बिराग भगति सुभदेनी ।। रा० च० मा० ५। पृ० ६८६

यह देव दुर्लभ मनुष्य शरीर बड़े भाग्य से मिला है , और यह (अन्य) साधनों का धाम और मोक्ष का द्वार है -------

बड़े भाग मानुष तन पावा । सुर दुर्लभ सब ग्रन्थहिं गावा ।।

साधन धाम मोच्छ कर द्वारा । पाइ न जेहिं परलोक सँवारा ।।४।।वही पृ० ६११

(२) गुरु कृपा : मानव जीवन में रहते हुए सद्गुरु का अन्वेषण आवश्यक है क्योंकि बिना गुरु के भवसिन्धु के पार होना कठिन है । परमार्थ साधनों में गुरु कृपा को इसी के

की करुणा के बिना भव सागर से पार होना कठिन है । गुरु के बिना ब्रह्मा और शिव के समान व्यक्ति को भी मोक्ष प्राप्त होना असम्भव है । गुरु के पद पंकजों की रज सर्व मंगलों की मूल है[1] -----

बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिन्धु नर रूप हरि ।

महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर ।। ५ ।। वही पृ० ३१ ।।

गुरु बिन भवनिधि तरइ न कोई । जौं बिरंचि संकर सम होई ।।

संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता । दुखद लहरि कुतर्क बहु ब्राता ।।३।। वही पृ० ६५४

और वह गुरु राम (ब्रह्म) से बड़ा है । यदि ब्रह्मा भी क्रोध करें , तो गुरु बचा लेते हैं , किन्तु गुरु से विरोध करने पर संसार में कोई भी बचाने वाला नहीं है ----

तुम्ह ते अधिक गुरहि जियँ जानी । सकल भायँ सेवहि सनमानी ।।४।।

सत्य नाथ पद गहि नृप भाषा । द्विज गुरु कोप कहहु को राखा ।।

राखइ गुरु जौं कोप बिधाता । गुरु बिरोध नहिं कोउ जगत्राता ।।३।।

पृ० १७२

गुरु के द्वारा अज्ञानान्धकार नष्ट होकर ज्ञानोदय होता है । तुलसी के मतानुसार गुरु के बिना ज्ञान नहीं हो सकता ----

बिनु गुरु होइ कि ग्यान ग्यान कि होइ बिराग बिनु । ८९ (क) रा० च० मा पृ० ६५० ।।

और सन्त , मुनि , वेद एवं पुराण का भी यही मत है कि गुरु के सन्मुख छिपाव करने से हृदय में निर्मल ज्ञान उत्पन्न नहीं होता -----

संत कहहिं असि नीति प्रभु श्रुति पुरान मुनि गाव ।

होइ न बिमल बिबेक उर गुरु सन किएँ दुराव ।।५।। वही पृ० ७७

(३) ज्ञान :- तुलसी के अनुसार ज्ञान मोक्ष प्रद है । विवेक के बिना मुक्ति असम्भव है ,और ज्ञानोदय होने पर (जीव के) समस्त संशय नष्ट हो जाते हैं -----

धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना । ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना ।।११।। वही पृ० ६१५

तुलसिदास हरि गुरु - करुना बिनु बिमल बिवेक न होइ ।

बिनु बिवेक संसार - घोर - निधि पार न पावै कोई ।। वि० प०११५।५।

भयउ प्रकास कतहुँ तम नाहीं । ग्यान उदयँ जिमि संसय जाहीं ।।२।।

रा० च० मा० पृ० ७८[illegible]

तुलसी ने चार प्रकार के भक्तों का उल्लेख किया । कृष्ण की भाँति तुलसी के राम

---

(१) जे गुर चरन रेनु सिर धरहीं । ते जनु सकल बिभव बस करहीं ।।१।। रा०च०मा०पृ०३३८

को इन चार प्रकार के भक्तों में ज्ञानी भक्त ही विशेष प्रिय हैं ।

चतुर्विधा भजन्ते मां जना: सुकृतिनोऽर्जुन ।

आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ।।१६।।

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एक भक्तिर्विशिष्यते ।

प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं सच मम प्रिय: ।।१७।।गीताअ०७।।

जपहिं नामु जन आरत भारी । मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी ।।

राम भगत जग चारि प्रकारा । सुकृति चारिउ अनघ उदारा ।।३।।

चहू चतुर कहुँ नाम अधारा । ग्यानी प्रभुहि बिसेषि पिआरा ।।४।।

रा०च०मा० पृ० ५४-५५

गोस्वामी तुलसीदास ने ज्ञान को मोक्षप्रद मानते हुए, उसकी महत्ता और आवश्यकता पर काफी बल दिया है।[१] किन्तु तुलसी के अनुसार ज्ञानमार्ग, कहने, समझने, और करने में कठिन है। यह मार्ग तलवार की धार के समान है।[२] -----

कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन बिबेक ।

होइ घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक ।। रा० च० ११८ (ख) ।।

ग्यान पंथ कृपान कै धारा । परत खगेस होइ नहिं बारा ।।

जो निर्विघ्न पंथ निर्बहई । सो कैवल्य परमपद लहई ।। १ ।। वही पृ० ६८६

(४) कर्म :- ज्ञान और कर्म का घनिष्ठ सम्बन्ध है। ज्ञान आचरण (कर्म) में बदलकर ही फलप्रद होता है। तुलसी के अनुसार दूसरों को उपदेश देने में तो बहुत लोग निपुण होते हैं, किन्तु ऐसे लोग अधिक नहीं होते जो उपदेश (ज्ञान) के अनुसार आचरण (कर्म) करते हैं---

तिन्हहि ग्यान उपदेसा रावन । आपुन मंद कथा सुभ पावन ।।

पर उपदेस कुसल बहुतेरे । जे आचरहिं ते नर न घनेरे ।। १ ।। रा० च० मा० पृ० ८१२।।

तुलसी ने कर्म का परमार्थ साधन की दृष्टि से विशेष उल्लेख नहीं किया है। तुलसी ने एक स्थान पर वशिष्ठ जी से यह कहलाया है कि कर्म के द्वारा ब्रह्म (राम) को प्राप्त किया जा सकता है।

---

(१) रा० च० मा० पृ० ६६, ७५, ५२०, दो० ब० ३५६, ३६६, ३६७, ३७१, ४४२, ४४३, ४७०, ४७१, ४८०, ४८३, ४८४, ४८५, ४८६, ५२२ ।।

(२) उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।

महिमा अमिति बेद नहिं जाना । मैं केहि भाँति कहउँ भगवाना ।।
उपरोहित्य कर्म अति मंदा ।बेद पुरान सुमृति कर निंदा ।।३।।
जब न लेउँ मैं तब बिधि मोंही। कहा लाभ आगें सुत तोही ।।
परमातमा ब्रह्म नर रूपा । होइहि रघुकुल भूषन भूषा ।।४।।
तब मैं हृदयँ बिचारा जोग जग्य ब्रत दान ।
जा कहुँ करिअ सो पैहउँ धर्म न एहि सम आन ।।४८।। रा० च० मा०, पृ० ६१५।।

तुलसी के अनुसार जटायु नें भी अपने शुभ कर्मों के द्वारा परम गति प्राप्त की थी ।[१] कर्म के सम्बन्ध में तुलसी की तुलसी की यह मान्यता है कि बिना कर्तव्य कर्म के मनुष्य का वेश बिना प्राण के तन जैसा है । जिनके कर्म कपट रहित होते हैं उन्हें कलियुग धोखा नहीं दे सकता —

धरम बरन आश्रमनिके पैयत पोथिही पुरान ।
करतब बिनु बेष देखिये, ज्यों सरीर बिनु प्रान ।।वि० प० १९२।२।।

स सत्य बचन मानस बिमल कपट रहित करतूति ।
तुलसी रघुबर सेवकहि सकै न कलिजुग धूति ।।दो० ८७ ।।

तुलसी सुखी जो राम सों दुखी सो निज करतूति ।
करम बचन मन ठीक जेहि तेहि न सकै कलि धूति ।। वही० ८८ ।।

कर्म के सम्बन्ध में तुलसी का यह भी मत है कि यदि कोई जीव अपने पुरुषार्थ(कर्म) के बिना ही मुक्त हो जाता है (तो उसको यश प्राप्त नहीं होता) । (जैसा पुरुषार्थ के बिना) अजामिल श्री हरि के लोक को चला गया , किन्तु वह अपनी अपकीर्ति नहीं धो सका (अर्थात् अभी तक उसकी गणना पापियों में ही की जाती है) ----

तुलसी निज करतूति बिनु सुकृत (मुकुति) जात जब कोई ।
गयो अजामिल लोक हरि नाम सक्यो नहिं धोइ ।।दो० ब० ५३१।।

इस प्रकार तुलसी ने परमार्थ साधनों में कर्म का उल्लेख किया है ।

(५) योग :- तुलसीदास नें परमार्थ साधनों में योग को स्पष्ट रूप से परमार्थ साधन नहीं माना है । योग के सम्बन्ध में तुलसी ने इतना ही कहा है कि ज्ञान मोक्षप्रद है और वह ज्ञान योग से उत्पन्न होता है -----

---

(१) सो मम लोचन गोचर आगे । राखौं देह नाथ केहि खाँगे ।।
जल भरि नयन कहहिं रघुराई। तात कर्म निज ते गति पाई ।।३।। रा० च० मा०

धर्म ते बिरति जोग तें ग्याना । ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना ।।रा० च० मा० पृ० ६१५।।

तुलसी ने यह तो माना है कि योग से ज्ञान उत्पन्न होता है। किन्तु उन्होंने योग का परमार्थ साधन की दृष्टि से उल्लेख न करके उल्टे उसकी असमर्थता दिखलाई है ---

सब सुख खानि भगति तैं मागी । नहिं जग कोउ तोहि सम बड़भागी ।।
जो मुनि कोटि जतन नहिं लहहीं। जे जप जोग अनल तन दहहीं ।।२।। वही०पृ०९४६

(६) _भक्ति:_- गोस्वामी तुलसीदास ने परमार्थ साधनों में ज्ञान, कर्म आदि का उल्लेख किया अवश्य है, किन्तु उन्होंने भक्ति के सम्मुख किसी को भी महत्व नहीं दिया है। तुलसी ने ज्ञान और कर्म [illegible] की अपेक्षा भक्ति को उत्कृष्ट सिद्ध करने का स्थान-स्थान पर प्रयत्न किया है। तुलसी के मतानुसार ज्ञान से मोक्ष तो मिलती है, किन्तु भक्ति की तुलना में वह शीघ्र नहीं मिलती ----

धर्म ते बिरति जोग ते ग्याना । ग्यान मोच्छ प्रद बेद बखाना ।
जाते बेगि द्रवउँ मैं भाई । सो मम भगति भगत सुख दाई ।।वही०पृ० ६१५।।

तुलसी ने ज्ञान को पुरुष और भक्ति को स्त्री मानकर, भक्ति को उत्कृष्ट रूप में दिखलाया है। उनके अनुसार राम भक्ति के विशेष अनुकूल रहते हैं। इसी से माया भक्ति से डरती है [illegible]। माया और भक्ति दोनों स्त्री वर्ग के हैं अत: माया भक्ति को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकती। ज्ञान पुरुष वर्ग का है अत: वह माया की ओर आकर्षित हो जाता है -----

ग्यान बिराग जोग बिग्याना । ए सब पुरुष सुनहु हरि जाना ।।
पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती । अबला अबल सहज जड़ जाती ।।८।।

पुरुष त्यागि सक नारिहि जो बिरक्त मति धीर ।
न तु कामी बिषयाबस बिमुख जो पद रघुबीर ।।११५ (क)।।
सोउ मुनि ग्याननिधान मृगनयनी बिधु मुख निरखि ।
बिबस होइ हरिजान नारि बिष्नु माया प्रगट ।।११५ (ख)।।

इहाँ न पच्छपात कछु राखउँ । बेद पुरान संत मत भाषउँ ।।
मोह न नारि नारि के रूपा । पन्नगारि यह रीति अनूपा ।।१।।
माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ । नारि बर्ग जानइ सब कोऊ ।।
पुनि रघुबीरहि भगति पिआरी । माया खलु नर्तकी बिचारी ।।२।।
भगतिहि सानुकूल रघुराया । ताते तेहि डरपति अति माया।।
राम भगति निरुपम [illegible] बसइ जासु उर सदा अबाधी।।३।। वही० पृ० ९८२।।

माया भक्ति को देखकर सकुचा जाती है । वह भक्ति पर अपना कुछ भी प्रभाव नहीं डाल पाती ।[1] ऐसा विचार कर ही ज्ञान वान् मुनि सब सुखों की खान भक्ति की ही याचना करते हैं ----

तेहि बिलोकि माया सकुचाई । करि न सकइ कछु निज प्रभुताई ।।
अस बिचारि जे मुनि बिग्यानी। जाचहिं भगति सकल सुखखानी ।।४।।वही०पृ० ६८२।।

कौसल्या ने भी राम के अद्भुत रूप में बलती माया को देखा जो जीव को नचाती है , और भक्ति को भी देखा जो जीवको माया से छुड़ाती है ---

देखी माया सब बिधि गाढ़ी । अति सभीत जोरें कर ठाढ़ी ।।
देखा जीव नचावइ जाही । देखी भगति जो छोरइ ताहीं ।।२।।वही० पृ०२०१।।

ज्ञान और भक्ति में कौन साधन सुलभ और सुखद है सरल है , इसका अन्तर स्पष्ट करते हुए तुलसी ने यह कहा है कि ज्ञान अगम है , और उसकी प्राप्ति में अनेकों विघ्न आते हैं । ज्ञान का साधन कठिन है और उसमें मनके लिये कोई आधार भी नहीं है । इतने पर भी यदि कोई ज्ञान को प्राप्त कर लेता है , तो वह भी भक्ति रहित होने से राम को प्रिय नहीं होता । किन्तु इसके विपरीत तुलसी के अनुसार पुराण और वेदों ने यही गाया है कि भक्ति का मार्ग सुलभ और सुखदायक है -----

ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका ।। साधन कठिन न मन कहुँ टेका ।।
करत कष्ट बहु पावइ कोऊ।। भक्ति हीन मोहि प्रिय नहिं सोऊ ।।२।।
जौं परलोक इहाँ सुख चहहू।। सुनि मम बचन हृदयँ दृढ़ गहहू ।।
सुलभ सुखद मारग यह भाई ।। भगति मोरि पुरान श्रुति गाई ।।१।। वही०पृ०६१२

तुलसी ने " ज्ञान दीपक " का जो विस्तार को साथ वर्णन किया है , उससे भी यही परिणाम निकलता है कि अत्यन्त कष्ट साधना के उपरान्त यदि"ज्ञानदीपक" को जला दिया जाये तो वह जीव के संसृति दुःखों को नष्ट करके उसे भवबन्धन से छुड़ा सकता है , किन्तु यह "ज्ञानदीपक" एक बार जल चुकने के बाद विषय रूपी हवा से बुझ सक ता है ।"ज्ञान-दीपक" के बुझने पर फिर दुबारा जलाना लगभग असम्भव है । अतः"ज्ञानदीपक" के बुझने पर जीव पुनः अनेकों प्रकार से संसृति के क्लेश पाता है । और इसके विपरीत "ज्ञान दीपक" के प्रकाशित होने पर जो वस्तु (मोक्ष) प्राप्त होती है , वह भक्ति के इच्छा न रहते हुए भी प्राप्त हो जाती है ----

---

(१) [illegible] भक्त्या [illegible] समुपासते
[illegible] विपश्चित ।।[illegible]।।

जीव हृदयँ तम मोह बिसेषी । ग्रंथि छूटि किमि परइ न देखी ॥
अस संजोग ईस जब करई । तबहुँ कदाचित सो निरुअरई ॥४॥
सात्त्विक श्रद्धा धेनु सुहाई । जौं हरि कृपाँ हृदयँ बस आई ॥
जप तप ब्रत जम नियम अपारा । जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा ॥५॥
तेइ तृन हरित चरै जब गाई । भाव बच्छ सिसु पाइ पेन्हाई ॥
नोइ निबृत्ति पात्र बिस्वासा । निर्मल मन अहीर निज दासा ॥६॥
परम धर्ममय पय दुहि भाई । अवटै अनल अकाम बनाई ॥
तोष मरुत तब छमाँ जुड़ावै । धृति सम जावनु देइ जमावै ॥७॥
मुदिताँ मथै बिचार मथानी । दम अधार रजु सत्य सुबानी ॥
तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता । बिमल बिराग सुभग सुपुनीता ॥ ८ ॥

जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ ॥ ११७ (क) ॥
तब बिग्यान रूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ ।
चित्त दिआ भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ ॥ ११७ (ख) ॥
तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास तें काढ़ि ।
तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि ॥ ११७ (ग) ॥
एहि बिधि लेसै दीप तेज रासि बिग्यानमय ।
जातहिं जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब ॥ ११७ (घ) ॥

सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा । दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा ॥
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा । तब भव मूल भेद भ्रम नासा ॥ १ ॥
प्रबल अबिद्या कर परिवारा । मोह आदि तम मिटइ अपारा ॥
तब सोइ बुद्धि पाइ उँजिआरा । उर गृहँ बैठि ग्रंथि निरुआरा ॥ २ ॥
छोरन ग्रंथि पाव जौं सोई । तब यह जीव कृतारथ होई ॥
छोरत ग्रंथि जानि खगराया । बिघ्न अनेक करइ तब माया ॥ ३ ॥
रिद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई । बुद्धिहि लोभ दिखावहिं आई ॥
कल बल छल करि जाहिं समीपा । अंचल बात बुझावहिं दीपा ॥ ४ ॥
होइ बुद्धि जौं परम सयानी । तिन्ह तन चितव न अनहित जानी ॥
जौं तेहि बिघ्न बुद्धि नहिं बाधी । तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी ॥ ५ ॥
इंद्री द्वार झरोखा नाना । तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना ॥
आवत [illegible] बिषय बयारी । ते हठि देहिं कपाट उघारी ॥ ६ ॥

ग्रंथि न छूटि मिटा सो प्रकासा । बुद्धि बिकल भइ बिषय बतासा ।। ७ ।।
इंद्रिन्ह सुरन्ह न ग्यान सोहाई । बिषय भोग पर प्रीति सदाई ।।
बिषय समीर बुद्धि कृत भोरी । तेहि बिधि दीप को बार बहोरी ।। ८ ।।
तब फिरि जीव बिबिधि बिधि पावइ संसृति क्लेस ।
हरि माया अति दुस्तर तरि न जाइ बिहगेस ।। ११८ (क) ।।
वही पृ० ९८३ - ८४ - ८५ ।।

तुलसी ने 'ज्ञान दीपक' की तुलना में 'भक्ति मणि' का रूपक प्रस्तुत करके ज्ञान से भक्ति को श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण माना है । तुलसी के अनुसार राम भक्ति सुन्दर चिन्ता मणि है, और यह चिन्तामणि जिसके हृदय में बसती है वह सदैव प्रकाशमय रहता है, अ तब उसे दीपक, घी और बत्ती आदि की अपेक्षा नहीं रहती । (इस चिन्तामणि में ज्ञा दीपक से यह विशेषता है कि 'ज्ञानदीपक' तो विषय बयार से बुझ जाता है, किन्तु लोभ रूपी हवा इस मणि दीप को बुझा नहीं सकती । इस मणि के प्रकाश से अविद्या का घना अन्धकार मिट जाता है, और इसके रहने से जीव को रोग और दु:ख आदि कुछ नहीं होता । अत: तुलसी के मतानुसार वे मनुष्य चतुर हैं जो इस मणि की प्राप्ति केह लिए यत करते हैं -----

कहेउँ ग्यान सिद्धांत बुझाई । सुनहु भगति मनि कै प्रभुताई ।।
राम भगति चिंतामनि सुंदर । बसइ गरुड़ जाके उर अंतर ।। १ ।।
परम प्रकास रूप दिन राती । नहिं कछु चहिअ दिआ घृत बाती ।।
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा । लोभ बात नहिं ताहि बुझावा ।। २ ।।
प्रबल अविद्या तम मिटि जाई । हारहिं सकल सलभ समुदाई ।।
खल कामादि निकट नहिं जाहीं । बसइ भगति जाके उर माहीं ।। ३ ।।
गरल सुधासम अरि हित होई । तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई ।।
ब्यापहिं मानस रोग न भारी । जिन्ह के बस सब जीव दुखारी ।। ४ ।।
राम भगति मनि उर बस जाके । दुख लवलेस न सपनेहुँ ताके ।।
चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं । जे मनि लागि सुजतन कराहीं ।। ५ ।।
वही पृ० ९८७

तुलसी का भक्ति के सम्बन्ध में यह भी कहना है कि जो ज्ञान के अभिमान में मतवाले रहकर भक्ति का [illegible] करते हैं, वे केवल दुर्लभ पद को प्राप्त करके भी उससे [illegible] हो जाते हैं --------

[illegible]
हैं, [illegible] ---------

[illegible] ॥
[illegible] ॥५॥

[illegible] पृ० ६८० ॥

इस प्रकार तुलसी [illegible] स्वामी [illegible] माना है। तुलसी ने यहाँ तक भक्ति को श्रेष्ठ माना है [illegible] धर्मव्रतियों, विरक्तों, ज्ञानियों और विज्ञानवानों में भी भक्त को श्रेष्ठ माना है ------

नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धर्म ब्रत धारी॥
धर्मसील कोटिक महँ कोई। बिषय बिमुख बिराग रत होई॥१॥
कोटि बिरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यक ग्यान सकृत कोउ लहई॥
ग्यानवंत कोटिक महँ कोऊ। जीवनमुक्त सकृत जग सोऊ॥२॥
तिन्ह सहस्र महुँ सब सुख खानी। दुर्लभ ब्रह्म लीन बिग्यानी॥
धर्मसील बिरक्त अरु ग्यानी। जीवनमुक्त ब्रह्मपर प्रानी॥३॥
सब ते सो दुर्लभ सुरराया। राम भगति रत गत मद माया॥
सो हरि भगति काग किमि पाई। बिस्वनाथ मोहि कहहु बुझाई॥४॥

वही पृ० ६२०

और राम ने काक भुशुण्डि जी से भी यही कहा है कि ज्ञानी और विज्ञानी में दास-भक्त श्रेष्ठ है --------

मम माया सम्भव संसारा। जीव चराचर बिबिधि प्रकारा॥
सब मम प्रिय सब मम उपजाए। सब ते अधिक मनुज मोहि भाए॥२॥
तिन्ह महँ द्विज द्विज महँ श्रुतिधारी। तिन्ह महुँ निगम धरम अनुसारी॥
तिन्ह महँ प्रिय बिरक्त पुनि ग्यानी। ग्यानी ते अति प्रिय बिग्यानी॥३॥
तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा॥
पुनि पुनि सत्य कहउँ तोहि पाहीं। मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं॥४॥

वही, पृ० ६४७ ॥

इस प्रकार तुलसी के राम को सब प्राणियों में अपने भक्त सर्वाधिक प्रिय हैं। भक्ति रहित उन्हें अन्य सब जीवों के समान ही प्रिय हैं किन्तु भक्तिमान् अत्यन्त नीच प्राणी भी उन्हें प्राणों के समान प्रिय हैं ----'

भगतिवंत अति नीचउ प्रानी । मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी ।।५।। पृ०६४७।।

ज्ञान की भाँति भक्ति कर्म से भी उत्कृष्ट है । अत: बुद्धिमान् व्यक्ति शुभाशुभ कर्मों को छोड़कर राम की भक्ति करते हैं । और हरि भक्ति की प्राप्ति होने पर राम भक्त आश्रम धर्म की मर्यादाओं का भी पालन नहीं करते ----

काल रूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता । सुभ अरु असुभ कर्म फल दाता ।।

अस बिचारि जे परम सयाने । भजहिं मोहि संसृत दुख जाने ।।३।।

त्यागहिं कर्म सुभासुभ दायक । भजहिं मोहि सुर नर मुनि नायक।।४।।बही०पृ० ६०६।।

चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि ।

जिमि हरि भगति पाइ श्रम तजहिं आश्रमी चारि।।१६।। पृ० ६७०।।

तुलसीदास का यह निश्चित मत है कि भव बन्धन से मुक्त होने के लिये संयम , जप, तप, नियम, धर्म, व्रत आदि अनेक साधन हैं । किन्तु राम के चरणों में प्रेम (भक्ति) उत्पन्न हुए बिना उससे मुक्त नहीं हुआ जा सकता [१] ------

संजम जप, तप, नेम, धरम, व्रत बहु भेषज समुदाई ।

तुलसिदास भव रोग रामपद प्रेम-हीन नहिं जाई ।।वि०प० ८१।५।।

तुलसी के अनुसार वेदों में जिन साधनों का उल्लेख हुआ है वे सब धर्म, अर्थ काम और मोक्ष इन चार फलों को देने वाले हैं, किंतु राम प्रेम (भक्ति) बिना में सब इसी प्रकार व्यर्थ है जिस प्रकार जल के बिना तालाब और नदियाँ ----

बेद बिहित / बिदित साधन सबै , सुनियत दायक फल चारि ।

राम-प्रेम बिनु जानिबो जैसे सर-सरिता बिनु बारि ।। वि०प० १६२।३।।

और ये सभी साधन राम प्रेम के बिना ऐसे ही व्यर्थ हैं जैसे मृगतृष्णा के समुद्र की लहरें ----

ग्यान बिराग , जोग , जप-तप , भय लोभ - मोह नहिं थोरे ।

राम प्रेम बिनु नेम जाय जैसे मृग-जल - जलधि-हिलोरे ।। वि०प०१६४।३।।

जहाँ तुलसी ने राम भक्ति बिना सभी साधनों को व्यर्थ माना है , वहाँ उन्होंने सभी साधनों का फल राम भक्ति को ही माना है ---

---

(१) रा० च० मा० पृ० ६२६ ।। उ० रा० ३।१०।२२।।

जप, तप, नियम जोग निज धर्मा । श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा ।।
ग्यान दया दम तीरथ मज्जन । जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन ।।१।।
आगम निगम पुरान अनेका । पढ़े सुने कर फल प्रभु एका ।।
तव पद पंकज प्रीति निरंतर । सब साधन कर यह फल सुंदर।।२।। रा०च०मा०,पृ०६१५।।
जप जोग धर्म समूह तें नर भगति अनुपम पावई ।
रघुबीर चरित पुनीत निसि दिन दास तुलसी गावई ।। पृ० ६०३।।
सब कर मत,फल हरि भगति सुहाई । सो बिनु संत न काहूँ पाई ।।६।। वही०पृ० ६८८।।

और यही मत (सब साधनों का फल राम भक्ति है) कागभुशुण्डि जी ने गरुड़ जी से तथा शंकर ने पार्वती जी से व्यक्त किया है ------

जप तप मख सम दम ब्रत दाना । बिरति बिबेक जोग बिग्याना ।।
सब कर फल रघुपति पद प्रेमा । तेहि बिनु कोउ न पावइ छेमा ।।३।।रा०च०मा० पृ० ६५५।।

तीर्थाटन साधन समुदाई । जोग बिराग ग्यान निपुनाई ।।२।।
नाना कर्म धर्म ब्रत दाना । संजम दम जप तप मख नाना ।।
भूत दया द्विज गुर सेवकाई। बिद्या बिनय बिबेक बड़ाई ।।३।।
जहँ लगि साधन बेद बखानि। सब कर फल हरि भगति भवानी ।।४।। वही० पृ०६६७।।

राम भक्ति परमार्थ साधनों में सर्वाधिक फलप्रद है।[१] राम भक्ति के बिना सभी साधन व्यर्थ हैं अथवा सभी साधनों का फल राम भक्ति ही है , इत्यादि मतों का प्रतिपादन करते हुए तुलसी ने यह भी कहा है कि इस कलियुग में न धर्म है , न ज्ञान है , न योग है और न जप ही है । इस कलिकाल में जो लोग सब साधनों का परित्याग करके भक्ति को ग्रहण करते हैं । वे चतुर हैं । अतः इसलिये तुलसी दास ने कलि काल में के सभी परमार्थ साधनों को अनुपयुक्त समझकर भक्ति को अपनाया है , और उनके अनुसार इस कलियुग में यही राजमार्ग है ---।-

कठिन काल मल कोस धर्म न ग्यान न जोग जप ।
परिहरि सकल भरोस रामहि भजहिं ते चतुर नर ।।६(ख)।। रा०च०मा०,पृ०६०३।।

नाहिंन आवत आन भरोसो ।
यहि कलिकाल सकल साधनतरु है स्रम - फलनि फरो सो ।।१।।

---

(१) भक्तिः- प्रसिद्धा भक्त्या [illegible] नान्यतस्तद् साधनमस्ति किं चित् ।। [illegible] २।१।१२।।

तप, तीरथ, उपवास, दान मख जेहि जो रुचै करो सो ।
पायेहि पै जानिबो करम - फल भरि-भरि बेद परोरो ।।२।।
आगम - बिधि जप - जाग करतनर सरत न काज खरो सो ।
सुख सपनेहु न जोग - सिधि - साधन, रोग बियोग धरो सो ।।३।।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह मिलि ग्यान बिराग हरो सो ।
बिगरत मन संन्यास लेत जल नावत आम घरो सो ।।४।।
बहु मत मुनि बहु पंथ पुराननि जहाँ - तहाँ झगरो सो ।
गुरु कह्यो राम - भजन नीको मोहिं लगत राज डगरो सो ।।वि०प० १७३।५।।

इस प्रकार परमार्थ साधनों में तुलसी भक्ति को गृहण करते हैं क्योंकि वह भक्ति जीव को माया के पाश से मुक्त करके मो-क्ष प्रदान करती है -----

देखी माया सब बिधि गाढ़ी । अति समीत जोरें कर ठाढ़ी ।।
देखा जीव न-चावइ जाही । देखी भगति जो छोरइ ताही ।।२।। रा०च०मा०
पृ० २०१।।

जासु पतित पावन बड़ बाना । गावहिं कबि श्रुति संत पुराना ।।
ताहि भजहि मन तजि कुटिलाई । राम भजें गति केहि नहि पाई ।।४।।पृ० १०००।।

अत: तुलसी के अनुसार जो व्यक्ति भक्ति को छोड़कर अन्यसाधनों से सुख चाहता है वह मूर्ख बि ना जलयान के ही महासागर पार करना चाहता है -----

सुनु खगेस हरि भगति बिहाई । जे सुख चाहहिं आन उपाई ।।
ते सठ महासिंधु बिनु तरनी । पैरि पार चाहहिं जड़ करनी।।२।। पृ० ६८०।।

(७) नाम-स्मरण:- नाम जप भक्ति का एक अंग है। गोस्वामी तुलसीदास ने भक्ति साधन की दृष्टि से नाम जप को सर्वाधिक महत्व दिया है । तुलसी के अनुसार तो यह नाम राम (परमार्थ) से भी बड़ा है[१] -------

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा । अकथ अगाध अनादि अनूपा ।।
मोरें मत बड़ नामु दुहू तें । किए जेहिं जुग निज बस निज बूतें ।।१।।वही०पृ०५५।।
उभय अगम जुग सुगम नाम तें । कहेउँ नामु बड़ ब्रह्म राम तें ।।
ब्यापकु एकु ब्रह्म अबिनासी । सत चेतन घन आनँद रासी ।।३।। पृ० ५५।।

निरगुन ते एहि भाँति बड़ नाम प्रभाउ अपार ।
कहउँ नामु बड़ राम तें निज बिचार अनुसार ।।२३। पृ०५६।।

ब्रह्म राम तें नामु बड़ बर दायक बर दानि ।

राम चरित सत कोटि महँ लिय महेस जियँ जानि ।। २५ ।। पृ० ५७ ।।

तुलसी के अनुसार नाम स्मरण भक्ति से भी श्रेष्ठ और सुलभ साधन है , क्योंकि जो इच्छा रहित हैं और राम भक्ति रस में लीन हैं , वे भी नाम के प्रेम रूपी अमृत के सरोवर में अपने मन को मीन बनाये रहते हैं ----

सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन ।

नाम सुप्रेम पियूष हृद तिन्हहुँ किए मन मीन ।।२२।। वही पृ० ५५ ।।

तुलसी के अनुसार कलियुग में कर्म , भक्ति और बिवेक आदि कोई परमार्थ साधन नहीं है । कलियुग में तो एकमात्र राम नाम ही (परमार्थ) साधन है । कपट की खान कलियुग रूपी कालनेमि के लिए राम नाम ही हनुमान् है ----

नहिं कलि करम न भगति बिबेकू । राम नाम अवलंबन एकू ।।

कालनेमि कलि कपट निधानू । नाम सुमति समरथ हनुमानू ।। ४ ।। पृ० ५६

कलि नहिं ग्यान बिराग न जोग समाधि । राम नाम जपु तुलसी नित निरुपाधि ।।

ब० रा० ४८ ।।

यह कलियुग हिरण्यकशिपु है और रामनाम नृसिंह भगवान हैं तथा जप करने वाले व्यक्ति प्रह्लाद के समान हैं , यह राम नाम देवताओं के शत्रु (कलियुग) को मार कर जप करने वालों की रक्षा करता है ----

राम नाम नर केसरी कनक कसिपु कलिकाल ।

जापक जन प्रह्लाद जिमि पालिहि दलि सुरसाल ।।२७।। पृ० ५६

अन्य साधनों की तुलना में राम नाम जप में यह विशेषता है कि अच्छे भाव से या बुरे भाव से , क्रोध से या आलस्य से (अर्थात्) किसी भी प्रकार नाम जपने से सर्वत्र कल्याण होता है [२] ----

---

(१) एक ही साधन सब रिद्धि सिद्धि साधि रे ।

ग्रसे कलि रोग जोग संजम - समाधि रे ।। वि० प० ६६।२ ।।

ध्यान प्रथम जुग मख बिधि दूजें । द्वापर परितोषत प्रभु पूजें ।।

कलि केवल मल मूल मलीना । पाप पयोनिधि जन मन मीना ।।२।।

नाम कामतरु काल कराला । सुमिरत समन सकल जग जाला ।।

राम नाम कलि अभिमत दाता । हित परलोक लोक पितु माता ।।३।।

रा० च० मा० पृ० ५८-५६

माये कुभायें अनख आलसहूँ । नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ ।।
सुमिरि सो नाम राम गुन गाथा । करउँ नाइ रघुनाथहि माथा ।।१।।

और जो विरोध भाव से नाम स्मरण करते हैं वे भी मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं ----

खल मनुज आद द्विजामिष भोगी । पावहिं गति जो जांचत जोगी ।।
उमा राम मृदु चित करुनाकर । बयर भाव सुमिरत मोहि निसिचर ।।२।।
रा० च० पृ० ७८१

राम नाम से जीव की प्रत्येक कामना पूर्ण होती है क्योंकि यह कामधेनु कामतरु , कल्पतरु और चिंतामणि है ----

राम की सपथ , सरबस मेरे राम नाम ,
कामधेनु कामतरु मोसे छीन छामको । कवितावली पृ० २२० ।।
पायेउँ नाम चारु चिंतामनि , उर कर ते न खसे हौं ।। वि० प० पृ० १७८ ।।

इस प्रकार तुलसी ने राम नाम को कामधेनु , कामतरु , कल्पवृक्ष और सुरतरु अनेक स्थानों (लगभग २६) पर कहा है ।

तुलसी के अनुसार यह राम नाम सेतु और नौका है जिसके द्वारा भव सागर पार हो सकते हैं ----

सुनहु भानुकुल केतु जामवंत कर जोरि कह ।
नाथ नाम तव सेतु नर चढ़ि भव सागर तरहिं ।। रा० च० मा० पृ०७४०।।

राम जपु , राम जप, राम जपु बावरे ।
घोर भव नीर - निधि नाम निज नाव रे ।। वि० प० ६६ । १ ।।

अन्य परमार्थ साधनों और राम नाम जप में एक अन्तर यह भी है कि अन्य साधनों के द्वारा तो जीव स्वयं ही भव सिन्धु के पार होता है किन्तु नाम जप के द्वारा वह स्वयं तो तरता ही है और साथ में अन्य जीवों को भी पार करता है ----

यह बड़ि बात भरत कइ नाहीं । सुमिरत जिनहि रामु मन माहीं ।।
बारक राम कहत जग जेऊ । होत तरन तारन नर तेऊ ।।२।। रा० च० पृ०५०६

यह राम नाम प्रेम (प्रेम)[१] (भक्ति) और परमार्थ (मोक्ष) का सार है तथा तुलसी का तो जीवन आधार ही है । अत. जीव को भी समस्त साधनों और उनके फलों की आशा छोड़ कर केवल राम नाम से ही प्रेम करना चाहिए ----

राम - नाम प्रेम परमारथ को सार रे ।
राम नाम तुलसीको जीवन - अधार रे ।। वि० प० ६७ । १ ।।

सब साधन - फल कूप - सरित- सर, सागर - सलिल - [illegible] ।
राम-नाम- रति-स्वाति-सुधा-सुभ-सीकर प्रेम [illegible] ।।२।। वि०प०६५।।

मोक्ष के अनेक मार्ग हैं, किन्तु तुलसी के अनुसार दिन रात रामनाम का ही जप करना चाहिए -----

नाना पथ निरबान के, नाना बिधान बहु भाँति ।
तुलसी तू मेरे कहे जपु राम - नाम दिन - राति ।। वि०प० १९२।४।।

तुलसी ने नाम जप को सर्वोपरि स्थान देते हुए कहा है कि भक्ति, वैराग्य, विज्ञान शम, दम, और दान आदि साधन नाम के ही आधीन हैं -----

धर्म - कल्प द्रुमाराम, हरिधाम - पथि संबंल, मूलमिदमेव एकं ।
भक्ति वैराग्य - विज्ञान - शम, दान, दम, नाम, आधीन साधन अनेक ।।
वि० प० ४६ । ७ ।।

(८) कथा श्रवण की - कथा श्रवण अथवा कथा वाचन नवधा भक्ति का एक अंग है। तुलसी के अनुसार कथा श्रवण और वाचन से भी परमार्थ सिद्धि होती है। गीता के अनुरूप तुलसी ने यह कहा कि जो इस शास्त्र (मानस) का श्रवण, वाचन करते हैं, वे भव सिन्धु से बिना पार होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं किन्तु यह कथा सठ, हठी, कामी, लोभी, क्रोधी, ब्राह्मण द्रोही और अभक्तों के बीच में नहीं कहनी चाहिए। इस कथा श्रवण के वेही व्यक्ति पात्र हैं, जिन्हें सत्संगति अतिप्रिय है और जो नीति परायण, ब्राह्मणों के सेवक तथा गुरु एवं ईश्वर प्रेमी हैं[१] ------

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न मां योऽभ्यसूयति।। गीता १८।६७।।
य इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः।।६८।।
न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ।।६९।।
अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ।।७०।।

भरोसो जाहि दूसरो सो करो ।
मोको तो रामको नाम कल्पतरु कलि। कल्यान फरो ।।१।।
करम उपासन, ग्यान, बेदमत, सो सब भाँति खरो ।
मोहि तो "सावन के अंधहि" ज्यों सूझत रंग हरो ।।२।। वि० प० २२६।।

(१) अ० रा० १।१।५२

श्रद्धावानसूयश्च श्रृणुयादपि यो नरः ।
सोऽपि मुक्तः शुभांल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्य कर्मणाम् ।।७१।।

राम चरन रति जो चह अथवा पद निर्बान ।
भावसहित सो यह कथा करउ श्रवन पुट पान ।।१२८।। रा० च० मा० पृ० ६६६

राम कथा गिरिजा मैं बरनि । कलिमल समनि मनोमल हरनी ।।
संसृति रोग सजीवन मूरी । राम कथा गावहिं श्रुति सूरी ।।१।।
मन कामना सिद्धि नर पावा । जे यह कथा कपट तजि गावा ।।
कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहिं । ते गोपद इव भवनिधि तरहिं ।।३।।पृ०९९६

रघुबंस भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं ।
कलि मल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधावहीं ।।
सत पंच चौपाई मनोहर जानि जो नर उर धरै ।
दारुन अबिद्या पंच जनित बिकार श्रीरघुबर हरै ।।२।। पृ० १००१

पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं ।
मायामोह मलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम् ।।
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये ।
ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः।।२।। पृ० १००२।।

यह न कहिअ सठही हठसीलहि । जो मन लाइ न सुन हरि लीलहि ।।
कहिअ न लोभहि क्रोधिहि कामिहि। जो न भजइ सचराचर स्वामिहि ।।२।। पृ० ६६८
द्विज द्रोहिहि न सुनाइअ कबहूँ। सुरपति सरिस होइ नृप जबहूँ ।।
राम कथा के तेहि अधिकारी । जिन्ह के सत संगति अति प्यारी ।।३।।
गुरुपद प्रीति नीति रत जेई । द्विज सेवक अधिकारी तेई ।।
ता कहँ या विसेष सुखदाई। जाहि प्रानप्रिय श्रीरघुराई ।।४।। वही पृ० ६६६।।

तुलसीके अनुसार परमार्थ साधनों में भक्ति से भी महत्वपूर्ण परमार्थ साधन रामकृपा है । राम भक्ति या भक्ति रूपी चिन्तामणि भी राम कृपा के बिना प्राप्त नहीं होती ---

निज अनुभव अब कहउँ खगेसा । बिनु हरि भजन न जाहिं कलेसा ।।
रामकृपा बिनु सुनु खगराई । जानि न जाइ राम प्रभुताई ।।३।।
जाने बिनु न होइ परतीती । बिनु परतीति होइ नहि प्रीती ।।
प्रीति बिना नहिं भगति दिढ़ाई। जिमि खगपति जल कै चिकनाई ।।४।।रा०च०
मा० पृ० ९९०

सो मनि जदपि प्रगट जग अहई । राम कृपा बिनु नहिं को उलहई ।।६।।पृ० ६८८

जहँ लागि साधन बेद बखानी । सब कर फल हरि भगति भवानी ।।
सो रघुनाथ भगति श्रुति गाई । राम कृपाँ काहूँ एक पाई ।।४।।पृ०६६७।।

ज्ञान,भक्ति आदि अनेक (परमार्थ) साधन हैं और ये सभी ठीक हैं। किन्तु तुलसी का यह विश्वास है कि भ्रम का नाश केवल हरि कृपा के द्वारा ही हो सकता है -----

ग्यान-भगति साधन अनेक, सब सत्य झूँठ कछु नाहीं ।
तुलसिदास हरिकृपा मिटै भ्रम । यह भरोस मनमाहीं ।।५।।वि० प० ११६।।

राम की कृपा प्राप्त होने पर भक्ति, ज्ञान , विज्ञान, योग आदि मुनि दुर्लभ गुण स्वत: प्राप्त हो जाते हैं -----

रीझेउँ देखि तोरि चतुराई । मागेहु भगति मोहि अति भाई ।।
सुनु बिहंग प्रसाद अब मोरें । सब सुभ गुन बसिहहिं उर तोरें ।।३।।
भगति ग्यान बिग्यान बिरागा । जोग चरित्र रहस्य बि-भागा ।।
जानब तैं सब ही कर भेदा । मम प्रसाद नहिं साधन खेदा ।।४।। रा०च०मा० पृ०६४६।।

माया, काम, क्रोध, और लोभ पर साधनों से विजय प्राप्त नहीं होती । इन पर राम कृपा से ही विजय प्राप्त होती है -------

अतिसय प्रबल देव तव माया । छूटइ राम करहु जौं दाया ।।१।।
बिषय बस्य सुरनर मुनि स्वामी। मैं पाँवर पसु कपि अति क- मी।।
नारि नयन सर जाहिं न लागा । घोर क्रोध तम निसी जो जागा ।।२।।वहीपृ०६७३
लोभ पाँस जेहिं गर न बँधाया । सो नर तुम्ह समान रघुराया ।।
यह गुन साधन तें नहिं होई । [illegible] कृपाँ पाव कोइ कोई ।।३।।पृ० ६७४

तुलसी के राम कृपासिंधु है । राम कृपा से माया , मोह, और संसार के दु:ख नष्ट होते हैं। राम कृपा सर्व मंगलों की खान हैं। और जीवों को शोक रहित भी कर देती है।

मोहमूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान ।
भजहु राम रघुनायक कृपा सिंधु भगवान ।।२३।। रा०च०मा० पृ०७०६।।
अस कछु समुझि पर -त रघुराया ।
बिनु तव कृपा दयालु , दासहित , मोह न छूटै माया ।।१।। वि०प० १२३।।
जब कब राम कृपा दुख जाई । तुलसिदास नहिं आन उपाई ।।१२७।५ वि०प०
केवट निसिचर बिहग मृग किए साधु सनमानि । तुलसी रघुबर की कृपा सकल सुमंगल खानि ।।
संसृति संनिपात दारुन दुख बिनु हरि कृपा न नासै।। वि०प० ८१।४।।
कृपादृष्टि रघुबीर बिलोकी । किए सकल नरनारि बिसोकी ।।२।। रा०च०मा० पृ०८०५।।

और इसके बिना जीव को स्वप्न में भी विश्राम नहीं मिलता ----

बिनु विश्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु ।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न , लह बिश्रामु ।। दो०क० १३३।। रा०च०मा० पृ० ६५१ ।।

(१०) सत्संग :- तुलसी के अनुसार सत्संग भी परमार्थ साधन है । इस सत्संग के बल पर ही राम भक्ति दृढ़ होती है । सत्संग मोद, मंगल और विवेक का मूल है , किन्तु यह सत्संग भी बिना राम के कृपा के प्राप्त नहीं होता ----

बिनु सतसंग न [illegible] तेहि बिनु मोह न भाग ।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग ।। दो० क० पृ०१३२।। रा०च०मा० पृ० ६२५

राम सिंधु घन सज्जन धीरा । चंदन तरू हरि संत समीरा ।।
सब कर फल हरि भगति सुहाई। सो बिनु संत न काहूँ [illegible] पाई ।।६।।
अस बिचारि जोइ कर सतसंगा । राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा ।।१०।।रा०च० पृ०६८८
बिनु सतसंग बिबेक न होई । राम कृपा बिन सुलभ न सोई ।।
सतसंगत मुद मंगल मूला । सोइ फल सिधि सब साधन फूला।।४।।रा०च०मा०पृ०३३

सत्संगति संसृति (जन्ममरण) के चक्र का अन्त करती है , किन्तु पुण्य (कर्मों) के बिना संत नहीं मिलते ------

भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी । बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी ।।
पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता । सतसंगति संसृति कर अंता ।।३।।पृ०६१२

तुलसीदास सब बिधि प्रपंच जग , जदपि झूठ श्रुति गावै ।
रघुपति - भगति , संत संगति बिनु, को भव-त्रास न-सावै ।।वि०प० १२१।५।।

तुलसी के अनुसार सत्संग की अपार महिमा है । स्वर्ग और मोक्ष (परमार्थ)के समस्त सुख भी सत्संग के सुख के बराबर नहीं होते ।[१] सत्संग के प्रभाव से बुद्धि , कीर्ति , सद्गति, और विभूति प्राप्त होती है । तुलसी के अनुसार संत समागम के समान दूसरा कोई लाभ नहीं है, किन्तु यह संत समागम भी बिना हरि कृपा के नहीं मिलता ------

---

(१) राम कृपाँ तुलसी सुलभ गंग सुसंग समान ।
जो जल परै जो जन मिलै कीजै आपु समान।।३६३।।दो०

(२) तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग ।
तूल ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग।।रा०च०मा० पृ० ६०१।।

मति कीरति गति भूति भलाई । जब जेहि जतन जहाँ जेहिं पाई ।।
सो जान॒ब सतसंग प्रभाऊ । लोकहुँ बेदन आन उपाऊ ।।३।।
रा० च० मा०पृ०३३

गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन ।
बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहिं बेद पुरान।।१२५(ख)।।पृ० ६६६।।

(११) निर्मल अन्तःकरण :- परमार्थ साधनों में तुलसी ने शुद्ध अंतःकरण को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया है । तुलसी के अनुसार निर्मल मन वाला व्यक्ति राम को प्राप्त कर सकता है , क्योंकि राम को कपट, छल और छिद्र अच्छा नहीं लगता -----

निर्मल मन जन सो मोहि पावा । मोहि कपट छल छिद्र न भावा ।।३।। रा०च० मा० पृ०७२४

तुलसी के अनुसार भगवान (अंत. करण के शुद्ध) भाव के बश में हैं :-

भाव बस्थ भगवान् सुख निघान करुना भवन ।।दो०व० १३५।।

गीता के भाव साम्य पर तुलसी ने यह भी कहा है कि जो जिस भाव से राम को भजता है , राम भी उसे उसी भाव से भजते हैं [१] -----

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।। गीता ४।११।।

सनमुख आवत पथिक ज्यों दियें दाहिनो बाम ।
तैसोइ होत सु आपको त्यों ही तुलसी राम ।।दो०व० ८१।।

तथा जिसका जैसा भाव होता है उसे उसी प्रकार प्रभु का रूप दिखलाई पड़ता है ---

राज समाज बिराजत रूरे । उडगन महुँ जनु जुग बिधु पूरे ।।
जिन्ह के रही भावना जैसी । प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी ।।२।।रा०च०मा० पृ० २३२

एहि बिधि रहा जाहि जस भाऊ । तेहिं तस देखेउ कोसलराऊ ।।४।।पृ० २३३।।

सूरदास :-

सूर के अनुसार नाम जप (स्मरण भक्ति) परमार्थ सिद्धि का साधन है । नाम जप पतित जीव भी भव बन्धन से छूट जाते हैं -----

एक उपाय करौं कमला पति , कहौ तौ कहि समझाऊँ ।
पतित उधारन `सूर` नाम प्रभु लिखि कागद पहुँचाऊँ ।।सू०रा०व० पृ० २०६

और भक्ति भाव से मोक्ष धाम को प्राप्त करते हैं ---------

(१) अध्यात्म रामायण में भी यही कहा गया है ---

जाति न काहू की प्रभु जानत । भक्ति भाव हरि जुग जुग मानत ।।
करि दंडवत भई बलिहारी । पुनि तन तज हरि लोक सिधारी ।। वही पृ० ५०

सूर के अनुसार राम और सीता (दोनों की सम्मिलित कृपा) दोनों मिल कर जीव का उद्धार करते हैं अर्थात् सीता और राम के संगम बिना जीव को कोई भी मुक्त नहीं कर सकता ---

ये जननी वे प्रभु रघुनन्दन , हौं सेवक प्रतिहार ।
सीता राम "सूर" संगम बिनु , कौन उतारै पार ।। वही पृ० ६५

इस प्रकार सूर ने अपने "राम चरित्र" के अनुसार परमार्थ साधनों में भक्ति का ही उल्लेख किया है ।

केशवदास : परमार्थ साधन की दृष्टि से केशव ने कर्म , भक्ति , दान , सत्संग , सन्तोष , समता , विचार , त्याग भाव प्रार्थना और कथा श्रवण आदि का उल्लेख किया है ।

केशव के अनुसार कर्म मोक्ष प्रदान करता है किन्तु स्नान , दान , तप , होम और जप आदि (शुभ) कर्मों में से जो जो कर्म अहंकार के साथ किया जाता है , वह निष्फल हो जाता है अर्थात् वह कर्म मोक्ष प्रदान नहीं करता ----

जोई जोई जो करै अहंकार के साथ ।
स्नान दान तप होम जप निष्फल जानो नाथ ।। रा० च० २४।१५

किन्तु जो दान (कर्म) निष्काम भाव से धर्म के निमित्त दिया जाता है वह ब्रह्म प्राप्ति कराता है ----

दान सकाम अकाम कहे हैं । पूरि सबै जग माँझ रहे हैं ।।
इच्छित ही फल होत सकामैं । राम निमित्त ते जानि अकामैं ।।२१।१०
दान ते दक्षिणा बाम बखानौं । धर्म निमित्त दक्षिणा जानौं ।
धर्म विरुद्ध ते बाम गुनौ जू । दान कुदान सबै ते सुनौ जू ।। ११ ।।
देहि सुदान ते उत्तम लेखौ । देहिं कुदान तिन्हैं जनि देखौ ।
छोड़ि सबै दिन दानहि दीजै । दानहि ते बस कै हरि लीजै ।। वही २१।१२।।

शुभ और अशुभ दो प्रकार की वासनाएँ होती हैं (हरिपूजन , तीर्थ व्रतादि की वासना शुभ है औ बुरे कर्मों की वासना अशुभ) । अत• केशव के अनुसार शुभ वासना को सुपंथ में लाने से तुरन्त ही निज (ब्रह्मपद) की प्राप्ति होती है ----

जीवन की सुभ भाँति दुरासा । होति नाशुभ रूप प्रकाशा
यत्नन सों शुभ पंथ लावै । तौ अपनो तब ही पद पावै ।। २५ ।५।।

किन्तु केशव के अनुसार (शुभ) कर्म करते हुए भी उनमें लिप्त नहीं होना चाहिए जो बाहर और भीतर से शुद्ध है और जो कर्म करता हुआ भी उनमें लिप्त नहीं होता , व

बाहर हूँ अति शुद्ध लिये हूँ । जाहि न लागत कर्म किये हूँ ।।

बाहर मूढ़ सु अंतस यानो । ता कहँ जीवन मुक्त बखानो ।। २५ । १७ ।। रा०-५०

केशव के अनुसार परमार्थ सिद्धि के लिए त्याग भाव आवश्यक है । वशिष्ठ राम से कहते हैं कि संसार के समस्तपदार्थों के गुण दोषों को जानकर उनका परित्याग करने से मोक्ष पद प्राप्त होता है -----

(राम) ये सिगरे गुण हौं हुत जानो । थावर जीवन मुक्त बखानो ।।

(वशिष्ठ) जानि सबै गुण दोष न छंडै । जीवन मुक्तन के पद मंडै ।।२५ । १६

केशव के परमार्थ साधनों में भक्ति का विस्तार के साथ उल्लेख किया है । केशव के अनुसार पूजा रूपी अग्नि में सभी वासनाएँ भस्म हो जाती हैं । पूजा के आधार पर जीव अति शुद्ध रूप से ईश्वर में लीन हो जाता है ----

यह पूजा अद्भुत अगिनि सुनि प्रभु त्रिभुवन नाथ ।

सबै शुभाशुभ बासना मैं जारी निज हाथ ।। २५ । ३३ ।।

यहि भाँति पूजा पूजि जीव जु भक्त परम कहाय ।

भव भक्ति रस भागीरथी महँ देइ दुखनि बहाय ।।

पुनि महाकर्ता महात्यागी महाभोगी होय ।

अति शुद्ध भाव रमै [illegible] पूजि हैं सब कोय ।। २५ । ३४ ।।

और जिन जीवों का मन राम के चरणों में लीन रहता है , उनके शरीर को मृत्यु क्षीण नहीं कर सकती प्रत्युत उनके हृदय में आनन्द का उदय हो जाता है ।[1]

नाम जप (स्मरण भक्ति) भक्ति का एक अंग है । केशव ने परमार्थ साधनों में नाम जप का भी उल्लेख किया है । वशिष्ठ जी राम से कहते हैं कि जो तुम्हारे नाम का जप करता है वह साधु है और जो नहीं जपता है वह विमुख है । हे राम ! सब सुखों और [illegible]क्तियां का साधन एक तुम्हारा नाम ही है -----

लेइ जो कहिए साधु तेहि , जो न लेइ सो बाम ।

सब को साधन एक जग , राम तिहारो नाम ।। २५ । ४० ।।

केशव के अनुसार एक बार वशिष्ठ जी ने यह प्रश्न किया था कि जो योग , यज्ञ , स्नान और दानादि के विधान से अनभिज्ञ हो , वह २क्तिहीन जीव कैसे मुक्त हो सकता है -----

चित्त माँझ जब आनि अरुझी । बात तात पैं मैं यह बूझी ।।

योग याग करि जाहि न आवै । स्नान दान विधि मर्म न पावै ।।

है अशक्त सब भाँति बिचारो । कौन भाँति प्रभु ताहि उधारो ।। २६।०१

ब्रह्मा ने वशिष्ठ के प्रश्नोत्तर में कहा है कि राम नाम का उच्चारण सरल है । इस नाम का आधा ही नाम जपने से जीव की अधोगति नष्ट हो जाती है , और पूरा नाम जपने से तो उसे तुरन्त ही वैकुण्ठ प्राप्त होता है ----

जहीं सच्चिदानन्द रूपै धरैंगे । सु त्रैलोक के ताप तीनों हरैंगे ।

कहैंगो सबै नाम श्रीराम ताको । स्वयं सिद्ध है , शुद्ध उच्चार जाको ।।२६।५

कहै नाम आधो सो आधो नसावै । कहै नाम पूरो सो वैकुण्ठ जावै ।।

सुधारै दुहूँ लोक को वर्ण दोऊ । हिये छद्म छाँड़े कहै वर्ण कोऊ ।। २६।६।।

केशव ने तुलसी की भाँति यह भी कहा है कि कलियुग में राम नाम सेही जीव का उद्धार होगा ----

जब सब वेद पुराण नसैहैं । जप तप तीरथ हू मिटि जैहैं ।।

द्विज सुरभी नहिं कोउ विचारै । तब जग केवल नाम उधारै ।। २६।८।।

गीता के अनुरूप केशव ने यह भी कहा है कि अन्त समय (मरणकाल) में राम नाम का स्मरण करने से ब्रह्म लोक प्राप्त होता है -----

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।

य: प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशय. ।। गीता ८।५।।

मरण काल काशी विषै , महादेव गुणधाम ।

जीवन को उपदेशि हैं , रामचन्द्र को नाम ।।६।।

मरण काल कोऊ कहै , पापी होय पुनीत ।

सुख ही हरिपुर जाइहै , सब जग गावै गीत ।।१०।।प्रकाश२६।।रा०च०

होइ मुक्त सो जाहि इनको मरत आवै नाम । वही २७।२०।।

कथा श्रवण भक्ति का एक अंग है । केशव ने राम चन्द्रिका के श्रवण , मनन और अध्ययन का फल मोक्ष माना है[१] ।

केशव ने परमार्थ साधन की दृष्टि से समस्त जग व्यवहारों का ज्ञान होना आवश्यक माना है ----

जिय ज्ञान बहु व्योहार । अरु योग भोग विचार ।।

यहि भाँति होय जो राम । मिलिहैं सो तेरे धाम ।।२५।३८।।

---

(१) अशेष पुन्य पाप के कलाप आपने बहाय ।

विदेहराज ज्यों सदेह भक्त राम को कहाय ।।

केशव ने परवर्ती ग्रन्थों में योग का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है, किन्तु उन्होंने योग के एक अंग प्राणायाम को परमार्थ आदि में सहायक अवश्य माना है -

जो हरि जपि अति अनन्ता ।
सो साधै प्राणायाम अनन्त ।।
कुम्भ पूरक कुम्भक मान जानि ।
अरु रेचकादि गुनानि मानि ।।२२।।
जो क्रम क्रम साधै साधु धार ।
सो तुमहि मिलि पावै उदार ।। प्र० २५ ।२३ ।।

केशव ने मुक्तिपुरी के चार द्वारपाल माने हैं । ये चार द्वार-पाल साधु संग , शम (मन को वश में रखना) , संतोष और विचार हैं । इनमें से यदि कोई एक गुण को भी अपना कर ले तो वह राम को प्राप्त कर सकता है ----

मुक्तिपुरी वर द्वार के चार चतुर प्रतिहार ।
साधुन को सतसंग सम अरु संतोष विचार ।।२५।६।।
चारि में एकहु जो अपनावै । सो तुमपै प्रभु आवन पावै।।२५।१४।।

केशव के अनुसार सत्संग तो गंगा सागर (तीर्थ) से भी बड़ा (तीर्थ) है , जो जीव को पवित्र कर मुक्त कर देता है ----

गंगा सागर सों बड़ो साधुन को सतसंग ।
पावनकर उपदेश अति अद्भुत करत अभंग ।।२३।६।। रा० च०

अग्रदास ; अग्रदास के अनुसार नाम जप के द्वारा पापों को नष्ट करके संसार सागर पार किया जा सकता है तथा नाम जप के बिना

आवश्यक है ----

अग्र कहै सतसंग बिनु , कछू लाभ नहिं आय । वही पृ० ८।।

मन जीते बिनु नाहिंन , कहुँ सीतलता पाई । वही पृ० १६ ।।

सेनापति : सेनापति ने परमार्थ साधनों में भक्ति का उल्लेख करते हुए उसे ही सर्वाधिक ।
दी है । सेनापति के अनुसार राजा राम की भक्ति मुक्ति प्रदान करती है[1] ----

चाहै जौ मुकति , जौहै पति रघुपति , जिन
कोसल नगर कीनौ मुक्त सकल है ।
सेनापति ऐसे राजा राम कौं बिसरि जौ पैं
और कौ भजन कीजे , सो धौं कौन फल है ।।६।। क० रत्ना० पृ० ६६ ।।

और भक्ति से शुभ गति होती है ----

हिए न भगति जातैं होत सुभ गति , तन
तीरथ चलत मन तीरथ चलत है ।।३२।। वही पृ० १०६ ।।

सेनापति के अनुसार कर्म परमार्थ साधन नहीं है । यदि जीव अपने कर्मों के द्वारा ;
हो जाया करता , तो राम किस बात के कर्ता ? अर्थात् मोक्ष कर्मों के द्वारा उपलब्ध न हो
राम की शरण में जाने से ही होती है ----

तुम करतार जन रच्छा के करनहार ,
पुजवनहार मनोरथ चित चाहे के ।
यह जिय जानि सेनापति है सरन आयौ ,
हूजिये सरन महा पाप-ताप दाहे के ।।
जौ कोहू कहौं कि तेरे करम न तैसे , हम
गाहक हैं सुकृति भगति रस लाहे के ।
आपने करम करि हौं ही निबहौंगौं तौब ,
हौं ही करतार , करतार तुम काहे के ? ।।२६।। वही पृ०१०५-१०६।।

इस प्रकार सगुण राम भक्तों ने परमार्थ साधन की दृष्टि से मानव देह , गुरु,ज्ञा
कर्म,भक्ति,हरि कृपा, निर्मल मन, प्राणायाम,सत्य,संतोष,औरदान आदि साधनों का नि

अध्याय ६

सगुण राम भक्ति की साधना

भक्ति के स्वरूप का विवेचन प्रथम भाग मे हो चुका है। इस अध्याय मे सगुण राम भक्तो के अनुसार भक्ति के स्वरूप, भक्ति के आदर्श और उसके साधन तथा अन्तरायो का विवेचन किया जा रहा है।

क भक्ति का स्वरूप

ईश्वरदास

ईश्वरदास ने भक्ति के स्वरूप के संबंध मे स्पष्ट रूप से लगभग कुछ नहीं कहा है, परन्तु फिर भी उनकी रचनाओ के आधार पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वे दास्य भाव मे विश्वास रखते थे। ईश्वरदास के अनुसार सभी महापुरुष राम के दास होते हैं और इन दासो को राम नाम की सेवा में अपना मन लगाना चाहिए -

महा पुरुष बरनौ कहा, सबै राम के दास।
ईसरदास तेहि पाहे, कथा कीन्ह परगास।।८।।
राम नाम कबि नरक नेवारा, तेहि सेवा मनु लागु हमारा।
मरम न जानौ केसव तोरा, तुम्हरे चरन चितु लागै मोरा।।

ईश्वरदास कृत सत्यवती तथा अन्य कृतियाँ पृ० १३६-१४१

गोस्वामी तुलसीदास

शाण्डिल्य भक्ति सूत्र और नारद भक्ति-सूत्र मे भक्ति प्रेम परक मानी गयी है-

सा परानुरक्तिरीश्वरे ।।२।। शा०भ०सू०
सा त्वस्मिन् परम प्रेम रूपा ।।२।। ना०भ०सू०

वैष्णव धर्म रत्नाकर में भी भक्तिको प्रेमपरक माना गया है -

सर्वस्मादधिक स्नेहो भक्तिरित्युच्यते बुधै'।।वै०ध०रत्ना० ७। पृ०३०८।।

इन भक्ति ग्रन्थो के सदृश तुलसीदास ने भी प्रेम परक भक्ति का विवेचन किया है तुलसी स्वयं प्रेम और प्रेमा भक्ति की ही याचना करते हैं --

परमानंद कृपायतन मन परिपूरन काम ।
प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम ।। १२५।।दो०का०।।
नर विविध कर्म अघम बहु मत सोक प्रद सब त्यागहू ।
विस्वास करि कह दास तुलसी रामपद अनुरागहू ।।रा०च०मा०पृ०६७१।।
तुलसी चाहत जनम भरि राम चरन अनुराग ।।६१-८६ दो०का०

तुलसी के अनुसार भरत, लक्ष्मण, दशरथ, जनक, हनुमान, कौशल्या, सीता, नील, विभीषण बालि, भारद्वाज, सुर, साधु, मुनि ज्ञानी, उमा, रमा, शारदा, शिव, पार्वती और शबरी इत्यादि सभी राम प्रेम की कामना करते हैं।[1]

तुलसी के राम भी प्रेम सिन्धु है, और वे प्रेम से ही व्यक्त होते हैं। राम स्नेह रूपी वन मे विहार करते ह। सच्चे स्नेही केवल एक राम ही है। राम के समान प्रेम के वश मे रहने वाला, तीनो लोको और तीनो काल मे अन्य कोई नहीं है, और उनके समान प्रेम को निभाने वाला भी दूसरा कोई नहीं है[2] -

ब्यापक ब्रह्म निरजन निर्गुन बिगत बिनोद ।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या के गोद ।। १९८।।पृ०१९८।।
हरि ब्यापक सर्बत्र समाना । प्रेम तें प्रगट होहि मैं जाना ।।३।।पृ०१८७।
तुलसी सुभग सनेहु बन सिय रघुबीर बिहारु ।।दो०का० १९५।।
सुखमा सील सनेह सानि मनो रूप बिरचि सँवारे ।।गीतावली६८।१०।पृ०११५।
एक सनेही साचिलो केवल कोसलपालु । प्रेम कनौड़ो रामसो नहिं दूसरो दयालु ।।वि०प०
१९१।१।।
प्रेम - कनौडो राम सो प्रभु त्रिभुवन तिहुँकाल न भाई ।
को रघुबीर सरिस संसारा । सीलु सनेहु निबाहनिहारा ।।२।।पृ०२५३।

तुलसी के अनुसार राम प्रेम-सुरतरु है। जिन्हें राम मधुर लगते हैं उन्हे ससार का अन्य कोई रस अच्छा नहीं लगता।स्वार्थ और परमार्थ का यही एक उपाय हैकि राम और सीता के चरणों मे प्रेम अभिवृद्धि होती रहे -

---

1-रा०च०मा० पृ०३९४,४१८,४१९,४२१,५९६,६६४,७२८,२०८,३४७,६७१,२०३,४४२,
३९३,४०१,४४३,४२६,४३१,९४७ ।
वि०प० पृ० १३०, दो०का० ४५५, गी०व० पृ०३५,१०६,१०८,२०२,४१६
2- रा०च०मा० ४।पृ०१८७,२००,१९९,१९८,३३९,४४३,५६६ वि०प० १६४। १-६-७।
१८३ ।१, गीतावलीपृ० १९८।।

जिन्हके हिये सुथर राम - प्रेम सुरतरु,

लसत सरस सुर फूलत फरत ।। वि०प० २ ।१।१।।

जो मोहि राम लागते मीठे ।

तौ नवरस षटरस रस अनरस ह्वै जाते सब सीठे ।। वि०प० १६६।१।।

स्वारथ परमारथ हित एकउपाय ।

सीय राम पद तुलसी प्रेम बढ़ाय ।।४५।। बरवै रामायण पृ० १६।।

तुलसी ने प्रेम की महिमा का वर्णन करते हुए यह भी कहा है कि आगम, निगम और पुराणों के अध्ययन और सब साधनों का यही सुन्दर फल है कि राम के पद पंकजों में निरन्तर प्रेम हो, और जिसकी राम चरणों में प्रीति है, वही सर्वज्ञ पण्डित, गुणी, विज्ञानी, दक्ष और सर्व लक्षण युक्त है -

आगम निगम पुरान अनेका । पढ़े सुने कर फल प्रभु एका ।।

तवपद पंकज प्रीति निरंतर । सब साधन कर यह फल सुंदर ।।२।। रा०च०मा०पृ०६१५।

सोइ सर्बग्य तग्य सोइ पंडित । सोइ गुन गृह बिग्यान अखंडित ।

दच्छ सकल लच्छन जुत सोई । जाके पद सरोज रति होई ।।४।। पृ०६१८।।

तुलसीदास ने जहाँ सब साधनों का फल प्रेम माना है वहाँ उन्होंने यह भी कहा है कि राम प्रेम के बिना सब नियम, साधन और उपाय व्यर्थ हैं -

तुलसी जाय उपाय सब बिना राम पद प्रेम ।१०३। दो०

ज्ञान बिराग, जोग जप मख जग मुद मग नहिं थोरे ।

राम प्रेमबिनु नेम जाय जैसे मृग जल जलधि हिलोरे ।। १६४।३। वि०प०

तुलसी के अनुसार जिसे राम से प्रेम नहीं है उसे मनुष्य देह धारण करने से कोई लाभ नहीं-

जो अनुराग न राम सनेही सों ।

तौ लह्यो लाहु कहा नर देही सो ।। वि०प०१६४।१।।

इस प्रकार तुलसी ने अपनी भक्ति में प्रेम को अत्यधिक महत्त्व दिया है । तुलसी का मानस भी प्रेम जल से ही परिपूर्ण है -

सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम् ।।२।। रा०च० मा० पृ० १००२।।

तुलसी के अनुसार प्रेम के बिना भक्ति भी दृढ़ नहीं होती -

प्रीति बिना नहिं भगति दिढ़ाई ।। जिमि खगपति जल कै चिकनाई ।।

भक्ति के लिए प्रेम आवश्यक है। फलतः तुलसी के अनुसार राम भक्ति का प्रेम रूपा है-

रघुबर भगति प्रेम परमिति सी । रा० च० पृ० ६३१।।

प्रेम भगति जो बरनि न जाई । तेहि मधुरता सुसीतलताई ।। पृ०६८ ।।

प्रेम पयोनिधि मंदर ग्यान संत सुर आहि ।

कथा सुधा मथि काढ़हिं भगति मधुरता जाहिं ।। वही पृ० ६८८ ।।

इस प्रेमाभक्ति का तुलसी ने दाम्पत्य रूप में भी विवेचन किया है। किन्तु उन्होंने निर्गुण संतों की भाँति आत्मा को स्त्री और परमात्मा को पुरुष मान कर दाम्पत्य रति का वर्णन नहीं किया है, उन्होंने सीता राम के दाम्पत्य प्रेम का ही वर्णन किया है। [illegible] माधव ने गीतावली के कुछ शृंगारी पदों के आधार पर यह माना है कि गोस्वामी जी का आराध्य माधुर्य भावोपासना का था,[1] परन्तु [illegible] पर सीता विषयक [illegible] माधव जी ने [illegible] को पुष्ट करने के लिए जिन पदों को उद्धृत किया है उनमें किसी प्रकार के विलास [illegible]। गीतावली का पद १०८ के अनुसार केलिगृह गमन का जो वर्णन हुआ है वह सीता राम का न होकर लक्ष्मण और उर्मिला का है। इस वर्णन में तुलसी ने किसी प्रकार का शृंगार और विलास भाव व्यक्त नहीं किया है। इस प्रसंग में तुलसी ने केवल इतना कह कर पद समाप्त कर दिया है कि लक्ष्मण और उर्मिला क्रीड़ा भवन में गये -

सोभा सील सनेह सोहावनो, समउ केलिगृह गौने ।

देखि नियानि के नयन सफल भये तुलसिदासहू के जौने ।।गीतावली बाल० १०७। ३।।

गीतावली अयो०पद० २० में भी किसी प्रकार का विलासभाव नहीं है। इस पद के अनुसार सीता जी सास के बचन सुनकर स्नेह में शिथिल होकर केवल स्वामी की ओर विशेष प्रेम से देखती हैं। इस देखने पर तुलसीदास जी कहते हैं कि मानो कृपाकी मूर्ति प्रभु ने उसका हृदय अपने में अटका लिया है -

सनेह सिथिल सुनि बचन सकल सिया,

चितई अधिक हित सहित ओहि ।

तुलसी मनहु प्रभु कृपा की मूरति फिरि

हेरि है हरषि हिये लियो है पोहो ।।गी०व०अयो०२०।४।।

गीतावली के अयोध्याकाण्ड पद ४४ में भी स्पष्ट रूप से रति-क्रीड़ा का वर्णन नहीं हुआ है। केवल उपासना पदों में तुलसी युगलरूप का गान गाते हैं।

१- राम भक्ति साहित्य में मधुर उपासना पृ० ११५-११६-११७ ।।

निजकर राजीव नयन पल्लव-दल-रचित सयन,

प्यास परस्पर पियूष प्रेम-पानकी ।।३।।

सिय अँग लिखैं धातुराग, सुमननि भूषन विभाग,

तिलक-करनि का कहौं कलानिधान की ।

माधुरी विलासहास, गावत जस तुलसिदास,

बसति हृदय जोरी प्रिय परम प्रानकी ।।४४।।

गीतावली उत्तरकांड पद २ भी सीता-राम की विलास क्रीड़ा से सम्बन्धित नहीं है उसमें केवल आराध्य युगल के प्रात काल में वे जागने से उत्पन्न की छवि का वर्णन किया है जो सहज स्वाभाविक है, उसे तुलसीदास का तो चित्रण करते हैं -

भोर जानकी जीवन जागे ।

स्यामल सलोने गात, आलसबस जँभात प्रिया प्रेमरस पागे ।

उनींदे लोचन चारु, मुख-सुखमा सिंगार हेरि हारे मार भूरि भागे ।।२।।

इस प्रकार गीतावली की प्रेमोपासना में विलासिता की मादकता नहीं है। गीतावली की प्रेमोपासना सहज पावन है -

बिरहिन निज नउ पैरै गारि । डाँटियत सिद्ध साधक प्रचारि ।।

जिनहिं न काम सकै चापि छाँह । तुलसी जे बसहि रघुबीर बाँह ।।

गीतावली का० ४६।६

तेहु निज करि देहु निजपद प्रेम पावन पीन।।२४।३। उ० का०

राम जोगवत सीयमनु, प्रिय मनहि प्रान प्रियाउ ।।

परम पावन प्रेम परमिति समुझि तुलसी गाउ।।२५।६।उ०कां०। वली

तुलसी का मानस तो और भी श्रृंगारीय रसिक भाव से अछूता है। जिन प्रसंगों में अन्य कवियों ने अश्लील श्रृंगार को स्थान दिया है, उन प्रसंगों मे तुलसी ने पूर्ण मर्यादा का पालन किया है। ५ वीं शताब्दी से लेकर १२ वीं शताब्दी तकके संस्कृत साहित्य में शिव और पार्वती का चरित्र श्रृंगार के अश्लील रूप से प्रभावित रहा है। इसके विपरीत तुलसी ने शिव पार्वती के चरित्र चित्रण मे भी किसी प्रकार के श्रृंगार तक को स्थान नहीं दिया है -

जबहि सम्भु कैलासहि आये, सुर सब निज निज लोक सिधाये ।।

जगत मातु पितु सभु भवानी, तेहि सिंगारु न कहउँ बखानी ।। रा०च० पृ० १२३।।

जयंत की कथा में कालिदास ने सीता के दांत स्तनों का वर्णन किया है -

जीव की परा अवस्था को प्रौढा और नैष्ठिकी अवस्था में कहा जाता है। वृत्तियों के निरुद्ध होने पर, भगवान् के दर्शन होना ही प्रौढा भक्ति है। इस सम्बन्ध में तुलसी कहते हैं-

काम मोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ।।

जिन्ह के कपट दंभ नहि माया। तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया।। रा०च०पृ०४३७।

नैष्ठिकी भक्ति में प्रेम में निष्ठा उत्पन्न होती है। भक्तों के संग में रहने से नैष्ठिक निष्ठा भक्ति उद्भूत होती है। इस भक्ति का वर्णन करते हुए तुलसी कहते हैं-

बिनु सत्संग भगति नहि होई। ते तब मिलै द्रवै जब सोई।।

जब द्रवै दीनदयालु राघव, साधु संगति पाइये।

जेहि दरस परस समागमादिक पापरासि नसाइये ।।

जबतक जाहु टेक न भागी, कि सुधि ... सरन ... ताको ।। वि०प०पृ०२२०।।

जीव की प्रौढा और नैष्ठिकी अवस्था ही सिद्धावस्था है। तुलसी के अनुसार भरत की भक्ति सिद्धा भक्ति है, क्योंकि प्रत्येक क्षण उनका चित्त राम में ही समाहित रहता है-

तजिन बसन फल असन, जटा धरे रहत अवधि चित दीन्हे।

प्रभु पद प्रेम नेम ब्रत निरखत मुनिन्ह नमित मुख कीन्हे ।। गीतावली पृ०२५८।।

तुलसी तू मेरे कहे जपु राम नाम दिनराति ।। वि०प० पृ० ३१०।।

सिद्धा अवस्था का प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है। अतः सिद्धा भक्ति को दुर्लभा भक्ति भी कहा जाता है। तुलसी के अनुसार राम भक्ति का प्राप्त होना दुर्लभ है -

सब ते सो दुर्लभ सुरराया। राम भगति रत गत मद माया ।।

सो हरि भगति काग किमि पाई। बिस्वनाथ मोहि कहहु बुझाई।। रा०च०पृ०९२०।

सिद्धा अवस्था में जीव निष्काम अथवा अकाम ... रहता है। तुलसी के अनुसार भगवद् भजन निष्काम भाव से ही होना चाहिए -

बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहि निःकाम।

*तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम ।। १६।। रा०च० पृ०६१८।

निष्काम भक्ति और अहैतुकी भक्ति में कोई भेद नही है। अहैतुकी भक्ति में जीव का भगवान् में स्वाभाविक प्रेम हेतुरहित प्रेम रहता है। अहैतुकी भक्ति का उल्लेख करते हुए तुलसी ने कहा है -

चहौं न सुगति सुमति, संपति कछु रिधि सिधि बिपुल बड़ाई ।

हेतु रहित अनुराग राम पद बढ़ै अनुदिन अधिकाई ॥१०३॥ वि०प०पृ०१७८॥

परा, अनन्या, निर्मला और निष्काम भक्ति की उत्तम अवस्थाएं हैं । इन्हीं अवस्थाओं को उत्तमा-भक्ति कहा जाता है । उत्तमा भक्ति में भक्त भगवान् के अनुकूल रहता है । इस भक्ति में ज्ञान और कर्म की भी अपेक्षा नहीं रहती । इसमें भक्त हरि के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार की कामना नहीं करता । इन्हीं बातों को स्पष्ट करते हुए तुलसी कहते हैं-

पावन प्रेम राम चरन कमल जनम लाहु परम ।

राम नाम लेत होत सुलभ सकल धरम ॥१॥

जोग, मख, विवेक, बिरत, बेद बिदित करम ।

करिबे कहँ कटु कठोर सुनत मधुर, नरम ॥२॥

तुलसी सुनि, जानि - बूझि भूलहि जनि मरम ।

तेहि प्रभु को होहि जाहि सब ही की सरम ॥३॥ वि०प०पृ०२०६॥

नारद भक्ति सूत्र के अनुसार यह प्रेमा भक्ति एक होकर भी गुणमाहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति, कान्तासक्ति, वात्सल्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, तन्मयतासक्ति और परमविरहासक्ति ११ प्रकार की होती है -

गुणमाहात्म्यासक्तिरूपासक्तिपूजासक्तिस्मरणासक्ति

दास्यासक्ति सख्यासक्ति कान्तासक्तिवात्सल्यासक्त्यात्मनिवेदनासक्ति

तन्मयतासक्ति परमविरहासक्ति रूपा एकधाप्येकादशधाभवति॥८२॥

भक्ति के इन ११ प्रकारों का विभिन्न प्रसंगों में तुलसी ने भी वर्णन किया है ।

१. गुणमाहात्म्यासक्ति

गुणमाहात्म्यासक्ति में जीव भगवान् के गुण और माहात्म्य में आसक्त रहता है । तुलसी के अनुसार गुणों के द्वारा जीव का ब्रह्म के प्रति प्रेम बढ़ता है और वह प्रेम के द्वारा ब्रह्म को ही प्राप्त कर लेता है -

समुझि समुझि गुनग्राम राम के, उर अनुराग बढ़ाउ ।

तुलसिदास अनयास रामपद, पाइहै प्रेम पसाउ ॥वि०प० १००॥१०॥

२ रूपासक्ति

रूपासक्ति में भक्त भगवान् के [illegible] है, [illegible] [illegible] नहीं [illegible] होता है। [illegible] -

तुलसिदास भव-त्रास मिटै तब, जब मति येहि सरूप अटकै ।

नातरु दीन मलीन हीनसुख, कोटि जनम भ्रमि भ्रमि भटकै ।। वि०प०६३।८।।

तुलसी के अनुसार राम के रूप को देख कर जनक, कौशल्यादि मातायें, ग्राम-वधू, निषाद, भरत, लक्ष्मण, सुरनर मुनिगण, [illegible], पशु पक्षी आदि सभी आसक्त होते हैं और उनके दर्शनों से सभी को अपार परमानन्द प्राप्त होता है।

३ पूजासक्ति

तुलसी के भरत नित्यप्रति राम की पादुकाओं का पूजन करते हैं -

नित पूजत प्रभु पाँवरि प्रीति न हृदयँ समाति ।

मागि मागि आयसु करत राज काज बहु भाँति ।।३२५।।पृ०५६२।। रा०-अ०

४ स्मरणासक्ति

तुलसी के वाल्मीकि जी कहते हैं कि जो परिवार सहित राम की पूजा करता है राम उसके मन में निवास करते हैं।[१] स्मरणासक्ति में जीव भगवान् का स्मरण करता है।

तुलसी के अनुसार राम नाम धर्म अर्थ काम और मोक्ष इन चारों फलों का फल है। अतः कपट छोड़ कर उसी का स्मरण करना चाहिए, क्योंकि भक्त के लिए यही सर्वोत्तम यज्ञ है[२] --

सतकोटि चरित अपार दधिनिधि मथि

लियो काढि वामदेव नाम-घृतु है ।

नाम को भरोसो बल चारिहू फल को फल

सुमिरिये छाडि छल, भलो कृतु है ।वि०प० २५४।२।।

और नीच व्यक्ति भी राम का स्मरण करने से उस पद को प्राप्त कर लेते हैं जिसे देवता भीप्राप्त नही कर पाते -

---

२- गीता में भगवान् ने जप यज्ञ को अपना स्वरूप बताया है -

लारत, छप्न, ुनाति, टिंा, राा, पति, न्ना दृ ा नाा ि न ।
ुनितना नाम िकाएं लारन पावत नो पद, ाा ुर गान्हि न ।। वि०प०२०७। २

५ दास्यानक्ति

दास्यासक्ति से भक्त भगवान से नेवा नो ीि ल हुदा सकता है और वह भगवान की सेवा में ही आसक्त रहता है। तुलसी के मतानुसार नो सेव्य-सेवक भाव के बिना भव सागर को पार करना कठिन है -

सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि ।
भजहु रामपद पंकज अस सिद्धान्त बिचारि ।। ११९। उ रा० च० पृ० ९८८।।

तुलसी के हनुमान की राम मे दास्यासक्ति है -

ता पर मैं रघुबीर दोहाई। जानउँ नहि कछु भजन उपाई ।
सेवक सुत पति मातु भरोसे । रहइ असोच बनइ प्रभु पोसे ।। २। पृ० ६५६।।

६ सख्यासक्ति

ब्रह्म मे सख्य भाव का होना ही सख्यासक्ति ह । तुलसी के राम अपने मित्रो को पवित्र प्रेम से प्रसन्न करते हैं -

जाचक दान मान संतोषे । मीत पुनीत प्रेम परितोषे ।। २।। पृ० ३९८।।

तुलसी के अनुसार सुग्रीव की राम मे सख्यासक्ति है। अग्निदेव साक्षी मानकर हनुमान सुग्रीव और राम मे मैत्री भाव स्थापित करवाते हैं -

तब हनुमंत उभय दिसि की सब कथा सुनाइ ।
पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढाइ ।। ४।। रा०च०मा०पृ०६५७।।

:७ कान्तासक्ति

ईश्वर में कान्तभाव का होना ही कान्तासक्ति है। तुलसी के अनुसार राम सीता अथवा लक्ष्मी के प्रिय कांत हैं -

---

शेष पिछले पृष्ठ का-

मत्र राजु नित जपहि तुम्हारा। पूजहि तुम्हहि सहित परिवारा ।।३।। रा०च०पृ०४३७

प्रभु तन चितइ प्रेम तन ठाना। कृपानिधान राम सबु जाना ।।४।। रा०च०पृ०२७०।

राम [illegible] पर [illegible] सीता। [illegible] ।। रा०पृ०२८१।

जो [illegible] बिपिन मुनि [illegible] नारी। [illegible] ।।३।पृ०३९५।।

जो [illegible] ।।१। रा०च०पृ०७८८।।

और सीता की राम मे अनन्य [illegible] है -

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते।।

तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति बिहीन सबु सोक समाजू ।।२।।

जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी ।।

नाथ सकल सुख साथ तुम्हारें। सरद बिमल बिधु बदनु निहारें ।।४।पृ०३८[illegible]।।

राखिअ अवध जो अवधि लगि रहत न जनिअहिं प्रान।

दीनबन्धु सुंदर सुखद सील सनेह निधान ।।६४।। रा०च०पृ०३८७।।

८ वात्सल्यासक्ति

वात्सल्यासक्ति मे ईश्वर को पुत्र मान कर प्रेम व्यक्त किया जाता है। तुलसी के अनुसार दशरथ और कौशल्या की भक्ति वात्सल्य भाव की भक्ति है -

कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै ।।३।। रा०च०पृ० १६३।।

तव गुन प्रिय मोहि प्रान कि नाईं। राम देत नहि बनइ गोसाईं ।।३। रा०च०२०६।।

वात्सल्यासक्ति के कारण दशरथ प्राणों का त्याग कर देते हैं -

राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।

तनु परिहरि रघुबर बिरहँ राउ गयउ सुरधाम ।।१५५। रा०च०पृ०४५७।।

९ आत्मनिवेदनासक्ति

विनयपत्रिका में आत्मनिवेदन से सम्बन्धित पदो की भरमार है। एकपद मे तुलसी अपने निवेदन भाव को स्पष्ट करते हुए कहते है -

नाथ सो कौन बिनती कहि सुनावौं। त्रिबिध बिधि अमित अवलोकि अघ आपने

सरन सनमुख होत सकुचि सिर नावौं ।।१।।

बिरचि हरि भगति को बेष बर टाटिका,

कपट-दल हरित पल्लवनि छावौं।

नाम लागि लाइ लासा ललित बचन कहि,

करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी । जिमि बालक राखइ महतारी ।
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई । तहँ राखइ जननी अरगाई ।।३।।
प्रौढ़ भएँ तेहि सुत पर माता । प्रीति करइ नहि पाछिलि बाता ।।
मोरे प्रौढ़ तनय सम ग्यानी । बालक सुत सम दास अमानी ।।४।।
जनहि मोर बल निज बल ताही। दुहु कहँ काम क्रोध रिपु आही ।।
यह बिचारि पंडित मोहि भजहीं । पाएहुँ ग्यान भगति नहि तजहीं ।।५।।पृ०६७८।।
यहाँ राम को दास भक्त क्यों प्रिय हैं इसका उत्तर वे स्वयं भी सेवक के वश में रहते हैं -
सोइ प्रभु सेवक बस अहहीं । भगत हेतु लीलातनु गहहीं।।
जौं यह बचन सत्य श्रुति भाषा । तौ हमार पूजिहि अभिलाषा।।४।।रा०च०पृ०१ ''।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि तुलसी के सभी पात्र राम के चरणों में अनुरक्त हैं अथवा वे राम के प्रेम की कामना करते हैं । इस निमित्त है कि तुलसी के सभी पात्र राम प्रेम की इच्छा करते हैं, किन्तु वे सेवा लेकर राम के प्रेम की कामना करते हैं । सेवक होने के कारण ही इन्हें राम का प्रेम प्राप्त है। ये सभी पात्र राम का दास्य भाव प्राप्त करने की याचना करते हैं । सामाजिक दृष्टि से माता, पिता और गुरु तुल्य और शिष्य से बड़े होते हैं । परन्तु तुलसी ने इन्हें भी राम से छोटा समझ कर उनका दास ही माना है । मनु और शतरूपा को जिन्होंने बाद में दशरथ और कौसल्या के रूप में जन्म लिया था राम स्वयं अपना दास समझते हैं । मनु के अनुसार वे सेवकों के लिए कल्पवृक्ष और कामधेनु हैं एवं सेवा करने में सुलभ तथा जड़ चेतन के स्वामी हैं -

प्रभु सर्वग्य दास निज जानी । गति अनन्य तापस नृप रानी ।।
मागु मागु बरु भै नभ बानी । परम गभीर कृपामृत सानी ।।३।।
सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू । बिधि हरि हर बंदित पद रेनू ।।
सेवत सुलभ सकल सुखदायक । प्रनतपाल सचराचर नायक ।।१।।रा०च०पृ०१५६।।

जिस भक्ति को राम के भक्त सेवक प्राप्त करते हैं, उसी भक्ति को प्राप्त करने की कामना शतरूपा करती है --

अस समुझत मन संसय होई । कहा जो प्रभु प्रवान पुनि सोई ।।
जे निज भगत नाथ तव अहहीं । जो सुख पावहिं जो गति लहहीं ।।४।।
सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु ।
सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहु ।।१५०।।वही पृ०१६०।।

तुलसी की कौसल्या भी राम के चरणों में सिर नवाती है और राम को जगत्पिता समझती हैं -

तन पुलकित मुख बचन न आवा । नयन मूदि चरननि सिरु नावा ।।३।।
अस्तुति करि न जाइ भय माना । जगत पिता मैं सुत करि जाना ।। रा०च०पृ०२०१।

दशरथ और कौसल्या की राम के चरणों में अत्यन्त प्रीति थी, जिसके वशमें होकर भगवान् बाललीला करते हैं -

सुख संदोह मोह पर ग्यान गिरा गोतीत ।
दंपति परम प्रेम बस कर सिसु चरित पुनीत ।।१९६।।

चौपाई एहि विधि राम जगत पितु माता । कौसलपुर बासिन्ह सुखदाता ।।
जिन्ह रघुनाथ चरन रति मानी । तिन्ह की यह गति प्रगट भवानी ।।१।।
रा०च० पृ० १९६ ।।

और राम सेवकों को सुख देने वाले हैं तथा तुलसी के अनुसार मनुष्य जब तक मन बचन और कर्म से छल छोड कर राम का दास नहीं हो जाता, तब तक करोडों उपाय करने पर भी वह सुख प्राप्त नहीं कर सकता -

धरम सेतु पालक तुम्ह ताता । प्रेम बिवस सेवक सुखदाता ।।४।।पृ०२१५।।
सेवक सुखद सुभग सब अंगा । जय सरीर छबि कोटि अनंगा ।।२।। पृ०२६७।।
करम बचन मन छाडि छलु जब लगि जनु न तुम्हार ।
तब लगि सुखु सपनेहुँ नहीं किएँ कोटि उपचार ।।१०७।।पृ०४१९।।

तुलसी के अनुसार शिव राम को अपना स्वामी समझते हैं, और लक्ष्मण राम के चरणों में ऐसा ही प्रेम करते हैं जैसा सेवक और स्वामी में होता है तथा निषाद राज अपने को राम का नीच सेवक समझता है, और सुग्रीव राम की सेवा करने का व्रत लेते हैं -

कह सिव जदपि उचित अस नाहीं । नाथ बचन पुनि मेटि न जाहीं ।
सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा । परम धरम यह नाथ हमारा ।।१।।पृ०१००।
बारेहि ते निज हित पति जानी । लछिमन राम चरन रति मानी ।
भरत सत्रुहन दूनउ भाई । प्रभु सेवक जसि प्रीति बड़ाई ।२। पृ० १९८।।
नाथ कुसल पद पंकज देखें । भयउँ भागभाजन जन लेखें ।।
देव धरनि धनु धामु तुम्हारा । मैं जनु नीचु सहित परिवारा ।।३।।पृ०४०४।।
उपजा ज्ञान बचन तब बोला । नाथ कृपाँ मन भयउ अलोला ।।
सुख संपति परिवार बड़ाई । सब परिहरि करिहउँ सेवकाई ।।८।।पृ०६६०।।

इस प्रकार तुलसी के लगभग सभी पात्र राम की सेवा के इच्छुक है। तुलसी के अनुसार ब्रह्मा भी वनवासी से यही कहते है कि तुम लोग वानरो के शरीर धारण करके हरि के चरणो की सेवा करो -

निज लोकहि बिरंचि गे देवन्ह इहइ सिखाइ।

बानर तनु धरि धरि महि हरि पद सेवहु जाइ ।।१८७।रा०च० पृ०१८६।

और राम के बालसखा आदि सभी यही अभिलाषा करते है कि हम जिस जिस योनि मे जन्म लें, उस उस योनि मे हम सेवक हो और राम हमारे स्वामी -

जेहि जेहि जोनि करम बस भ्रमहीं। तहँ तहँ ईसु देउ यह हमहीं।।

सेवक हम स्वामी सियानाहू। होउ नात यह ओर निबाहू।।३।।

अस अभिलाषु नगर सब काहू। कैकयसुता हृदयँ अति दाहू।।४।पृ० ३५४।।

भगवान् का प्रेम सेवा के बलपर ही मिलता है इसको स्पष्ट करने के उपरान्त तुलसी का यह निश्चित मत है कि मैं सेवक और भगवान सेव्य है " इस भाव के बिना भवसिन्धु से पार होना असम्भव है, अत जीव को इसी भाव से भगवद्-भक्ति करनी चाहिए -

सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।

भजहु राम पद पंकज अस, सिद्धांत बिचारि।।११९।।पृ०६८६।। क

तुलसी के अनुसार स्वामी की आज्ञा का पालन करना ही सेवा धर्म है और यह सेवा धर्म अत्यन्त कठिन है[१] -

करइ स्वामि हित सेवकु सोई। दूषन कोटि देइ किन कोई।।पृ०४८१।।

सहज सनेहँ स्वामि सेवकाई। स्वारथ छल फल चारि बिहाई।।

अग्या सम न सुसाहिब सेवा। सो प्रसादु जनपावै देवा।।२।।पृ०५७३।।

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। सेवाधरमु कठिन जगु जाना।

स्वामि धरम स्वारथहि बिरोधू। बैरु अंध प्रेमहि न प्रबोधू।।४।।पृ०५६७।।रा०च०

इस प्रकार तुलसी ने अपनी भक्ति मे दास्य भाव को प्रमुखता दी है। तुलसी ने मानस के अतिरिक्त भी अपने अन्य ग्रन्थो मे दास्य भाव का ही मुख्य रूप से प्रतिपादन किया है।तुलसी की विनय पत्रिका तो पूर्ण रूपेण दास्य भाव से ओतप्रोत है। विनयपत्रिका के अनुसार हरि का दास पर इतना अधिक प्रेम होता है कि वे अपनी प्रभुता को भूलकर दास के ही वश मे हो जाते है -

---

१- रा०च० मा० ४ पृ० ४९५,५३५ ।।

ऐसी हरि करतदास पर प्रीति ।

निज प्रभुता बिसारि जनके बस, होत सदा यह रीति ।। वि०प०९८।१।।

अत तुलसी सब प्रकार से रामके दास बनना चाहते है --

हौं सब विधि राम, रावरो चाहत भयो चेरो ।।१।। वि०प० १४६।।

तुलसी राम के सेवक है, इस बात को तुलसी ने अनेक पदो मे कहा है। दोहावली के अनुसार सेवापन मे इतना अधिक बल है कि प्रभु सेवक के सम्मुख स्वयं हाथ जोड कर खड़े हो जाते हैं --

दियो सुसेवक धरम कपि प्रभु कृतग्य जियँ जानि ।

जोरि हाथ ठाढे भए वरदायक वरदानि ।।११२।।दो०

और कवितावली के अनुसार तुलसी राम के हाथ बिक कर उनके गुलाम हो गये है-

को करि सोचु मरै तुलसी हम जानकी नाथ के हाथ बिकाने ।कवि० १०५
पृ० १६८।

धूत कहौ अवधूत कहौ रजपूत कहौ जौलहा कहौ कोऊ।

काहूकी बेटी सो बेटा न ब्याहब काहू की जाति बिगार न सोऊ।

तुलसी सरनाम गुलामु है राम को, जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ ।

माँगि कै खैबो मसीत को सोइबो, लैबे को एकु न दैबे को दोऊ ।। १०६।पृ० १६६। क

तुलसी ने कवितावली मे यह भी बताया है कि राम के सच्चे दास कौन है २ कवितावली के अनुसार जो कामिनि के काम कटाक्षो से बचे हुए है, तथा जो क्रोध लोभ और अभिमान के भँवर में नहीं फँसे हैं वे ही राम के सच्चे दास हैं -

भौह कमान सँधान सुठान जे नारि विलोकनि बानते बाँचे ।

कोप कृसानु गुमानु अवाँ घट ज्यो जिनको मन आँच न आँचे ।।

लोभ सबै नटके बस ह्वै कपि ज्यो जग में बहु नाच न नाचे ।

नीको है साधु सबै तुलसी पै तेई रघुवीर के सेवक साँचे ।। ११८।।कवि०पृ० १७७।

तुलसी ने दास्य भक्ति का विस्तृत विवेचन करते हुए उसे प्रमुखता दी है। तुलसी के अनुसार जीव ब्रह्म से जो प्रेम करता है वह उनकी सेवा के लिए ही करता है और ब्रह्म जीव की सेवा के वश मे होकर जीव से प्रेम करते हैं।

इस प्रकार तुलसी की भक्ति के प्रेम और सेवा ये दोनो अभिन्न तत्त्व है ।तुलसी ने अपनी साधना मे कर्म का भी उल्लेख किया है ।यद्यपि उन्होने अनेक स्थानो

पर कर्म को भव बन्धन का कारण माना है,[1] तथापि उन्होंने उसकी महत्ता की अवहेलना नही की है। तुलसी के अनुसार भक्त को शुभ कर्म और आश्रम धर्म का पालन करते रहना चाहिए, क्योंकि इससे उन्हें सुख प्राप्त होता है -

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।

चलहि सदा पावहि सुखहि नहि भय सोक न रोग ।।२०।। रा०च०पृ०८६१।।

तुलसी के अनुसार सम्पूर्ण शुभ कर्मों का सबसे बड़ा फल भी यही है कि राम के चरणों में स्वाभाविक प्रेम हो -

तुम्हरेहि भाग राम बन जाही। दूसर हेतु तात कछु नाही ।।

सकल सुकृत कर बड़ फलु एहू। राम सीय पद सहज सनेहू ।।२।। रा०च०पृ०३६३।

अतः भक्त को मन वचन और कर्म से राम की सेवा भक्ति करनी चाहिए-[2]

रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू ।।

सकल प्रकार विकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई ।।३।। पृ०३६४।।

तुलसी के अनुसार कर्म और प्रेमपरक भक्ति मे कोई विरोध नही है। जो व्यक्ति सब कर्म करके उन सबका यही फल माँगते है कि राम के चरणों में हमारा प्रेम हो, उनके हृदय मे राम का निवास रहता है -

सबु करि मागहि एक फलु राम चरन रति होउ।

तिन्ह के मन मदिर बसहु सिय रघुनदन दोउ ।।१२९।। रा०च० पृ०४३७।।

अतः तुलसी का यह मत है कि भक्त को कर्म का परित्याग नही करना चाहिए-

सोचिअ गृही जो मोह बस करइ करम पथ त्याग ।।१७२।पृ०४७०।।

किन्तु भक्त को इन कर्मों की तभी तक आवश्यकता होती है जब तक ज्ञान उत्पन्न नही होता, आत्मज्ञान होने पर कर्म स्वतः नष्ट हो जाते है -[3]

बंस कि रह द्विज अनहित कीन्हे। कर्म कि होहि स्वरूपहि चीन्हे ।पृ०६७५।।

१- वि० प० ५६, ८८, ९७, १०३, १३४।४,१४६,

२- दुरलभ देह पाइ हरिपद भजु, करम बचन अरु ही ते ।।वि०प० १९८।१।।

३- ब्रह्मसूत्र ३।४।१४ -१५-१६-१७, मुण्ड० २।२।८ गीता ४।३७ ।।

इस प्रकार तुलसी की प्रेमपरक दास्य भक्ति इसी को गाढ़भक्ति समझनी । जब तक जीव को गाढ़भक्ति प्राप्त नहीं हो जाती तब तक उसे इसी में लीन होना है ।

तुलसी की भक्ति इसी के साथ साथ ज्ञान और वैराग्य को भी लिए हुए है । इनके अनुसार विविध प्रकार की भक्ति का निरूपण, और क्षमा, दया, आदि भावनाओं से सम्पन्न है, और शम, दम, नियम फूल हैं, ज्ञान फल है, तथा हरि चरणों में प्रेम का होना ही उस ज्ञान रूपी फल का रस है -

भगति निरूपन बिबिध बिधाना । छमा दया दम लता बिताना ।।

सम जम नियम फूल फल ग्याना । हरि पद रति रस बेद बखाना ।।७।।उ० पृ०६६।

विवेक होने पर जब मोह नष्ट होता है तब रघुनाथ के चरणों में प्रेम उत्पन्न होता है -

होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा । तब रघुनाथ चरन अनुरागा ।।

सखा परम परमारथु एहू । मन क्रम बचन राम पद नेहू ।।३।।रा०च०पृ०४०८।

तुलसी के अनुसार यह भक्ति ज्ञान और वैराग्य से युक्त है -

ब्रह्म निरूपन धरम बिधि बरनहि तत्त्व बिभाग ।

कहहि भगति भगवंत कै संजुत ग्यान बिराग ।।४४।। रा०च० पृ० ७६।।

और यह ज्ञान वैराग्य से युक्त हरि भक्ति का मार्ग श्रुति सम्मत भी है -

श्रुति संमत हरि भक्ति पथ संजुत बिरति बिबेक ।

तेहि न चलहि नर मोह बस कल्पहि पंथ अनेक ।।१०० ख पृ०६६०।।

तुलसी की ज्ञान और वैराग्य संयुक्त दास्य भक्ति, भक्ति मार्ग में हठयोग का होना आवश्यक नहीं समझती । तुलसी के अनुसार तो हठ योग भक्ति का विरोधी है -

गोरख जगायो जोगु, भगति भगायो लोगु,

निगम नियोगते सो केलिही छरो सो है ।।कवि०उ०का० ८४।।

इस प्रकार संक्षेप में तुलसी की भक्ति के सम्बन्धमें यह कहा जा सकता है कि मुख्य रूप से वह दास्य भाव युक्त है और दास्य भाव को लिए हुए प्रेम प्रधान है । तुलसी की यह प्रेम प्रधान दास्य भक्ति क्रम ज्ञान और वैराग्य युक्त भी है ।

सूरदास

सूरदास ने अपनी राम सम्बन्धी पदावली में जिस भक्ति भाव का चित्रण किया है वह भी दास्य भाव की है। सूर के [illegible] सीता भरत और हनुमान [illegible] राम के दास्य भाव के भक्त हैं। सीता अपने को राम की दासी [illegible] है और वे राम के चरणों को ही सुख सिन्धु मानती है -

ऐसौ जिय न धरौ रघुराइ ।

तुम-सौ प्रभु तजि मो-सी दासी, अनत न कहूँ समाइ ।।

तुम्हरौ चरन कमल सुख सागर, यह व्रत हौं प्रतिपलिहौं ।

सूर सकल सुख छाँड़ि आपनौ, वन विपदा सँग सहिहौं ।।सूर सागर २९।पृ० ९

भरत राम के सेवक और राम त्रिभुवन के स्वामी है -

हम सेवक, वे त्रिभुवनपति, कत स्वान सिंह बलि खाई ।।३८।।वही पृ०३७।।

और हनुमान जी भी रघुपति के सेवक है जो आज्ञा पालन को ही सेवक का सेवा व्रत मानते है -

जननी । हौ अनुचर रघुपति कौ ।

मति माता करि कोप सरापै, नहि दानव ठग मति कौ ।।७८।।वही पृ०८०।।

अनुचर रघुनाथ कौ, तव दरस काज आयो ।

पवन-पूत दधिस्वरूप, भक्तिन मैं गायौ ।।७९।।वही० पृ०८१।।

सेवक कौ सेवा-पन यतौ आज्ञाकारी होइ ।।९९।पृ० १०५।।

सूर के श्रीराम स्वय सेवकों के सेव्य भाव को स्वीकार करते है। सूर के राम सेवकों के बल से ही स्वामी है -

तूँ सेवक, स्वामी तोहि बल, तो तजि और न मेरै ।

निधरक भए, मिटी दुचिताई, सोवत पहरै तेरै ।।

और वे अपने सेवको की बडाई और प्रशंसा स्वय करते है -

श्रीमुख आपुन करत बड़ाई ।

तूँ कपि आज भरथ की ठाहर, जिहि मिलि बिपति बटाई ।।

इतनौ सुनत दौरि पद टेके अरु मन ही मन फूल्यौ ।।

पिता मरन कौ दुख हमारौ तोही ते सब भूल्यौ ।

जु कछु करिसु प्रताप तुम्हारे, हौ को करिबे लायक ।

सूर सेवकहि इती बड़ाई, तुम त्रिभुवन के नायक ।। १७७। पृ० १८५-८६।। वही

किन्तु सूर की दास्य भक्ति प्रेम मिश्रित है। जानकी का मन, वाणी और कर्म से श्री रघुनाथ के चरणों मे चित्त लगा हुआ है। चाहे सुमेरु हिलने लगे, शेषनाग का मस्तक काँपने लगे और सूर्य पश्चिम से उदय होने लगे, परन्तु सीता मधुरमूर्ति श्रीराम के श्रीविग्रह से प्रेम करना नहीं छोड़ सकती -

मै तो राम चरन चित दीन्हौ।
मनसा, वाचा और कर्मना, बहुरि मिलन कौ आगम कीन्हौ ।।
डुलै सुमेरु, सेष सिर कंपै, पच्छिम उदै करै वासर-पति।
सुनि त्रिजटा तौहूँ नहि छाँड़ौ, मधुर मूर्ति रघुनाथ गात रति ।।७६।।

वही पृ० ७३।।

सूर ने अपनी प्रेमा भक्ति में वियोग पक्ष का भी वर्णन किया है। सूर के अनुसार राम सीता के विरह मे व्याकुल होते है और सीता राम के विरह मे -

निरखत सून भवन जड़ ह्वै रहे, खिन लोटत धर, बपु न सँभारत।
हा सीता, सीता कहि सियपति, उमँगि नयन व जल भरि -भरि टारत ।।
लगत सेष, उर बिलखि जगत गुरु, अद्भुत गति नहि परति बिचारत।
चिंता चित सू सीतापति मोह मेरु दुख टरत न टारत ।।सू०रा०च०पृ०४५।
यह सुनि धावत धरनि चरन की प्रतिमा पथ मे पाई।
नैन नीर रघुनाथ सानि सौ, सिव ज्यौ गात चढ़ाई ।।
कहुँ हिय हार कहुँ कर कंकन, कहुँ नूपुर कहुँ चीर।
सूरदास बन बन बिलोकत बिकल बदन रघुबीर ।।वही० पृ०४८।
बारबार बिसूरि सूर दुख तपन लाग रघनाहू।
ऐसी भाँति जानकी देखी, चंद गह्यौ ज्यौ राहू ।।६६। वही पृ० ६०।।

केशवदास

केशव ने दास्यभाव की भक्ति का विवेचन करते हुए कहा है कि गरुड कुबेर यम राक्षस, दैत्य, देवता, राजा, इन्द्र, शिव सूर्य और चन्द्र आदि सभी राम के दास है -

पच्छिराज जच्छराज प्रेतराज जातुधान।
देवता अदेवता नृदेवता जितै जहान ।।
पर्वतारि अर्ब खर्ब (सर्ब) सर्वदा बखानि।
कोटि कोटि सूर चन्द्र रामचंद्र दासमानि ।।१७। रा०चं० प्रकाश १२।।

और केशव के अनुसार राम दास की थोड़ी-सी सेवा को बड़ा बढ़ा कर वर्णन करते हैं क्योंकि सेवक को बहुत मान्यता देते हैं यथा जिन को कहीं भी और स्थान नहीं मिलता उनको भी वे अपना धाम दे देते हैं -

कछु अनको परम मोदि भक्त राना राग ।
ताव सेवा दास के कहे कोटि गुणिन गान ।।
दरत सब अपलोक ते पै नीक नौकन जोर ।
ठौर जाकहे कहुँ न ताकह देत अपनो ओर ।। रा०च० ३७।३३।।

योगदर्शन मे ध्यान, योग का एक अंग माना गया है -

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यान समाधयोऽष्टावंगानि ।।
पा०योगदर्शन २।२९।।

और योगदर्शन के अनुसार जहाँ चित्त को लगाया जाय, उसका वहीं पर स्थिर रहना ध्यान कहलाता है -

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ।।वही ३।२।।
इस ध्यान के द्वारा जो चित्तवृत्तियाँ हैं वे नष्ट होती है -
ध्यानहेयास्तद्वृत्तय ।।वही २।११।।

केशव ने अपनी दास्यभाव की भक्ति मे योग को स्पष्ट रूप से तो स्थान नहीं दिया है परन्तु उन्होंने योग के एक अंग ध्यान को भक्ति मे आवश्यक स्थान दिया है। केशवके अनुसार निष्कपट भाव से ध्यान करना ही पूजा भक्ति है और यह पूजा अन्य प्राकृतिक देवताओ को छोड़ कर केवल राम की ही करनी चाहिए-

पूजा यहै उरआनु । निर्व्याजि धरिये ध्यानु ।।
यों पूजि घटिका एकु । मनु किय याज अनेक ।।रा०च० २२।३०।।
सत्त चित्त प्रकाश प्रभेव । तेहि वेद मानत देव ।
तेहि पूजि ऋषि रुचि मन्डि । तब प्राकृतनको छाडि ।।२५।२९।

केशव के अनुसार यह पूजा ही योग है और सब प्रकार का कर्म और धर्म है

जिय जान यहई योग । सब धर्म कर्म प्रयोग ।
तेहि ते यही उर लाव । मन अनत कहुं न चलाव।।२५।३१।।

इस पूजा के द्वारा शिव जैसे देव सर्वमान्य हुए है। इसी पूजार्पण स्थिति में वशिष्ठ जी ने अपनी सभी शुभाशुभ वासनायें यश दी थीं -

यह पूजा अद्भुत अग्नि सुनि प्रभु त्रिभुवन नाथ।
सो शुभाशुभ वासना मैं जारि निज हाथ ।।२५।३३।।

और इस प्रकार पूजा भक्ति करके जो जीव उस भक्ति रस की गंगा में अपने सभी सारागिन दुखों को प्रवाहित कर दे, तथा महाकर्ता, महात्यागी और महाभोगी होकर शुद्ध भाव से रमापति में लीन होजाय, तो उस भक्त का सब सम्मान करने लगेंगे -

यहि भाँति पूजा पूजि जाव सु भक्त परम क्हात।
भा गल्ति रस भागं ..... दुस्तिन क्लाय ।।
पुनि महाकर्ता महात्यागी महाभोगी होय।
अति शुद्ध भाव रमै रमापति पूजिहै सब कोय ।।२५।३४।। गा०-प०

अग्रदास

अग्रदास रसिक भक्त है। अग्रदास ने रसिक साधना की रहस्य कहि के रसिक भक्तो के हित के लिये गुरु कृपा से व्यक्त किया है -

श्री गुरु सत अनुग्रह ते लासगोपरवासी।
रसिक जन हित करन रहसि यह ताहि प्रकासी ।।

अग्रदास ने ध्यान मंजरी मे राम के अंग, प्रत्यंग उनके आभूषण, सीता के सौंदर्य और अयोध्या के वैभव का वर्णन किया है। इस ग्रन्थ मे श्रीसीता और श्रीराम का ध्यान करना भी बताया गया है। अग्रदास के अनुसार श्री सीताराम का ध्यान रसिक जनो के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति स्वप्न मे भी प्राप्त नही करसकता -

यह दंपति वर ध्यान रसिक जन नित प्रति ध्यावै।
रसिक बिना यह ध्यान और सपनेहुँ नहि पावै ।।ध्यानमंजरी ह०लि०७१ पृ०५

हृदय मे इस प्रकार का ध्यान करने से जीवन सफल होता है और सीता राम का ध्यान मंगलप्रद एवं सुखकारी है -

यह ध्यान उर धरै स्वय नन सुफल करैवा।
भव चतुरानन आदि चरण वैदे सब देवा ।।७०।।पृ० ५।।

गुनि आगम विधि अर्थ कछुक मनहि गोहायो ।
यह गाल को ध्यान यथा मति बरनि सुनायो ।।७७।।पृ० ६।।
अवध पुरिन को अवधि यदि मुनि स्मृति बरन ।
ध्यान धरै मम बरनँ नाम स्वगन उपहान ।।१२। व०० पृ० ६।।

अग्रदास के मतानुसार मधुर रस का आस्वादन कर लेने पर ज्ञान, योग और तप आदि सभी नीरस लगने लगते है -

अमृत गृत आधार रसिक जन यहि रस पागै ।
ताको निरस ज्ञान जोग तप लागै लागै ।।७७।।व०० पृ० ५।।

इस प्रकार अग्रदास की भक्ति मुख्य रूप से माधुर्यभाव से मण्डित है किन्तु वह दास्य भाव को भी साथ लिए हुए है । अग्रदास राम के चाकर है और उनके सीता-राम, सेवकों को सुख देने वाले है -

हो चाकर रघुनाथ कुंवर के ।
येहि विधि राजत राम अवधपुर अवध विहारि ।
दंपति परम उदार सुजल सेवक सुखकारी ।।६५।।व०० पृ०४।।

अग्रदास के अनुसार जिसके हृदय में हरि चरणों का निवास है उस दास के ऊपर तन मन अर्पण करना चाहिए -

हृदय बसै हरि चरण, जगत डारै कर जोरै ।
अग्र कहै ता दास पर तन मन डारौ वारि ।।कुण्डलिया पृ०६ ।।

और जो हरि के दासों से द्रोह करता है उसका उद्धार कोई नहीं कर सकता -

हरि दासन सो, द्रोह करै नहि को तारै । वही० पृ० २०।।

इस प्रकार अग्रदास की रसिक भाव की भक्ति दास्य भाव को भी साथ लिये हुए है ।

सेनापति

तुलसी की भाँति सेनापति भी राम के दास्य भाव के भक्त है। सेनापति के स्वामी जगत्पति राम है और वे उनके सेवक -

> सेनापति सेवक है साहिब जगतपति
>
> सबै दीप सात हू खंड खंड नवहू। क०रत्ना० पृ० १२२।।

सेवा के बल पर सेनापति सीता से परिचित हैं और लक्ष्मण के प्रिय। विभीषण और हनुमानादि भी उन्हें बड़ा सरदार का सेवक समझ कर सम्मान करते हैं -

> मोहि महाराज आप नीकै पहिचानै, रानी
>
> जानकी सौ जानै, प्रभु लछन कुमार को।
>
> बिभीषन हनूमान तजि अभिमान मेरौ
>
> करै सनमान जानि बड़ौ सरदार को।।वही पृ० ५।२३।।

जिस परब्रम को शेष, रवि, शशि और पवन सेवा से प्रसन्न करते हैं उन्हीं राम ब्र. को सेनापति अपनी वेदना सुनाते हैं, क्योंकि उनको यह विश्वास है कि उनके अतिरिक्त अन्य कोई भी दुखों का हरण करने वाला नहीं है -

> ध्यावै सनकादि जाहि गावैं बेद बंदी सदा
>
> सेवा कै रिझावै सेस, रबि ससि पौन है।
>
> ऐसे रघुबीर कौ अधीर ह्वै सुनावौ पीर
>
> बंधु भीर आगे सेनापति भली भौन है।
>
> साँवरे बरन ताही सारंग घरन बिन
>
> दूजौ दुख हरन हमारौ और कौन है।वही ब ५।३।।

सेनापति कहते हैं कि हे जीव यदि तुझे घन सम्पत्ति की कामना है तो सीता पति की सेवा कर, उन्ही की सेवा से विभीषण ने अविचल राज्य प्राप्त किया था-

> चाहत है घन जौ तू सेउ सिया रमन कौ,
>
> जातैं बिभीषन पायौ राज अबिचल है। वही ५।६।।

सेनापति के अनुसार राम के स्वामित्व में दास की सदैव कुशलता बनी रहती है-

> अरि करि आँकुस बिदार्यौ हरिनाकुस ह,
>
> दास कौं सदा कुसल देत जे हरष हैं।।वही पृ।३६।।

और सेनापति के राम दास की पुकार पर दौड कर देव भक्त का संरक्षण करते है -

ग्राह के गहे ते अति व्याकुल बिहान भयौ,

प्रानपन ताने रह्यौ एक ई उसास कौ ।

तहाँ सेनापति, महाराज बिना और कौन,

आइ ताके माँकरे, सँघाति होइ दास कौ ।।

गाह मै गयद, गरुडध्वज के पूजिबे कौ,

जौ लौं कोई कमल लपकि लेइ पास कौं ।

तौ लौं, ताही बार, नाहि बारन के हाथ पर्यौ,

कमल के लेत हाथ कमला निवास कौं ।।वही पृ।३६।।

नौ लौ दौरि दास की पुकार लाग्यौ दीन-बन्धु

सेनापति प्रभू मनहू की गति मद की ।

जानी न परनी न बखानी जानि कछू ताहि

पानी में प्रगट्यौ किधौ बानि मै गयद की ।।वही पृ।३८।।

सेनापति राम के ऐसे गुलाम है जिन्होने उन्हे अपना सब कुछ अर्पण कर दिया है-

मैं गुलाम मोहि बेचि गुसांई,

तन मन धन मेरा रामजी के नांई ।।वही पृ।११३।।

नामादास

नाभादास रसिक परम्परा के उपासक हैं । इनका रामानन्द की माधुर्य भक्ति मे विश्वास है । इस भक्ति की इन्होने गुरु अग्रदास जी से दीक्षा ली थी -

राम कृपा को रूप, वन्दौ श्री गुरु अग्र पद ।

जिनको सुयश अनूप, दशधासम्पनि घनदाजिमि।।१।। रामाष्टयाम पृ० १।।

नाभादास के अनुसार इस माधुर्य भक्ति का गुरु अग्रदास की कृपा से ही विकास हुआ है-

श्रीअग्रदेव गुरु कृपाते, बाढी नवरस बेलि ।

चढी लहैती लाल छवि, फूली नवल सुकेलि ।।५३।। वही पृ० ४६।।

इस भक्ति रूपी नवरस बेलि का शेष, शारदा, शम्भु और श्रुति भी पार नहीपा सके । इसी भक्ति रूपी बेल की सुगन्ध के लिये नाभादास ने अपने मन को मधुप बनाया है -

शेष शारदा शंभु श्रुति, कहि कहि लहे न पार ।

नाभादास के मतानुसार राम के समान अन्य कोई भी प्रेम को निभाने वाला नहीं है -

सुहृद सुजान सुशील सब, जे प्रभु रूप अपार ।

कोउ न राम सम दूसरो, नेह निबाहनहार ।।१५६।।पृ०८८।।

नाभादास ने राम और सीता के शृंगार, महल की शोभा, रनिवास, पर्यंक, पलंग के वस्त्र, सेज और राम की सखियों का भी वर्णन किया है -

नगन सयन सों विनय करि, बैठारे रघुनाथ ।

प्रान आरती करि सबै, तोरन लिये सनाथ ।।१६५।।पृ०१६।।

राम कृपा मूरति धरि रूपा । सुभग शृंगार बनाइअ अनूपा ।।

इक परदा भीतर लौ गईं । मन्द मन्द धुनि निर्जित भईं ।।१३३।।

मधुर नृत्य नूपुर झमक जमक मकरानि सग ।

मधुर मन धुनि गुनि लगे, जगे केलि रस रग ।।१३०।।पृ०१५।।

यहि विधि जगि जागे रघुराई । पुनि परदा कर दीन उठाई ।।

जागे प्रीतम निशि रग भीगे । परस्पर शृंगार सब कीन्हे ।।

सिय के भूषण लाल सँवारे । लालन के भूषण सिय धारे ।।१ ०।।वही पृ०१६।।

चित्र विचित्र अनेक रचि, सेज सुमन पवारग ।

लाल लाडिली रस भरे, सोवत दोउ इक सग ।।६८।।पृ०१२।।

जब पलक बैठे रस भीने । शयन करन की दिशि रुप कीन्हे ।

पौढ़े लाल प्रिया पद लालत । रस मजरी नपर शिर चालत ।।

रस मजरी चरण तब लागी ।सिय आयसु शिर धरि अनुरागी ।।

अंस परस्पर भुज धरे, निशि दिन पूरण काम ।

प्रेम सखी हिय मे बसे, सियाराम छवि धाम ।।

राजत वर परयक पर सुमन सेज रसरग ।

लाल लाड़िली सुख करन अलिगन हरन अनंग ।।११६।।पृ०१४।।

अगणित भांति भोग की सामा । को कहि सकै रघ बहु नामा ।।पृ०१४ ।

युगल लाल प्रिय कुंज सख, नित नव विमल विहार ।

पच भाव रति युगल मति, वर्णत लहत न पार ।।१२४ ।।पृ० १५।।

नाभादास ने अपनी माधुर्य भक्ति मे परकीया भाव को भी स्थान दिया है-

राम कुँवर छबि देखन लागी । अँग अँग श्याम रूप अनुरागी ।।

त्रिदशवर्ष मुग्धाकोउ श्यामा । मध्यकाम केलि विश्रामा ।।१७५।।

कोउ वय संधि केलि प्रिय नारी । युगल रंग रसु रूप बिहारी ।।

कोउ नित नवल लाल मुख चाहै । यहि विधि प्रीति रीति निरबाहै ।।१७६ पृ०२०।।

इस प्रकार सगुण राम भक्तों के अनुसार राम भक्ति दास्य भाव युक्त है, और उनके अनुसार यह दास्य भक्ति प्रेम, कर्म और ज्ञान परक भी है। कुछ सगुण भक्तों ने माधुर्य भाव का विकास अवश्य किया है, किन्तु दास्यभाव उनमें भी विद्यमान है।

ख भक्ति के आदर्श

ऊपर दिखाया जा चुका है कि सगुण राम भक्तों की भक्ति मुख्य रूप से दास्य भाव युक्त और प्रेम प्रधान है। अपने भक्ति भाव को स्पष्ट करने की दृष्टि से सगुण भक्तों ने जिन आदर्शों को ग्रहण किया है उनका यहाँ वर्णन किया जा रहा है।

गोस्वामी तुलसीदास

तुलसीदास की भक्ति प्रेम प्रधान और दास्यभावयुक्त है। तुलसी ने भक्ति भाव के अन्तर्गत राम नाम को अत्यधिक महत्व दिया है। अतः भक्ति के आदर्शों की दृष्टि से तुलसी की भक्ति के आदर्श दास्य भक्ति के आदर्श, प्रेमा भक्ति के आदर्श और नाम स्मरण के आदर्श - इन तीन वर्गों में विभाजित किए जा सकते हैं।

दास्य भक्ति की दृष्टि से तुलसी ने हनुमान, लक्ष्मण, और जाम्बवान् आदि का आदर्श उपस्थित किया है। राम की सेवा में आनन्द जान कर ब्रह्मा जाम्बवान्, शिव हनुमान और शेष लक्ष्मण के रूप में सेवक बने। अतः तुलसीदास इन आदर्श-भक्तों की वन्दना करते हैं -

> जानि राम सेवा सरस समुझि करब अनुमान।
> पुरुषा ते सेवक भए हर ते भे हनुमान ।।१४३।।दो०व०
> बदउँ लछिमन पद जल जाता। सीतल सुभग भगत सुखदाता ।।
> रघुपति कीरति बिमल पताका। दंड समान भयउ जस जाका ।।३।।
> शेष सहस्रसीस जग कारन। जो अवतरेउ भूमि भय टारन ।।
> सदा सो सानुकूल रह मो पर। कृपासिन्धु सौमित्रि गुनाकर।।४।रा०च०
> पृ०५०।।

तुलसी की राम कथा के प्रायः सभी पात्र दशरथ, जनक, भरत, लक्ष्मण, कौशल्या, विभीषण, विश्वामित्र, अहिल्या, वशिष्ठ, सुग्रीव और जानकी राम की प्रेमा भक्ति के ऐसे आदर्श हैं, जो उनके चरणों में अनन्य अनुराग रखते हैं। पूरा मानस इन्हीं की भक्ति की विभिन्न भावनाओं को व्यक्त करता है। और तुलसी के मतानुसार शिव, नारद, ध्रुव, प्रह्लाद, वाल्मीकि, नल, गणिका, गीध, अजामिल, द्रौपदी, पार्वती इत्यादि ऐसे आदर्श भक्त हैं जो राम नाम के स्मरण से मोक्ष को प्राप्त हुए हैं, इन आदर्श भक्तों में से वाल्मीकि तो उलटा नाम[1] जपने से ही पवित्र हो गए -

महामंत्र जोइ जपत महेसू। कासीं मुकुति हेतु उपदेसू ।।
महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ ।।२।।
नारद जानेउ नाम प्रतापू। जग प्रिय हरि हरि हर प्रिय आपू ।।
नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि भे प्रहलादू ।।२।।
ध्रुवँ सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायउ अचल अनूपम ठाऊँ ।।
सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू ।।३।।
जान आदिकबि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू ।
सहस नाम सम सुनि सिव बानी। जपि जेईं पिय संग भवानी ।।३।।
हरषे हेतु हेरि हर ही को। किय भूषन तिय भूषन ती को ।
नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को ।।४।।
अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ। भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ ।।
कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई ।।४।।
रा० च० मा० पृ० ५२-५८।।

अपराध अगाध भएँ जनतें, अपने उर आनत नाहिन जू ।
गनिका गज गीध अजामिल के गनि पातकपुंज सिराहि न जू ।।
लिएँ बारक नामु सुधामु दियो जेहि धाम महामुनि जाहि न जू ।।
तुलसी ! भजु दीनदयालहि रे ! रघुनाथ अनाथहि दाहिन जू ।।७।। कवितावली उ०का० ७।।

१- करम नाम जलु सुरसरि परई। तेहि को कहहु सीस नहिं धरई ।।
उलटा नामु जपत जगु जाना। बालमिकि भए ब्रह्म समाना ।।४।। रा०च०पृ०४८७।।
तुलना कीजिए आध्यात्म रामायण में -
इत्युक्त्वा राम ते नाम व्यत्यस्ताक्षरपूर्वकम्।
एकाग्रमनसात्रैव मरेति जप सर्वदा ।।८०।।

गीता में कहा गया है कि यदि कोई दुराचारी भी अनन्य भाव से भगवद्भजन करता है तो वह साधु ही माना जाने योग्य है।[1] वह शीघ्र धर्मात्मा हो जाता है तथा शाश्वत शान्ति को प्राप्त करता है। भगवान् कृष्ण का आश्रय लेकर स्त्रियाँ वैश्य और शूद्र आदि कोई भी पापयोनि क्यों न हो वे सब परम गति को प्राप्त होते हैं --

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ।।30।।
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ।।३१।।
मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ।।३२।। गीता अ०

भक्ति के इसी आदर्श का प्रतिपादन करते हुए तुलसी ने कहा है कि भगवान् अत्यन्त नीच प्राणी भी राम को प्राणों के समान प्रिय है -

भगतिहीन बिरंचि किन होई । सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई ।।
भगतिवंत अति नीचउ प्रानी । मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी ।।५।।
रा०च० पृ० ६४७।।

और शूद्र, पामर, श्वपच, शबर, खस, यवन, कोल और किरात भी राम नाम कहते ही परम पवित्र होकर त्रिभुवन में विख्यात हो जाते हैं --

स्वपच सबर खस जमन जड़ पावँर कोल किरात ।
रामु कहत पावन परम होत भुवन बिख्यात ।।१९४।। रा०च०पृ०४८७।।

इस आदर्श की पुष्टि के लिए तुलसी ने ऐसे आदर्श भक्तों का उल्लेख किया है जो निम्न वर्ग के होने पर भी भगवद् भक्ति के द्वारा परम सिद्धि को प्राप्त हुए हैं। तुलसी के अनुसार अहिल्या, शबरी, सुग्रीव, जाम्बवान्, विभीषण, अंगद आदि ऐसे ही भक्त हैं-

कपिपति रीछ निसाचर राजा । अंगदादि जे कीस समाजा ।
बंदउँ सब के चरन सुहाए । अधम सरीर राम जिन्ह पाए ।।१।।
रा०च०पृ० ५१।।

शेष- अहं ते राम नाम्नश्च प्रभावाद्दृशोऽभवम् ।
अद्य साक्षात्प्रपश्यामि ससीतं लक्ष्मणेन च ।।८७।। अयो० का० सर्ग ६।।

१- तजि मद मोह कपट छल नाना । करउँ सद्य तेहि साधु समाना ।। रा०च०पृ०७२७

मैं नारि अपावन प्रभु जग पावन रावन रिपु जन सुखदाई ।
राजीव विलोचन भव भय मोचन पाहि पाहि सरनहिं आई ।।२।।पृ०२०८।।
जातिहीन अघ जन्म महि मुक्त कीन्हि असि नारि ।
महामंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि ।।३८।।रा०च०पृ० ६४१।।
तुलसी के अनुसार रामभक्ति एक भक्ति का है नाना मानते है। तुलसी के राम कहते है -

अधम ते अधम अधम अति नारी । तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी ।।
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता । मानउँ एक भगति कर नाता ।।पृ० ६३६।।

और भगवान् का यह प्रेम कैसा होना चाहिए, इसी लिए तुलसी ने चातक और बादल, सर्प और बीन, मृग और नाद, सर्प और मणि, कमल और सूर्य, मछली और जल तथा मयूरशिखा बूटी और बादल के प्रेम को आदर्श माना है - चातक के अनन्य प्रेम को अभिव्यक्त करने वाले तुलसीदास के दोहे प्रसिद्ध ही है दो०व० २७७, २९५, ३०४, ३०८ ३१२ । सर्प, मृग, कमल, मीन, तथा मयूरशिखा भी तुलसीदास के अनुसार उसी अनन्य प्रेम का आदर्श उपस्थित करते है -

तुलसी जस बानि गुन्यो रीझि समरयो जानि ।।३१३।।
आपु ब्याध को रूप धरि कुहौ कुरंगहि राग ।।
तुलसी जो मृग मन मुरै परै प्रेम पट दाग ।।३१४।।
तुलसी मनि निज दुति फनिहि ब्याधहि देउ दिखाइ ।
बिछुरत होइ न आँधरो ताते प्रेम न जाइ ।।३१५ ।।

जरत तुहिन लखि वनज वन रवि दै पीठि पराउ ।
उदय बिकस अथवत सकुच मिटै न सहज सुभाउ ।।३१६।।
देउ आपने हाथ जल मीनहि माहुर घोरि ।
तुलसी जियै जो बारि बिनु तौ तु देहि कबि खोरि ।।३१७।।

मकर उरग दादुर कमठ जल जीवनजल गेह ।
तुलसी एकै मीन को है साँचिलो सनेह ।।३१८।।

तुलसी मिटै न मरि मिटेहुँ साँचो सहज सनेह ।
मोरसिखा बिनु मूरिहूँ पलुहत गरजत मेह ।।३१९।।

सुलभ प्रीति प्रीतम सबै कहत करत सब कोइ ।
तुलसी मीन पुनीत ते त्रिभुवन बडो न कोइ ।।३२०।दो०व०

तुलसी ने प्रेम की अनन्यता की दृष्टि से लोभी और धन काम कामी और स्त्री के प्रेम का भी आदर्श उपस्थित किया है। तुलसी के अनुसार भक्त को भगवान् वैसे ही प्रिय होने चाहिए जैसे कामी को स्त्री और लोभी को धन प्रिय होता है -

कामिहि नारि पियारि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।

तमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम ।। १३० ए रा०च०पृ०१००२।

सूरदास

सूरदास ने तुलसी के समान ही भक्ति के आदर्शों का उल्लेख किया है। सूर की भक्ति दास्यभाव युक्त और प्रेम प्रधान है। अतः सूर की भक्ति के आदर्शों को भी दास्यभक्ति के आदर्श और प्रेमा भक्ति के आदर्श इन दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। सूर ने उन आदर्श भक्तों का भी वर्णन किया है जो नाम जप के द्वारा मोक्ष को प्राप्त हुए हैं। सूर के अनुसार हनुमान, भरत, लक्ष्मण, केवट और शबरी दास्य भाव के आदर्श भक्त हैं -

तूँ सेवक, स्वामी तोहि बल नो नजि और न मेरे।

निर्भय भए, मिटी दुचिताई, सोवत पहरे तेरे ।।सू०रा०च० पृ० १८६।।

पुनर रघुनाथ कौ नव दरस काज आयौ।

पवन पूत कपिस्वरूप, भक्तिनि मैं गायौ ।।७६।।वही०पृ० ८१।।

देखौ कपिराज। भरत के आए।

मम पाँवरी सीस पर जाके कर अँगुरि रघुनाथ बताए।

छीन सरीर बीर के बिछुरे राज भोग चित तै बिसराए।

तप अरु लघु दीरघता सेवा स्वामि धर्म सब जगहिं सिखाए।।वही०१६५।पृ०२०६

रघुपति। जो न इंद्रजित मारौं।

तौ न होउँ चरननि कौ चेरौ, जौ न प्रतिज्ञा पारौं ।।वही १५७ पृ०१७०।।

मेरी सकल जीविका यामैं रघुपति मुक्त न कीपै।

सूरजदास चढ़ौं प्रभु पाछै रेनु पखारन दीजै ।।२६।।वही पृ०२५।।

मारग मैं हरि कृपा करी है परम भक्त इक जान।

तहँ तै गए जु चित्रकूट कौ जहाँ मुनिन की खान ।।पृ० २३०।।

सबरी परम भक्त रघुपति की बहुत दिनन की दासी।

ताके फल आरोगे रघुपति पूरन भक्ति प्रकासी ।।२१०।।वही०२३५।।

और सीतापति प्रेमा भक्ति के आदर्श हैं -

मैं तो राम चरन चित दीन्हौ ।

मनसा, वाचा, और कर्मना, बहुरि मिलन कौ आगम कीन्हौ ।

डोले सुमेरु, शेष, सिर कंपै पच्छिम उदै करै वासर पति ।

सुनि त्रिजटा तौहूँ नहि छाँडौं मधुर मूर्ति रघुनाथ गात रति ।।७६।।

पृ०७३।।

सूर के अनुसार नारद, सनक, महामुनि, प्रह्लाद, बलि, शिव और बाल्मि आदि ऐसे आदर्श भक्त हैं जो नाम का स्मरण और ध्यान करते हैं । सूर के अनुसार बाल्मीकि के तो उलटा नाम जपने से ही पाप नष्ट हो गये थे --

सूरज । रघुपति सत्रु कहावत २

जाके नाम, ध्यान सुमिरन तै, कोटि जज्ञ फल पावत २

नारदादि, सनकादि, महामुनि सुमिरत मन वच ध्यावत ।

असुर तिलक प्रह्लाद, भक्त बलि, निगम नेति जस गावत ।।१५०।पृ०१६०।

तब सिउ कहेउ राम अरु गोविंद परम इष्ट प्रभु मेरे ।

ब्रह्म वेष तौ करत ध्यान हौ, राम कृष्ण सुत तेरे ।।२००।।

मुनि बाल्मीकि वृपा सानौ ऋषि राम मंत्र फल पायौ ।

उलटौ नाम जपत अघ जात्यौ, पुनि उपदेस कराया ।।पृ० २१२।।

सूर के राम भक्त की जाति पर ध्यान नहीं देते, वे तो युग युग से भक्ति भाव को ही मानते आये हैं । केवल भक्ति का नाता मानने के कारण ही तो शबरी, गीध और अहिल्या आदि पतित जीवों का उद्धार हो सका । सूर के अनुसार शबरी, गीध और अहिल्या आदि निम्न वर्ग के होने पर भी भक्ति के आदर्श रूप हैं -

जाति न काहू की प्रभु जानत । भक्ति-भाव हरि जुग जुग मानत ।।

सबरी आस्रम रघुबर आए । अरघासन दै प्रभु बैठाए ।।

खाटे फल तजि मीठे ल्याई । जूँठे भए सो सहज सुहाई ।।

अंतरजामी अति हित मानि । भोजन कीने स्वाद बखानि ।।

करि दंडवत भई बलिहारी । पुनि तन तजि हरि-लोक सिधारी।।५७।

वही पृ० ५०।।

रघुपति निरखि गीध सिर नायौ।

कहि कै बात सकल सीता की, तन तजि चरन कमल चितलायौ ।।

ी रघुनाथ जानि पन अनों लनै लनरि नाव्हि लगा। ।

सूरदास प्रभु दया-परा लगि नाक्ब हनि है तोत िनाग ।।५६।।वनि पृ०७६।

गगातट आर िराम ।

तहाँ पगाा प पग परसे गातम िषि की वास ।

गर जनाग देव तन धरि के दनि सुदर नीराम ।।

सूरदाा प्रभु पतिन उधारन विड ितो ि नाम ।।८।।पृ० ६।।

प्रेमा भक्ति के लिी सूर ने दो और नब्रा है प्रेम का गादग प्रस्तु किा ह-

सुग निद देरि हम जीवत ी चलो ि गानि ।

सूरदास ी राम चद्र विनु कहा अयोध्या नाना ।।३८।।पृ० ३४।। सू० रा०-प०

वदास

केशवदास ने राम के आदर्श भक्तों में भरत, लक्ष्मण[1], हनुमान, सुग्रीव,नाद,शबरी, क, बाल्मीकि, शिव और ब्रह्मा का उल्लेख किया है। केशव के अनुसार न भक्तों में मण और हनुमान दास्यभाव के भक्त है -

ाति जदपि सुग्निानन्द भक्त । जी सेवक है अनि सूर सक्त ।

रु जदपि अनुज तीनौ समान । पै तदपि भरत भावन निदान ।।७५।।

प्र० १३ रा० 70।।

शासन मेटो जाय क्यों, जीवन मेरे हाथ ।

ऐसी कैसे बूझिये घर सेवक बन नाथ ।।२८।।रा०70 प्र० ६।।

बीरधीर साहसी बली जे विक्रमी श्रमी ।

साधु सर्वदा सुधी पती जपी जे सजर्म ।।

भोग भाग जोग जाग वेगवंत है जिते।

वायुपुत्र मोर काज वारि डारिये तिते ।।४६।

सीता पाई रिपु हत्यो देख्यो तुम अरु गेहु ।

रामायण जय सिद्धि को कपि सिर टीका देहु ।।५०।।रा०च०प्र० २१।।

१- नैन कहौं किधौं तनु मन किधौ तनत्राण
बुद्धि कहौ किधौं बल बिक्रम बखानिये ।
देखिबे कौं एक हैं अनेक भाँति कीन्ही सेवा
लखन के मातु कौन कौन गुण मानिए ।।२१। रा०च० प्र० २२।

इन सुग्रीव विभीषण आद तरु हनुमान ।
तदा भरत शत्रुघ्न सम माताजी मै पान ।। ९८ ।।प्र०२२।
या की फल गल्न जतनन यश पुरुष कहाय ।
बेर जूठे दियो शबरी भक्तियो सुर पाय ।। ७७ ।।प्र० ७७।।
भूपन की तुम हीं धरि देह विदेहन मे बल कीरति गाई ।
केशव भूषण की भवि भूषण भू तनते तनया उपजाई ।। ७४ ।।प्र०५
मरण काल काशी विषै, महादेव गुणधाम ।
जीवन को उपदेशि है रामचन्द्र को नाम ।।६।।
रामनाम के तत्व को जानत वेद प्रभाव ।
गंगाधर के धरणिधर वाल्मीकि मुनिराव ।।१।।प्र० २६।।
रघुनाथ प्रभु स्वयम् को निज भक्ति दी सुख पाय ।
सुरलोक को सुरराज को किय दीह निरमय गाय ।।३१।।प्र० २६।। रा०-च०

दास

अग्रदास के अनुसार ध्रुव, विभीषण, प्रह्लाद, सुनीति और पाण्डव अर्जुन भक्ति के आदर्श हैं -

कर आतुर हरि भजन, राखि काया ध्रुव गावै ।
अग्र कहा लौ थेगरि दीजै फाटै आभ ।।कुण्डलिया ४।पृ०४।।
हरि सनमुख सुख पाइये विमुख भये दुख होइ ।
विमुख भये दुख होइ देख दशग्रीव बिभीषन ।।
देखौ सुरुचि सुनीति, देख प्रह्लाद पितापन ।
देख दक्ष को यज्ञ देख, पृथुवेण विदीता ।।
देख जनक सुत अध देख पाण्डव जग जीता ।
अग्र मुकुर प्रतिबिब मे, अपनी आन न जोईं ।।
हरि सनमुख सुख पाइये, बिमुख भये दुख होइ ।।५३।कुण्डलियां पृ०२६।।

सेनापति .

सेनापति ने भक्ति के आदर्श भक्तों में हनुमान, प्रह्लाद, गज, शिव, शेष, अहिल्या शबरी, और गीध आदि का उल्लेख किया है --

जैसौ हनूमान जान्यौ भजन कौ रस, जिन
राम पै भजन ही तौ जीबौ माँग्यौ अपनौ ।।६६।।र०र०तरंग ४।
पाल्यौ प्रन्लाद गज ग्राह तै उबार्यौ जिन
जाकै नाभि कमल विधाता हू कौ भौन है ।
ध्यावै सनकादि, जाहि गावै बेद बदी जग
सेवा कै रिझावै रवि ससि पौन है ।
ऐसे रघुबीर कौं, अधीर ह्वै सुनावौ पीर
बंधु भीर आगे सेनापति भलै मान है ।।क०र० ५।३।।

बारानसी जाइ, मनिकर्निका अन्हाइ मेरौ
संकर तै राम - नाम पढिबे का मन है ।।४४।।
धीवर कौ सखा है, सनेही बनचरन कौ
गीध हू कौ बंधु सबरी कौ मिहमान है ।
पंडव कौ दूत पारथी है अरजुन हू कौ,
छाती बिप्र लात कौ धरैया तजि मान है ।।
ब्याध अपराध हारी स्वान समाधान कारी,
करै करीदारी बलि हू कौ दरवान है ।।
ऐसौ अवगुनी । ताके सेइबे का तरसत,
जानिये न कौन सेनापति के समान है ।१६।।तरंग ५।। वही

नाभादास

नाभादास ने भक्ति के आदर्श भक्तों में गुरु-अग्रदास और हनुमान को आदर्श माना है -

राम कृपा को रूप, वन्दौ श्रीगुरु अग्रपद ।
जिनको सुयश अनूप, दशधा सम्पति धनदजिमि।।१।। रामाष्टयाम पृ०१
अति प्रभु प्यारे सखाजे, हनुमदादि जे दास ।
दम्पति रुख लखि आगनी, कीन्ही परम हुलास ।।१६८।वही० पृ०२२।

इस प्रकार सगुण राम भक्तों ने भक्ति की भावना की दृष्टि से शिव, ध्रुव, नारद, विश्वामित्र, सनक, सनन्दन, ब्रह्मा, वाल्मीकि, सनत, प्रह्लाद, गज, गणिका, गीध, केवट, अहिल्या, गरुड, शबरी, हनुमान, सुग्रीव, काकभुशुण्डि, अजामिल और मनु शतरूपा प्रभृति भक्तों का उल्लेख किया है। जीव और ब्रह्म में कैसा भक्ति भाव हो, इसके लिए सगुण भक्तों ने जल और मछली, मेघ और चातक, सर्प और मणि, मृग और नाद, चकोर और चद्रमा तथा लोभी और धन आदि के प्रेम को आदर्श प्रस्तुत किये हैं।

'ग भक्ति के साधन

जब भक्ति साधन से साध्य मान ली गयी, तब भक्ति ग्रन्थों में उसके साधनों का उल्लेख होने लगा। सगुण राम भक्तों के अनुसार भक्ति के कौन कौन साधन हैं इसका वर्णन नीचे किया जा रहा है।

तुलसीदास

तुलसीदास के अनुसार भगवद् भक्ति को प्राप्त करने के लिए देह धारण करना अत्यावश्यक है। क्योंकि बिना देह के भजन नहीं किया जा सकता -

सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा। जो तनु पाइ भजिअ रघुबीरा ।।१।।
राम विमुख लहि विधि सम देही। कबि कोविद न प्रसंसहि तेही ।।
राम भगति एहि तन उर जामी। ताते मोहि परम प्रिय स्वामी।।२।।
तजउँ न तन निज इच्छा मरना। तन बिनु बेद भजन नहि बरना ।।
प्रथम मोहँ मोहिं बहुत बिगोवा। राम विमुख सुख कबहुँ न सोवा ।३।।
नर तन सम नहि कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही।
नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी। ग्यान बिराग भगति सुभ देनी ।।५।। वही पृ०९७६। रा०च०

मानव शरीर देह प्राप्त होने पर भक्ति की सिद्धि के लिये भगवान मे विश्वास का होना आवश्यक है। क्योंकि विश्वास के बिना भजन भक्ति नहीं होता-

बिनु बिस्वास भगति नहि तेहि बिनु द्रवहि न रामु।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिश्रामु ।।९० का० रा०च०पृ०९५१। दो०क्र०१२३।

और हरि चरणों मे प्रेम भक्ति उत्पन्न करने के लिए विश्वास के साथ ही वैराग्य

का होना भी आवश्यक है -

मै जानी हरिपद रति नाही । सपनेहुँ नहि बिराग मन माहीं ।।१।

जे रघुबीर चरन अनुरागे । तिन्ह सब भोग रोग सम त्यागे ।।२।।

वि०प० १२७।।

गोस्वामी तुलसीदास ने भक्ति के साधनों मे शंकर भक्ति अथवा शंकर कृपा को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। तुलसी के राम स्वयं अपना एक गुप्त मत बताते हुए कहते हैं कि शंकर के भजन के बिना मनुष्य मेरी भक्तिप्राप्त नहीं कर सकता -

औरउ एक गुपुत मत सबहि कहउँ कर जोरि ।

संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि।।४५।। रा०च०पृ० ६१३।।

अथवा जिस पर शिव-कृपा नहीं होती, वह राम भक्ति प्राप्त नहीं कर सकता -

कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरे । असि परतीति तजहु जनि भोरे ।३।

जेहि पर कृपा न करहि पुरारी । सो न पाव मुनि भगति हमारी ।।

अस उर धारि महि बिचरहु जाई । अब न तुम्हहि माया निअराई ।।४।।वही

पृ० १५१।।

तुलसी के अनुसार शिव जी के चरणों मे निष्कपट प्रेम का होना ही राम-भक्त का लक्षण है -

सिव पद कमल जिन्हहि रति नाहीं । रामहि ते सपनेहुँ न सोहाहीं ।

बिनु छल बिस्वनाथ पद नेहू । राम भगत कर लच्छन एहू ।।३।।वही पृ०१२४।।

और शिव की सेवा करने से भी राम भक्ति उत्पन्न होती है -

सिव सेवा कर फल सुत सोई । अबिरल भगति राम पद होई ।।१।पृ०६६६।

तथा शिव स्वयं भी इसी मत की पुष्टि करते हुए कहते हैं -

रघुपति पुरी जन्म तव भयऊ । पुनि तै मम सेवाँ मन दयऊ ।।

पुरी प्रभाव अनुग्रह मोरें । राम भगति उपजिहि उर तोरें ।।५।रा०च०पृ०६७१।

नारद भक्ति सूत्र के अनुसार ज्ञानादि भक्ति के साधन है तथा भक्ति स्वयं फलरूपा है-

तस्या ज्ञानमेव साधनमित्येके ।।२८।।

अन्योन्याश्रयत्वमित्यन्ये ।।२९।।

स्वयं फलरूपतेति ब्रह्मकुमाराः ।।ना०भ०सू० ३०।।

कबीर के समान तुलसी ने कहा है कि भक्ति स्वतंत्र है उसे अन्य अवलम्बकी अपेक्षा नहीं है, ज्ञान और विज्ञान भक्ति के आधीन हैं है -

सो सुतंत्र अवलंब न आना । तेहि आधीन ग्यान बिग्याना ।।२।।रा०च०पृ०६१५

तुलसी के अनुसार भक्तिको प्राप्त करने के लिए ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम करना चाहिए और श्रुति के अनुसार अपने अपने कर्मों वर्णाश्रम धर्म का पालन करते हुए रहना चाहिए -[1]

भगति कि साधन कहउँ बखानी । सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी ।

प्रथमहिं बिप्र चरन अति प्रीती । निज निज कर्म निरत श्रुति रीती।।३।।

रा०च० पृ० ६१५।।

श्रुति प्रतिपादित कर्मों को करते रहने से विषयों में वैराग्य होता है, और वैराग्य उत्पन्न होने पर भक्ति-धर्म में प्रेम होता है, तदनन्तर श्रवणादिक नौ प्रकार की भक्तियाँ दृढ होकर साधक के मन में आराध्य की सीताजी के प्रति अत्यन्त प्रेम निष्पन्न करती हैं -

एहि कर फल पुनि विषय बिरागा । तब मम धर्म उपज अनुरागा ।।

श्रवनादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं । मम लीला रति अति मन माहीं ।।४।।पृ०६१५।।वही

तुलसी के राम के अनुसार जिसका संतो के चरणों में अत्यन्त प्रेम होता है, और जो मन वचन कर्म से भजन में दृढ़ रहता है, तथा मुझको ही गुरु माता, पिता पति देव बन्धु आदि सब कुछ मानता है, और मेरी सेवा में दृढ़ रहता है, एवं मेरा गुण-गान करते समय जिसका शरीर पुलकित और वाणी गद्गद हो जाती है, तथा नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगते हैं, तथा जिसके काम दम, मदादि नष्ट होजाते हैं उसके वश में मैं मेरी भक्ति सदैव रहता हूँ -

---

१- भक्ति ग्रन्थों में भी कर्म की आवश्यकता पर बल दिया है -

लोके वेदेषु तदनुकूलाचरण तद्विरोधिषूदासीनता ।ना०भ०सू०११।।

भवतु निश्चयदार्ढ्यादूर्ध्वं शास्त्ररक्षणम् ।१२।।

अन्यथा पातित्याशङ्कया ।।१३।।

लोकोऽपि तावदेव किन्तु भोजनादिव्यापारस्त्वाशरीरधारणावधि। १४।ना०भ०सू०

गीता १६।२३-२४।।

संत चरन पंकज अति प्रेमा । मन क्रम बचन भजन दृढ नेमा ।।

गुरु पितु मातु बंधु पति देवा । सब मोहि कहँ जानै दृढ सेवा ।।५।।

मम गुन गावत पुलक सरीरा । गदगद गिरा नयन बह नीरा।

काम आदि मद दंभ न जाकें । तात निरंतर बस मैं ताकें ।।६।।पृ०६१५।।

पुन तुलसी के राम के अनुसार ` जिसकी मन वचन और कर्म से मेरी ह` गति है और जो निष्काम भाव से मेरा भजन करता है उसके हृदय कमल मे मै सदा विश्राम करता हूँ -`

बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निष्काम ।

तिन्हके हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम ।।१६।।वही पृ०६१६।।

इस प्रकार तुलसी के रामने भक्ति के विविध साधनो का उल्लेख किया है ।

भक्तिग्रन्थो मे अनुरक्ति के कुछ प्रकार पराभक्ति के अंगो या साधनो के रूप मे ग्रहण किए गए है ।शाण्डिल्यभक्ति सूत्र मे यह कहा गया है कि गौणी भक्ति समाधि की सिद्धि का साधन है -

गौण्या तु समाधिसिद्धि ।।शा०भा०सू० २०।

यह गौणी साधन भक्ति पराभक्ति की प्राप्ति मे हेतु मानी गयी ह -

भक्त्या भजनोपसहारागौण्या परायैतद्धेतुत्वात् ।।वही ५६।।

शाण्डिल्य भक्ति सूत्र ५७,५८,५६,६०,६१,६२,६३,६४,७०,७१,७२,७३,७४ और गीता अध्याय ६।१४-२८-२६,११।३६ के अनुसार श्रवण,कीर्तन, वन्दन,अर्पण,स्मरण,नमस्कार इत्यादि पराभक्तिके अंग माने गये ह । कहा गया है कि इन साधनो से पराभक्तिकी प्राप्ति होती है[1] । इन साधन वर्ग के अन्तर्गत आने वाली सभी अनुरक्तियो का तुलसी ने भक्ति के साधनों के रूप मे उल्लेख किया है । नीचे तुलसी के अनुसार इन का विवेचन किया जा रहा है ।

१ साधन भक्ति

साधन भक्ति में भक्त वाह्य साधनो के द्वारा साध्य की ओर बढता है । अंत मे इस साधन प्रधान भक्ति का साध्य भक्ति मे लय हो जाता है । इस साधन भक्ति का वर्णन करते हुए, उसके परिणाम स्वरूप राम के चरणो में उत्पन्न होने वाली निरन्तर प्रीति को उस तुलसीदास उसका सुंदर फल कहते है -

जप तपनियम जोग निज धर्मा । श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा ।।

ग्यान दया दम तीरथ मज्जन । जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन ।।१।।

१- इत्थं हरेर्भगवतो रुचिरावतार वीर्याणि बालचरितानि च शन्तमानि ।

आगम निगम पुरान अनेका । पढि सुने नर फल प्रभु एका ।।
तव पद पंकज प्रीति निरंतर । सब साधन कर यह फल सुंदर ।।७।।रा०च०पृ०६१५।

२ मर्यादा वैधी भक्ति

मर्यादा और राग के आधार पर साधन भक्ति के वैधी और रागानुगा ये दो भेद किये जाते हैं । शास्त्रानुसार की जाने वाली साधन भक्ति वैधी मर्यादा भक्ति है। तुलसी के अनुसार शास्त्रानुकूल पथ पर चलने मे सब प्रकार का सुख मिलता है -

जो तेहि पथ चलै मन लाई । तौ हरि काहे न होहिं सहाई ।
जो मारग श्रुति साधु दिखावै । तेहि पथ चलत सबै सुख पावै ।।
१२।।वि०प० पृ०२२०।।

३ रागानुगाभक्ति

लौकिक जीवन मे जिन साधनो से प्रेम उत्पन्न होता है, उनका ईश्वरीय प्रेम की प्राप्ति के लिये उपयोग करना रागात्मिका भक्ति है । तुलसी कहते हैं -

तनु सकोचु मन परम उछाहू । गूढ प्रेमु लखि परइ न काहू ।
जाइ समीप राम छबि देखी । रहि जनु कुँअरि चित्र अवरेखी ।।२।।
चतुर सखी लखि कहा बुझाई । पहिरावहु जयमाल सुहाई ।।
सुनत जुगल कर माल उठाई । प्रेम बिबस पहिराइ न जाई ।।३।रा०च०पृ०२५१
गौतम तिय गति सुरति करि नहि परसति पग पानि ।
मन बिहसे रघुबंस मनि प्रीति अलौकिक जानि ।।२६५।।पृ०२५२।।
सुमिरि सीय नारद बचन उपजी प्रीति पुनीत ।।२२९।पृ० २२३।।वही

४ गौणी भक्ति

वैधी और रागानुगा भक्ति गौणी भक्तिके अन्तर्गत आती है और यह गौणी-भक्ति पराभक्ति की प्राप्ति मे सहायक मानी गयी है । तुलसी ने सभीसाधनो और विधि विधानो का फल अंत हरि भक्ति माना है -

---

शेष- ~~अन्यत्र-हरेर्भवतः~~
अन्यत्र चेह च श्रुतानि गृणन् मनुष्यो भक्ति परा परमहंसगतौलभेत ।।भा०११।३१।२८
अविस्मृति कृष्णपदारविन्दयो क्षिणोत्यभद्राणि शम तनोति च ।
सत्वस्य शुद्धि परमात्मभक्ति ज्ञान च विज्ञानविरागयुक्तम् ।।भा०१२।१२।५४

पहँ लगि साधन वेद बखानी । सब कर फल हरि भगति भवानी ।।रा०च०पृ०६६७ ।।

गौणी भक्ति के गुण भेद से तामसी, राजस और सात्विक से तीन भेद किये गए है ।

५ तामसी भक्ति काम, क्रोध, हिंसा, दम्भ आदि के साथ की जाने वाली भक्ति तामसी[1] है । तुलसी कहते है -

खल मनुजाद द्विजामिष भोगी ।पावहिं गति जो याचत जोगी ।
उमा राम मृदुचित करुनाकर । बयर भाव सुमिरत मोहि निसिचर।।२।।
देहि परमगति सो जियँ जानी । अस कृपाल को कहहु भवानी ।
अस प्रभु सुन न भजहिं भ्रम त्यागी ।नर मतिमंद ते परम अभागी ।।३।।रा०च०पृ०७८१।।
सुर रंजन भंजन महि भारा । जौ भगवंत लीन्ह अवतारा ।।
तौ मै जाइ बैरु हठि करऊँ ।प्रभु सर प्रान तजे भव तरऊँ।।२।।
होइहि भजनु न तामस देहा । मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा ।
जौ नर रूप भूपसुत कोऊ । हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ।।३। पृ०६२२।।
राम सरिस को दीन हितकारी।कीन्हे मुकुत निसाचर झारी ।।
खल मल धाम काम रत रावन । गति पाई जो मुनिवर पाव न ।।५।।रा०च०पृ०८५७।।

६ राजसी भक्ति कामनासहित प्रतिमा पूजन के रूप में की जाने वाली भक्ति राजसी है ।
तुलसी कहते हैं ----

विनय प्रेम बस भई भवानी । खसी माल मूरति मुसुकानी ।।
सादर सियँ प्रसादु सिर धरेऊ।बोली गौरि हरषु हियँ भरेऊ।।३।।
सुनु सिय सत्य असीस हमारी।पूजिहि मन कामना तुम्हारी ।।
नारद बचन सदा सुचि साचा।सो बरु मिलिहि जाहि मनु राचा।।३।रा०च०पृ०२२८।।

७ सात्विकी भक्ति पाप नाश के लिए कर्तव्य भाव से की जाने वाली भक्ति सात्विकी है ।
तुलसी कहते हैं -

मन मेरे मानिहि सिख मेरी । जो निजु भगति चहै हरि केरी।।१।।
उर आनहि प्रभु कृत हित जेते । सेवहि ते जे अपनपौ चेते ।।२।।
दुख सुख अरु अपमान बड़ाई । सब सम लेखहि विपति बिहाई ।।३।।
सुनु सठ काल ग्रसित यह देही । जनि तेहि लागि बिदूषहि केही ।।४।।
तुलसिदास बिनु असि मति आये । मिलहि न राम कपट लौ लाये ।।५।।वि०प०१२६।।

१- कामाद् द्वेषाद् भयात्स्नेहाद्र यथा भक्त्येश्वरे मन ।
आवेश्य तदघं हित्वा बहवस्तद्गतिं गत ।।भा०७।१।२७-२९ ।।

गौणी भक्ति के भाव, गुण, ज्ञान वैराग्य योग कर्म के आधार पर भी भेद किये गए हैं।

८ भावभक्ति

तुलसी के अनुसार मुनि भरद्वाज की भक्ति, भाव भक्ति है -

सुनि मुनि वचन रामु सकुचाने। भाव भगति आनंद अघाने।।
तब रघुबर मुनि सुजसु सुहावा। कोटि भाँति कहि सबहि सुनावा।।१।
रा०च० पृ० ४९६।

९ गुणप्रधानाभक्ति

गुणप्रधान अथवा गुण मिश्रा सगुण भक्ति का वर्णन करते हुए तुलसी कहते हैं-

चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान।।३५।।रा०च०पृ०६५०।।
परिहरि मनहि गुनग्राम राम के उर अनुराग बढ़ाउ।
तुलसिदास अनयास राम पद पाइहै प्रेम पसाउ।।१०।।वि०प०१००।।

१० ज्ञानमिश्रा

तुलसीदास ज्ञानमिश्रा भक्ति का वर्णन करते हुए कहते हैं -

ब्रह्म निरूपन धरम विधि बरनहि तत्व विभाग।
कहहिं भगति भगवत कै संजुत ग्यान बिराग।।४४।रा०च० पृ०७८।।

११ वैराग्यमिश्राभक्ति

तुलसी के अनुसार सुग्रीव की भक्ति वैराग्यमिश्रा है -

सुख संपति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहउँ सेवकाई।।८।।
ए सब राम भगति के बाधक। कहहि संत तव पद अवराधक।।
अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँति। सब तजि भजनु करौ दिन राती।।११।
रा०च० पृ० ६६०-६६१।।

१२ कर्ममिश्राभक्ति

उन भक्तो की भक्ति कर्ममिश्रा है जो अपने सभी कर्मों का एक मात्र फल यही चाहते है कि ईश्वर के चरणो में प्रेम भक्ति हो। तुलसी कहते हैं -

सबु करि मागहि एक फलु राम चरन रति होउ।
तिन्हके मन मंदिर बसहु सिय रघुनदन दोउ।।१२९।रा०च०पृ०४३७।।

नवधाभक्ति

अनन्य प्रेम के उत्पन्न करने के नवधा-भक्ति साधन मात्र है। अत नवधा-भक्ति भी साधन भक्ति के अन्तर्गत ही आती है। तुलसी ने साधन भक्ति के अन्तर्गत नवधा भक्ति का भी विवेचन किया है।

१ श्रवणभक्ति

तुलसी के अनुसार जो मनुष्य विश्वास मान कर इस मानस कथा को निरन्तर सुनते हैं वे बिना प्रयास के ही मुनिदुर्लभ हरि भक्ति को प्राप्त कर लेते हैं -

मुनि दुर्लभ हरि भगति नर पावहि बिनहि प्रयास।
जे यह कथा निरन्तर सुनहि मानि बिस्वास ।।१२६।।रा०द०पृ०६६७

तुलसी के शिव कहते हैं कि राम के चरणों में प्रेम भक्ति अथवा मोक्ष कथा श्रवण से प्राप्त होती है -

राम चरन रति जो चह अथवा पद निर्बान।
भाव रहित सो यह कथा करउ श्रवन पुट पान ।।१२८।।पृ० ६६६।।

तुलसी के अनुसार राम कथा के सात कांड राम भक्ति की प्राप्ति के सात मार्ग हैं -

एहि महँ रुचिर सात सोपाना। रघुपति भगति केर पथ ना ।२। पृ०६६६।

२ कीर्तनभक्ति

तुलसी ने स्पष्टत कीर्तन शब्द का प्रयोग नहीं किया है। तुलसी ने कीर्तन के स्थान पर भजन शब्द का प्रयोग किया है। तुलसी के अनुसार इस कलियुग मे योग, यज्ञ जप, तप, व्रत और पूजा आदि कोई दूसरा साधन नहीं है। कलियुग मे तो बस राम[1] का स्मरण, गायन 'कीर्तन और राम के गुणों का श्रवण करना चाहिए -

एहि कलिकाल न साधन दूजा। जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा।
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि ।।३।।पृ० १०००

१- भागवत ७। ६।७७' माहात्म्य प्रकरण

कलेर्दोषनिधे राजन्नास्ति ह्येको महान् गुण ।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंग पर व्रजेत।।भा०१२।३।५१।।
हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ।।नारदपुराण ।१।४१।११५।।

तुलसी के भरत प्रयागराज तीर्थ से यही वर माँगते है कि प्रत्येक जन्म में मेरा राम के चरणों में अनुराग हो -

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरवान ।
जनम जनम रति राम पद, यह बरदानु न आन ।।२०४। वही पृ०४९६ ।।

५ अर्चनभक्ति

गीता में यह कहा गया है कि जो भक्त पत्र, पुष्प, फल और जल आदि भगवान् को प्रेम से अर्पण करता है, उसके अर्पण किये गये पदार्थों को भगवान् प्रेम सहित खाते हैं -

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।।गीता ९।२६।।

गीता के अनुरूप तुलसी का शबरी निषाद और विश्वामित्र क० कंद, मूल, फल आदि से भगवान् राम की अर्चन भक्ति करते है और राम उनके भेंट किये गये पदार्थों को प्रेम सहित खाते हैं -

कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहुं आनि ।
प्रेम सहित प्रभु खाए बारबार बखानि ।।३४।।रा०च०पृ० ६३९।।

६ वन्दनभक्ति

यजुर्वेद के अनुसार छोटे, बड़े पशु पक्षी आदि सबको नमस्कार करना चाहिए -

नमोज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापर जाय चनमो ।
मध्यमाय चाप्रगल्भाय चनमो जघन्याय च बुध्न्याय च ।।यजु० १६।३२ ।।

इसी के समान तुलसी ने मानस के प्रारम्भ मे शिव, पार्वती, बाल्मीकि, हनुमान, सीता, गुरु, ब्राह्मण, सत, दुष्ट, दुर्जन, जड, चेतन, देवता, दैत्य, मनुज, नाग, पक्षी, प्रेत, पितर, गन्धर्व, किन्नर, निशाचर, छोटे बड़े इत्यादि सब की वन्दना की है।तुलसी के भरत राम के चरण कमलों की वन्दना करते है -

प्रभु पद पदुम बंदि दोउ भाई । चले सीस धरि राम रजाई ।।४।।रा०च० पृ०५८७।।

७ दास्यभक्ति अपने को सेवक और आराध्य को स्वामी समझ कर उससे अनुराग करना दास्य भक्ति है। तुलसी के हनुमान की भक्ति दास्य भक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण है -

---

१- यह सुधि गुंह निषाद जब पाई । मुदित लिए प्रिय बंधु बोलाई ।।
लिए फल मूल भेंट भरि भारा । मिलन चलेउ हियँ हरषु अपारा।१।
करि दंडवत भेंट धरि आगें । प्रभुहि बिलोकत अति अनुरागे ।।
सहज सनेह बिबस रघुराई । पूँछी कुसल निकट बैठाई ।।२।।रा०च०पृ०४०३-४०४।।
आयुध सर्व समर्पि कै प्रभु निज आश्रम आनि ।
कंद मूल फल भोजन दीन्ह भगति हित जानि।२०९। रा०च० पृ०२०७ ।।

मारुत सुत तब मारुत करई । पुलक बपुष लोचन जल भरई ।।
हनूमान सम नहि बड़भागी । नहि०कोउ राम चरन अनुरागी ।।४।।
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई । बार बार प्रभु निज मुख गाई ।।५।रा०च०पृ०६१६।।

°८ सख्यभक्ति

भक्ति का भगवान् में सख्यभाव का होना ही सख्य भक्ति है । तुलसी के अनुसार सुग्रीव का राम से सख्य भाव प्रेम है -

तब हनुमंत उभय दिसि की सब कथा सुनाई ।
पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढाइ ।।४।।
कीन्हि प्रीति कछु बीच न राखा । लछिमन राम चरित सब भाषा।।
कह सुग्रीव नयन भरि बारी । मिलिहि नाथ मिथिलेसकुमारी ।।१।।रा०च०पृ०६५७।

°९ आत्मनिवेदन भक्ति

भक्त का आराध्य से आत्मनिवेदन करना आत्मनिवेदन भक्ति है । आत्मनिवेदन भक्ति से सम्बन्धित कथन विनयपत्रिका मे भरे पड़े हैं।यथा -

बिनय करौं अपभयहु तें, तुम्ह परमहितैं हौ ।
तुलसिदास कासों कहै, तुमही सब मेरे प्रभुगुरु मातु पितु हौ ।।३।।
अपराधी तउ आपनो तुलसी न बिसरियै ।
टूटियो बाँह गरे परै फूटेहु बिलोचन पीर होत हित करियै ।।४।।वि०प०२७०-७१।

इस प्रकार तुलसी ने भागवत के अनुसार नवधा भक्ति का उल्लेख किया है । तुलसी ने भागवत की नवधा भक्ति से कुछ भिन्न रूप मे भी नवधा भक्ति का वर्णन किया है । तुलसी के राम शबरी की नवधा-भक्ति बताते हुए कहते हैं -

नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं । सावधान सुनु धरु मन माहीं ।।
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा । दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ।।४।।
गुर पदपकंज सेवा तीसरि भगति अमान ।
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान ।।३५।।
मंत्र जाप ममदृढ़ बिस्वासा । पंचम भजन सो बेद प्रकासा ।।
छठ दम सील बिरति बहु करमा । निरत निरन्तर सज्जन धरमा ।।१।।

सातवँ सम मोहि मय जग देखा । मोतें संत अधिक करि लेखा ।
आठवँ जथालाभ संतोषा । सपनेहुँ नहि देखइ परदोषा ।।३।।
नवम सरल सब सन छलहीना । मम भरोस हियँ हरष न दीना ।।रा०च०पृ०६५०।
तुलसी ने उपर्युक्त नवधा भक्ति के जितने भी गुण बताये हैं वे सब राम प्रेम की प्राप्ति के साधन मात्र होते हैं । तुलसी के अनुसार यह नवधा भक्ति साधन भक्ति के अन्तर्गत हो जाती है । तुलसी के राम इसे स्पष्ट करते हुए कहते हैं -

नव महुँ एकउ जिन्ह कें होई । नारि पुरुष सचराचर कोई ।।३।।
सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें । सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें ।।
जोगि बृंद दुरलभ गति जोई । तो कहुँ आजु सुलभ भइ सोई ।।४।।रा०च०पृ०६४०-४१

शरणागति भक्ति

नवधा भक्ति के साथ ही शरणागति भाव भी परा भक्ति की प्राप्ति में सहायक माना गया है । तुलसी के अनुसार विभीषण राम की शरण में जाकर ही राम का अनन्य प्रेम और शिव जी को प्रिय लगने वाली पवित्र भक्ति प्राप्त करता है -

सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ । जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ ।।
जौं नर होइ चराचर द्रोही । आवै सभय सरन तकि मोही ।।१।।
तजि मद मोह कपट छल नाना । करउँ सद्य तेहि साधु समाना ।।
जननी जनक बंधु सुत दारा । तनु धनु भवन सुहृद परिवारा ।।२।।
सब कै ममता ताग बटोरी । मम पद मनहि बाँध बरि डोरी ।।
समदरसी इच्छा कछु नाहीं । हरष सोक भय नहि मन माहीं ।।३।।
अस सज्जन मम उर बस कैसें । लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें ।।
तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरें । धरउँ देह नहि आन निहोरें ।।४।।रा०च०पृ०७२७
सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम ।
ते नर प्रान समान मम जिन्ह के द्विज पद प्रेम ।।४८।।
सुनु लंकेस सकल गुन तोरें । तातें तुम्ह अतिसय प्रिय मोरें ।
राम बचन सुनि बानर जूथा । सकल कहहिं जय कृपा बरूथा ।।१।।
सुनत बिभीषनु प्रभु कै बानी । नहि अघात श्रवनामृत जानी ।।
पद अंबुज गहि बारहिं बारा । हृदयँ समात न प्रेमु अपारा।।२।पृ०७२७।।

सुनहु देव सचराचर स्वामी । प्रनतपाल उर अन्तरजामी ।
उर कछु प्रथम बासना रही । प्रभु पद प्रीति सरित सो बही ।।३।।
अब कृपालु निज भगति पावनी । देहु सदासिव मन भावनी ।।
एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा । मागा तुरत सिंधु कर नीरा ।।४।रा०च०पृ०७२८।।

इस प्रकार शरणागति भक्ति पराभक्ति की साधन है । भक्तिग्रन्थों के अनुसार शरणागति भक्ति ६ प्रकार की मानी गयी है । तुलसी ने शरणागति के इन प्रकारों का वर्णन किया है ।

१ प्रतिकूल का परित्याग

शरणागति भक्ति में प्रतिकूल विचारों का वर्जन आवश्यक माना गया है ।तुलसी कहते हैं -

वरु संग सुसील सुजनन सो, तजि कूर, कुपंथ, कुसाथहिरे ।२९।।
सुत,दार,अगारु,सखा,परिवारु बिलोकु महा कुसमाजहिरे ।
सबकी ममता तजिकै समता सजि संतसभाँ न विराजहिरे ।
नरदेह कहा करि देखु बिचारु बिगारु गँवार न काजहि रे ।
जनि डोलहि लोलुप कूकरु ज्यों तुलसी भजु कोसलराजहिरे ।।३०।।क०व०पृ०१२३।

२ अनुकूल का संकल्प

शरणागति में भगवान् के अनुकूल रहने का संकल्प किया जाता है । तुलसी के अनुसार सुमित्रा लक्ष्मण को सब प्रकार से राम के अनुकूल रहने के लिए कहती है -

रागु रोषु इरिषा मदु मोहू । जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू ।
सकल प्रकार बिकार बिहाई । मन क्रम बचन करेहु सेवकाई ।।३।।पृ०३६४।।

तुलसी स्वयं राम के चरणों में रहने का व्रत लेते हैं -

आपसे कहुँ सौंपिये मोहि जो पै अतिहि घिनात ।
दासतुलसी और बिधि क्यों चरन परिहरि जात ।।६।वि०प०२१७।।

३ रक्षण विषयक विश्वास

प्रपत्ति में भक्त को यह विश्वास रहता है कि शरण जाने पर भगवान् अवश्य रक्षा करेंगे । भक्त भगवान् के रक्षण विषयक विश्वास से परिचित रहता है । तुलसी कहते हैं -

बालि बली बलसालि दलि सखा कीन्ह कपिराज ।

तुलसी राम कृपालुको बिरद गरीब निवाज ।।१५८।दो०ब०

कहा बिभीषन लै मिल्यो कहा बिगार्यौ बालि ।

तुलसी प्रभु सरनागतहि सब दिन आए पालि ।।१५६।दो०ब०

तुलसी के राम कहते हैं कि 'मेरा व्रत है शरणागत के भय को दूर करना है'। मैं शरण मे आये हुए करोड़ो ब्राह्मणो के हत्यारे को भी नही त्यागना -

सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी । मम पन सरनागत भयहारी ।।४।।

कोटि बिप्र बध लागहि जाहू । आएँ सरन तजउँ नहि ताहू ।।

सनमुख होइ जीव मोहि जबही । जन्म कोटि अघ नासहि तबही ।।१।रा०च०

पृ० ७२३-२४।।

४ गोप्तृत्ववरण

गोप्ता भगवान् का वरण करना गोप्तृत्ववरण कहलाता है । तुलसी केवल राम का ही वरण करते है -

भरोसो जाहि दूसरो सो करो ।

मोको तो राम को नाम कलपतरु कलि कल्यान फरो ।।२२६।।

तुलसी है बावरो सो रावरोई, रावरी सौं,

रावरेऊ जानि जियँ कीजिए जु अपनो ।

जानकीरमन मेरे । रावरे बदनु फेरे

ठाउँ न समाउँ कहाँ, सकल निरपने ।।७८।।कवि०पृ०१५१।।

'५' आत्मनिक्षेप आत्मसमर्पण

शरणागति मे अपने को भक्तपूर्ण रूप से भगवान् को सौंप देता है । तुलसी अपनी अच्छी बुरी स्थिति का ध्यान न करते हुए अपने को राम केअर्पण कर देते है-

जैसो तैसो रावरो केवल कोसलपाल ।

तौ तुलसी को है भलो तिहूँ लोक तिहुँ काल ।।दो०ब० ७४।।

और वे पूर्ण रूप से राम के ऊपर निर्भर है -

करिय सँभार कोसलराय ।

और ठौर न और गति अवलंब न नाम बिहाय ।वि०प०२२०।१।।

६ कार्पण्य

आत्मग्लानि, हीनता, दीनता आदि सब भाव कार्पण्य के अन्तर्गत आते हैं। ये सभी भाव तुलसी की प्रपत्ति में परिपक्व रूप में मिलते है। तुलसी के राम दीन, हीन, पापी, अशक्त, अज्ञानी राक्षस पशु पक्षी, आदि सभी को मोक्ष प्रदान करके कार्पण्य भाव को ही पुष्ट करते हैं[1]। तुलसी के अनुसार गज, अहिल्या, शबरी, केवट जटायु, अजामिल, गणिका, पिंगला, कोल, किरात, काकभुशुण्डि पूतना, सुदामा, इत्यादि भक्त कृपण भक्त ही है। ये केवल दीन हीन अशक्त और अज्ञानी होने पर भी परमगति प्राप्त करते ह।

तुलसी के अनुसार जीव स्वयं भी कृपण ही ह। तुलसी ने जीव को दगाबाज छोटा, खोटा, गुलाम, मंद, अपराधी, दीन, हीन, मलिन, पापी, कुटिल, अनाथ, आर्त, भयभीत शठ, मूढ़ खली, गुणहीन आलसी भाग्यहीन लालची, रोगी, साधनहीन किंकर, कपटी, विषयी और दरिद्र प्रभृति कहा है[2]। तुलसी राम से कार्पण्य भाव का सम्बन्ध ही स्थापित करते है -

मैं हरि पतित पावन सुने।
मैं पतित तुम पतित पावन दोउ बानक बने ।। वि०प० १६०।१।।
तुम सम दीनबन्धु न दीन कोउ मो सम, सुनहु नृपति रघुराई।
मोसम कुटिल मौलि मनि नहिं जग, तुम सम हरि न हरन कुटिलाई।।
हौ मन बचन कर्म पातक रत, तुम कृपालु पतितन गतिदाई।
हौं आरत आरति नासक तुम, कीरति निगम पुराननि गाई।।
हौ सभीत तुम हरन सकल भय कारन कवन कृपा बिसराई।।३।।
तुम सुखधाम रामश्रम भजन हौ अति दुखित त्रिबिध श्रम पाई।।
यह जिय जानि दास तुलसी कहँ राखहु सरन समुझि प्रभुताई।।४।।
वि०प० २४२।।

तुलसी के इस पदमें कार्पण्य के सभी भाव आ गये हैं।

१- रा०च०मा०पृ०२०३, २०६, ६२३, ६२५, ६२६, ६३०, ६३८, ६४१, ६६५, ६८६, ७३४, ७८१, ७६२, ८०५, कवि० पृ० १०८, १०६, ११५, ११६, १४१, १४७, वि०प० पृ०३४२ १७१, ३४४।

२- रा०च० मा० पृ० ५४७, कवि० पृ०, १०८ १०६, १४७, वि०प० ३६५, ३६२, ३६६ ४१२, १३६, १४४, १६२, १७१, १६३, ३८०, ३८३, २४७,।।

इस प्रपत्ति भक्ति के कायिकी वाचिकी और मानसी ये तीन भेद किये जाते हैं। डा० बद्रीनारायण श्रीवास्तव ने यह माना है कि तुलसी ने प्रपत्ति के कायिकी, वाचिकी और मानसी भेदों का कोई स्पष्ट भेद नहीं किया है।[1] डा० बद्रीनारायण श्रीवास्तव का यह कथन समीचीन प्रतीत नहीं होता, क्योंकि तुलसी ने कायिकी वाचिकी और मानसी प्रपत्ति का उदाहरण सहित भावात्मक उल्लेख किया है।

१ कायिकी प्रपत्ति

रामानन्द सम्प्रदाय में जयन्त की शरणागति कायिकी मानी गयी है। कायिकी प्रपत्ति में भगवान् के चरणों की शरण में जाना और भगवान् का शरणागत के ऊपर कृपा-भाव रखना मुख्य रूप से आते हैं। तुलसी के जयन्त की प्रपत्ति कायिकी है, और उनकी प्रपत्ति में उपर्युक्त सभी भाव विद्यमान हैं -

नारद देखा बिकल जयंता। लागि दया कोमल चित संता।
पठवा तुरत राम पहिं ताही। कहेसि पुकारि प्रनत हित पाही।।५।।
आतुर सभय गहेसि पद जाई। त्राहि त्राहि दयाल रघुराई।।
अतुलित बल अतुलित प्रभुताई। मैं मतिमंद जानि नहिं पाई।।६।।
निज कृत कर्म जनित फल पायउँ। अब प्रभु पाहि सरन तकि आयउँ।।
सुनि कृपाल अति आरत बानी। एकनयन करि तजा भवानी।।७।।
कीन्ह मोह बस द्रोह जद्यपि तेहि कर बध उचित।
प्रभु छाड़ेउ करि छोह को कृपाल रघुबीर सम।।२।। रा०च०मा०पृ०५६७-६८

२ वाचिकी प्रपत्ति

तुलसी के अनुसार विभीषण अपने कुटुम्ब का त्याग करके राम की शरण में आया है और वह दीन की भाँति प्रार्थना कर रहा है। ऐसी प्रार्थना का करना ही वाचिकी प्रपत्ति है --

---

१- रामानन्द सम्प्रदाय और उसका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव पृ० ४१४

गवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर ।
त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर ।।४५।।
अस कहि करत दंडवत देखा । तुरत उठे प्रभु हरष बिसेषा ।।
दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा । भुज बिसाल गहि हृदयँ लगावा ।।१।।
अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी । बोले बचन भगत भयहारी ।।
कहु लंकेस सहित परिवारा । कुसल कुठाहर बास तुम्हारा।।२।।रा०च०पृ०७२५।।

३ मानसी प्रपत्ति

सब ओर से वर्तमान गजेन्द्र का राम की शरण में जाना, अगर मन में यह निश्चय करना कि एक मात्र नारायण ही रक्षक है, मानसी प्रपत्ति है । तुलसी कहते हैं -

सब सोचत मनि बिनु भुजग ज्यों, बिकल अंग दले जरा धाय ।
सिर धुनि धुनि पछितात मींजि कर कोउ न मीत हित दुसह दाय ।।५।।
जिन्ह लगि निज परलोक बिगार्यो तेलजात कहीं ठहरे ठाँय ।
तुलसी अजहुँ सुमिरि रघुनाथहि तर्यो गयंद जाके एक नाँय ।।६।। वि०प० ८३।।

प्रपत्ति भक्ति के सात्त्विकी, राजसी और तामसी ये तीन भेद और किये गए हैं । तुलसी ने प्रपत्ति के इन भेदों का भी वर्णन किया है ।

१ सात्त्विकी प्रपत्ति

सात्त्विकी प्रपत्ति में सत्य सत्य भाव और कर्तव्य का भाव निहित रहता है । इस प्रपत्ति में भक्त सहर्ष स्वेच्छा से प्रभु की शरण में जाता है । तुलसी के अनुसार विभीषण और हनुमान् की प्रपत्ति सात्त्विकी है । डा० बद्रीनारायण श्रीवास्तव ने विभीषण की प्रपत्ति को राजसी माना है ।[1] डा० बद्रीनारायण का यह मत उपयुक्त प्रतीत नहीं होता क्योंकि विभीषण की प्रपत्ति में सत्य और कर्तव्य भाव दोनों वर्तमान हैं । विभीषण इसी सत्य और कर्तव्य का स्मरण रावण को भी कराता है । तुलसी के अनुसार विभीषण किसी असत् पदार्थ की कामना न करता हुआ केवल राम के चरणों का दर्शन करने के लिए ही राम की शरण में जाता है -

---

१- रामानन्द सम्प्रदाय और उसका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव पृ० ४१४ ।।

तात चरन गहि मागउँ राखहु मोर दुलार ।
सीता देहु राम कहुँ अहित न होइ तुम्हार ।।४०।।
बुध पुरान श्रुति संमत बानी । कही बिभीषन नीति बखानी ।।१।।
मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती । सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती ।।
अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा । अनुज गहे पद बारहिं बारा ।।३।। रा०च०पृ०७२१
उमा संत कइ इहइ बड़ाई । मंद करत जो करइ भलाई ।।
तुम्ह पितु सरिस भलेहिं मोहि मारा । रामु भजें हित नाथ तुम्हारा ।४।।
रामु सत्यसंकल्प प्रभु सभा कालबस तोरि ।
मै रघुबीर सरन अब जाउँ देहु जनि खोरि ।।४१।।
रावन जबहि बिभीषन त्यागा । भयउ बिभव बिनु तबहि अभागा ।
चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं । करत मनोरथ बहु मन माहीं ।२।।
देखिहउँ जाइ चरन जलजाता । अरुन मृदुल सेवक सुखदाता ।।
जे पद परसि तरी रिषिनारी । दंडक कानन पावनकारी ।।३।।
जे पद जनकसुताँ उर लाए । कपट कुरंग संग धर धाए ।।
हर उर सर सरोज पद जेई । अहोभाग्य मै देखिहउँ तेई ।।४।।
जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ ।
ते पद आजु बिलोकिहउँ इन्ह नयनन्हि अब जाइ ।।४२।। रा०च०पृ०७२२-२३।।
प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना । सो सुख उमा जाइ नहि बरना ।
पुलकित तन मुख आव न बचना । देखत रुचिर बेष कै रचना ।।३।। रा०च०पृ०६५५

२ राजसी प्रपत्ति

राजसी भाव मे फलवासना विद्यमान रहती है गीता १७।१२ । तुलसी के अनुसार सुग्रीव की प्रपत्ति राजसी है क्योकि उसमे सन्देह और फलवासना विद्यमान है -

सादर मिलेउ नाइ पद माथा । भेटेउ अनुज सहित रघुनाथा ।।
कपि कर मन बिचार एहि रीती। करिहहि बिधि मो सन ए प्रीती ।।४।।
तब हनुमंत उभय दिसि की सब कथा सुनाई ।
पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ ।।४।। रा०च० पृ०६५७।।
कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। बालि महाबल अति रनधीरा ।
दुंदुभि अस्थि ताल देखराए ।बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए ।।६।।

देखि नमित बल नाहिं प्रीती । बालि बधब इन्ह भइ परतीती ।।
बारबार नावउ पद सीसा । प्रभुहि जानि मन हरष कपीसा ।।७। कि० पृ०६६०।।

३ तामसी प्रपत्ति

तामसी भाव म पत्ति नाश, कष्ट, अपमान, हठ, आदि भाव विद्यमान रहते है गी० १७। १३-१६-२१ । तुलसी के अनुसार मारीच आदि राक्षसो की प्रपत्ति तामसी है -

उभय भाँति देखा निज मरना । तब ताकिसि रघुनायक सरना ।।
उतरु देत मोहि बधब अभागे । कस न मरौ रघुपति सर लागे ।।३। अ०का० पृ०६२७।
तुलसी के अनुसार मन्दोदरी रावण को राम की शरणमे जाने के लिए कहती है -

रे कन्त । तृन दन्त गहि सरन श्रीराम् कहि
अहूँ एहि भाँति त तोपु रीना ।।१७। क०वि०पृ०७८।।

इस प्रकार तुलसी ने साधन वर्ग की सभी भक्तियो का भक्ति के साधन रूप मे उल्लेख किया है।

तुलसी के अतिरिक्त भक्ति के साधनो और अनुकूल तत्वो का किसी सगुण भक्त कवि ने स्पष्ट उल्लेख नही किया है।केशव, अग्रदास और सेनापति की रचनाओ मे साधन वर्ग की भक्ति मे से नवधाभक्ति और प्रपत्ति भक्ति आदि के कुछ उद्धरण अवश्य मिल जाते हैं।

केशवदास

केशव ने नवधाभक्ति मे से श्रवण कीर्तन स्मरण पाद सेवन, दास्य और सख्य भक्ति का वर्णन किया है। केशव के अनुसार जो रामचन्द्रिका का पाठ श्रवण, पाठन और गायन करता है, वह अपने सब पाप पुण्यो को नष्ट करके जनक की भाँति राम भक्त कहलाता हुआ मोक्ष प्राप्त करता है --

अशेष पुन्य पाप के कलाप आपनै बहाय ।
विदेहराज ज्यो सदेह भक्त राम को कहाय ।।
लहै सुमुक्ति लोक लोक अंत मुक्ति होहि ताहि।
कहै सुनै पढै गुनै जु रामचद्र चन्द्रिकाहि ।।रा०च० ३६।।

अग्रदास ने भक्ति के साधनों में नवधा भक्ति में से श्रवण, कीर्तन, स्मरण, और पाद सेवन भक्ति का वर्णन किया है। अग्रदास के अनुसार श्रवण का कानों से हरि कथा सुननी चाहिए और रसना से गोविन्द के गुण गाने चाहिए, और हृदय में हरि-चरणों का निवास रहना चाहिए -

श्रवण सुनै हरि कथा, रसन गोविन्द गुण गावै।
आरज विदुष उदार परमि सुकुलीनी सोई।
हृदय धरौं हरिचरण, जगत तारै का गोइ।
अग्र कहै ता दास पर, तन मन डारौ वारि।।१४।।पृ०६।।

और उनके अनुसार राम नाम रूप का कवच पहिनने से अविद्या का प्रभाव नहीं हो पाता -

सत सगति यह कोटि, राम चरण चित दीपै।।
राम नाम कर कवच, अविद्या बाण न लागै।।वही पृ०६।।

अग्रदास के अनुसार सीता राम के चरणों से विमुख रह कर स्वप्न में भी सुख नहीं मिल सकता और राम के चरणों में दृढ प्रीति हुए बिना कोई भी कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। अतः अन्य अवलम्बों को छोड कर राम के चरणों की शरण लेनी चाहिए, तथा जो राम के चरणों को छोड कर अन्य किसी साधन में रत रहता है वह गज को छोड कर गर्दभ पर चढता है -

सीतापति पद विमुख, सुख सपनेहुँ नहि पावै।।पृ०३।।
रामचरण दृढ प्रीति बिना नहि कारज सरई।।पृ० ६।।
अग्र आसरो आन तजि, राम चरण दृढ सीव।३८।पृ०१६।।
राम चरन तजि आन रत, तजि सो गज गदहा चढै। ६७।पृ०३३।।

सेनापति

सेनापति ने साधन वर्ग की भक्तियों में से नवधा श्रवण कीर्तन स्मरण पादसेवन दास्य, वंदन आत्मनिवेदन और प्रपत्ति भक्ति का वर्णन किया है। ~~सेनापति की प्रपत्ति भक्ति के का वर्णन किया है~~। सेनापति की प्रपत्ति भक्ति में कार्पण्य, दैन्य, आश्वासन, आत्मार्पण, आत्मनिक्षेप और रक्षण विषयक विश्वास आदि भाव मिलते हैं।

सेनापति ने भी प्रपत्ति भक्ति में कार्पण्य, दैन्य, आश्वासन, आत्मार्पण और रक्षण विषयक विश्वास का उल्लेख करते हुए कहते है -

सेना मैं न दीन है न दीनबन्धु राम पै ।।१।।

मोसो अपराधी ह न तोसो ह तारनहार

मोसो अवगुनी ह न तोसे गुन आगरे ।।२।।

जैसे जल मीन अति दीन हौं अधीन तेरे

राम परवीन क्यो रुखाई ताजियतु है ।।३।।क०र०पृ०१२१।।

दीनन सौ प्रीति, जानी यह रीति, सेना

पति परतीत कीनी, तेरी ये सरन कौं ।।५।१५।।

विनती बनाइ कर जोरि हौं कहत तातें,

जातें तुम करता जगत उतपति के ।।

तुम सरनागत कौ देत हौ अभयदान,

तुम ही हौ दाता अविचल अधिपति के ।

सदा इह लोक पर लोक तिहु लोकन मैं

लोकपाल पालिबे कौ हरता विपति के ।

सेनापति ईस, बीसे बिस, मोहिं महाराज ।

तेरोई भरोसौ दसरथ चक्रवति के ।।५।२२।।

तुम करतार जन रच्छा के करनहार,

पुजवनहार मनोरथ चित चाहे के ।

यह जिय जानि सेनापति हैं सरन आयौ

हूजिए सरन महा पाप-ताप दाहे के ।।५।।२६।।क०र०

इस प्रकार सगुण रामभक्तो ने भक्ति के साधनो की दृष्टि से सर्वप्रथम मानव देह का होना आवश्यक माना है। मानव जीवन के उपरान्त उनके अनुसार विश्वास, वैराग्य, जप, योग, धर्म, शिवभक्ति कृपा साधन भक्ति और उसके अंगो, नवधा भक्ति और शरणागति 'प्रपत्ति' आदि भक्ति के प्रमुख साधन हैं।

'घ' भक्ति के अनुकूल तत्व

वैसे भक्ति के साधनो और अनुकूल तत्वो मे कोई विशेष अन्तर नही है, किन्तु फिर भी ईश्वर कृपा, गुरु-कृपा ज्ञान, कर्म, प्रेम-सेवा सत्संग आदि कुछ ऐसे तत्व हैं जिनके बिना भक्ति ही सिद्ध नही होती । भक्ति के अनुकूल तत्व भक्ति के साधनों के पूरक है । मानव देह, विश्वास, वैराग्य, जप, योग, ईश्वर कृपा, नवधा भक्ति, प्रपत्ति भक्ति साधन भक्ति आदि, ईश्वरकृपा, गुरुकृपा, ज्ञान, प्रेम, सेवा, सत्संग, इत्यादि की प्राप्ति मे ये सहयोग प्रदान करते है । भक्ति के साधनो का भक्ति के अनुकूल तत्वो के द्वारा पुष्टि होकर जीव को पराभक्ति की प्राप्ति होती है । नीचे सगुण राम भक्तो केअनुसार भक्ति के अनुकूल तत्वो का वर्णन किया जा रहा है ।

तुलसीदास

रामकृपा-तुलसी के अनुसार भक्ति की प्राप्ति के लिए रामकृपा का होना आवश्यक है । भक्ति के साधनो मे यह बताया जा चुका है कि राम कथा के द्वारा रामभक्ति प्राप्त होती है किन्तु तुलसी केअनुसार यह राम कथा उसी को प्राप्त होती है जिस पर रामकृपा करते है -

> एहि महँ रुचिर सप्त सोपाना । रघुपति भगति केर पथाना ।।
> अतिहरि कृपा जाहि पर होई । पाउँ देइ एहि मारग सोई ।। २। रा०च०
> पृ०६६६

तुलसी के अनुसार रामभक्ति रूपी मणि यद्यपि जगत् में प्रकट है, किन्तु श्रीराम की कृपा केबिना उसे कोई भी प्राप्त नही कर सकता -

> सो मनि जदपि प्रगट जग अहई । राम कृपा बिनु नहि कोउ लहई ।। ६। पृ०६८८

जीव भक्ति ज्ञान आदि का रहस्य राम की कृपा के द्वारा ही जान पाता है -

> भगति ग्यान बिग्यान बिरागा । जोग चरित्र रहस्य बिभागा ।।
> जानब तै सबही करभेदा । मम प्रसाद नहिं साधन खेदा ।। ४।। पृ०६४६।। रा० च०

सतसंग

तुलसी यह कहते हैं कि सब साधनो का फल सुन्दर हरि भक्ति है, किन्तु संतों के बिना यह किसी को नही मिलती । ऐसा विचार कर जो सत्संग करता है उसके लिये

रामसिंधु घन सज्जन धीरा । चंदन तरु हरि संत समीरा ।।
सब कर फल हरि भगति सुहाई।सो बिनु संत न काहूँ पाई ।।९।।
अस बिचारि जोइ कर सतसंगा । राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा ।१०।
रा०च० प० ९८८ ।।

तुलसी के शिव के अनुसार सत समागम के समान अन्य कोई लाभ नहीं है, किन्तु यह सत्संग भी हरिकृपा के बिना नहीं मिलता[1] -

गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन ।
बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहि बेद पुरान ।।१२५।। ग ।।पृ०९९६।रा०च०

ज्ञान-वैराग्य

तुलसी के अनुसार रामभक्ति की सिद्धि के लिये ज्ञान और वैराग्य सहायक है । काकभुशुण्डि जी कहते है कि रामभक्ति रूपी मणि की प्राप्ति के सुगम उपाय हैं । उनके अनुसार वेद पुराण पवित्र पर्वत है । रामकथा उन पर्वतों में सुन्दर खाने है सतपुरुषमर्मी है और सुन्दर बुद्धि कुदाल है तथा ज्ञान और वैराग्य उनके दो नेत्र है । इस प्रकार जो प्राणी उसे मणि प्रेम के साथ खोजता है, वह सब सुखों की खान भक्ति रूपी मणि को प्राप्त कर लेता है -

सुगम उपाय पाइबे केरे । नर हतभाग्य देहि भटभेरे ।।६।।
पावन पर्बत बेद पुराना । रामकथा रुचिराकर नाना ।।
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी । ग्यान बिराग नयन उरगारी ।।७।।
भावसहित खोजइ जो प्रानी । पाव भगति मनि सब सुख खानी ।।८।।पृ०९८८

काकभुशुण्डि जी पुनः कहते है कि ब्रह्म 'वेद' समुद्र है, ज्ञान मन्दराचल और संत देवता है उस समुद्र को मथने पर जो कथारूपी अमृत निकलता है, उसीमें भक्ति रूपी मधुरता निवास करती है -

---

१- बिनु सतसंग बिबेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ।
सत संगत मुद मंगल मूला । सोइ फल सिधि सब साधन फूला ।।४। रा०च०पृ०३३
विनयपत्रिका मे भी तुलसी ने इसी भाव को व्यक्त किया है-
रघुपति भगति सुलभ सुखकारी। सो त्रय ताप भयहारी।
बिना सतसंग भगति नहि होई । ते तब मिलै द्रवै जब सोई।।वि०प०१३६।१०।

ब्रह्म पयानिधि मदर ग्यान मत सुर जाहि ।

कथा सुधा मथि काढहिं भगति मधुरता जाहि ।।१२०।। उ पृ०६८८।।

तथा उनके अनुसार वैराग्य रूपी ढाल और ज्ञान रूपी तलवार के द्वारा मद, लोभ, और मोह रूपी रिपुओं को मार कर जो विजय प्राप्त होती है वह हरि भक्ति ही है -

बिरति चर्म असि ग्यान मद लोभ मोह रिपु मारि ।

जय पाइअ सो हरि भगति देखु खगेस बिचारि ।।१२०। ख पृ०६८८।।

तुलसी के मतानुसार वैराग्य और उत्तम बुद्धि के उत्पन्न होने पर ही मन को आरोग्य हुआ समझना चाहिए । सब प्रकार के मानस रोगों से छूटने पर जब मनुष्य विमल ज्ञान रूपी जल मे स्नान कर लेता है, तब उसके हृदय मे राम भक्ति आच्छादित होती है-

बिमल ग्यान जल जब सो नहाई । तब रह राम भगति उर छाई ।।६।।
रा०च० पृ० ६६२।।

तुलसी ने विनय के एक पद मे भक्ति के अनुकूल तत्वों का उल्लेख करते हुए कहा है कि भक्त को समता, सतोष, निमल विवेक और अनुराग इन चारो को धारण करना चाहिए तथा काम क्रोध लोभ, मोह, अभिमान, राग और द्वेष आदि भक्ति के प्रतिकूल तत्वों को बिल्कुल छोड देना चाहिए :--

जौं मन भज्यो चहै हरि सुरतरु ।

तौ तज बिष्या बिकार सार मज, अजहूँ जो मै कहौ सोइ करु ।१।।

सम सतोष, बिचार बिमल अति, सतसगति ये चारि दृढ़ करि धरू।

काम क्रोध, अरु लोभ मोह मद राग द्वेष निरोष करि परिहरू ।।२।।

श्रवन कथा, मुख नाम, हृदय हरि, सिर प्रनाम सेवा कर अनुसरू।

नयननि निरखि कृपा समुद्र हरि अग जग रूप भूप सीताबरू ।।३।।

इहै भगति बैराग्य, ग्यान यह, हरि तोषन यह सुभ ब्रत आचरू ।

तुलसिदास सिव-मत मारग यहि, चलत सदा सपनेहुँ नाहि न डरू।।४।

विoपo २०५।।

अग्रदास

अग्रदास ने भक्ति के अनुकूल तत्वो में से प्रेम और सत्संगति का वर्णन किया है -

रामचरण दृढ़ प्रीति बिना नहि कारज सरई ।।कुण्ड०पृ०६।।

अग्रस्वामि अनुराग विनु, नहीं धर्म को लेश ।

जैसे कन्ता घर रह्यो, तैसे गयो विदेश ।।२०।।पृ०११।

अग्र कहै सतसंग बिनु, कछू लाभ नहि आय ।।पृ० ८।।

अग्र भक्ति पावै अटल, सतसग सदा ानद ।।वही पृ० ३४।।

भक्ति के नुकूल तत्वो की दृष्टि से सगुण रामभक्तो ने रामकृपा, सत्सग, ज्ञान, वैराग्य ार प्रेम इत्यादि का वणन किया है और भक्ति के न नुकूल तत्वो मे से रामकृपा को त्यन्त महत्वपूण माना है।

ङ. भक्ति के अन्तराय

भक्ति के अनुकूल तत्वो के साथ ही उसके कुछ प्रतिकूल तत्व भ ि हैं। भक्ति के प्रतिकूल तत्वो कोही अन्तराय कहा जाता है। भक्तग्रन्थो मे काम-क्रोध, विषय वासना और कुसंग आदि भक्तिमार्ग के विघ्न माने गये है। भक्ति ग्रन्थो के अनुसार सगुण राम भक्तो ने भी भक्ति के अन्तरायो का वर्णन किया है।

तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार छल, कपट, कुसंगति, हकार, काम, क्रोध लोभ, मोह, मद, मत्सर, माया, स्त्री, विषय वासना, तर्क, पाखड और अविद्या इत्यादि भक्ति के अन्तराय हैं।

तुलसी के अनुसार जीव अविनाशी, चेतन, निर्मल, और स्वभाव से ही सुख की राशि है परन्तु यह जीव माया के वशीभूत होकर तोते और बानर की भाँति अपने ाप हीबन्धन मे पड गया है -

ईश्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।१।।
सोमाया बस भयउ गोसाईं। बँध्यो कीर मरकट की नाईं।।२।रा०च०मा० पृ० ६८२।।

इस प्रकार यहमाया जीव को ब्रह्म से अलग करके, जीव की भक्ति साधना अथवा जीव और ब्रह्म के पुनर्मिलन में सदैव विघ्न उपस्थित करती रहतीहै। काम, क्रोध, मोह, तृष्णा, लोभ, मद, मत्सर आदि सभी माया का विस्तृत और प्रबल परिवार है। माया के इस परिवार से शिव और ब्रह्मा भी डरते है। माया की प्रबल सेना संसार में छायी हुई है 'रा०च०पृ०६३३-६३४ -

यह सब माया कर परिवारा। प्रबल अमिति को बरनै पारा।
सिव चतरानन जाहि डेराही। अपर जीव केहि लेखे माही।।४।।

व्यापि रहेउ संसार महुँ माया कटक प्रचंड ।

सेनापति कामादि भट दंभ कपट पाषंड ।।७१। ख रा०च०पृ०६३४।।

यह माया अत्यन्त बलवान् है। यह ज्ञानी, भक्त गरुड शिव ब्रह्मा इन्द्रादि सबको मोहित कर लेती है। इसके चुंगुल से कोई भी जीव नहीं बचा है -

प्रभु माया बलवंत भवानी। जाहि न मोह कवन अस ग्यानी ।।५।।

ग्यानी भगत सिरोमनि त्रिभुवनपति कर जान ।

ताहि मोह माया नर पावँर करहिं गुमान ।।६२।। क

सिव बिरंचि कहुँ मोहइ को है बपुरा आन ।

अस जियँ जानि भजहिं मुनि मायापति भगवान ।।६२। ख

रा०च० पृ० ६२६-२७ ।।

मन महुँ करइ विचार बिधाना। माया बस कबि कोबिद ग्याता।

हरि माया कर अमिति प्रभावा। बिपुल बार जेहि मोह नचावा ।।२।

जीव के मार्ग मे विघ्न उपस्थित करने वाला दूसरा बलवान् शत्रु काम है। यह काम माया के परिवार का ही एक सदस्य है। इस काम की शक्ति से धर्म, ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य आदि विवेक की सम्पूर्ण सेना परास्त हो जाती है और इस काम ने सम्पूर्ण प्राणियों को अपने वश मे कर रखा है[1] -

तब आपन प्रभाउ बिस्तारा। निज बस कीन्ह सकल संसारा ।।

कोपेउ जबहि बारिचर केतू। छन महुँ मिटे सकल श्रुति सेतू ।।३।।

ब्रह्मचर्ज ब्रत संजम नाना। धीरज धरम ग्यान बिग्याना ।।

सदाचार जप जोग बिरागा। सभय बिबेक कटकु सबु भागा ।।४।।

जे सजीव जग अचर चर नारि पुरुष अस नाम ।

ते निज निज मरजाद तजि भए सकल बस काम ।।८४।।

१- तुलना कीजिए -

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ।।गीता ३।३८।।
आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ।।३९।।
इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ।।४०।।
तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञान नाशनम् ।।४१।।वही।।

सिद्ध बिरक्त महामुनि जोगी । तेपि काम बस भए बियोगी ।४।

धरि न काहूँ धीर सब के मन मनसिज हरे ।

जे राखे रघुबीर ते उबरे तेहि काल महुँ ।।८५।। रा०ब०पृ० १०५-६-७।।

तुलसी के राम के अनुसार काम की विशाल सेना को देख कर भी जो धीर बने रहते है जग में उन्ही की प्रतिष्ठा होती है--

लछिमन देखत काम अनीका । रहहिं धीर तिन्ह कै जग लीका ।।

और इस काम की स्त्री का बल है । अतः जो नारी से बच जाता है वही श्रेष्ठ योद्धा है-

एहि के एक परम बल नारी । तेहि ते उबर सुभट सोइ भारी ।।६।। रा०च०पृ०६४३।।

तुलसी के राम नारद से कहते है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह और मद की प्रबल सेना है जिसमें माया रूपिणी नारी अत्यन्त दारुण दुःख देने वाली है । यह नारी मोह रूपी वन के लिए बसन्त ऋतु के समान है, तथा जप, तप और नियम रूपी जलाशयों के शोषण के लिए ग्रीष्म रूप है । नारी के सम्पर्क से काम क्रोध मद मत्सर कुवासनाएँ, ममता एवं पाप आदि विकसित होते है और धर्म, बुद्धि, बल, शील और सत्य नष्ट होते है । यह युवती स्त्री अवगुणों की मूल, पीड़ा पहुँचाने वाली और दुःखों की खान है --

काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि ।

तिन्ह महँ अतिदारुन दुखद मायारूपी नारि ।।४३।।

सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता । मोह बिपिन कहुँ नारि बसंता ।।

जप तप नेम जलाश्रय झारी । होइ ग्रीषम सोषइ सब नारी ।।१।।

काम क्रोध मद मत्सर भेका । इन्हहि हरषप्रद बरषा एका ।

दुर्बासना कुमुद समुदाई । तिन्ह कहँ सरद सदा सुखदाई ।।२।।

धर्म सकल सरसीरुह बृंदा । होइ हिम तेहि दहइ सुख मंदा ।।

पुनि ममता जवास बहुताई । पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई ।।३।।

पाप उलूक निकर सुखकारी । नारि निबिड रजनी अँधियारी।

बुधि बल सील सत्य सब मीना । बनसी सम त्रिय कहहि प्रबीना ।।४।।

अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि ।

ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जियँ जानि ।।४४।।पृ०६४८-४६।।रा०च०

तुलसी के दशरथ राम रावण, पार्वती अहिल्या अनसूया आदि सभी नारी निन्दा करते है ।[1]

१- रा०च०मा० पृ० ६४८, ६४६, ७५३, ७६५, ६५६, १२२, १२८, ६०१, -२, ६००, ३४२, १३६, ६३६, ६४२, ६५१, ५४२, ८६, २०८, दो०व० पृ० २६६-२६६ २६५ कवि० पृ०१२३।।

तुलसी के शिव के अनुसार अज्ञानी, मूर्ख, अंध, भाग्यहीन, विषयी, छली, व्यभिचारी कुटिल और मलिन हृदय वाले व्यक्ति राम का दर्शन नहीं कर सकते -

अग्य अकोबिद अंध अभागी । काई विषय मुकुर मन लागी ।।
लंपट कपटी कुटिल बिसेषी।सपनेहुँ संत सभा नहिं देखी ।।१।।
कहहिं ते बेद असंमत बानी । जिन्ह के सूझ लाभु नहिं हानी ।
मुकुर मलिन नयन बिहीना । राम रूप देखहिं किमि दीना ।।२।।रा०च० पृ०१३२।

तुलसी के अनुसार काम,राग, क्रोध, ईर्ष्या, मद और मोह आदि विकार भक्ति के प्रतिकूल तत्व हैं अत इनका परित्याग करके मन, वचन और कर्म से राम की सेवा एवं सत्संग करना चाहिए -

रागु रोषु इरिषा मदु मोहू । जनि सपनेहुँ इन्हके बस होहू ।।
सकल प्रकार बिकार बिहाई । मन क्रम बचन करेहु सेवकाई ।।३।।रा०च०पृ०३६४।।
दीप सिखा सम जुबति तन मन जनि होसि पतंग ।
भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सत्संग ।।४६'ख पृ०६५१।।

तुलसी के अनुसार भक्त को कुसंगति से भी सदैव बचते रहना चाहिए, क्योंकि यह जीव को भटकाती है और उसका ज्ञान नष्ट कर देती है -

कठिन कुसंग कुपंथ कराला । तिन्ह के बचन बाघ हरि ब्याला ।।
गृह कारज नाना जंजाला । ते अति दुर्गम सैल बिसाला ।।४।।रा०च०पृ० ७०।।
कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग ।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग ।।१५।।'ख' पृ०६६६ ।।

तुलसी के अनुसार तर्क भी भक्ति साधना का अन्तराय है, अत भक्त को तर्क छोड़ कर राम का भजन ही करना चाहिए --

चरित राम के सगुन भवानी । तर्कि न जाहिं बुद्धि बल बानी ।
अस बिचारि जे तग्य बिरागी । रामहि भजहिं तर्क सब त्यागी ।।१।पृ०८०७ ।।

तुलसी के सुग्रीव के अनुसार सुख, सम्पत्ति,परिवार और बड़ाई ये सब राम भक्ति के अन्तराय हैं -

सुख संपति परिवार बड़ाई । सब परिहरि करिहउँ सेवकाई ।८।
ए सब राम भगति के बाधक । कहहिं संत तव पद अवराधक ।।६।

सूरदास

सूरदास के अनुसार तमगुण नामसभाव भक्ति प्रेम मार्ग का गवरोध अन्तराय है। तामस भाव के रहते हुए राम में प्रेम उत्पन्न नहीं होता -

संकट परे जो सरन पुकारौ तौ क्यों न छ्याऊँ।
जन्महि तें तामस आराध्यौं, कैसे हित उपजाऊँ।।सू०रा०प०क्र०,७६।।पृ०१५६

केशवदास

केशवदास के अनुसार राज्यश्री, काम, स्त्री, मोह, लोभ, मद, दुर्गुण, गर्व, क्रोध, तृष्णा, और माया आदि भक्ति पथ के अन्तराय है।

केशव के अनुसार सभी जीव अपनी माया के कारण बन्धन में पड़े हैं --

जीव बँधे सब आपनि माया। कीन्हे कुकर्म मनोरथ दाया।।१८।।रा०च०प्र०२४।

और ऐसा कोई भी जीव नहीं है जो राम की माया के चक्र में न पड़ा हो -

अदोष मोरे गुन मतु मोह। सो कौन माया जननी न मोहे।।प्र०१०।७२।।

केशव के मतानुसार लोभ, मोह, मद, और काम के वश में होकर ही यह जीव अपने स्वरूप को भूल गया है, और यह अपनी वासना के कारण भिन्न भिन्न योनियों में भ्रमण करता रहता है --

लोभ मद मोह बस काम जब हीं भयो।
भूलि गयो रूप निज बाँधि तिनसो गयो।।प्र०२५।३।।
जिनकें जैह वासना तित तित ह्वै है लीन।
जनन कहो कैसे करै जीव बापुरो दीन।।४।।प्र०२५।।

केशव के राम कहते है कि यह राज्यश्री जीव को भक्ति साधना में विघ्न उपस्थित करती है। यह राज्यश्री जीव का ईश्वर से प्रेम नहीं होने देती प्रत्युत यह उसे विषयों की ओर खींच कर ले जाती है -

महापुरुष सो जाकी प्रीति। हरति सो झंझा मारुत रीति।।
विषयचयमरीचिकानि की ज्योति। इन्द्री हरिन हारिणी होति।।१६।।प्र०२३।।रा०-

विषयरूपी यह राज्यश्री मन रूपी मृग को मोहित करने के लिए बधिक की रागिनी है, विषयरूपी बेलि को बढ़ाने के लिए जलद है, मदरूपी पिशाचिनी की सखी है, और मोहरूपी निद्रा

मन मृग को सुबधिक की रीति । विषयनि [illegible] नाद [illegible] ।।
मद पिशाचिका [illegible] । मोह नींद [illegible] ।।31।।प्र०23।।

यह राज्यश्री कामरूपी हाथी के लिये सुन्दर और कोमल कदली कुंज है–

काम काम करिणी किधौं कोमल कदलि सुवेष ।
धीर [illegible] द्विजराज को मनहु राहु की रेख ।।33।।प्र०23।।

इसप्रकार राज्यश्री काम क्रोध आदि को निवसित करके जीव को सब प्रकार से नष्ट करती है ।

केशव के राम के अनुसार काम भी जीव का प्रबल शत्रु है । कामासक्त होकर मनुष्य कुलधर्म को भूल जाता है । यह काम ज्ञानियों के ज्ञान को नष्ट करता है और तपस्वियों के तप को लूट लेता है । यदि यह काम रूपी डाकू न होता तो सभी जीव स्वर्ग को जाते -

भूलत है कुलधर्म सबै तबहीं जबहीं यह आनि ग्रसै जू ।
केशव वेद पुराणन को न सुनै, समुझै न त्रसै न हँसै जू ।।
देवन ते नरदेवन ते नर ते वर बानर ज्यों विलसै जू ।
यन्त्र न मन्त्र न मूरि गनै जगजीवन काम पिशाच बसै जू ।।9।।
ज्ञानिन के तनत्राणिनि को कहि फूल के बाननि बेधत को तो ।
बाय लगाय विदेहिन को, बहु साधक को कहि बाधक हो तो ।
और को केशव लूटतो जन्म अनेकनि के तपसान को पोतो ।
तौ श्रमलोक सबै जग जातो जु काम बडो बटमार न हो तो ।।10।।प्र०24।।

कामको स्त्री का बड़ा बल रहता है । अत स्त्री भी भक्ति मार्ग में बाधक है ।केशव के अनुसार यह स्त्री मनुष्य रूपी मछलियों को फँसाने के लिए वंशी के समान है, और परनारी रूपी अग्नि पाप की बड़ी बड़ी लपटों से युक्त होने के कारण, मनुष्य को जलाया करती है --

बक हियेन प्रभा सँरसी सी । कर्दम काम कछू परसी सी ।
कामिनि काम की डोरी ग्रसो सी । मीन मनुष्यन की बनसी सी ।।7।।
धूम से नील निचोलनि सोहैं । जाय कुहूँ न बिलोकत मोहैं ।
पावक पाप शिखा बड वारी ।जारति है नर को परनारी ।।8।।प्र०24।।रा०-च०

तथा जहाँ स्त्री है वही सांसारिक दु:ख है । स्त्री से अलग होने पर जग छूट जाता है, और जग के छूटने पर सुख प्राप्ति का सुयोग प्राप्त होता है -

जहाँ भामिनी भोग तहँ, बिन भामिनि कह भोग ।

भामिनि छूटे जग छुटे, जग छूटे सुख योग ।।१४।।प्र०२४।।

अहंकार और लोभ भी जीव के बलवान शत्रु हैं । केशव के अनुसार यदि किसी प्रकार अहंकार से बच भी जाये तो यह लोभ जीव को जर्जरित कर देता है । इस लोभ के कारण मनुष्य के सम्पूर्ण गुण नष्ट हो जाते हैं -

जिय माँफ अह पद जो दमियै । जिनके जिनहा गुण मो रमियै ।

तिनहो तिनही लखि लोभ डसै । पट तंतु न उदुर ज्यों नस्यै ।।१६।।

पुन्य बिलात पहारन सो पल ज्यों लघु राघव का गिरि जागे ।

ज्यों निज दोष ते पनति नाशत त्यों गुण भाजत लोभ के लागे ।१७।प्र०२४।।

केशव के अनुसार दुराशा भी जीव के मार्ग में अन्तराय है । इस दुराशा के कारण जीव उस ब्रह्म से नहीं मिल सकता, जिसकी ज्योति से वह प्रकाशित है -

दिन ही दिन बाढत जाय हिये जरि जाय समूल सो आषधि खह ।

किधौं याहि के साथ अनाथ ज्यों केशव आवत जात सदा दुख सैहै ।।

जग जाको बु ज्योति जगै जह जीव रे कबहू तापहँ जान न पैहै ।

सुनि बालदशा गइ ज्वानी गइ जरि जैहै जराऊ दुराशा न जैहै ।।१३।।प्र०२४।

केशव के अनुसार तृष्णा भी भगवद्भक्ति में बाधक है । यह तृष्णा काली रात है, जो जीवों को अंधा कर देती है । इस तृष्णा रूपी नदी को पार करना कठिन है, क्योंकि यह बड़े बड़े लज्जावान्, धैर्यवान और सत्यवान व्यक्तियों को भी बहाकर ले जाती है और इस तृष्णा रूपी नदी में छल, अपमान अज्ञान रूपी भयानक सर्प रहते हैं जो जीव को डस लेते हैं इस नदी की चौडाई भी अधिक है तथा इसमें कहीं पर कोई उतरने योग्य स्थान भी नहीं है -

आँखिन आछत आँधरो जीव करै बहु भाँति ।

धीरन धीरज बिन करै तृष्णा कृष्णा राति ।।१९।।

कौन गनै यहि लोक तरंगन बिलोक बिलेकि जहाजन बोरै ।।

लाज विशाल लता लपटी तन धीरज सत्य तमालन तोरै ।।

बंचकता अपमान अयान अलाभ भुजंग भयानक कृष्णा ।

पाटु बडो कहुँ घाट न केशव क्यों तरि जाय तरंगिनि तृष्णा ।।२१।प्र०२४।।

काम, क्रोध, लोभ आदि शत्रु जीव को पृथक पृथक रूप मे तो सताते ही है किन्तु ये मिल कर भी जीव को लूटते है । केशव के अनुसार लोभ मनुष्य के गले मे मोह की फॅासी डाल कर उसे दसो दिशाओं में खींचता है, गर्व उसे उच्च पदवी से नीचे गिरा देता है और क्रोध उसे जलते हुए अगारो से जलाता है । ऐसी स्थिति मे कोढ की खाज की तरह कामदेव अपने अनोखे बाण मारता है । इस प्रकार काम क्रोध, लोभ मोह और गर्व ये पाँचो लुटेरे जीव को एक साथ मिल कर मारते है । ऐसी स्थिति में असहाय जीव अपना दु ख किससे कहे -

खैचत लोभ दसो दिसि को गहि मोह महा इन फाँसिहि डारे ।
उँचेते गर्व गिरावत, क्रोधहु जीवहि लूहर लावत भारे ।।
ऐसे मे कोढ की खाज ज्यो केशव मारत कामहु बाण निनारे ।
मारत पाँच करे पॅचकूटहि कासो कहै जगजीव विचारे ।।८।।प्र०२४।।

इस प्रकार काम क्रोध और लोभ प्रभृति जीव को भवसिन्धु से पार नही होने देते, अत केशव के अनुसार जीव को ऐसा पाठ पढना चाहिए जिससे वह भवसिन्धु मे डूबने से बच जाये -

पैरत पाप पयोनिधि मे नर मूढ मनोज स जहाज चढोई ।
खल नाऊ न तजै जीव जड जऊ बडवानल क्रोध डढोई ।।
झूठ तरगनि में उरझै सु इनै पर लोभ प्रवाह बढोइ ।
बूडत है नेहि ते उबरै वह केशव काहे न पाठ पढोई ।।२२।।प्र०२४।।के० र०-चं०

अग्रदास

अग्रदास के अनुसार माया विषय वासना हरिविमुखता काम क्रोध मद मोह द्रोह और अविद्या आदि भक्ति साधना के विघ्न है परन्तु राम नाम लेने पर काम क्रोध मद मोह और अविद्या इनमे से एक भी नही टिक पाता --

महतो दुरो पुकार मो, को कहि बैरी होय ।
को कहि बैरी होय जीव माया मो राच्यौ ।
हरि हीरा मणि त्यागि वृथा काँचहि मन माच्यौ ।
मृगतृष्णा ससार अमरपुर लौ जौ धावै ।।
सीतापति पद विमुख सु ख सपनेहुँ नहि पावै ।।कुण्ड०पृ०३

नीच न सूझै मीच, फिरत विषयन के काजै ।
अग्र जीव अघा नलो, बैध सो करै उपाय ।।पृ०४
वर्जित वेद पुरान विषय पर्के हठि ताह ।
बडापयोघर पान करन तेहि कौन मिलायौ ।।पृ०१४।।
नागिन कहा निचोइ मरे विजुरी की मार ।
हरि दरसन सौ द्रोह करै तेहि को को तारै ।।पृ०२०।।
अनुभव जनम अनेक अविचारी चलि आयौ ।
अग्रदास को बस कहाँ परै कूप महँ धाइ ।।पृ०१४।।
राम नाम कर कवच, अविद्या बाण न लागै ।
काम क्रोध मद मोह जनम मरणादिक भागै ।।१५।।पृ० ६

सेनापति

सेनापति के अनुसार स्त्री और मोहादि भक्ति पथ के अन्तराय है जन इनसे उत्पन्न दुःख को नष्ट करने के लिए राम का भजन करना चाहिए -

कीनौ बालापन बालकेलि मे मगनमन,
लीनौ तरुनापै तरुनी के रस तीर कौ ।
अब तू जरा मै पर्यौ मोहपीजरा मे सेना-
पति भेजु रामै जो हरैया दुरा पीर कौ ।।क०र० ५।१२।।

इस प्रकार सगुण राम भक्तो ने भक्ति के अन्तरायो की दृष्टि से छल, कपट, काम, क्रोध, लोभ,मोह, मद,मत्सर, माया, स्त्री,अहंकार ,विषय वासना, तर्क,पाखंड,अविद्या,कुसगति ,राज्य-श्री,दुराशा, तृष्णा और हरि विमुखता प्रभृति का उल्लेख किया है ।

'च परिणाम

सगुण राम भक्तो के अनुसार जीव ईश्वर का अंश या प्रतिबिंब है ।जीव ईश्वर का अंश अथवा प्रतिबिंब होने के कारण सुख स्वरूप तो है किन्तु वह स्वतंत्र नही है । वह परतन्त्र और हर्ष शोक ज्ञान, अज्ञान अहंता तथा अभिमान इत्यादि धर्मो से युक्त है । संक्षेप मे सगुण भक्तो के ये जीव और ब्रह्म के सम्बन्ध मे दार्शनिक विचार है । इन दार्शनिक विचारो के अनुसार ही सगुण भक्तो ने अपने भक्ति भाव का विकास किया है ।

जीव ब्रह्म का अंश होने के कारण ब्रह्म के बराबर नहीं हो सकता । जीव जब ब्रह्म के बराबर नहीं हो सकता, तब वह ब्रह्म से समानता का सम्बन्ध भी स्थापित नहीं कर सकता । जीव ब्रह्म से छोटा और सामर्थ्यहीन होने के कारण ब्रह्म को केवल सेवा भाव से ही प्रपन्न कर सकता है ।

जीव ब्रह्म का अंश और वह ब्रह्म के परतंत्र है । इस दार्शनिक सिद्धान्त के अनुरूप सगुण भक्तों ने जीव को सेवक और ब्रह्म को स्वामी मान कर भक्ति साधना का विवेचन किया है । जीव सेवक है और ब्रह्म स्वामी इस भाव का तुलसी ने तो सर्वत्र निर्वाह किया है ।

दास यदि प्रेम कर सकता है तो केवल स्वामी के चरणों में ही कर सकता है । अतः तुलसीदास के सभी पात्र जीव राम के चरणों में ही अनुराग करते हैं । इस प्रकार तुलसी की दास्य भक्ति में जो प्रेम का अंश मिलता है वह भक्तों के दास्य भाव के अन्तर्गत ही आता है, क्योंकि सेवा के बल पर उनके राम के चरणों में बैठकर अनुराग करने का अवसर मिला है । और सेवा के बल पर ही दास स्वामी -- राम को प्रिय होता है -

सब के प्रिय सेवक यह नीती । मोरे अधिक दास पर प्रीती ।४।। रा०च०पृ०८८७।।

तुलसी के कुछ कथन ऐसे है जिनमें संत और दास भक्तों को राम के समान और राम से बड़ा कहा गया है ।[1] इन कथनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि तुलसी के अंशांशी भाव, और सेव्य सेवक भाव की भक्ति में व्याघात उत्पन्न होता है । किन्तु यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो इनकथनों के द्वारा अंशांशी और स्वामी सेवक भाव में कोई गतिरोध नहीं पड़ता । तुलसी ने राम के समान अन्य किसी जीव को न कह कर केवल संतों को कहा है -

संत भगवंत अंतर निरन्तर नहीं, किमपि मति मलिन कह दासतुलसी।।वि०प०५७।६

तुलसी के अनुसार ब्रह्म का जो शुद्ध अंश अर्थात जीव है वहचेतन अमल अविनाशी और सुखरूप है --

ईश्वर अंश जीव अबिनासी । चेतन अमल सहज सुखरासी ।।१।रा०च०पृ०६८२।।

जीव ब्रह्म का अंश है । अतः ब्रह्म के ये गुण जीव में भी विद्यमान होने चाहिए ।तुलसी ने ब्रह्म के इन गुणों की अनेक स्थानों पर व्याख्या की है -

सच्चिदव्यापकानंद परब्रह्म पद विग्रह व्यक्त लीलावतारी ।

विकल ब्रह्मादि सुर सिद्ध सकोचवश विमल गुण गेह नर देहधारी।।वि०प०४३।

जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता ।
जय जय अबिनासी सब घट बासी व्यापक परमानंदा ।
भव बारिधि मंदर सब बिधि सुंदर गुन मंदिर सुखपुंजा ।
मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पदकंजा।।४।। रा०च०पृ०१८७-८८।

इस प्रकार माया निवृत्त जीव ब्रह्म के शुद्ध अंश और ब्रह्म के गुणों में समानता है। ब्रह्म का यह शुद्ध अंश जब माया के बन्धन में पड़कर जीव रूप धारण करता है तब वह विकारी जीव की कोटि में ~~पहुँच जाता~~ आकर हर्ष शोक, ज्ञान, अज्ञान अहंता और अभिमान संयुक्त हो जाता है -

हरष बिषाद ग्यान अग्याना । जीव धर्म अहमिति अभिमाना ।
राम ब्रह्म व्यापक जग जाना । परमानंद परेस पुराना ।।४।। रा०च०पृ०१३३

जिस जीव में हर्ष शोक, अहंता और अभिमान आदि विकार अवस्थित हैं उसे तुलसी ने राम के समान नहीं कहा है। तुलसी ने सतपुरुष को ही राम के समान कहा है।

तुलसी ने संत को राम के समान इसलिए कहा है कि एक तो उसमें बद्ध जीव के अहंता अभिमान आदि विकार नहीं होते, और दूसरे वह ब्रह्म के शुद्ध अंश के गुण वाला होता है -

षटबिकार जित अनघ अकामा । अचल अकिंचन सुचि सुखधामा ।।
अमितबोध अनीह मितभोगी ।सत्यसार कबि कोबिद जोगी ।।४।।
सावधान मानद मदहीना । धीर धर्म गति परम प्रबीना ।।५।।
दंभ मान मद करहिं न काऊ । भूलि न देहिं कुमारग पाऊ।।३।। रा०च० पृ०६५०।।
सम अभूतरिपु बिमद बिरागी । लोभामरष हरष भय त्यागी ।१।
निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पदकंज ।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुन मंदिर सुख पुंज ।।३८।।रा०च०पृ०६०६-७।।

इस प्रकार संत अथवा शुद्ध जीव और ब्रह्म के गुणों में कोई अन्तर नहीं है। फलतः तुलसी ने संत और राम को समान कह कर अंशांशी भाव का ही पोषण किया है। सैद्धान्तिक दृष्टि से भी शुद्ध जीव संत, ब्रह्म का अंश होने के कारण, उन्हीं के गुण स्वभाव वाला है।

जिस पद में तुलसी ने दास भक्त को ब्रह्म से बड़ा कहा है, वह केवल दास्य भक्ति को महत्व प्रदान करने की दृष्टि से ही कहा है। दास भक्त को सम्मान देने की दृष्टि से ही तुलसी के राम अपने से बड़ा बताते हैं और कहते हैं कि मैं

दास के वश में रहता हूँ ॥

इस प्रकार यह कथन भी सेवक और सेव्य भाव की ही पुष्टि करता है। उन सगुण भक्तों के सम्बन्ध में यह कथन सर्वथा समुचित है कि उनकी भक्ति दास्य भाव की है, और साथ ही वह प्रेम प्रधान भी है।

सगुण राम भक्तों ने भक्ति को साध्य मान कर उसे मोक्ष की अपेक्षा अधिक स्पृहणीय माना है। सगुण भक्तों के अनुसार राम के समीप पहुँचना अथवा राम के रूप में मिल जाना ही वास्तविक मोक्ष है और उनके अनुसार राम स्वयं ही मोक्ष स्वरूप अथवा निर्वाण स्वरूप है। सगुण भक्तों ने जहाँ राम को मोक्षस्वरूप कहा है वहाँ उन्होंने उनके चरणों में अनन्य अनुराग होने को भक्ति कहा है। इस प्रकार सगुण भक्तों ने मोक्ष और भक्ति का समन्वय कर लिया है। वैसे सगुण भक्तों ने मोक्ष से भक्ति को उत्कृष्ट माना है। जिस प्रकार परमार्थ प्राप्ति के लिये मानव देह, हरिकृपा, ज्ञान कर्म आदि साधन आवश्यक माने गए हैं उसी प्रकार सगुण भक्तों ने भक्ति की प्राप्ति के लिए भी इन साधनों का उल्लेख किया है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सगुण रामभक्तों की भक्ति साधना, उनके दार्शनिक विचारों का अभिव्यक्तिकरण है।

मुण्डकोपनिषद् के अनुसार सत्य और अमृतस्वरूप ब्रह्म की प्राप्त करना ही जीवन का लक्ष्य है -

यदर्चिमधदणुभ्योऽणु च यस्मिँल्लोकानिहितालोकिनश्च ।

तदेतदक्षार ब्रह्म स प्राणस्तद् वाङ्मन ।

तदेतत्सत्य तदमृत तद्वेद्धव्य सोम्य विद्धि ।।मुण्डक २।२।।

कठोपनिषद् '१।१।२१-२२-२३-२४-२५-२६-२७-२८,१।२।१-२-५ मे सपूर्ण लौकिक पदार्थों को क्षणभगुर बताकर ब्रह्म प्राप्ति को ही जीवन का लक्ष्य कहा गया है-

कामस्याप्ति जगत प्रतिष्ठा क्रतोरनन्त्यमभयस्य पारम् ।

स्तोममहदुरुगाय प्रतिष्ठा धृत्याधीरो नचिकेतोऽत्यस्राक्षी ।१।२।११।।

सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति ।

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदंसग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्।।१५।।

एतदालम्बन ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ।।१७।।अ० १ ब० २।।

उपनिषदों के अनुरूप ही तुलसी ने भौतिक विषयो को असत् और क्षणभगुर बताकर राम अथवा राम-प्रेम की प्राप्ति को ही जीवन का लक्ष्य माना है। तुलसी के अनुसार राम स्वयं ही परमार्थ स्वरूप है[१] -

जोग बियोग भोग भल मंदा । हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा ।

जनमु मरनु जहँ लगि जग जालू । सपति बिपति करमु अरु कालू ।।३।।

धरनि धामु धनुपुर परिवारू । सरगु नरकु जहँ लगि ब्यवहारू ।।

देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माही । मोह मूल परमारथु नाहीं ।।४।।

होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा । तब रघुनाथ चरन अनुरागा ।

सखापरम परमारथु एहु । मन क्रम बचन राम पद नेहू ।।३।।

राम ब्रह्म परमारथ रूपा । अबिगत अलख अनादि अनूपा ।।

सकल बिकार रहित गतभेदा । कहि नित नेति निरूपहि बेदा ।।४।।

रा०च० पृ० ४०७-८।।

१- शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशान्तिप्रद ।।१।।रा०च० मा० पृ० ६८५।।

यही बात सुग्रीव ने राम से कही है कि जगत् में जितने भी शत्रु मित्र और सुख दुख आदि है, वे सब मायारचित है और परमार्थत नहीं है -

सत्रु मित्र सुख दुख जग माहीं । मायाकृत परमारथ नाही ।।६।। रा०च०पृ०६६०।

तुलसी के अनुसार राम के चरणो मे पावन प्रेम का होना ही जीवन का परम लक्ष्य है -

पावन प्रेम राम चरन कमल जनम लाहु परम ।। वि०प० १३१।१।

मानव देह की प्राप्ति तुलसीके अनुसार विषय भोग के लिये नहीं हुई है । भोग तो स्वर्ग का भी अल्प और दु ख ही देने वाला ह । अत जो मनुष्य, नर देह को पाकर विषयो में आसक्त हो जाते है, वे शठ अमृत के बदले मे विष ले लेते है-

एहि तन कर फल बिषय न भाइ । स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई ।।

नर तनु पाइ बिषयँ मन देही । पलटि सुधाते सठ बिष लेही ।।१।। रा०च०पृ०६११

मानव देह को प्राप्त करके श्रीराम के चरणों से ही प्रेम करना चाहिए क्योंकि यही जीवन का लक्ष्य है । तुलसी के वशिष्ठ जी राम से वर रूप में अनन्य प्रेम ही मागते है -

नाथ एक बर मागउँ राम कृपा करि देहु ।

जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु ।।४६।। रा०च०पृ०६१६।।

तुलसी के अनुसार जीव का सच्चा स्वार्थ भी यही है कि वह मन, वचन, और कर्म से राम के चरणो में अनुराग करे -

स्वारथ साँच जीव कहुँ एहा । मन क्रम बचन राम पद नेहा ।

सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा। जो तनु पाइ भजिअ रघुबीरा।।१।।पृ०६५६।।

तुलसी के अनुसार शिव, ब्रह्मा, शुकदेव, नारद और सनकादि ब्रह्म विचार में रत रहने वाले ब्रह्मर्षियो का भी यही मत है कि जीव का राम के चरण कमलों में प्रेम हो -

सिव अज सुक सनकादिक नारद । जे मुनि ब्रह्म बिचार बिसारद।।६।।

सब कर मत खगनायक एहा। करिअ राम पद पंकज नेहा ।।७।।पृ०६६३।।

इस प्रकार तुलसी के अनुसार राम का दर्शन और उनका प्रेम प्राप्त होना ही जीवन का लक्ष्य है ।

पूर्ववर्ती अध्याय मे यह बताया जा चुका है कि सगुण राम भक्तो के अनुसार राम के चरणो में प्रेम होना ही राम-भक्ति है । अत तुलसी ने जहाँ राम के चरणो मे प्रेम प्राप्ति को जीवन का लक्ष्य माना है वहाँ उन्होने राम भक्ति की उपलब्धि

यद्यपि तुलसी के कुछ कथन ऐसे है जिनमें मोक्ष को परमार्थ माना गया है, तथापि तुलसी ने जीवन के लक्ष्य की दृष्टि से मोक्ष की अपेक्षा भक्ति को प्रमुखता दी है। तुलसी के अनुसार भक्त के लिये मोक्ष कोई बहुत बड़ी वस्तु नहीं है। राम का भजन करने से मोक्ष की इच्छा न रहने हुए भी अपने आप प्राप्त हो जाती है। यह मोक्ष सुख हरि भक्ति के बिना रह ही नहीं सकता। यह भक्त को स्वतः प्राप्त होता है, किन्तु जो राम भक्त नहीं है उनको यह प्राप्त नहीं होता -

अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम बद ।।
राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं ।।2।।
जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करै उपाई ।।
तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई। रहि न सकइ हरि भगति बिहाई ।।3।।

रा०च०मा० पृ०९८६।।

सब कर मत खगनायक एहा। करिअ राम पद पंकज नेहा।
श्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं। रघुपति भगति बिना सुख नाहीं ।।7। वही पृ०९९३
बिनु गुर होइ कि ग्यान ग्यान कि होइ बिराग बिनु।
गावहिं बेद पुरान सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु ।।89। पृ०९५0।।

रामभक्ति से मोक्ष सुख स्वयं प्राप्त होता है और भक्ति से रहित सब सुख वैसे ही फीके हैं जैसे नमक के बिना भोज्य-पदार्थ। ऐसा सोच कर काकभुशुण्डि ऋद्धि, सिद्धि ज्ञान, विज्ञान, और मोक्ष आदि किसी भी पदार्थ की इच्छा न करके, राम भक्ति का ही वर माँगते हैं -

काकभुसुंडि मागु बर अति प्रसन्न मोहि जानि।
अनिमादिक सिधि अपर रिधि मोच्छ सकल सुख खानि।।83। स
ग्यान बिबेक बिरति बिग्याना। मुनि दुर्लभ गुन जे जग नाना ।।
आजु देउँ सब संसय नाहीं। मागु जो तोहि भाव मन माहीं ।।1।।
सुनि प्रभु बचन अधिक अनुरागेउँ। मन अनुमान करन तब लागेउँ ।।
प्रभु कह देन सकल सुख सही। भगति आपनी देन न कही ।।2।।
भगति हीन गुन सब सुख ऐसे। लवन बिना बहु बिंजन जैसे ।।
भजन हीन सुख कवने काजा। अस बिचारि बोलेउँ खगराजा ।।3।।

रा०च०मा० पृ० ९४५।।

जौं प्रभु होइ प्रसन्न बर देहू । मो पर करहु कृपा अरु नेहू ।
मन भावत बर मागउँ स्वामी । तुम्ह उदार उर अंतरजामी ।।३।।
अबिरल भगति बिसुद्ध तव श्रुति पुरान जो गाव ।
जेहि खोजत जोगीस मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव ।।८४ क ।
भगत कल्पतरु प्रनत हित कृपा सिंधु सुख धाम ।
सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम ।।८५।। रा वही पृ० ९८६।

तुलसी के अनुसार पार्वती और सनकादि भी राम भक्ति की कामना करते हैं -

मैं कृतकृत्य भइउँ अब तव प्रसाद बिस्वेस ।
उपजी राम भगति दृढ बीते सकल कलेस ।।१२६।। रा०च०पृ० १०००।।
परमानंद कृपायतन मन परिपूरन काम ।
प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम ।।३४।।
देहु भगति रघुपति अति पावनि । त्रिबिधि ताप भव दाप नसावनि।।
प्रनत काम सुरधेनु कलपतरु । होइ प्रसन्न दीजै प्रभु यह बरु।। १।।
रा०च० पृ० ९०४।।

तुलसी के कुछ कथन ऐसे भी है जिनमें मोक्ष से राम-प्रेम और राम-भक्ति को श्रेष्ठ कहा गया है । तुलसी के अनुसार राम भक्त की दृष्टि में स्वर्ग और अपवर्ग तृण के समान है । राम भक्त स्वर्ग और अपवर्ग आदि की कामना न करके भक्ति की प्राप्ति के लिए ही हठ करता है -

प्रीति सदा सज्जन संसर्गा । तृन सम बिषय स्वर्ग अपबर्गा ।।
भगति पच्छ हठ नहि सठताई। दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई ।।४।रा०च० पृ०९१३

तुलसी के भरत धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की कामना न करके, बस यही चाहते हैं कि राम चरणों में प्रेम हो और वे राम के बिना परमपद को व्यर्थ समझते है -

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान ।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन ।।२०४ ।।रा०च० पृ०४९६।।
पुरजन परिजन प्रजा गोसाईं। सब सुचि सरस सनेहँ सगाईं ।।
राउर बदि भल भव दुख दाहू । प्रभु बिनु बादि परम पद लाहू ।।१।।
वही पृ० ५८३।।

तुलसी के अनुसार सगुणोपासक और बुद्धिमान हरिभक्त मुक्ति का निरस्कार करके भक्ति की अभिलाषा करते है-

सगुणोपासक मोच्छ न लेही । तिन्ह कहुँ राम भगति निज देही ।।पृ०८५४।।
अस विचारि हरि भगत सयाने । मुक्ति निरादर भगति लुभाने ।
भगति करत बिनु जतन प्रयासा । ससृति मूल अबिद्या नासा ।।४।।
वही पृ० ९८६ ।।

तुलसी के सिव ने तो उमा से यह भी कहा है कि हरि भजन ही सत्य है, और सब जगत् स्वप्नवत् है-

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना । सतहरि भजनु जगत सब सपना ।।वही पृ०६४४।

इस प्रकार तुलसी ने मोक्ष को जीवन का लक्ष्य न मानकर राम प्रेम और राम भक्ति को ही माना है ।

सूरदास

सूर के अनुसार राम के दर्शन करना और भवसिन्धु से पार होना ही जीवन का लक्ष्य है -

तुम्हरौ रूप अनूप भानुज्यौ जब नैननि भरि देखौं ।
ता छिन हृदय कमल प्रफुलित ह्वै, जनम सफल करि लेखौं ।।सू०रा०च० ३२।पृ०१६
थे जननी वे प्रभु रघुनंदन, हौ सेवक प्रतिहार ।
सीता-राम सूर संगम बिनु, कौन उतारै पार २`६६।पृ०६५।।
जौ सनकादिक श्राप न देते, तौ न कनकपुर आऊँ ।
जौ सूरज' प्रभु-त्रिया न हरतौ क्यों अब अभै पद पाऊँ।।वही पृ०१३७।।१२६।।

केशवदास '

केशव के अनुसार, हाथी,घोडे, माता, पिता, भाई बन्धु नौकर चाकर अथवा ब्रह्मा विष्णु और महादेव से लेकर जितने दृश्य शरीर इस जगत् मे हैं, वे सब नश्वर हैं। अत: इनमे से कोई भी जीवन का हितैषी नहीं हो सकता । जीवन का सच्चा हितैषी केवल एक राम है 'और वही जीवन का लक्ष्य है । +--

ब्रह्म बिष्णु शिव आदि दै जितने दृश्य शरीर ।
नाश हेतु धावत सबै ज्यौ बड़वानल नीर ।।२४।।रा०चं० पृ० २४।।

हाथी न साथी न घोरे न चेरे न गाऊँ न ठाउँ कुठाउँ ि है ।
तात न मात न पुत्र न मित्र न वित्त न तीय कहूँ संग रैहै ।।
केशव काम के राम बिसारत, और निकाम ते काम न ऐहै ।
चेति रे चेति अजौं चित अंतर अंतकलोक अकेलोई जैहै ।।२५।।पृ०१६।।

केशव के अनुसार जिस घर संसार मे मनुष्य रहता है वह उनका घर नहीं है, क्योंकि इसी घर को मक्खी, मच्छर, चूहा, घूस, बिल्ली, सर्प, कीड़ा, कुत्ता, पक्षी भिक्षुक और भूत आदि भी अपना ही घर समझते है --

माछी कहै अपनो घरु माछर मूसो कहै अपनो घरु ऐसो ।
कौने घुसी कहै घुसि घिनौनी बिलारि औ व्याल बिलै मँह बैसो।।
कीटक स्वान सो पक्षि औ भिक्षुक भूत कहै भ्रमजाल है जैसो ।
हौंहूं कहौं अपनो घरु तैसहि ता घरसों,अपनो घरु वैसो ।।२६।।पृ०२४।।

केशव के अनुसार अपना घर या निजपद ही जीवन का लक्ष्य है -

यत्नन सों शुभ पंथ लगावै । तौ अपनो तब ही पद पावै ।।५।।

इस प्रकार केशव के अनुसार मोक्ष प्राप्ति अथवा राम प्राप्ति ही जीवन का लक्ष्य है । केशव के अनुसार यह मोक्ष जीवन का अन्तिम पुरुषार्थ लक्ष्य है -

धर्म करत अति अर्थ बढ़ावत । संतति हित रति कोविद गावत ।।
संतति उपजत ही, निसि बासर । साधत तन मन मुक्ति महीधर ।।८।।पृ०१८।।

अग्रदास

अग्रदास के अनुसार हरि का साक्षात्कार ही जीवन का लक्ष्य है । अत इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मनुष्य को अपना तन मन आदि सब कुछ खो देना चाहिए,क्योंकि सदैव यह समय नहीं रहेगा --

सदा न फूले तोरई, सदा न सावन होय ।
सदा न सावन होइ सन्त जन सदा न आवै ।
सदा न रहे सुबुद्धि सदा गोविन्द यश गावै ।।
सदा न पक्षी केलि करै, इहँ तरवर ऊपर ।
सदा न स्वादहि रहै सपेदी, आवै भूपर ।।
अग्र कहै हरि मिलन को, तन मन डारो खोइ ।
सदा न फूले तोरई, सदा न सावन होइ ।।७२।।कुण्डलिया पृ०३४-३५।।

सेनापति

सेनापति के अनुसार राम ही जीवन-धन अथवा जीवन के लक्ष्य हैं -

तुम ही हमारे धन, तोसों बांध्यौ पेम पन,
और सौं न मानै मन तोही सुमिरत हैं ।।क०र०४।५ ।।

इस प्रकार सेनापति ने दु खों से छूटकर राम में रत होने को जीवन का लक्ष्य माना है-

पाइ नर तन भयौ राम सौं रत नबर,
क्वन रतन पट काज के हरे हरे ।।
अबहूँ तू चेत मन । सीस भयौ सेत,सेना
पति सिख देत, जप हेतुसौं हरे हरे ।।
और न त जगति जासौं होति आजु गति, देति
मुकति - मुकति हरि-भगति हरे हरे ।।क०र० ५।७१।।

कीनौ बालापन बालकेलि मै मगन मन,
लीनौ तरुनापै तरुनी के रस तीर कौं ।
अब तू जरा मै पर्यौ मोह पींजरा मै, सेना
पति भजु रामैं जो हरैया दुख पीर कौं ।।वही पृ० ५।१२।।

नाभादास

नाभादास के अनुसार राम का साक्षात्कार और प्रेम रस का आस्वादन करना ही जीवन का लक्ष्य ह -

पुरवासिन के सुत अति प्यारे । प्रभु मुख दरशन नेम सँवारे ।।
सब निज निज समाज यक संगा । सदा एक रस प्रीति अभंगा ।।१७०।।
दिन प्रति राज भवन आवै । देखि राम मुख अति सुख पावैं ।।१७१।।
रामाष्टयाम पृ० १९।।

श्री अग्रदेव गुरु कृपा ते, बाढी नव रस बेलि ।
चढ़ी लड़ैतीलाल छवि, फूली नवल सुकेलि ।।५३।।
शेष शारदा शंभु श्रुति, कहि कहि लहे नपार ।
निज मन अलि नामा कियौ, सुमति सुगंधि उदार ।।५४।।पृ०४६।।

इस प्रकार सगुण राम भक्तों ने राम,राम-प्रेम, राम-दर्शन, मोक्ष और भक्ति को जीवन का लक्ष्य माना है ।

और जो सगुण भगवान् के उपासक हैं तथा दूसरों के हित में लगे रहते हैं और नीति एवं नियमों में दृढ़ हैं और जिनका ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम है, वह मनुष्य राम को प्राणों के समान प्रिय है -

सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम ।
ते नर प्रान समान मम जिन्ह के द्विज पद प्रेम ।।४८।। रा०च० पृ०७२७।।

इस प्रकार यह निश्चित् है कि तुलसी समाज में वर्ण भेद जन्मना मानते हैं, और ब्राह्मण को पूज्य समझते हैं। किन्तु समाज में ब्राह्मण को श्रेष्ठ मानते हुए भी उन्होंने भक्ति के क्षेत्र में जातिवाद को महत्व नहीं दिया है। तुलसी के अनुसार राम को भक्तिवान् अत्यन्त नीच प्राणी भी प्राणों के समान प्रिय है, और तुलसी के राम केवल एक भक्ति का ही नाता मानते हैं। जाति, पाँति, कुल, धर्म, बड़ाई, धन, बल, गुण और कुटुंब एवं चतुरता इन सबके होने पर भी भक्तिहीन मनुष्य ऐसे ही शोभा नहीं पाता जैसे जलरहित बादल -

भगति हीन बिरंचि किन होई। सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई ।।
भगतिवंत अति नीचउ प्रानी। मोहि प्रानप्रिय असिमम बानी ।।५।। रा०च०पृ०६४७।
अधम ते अधम अति नारी । तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी ।।
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता ।।२।।
जाँति-पाँति कुल धर्म बडाई। धन बल परिजन गुन चतुराई ।।
भगतिहीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा ।।३।। रा०च० पृ०६३९-४०

अतः तुलसी के अनुसार भक्त के लिये उच्च जाति का होना आवश्यक नहीं है क्योंकि अनेक ऐसे भक्त है जो निम्न वर्ग के होने पर भी भक्ति के द्वारा परम पावन मोक्ष पद को प्राप्त करते हैं। तुलसी के सुग्रीव राम से यह कहते हैं कि जो स्त्री में आसक्त नहीं है, और जो क्रोधान्ध नहीं हुआ है तथा जो लोभ में नहीं फँसा है वह मनुष्य किसी भी वर्ण का क्यों न हो राम के समान ही है --

बिषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी। मैं पाँवर पसु कपि अतिकामी ।।
नारि नयन सर जाहि न लागा। घोर क्रोध तम निसि जो जागा ।।२।।
लोभ पाँस जेहिं गर न बँधाया। सो नर तुम्ह समान रघुराया ।।३।। वही पृ०६७३-६७४।

तुलसी के अनुसार सभी प्राणी राममय है अतः तुलसी समाज के सभी प्राणियों की वंदना करते हैं -

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राम मय जानि ।

तुलसी के अनुसार आदर्श समाज वह है जिसमें संतों का बाहुल्य हो और जिसमें देवता, ब्राह्मण, गाय और संत पुरुषों को सम्मान प्राप्त होता हो । जब जब समाज में गाय, देवता, ब्राह्मण और संतों को असुर लोग सताने लगते हैं तब तब राम मनुष्य शरीर धारण करके असुरों का संहार करते हैं और संतों के समस्त दुःख दूर करते हैं -

करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी । सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी ।।
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा । हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।४।।
असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु ।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु ।।१२१।।रा०च०मा०पृ०१३८।।

तुलसी के अनुसार युगों के अनुसार समाज की स्थिति बदलती रहती है । नीच और अधम मनुष्यों का सतयुग और त्रेता में बिल्कुल अभाव रहता है, द्वापर में उन का प्रादुर्भाव होने लगता है और कलियुग में तो उनका ही आधिपत्य हो जाता है-

ऐसे अधम मनुज खल कृतयुग त्रेतां नाहिं ।
द्वापर कछुक बृंद बहु होइहहि कलिजुग माहिं ।।४०।।

कलियुग में असत व्यक्तियों के बढ जाने से समाज का विधि विधान ही उलटा होने लगता है । कलियुगी समाज में शूद्र ब्राह्मणों को ज्ञानोपदेश करते हैं और जनेऊ धारण करके कुत्सित दान लेते हैं -

सूद्र द्विजन्ह उपदेसहि ग्याना । मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना ।।१।।

कलियुग में शूद्र, ब्राह्मणों से विवाद करने लगते हैं और वह यह कह कर ब्राह्मणों को डॉटते हैं कि जो ब्रह्म को जानता है वही श्रेष्ठ ब्राह्मण है -

बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह ते कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म सो बिप्रवर आँखि देखावहि डाटि ।।६६।। स पृ०६६०।।

और शूद्र नाना प्रकार के जप तप और व्रत करते हैं एवं ऊँचे आसन पर बैठकर पुराणों का पाठ करते हैं । इसीप्रकार कलियुग में मानव समाज वर्णसंकर होकर मयादा से च्युत हो जाता है -

सूद्र करहिं जप तप ब्रत नाना । बैठि बरासन कहहिं पुराना ।।
सब नर कल्पित करहिं अचारा । जाइ न बरनि अनीति अपारा ।।५।।
भए बरन संकर कलि भिन्नसेतु सब लोग ।।१०० क:।।पृ०६६०।।

तुलसी ऐसे कलियुगी समाज के पक्ष मे नही है । तुलसी ने ऐसे समाज की निन्दा का है । तुलसी कहते हैं कि जो अपने को ब्राह्मणो से पुजवाते है वे अपने दोनों लोक नष्ट कर लेते है --

ते बिप्रन्ह सन आपु पुजावहि । उभय लोक निज हाथ नसावहि ।।४। पृ०६६०।

और ऐसे लोग पाप करके दु ख, भय, रोग शोक और वियोग ही पाते हैं-

करहिं पाप पावहिं दुख भय रुज सोक बियोग ।।१०० क पृ०६६०।

~~दर्-व~~

इस प्रकार कलिकाल के समाज की निन्दा करके तुलसी ने राम कालीन समाज को अपना आदर्श माना है । तुलसी के अनुसार रामकालीन समाज मे कोई भी प्राणी किसी से वैर नहीं करता था और कोई भी विषमता का व्यवहार नही करता था-

राम राज बैठे त्रैलोका । हरषित भए गए सब सोका ।

बयरु न कर काहू सन कोई । राम प्रताप बिषमता खोई ।।४।।पृ०८६१।।

तथा सभी लोग अपने अपने वर्णाश्रम के अनुकूल धर्म में निरत हुए वेद मर्यादा का पालन करते थे -

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग ।

चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग ।।२०।।पृ०८६१

रामकालीन समाज मे सभी व्यक्ति दम्भ रहित थे और सभी धर्मपरायण एव पुण्यात्मा थ ।पुरुष और स्त्री सभी गुणवान् और चतुर थे तथा सभी पण्डित और ज्ञानी थे-

सब निर्दंभ धर्मरत पुनी । नर अरु नारि चतुर सब गुनी ।

सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी ।सब कृतग्य नहि कपट सयानी।।४।। रा०च०पृ०८६२

इस प्रकार तुलसी के अनुसार समाज का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जिसमे सभी व्यक्ति अपने वर्ण धर्म का पालन करे और कोई किसीसेभेद भाव नही माने, तथा समाज का प्रत्येक व्यक्ति सतो,देवताओ और ब्राह्मणो का सम्मान कर सके ।

सूरदास

सूरदास के अनुसार भक्तो के समाज में जात-पॉत का भेद-भाव नही होना चाहिए क्योंकि राम किसी की जाति का विचार न करके युग युग से भक्ति भाव को ही मानते चले आये है -

जाति न काहू की प्रभु जानत । भक्ति-भाव हरि जुग जुग मानत ।सू० रा०च० पृ० ५०।।

केशवदास

केशव ने अयोध्या के समाज का वर्णन करते हुए कहा है कि उस समाज मे चारो वर्णों के लोग है। केशव के अनुसार ब्राह्मण सब गुणो से विभूषित है और उनकी बुद्धि, शिक्षा से सयमित है। श्रेष्ठ क्षत्रिय क्षात्रधर्म मे प्रवीण है और वैश्य सत्य युक्त तथा पाप रहित व्यवहार करते है, एव शूद्रो के मन मे भी शक्ति का जागरण है। इस प्रकार समाज के चारों वर्ण गुण सम्पन्न है -

पण्डित गण मंडित गुण दण्डित मति देखिये।
क्षत्रियवर धर्म प्रवर क्रुद्ध समर लेखिये ।।
वैश्य सहित सत्य रहित पाप प्राट मानिये ।।
शूद्र सकति विप्र भगति जीव जगत जानिये ।।४३।।प्र०१रा०च०

समाज मे वर्णविभाजन होना चाहिए केशव इसके पक्ष में है। केशव भी तुलसी की भाँति समाज में ब्राह्मणो को अवध्य और पूज्य मानते है तथा केशव ने शूद्र को तप करने का अधिकार नही दिया है -

सनाढ्य पूजा अघ ओघ हारी। अखंड आखण्डल लोक धारी ।।
अशेष लोकावधि भूमिचारी। समूल नाशै नृप दोष कारी ।।३०।।पृ०२१।।

साधु होइ असाधु राखत द्विजन हू को मान।
सकल मुनिगण मुकुट मणि को मदियै अभिमान ।।११। प्र०२७।
लोक मे लोक बडो अपलोक, सु केशवदास जु होउ सु होऊ।।
विप्रन के कुल को भृगुनन्दन। सूर न सूरज के कुल कोऊ ।।३३।प्र० ७।
निजु शूद्रन की तपसा शिशुपालक। बहुधा भुवदेवन के शव बालक ।।
करि बेगि बिदा सिगरे सुरनायक। चढि पुष्पकयान चले रघुनायक ।।१४।।
राम तहीं सिर शूद्र को खड्यो। ब्राह्मण को सुत जीवन मंड्यो।।१६।।पृ०३३।।

इस प्रकार सगुण रामभक्तो ने समाज मे चारवर्णो का होना आवश्यक माना है। सगुण भक्तो के विचारो से यह भी प्रतीत होता है कि वे समाज व्यवस्था की दृष्टि से वर्ण भेद को जन्मना मानते हैं वैसे वे भक्ति की दृष्टि से वर्ण भेद को नही मानते। सगुण भक्तो ने अपनी समाज व्यवस्था मे ब्राह्मण को सर्वोच्च स्थान दिया है।

ग   धर्म का स्वरूप

समाज और धर्म एक दूसरे पर अवलम्बित है। समाजकी व्यवस्था के अनुसार धर्म का विकास होता है। जिस समाज में सामाजिक नियम और बन्धन कठोर होते है उस समाज के धर्म का विकास अवरुद्ध हो जाता है और उसमे रूढिवादिता आ जाती है। जिस समाज के नियमो मे उदारता और सरलता होती है उस समाज का धर्म विकासशील रहता है। नीचे सगुण राम भक्तो की धर्म-कल्पना का संक्षेप मे निरूपण किया जा रहा है।

गोस्वामी तुलसीदास

तुलसी ने धर्म की लोक धर्म के रूप में व्याख्या की है। तुलसी के अनुसार समाज की सुख समृद्धि के लिए वर्ण और आश्रम धर्म का होना आवश्यक है। ... तुलसी के अनुसार वर्णाश्रम धर्म का पालन करते हुए वेदमार्ग पर चलने से सुख प्राप्त होता है, और कभी कोई भय, रोग और शोक नहीं सताता -

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदापावहि सुखहि नहि भय सोक न रोग ।।२०।। रा०च०पृ०८६१।

तुलसी ने वर्ण धर्म की पृथक् पृथक व्याख्या तो नही की है, किन्तु उन्होने यह कह कर वर्ण धर्म की ओर संकेत किया है कि उस ब्राह्मण का सोच करना चाहिए जो वेद से अपरिचित और अपना वर्ण धर्म छोडकर विषयासक्त रहता है, उस राजा क्षत्रिय का सोच करना चाहिए, जो प्रजा को प्राणो के समान प्रिय नही समझता, और जो नीति से अनभिज्ञ है, उस वैश्य का सोच करना चाहिए जो धनवान् होकर भी कृपण रहता है, और जो अतिथि-सत्कार तथा शिव की भक्ति करने मे चतुर नही है, उस शूद्र का सोच करना चाहिए जो ब्राह्मणो का अपमान करता है, बहुत बोलता है, मान प्रशंसा चाहता है और ज्ञान का घमंड करता है --

सोचिअ बिप्र जो बेद बिहीना। तजि निज धरमु बिषय लयलीना ।।
सोचिअ नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना ।।२।।
सोचिअ बयसु कृपन धनवानू। जो न अतिथि सिव भगति सुजानू।
सोचिअ सूद्रु बिप्र अवमानी। मुखर मानप्रिय ग्यान गुमानी ।।३। रा०च०पृ०४७०।।

इसी प्रकार तुलसी ने आश्रम धर्म की ओर भी संकेत किया है। तुलसी के अनुसार उस ब्रह्मचारी के सम्बन्ध में सोच करना चाहिए जो अपने ब्रह्मचर्य व्रत को छोड़ देता है और गुरु-आज्ञा का पालन नहीं करता। उस गृहस्थ आश्रम का सोच करना चाहिए जो मोहवश कर्म पथ का त्याग करता है। सोच उरावानप्रस्थी के सम्बन्ध में करना चाहिए जो तप को छोड़ कर भोगों की कामना करता है, और सोच उस सन्यासी का करना चाहिए जो ज्ञान- और वैराग्य से हीन है तथा संसार के प्रपंच में फँसा है -

सोचिअ पुनि पति बंचक नारी। कुटिल कलहप्रिय इच्छा चारी।
सोचिअ बटु निज ब्रतु परिहरई। जो नहिं गुर आयसु अनुसरई।।४।।
सोचिअ गृही जो मोहबस करइ करम पथ त्याग।
सोचिअ जती प्रपंच रत बिगत विवेक बिराग।।१७२।।
बैखानस सोइ सोचै जोगू। तपु बिहाइ जेहि भावइ भोगू।।
सोचिअ पिसुन अकारन क्रोधी। जननि जनक गुर बंधु बिरोधी।।१।।
रा०च० पृ० ४७१

इस प्रकार तुलसी ने वर्णाश्रम धर्म की ओर भी संकेत अवश्य किया है।

तुलसी ने वर्णाश्रम धर्म के अन्तर्गत हिन्दू धर्म के अनुसार जातकर्म नामकरण, चूड़ाकर्म, उपनयन और दाह-संस्कार आदि का भी उल्लेख किया है -

नदी मुख सराध करि जात करम सब कीन्ह।।१९३।।रा०च०पृ० १९४।

कछुक दिवस बीते एहि भाँति। जात न जानिअ दिन अरु राति।।
नामकरन कर अवसरु जानी। भूप बोलि पठए मुनि ग्यानी।।१।।रा०च०पृ०१९७
चूडाकरण कीन्ह गुरु जाई। बिप्रन्ह पुनि दछिना बहु पाई।
परम मनोहर चरित अपारा। करत फिरत चारिउ सुकुमारा।।२।।पृ०४९९।।

तुलसी के धर्म में ~~किसी भी धर्म~~ खंडनात्मक प्रवृत्ति का लगभग अभाव है। तुलसी ने किसी भी धर्म के देवी, देवता की निन्दा न करके सबको अपने धर्म में स्थान दिया है --

पूजी ग्राम देबि सुरनागा। कहेउ बहोरि देन बलिभागा।।
जेहि बिधि होइ राम कल्यानू। देहु दया करि सो बरदानू।।३।।पृ०३४१।।

१- एहि बिधि दाह क्रिया सब कीन्ही। बिधिवत न्हाइ तिलांजुलि दीन्ही।।३।।रा०च०पृ० ४९९।।

तुलसी ने अपने भक्ति धर्म में बहु देवो शिव,ब्रह्मा,विष्णु,सूर्य,गणेश आदि को स्थान अवश्य दिया ह परन्तु तुलसी बहुदेवोपासक नही है। तुलसी बहुदेवोपासक न होकर एक देवोपासक ही हैं, इसे उन्होने स्वय स्पष्ट किया है -

को करि कोटिक कामना, पूजै बहु देव।
तुलसिदास तेहि सेइये संकर जेहि सेव ।।वि०प०१०७।।६।।

ईसु न, गनेसु न, दिनेसु न, धनेसु न,
सुरेसु व सुर गौरि गिरापति नहि जपने।
तुम्हरेई नामको, भरोसो भव तरिवेको,
बैठें उठें जागत-बागत,सोएँ, सपनें ।।कवि० ७८।पृ०१५१।।

सोये न दिगोस, न दिनेस, न गनेस, गौरी,
हित के न मानै बिधि हरिउ न हरू।
राम नाम ही सों जोग छेम, नेम, प्रेम, पन,
सुधा सो भरोसो एहु, दूसरो जहरू ।।२।।वि०प० २५०।।

इस प्रकार तुलसी के धर्म में एकदेवोपासना को ही स्थान प्राप्त हुआ है। तुलसी ने अपने धर्मान्तर्गत श्राद्ध और तर्पण आदि क्रियाओ का भी हिन्दू धर्म के अनुरूप उल्लेख किया है[1] -

मंदोदरी आदि सब देइ तिलाजलि ब ताहि।
भवन गईं रघुपति गुन गन बरनत मन माहि ।।१०५।।पृ०८४५।।

तुलसी का धर्म हिन्दू धर्म के सभी अंगो को ग्रहण करता हुआ विकसित हुआ है। मनु ने जिस मानव धर्म की व्याख्या की है और हिन्दू धर्म में जो लोक-धर्म का स्वरूप प्राप्त होता है, तुलसी ने अपने धर्म में उनका भी समुच्चय किया है।

लोकधर्म के अन्तर्गत स्त्री, पुरुष और पिता-पुत्र आदि के धर्म का उल्लेख किया जाता है। तुलसीके अनुसार सास,श्वसुर और गुरु की सेवा करना तथापति की आज्ञा का पालन करना स्त्री का धर्म है। सास श्वसुर के चरणों की पूजा 'सेवा. करने से बढ़ कर :स्त्री के लिए दूसरा कोई भी धर्म नहीं है। अनसूया सीता को स्त्री धर्म बतलाती हुई कहती है कि तन मन और बचन से पति के चरणों मे प्रेम करना ही स्त्री के लिये धर्म, व्रत और नियम है --

---

(१) रा० च० पृ०९८४

सासु ससुर गुर सेवा करेहू। पति रुख लखि आयसु अनुसरेहू ।।
अति सनेह बस सखी सयानी । नारिधरम सिखवहि मृदु बानी ।।३।।रा०च०पृ०३११
एहि ते अधिक धरमु नहिं दूजा । सादर सासु ससुर पदपूजा ।।
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी । होइहि प्रेम विकल मति भोरी ।।३।।पृ०३८३
धीरज धर्म मित्र अरु नारी । आपद काल परिखिअहिं चारी ।।
वृद्ध रोग बस जड धनहीना । अंध बधिर क्रोधी अति दीना ।।४।।
ऐसेहु पति कर किऍं अपमाना । नारि पाव जमपुर दुख नाना ।।
एकइ धर्म एकव्रत नेमा । कायँबचन मन पति पद प्रेमा ।।५।। पृ० ६०१ ।।

और जो स्त्री छल छोडकर पतिव्रत धर्म का पालन करती है, वह बिना परिश्रमके ही परम गति को प्राप्त होती है -

छनसुख लागि जनम सत कोटी । दुख न समुझ तेहि सम को खोटी ।
बिनु श्रम नारि परम गति लहई ।पतिब्रत धर्म छाडि छल गहई ।।६।।पृ० ६०१।।
सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ ।
जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय।।५।। क पृ०६०२।।

पुत्र धर्म बताते हुए तुलसी कहते हैं कि पिता की आज्ञा का पालन करना ही पुत्र का परम पुरुषार्थ, स्वार्थ, सुयश,परमार्थ और धर्म है ---

मोर तुम्हार परम पुरुषारथु । स्वारथु सुजसु धरमु परमारथु ।।
पितु आयसु पालिहिं दुहु भाई । लोक बेद भल भूप भलाई ।।२।।पृ०५८४।।

तथा तुलसी की कौसल्या के अनुसार पिता की आज्ञा का पालन करना ही सब धर्मों में श्रेष्ठ धर्म है --

सरल सुभाउ राम महतारी । बोली बचन धीर धरि भारी ।।
तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका । पितु आयसु सब धरमक टीका ।।४।।पृ० ३७८।।

मानव धर्म के अन्तर्गत मनु ने धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, धी, विधा सत्य और अक्रोध का उल्लेख किया है।[1] मानव धर्म के अन्दर तुलसी ने सत्य, श्रद्धा, ज्ञान, विज्ञान, दया, अहिंसा और परोपकार का वर्णन किया है -

---

१- धृति' क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिंद्रिय निग्रह ।
धीर्विधा सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम् ।।मनु० ७।६२।।

तात कृपा करि कीजिअ सोई । जातें अवध अनाथ न होई ।

मंत्रिहि राम उठाइ प्रबोधा । तात धरम मतु तुम्ह सबु सोधा ।।१।।

सिबि दधीच हरिचंद नरेसा । सहे धरम हित कोटि कलेसा ।

रंति देव बलि भूप सुजाना । धरमु धरेउ सहि संकट नाना ।।२।।

धरमु न दूसर सत्य समाना । आगम निगम पुरान बखाना ।।

मै सोइ धरमु सुलभ करि पावा । तजें तिहूँ पुर अपजसु छावा ।।३।।पृ०४०६।।

धर्मरूपी तडाग ग्यान बिग्याना । ए पंकज बिकसे बिधि नाना ।।

सुख संतोष बिराग बिबेका । बिगत सोक ए कोक अनेका ।।४।।पृ०६०१।।

परहित सरिस धर्म नहि भाई । पर पीडा सम नहिं अधमाई ।।

निर्नय सकल पुरान बेद कर । कहेउँ तात जानहिं कोविद नर ।।१।।पृ०६०६।।

बिनु बिग्यान कि समता आवइ । कोउ अवकास कि नभ बिनु पावइ।।

श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई ।बिनु महि गंध कि पावइ कोई ।।२।।रा०च०पृ०६५१।।

सत उदय संतत सुखकारी । बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी ।।

परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा । पर निंदा सम अघ न गरीसा ।।११।पृ०६६०।।

अघ कि पिसुनता सम कछु आना । धर्म कि दया सरिस हरिजाना।।५।।रा०च०पृ०६७६।

तुलसी ने धर्म और कर्म में कोइ अन्तर नहीं माना है । तुलसी के अनुसार जिस कर्मसे ब्रह्म प्राप्ति होती है, उसके कर्म समान दूसरा कोइ धर्म नहीं है -

तब मैं हृदयँ बिचारा जोग जग्य ब्रत दाना ।

जा कहुँ करिअ सो पैहउँ धर्म न एहि सम आन ।।४८।।पृ० ६१५।।

तुलसीदास ने युगानुसार भी धर्म का विवेचन किया है । तुलसी के अनुसार धर्मके चार चरण सत्य, दया, तप और दान[१] हैं जिनमें से कलियुग में केवल एक ही चरण दान रहता है । कलियुग में किसी भी विधि से दान दिया जाये वह कल्याण ही करता है -

प्रगट चारिपद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान ।

जेन केन बिधि दीन्हे दान करइ कल्यान ।।१०३ ख ।।

१- राम राज्य में धर्म के चारों चरण विद्यमान थे -

चारिउ चरन धर्म जग माहीं । पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं ।।

रामभगति रत नर अरु नारी । सकल परम गति के अधिकारी।।२।।रा०च० पृ०८८२

तुलसी के अनुसार शुद्ध सत्व गुण, समता, विज्ञान और मन की प्रसन्नता का उदय होना सत्युग का धर्म है। सत्वगुण अधिक रजोगुण उससे कुछ कम, कर्मों में प्रीति और सब प्रकार से सुख का होना त्रेता का धर्म है और रजोगुण अधिक सत्वगुण बहुत कम और कुछ तमोगुण का होना तथा मन में हर्ष और भय का होना द्वापर का धर्म है-

निन जुग धर्म होहि सब केरे। हृदयँ राम माया के प्रेरे।
सुद्ध सत्व समता बिग्याना। कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना ।।१।।
सत्व बहुत रज कछु रति कर्मा। सब बिधि सुख त्रेता कर धर्मा ।।
बहु रज स्वल्प सत्व कछु तामस। द्वापर धरम हरष भय मानस ।।२।।

तुलसी के अनुसार जब तमोगुण बहुत हो तथा रजोगुण कम और सर्वत्र विरोध भाव हो तब कलियुग का धर्म समझना चाहिए, बुद्धिमान व्यक्ति युगों के धर्म को समझ कर, अधर्म का त्याग करते हैं और धर्म में अनुरक्ति रखते हैं -

तामस बहुत रजोगुन थोरा। कलि प्रभाव बिरोध चहुँ ओरा।
बुध जुग धर्म जानि मन माहीं। तजि अधर्म रति धर्म कराहीं ।।३।। रा०च० पृ०९९४।।

किन्तु तुलसी के अनुसार जिसका राम के चरणों में अत्यन्त प्रेम होता है उस पर काल धर्म का प्रभाव नहीं पड़ता -

काल धर्म नहि ब्यापहिं ताही। रघुपति चरनप्रीति अति जाही ।।
नट कृत बिकट कपट खगराया। नट सेवकहि न ब्यापइ माया ।।४।।पृ० ९९४।।

तुलसी के अनुसार कलियुग मे सत्व प्रधान धर्म तो रहता नहीं। इस युग मे तो आसुरी धर्म का ही आधिक्य रहता है। आसुरी धर्म जीव को अज्ञानान्धकार मे डाल कर भ्रष्ट करता है -

कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सदग्रंथ।
दंभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट किए बहु पंथ ।।९७।। क
भए लोग सब मोह बस लोभ ग्रसे सुभ कर्म।
सुनु हरिजन ग्यान निधि कहउँ कछुक कलिधर्म ।।९७।। ख
बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति बिरोध रत सब नर नारी।
द्विज श्रुति बेंचक भूप प्रजासन। कोउ नहि मान निगम अनुसासन ।।१।।
मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा।
मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ता कहुँ संत कहइ सब कोई ।।२।।

गोइ सयान जो परधन हारी । जो कर दंभ सो बड़ आचारी ।
जो कह झूँठ मसखरी जाना । कलिजुग सोइ गुनवंत बखाना ।।३।।
निराचार जो श्रुति पथ त्यागी । कलिजुग सोइ ग्यानी सो बिरागी ।।
जाके नख अरु जटा बिसाला । सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला ।।४।।
असुभ वेष भूषन धरे भच्छाभच्छ जे खाहिं ।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्य ते कलिजुग माहिं ।।९८।। क ।।
हरइ सिष्य धन सोक न हरई । सो गुर घोर नरक महुँ परई ।।
मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं । उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं ।।३।।

रा०च० पृ० ६५६।।

आपु गए अरु तिन्हहू घालहिं । जे कहुँ सत मारग प्रतिपालहिं ।।
कल्प कल्प भरि एक एक नरका । परहिं जे दूषहिं श्रुति करि तरका ।।२।।
भए बरन संकर कलि भिन्नसेतु सब लोग ।
करहिं पाप पावहिं दुख भय रुज सोक बियोग ।।१००। क
सुनु खगेस कलि कपट हठ दंभ द्वेष पाषंड ।
मान मोह मारादि मद ब्यापि रहे ब्रह्मंड ।१०१।। क ।।
तामस धर्म करहिं नर जप तप ब्रत मख दान ।
देव न बरषहिं धरनी बए न जामहिं धान ।। १०१।। ग

तुलसी के अनुसार जहाँ कलियुग पाप और अवगुणों का घर है, वहाँ उसमें एक गुण यह है कि व्यक्ति इसमें राम नाम के जप से वही गति प्राप्त कर लेते हैं जो सतयुग, त्रेता और द्वापर में पूजा, यज्ञ और योग से प्राप्त होती है --

सुनु ब्यालारि काल कलि मल अवगुन आगार ।
गुनउ बहुत कलिजुग कर बिनु प्रयास निस्तार ।।१०२।। क
कृतजुग त्रेतां द्वापर पूजा मख अरु जोग ।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग ।।१०२।। ख ।
कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना । एक अधार राम गुन गाना ।
सब भरोस तजि जो भज रामहि । प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहि ।।३।। पृ०६६३।।

तुलसी के अनुसार इस कलियुग मे न धर्म है, न ज्ञान है, न योग और जप ही है । इसमे तो जो सब भरोसों को छोड़ कर राम नाम का भजन करते हैं वे ही चतुर है --

कठिन काल मल कोस धर्म न ग्यान न जोग जप ।

परिहरि सकल भरोस रामहि भजहि ते चतुर नर ।।६।। रा पृ०६०३।।

इस प्रकार तुलसी के अनुसार कलियुग में राम भक्ति ही धर्म है । तुलसी ने यह कहा भी है कि राम के गुण सम्पूर्ण व्रत, धर्म और नियमों के बीज हैं -

राम चरित चिंतामनि चारू । संत सुमति तिय सुभग सिंगारू ।।

जग मंगल गुन ग्राम राम के । दानि मुकुति धन धरम धाम के ।।१।।

सद्गुर ग्यान बिराग जोग के । बिबुध बैद भव भीम रोग के ।।

जननि जनक सिय राम प्रेम के । बीज सकल व्रत धरम नेम के ।।२।।रा०च०पृ०६४।।

और राम नाम सर्वधर्ममय है --

जथा भूमि सब बीजमय नखत निवास अकास ।

राम नाम सब धरममय जानत तुलसीदास ।।२९।।दो०४०

इस प्रकार तुलसी ने राम भक्ति को ही कलियुग का धर्म माना है ।

सूरदास .

सूर की राम पदावली से ऐसा संकेत मिलता है कि सूर का भी वर्ण धर्म और युगधर्म में विश्वास है । सूर का रावण अपने क्षात्रिय धर्म वर्ण धर्म को छोड़कर विभीषण की भाँति राम की शरण में जाना नहीं चाहता -

यह जस जीति परम पद पावौं, उर-बसै सब लोइ ।

सूर सकुचि जौ सरन समारौं, छत्री धर्म न होइ ।।सू०रा०च० पृ०१४१।।

सूर ने यह कह कर कि त्रेता में भी सतयुग का सा धर्माचरण होने लगा है, युगधर्म को मान्यता दी है-

अति आनंद भयौ अवनी पर, राम राज सुख-रास ।

कृतजुग धर्म भए त्रेता में पूरन रमा प्रकाश ।।वही० २१२।।पृ०२४०।।

वैसे सूर ने राम नाम के दो अक्षरों को, धर्म अंकुर के पावन दो दल कह कर राम नाम अथवा राम भक्ति को ही धर्म रूप माना है --

अद्भुत राम नाम के अंक । धर्म अंकुर के पावन द्वै दल ।।सू०वि०प०पृ०१५०।।

केशवदास .

भारतीय धर्मशास्त्रों में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ माने गये हैं । जिनमें धर्म का प्रथम स्थान है । इसी के अनुरूप केशव ने भी चार पुरुषार्थों में धर्म को

धर्म करत अति अर्थ बढावत । संतति हित रति कौविद गावत ।।

संतति उपजत ही निसि बासर । राघव तन मन मुदित महीधर ।।८।। रा०च०पृ० १८।।

केशव ने अपने धर्मान्तर्गत पुत्र धर्म, नारि धर्म और विधवा धर्म का वर्णन किया है। केशव के अनुसार पिता की आज्ञामानना पुत्र का धर्म है, और पति की सेवाकरना नारि का धर्म है तथा संयमपूर्वक जीवन व्यतीत करना विधवा स्त्री का धर्म है -

अन्न देइ सीरा देइ राखि लेइ प्राण जात । राज बाप मोल लै करै जु पोषि दाह गात।।

दास होय पुत्र होय शिष्य होइ कोइ माइ।शासना न मानई तो कोटि जन्म नर्क जाइ।।

वही प्र०६।६।।

नित पति पंथहि चलिये । दुख सुख को दलु दलिये ।।

तन मन सेवहु पति को । तब लहिये सुभ गति को ।।१२।।

जोग जाग व्रत आदि जु कीजै ।न्हान गानगुन दान जु दीजै ।।१३।।

धर्म कर्म सब निष्फल देवा । होहि एक फल दै पति सेवा।।१४।।

गान बिन मान बिन हास बिन जीवही ।

तप्त नहि खाय जल सीत नहि पीवहीं ।।

तेल तजि खेल तजि खाट तजि सोवही ।

सीत जल न्हाय नहि उष्ण जल जोवहीं ।।१८।।

खाय मधुरान्न नहि पाय पनहीं धरै ।

काय मन बाच सब धर्म करिबो करै ।।

कृच्छ्र उपवास सब इन्द्रियन जीतहीं ।

पुत्र सिख लीन तन जौलगि अतीतहीं ।।१९।।रा०च० प्र०६।।

तुलसी और सूर की भाँति केशव ने भी पूजा भक्ति को ही धर्म माना है -

जिय जान यहई योग । सब धर्म कर्म प्रयोग ।।

तेहि ते यही उर लाव । मन अनत कहुँ न चलाव ।।३१।।प्र० २५।।

__सेनापति__ :

तुलसी, सूर आदि की भाँति सेनापति ने भी राम नाम को धर्म-धाम मान कर भक्ति और धर्म का समन्वय किया है .अत सूरके अनुसार भक्ति ही धर्म है --

कामना कौ कामधेनु, रसना दौ बिसराम
घरम कौ घाम राम नाम जग जान्या है ।।क०र० ४।७१५ ।।

इस प्रकार सगुण राम भक्तो ने धर्म के अन्तर्गत वर्णाश्रम धम, लोक धर्म, पुत्र,स्त्री, पुरुष आदि का धर्म मानव धर्म सत्य,दया,अहिंसा, परोपकार, ज्ञान, विज्ञान आदि और युग धर्म को लेते हुए राम भक्ति को ही कलिकाल का सबसे आवश्यक धर्म माना है ।

-

ख राजनीति

तुलसीदास

धर्म और राजनीति में बहुत निकट का सम्बन्ध है । धर्म के बिना राजनीति हतप्रभ रहती है । तुलसी के अनुसार धर्मशील व्यक्ति को ही राजा होना चाहिए-

कहउँ साँचु सब सुनि पतिआहु । चाहिअ धरमसील नरनाहू ।।
मोहि राजु हठि देइहहु जबही ।रसा रसातल जाइहि तबही ।।१।।
रा०च० पृ०४७५।।

तुलसी के अनुसार आदर्श राज्य की कसौटी यही है कि उसमे धर्मअपने चारो चरणों 'सत्य,शौच,दया,दान' सहित विद्यमान हो और सभी पुरुष धर्मपरायण हों । राम राज्य में सभी स्त्री, पुरुष धर्मशील है और धर्म अपने चारो चरणो सहित अवस्थित हैं --

चारिउ चरन धर्म जग माहीं । पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाही ।।२।।
सब निर्दंभ धर्मरत पुनी । नर ह अरु नारि चतुरसब गुनी ।।४।।रा०च० पृ०८६२।।

तुलसी के अनुसार धर्म और राजनीति अभिन्न है । तुलसी के अनुसार राज-नीति स्वय ही धर्म नीति है जिसके साम, दान, दंड और भेद ये चार चरण है । ये राजनीति के चार चरण उस राजा के हृदय मे अवस्थित रहते है, जो धर्म शील होता है ।जो राजा धर्मपरायण नही होता, उसको ये गुण छोड़ देते हैं -

साम दान अरु दंड बिभेदा । नृप उर बसहिं नाथ कह बेदा ।।
नीति धर्म के चरन सुहाए । अस जियँ जानि पहिं आए ।।५।।
धर्महीन प्रभु पदबिमुख काल बिबस दससीस ।
तेहि परिहरि गुन आए सुनहु कोसलाधीस ।।३८।। रा०मा०च० पृ०७७५-७७६।।

तुलसी के अनुसार राजा को मुख के समान होना चाहिए जो खाने पीने की दृष्टि से तो एक है, पर विवेकसहित वह पालन पोषण सब अंगों का करता है -

मुखिआ मुखु सो चाहिए खान पान कहुँ एक ।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक ।।३१५।।

तथा राजा को माली, सूर्य और कृषक के समान नीति में निपुण होना चाहिए किन्तु कलियुग में ऐसे राजा कभी कभी ही हुआ करेंगे --

माली भानु किसान सम नीति निपुन नरपाल ।
प्रजा भाग बस होहिंगे कबहुँ कबहुँ कलिकाल ।।५०७।।दो०

बरषत हरषत लोग सब करषत लखै न कोइ ।
तुलसी प्रजा सुभाग ते भूप भानु सो होइ ।।५०८।।दो०

तुलसी के अनुसार राजा को कर नीति का इस प्रकार से अनुसरण करना चाहिए कि जिससे प्रजा को कोई कष्ट न हो, और सुविधानुसार उपलब्ध हुआ कर जनता के हित सम्पादन में ही व्यय करना चाहिए -

सुधा सुनाजु कुनाज फल आम असन सम जानि ।
सुप्रभु प्रजा हित लेहिं कर सामादिक अनुमानि ।।५०९।।दो०

पाके पकाए बिटप दल उत्तम मध्यम नीच ।
फल नर लहैं नरेस त्यों करि बिचार मन बीच ।।५१०।।

धरनि धेनु चारितु चरत प्रजा सुबच्छ पेन्हाइ ।
हाथ कछू नहिं लागि है किएँ गोड़ की गाइ ।।५१२।।

तुलसी के अनुसार ऐसे ही नीतिनिपुण और बिबेकशील राजा के राज्य में प्रजा सुखी रहती है --

राम बास बन संपति भ्राजा । सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा ।।
सचिव बिरागु बिबेकु नरेसु । बिपिन सुहावन पावन देसु ।।३। रा०च० पृ०५२०।।

और राज्य प्राप्त करके राजा को नीति नहीं छोड़नी चाहिए, प्रत्युत मन, बचन और कर्म से प्रजा का पालन करना चाहिए -

कहब सँदेसु भरत के आएँ । नीति न तजिअ राजपदु पाएँ ।।

पालेहु प्रजहि करम मन बानी । सेएहु मातु सकल सम जानी।।२।।रा०च०पृ०४५५।

तुलसी के अनुसार जो राजा धर्म-परायण, नीति निपुण, राम भक्त और सब प्रकार से गुणवान् होता है, उसका राज्य सदैव स्थिर रहता है, और उसे विजय, विवेक और ऐश्वर्य इत्यादि कभी नहीं छोड़ते --

भूमि रुचिर रावन सभा अंगद पद महिपाल ।

धरम राम नय सीय बल अचल होत सुभ काल ।।५१६।।

प्रीति राम पद नीति रति धरम प्रतीति सुभायँ ।

प्रभुहि न प्रभुता परिहरै कबहुँ बचन मन कायँ ।।५।।७।।

करवे कर मन के मनहि बचन बचन गुन जानि ।।

भूपहि भूलि न परिहरै बिजय बिभूति सयानि ।।५१८ । दो०व०

और जिस राज्य मे शाँत और सुयोग्य मंत्री होते है उस राज्य का राजा सुख से रहता है --

रैअत राज समाज घर तन धन धरम सुबाहु ।

साँत सुसचिवन सौंपि सुख बिलसइ नित नरनाहु ।।५२१।।दो०व०

तुलसी के अनुसार जिस राजा के राज्य में मुनि और तपस्वी दुःख पाते है, वह बिना अग्नि के ही जलकर भस्म हो जाता है, तथा जिस राज्य मे प्रजा दुःखी रहती है, वह राजा नरकगामी होता है -

मुनि तापस जिन्हते दुखु लहहीं । ते नरेस बिनु पावक दहहीं ।।

मंगल मूल बिप्र परितोषू । दहइ कोटि कुल भूसुर रोषू ।।२।।रा०च०पृ०४३४

रहहु करहु सब कर परितोषू । नतरु तात होइहि बड दोषू ।

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृपु अवसि नरक अधिकारी ।।३।।

वही पृ० ३६० ।।

और जो राजा पापी एवं नीतिहीन होता है, वह बार बार जन्म मृत्यु को प्राप्त होता रहता है, और ऐसे राजा के राज्य में सुख, सम्पत्ति, कर्म और धर्मादि भी नष्ट हो जाते हैं --

कंटक करि करि परत गिरि साखा सहा स्फूरि ।
मरहि कुनृप करि करि कुनय सौं कुचालि भवभूरि ।।५१४।।दो०क०
काल तोपची तुपक महि दारू अनय कराल ।
पाप पलीता कठिन गुरु गोला पुहुमी पाल ।।५१५।।दो०क०।
बढ़े बघूरे चग ज्यौं ग्यान ज्यौं सोक समाज ।
करमधरम सुख संपदा त्यौं जानिबे कुराज ।।५१३।।दो०क०

इसप्रकार राजा को धर्म और नीति के साथ राज्य का पालन करना चाहिए, पार तर्कों के अनुसार राजा को राज्यासक्त नहीं होना चाहिए । सत जन ऐसी नीति बताते ह कि चौथे पन में राजा को सन्यास ग्रहण करके भगवान् का भजन करना चाहिए-

सत कहहिं असि नीति दसानन । चौथेपन जाइहि नृप कानन ।
तासु भजनु कीजिअ तहँ भर्ता। जो कर्ता पालक संहर्ता ।।२।।रा०च० पृ०७४५।

सूरदास :

सूरदास के अनुसार राम,भरत को राजनीति का उपदेश देते हुए कहते हैं कि हे बन्धु । राजकाज सावधानी के साथ करना और अपना व्यवहार जैसा राजनीति कहतीहै वैसा ही करना । गुरु की सेवा, तथा गा और ब्राह्मणों का पालन करना । माताओं का प्रात साय दोनों समय दर्शन कर लिया करना । गुरु वशिष्ठ और मन्त्री सुमन्त्र से मिल कर प्रजा के हित का विचार किया करना । माताओं की सेवा और प्रजा पालन यही युग युग से चला आया 'राजा का सनातन धर्म है --

बंधू करियौ राज सँभारे ।
राजनीति अरु गुरु की सेवा, गाइ बिप्र प्रतिपारे ।।
कौसल्या कैकई सुमित्रा दरसन साँझ-सवारे ।
गुरु बशिष्ठ और मिलि सुमंत सौं, परजा हेतु बिचारे ।।४३।।
कीजै यह बिचार परसपर, राजनीति समुझायौ ।
सेवा मातु प्रजा प्रतिपालन, यह जुग जुग चलि आयौ ।।४४।।
सू०रा०च०क० पृ० ३८-३६।।

केशवदास :

केशव के अनुसार जगत् मे चार प्रकार के राजा होते हैं । प्रथम प्रकार के राजा वे हैं जो इस लोक को ही सर्वस्व समझते हैं, जैसे बली वेणु । दूसरे प्रकार के राजा

बोलिए न झूठ ऐंठि मूढ पै न कीजिए । दीजिए जु वस्तु हाथ भूलि न लीजिए ।।
नेह तोरिये न देहु दुःख मंत्रि मित्र को । यत्र तत्र जाहु पै पत्याहु ते मित्र को ।।२९।।
जुवा न खेलिये कहूँ जुवान खेद रखिये । अमित्र भूमि माहिं पै गाढ़ा मद्य भखिये ।
करौ न मंत्र मूढ सों न गूढ मंत्र खोलिये। सुपुत्र होहु जै उठि मठीन सों न बोलिये ।।
३०।।

वृथा न पीड़िये प्रजाहि पुत्र मान पारिये ।
असाधु साधु बूझि कै यथापराध मारिये ।।
कुदेव देव नारि को न बाल वित्त लीजिये ।
विरोध विप्र वंश सों सु स्वप्नहू न कीजिये ।।३१।।

पर द्रव्य को तो विष प्राय लेखो । परस्त्री न को ज्यों गुरु स्त्रीन देखो ।
तजौ काम क्रोधौ महामोह लोभौ । तजौ गर्व को सर्वदा चित्त गोभौ ।।ब ३२।।प्र०३६।

केशव के राम के अनुसार राजा को यश का संग्रह करना चाहिए और शत्रु का दमन, तथा सत्संग करना चाहिए और उसे हितैषी मानना चाहिए जो धर्म शिक्षा दे -

यशै संग्रहौ निग्रहौ युद्ध योधा । करौ साधु संसर्ग जो बुद्धि बोधा ।
हितू होय सो देईजो धर्म शिक्षा । अधर्मीनि को देहु जै वाक भिक्षा।।
३३।।प्र० ३६।।

और राजा को ऐसे ब्राह्मण को दान, द्रव्य के बाँटने वाला अधिकारी नहीं बनाना चाहिए जो कृतघ्नी झूठा परस्त्रीगामी और लोभी हो -

कृतघ्नी कुबादी परस्त्री विहारी ।
करौ विप्र लोभी न धर्माधिकारी ।।
सदा द्रव्य संकल्प को रक्षि लीजै ।
द्विजातीन को आपु ही दान दीजै ।।३४।।प्र०३६।।

तथा राजा को राज्य वैभव के वश में नहीं होना चाहिए, प्रत्युत जैसे तैसे राज्यश्री को अपने वश में ही करना चाहिए -

राजश्री बश कैसहूँ होहु न उर अवदात ।
जैसे तैसे आपुबश ताकहँ कीजै तात ।।३६।।प्र०३६।। गा०-र०

केशव के अनुसार राजा को सावधान और जग होकर प्रजा के गुण दोषों की देखभाल करनी चाहिए-

> तुम हो सरवज्ञ सदा सुखदाई । रुहै ताको समुझ तदाई ।।
> जग सोवत है जगतीपति जागे । लपो अपने सब मारग लागे ।।७।।
> नरदेवन पाप परै परजाको । निशिवासर होत न रचक ताको ।।
> गुणदोषन जो जब होत न दर्शी । तबही नृप होय निरैपदपर्शी ।।८।।
> प्र०३४।।

और राजा को दीन जनों के दु ख नष्ट करने चाहिए तथा मित्र दोषी मंत्रदोषी, ब्रह्मदोषी, देवदोषी, और राजदोषी का राज्य से निर्वासन करना चाहिए, तथा लड़ाकू, ठग, निर्दयी, अत्याचारी औरपाखण्डियों को नष्ट कर देना चाहिए तथा आठ प्रकार मनोरंजन, खुशामद, एवं शिष्टाचार में, निज स्त्री से भेद छिपाने के लिये, विवाह में, धनरक्षार्थ, प्राणरक्षार्थ, गऊ ब्राह्मण की हत्या बचाने के लिए दे झूठ बोलने वालों को बंदीगृह में डालना चाहिए -

> राजा रामचंद्र तुम राज करौ सब काल
> दीरघ दुसह दुख दीनन को दारिये ।
> केशौदास मित्र दोष मंत्रदोष ब्रह्मदोष
> देवदोष राजदोष देश तै निकारिये ।
> कलही कृतघ्न महिमंडल के बरिबराउ
> पाषंडी प्रचण्ड खंड खंड करि डारिये।
> बचक कठोर ठेलि कीजै बारावाट आठ
> झूठ पाठ कंठ पाठकारी काठ मारिये ।।७।।प्र०२७।।

केशव के अनुसार राजा को अपने सगे सम्बन्धी का ध्यान न करके सभी अपराधियों को समान रूप से दण्ड देना चाहिए -

> धूर्त ढीठ सब प्रिय परदार ।परहिंसा पर द्रव्यक-हार ।।
> झूठे ठग बटपार अनेक । तिनको दंड देय सब सेक ।।
> राजा सबको दंडहि करै । जो जन पाइ कुपैडे धरै ।।
> नाती गोती कछु नहीं गनै ।प्रीतमसगो न छोड़त बनै ।।
> वीरसिंह चरित प्रकाश ३१ पृ०१७१-१७२ ।।

केशव के मतानुसार राजा का एक महत्वपूर्ण कर्तव्य यह भी है कि वह अपने राज्य को धन धान्य से सम्पन्न करे और राज्य का धन धर्म के निमित्त ही व्यय करे-

उपजावै धन धर्म प्रकार । ताको रक्षा करे अपार ।
धन बहु भाँति बढावै राज । धन बाढे सबही को काज ।।
ताको सरबै धर्म निमित्त । प्रतिदिन दीजै विप्र निमित्त ।।वीरसिंह चरित्र प्रकाश ३१।पृ०१६६।।

केशव के अनुसार जिस राजा के राज्य मे मंत्री, मित्र, पुरोहित, वैद्य, लेखक, दूत और रक्षक मूर्ख होते है वह राजा अधिक काल तक राज्य नहीं कर पाता -

मंत्री मित्र दोष उघरै । मंत्री मित्र जु मूरख करै ।।
मंत्री मित्र सभासद सुनौ । प्रोहित वैद जोति सी गुनौ ।।
लेखक दूत स्वार प्रतिहार । सौंपि सुकृत पाहि भंडार ।।
इतने लोगनि मूरख करै । सो राजा चिरु राज न करै ।।वी०सि०च० प्र०३०। पृ० १६३।।

केशव के अनुसार राज्य और धर्म का अभिन्न सम्बन्ध है । अत राजा को राज्य का पालन पोषण करते समय और अपराधियों को दंड देते समय धर्म का ध्यान रखना चाहिए । केशव के अनुसार दान, दया, मति, शौर्य, सत्य,प्रजापालन और दंड नीति ये सब राजा के धर्म है --

अपनै अधिकारिनि कौ राज ।चकरन तै समुझै सब काज ।।
साधु होय तौ पदवी देइ । जानि असाधु दंड को देइ ।।३१।।वही पृ०१७०।
साहसीनि तैं रक्षा करै । चोर चार बटपारनि हरै ।।
दुहुँ बात राजहि घटि परै । ताते धर्म दंड कौ धरै ।।प्र०३१।पृ०१६६ ।वही
दान दया मति शूरता, सत्य प्रजा प्रतिपाल ।
दंडनीति ए धर्म हैं, राजनि के सब काल ।।२३।।वि०गीता पृ०४२-४४।।

इस प्रकार राज्य धर्म का विवेचन करने के उपरान्त केशव ने यह भी कहा है कि राज्यश्री अत्यन्त चचल है अत जो इस राज्यश्री का सावधान होकर सेवन करता है उसे यह सच्ची मुक्तिप्रदान करती है, और जो असावधानी से इसका सेवन करता है, वह नरकगामी होता है -

सावधान ह्वै सेवै याहि । साँचो देत परम पद ताहि ।
जितने नृप याके बश भये । पलि स्वर्ग मग नरकहिं गये ।।४०।।रा०चं०प्र०२४।।

इस प्रकार सगुण राम भक्तों के अनुसार राज्य ऐसा होना चाहिए जिसमे प्रजा को किसी भी प्रकार का कोई कष्ट न हो । राजा और प्रजा दोनो ही जिस राज्य मे धर्माचरण करते हैं, वह राज्य चिरस्थायी रहता है । जो राजा प्रजा के हित की दृष्टि से राज्य संचालन करता है, वह इसी के द्वारा शुभ गति को प्राप्त होता है ॥

ड अर्थनीति

तुलसीदास

मध्ययुगीन अर्थनीति राजनीति पर निर्भर थी। यदि राज्य व्यवस्था अच्छी और सुदृढ रही तो राज्य अर्थ और धन धान्य मे सम्पन्न होगा । तुलसी के अनुसार राम राज्य मे अच्छी राज्यव्यवस्था होने का ही यह परिणाम था कि प्रजा धनधान्य सम्पन्न और ऐश्वर्य युक्त थी -

लता बिटप मागे मधु चवही । मन भावतो धेनु पय स्रवही ।।
ससि सपन्न सदा रह धरनी । त्रेताँ भइ कृतजुग कै करनी ।।३।।
प्रगटी गिरिन्ह बिबिध मनि खानी । जगदातमा भूप जग जानी ।।
सरिता सकल बहहि बर बारि । सीतल अमल स्वाद सुखकारी ।।४।।पृ०८६४।राम्च
हरषित रहहि नगर के लोगा । करहि सकल सुर दुर्लभ भोगा।।२।।पृ०८६५।।
जहँ भूप रमानिवास तहँ की सपदा किमि गाइए ।।
बैठ बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते ।
सब सुखी सब सच्चरित सुदर नारि नर सिसु जरठ जे ।।रा०च०पृ०८६८।

तुलसी के अनुसार राम राज्य मे ऐसी अर्थव्यवस्था थी कि जीव को अर्थोपार्जन करने की आवश्यकता ही नही थी क्योकि. वहाँ पर बिना ही मूल्य के वस्तुएँ मिल जाती थी -

बाजार रुचिर न बनइ बरनत बस्तु बिनु गथ पाइए ।।रा०च०पृ०८६८।।

सगुण भक्तों की अर्थव्यवस्था का आधार जाति-व्यवस्था है । गीता के `श्रेयान्स्वधर्मो विगुण. परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।स्वधर्मे निधन श्रेय परधर्मो भयावह ।३ ३५।। भगवद्गीता।। के अनुसार प्रत्येक जाति को अपना ही कर्म करना चाहिए अन्य का धर्म नहीं अपनाना चाहिए । यही सगुण भक्तों की सामान्य मान्यता थी और इसीलिए उन्होने वर्ण और जाति व्यवस्था कासमर्थन किया है जिसके

संबंध मे पीछे समस्त सगुण राम भक्तो के विचारो का उल्लेख किया जा चुका है ।

'च' कर्म सिद्धांत

भारतीय दर्शन शास्त्रों में कर्म परमार्थ साधन माना गया है, किन्तु साथ ही कर्म को भव-बन्धन का कारण भी कहा गया है । दर्शनशास्त्रो के अनुसार जीव जैसा कर्म करता है, उसको वैसा ही फल प्राप्त होता है । जीव अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार विभिन्न योनियो और लोको मे भी भ्रमण करता है[1] । संक्षेप मे यही भारतीय सिद्धान्त है । इसी कर्म सिद्धान्त को सगुण राम भक्तों ने भी ग्रहण किया है ।

तुलसीदास

तुलसी के अनुसार कर्म शुभाशुभ दो प्रकार के हैं । ईश्वर शुभाशुभ कर्मों के अनुसार जीव को फल प्रदान करता है,[2] और जो जीव कर्म करता है, उसका फल उसी को प्राप्त होता है अर्थात् एक जीव के कर्मों का फल दूसरे जीव को नही मिलता -

सुभ अरु असुभ करम अनुहारी । ईसु देइ फलु हृदयँ विचारी ।।
करइ जो करम पाव फल सोई। निगम नीति असि कह सबु कोई ।।४।।
रा०च०मा०पृ० ३६६।।

इस जगत में जीव को जो सुख प्राप्त होता है वह सब उसके कर्मों का ही फल है । अर्थात् सुख-दुख की प्राप्ति में कर्म ही प्रधान है[3] -

बोले लखन मधुर मृदु बानी । ग्यान बिराग भगति रसखानी ।।
काहु न कोउ सुख दुख कर दाता । निज कृत करम भोग सबु भ्राता ।।२।।पृ०४०७।
रामचद्रु पति सो बैदेही । सोवत महि बिधि बाम न केही ।।
सिय रघुबीर कि कानन जोगू । करम प्रधान सत्य कह लोगू ।।४।।पृ०४०६।।
जीव करम बस दुख भागी । जाइअ अवध देव हित लागी ।।२।।पृ०३४४ ।।

१- बृहदा० ४।४।५ गीता ३।६,१७।२६

२- भानुबंस भए भूप घनेरे । अधिक एक ते एक बड़ेरे ।
जनम हेतु सब कहँ पितु माता । करम सुभासुभ देइ बिधाता ।।३। रा०च०पृ०५३७।।

३- कौसल्या कह दोसु न काहू । करम बिबस दुख सुख छति लाहू ।।
कठिन करम गतिजान बिधाता । जो सुभ असुभ सकल फल दाता।।२।रा०च०पृ०५५८।

तुलसी के अनुसार कर्म के सम्बन्ध में यह निश्चित सिद्धान्त है कि जो जैसा करता है, उसको वैसा ही फल मिलता है -

जद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पाप पूनु गुन दोषू।
करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा ।।२।।पृ० ५०६
करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा। बवा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा ।।पृ० ३४७।। रा०च०।।

जीव अपने किये गये कर्मों के फलोपभोग से किसी प्रकार से बच नहीं सकता। जीव जो कर्म करता है उसे उसका फल भोगना ही पड़ता है -

निज कृत कर्म जनित फलपायउँ। अब प्रभु पाहि सरन तकि आयउँ।।
सुनि कृपाल अति आरत बानी। एक नयन करि तजा भवानी ।।३।। रा०च० पृ० ५६७।।

तुलसी के अनुसार जीव को जो दुःख भय रोग वियोग और शोकादि होता है वह सब उसके पाप कर्मों अशुभ कर्मों का परिणाम है और उसको जो सुख हर्ष और राम ब्रह्म का साक्षात्कार मोक्ष प्राप्त होता है, वह उसके पुण्य शुभ कर्मों का फल है -

भए बरन संकर कलि भिन्नसेतु सब लोग।
करहिं पाप पावहिं दुख भय रुज सोक बियोग ।।१०० क रा पृ०६९०।।

सो मम लोचन गोचर आगे। राखौं देह नाथ केहि खाँगे ।।
जल भरि नयन कहहिं रघुराई। तात कर्म निज मैं गति पाई ।।४।पृ०६३९।।
तात बचन पुनि मातु हित भाइ भरत असराउ।
मो कहुँ दरस तुम्हार प्रभु सबु मम पुन्य प्रभाउ ।।१२५।।
देखि पाय मुनिराय तुम्हारे। भए सुकृत सब सुफल हमारे।
अब जहँ राउर आयसु होई। मुनि उदबेगु न पावै कोई ।।१।।रा०च० पृ०४३४।।

इस संसार में जन्म मरण सुख दुख लाभ हानि संयोग बियोग आदि सब काल और कर्म के आधीन होकर दिन और रात की भाँति बरबस होता रहता है -

जनम मरन सब दुख सुख भोगा। हानि लाभु प्रिय मिलन बियोगा ।।
काल करम बस होहिं गोसाईं। बरबस राति दिवस की नाईं ।।३।।पृ०५५३।।

तुलसी के अनुसार जीव के विभिन्न योनियों में भ्रमण का कारण भी कर्म ही है -

जेहिं जेहिं जोनि करम बस भ्रमहीं। तहँ तहँ ईसु देउ यह हमहीं।
सेवक हम स्वामी सियनाहू। होउ नात यह ओर निबाहू ।।३।। रा०च०पृ०३५४।।

जब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर मागऊँ ।

जेहिं जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ ।।२। रा०च०पृ०६६७।

जीव कर्म करने में तो स्वतंत्र है परन्तु उसके फलोपभोग में वह परतंत्र है। अर्थात् जीव जैसा कर्म करता है उसकी गति फल को कोई टाल नहीं सकता -

मेटि जाइ नहि राम रजाईं। कठिन करम गति कछु न बसाईं ।।

रामलखन सिय पद सिरु नाईं। फिरेउ बनिक जिमि मूर गंवाईं।।४

पृ०४१२।।

भारतीय धर्मग्रन्थों में कर्म के अन्तर्गत प्रारब्ध या भाग्य का भी उल्लेख मिलता है। जीव के संचित कर्म ही प्रारब्ध कहलाते हैं। यह प्रारब्ध भी जीव के शुभाशुभ कर्मों के अनुसार इष्ट और अनिष्टकारी होता है। तुलसी ने भी अपने कर्म सिद्धान्त के अन्तर्गत प्रारब्ध का वर्णन किया है।

तुलसी के अनुसार पूर्व जन्म के सभी पुण्य-कर्म, राम के दर्शन प्राप्त होने का संयोग उत्पन्न करते हैं -

नाहि त हम कहुँ सुनहु सखि इन्ह कर दरसनु दूरि ।

यह संघटु तब होइ जब पुन्य पुराकृत भूरि ।।२२२। रा०च०२१८।।

और जीव के शुभाशुभ कर्मों के अनुसार लिलाट पर जो कुछ लिखा जा चुका है, उसको देव, दानव, नर नाग और मुनि प्रभृति कोई भी मिटा नहीं सकता --

कह मुनीस हिमवंत सुनु जो बिधि लिखा लिलार।

देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेटनिहार ।। ६८। रा०च० पृ० ६४।।

तथा भाग्य में जो सुख दु:ख लिखा जा चुका है, वह जीव को जहाँ भी वह जाता है, वहाँ पर ही भोगना पड़ता है --

जनि लेहु मातु कलंकु करुना परिहरहु अवसरनहीं ।

दुखु सुखु जो लिखा लिलार हमरें जाब जहँ पाउब तहीं ।। रा०च० पृ०१९७।।

तुलसी के अनुसार तर्क करना :अथवा नव कर्म करना व्यर्थ है क्योंकि जो राम ने रच रखा है वही होगा -

होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा ।।४।।पृ०८२।।

किन्तु बाल्मीकि[१] के लक्ष्मण की भाँति तुलसीदास के लक्ष्मण ऐसे दैववाद का प्रत्याख्यान करते हुए कहते हैं -

नाथ दव कर क्वन भरोसा । पोषिअ हिए दरिए मन रोसा।।

कादर मन कहुँ एक अधारा । दव दैव आलसी पुकारा ।।२।।रा०ला०पृ०७२९।।

इस प्रकार कर्मसिद्धान्त को स्वीकार करते हुए तुलसी कर्म सन्यास के पक्ष में नहीं हैं। जब तक जीव को राम अथवा उनकी प्राप्ति नहीं होती तब तक उसे कर्म करते रहना चाहिए। इसी तथ्य की ओर संकेत करतेहुए तुलसी ने कहा है कि सोच उस गृहस्थ का करना चाहिए जो मोहवश कर्म मार्ग का त्याग करता है -

सोचिअ गृही जो मोह बस करइ करम पथ त्याग ।

सोचिअ जती प्रपंच रत बिगत बिबेक बिराग ।।१७२।।रा०ला० पृ०४७०।।

जीव को अपने स्वधर्म अथवा वर्णाश्रम धर्म का पालन करते रहना चाहिए, क्योंकि वर्ण धर्म के पालन से मोक्ष सुख प्राप्त होता है -

दैहिक दैविक भौतिक तापा।राम राज नहि काहुहि ब्यापा ।।

सब नर करहि परस्पर प्रीति । चलहि स्वधर्म निरत श्रुतिनीति ।।१।पृ०८२१।।

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग ।

चलहि सदा पावहि सुखन्हि नहि भय सोक न रोग ।।२०।८६१ पृ०।।

तब मैं हृदयँ बिचारा जोग जग्य ब्रतदान ।

जा कहुँ करिअ सो पैहउँ धर्म न एहि सम आन ।।४८।।पृ० ६१५।।

इस प्रकार वर्णान्तर्गत जो कर्म किये जाते हैं वे जीव के लिए स्वधर्म रूप हैं, किन्तु इन कर्मों का फल राम के चरणों में प्रेम प्राप्ति ही होनी चाहिए । जिन कर्मों से राम के चरणों में प्रेम उत्पन्न नहीं होता, वे यदि जल जायें तो अच्छा है --

सो सुखु करमु धरमु जरि जाऊ । जहँ न राम पद पंकज भाऊ ।

जोगु कुजोगु ग्यानु अग्यानू । जहँ नहि राम पेम परधानू ।।१।रा०च०पृ०५६४।

सबु करि मागहि एक फलु राम चरन रति होउ ।

तिन्हके मन मंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ ।।१२९।।पृ०४३७।।

तुम्हरेहि भाग रामु बन जाहीं । दूसर हेतु तात कछु नाहीं ।।

सकल सुकृत कर बड फलु एहू । राम सीय पद सहज सनेहू ।।२।।पृ०३६३।।

कर्म के सम्बन्ध में तुलसी का यह भी मत है कि आत्मज्ञान अथवा भगवत्भक्ति की प्राप्ति होनेपर कर्म की अपेक्षा नहीं रहती -

चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि ।

जिमि हरि भगति पाइ श्रम तजहि आश्रमी चारि ।।१६।।रा०च०पृ०६७०।।

बस कि रह द्विज अनहित कीन्हें । कामी कि होहि स्वरूपहि चीन्हे ।।
काहू सुमति कि खल सँग जामी । सुभ गति पाव कि परत्रिय गामी ।।२।।
रा०च० पृ० ६७५।।

सूरदास

सूर के अनुसार कर्मकृत प्रारब्ध को नष्ट करना जीव के वश के बाहर है । सूर के राम स्वयं भाग्य निर्मित लिपि के अनुसार फलोपभोग के लिए तत्पर हैं -

हौं पुनि मानि कर्म-कृत रेखा, करिहौं तात बचन निरबाहू ।
'सूर' सत्य जे पतिव्रत राखौ, चलौ संग जनि, उतहीं जाहू ।।सू०सा०व०२१।पृ०१८।।

और सूर के अनुसार भाग्य रेखा का मिटाना असम्भव है -

'सूर' न मिटै भाग की रेखा, अल्प मृत्यु सुत बाइ बुलाने ।।१२५।वही पृ०१३३।

केशवदास

केशव के अनुसार बुरे कर्मों का फल बुरा होता है । जीव कुत्सित कर्म करके अपनी माया से आप ही बन्धन मे पड़ता है -

जीव बधै सब आपनि माया । कीन्हे कुकर्म मनोवच काया ।।१६।।रा०चं०प्र०२५।

और केशव के अनुसार पाप कर्म करने वाले को मृत्यु दण्ड अवश्य मिलना चाहिए-

कर्म करति यह घोर, विप्रन को दसहू दिसा ।
मत्त सहस्र गज जोम नारी जानि न छोंड़िये ।।६।।प्र० ३।।
नारायण सो हती सकल द्विज दूषण संयुत ।
त्यों अब त्रिभुवननाथ ताड़का मारो यह सुन ।।८। प्र० ३।।

कर्म के सिद्धान्त के सम्बन्ध मे अन्य राम भक्त कवियों से भिन्न केशव की यह भी मान्यता है कि एक जीव के कर्मों का फल दूसरा जीव भी भोग सकता है -

बालकै मृतै सु देखि । धर्मराज सो विशेखि ।।
बात या कही निहारि। कर्म कौन को बिचारि।।१३।।
निज शूद्रन की तपसा शिशुघालक । बहुधा भुवदेवन केशव बालक ।।
करि बेगि बिदा सिगरे सुरनायक । चढ़ि पुष्पक जान चले रघुनायक।।१४।प्र०३३।

केशव ने अपने कर्म सिद्धान्त के अन्दर आचार शास्त्र को भी स्थान दिया है । केशव ने मठाधारी के झूँठे घृत अंश के उपभोग का दंड नरक वास और श्वान योनि में जन्म का होना दिखलाया है --

नाहि तहाँ बहु भाँति परोसो । देहूँ कैहूँ नरा माहि गनो भो ।

ताहि परोसि जहँ घर आयो । रोवन लौ हँसि दठ तानो ।।२१।।

मोहि मातु तात छून भान भोप को किया।

बाा सों सिराय तात तार पगुती किया ।।

ध्या द्रयो भष्यो गयो अनेक नल्वान भो ।

हौं भ्रम्यो निद जौनि ओप जानि स्वान भो ।२३।।प्र०३४।।

केशव ने कुछ अशुभ कर्मों के फल का उल्लेख करते हुए कहा है कि जो मठपति होता है वह अपना यह लोक कलंकित करता परलोक मे नरकवास पाता ह । और जो कोई उस मठाधीश का स्पर्श करता ह, उसके पुण्य नाश हो जाते ह --

लोक कर्‍यो अपवित्र वहि लोक नरक को बास ।

किये जुलोऊ मठपतिहि ताको पुन्य विनास ।।२५।।प्र०३४।।

किन्तु केशव के अनुसार मुक्त जीव किसी प्रकार के कर्म मे लिप्त नही होता -

दाहर हूजति शुद्ध हिये हूँ ।जाहि न लागत कर्म किये हूँ ।।

बाहर मूढ सु अतस यानो । ताकहँ जविन मुक्त बखानो ।।१७।।रा०च०प्र०२५।।

सेनापति ·

सेनापति विभिन्न कर्मकरने के तो पक्ष मे है किन्तु उनके अनुसार जीव को पाप कर्म नही करने चाहिए -

करम करम करि करमन कर पाप

करम न कर मूढ़, सीस भयो सेत ह ।।क०र० ५।।११।।

वैसे सेनापति का यह भी मत है कि यदि जीव अपने कर्मों के द्वारा मोक्ष प्राप्त कर लेता है, तो राम किस बात के कर्ता--

जो कोहूं कहो कि तेरे करम न तैसे, हम

गाहक है सुकृति भगति रस लाहे के ।

आपने करम करि हौं ही निबहोंगी, तौब

हौं ही करतार, करतार तुम काहे के २ ।।वही पृ० ५।२६।।

सगुण राम भक्तों के अनुसार कर्म शुभ और अशुभ दो प्रकार के होते हैं । अशुभ कर्म जीव के लिये भवबन्धन का कारण बनते है और नानाप्रकार के दु ख उत्पन्न करते हैं। शुभ कर्म जीव कोमोक्ष सुख प्रदान करते है । सगुण भक्तो के अनुसार समस्त कर्मों का राम मे प्रेम की प्राप्ति होना चाहिए । जीव जैसा कर्म करता है, उसको वैसा फल

अवश्य भोगना पड़ता है । जीव को जब तक भगवद्‌भक्ति या राम प्रेम की प्राप्ति नहीं हो जाती तब तक उसे अपने स्वधर्म का पालन करते रहना चाहिए । राम का साक्षात्कार हो जाने पर कर्म की आवश्यकता नहीं रहती ।

छ परिणाम

सगुण राम भक्तो के दार्शनिक विचारों के अनुसार राम ही एकमात्र सत्य तत्व हैं । जीव ब्रह्म का ही अंश है । जीव माया के कारण जगत् के बन्धन मे पड़ा है । माया के समाप्त होते ही जीव अपने शुद्ध रूप को प्राप्त कर लेता है । जिस जगत् और माया के भ्रम में पड़ कर जीव अपने वास्तविक रूप को भूल जाता है वे माया और जगत् असत् है । क्योंकि जगत् नश्वर है, अत उसके सभी भोग क्षणभंगुर है । क्षणभंगुर पदार्थ जीव को शाश्वत शान्ति अथवा सत्य तत्व राम की प्राप्ति नहीं करा सकते । अत ऐसे नश्वर पदार्थों को जो स्थायी सुख प्रदान नही कर सकते उन्हें सगुण राम भक्तो ने जीवन का लक्ष्य नहीं माना ।

सगुण राम भक्तो के अनुसार राम सत्य और शाश्वत तत्व है । अत जीव इसी तत्व को प्राप्त करके स्थायी सुख और शान्ति प्राप्त कर सकता है । इसी दार्शनिक सत्य के अनुरूप सगुण राम भक्तो ने जगत् और उसके सभी सुखों को मिथ्या कह कर राम, राम प्रेम और निर्वाण जगत् और माया से छुटकारा को ही जीवन का लक्ष्य कहा है ।

सगुण राम भक्तो के अनुसार जब सब चराचर में एक ही राम व्याप्त है तब मानव समाज में छोटे बड़े का भेद नही होना चाहिए । इस दार्शनिक तथ्य के अनुसार सगुण भक्तों ने भक्ति साधना की दृष्टि से किसी प्रकार का भी जाति गत और वर्ग गत भेद नहीं माना है । उनके अनुसार राम किसी भक्त की जाति की ओर ध्यान न देकर केवल एक भक्ति का ही नाता मानते है । शूद्र, श्वपच, कोल, किरात, स्त्री पुरुष आदि सभी को समाज में रहते हुए भक्ति करने का समान अधिकार है । जीव ब्रह्म का अंश है, अत जब तक जीव माया और जगत् के बन्धन मे नही पड़ते, अथवा जो जीव माया और जगत् के बन्धन से मुक्त हो चुके हैं उनमे कोई भेद या अंतर नहीं है । किन्तु जो जीव जगत् और माया मे आसक्त है वे अपने शुभाशुभ कर्मों के परिणाम स्वरूप विकसित और अविकसित अवस्थामे रह सकते हैं । इस दार्शनिक सिद्धान्त के अनुसार सगुण भक्तो ने सामाजिक दृष्टि से जीवो में जातिगत भेद का

होना स्वीकार किया है। अर्थात् उनके अनुसार समाज में ब्राह्मण, शूद्र की अपेक्षा पूज्य और महान् है।

सगुण भक्तों के अनुसार राम ही एक मात्र सत्य सत्ता होने के कारण, वही जीव के लिए परम अर्थ है, और उनकी प्राप्ति ही जीव की सच्ची मजदूरी है।

सगुण भक्तों की भक्ति दास्य भाव युक्त प्रेम परक है। उनके अनुसार जीव को सच्चा सुख राम की भक्ति से ही प्राप्त हो सकता है। इस मान्यता के अनुसार सगुण भक्तों ने राम भक्ति को सत्य और जगत् को स्वप्न कह कर राम भक्ति और राम के चरणों में अनन्य अनुराग को ही जीवन का लक्ष्य कहा है। और इसी के अनुसार उन्होंने राम नाम को जीव का स्वार्थ, परमार्थ और परम [illegible] माना है। राम नाम रूपी धन को प्राप्त करके ही जीव की दरिद्रता दूर हो सकती है।

सगुण भक्तों की दास्य भक्ति कर्म के अनुकूल है। उन्होंने उन कर्मों को भक्ति के अनुकूल माना है जिनसे राम के चरणों में प्रेम की प्राप्ति होती है और साथ ही सभी सगुण भक्तों ने प्रत्येक भक्त के लिए शुद्ध आचरण का होना आवश्यक माना है।

इस प्रकार सगुण भक्तों ने दार्शनिक क्षेत्र में जिन विचारों का प्रतिपादन किया है उन्हीं के अनुरूप उन्होंने अपनी भक्तिसाधना का विकास किया है, और उन्होंने अपने दार्शनिक विचार तथा भक्ति-साधना के अनुसार ही लोक व्यवहार का उपदेश किया है।

अध्याय ११

निर्गुण तथा सगुण राम भक्ति का तुलनात्मक अध्ययन

भक्ति के ही दो स्वरूप होने के कारण निर्गुण तथा सगुण राम भक्ति में साम्य बहुत है, किन्तु अन्तर भी है। नीचे दो प्रकार की भक्तियों के विभिन्न दृष्टियों से तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का एक संक्षिप्त प्रयास किया जा रहा है। यह अध्ययन संक्षिप्त इसलिए रक्खा जा रहा है कि ऊपर दोनों प्रकार की भक्तियों के विभिन्न तत्वों का अध्ययन करते हुए तुलनात्मक रूप से दोनों के तथ्य स्वतः सामने आते रहे हैं।

पूर्ववर्ती अध्यायों में हम देख चुके हैं कि निर्गुण और सगुण रामभक्तों के दार्शनिक विचार पर्याप्त मात्रा में उपनिषदों, गीता और शांकर-वेदान्त से लिए गए हैं। उनमें हम यह भी देख चुके हैं कि निर्गुण और सगुण रामभक्ति धाराओं में जिन विचारों को कबीर और तुलसी लेकर चले हैं, प्रायः उन्हीं विचारों का उनके परवर्ती रामभक्त कवियों ने भी प्रतिपादन किया है। जिस प्रकार रामभक्ति की किसी भी विशिष्ट धारा के भक्तों के विचारों में लगभग कोई मतभेद नहीं है, उसीप्रकार कुछ छोटे - मोटी बातों को छोड़ कर राम भक्ति की निर्गुण और सगुण धाराओं के कवियों में भी वैचारिक दृष्टि से विशेष अन्तर नहीं है।

क दार्शनिक आधार

निर्गुण और सगुण रामभक्तों में दार्शनिक दृष्टि से जो मुख्य अन्तर है वह यह है कि निर्गुण भक्त निर्गुण और निराकार ब्रह्म के उपासक हैं और सगुण भक्त सगुण और साकार ब्रह्म के। निर्गुण भक्त यह मानते है कि राम, दशरथ के पुत्र नहीं हैं और सगुण भक्त यह मानते हैं कि दशरथपुत्र राम अज और अनादि ब्रह्म हैं। निर्गुण और सगुण भक्तों के यदि इस मुख्यमतभेद को छोड़ दिया जाय तो निर्गुण और सगुण भक्त कवियों के साहित्य में ऐसे अनेक कथन मिलते हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि दार्शनिक दृष्टि से निर्गुण और सगुण भक्तों में पर्याप्त साम्य है।

कबीर ब्रह्म के अनन्त नाम मानते हुए उन सबमें एक राम के ही दर्शन करते है -

अपरंपार का नाउं अनत, कहै कबीर सोई भगवंत ।।३२७।।क०ग्र०पृ०१९६।।

एक राम देख्या सबन्हि मे, कहै मन माना ।।५२।।क०ग्र० पृ०१०५।।

और दादू के अनुसार भी ब्रह्म के अनन्त नाम है तथा उन सब मे एकात्मभाव है-

दादू सिरजन हार के केते नाँव अनंत ।
चित आवै सो लीजिये, यौं साधू सुमिरैं संत ।।२३।।बा०भा०१ पृ०१६।।
अलख इलाही एक तूँ तूँ हीं राम रहीम ।
तूँ ही मालिक मोहना केसो नाँउ करीम ।।१।।बा०भा०२ पृ०६३।।

निर्गुण भक्तो मे सुन्दर और संत दरियादास ने भी ब्रह्म के अनन्त नाम माने हैं-

सहस्र नाम को कौन चलावै । नाम अनन्त पार कापावै ।।१६।।सु०ग्र०पृ०६७।।
अनत नाम सकल बौराना । माया फंद सब रहे भुलाना ।।
एकै सौं अनत भौ, फूटि डारि बिस्तार ।
अंतहू फिरि एकहे ताहि सोत्तु निजु सार ।।द०भा० पृ०२।।

सगुण रामभक्तो मे तुलसी के अनुसार राम के अनन्तनाम है, और इन अनन्त नामो मे तुलसी ने सर्वाधिक महत्त्व राम नाम कोदिया ह -

राम अनंत अनत गुनानी । जन्म कर्म अनत नामानी । रा०च०पृ० ६१८।।
जद्यपि प्रभु के नाम अनेका श्रुति कह अधिक एकते एका ।
राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका।।४।।
वही पृ० ६४४ ।।

इस प्रकार निर्गुण और सगुण भक्तोने ब्रह्म राम के अनन्त नाम माने है किन्तु उन्होने रामनाम का अन्य नामो की तुलना मे अधिक प्रयोग किया है।

किसी भी पदार्थ का जब नाम के माध्यम से विवेचन किया जाता है तब उसके गुणों का कुछ न कुछ आभास अवश्य मिलता है। अतः निर्गुण और सगुण दोनो प्रकार के राम भक्तो ने राम के गुणो का विवेचन किया ह।

निर्गुण भक्तो मे कबीर के राम भी एक प्रकार से सगुण है क्योंकि उनके अनुसार गोविन्द के बहुत से गुण है, जिनका लिखना असम्भव है, जीव को गोविन्द के गुणो का गान करना चाहिए -

गोब्यंद के गुण बहुत है लिखे जु हिरदै माहि ।
कबीर सूता क्या करै, गुण गोबिंद के गाइ ।।१४।।क०ग्र० पृ०६।।

औगुन छोडि गुन गहै निव उतार तीर ।।१३।।द०व०व० पृ० २।।

सात समद की मसि करौ, लेखनि सब बनराइ ।

धरती सब कागद करौ, तऊ हरि गुण लिख्या न जाइ ।।क०ग्र०पृ०६२।।

इसी प्रकार नानक के अनुसार भी गोविन्द गुण-निधान हैं और उनके गुणों का अंत नहीं है -

गोविदु गुणी निधानु है अंतु न पाइआ जाइ ।।गु०ग्र०म० १।पृ०३३।।

दादू के अनुसार जितने भी अच्छे गुण हैं वे सभी राम में अवस्थित हैं

अहो गुण औगुण मार गुसाईं ।।बा०भा०२ पृ० १०।।

इस प्रकार निर्गुण सन्तों ने ब्रह्म के गुणों का विवेचन करके अपने को सगुण भक्तों से बहुत दूर नहीं रक्खा है।

सगुण भक्तों में तुलसी ने भी कहा है कि राम के अनन्त गुण हैं और श्रुति, शेष, शारदा, शम्भु, आगम, निगम और पुराण भी जिसके गुणों का अंत न पाकर नेति नेति कह कर उसके गुणों का गान करते हैं -

राम अनत अनत गुन, अमित कथा बिस्तार ।

सुनि आचरजु न मानिहहि जिन्हके बिमल बिचार ।।३३।रा०च०पृ०६६।

सारद सेस महेस बिधि आगम निगम पुरान ।

नेति नेति कहि जासु गुन करहि निरन्तर गान ।।१२।।वही पृ०५४।।

राम भक्तों ने राम के सगुण स्वरूप का विवेचन करने के उपरान्त उनके साकार और अवतारी स्वरूप का भी वर्णन किया है। ईश्वरदास, तुलसी, सूर, केशव, और सेनापति, इत्यादि सगुण भक्तों का तो प्रतिपाद्य विषय ही राम के सगुण साकार और अवतारी रूप की व्याख्या करना है दे० अध्याय ८ । किन्तु सगुण भक्तों के समान ही निर्गुण भक्तों के साहित्य में भी सगुण साकार और अवतारी राम के स्वरूप का कुछ न कुछ आभास अवश्य मिलता है।

निर्गुण भक्तों में नामदेव ने तो यह स्पष्ट रूप से कहा है कि मेरे राम दशरथपुत्र हैं। नामदेव ने अपने राम की अवतारी लीलाओं का भी उल्लेख किया है -

जसरथ राइ नदु राजा मेरा रामचदु ।।३३।।हि०को०म०स० की देन पृ०३५३।।

गौतम नारि अहिलिआ तारी । पावन केतक तारीअले ।।३५।।वही पृ०३५३।

धनि धनि तू माता देवकी । जिहग्रिह रमईआ कवलापति ।।

धनि धनि बनखंड बिंद्राबना । जह खेलै स्री नाराइना ।।

बेनु बजावै गोधनु चरै । नामे का सुआमी आनदु करै ।।वही पृ० २५३ ।।

नामा कहै भगति बसि केसव अजहूँ । बलि के दुआर खरो ।।३७।।पृ०२५४।।

किन्तु नामदेव इन दारणा से जितने निर्गुण भक्त हैं, उतने ही सगुण भी ।

कबीर ने वैष्णवधर्म मे माने जाने वाले ब्रह्म के पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी और अर्चा रूपों के और कभी कभी संकेत किया है । राम के इन पाँचों रूपों का वर्णन तुलसी ने भी किया है ।

१ पर रूप

भगवान् के पररूप मे ऐश्वर्य, शक्ति, तेज, ज्ञान, बल, एव वीर्य आदि गुण माने गये है । कबीर के राम मे भी ये गुण विद्यमान है -

जाकै सूरिज कोटि करै परकास, कोटि महादेव गिरि कविलास ।

ब्रह्मा कोटि बेद ऊचरै, दुर्गा कोटि जाकै मदन करै ।

कोटि चद्रमा गहैं चिराक सु तेतीसु जीमे पाक ।

कोटि कुबेर जाकै भरै भंडार, लक्ष्मी कोटि करै सिंगार ।।

इद्र कोटि जाकी सेवा करै ।

विद्या कोटि सबै गुण कहै पारब्रह्म को पार न लहैं ।।

असंखि कोटि जाकै जमावली रावण सैन्या जाथै चली ।।

सहस्रबाहु केहरे पराण जरजोधन घाल्या खै मान ।।क०ग्र० पृ०२०२-२०३।।

लगभग कबीर के समान ही तुलसी ने भी राम के पररूप का उल्लेख करते हुए कहा है-

रामु काम सत कोटि सुभग तन । दुर्गा कोटि अमित अरि मदन ।।

सक्र कोटि सत सरिस बिलासा । नभ सत कोटि अमित अवकासा ।।४।।

मरुत कोटि सत बिपुल बल रवि सत कोटि प्रकास ।

ससि सत कोटि सुसीतल समन सकल भव त्रास ।।९१।।

काल कोटि सत सरिस अति दुस्तर दुर्ग दुरंत ।

धूमकेतु सत कोटि सम दुराधरष भगवत ।।९१ ख ।।

प्रभु अगाध सत कोटि पताला । समन कोटि सत सरिस कराला ।।

तीरथ अमित कोटि सम पावन । नाम अखिल अघ पूग नसावन ।।१।।

हिमगिरि कोटि अचल रघुबीरा । सिन्धु कोटि सत सम गभीरा।।

कामधेनु सत कोटि समाना । सकल काम दायक भगवाना ।।२।।

सारद कोटि अमित चतुराई । बिधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई ।।
विष्णु कोटि सम पालनकर्ता । रुद्र कोटि सत सम संहर्ता ।।३।।
धनद कोटि सत सम धनवाना । माया कोटि प्रपंच निधाना ।।
भार धरन सत कोटि अहीसा । निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा ।।४।।
रा०च० पृ० ६५२-६५३।।

इस प्रकार कबीर और तुलसी के राम के पर रूप के वर्णन में भाव और भाषा की दृष्टि से काफी समानता है ।

२ व्यूहरूप

व्यूह रूप में ब्रह्म सृष्टि का पालन और संहार करते हैं । कबीर के राम भी सृष्टि के स्रष्टा, पालक और हर्ता हैं -

मैं सिरजौं मैं मारता, मैं जारौं मैं खाउँ ।
जल अरु थल में मैं रमा, मोर निरंजन नाउँ ।।बीजक पृ० ११।।
है प्रतिपाल काल नहि वाके, ना कहूँ गया न आगा । बीजक पृ० ३५।।

तुलसी के राम भी सृष्टि का पालन और संहार करते हैं -

सारद कोटि अमित चतुराई । बिधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई ।।
बिष्णु कोटि सम पालन कर्ता । रुद्र कोटि सत सम संहर्ता ।।३।रा०च०पृ०६५
जाके बल बिरंचि हरि ईसा। पालन सृजन हरन दससीसा ।।३।वही पृ०७०४।

३ विभवरूप

विभव रूप से भगवान् नरलीला किया करते हैं । कबीर के राम भक्ति भाव से द्रवित होकर नरसिंह रूप में प्रकट होकर प्रह्लाद का उद्धार करते हैं -

खंभा में प्रगट्यौ गिलारि, हरनाकस मार्यौ नखबिदारि ।
महापुरुष देवाधिप नरस्यंघ प्रकट कियौ भगति भेव ।।
कहै कबीर कोई लहै न पार प्रह्लिाद उबार्यौ अनेक बार ।।क०ग्र०२१४-३०७।।

निर्गुण भक्तों में नानक सुन्दरदास और मलूकदास ने भी राम के विभव रूप की ओर संकेत किया है[1] -

---

१- प्रभु नाराइणु गरब प्रहारी । प्रह्लाद उधारे किरपा धारी ।।४।।गु०ग्रं०पृ०२२४।
सुनहु उपजे दस अवतारा । सृसटि उपाइ कीआ पासारा ।।वही पृ०१०३८।।

सगुण भक्तों में तुलसी ने राम के विभव रूप का वर्णन करते हुए कहा है -

भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप ।
किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप ।।९०३।।दो०न०
प्रभु सत्य करी प्रह्लादगिरा, प्रगटे नरकेहरि खंभ महाँ ।
झषराज ग्रस्यो गजराज, कृपा ततकाल बिलंबु कियो न तहाँ ।।
सुर साखि दै राखी है पाण्डुबधू पट लूटन कोटिक भूप जहाँ ।
तुलसी । भजु सोच बिमोचनको, जनको पन राम न राख्यो कहाँ ।।८।।
क०वि० पृ० १०६।।

४ अन्तर्यामी रूप

अन्तर्यामी रूप से ब्रह्म जीव के अन्तर में निवास करता है । इसी से अन्तर्यामी रूप का विवेचन करते हुए कबीर ने कठोपनिषद् २।२।६ की शैली में कहा है -

जैसे बाढी काष्ट ही काटे, अगिनि न दाटे कोई ।
सब घटि अंतरि तू ही व्यापक, धरै सरूपै सोई ।।क०ग्रं० पृ०१०५-१४४।।

गीता के कृष्ण के समान तुलसी के राम भी सबके हृदयों में अन्तर्यामी रूप में अवस्थित है १८।६१ -

तुम्ह ब्रह्मादि जनक जग स्वामी । ब्रह्म सकल उर अंतरजामी ।।रा०च०पृ०१६०।
प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासं ।।७।।वही पृ०६६६ ।।
प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी । ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी । वही पृ० ६३५ ।।

शेष- द्वै रूप ब्रह्म के जानै । निर्गुण अरु सगुन बिपानै ।।
निर्गुण निज रूप नियारा । पुनि सगुन मत अवतारा ।।ज्ञान समुद्र
पंचम उल्लास ।।
सुन्दर जैसो भाव है तैसोई गोबिन्द ।।१६।।
सुन्दर अपने भाव तें रूप चतुर्भुज होइ ।
याको ऐसोई दृसे वाके रूप न कोई ।।सु०ग्रं०पृ०७७०।।
धरती मापि एक डग करते । हाथों ऊपर पर्बत धरते ।।३७।।वही पृ०३३७

शेष -अगले पृष्ठ पर

५ अर्चावतार

अर्चावतार भक्त की रुचि के अनुसार मूर्ति में रहने वाले भगवान् की उपास्य मूर्ति है। कबीर ने मूर्ति पूजा का उल्लेख नहीं किया है। तुलसी ने अवश्य राम के अर्चावतार का उल्लेख किया है। तुलसी के अनुसार भक्त अपनी भावना के अनुसार राम की मूर्ति का दर्शन कर सकता है -

जिन्ह कै रही भावना जैसी। प्रम मूरति तिन्ह देखी तैसी ॥२॥

नारि बिलोकहिं हरषि हियँ निज निज रुचि अनुरूप ॥

जनु सोहत सिंगार धरि मूरति परम अनूप ॥२४१॥ रा०च० पृ०२३२-३३॥

राम के निर्गुण स्वरूप के सम्बन्ध में दोनों प्रकार के भक्तों में पर्याप्त समानता है।

राम के निर्गुण स्वरूपके सम्बन्ध में निर्गुण भक्तों ने यह कहा है कि वह अनाम, अलख, अविगत, अरूप अवर्ण, अव्यक्त, अकल, अज, अगोचर, अविनाशी, अनन्त और नेति नेति है। और उसका न कोई स्थान है, और न कोई ग्राम। साथ ही निर्गुण संतों ने राम के लिये निरंजन शब्द का प्रयोग किया है (दे० अध्याय ५ सं० ८)।
निर्गुण भक्तों के समान ही सगुण भक्तों ने भी राम के निर्गुण स्वरूप की व्याख्या की है। सगुण भक्तों में तुलसी ने निर्गुण भक्तों के समान राम केलिये निरंजन शब्द का भी प्रयोग किया है[1] -

व्यापक अकल अनीह अज निर्गुननाम न रूप।

भगत हेतु नाना बिधि करत चरित्र अनूप ॥२०५॥ पृ० २०४॥

ग्यान निधान अमान मानप्रद। पावन सुजस पुरान बेद बद ॥

तग्य कृतग्य अग्यता भंजन। नाम अनेक अनाम निरंजन ॥३॥ रा०च० पृ० ६०३।

व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।

सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या के गोद ॥१९८॥ रा०च०पृ०१९८॥

शेष- नमो निरंजन निरंकार, अविगति पुरुष अलेख।
जिन संतन के हित धर्यो, जुग जुग नाना भेख ॥२३॥ बा० पृ०३४॥
ताहित सरकार का दास आनि अवतरे हो जो नहि बूझै ताहि साहब बुझाइ हो।
साहब हौं सब संतन को पति राखि लियो अपने बल तें।
दरिया जो कहै तेरो नाम क्रिपाल सो दास के लाज सदा तुम धारेव॥
द स्क अनु० पृ० ६५-१३५॥

राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर ।
अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह ।।१२६।। रा०च०पृ०४३५।।

ज्ञानियों के समान निर्गुण और सगुण भक्तों ने राम का विराट् पुरुष के रूप में वर्णन करते हुए यह भी कहा है कि वह इन्द्रियरहित होते हुए भी इन्द्रियों के सभी कार्य करता है। निर्गुण भक्तों में इसका वर्णन दादू और दरिया ने किया है -

दादू सबै दिसा सौ सारिखा सब दिसा मुख बैन ।
सबै दिसा श्रवनहु सुणै, सबै दिसा कर नैन ।।१।।रा०भा०२ पृ०२३।।
सबै दिसा पग सीस है, सब दिसा मन चैन ।
सबै दिसा सनमुख रहै, सब दिसा अंग ऐन ।।
सब दिसि वक्ता सब दिसि श्रोता। सब दिसि देखनहार रे अल्ला।।
शब्द पृ०४१।।

बिन पग चलना बिन पर उड़ना, बिना चुच का चुगना ।
बिना नैन का देखन पेखन, बिन स्रवन का सुनना ।।१।।
बिन हाथनि पाइन बिन काननि, बिन लोचन सूझै ।
बिन मुख खाइ चरन बिन चालै, बिन जिभ्या गुण गावै।।क०ग्र०पृ०१४०।।
बिनु पग चलै सुनै बिनु काना । बिनु कर निरति बेद करि जाना ।
बिनु चक्षु देखै सप्त पताला । बिनु पूरन परगट है काला ।।दरिया सागरपृ०५४।

और सगुण भक्तों में तुलसी ने कहा है -

बिदुषन्ह प्रभु बिराट्मय दीसा । बहु मुखकर पग लोचन सीसा ।।
जनक जाति अवलोकहिं कैसे । सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे ।।१।। रा०च०पृ०२३३।
आदि अंत कोउ जासु न पावा । मति अनुमानि निगम अस गावा ।।
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना । कर बिनु करम करइ बिधि नाना।।
आनन रहित सकल रसभोगी । बिनु बानी बक्ता बड़ जोगी ।।३।।
तन बिनु परस नयन बिनु देखा । ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा ।।
असि सब भाँति अलौकिक करनी । महिमा जासु जाइ नहिं बरनी।।४।।
वही पृ० १३५।।

इस भाव का एक दोहा वैराग्य संदीपनी मे भी मिलता है -

सुनत लखत श्रुति नयन बिनु रसना बिनु रस लेत ।
बास नासिका बिनु लहै परसै बिना निकेत ।।वै०सं० ०३।।

इस प्रकार निर्गुण और सगुण राम भक्त कवियो द्वारा किये गये राम के स्वरूप वर्णन मे काफी समानता मिलती है ।

तत्वतः ब्रह्म निर्गुण है इसलिए उसके निर्गुण रूप की स्वीकृति दोनो राम भक्ति सम्प्रदायो मे समान रूप से मिलती है । किन्तु सगुण राम भक्ति सम्प्रदाय राम के अवतारी रूप मे भी उतनी ही आस्था रखते है जितनी उनके निर्गुण रूप मे और अपनी समस्त भक्ति उनके सगुण रूप को ही निवेदित करते हैं । निर्गुण राम भक्त अवतारी रूप का विश्वास पूर्वक उल्लेख अवश्य करते है, किन्तु उतनी आस्था के साथ नहीं जितनी के साथ सगुण भक्त करते है, और अपनी समस्त भावनाएँ ये राम के इसी निर्गुण रूप को अर्पित करते हैं ।

जीव

निर्गुण और सगुण भक्तो ने जीव के सम्बन्ध मे जो विचार व्यक्त किये हैं उसमे लगभग पूर्ण साम्य है । जीव और ब्रह्म मे कोई अन्तर नहीं है जीव और ब्रह्म मे अन्तर है, तथा जीव ईश्वर का अंश है, जीव से सम्बन्धित ये तीनो मत निर्गुण और सगुण दोनो प्रकार के भक्तो मे मिलते हैं ।

१ ब्रह्म और जीव मे कोई अन्तर नहीं है, निर्गुण सन्तो में इस अद्वैत मत का नामदेव कबीर, रैदास, नानक, दादू, सुन्दरदास, जगजीवन साहब मलूकदास, दरियादास मारवाड वाले और संत दरिया बिहारवाले ने समान रूप से प्रतिपादन किया है[१] -

जल ते तरंग तरंग ते है जलु कहन सुनन कऊ दूजा ।
आपहि गावै आपहि नाचै आप बजावै तूरा ।।हि०को०म०स०की देन पृ० २६१।।
हम तौ एक एक करि जानां ।
दोइ कहैं तिनहीं कौं दोजग, जिन नाहिन पहिचाना ।।५५।क०ग्रं०पृ० १०५।।
सोहं हंसा एक समान, काया के गुण आनहि आन ।।क०ग्रं०पृ० १०५।।

१- विस्तार के लिये दे० अध्याय ५

कनक कुंडल सूत पट जुदा, रजु भुजंग भ्रम जसा ।
जल तरंग पाहन प्रतिमा ज्यौं, ब्रह्म जीव ऐसा ।।रैदास की बाणी पृ०२५।।
आपे जोगी आपे भोगी । आपे रसिया परम संजोगी ।।७।।गु०ग्र०पृ०१०२१।।
दाचा उछलै ऊफणै, काया लौंडी माहिं ।
दादू पाणी मिलि रहै, जीव ब्रह्म नाहिं ।।२२।।दादू की बानी भा०२
पृ०२३१।।
सरिता मिलइ समुद्रहि भेद न कोई । जीव मिलइ पर ब्रह्महि होई ।।
सुन्दर ग्रन्थावली पृ०३७६।।
राम सनते अनर नाही । सत नै कबहूं न्यारे नाही ।।१०।।जगजीवन साहब की
बानी पृ० भा० १ पृ०५७।।
हमहिं अस्व हमहीं असवार । हमहिं दास हमहीं सरदार ।।१०।।
हमहिं सूरज हमहिं चंदा। हमहिं भये नन्द के नन्दा ।।११।।
हमहीं दसरथ हमहीं राम । हमरै क्रोध हमारै काम ।।१२।।मलूकदास की बानी
पृ० २४।।
साहिब मिलि तब साहिब होवै, ज्यौं जल बूँद समावैं ।।६।।वही पृ० ४।।
जहँ दरिया दुविधा नहीं, स्वामी सेवक एक ।।३८।।दरिया साहब की बानी
पृ० १६।।
हिरदे होय बिवेक दृढ़ाई । जह होय एक फिरि जाई ।।दरियासागर पृ०२८।
सगुण भक्तो मे तुलसी ने जीव और ब्रह्म मे अभेद मानते हुए कहा है कि जीव और ब्रह्म उसी प्रकार अभिन्न है जिस प्रकार जल और उसकी तरंगे होती है -

मन गोतीत अमल अबिनासी । निर्बिकार निरवधि सुखरासी।।
सो तै ताहि तोहि नहीं भेदा । बारि बीचि इव गावहि वेदा ।।३।
रा० च० पृ० ६७४।।

:२ जीव और ब्रह्म मे अन्तर है, इस द्वैतवाद की निर्गुण संतो मे कबीर, सुन्दरदास और संत दरिया ने व्याख्या की है -

चढ तरवर दो पक्षी बोले, एक गुरु एक चेला ।
चेला रहा सो रस चुन खाया, गुरु निरन्तर खेला ।।क०ग्र० पृ०२२६।।
तामें दो पंछी बसहिं सदासमीप रहाहिं ।
एक भखै फल वृक्ष के एक कछू नहिं खाहि ।।८।।सुं०ग्रं० पृ०६७१।।

बिज से बिज उनपनिकिया, सो बिज राम दे दीन्ह ।

जीव जीव सम जीव ह, ब्रम उन्ते भीन्ह ।।८।।द०रक७ लन० पृ०१।।

सगुण भक्तो मे तुलसी ने अद्वैतवाद का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि कभी जीव भी ईश्वर के समान हो सकता है -

जौं असहिसिषा करहिं नरजड विदेद अभिमान ।

परहि कलप भरि नरक महुँ जीव कि ईश समान ।।६६।।रा०न०पृ०६५।।

३ जीव ब्रह्म का अंश है गीता १५।७ के इस मत का विवेचन करते हुए कबीर ने कहा है कि जीव राम ब्रह्म का अंश है -

कहुकबीर इहु राम की असु । जस कागद पर मिटै न मसु ।।१२६।क०ग्र०पृ०३०१।।

जीव राम का अंश है इस भाव से सम्बन्धित कबीर का एक पद शब्दावली मे भी आया है -

त ताहि पुरुष की अस जीव यह, धर्मराय ठगि राखा ।

तारन तरन आप कहलाई, बेद साख्र अभिलाखा।।शब्दा० भा०१पृ०२६।।

सगुण भक्तो मे तुलसी ने जीव को ब्रह्म का अंश मानते हुए कहा है -

ईश्वर अंस जीव अविनासी । चेतन अमल सहज सुखरासी ।।१।।रा०च०पृ०६८२।।

और केशव नेजीव को ब्रह्म का प्रतिबिम्ब मान कर उपर्युक्त भाव को ही पुष्ट किया है -

सब जानि बूझियत मोहि राम । सुनिये सो कहौं, जग ब्रह्म नाम ।।

तिनके अशेष प्रति बिबजाल । तेइ जीव जानि जग मे कृपाल ।।२५।२

रा०च० उत्तरार्ध ।

इस प्रकार निर्गुण और सगुण राम भक्ति साहित्य मे जीव और ब्रह्म से सबंधित उपर्युक्त तीनो मत समान रूप से मिलते है और दोनो प्रकार के भक्तो ने इन मतो में अद्वैतवाद को विशेष मान्यता दी है । किन्तु निर्गुण मत मे विशेष आस्था ब्रह्म और जीव के अभिन्न होने के विषय मे है, और उसी प्रकार सगुण मत में जीव के ईश्वरांश होने के विषय मे ह,यह आसानी से देखा जा सकता है।

जीव माया व कर्म या अहंकार काम क्रोध और भोगादि के कारण ही जगत् के बन्धन मे पड़ा है इस बात का भी निर्गुण और सगुण दोनो प्रकार के भक्तो ने समान रूप से विवेचन किया है -

न बा तो ाजा न्है नात के ताइ न । २।१८६।०पृ०३६।।
नाना गुन वर्म कीन्है पाप वघन दान्हैउ ।।३६।ागुराग नागग पृ०३३।।
काम ठग क्रोध ठग लोभ ठग मोह ठग ।
ठगनि की नारी मे जाव आर पर्यौ है ।।२१।।पृ० ३६६।।सु०ग्र०
फिरत सदा माया वर प्रेरा । काल कम सुभाव गुन घेरा ।।३।।रा०च०पृ०६११।
जीव करम बस सुख दुख भागी । जाइत अवघ देव हित लागी ।।२।।रा०च०पृ०३४३।।
तव बिषम माया बस सुरासुर नाग नर नग जग हरे ।
भव पथ भ्रमत अमित दिवस निसि काल कम गुननि भरे ।।रा०च०पृ०८८२।।
लोभ मद मोह बस काम जब हा गयो ।
भूलि गयो निज वाधि विनसो गयो ।।रा०चन्द्रिका केशव उ।राम २५।३।।

३ जगत्

निर्गुण और सगुण भक्तों मे जिस प्रकार राम और जीव के स्वरूप मे सम्बन्धित विचारो मे कुछ बातो को छोड कर काफी समानता है उस प्रकार दोनो प्रकार के भक्त कवियो में जगत् से सम्बन्धित विचारो मे भी पर्याप्त मात्रा मे साम्य दृष्टिगत होता है ।

निर्गुणवादी और सगुणवादी कवियो ने जगत् के सम्बन्ध मे यह विचार व्यक्त किये है कि इस जगत् के स्रष्टा राम है और वे माया के सहयोग से इसकी रचना करते है। जगत् और राम मे कोई अन्तर नहि है। राम स्वय ही जगत् रूप मे अभिव्यक्त हो रहे है। अर्थात् राम इस जगत् के निमित्त कारण है और वे इसके दोनो निमित्त और उपादान कारण भी हैं। दोनो प्रकार के भक्तो ने जहाँ यह माना है कि जगत् के कर्ता राम है वहाँ उसके दोनोंने यह भी माना है कि जगत् असत् मिथ्या और भवपाश है ।

यह जगत् राम की अभिव्यक्ति है और राम तथा जगत् मे कोई भिन्नता नही है अर्थात् राम इस जगत् के निमित्त और उपादान कारण है। निर्गुण भक्तो मे इस मत की पुष्टि नामदेव, कबीर, नानक और सुन्दरदासने की है तथा सगुण भक्तो मे तुलसी और केशवदास ने --

कहत नामदेऊ हरि की रचना देखहु रिदै बाचारी ।
घट घट अतरि निरतरि केवल मुरारी ।।
जलतरग अरु फेन बुदबुदा जलते भिन न कोई ।
इहु परपचु पारब्रह्म की लीला बिचरत आन न होई ।।हिं०का०म०स०की देन

सृष्टि यहाँ आपु है आपु यहाँ सृष्टि है, आपु है अगिन [illegible] गगन पानी।
आपुहि [illegible] ह आपुही [illegible] है, रज तौ [illegible] तम गुन [illegible] ।। [illegible] पृ०११
[illegible]

द[illegible]याव का लहर द[illegible]याव ह जा, दरियाव और लहर मे भिन्न कोयम् ।
उठ तो नीर है बैठे तो नीर ह कहो जो दूसरा किस तरह होयम् ।।
[illegible] फेर के नाम लहर धरा, लहर के दरे क्या नीर खोयम् ।
जक्त ही फेर जब ज[illegible] पर ब्रह्म मै ज्ञान कर देख मालोयम् ।।२५६।।कबीर पृ०२९१।
साहिबु मेरा एको है । एको ह भाइ एको ह ।१।।
आपे मारे आपे छोडै आपे लेवै देइ ।।
आपे वेखै आपे विगसै आपे नदरि करेइ ।।म०१।गु०ग्र० पृ०३५०।।
सुन्दर जाने ब्रह्म मैं ब्रह्म जगत ह नाहि ।।४०।।सु०ग्र० पृ०६८६।।

देव

विश्व विख्यात विश्वेश, विश्वायतन, विश्वमरजाद, व्यालारिगामी ।
ब्रह्म वरदेश,वागीश, व्यापक, विमल, विपुल बलवान, निर्वान स्वामी।। १।।
प्रकृति,महतत्व, शब्दादि गुण, देवता व्योम, मरुदग्नि,अमलाम्बु उर्वी ।
बुद्धि मन इन्द्रिय प्राण चित्तातमा काल परमाणु चिच्छक्तिगुर्वी ।।
सर्व मेवात्र त्वद्रूप भूपालमणि । व्यक्तमव्यक्त, गतभेद विष्णो ।।
भुवन भवदंग कामारि वंदित पदद्वन्द्व मंदाकिनी जनक जिष्णो।।
आदि मध्यांत भगवंत । त्वं सर्वगतमीश, पश्यन्ति ये ब्रह्मवादी ।।
यथा पट-तंतु घट मृत्तिका सर्प स्रग दारु करि कनक कटकांगदादी।।४।।वि०प०५४।।
तुम ही गुण रूप गुणी तुम ठाये। तुम एकते रूप अनेक बनाये ।। १७। रा०च०प्र०२०।
तुम हीं जग हौं जग है तुमहीं में ।
तुमहीं विरची मरजाद दुनी मे ।।वही २०।१९।।

इस जगत् के कर्ता राम हैं,और वे माया या प्रकृति के सहयोग से जगत् रचना करते हैं अर्थात् इस सृष्टि के राम निमित्त कारण हैं और प्रकृति यामाया उपादान कारण,निर्गुण भक्तो मे से इस मत का कबीर नानक एवं सुन्दरदास ने प्रतिपादन किया है और सगुण भक्तो मे तुलसी और केशव ने -

सूक बिरख यहु जगत उपाया, समझि न परै बिसम तेरी माया ।
साखा तीनि पत्र जुग चारी फल दोइ पाप पुनि अधिकारी ।।क०ग्र०पृ०२२६।

काइआ अदरि पाप पुनु दुइ भाई ।दुही मिलि है सृसटि उपाई ।।५।।गु०ग्र०भा०पृ०१२८

इच्छा उपाइ दस अउतारा । देव दानव गणगत अपारा ।।१३।

पुनहू उपजै का अवतारा । सृसटि उपाइ लीला पासारा ।।गु०ग्र०पृ०१०३८।।

पुरुष प्रकृति संयोग जान उपजत है ऐसे ।

रवि दर्पण दृष्टान्त अग्नि उपजत है जैसे । ०ग्र० पृ०५८।।

श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीश माया जानकी ।

जो सृजति जगु पालति हरति रूख पा. कृपानिधानकी । रा०न०पृ०४३४।।

ताकी इच्छा ते भये नारायण गति निष्ठ।

तिते चतुरानन भो तिनते जगत प्रतिष्ठ ।।गाथा द्रिक२५२।७।।

यह जगत् असत् मिथ्या भवपाश, या जाल और दुःखप्रद है ऐसा विचार का उल्लेख निर्गुण भक्त कवियों मे नामदेव, कबीर रैदास, दादू, सुन्दरदास,जगजीवन साहब और मलूकदास आदि ने किया है, और सगुण व भक्तो मे तुलसी और केशव ने -

मिथिआ भरमु अरु सुपनु मनोरथ सति पदारथु जानिआ ।

सुक्रित मनि पंखीया मत पउ पिंजरे, ससार माया जालु रे।।१।।नि०लो०म०रा० की देन पृ०२६६।।

मनु पंखीया मत पउ पिंजरे, ससार माया जालु रे।।१।।वही पृ० २६६ ।।

झूठ झूठ के बाव्हू मिथ्या यह संसार ।।बाजिक पृ० २५।।

ससार ऐसा सुपिन जैसा जीव न सुपिन समान ।।क०ग्रं० पृ०१७१।।

बाजीगर सौं राचि रहा, बाजी का मरम न जाना ।

बाजी झूठ साच बाजीगर, जाना मन पतियाना ।।२।।रैदास की बानी पृ०७।।

सुपिनै सब कुछ देखिये, जागे ते कुछ नाहिं ।

ऐसा यहु ससार है, समझि देखि मनमाहिं ।।१०।दादू दयाल की बानी भा० १ पृ० ११६ ।।

दुख दरियासंसार है सुख का सागर राम ।

सुख सागर चलि जाइये दादू तजि बेकाम ।।२६।।वही भा०१ पृ०१६।।

मिथ्या सब ससार दूसर सत्य व सुब्रह्म ह ।।१०।।सुन्दर ग्रं० पृ०३३।।

झूठि दुनिया झूठि माया परि झूठे घन धाम ।।१।जगजीवनदास की बानी भा०२ पृ० ६७।।

जनम किरिया ... धार भगम है याँ ... जगत् का फंदा ।
... जात मैं बाँधि ... माया क्या जानै नर तष्णा ।।८-७ सूरदास ... पृ०
... संसार की भागागर प्रत्यक्ष ते भारी ।
बूड़त मैं या गोरी बाचे, जेहि राखै करतारि ।।४।।वही पृ० १७।।
रजत सीप महुँ भास जिमि जथा भानु कर बारि ।
जदपि मृषा तिहुँ काल सो भ्रम न सकइ कोउ टारि ।।११७।।
एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई । जदपि असत्य देत दुख अहई ।।
जौं सपने सिर काटै कोई । बिनु जागे न दूरि दुख होई ।।१।रा०च०मा०पृ०१३५।।
झूठो है झूठो जग राम की दोहाई काहू ।
साँचे को कियो है नाते साँचो सो लगतु है ।।कविप्रिया पृ० १०६।।

निर्गुण और सगुण भक्तों के जगत् से सम्बन्धित कुछ विचार ऐसे भी है जो परस्पर भिन्न से दृष्टिगत होते हैं जैसे कबीर ने सृष्टि रचना में आनन्द और ब्राह्मी क्रीड़ा को कारण माना है और तुलसी ने तप को तथा केशव ने राम की इच्छा[1] को । किन्तु यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो उपयुक्त विचारों में कोई मतभेद नहीं है । राम आनन्द और केलि लिए सृष्टि रचना करते है और सृष्टि रचना वे तप के द्वारा अपनी स्वेच्छा से करते है, इस प्रकार यह तीनों विचार एक ही तथ्य के तीन पहलू है । अस्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से जगत् के सम्बन्ध में निर्गुण और सगुण राम भक्त कवियों मे लगभग कोई मतभेद नही है ।

मायां

निर्गुण और सगुण भक्तों ने माया के सम्बन्ध मे जो विचार व्यक्त किये है, उनमे भी काफी समानता है ।

निर्गुण और सगुण राम भक्तों ने माया के सम्बन्ध में ये विचार समान रूप से व्यक्त किये है कि माया राम की एक शक्ति है, जो राम के बिना जड़वत् है । इस राम की माया ने ब्रह्मादि देव, असुर सुर, नर मुनि और सम्पूर्ण जगत् को ही अपने वश में कर रखा है ।

१- दे० अध्याय ५ और ८ ।।

तू माया रघुनाथ की, खेलण चढ़ी अहैडै ।
चतुर चिकारे चुणि चुणि मारे, कोई न छोड्या नेडै ।।
मुनियर पीर दिगंबर मारे, जतन करंता जोगी ।
वेद पढ़ंता बांभण मारा, सेवा करता स्वामी ।।
साखित के तू हरता करता, हरि भगतन के चेरी ।
दास कबीर राम के सरनें, ज्यू लागी त्यूं तोरी ।।१८७।क०ग्र०पृ०१५१।।
जाके किरट माया मोर, ताते बिकल गति मति मोर ।।३२।।१।।रैदास की बानी
पृ०१७।।
झूठी माया जग डहकाया, तौ तिन ताप दहै रे ।।४४।४।।वही पृ०२२।।
जगत भवन तेरी माइआ मोह ।।गु०ग्र०सा० पृ० ११६८।।
बाबा माइआ साथि न होइ । इनि माइआ जगु मोहिआ विरला बूझै कोइ ।।वही
पृ० ५६५।।
दादू माया राम की सब जगत बिगोया ।।११२।।दादू दयाल की बानी भा०१
पृ० १२७।।
माया यह सब है साँईं की, लापुनि सब भेहु गाई ।।१।।जगजीवन साहब की बानी
भा० २ पृ० ३६।।
माया रच्यो खिलौना सब कोइ भूल्यो आय ।
पेंग मार वहि घर गयो, काहू अंत न पाय ।।४।।
बिस्नु औ ब्रम्हा भूलेउ, भूल्यो आइ महेस ।
मुनि जन इंदर भूलि ~~नर-नारि-मन~~ सब भूल्यो ~~आप महेस~~ गौरि गनेस ।।५।।वही बा०भा०२पृ०६४।।
यन्मायावशवर्ती विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा ।
यत्सत्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः ।।रा० च० मा० पृ०३०।।

माया भक्ति के सम्मुख हतप्रभ हो रहती है अर्थात् भक्तों और संतों पर माया का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता, इस मत की व्याख्या निर्गुण सन्तों में कबीर, दादू और संत दरिया ने की है और सगुण भक्तों में तुलसी ने --

माया दासी संत की, ऊँभी देइ असीस ।१०।क०ग्रं० पृ०३३।।
माया चेरी संत की, दासी उस दरबार ।
ठकुराणी सब जगत् की तीन्यूँ लोक मँझार ।।६७।दादू दयाल की बानी भा०१
पृ० १२५।।
ब्रह्म भगति जब ऊपजै, तब माया भगति बिलाई ।।६५।वही भा०१ पृ०२२

साधन्ह से भागी फिरै ढेतै परै मजूब ।।२१६।।द०रक लन० पृ०१८३१।।

मायापति सेवक सन माया । करइ त उलटि परइ सुरराया।१।पृ०५०८।रा०च०मा०

भगतिहि सानुकूल रघुराया । तातै तेहि डरपति अति माया ।।३।।वही पृ०६८१ वही

जीव माया के कारण जन्म-मरण के चक्र में पड़कर जगत् में आबद्ध रहता है,माया के इस धर्म का निर्गुण संतों में नामदेव, कबीर और दादू तथा सगुण भक्तों में तुलसी ने उल्लेख किया है -

इह संसार ते तबही छूटउ जउ माइआ नह लपटाउ ।

माइआ नामु गरभ जोनि का तिह तजि दरसनु पावउ।। नामदेव गु०ग्र०मा०३
पृ०६६३।।

जतो आवै जाय सो माया । बीजक पृ० ३५।।

माया बैठी राम ह्वै, कहै मैं ही मोहन राइ ।

ब्रह्मा बिस्नु महेस लौं, जोनी आवैं जाइ ।।१४३।।दादू दयाल की बानी भा०१
पृ० १२६।।

उपजै बिनसै गुण धरै, यहु माया का रूप ।।१६ ।।वही भा०१ पृ०१६२

तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। बिधा अपर अबिधा दोऊ।।२।।

एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा ।जा बस जीव परा भवकूपा ।।३।रा०च०मा०पृ०६१४।।

माया मरती नहीं अर्थात् माया शाश्वत है इस मत का निर्गुण संतों मे नानक ने प्रतिपादन किया है। सगुण भक्तो मे तुलसी ने इस मत की पुष्टि एकप्रकार से यह कह कर की है कि सीता राम की माया है जोआदि शक्ति है -

ना मनु मरै न माइआ मरै ।।गु०ग्र०सा० पृ० १३४२।।

अजा अनादि सक्ति अबिनासिनि । सदा संभु अरधा निवासिनि।।

जग संभव पालन लय कारिनि ।निज इच्छा लीला बपु धारिनि।।२।

रा०च०मा० पृ० ११८।।

बाम भाग सोभति अनुकूला । आदि सक्ति छबि निधि जगमूला ।।१।

वही पृ०१५८।।

सगुण भक्ती मे तुलसी ने माया के बिधा और अविधा ये दो रूप माने हैं -

तेहिकर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। बिधा अपर अबिधा दोऊ।।२।।

एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा । जा बस जीव परा भवकूपा ।

एक रचइ जग गुन बस जाकें । प्रभु प्रेरित नहि निज बल ताकें।।३।।रा०च०मा०

निर्गुण भक्तों ने दरिया ने इसके पाप और पुण्य दो रूप माने हैं। किन्तु इससे तात्पर्य नहीं है कि ससस्त प्रकार के कर्म -पाप और पुण्य- माया - प्रेरित होते हैं।

पाप पुन्न दोउ ... हैं उनही की माया ।३।दरिया साहब की बानी पृ०४८।।

निर्गुण और सगुण भक्तों मे कबीर, रैदास, सुन्दरदास, जगजीवनसाहब और तुलसी ने माया को मिथ्या और असत् माना है -

~~झूठन-- ... -झूठी--मानत--को- मिथ्या-और~~

झूठे ... झूठी माया, झूठे झूठ कमाये ।५।शब्दा भा०१ पृ०२६।।

यह माया ... ।७१।३।।

झूठी माया जग डहकाया, तौ तिन ताप दहै रे ।।४४ ।४ रैदास की बानी पृ० २६-२२ ।।

माया मिथ्या सापिनी जिनि सब जग खाया ।सु०ग्रं० पृ०२२१।।

झूठे दुनिया झूठी माया परि झूठे धन धाम ।।१।।जगजीवन साहब की बानी भा०२ पृ०६७।।

सो दासी रघुबीर के समुझें मिथ्या सोपि ।

छूट न राम कृपा बिनु नाथ कहउँ पद रोपि ।।७१।। ख रा०च०मा०६३४।।

इस प्रकार निर्गुण और सगुण भक्तो के माया के स्वरूप निरूपण मे कोई विशेष अन्तर नहीं है। निर्गुण भक्तो ने माया को त्रिगुणात्मक माना है। सगुण भक्तो ने स्पष्ट रूप से तो माया को त्रिगुणात्मक नहीं कहा है किन्तु उन्होने सीता को माया अथवा प्रकृति मान कर उसमे त्रिगुणो का समाहार अवश्य किया है।

~~उ~~ मोक्ष

निर्गुण और सगुण भक्तो ने मोक्ष के सम्बन्ध मे जो विचार व्यक्त किये हैं उनमें भी पर्याप्त समानता है।

निर्गुण और सगुण दोनो प्रकार के भक्तो ने यह माना है कि जन्ममरण और दुखों से छुटकारा मिलना ही मोक्ष है, तथा मोक्ष के उपरान्त जीव का पुनरागमन जन्म मरण नही होता। निर्गुण भक्तो मे नामदेव, कबीर, रैदास, दादू, सुंदरदास जगजीवनसाहब, मलूकदास, दरियासाहब मारवाड़ वाले आदि ने इस मत का समर्थन किया है और सगुण भक्तो मे तुलसी, केशव और सेनापति ने -

कबीर और तुलसी के अतिरिक्त अन्य निर्गुण सन्तों में से नामदेव एवं दादू ने इन मुक्तियों की ओर केवल संकेत मात्र ही किया है। कबीर और तुलसी ने इन मुक्तियों का विस्तार के साथ उल्लेख किया है -।

१ सामीप्य

सामीप्य मोक्ष में जीव ब्रह्म के समीप निवास करता है। सामीप्य मोक्ष का वर्णन करते हुए कबीर और तुलसी कहते हैं -

कहै कबीर नर बहु दुख सहिये, राम प्रीति करि संग बा रहिये ।क०ग्र०पृ०११७।

जन्म भूमि मम पुरी । उत्तर दिसि बह सरजू पावनि ।

जा मज्जन ते बिनहि प्रयासा । मम समीप नर पावहि बासा ।।३।रा०च०मा०

पृ० ८७३।।

.२ सारूप्य

सारूप्य मोक्ष में जीव भगवान् का रूप धारण करता है। कबीर के अनुसार तो सभी स्त्री पुरुष रामके रूप है और तुलसी के अनुसार जीव राम का दर्शन करके अपने सहज स्वरूप ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त करता है -

एते औरत मरदा साजे ये सब रूप तुमारे ।।६।क०ग्र०पृ०२६७।।

मम दरसन फल परम अनूपा । जीव पाव निज सहज सरूपा।।५।।

रा०च० पृ० ६४१।।

३ सायुज्य

सायुज्य मोक्ष में भक्त और भगवान् मिल कर एकाकार हो जाते हैं। कबीर[1] के अनुसार जीव मृत्यु के उपरान्त राम में मिलकर राम के समान हो जाता है। और तुलसी के अनुसार जो भक्त रामेश्वरम् पर गगाजल चढाता है वहसायुज्य मोक्ष प्राप्त करता है -

जल में कुंभ कुंभ में जल है, बाहरि भीतरि पानी।

फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यहु तत कथौ गियानीं ।।

जे रामेश्वर दरसनु करिहहि । ते तनु तजि ममलोक सिधरिहहि ।।

जो गंगाजलु आनि चढ़ाइहि । सो साजुज्य मुक्ति नर पाइहि।।१।।

रा०च०मा० पृ० ७४२।।

१- ज्यूं राम कहै ते रामै होई, दुख क्लेस घालै सब खोई ।।क०ग्र०पृ०२३६।।

४ सालोक्य

सालोक्य मोक्ष वह है जिसमें जीव ब्रह्म के लोक में निवास करता है। कबीर और तुलसी कहते हैं -

राम पद हरि सिमिरियै ऐसा सिमरौ नित।
अमरापुर वासा करहु हरि गया बहोरै वित ।।क०ग्र०पृ० २५०।।
जे सकाम नर सुनहिं जे गावहि। सुख सपनि नाना विधि पावहि।
सुर दुर्लभ सुख करि जग माही। अंत काल रघुपति पुर जाही ।।२।।रा०च०पृ०८८६

५ सार्ष्टि

सार्ष्टि मोक्ष में जीव मुक्त होकर भगवान् के समान ऐश्वर्य वाला हो जाता है कबीर के अनुसार जिस व्यक्ति का अभिमान नष्ट हो जाता है वह भगवनान् के समान हो जाता है और तुलसी केअनुसार जटायु मृत्यु के उपरान्त राम का रूप धारण करके उनके समान ऐश्वर्य प्राप्त करताहै -

कहु कबीर जिनि गया, अभिमांना, सो भगता भगवत समाना ।।क०ग्र०पृ०१३२।
गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषन बहु पट पीत अनूपा ।।
स्याम गात बिसाल भुजचारी। अस्तुति करत नयन भरि बारी ।। १।
रा०च० मा० पृ० ६३६।।

निर्गुण और सगुण भक्तों ने मोक्ष के सम्बन्ध में समान रूप से ये भी भाव व्यक्त किये हैं कि मोक्ष से भक्ति उत्कृष्ट है -

जब लग है बैकुंठ की आसा, तब लग नहि हरिचरन निवासा ।।
कहै कबीर यहु कहिये काहि, साध संगति बैकुंठहि आहि ।।२४।क०ग्र०पृ०९६।।
दरसन दे, हौं तौ तेरी मुकति न मांगौं रे।
सिद्धि न मांगौं रिद्धि न मांगौं, तुमही मांगौं गोबिन्दा।१।दादू दयाल की बानी।भा०२।
पृ० १२३।।

सगुनोपासक मोच्छ न लेही। तिन्ह कहुँ राम भगति निज देहीं।
बार बार करि प्रभुहि प्रनामा। दसरथ हरिषि गए सुरधामा।।४।।रा०च०पृ०८५४।।

इस प्रकार निर्गुण और सगुण रामभक्तों का मोक्ष के स्वरूप के सम्बन्ध में कोई मुख्यमूल-भेद न होकर पर्याप्त साम्य है। वैसे मोक्षपद का जितने विस्तार के साथ निर्गुण सन्तों ने विवेचन किया है उतना सगुण सन्तों ने नहीं।

परमार्थ साधन

निर्गुण और सगुण संतो का जहाँ ब्रह्म, जीव, जगत्, माया और मोक्ष के संबंध मे लगभग मतैक्य है, वहाँ उनका परमार्थ साधनो की दृष्टि से भी लगभग मतैक्य है।

जीव, जगत् और माया के बन्धन से मुक्त होकर कैसे परमार्थ सिद्धि प्राप्त कर सकता है ? इस प्रश्न के समाधान के लिये निर्गुणवादी और सगुणवादी भक्तो जिन परमार्थ साधनो का उल्लेख किया है, उनमे कोई मुख्य अन्तर न होकर पूर्ण साम्य है। निर्गुण और सगुण भक्त कवियो ने परमार्थ साधनो की दृष्टि से मानव देह, गुरु, ज्ञान, कर्म, भक्ति, नाम जप, भाग्य, योग, रामकृपा, सत्संग, धारणा, एकाग्रता, विश्वास, शील मनीषा, दया, ब्रह्मविचार, आत्मस्थिरता, त्याग भाव, दान, निर्मल मन और साम्य भाव आदि का समान रूप से विवेचन करते हुए सर्वाधिक महत्त्व गुरु और भक्ति को दिया है और भक्ति के सम्मुख अन्य परमार्थ साधन हेय समझे गये है (दे० अ० ५,८)।

निर्गुण और सगुण भक्तो ने भक्ति में भी राम नाम जप को प्रमुखता दी है। वैसे नाम जप भक्ति का एक अंग है, परन्तु निर्गुण भक्तो में कबीर ने यह कहा है कि हरि का नाम ही भक्ति है। अतः राम नाम के जप द्वारा भक्ति दृढ करनी चाहिए -

भगति भजन हरि नाँव है दूजा दुक्ख अपार ।।क०व० पृ०५।।

राम नाम कहि भगति दिढाई ।।क०ग्र०पृ०२२७।।

और सगुण भक्तो मे तुलसी ने यह कहा है कि राम नाम के दो अक्षर भक्ति रूपी स्त्री के सुन्दर कर्ण-आभूषण है अर्थात् भक्ति का सौन्दर्य राम नाम के इन दो अक्षरो से ही है तथा सूरदास ने यह कहा है कि राम नाम के दो अक्षर भक्ति ज्ञान के पथ है --

भगति सुतिय कल करन बिभूषन ।।रा०च०मा० पृ०५२-५३।।

भक्ति ज्ञान के पंथ सूर ये प्रेम निरन्तर भाखि ।।सू०वि०पू०पृ० १५०।।

राम भक्ति हिन्दी साहित्य मे राम नाम मोक्ष प्राप्ति का पूर्ण साधन माना गया है। निर्गुण और सगुण राम भक्तो ने मोक्ष-प्राप्ति के अन्य साधनो की तुलना में नाम को सर्वश्रेष्ठ माना है। कुछ भक्तो ने तो केवल नाम पर ही बल दिया है । निर्गुण भक्तो में नामदेव ने यह कहा है -

राम नाम की बराबरी तप दान और तीर्थादि नहीं कर सकते --

बानारसि तपु करै उलटि न्रस मरै, आनि दहै काइआ कलप कीज ।।
सुमेध जग दाजै सोना गरभादानु दाज । राम नाम सरि तऊ न पूज ।।
कोटि जउ तीरथ करै तनु जउ हिवाले गारै, राम नाम सरि तऊ न पूजै ।।२।

गु०ग्रं० पृ० ६७३।।

और नानक के अनुसार कर्म, धर्म, जप, तप, योगादि किसी भी साधन के द्वारा शब्द ब्रह्म की प्राप्ति नहीं किया जा सकता, एक रामनाम के बिना भवसिन्धु से पार होना कठिन है -

तीरथ बरत नेम जग लागा । काहू के मन धोखन भागा ।।२।।असरा०पृ०२।।
जोग जग्य ब्रत नेम साधना, कर्म धर्म ब्यौपारा ।
सो तो मुक्ति समन पै न्यारे, क्स छूटै जम द्वारा ।।२।।शब्दा०भा०१
पृ०५।।

कलजुग एको थिति ना होई । बिन सतनाम तरै नहि कोई ।।
जोना सकट कबहु न छूटै ।पकरि पकरि जम सबहिन लूट ।।ज्ञानावती पृ०२।।

कबीर ने यह भी कहा है कि जीव को अन्य किसी काम से प्रयोजन न रख कर केवल राम नाम का जप करना चाहिए-

कहत कबीर अवर नहि कामा । हमरे मन धन राम को नामा ।।१६।।
केवल नाम जपहु रे प्रानी ।११४।।क०ग्रं०

निर्गुण भक्तो मे रैदास ने यह कहा है कि करोड़ो यज्ञ भी राम नाम की तुलना नहीं कर सकते -

कोटि जग्य जो कोई करै । राम नाम सम तउ न निस्तरै ।।५।।

बा०पृ०३३।।

और नानक ने भी यही कहा है कि राम नाम की समानता कोटि कर्म भी नहीं कर सकते। अतः भक्त को केवल राम नाम का ही जप करना चाहिए । वे दान,पुण्य,हठयोग,व्रत, तप, कर्म, ज्ञान, ध्यान आदि साधनो को भी नाम जप की तुलना में हेय बताते है -

हरिनामै तुलिन पुजई जे लख कोटी करम कमाइ ।।२।गु०ग्रं०पृ०६२।।
भजु केवल नाम ।।गु०ग्रं० पृ०१२।।
हठु निग्रहु करि काइआ छीजै । वरतु तपनु करि मनु नही भीजै ।।
राम नाम सरि अवरु न पूजै । ।१।। चाडसि पवनु सिंघासनु भीजै ।।
निउली करम खटु करम करीजै । राम नाम बिनु बिरथा सासु लीजै ।।३।।
सतिगुर पूछि संगति जन कीजै ।मनु हरि राचै नही जनमि मरीजै ।।

राम नाम बिनु किआ करमु कीजै ।७।।गु०ग्रं० पृ०६०५।।

नामु विसारि चलहि अभिमानु । नाम बिना किआ गिआन धिआनु ।।

गुरमुखि पावहि दरगहि मानु ।।३।।वही पृ०६०५।।

जप तप संजम करम न जाना नामु जपी प्रभ तेरा ।।३।।वही पृ०८७८।।

तीरथ पुन दान जेते करणी नाम तुलि न सम सरे ।।४।म०१ वही पृ० ५६६।

निर्गुण संतों में दादू और सुन्दरदास के मतानुसार भी समस्त साधनों का सार राम नाम है, और राम नाम के अभाव में जप, तप, दान और व्रतादि साधन व्यर्थ हैं और इन साधनों का फल भी मिथ्या है --

तुम्हरे नॉउ लागि करि जीतनि मेरा । मेरे साधन सकल नाँव निज तेरा ।।

दान पुन्न तप तीरथ मेरे, केवल नॉव तुम्हारा॥ दादू दयाल की बानी पृ०८७-८८

शब्द पृ० ७५।।

सुन्दर नाम सकल सिरताजा, नाम सकल साधन को राजा ।४।

राम नाम बिन लेन कौं और बस्तु कहि कौंन ।

सुंदर जप तप दान व्रत लागे खारे लौंन ।।१०।।

नाम लिया तिन सब किया सुंदर जप तप नेम ।

तीरथ अटन सनान व्रत तुला बैठि दत हेम ।।१२।।सु०ग्रं०पृ०६७७-६६८।।

गुरु ज्ञान कौ विश्वास गहि जिनि भ्रमै दूजी ठौर रे ।

योग यज्ञ क्लेश तप व्रत नाम तुलत न और रे ।।१। वही पृ० ८३०।।

योग यज्ञ तप तीरथ व्रतादि दान तिनहू कौं सोऊ मिथ्याई बषानिये।।वही

पृ० ४७६।।

निर्गुण संतों ने परमार्थ साधनों में नाम जप को जो स्थान दिया है वही सगुण भक्तों ने दिया है। सगुण भक्तों में तुलसी के अनुसार यज्ञ, तप और व्रतादि नाम की समानता नहीं कर सकते । निर्वाण के अनेक मार्ग हैं किन्तु तुलसी के कथनानुसार राम नाम का ही जप करना चाहिए -

जग्य जप तप व्रत घनेहरि नाम सम नहिं होइरे ।।बारहमासी ह०लि० पृ०४।

नाना पथ निरबान के, नाना बिधान बहु भाँति ।

तुलसी तू मेरे कहे जपु राम नाम दिन राति ।।वि०प०१९२।४।।

तुलसी ने यह भी कहा है कि भक्ति, वैराग्य, विज्ञान, शम, दम, और दान आदि सब साधन नाम के ही आधीन है -

धर्म कल्पद्रुमाराम हरिधाम पथि संबल मूलमिदमेव एक ।

भक्ति वैराग्य विज्ञान शम दान दम नाम आधीन साधन अनेक । विoपृo४६।७।।

सगुण भक्तों में केशव ने यह कहा है कि जब वेद, पुराण, जप, तप, तीर्थ और द्विज धर्म भी नहीं रहेंगे, तब जगत् में एक मात्र नाम ही आधार के रूप में रहता है -

जब सब वेद पुराण नसै हैं । जप तप तीरथ हू मिटि जैहैं ।

द्विज सुरभि नहिं कोउ विचारै । तब जग केवल नाम उधारै ।। रा०च०२६।८।।

नष्टे वेद धर्मे भारतीय हिन्दू जाति के रामचरित तुलसी ने यह मत रखा है कि कलियुग में एक राम नाम ही अवलंब है -[1]

नहि कलि करम न भगति बिबेकू । राम नाम अवलंबन एकू ।।४।। रा०च०मा०

निर्गुण भक्तों में अनुमानतः इसी की ओर दादू ने संकेत किया है -

कलिमल विष जुग जुग के । राम नाउँ लूटे ।। सब्द पृ०४६।।

राम नाम के स्मरण से भवभय दूर होकर सुख मिलता है । और राम नाम का स्मरण[2] न करने से भवबन्धन में पड़ना पड़ता है इसलिए यदि जीव को सुखकी इच्छा है तो निर्गुण तथा सगुण दोनों मार्गों के अनुसार उसे राम नाम को कभी नहीं भूलना चाहिए -

कबीर राम न छोडिये तन धन जाइ त जाउ ।।क०ग्रं० पृ०२१४-२५८।।

राम नाम नहि छाडौं भाई । दादू दयाल की बाणी भा०२ पृ०१-२-३-५।।

जपु राम नाम दिन राति । वि०प० पृ०३१०।।

राम नाम का जप नित्यप्रति होना चाहिए इस मत का समर्थन नामदेव, रैदास, और सुन्दरदास ने भी किया है गु०ग्रं० पृ०६७३-२१, विवेक चिन्तामणि पृ०२ ।

इस प्रकार समान रूप से परमार्थ साधनों का विवेचन करते हुए निर्गुणवादी और सगुणवादी भक्त कवियों ने समस्त साधनों में राम नाम को सर्वाधिक महत्व दिया है । किन्तु सगुण भक्तों में तुलसी ने तो नामाराधना को राम के सगुण और निर्गुण[3] दोनों रूपों की आराधना से भी श्रेष्ठ प्रतिपादित किया है ।

१- एनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड इथिक्स भाग १२ पृ० ४७२ ।।

२- क०ग्रं० पृ०२६८, रैदास की बाणी पृ०१४, सु०ग्रं०पृ०६७८, सतकाव्य पृ०४४८, रा०च०मा०पृ० ५६, सं०सु०सा० पृ० ४६, गु०ग्रं० पृ०६६३

३- अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा । अकथ अगाध अनादि अनूपा ।।
मोरें मत बड़ नामु दुहूतें । किए जेहि जुग निज बस निज बूतें ।।१।। रा०च०५५।।

स भक्ति साधना

ऊपर बताया जा चुका है कि दार्शनिक दृष्टि से निर्गुण और सगुण भक्तों ने जीव के तात्विक रूप-निरूपण की दृष्टि से मुख्य रूप से तीन सिद्धान्तों की मान्यता प्रदान की है '१ जीव और ब्रह्म भिन्न भिन्न है, २ जीव ईश्वर का अंश है ३ जीव ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है । इन दार्शनिक सिद्धान्तों के अनुसार भक्ति के क्षेत्र में जीव का ब्रह्म से समानता का तथा छोटे और बड़े का सम्बन्ध स्वाभाविक रूप से स्थापित हो जाता है और जीव का ब्रह्म से क्या संबंध है इस भावना भेद के अनुसार ही सगुण और निर्गुण सम्प्रदायों की भक्ति का स्वरूप भी निश्चित होता है ।

भक्ति का स्वरूप

यदि जीव और ब्रह्म मे कोई तात्विक भेद नहीं है तो तात्विक दृष्टि से जीव अपने को ब्रह्म के समान ही समझेगा, और वह इस समानता की अनुभूति के लिये ही लालायित रहेगा । निर्गुण संतों ने इस समानता की अभिव्यक्ति दाम्पत्य रति के प्रतीकों द्वारा की है । उन्होंने प्राय इसी प्रेम के आधार पर अपनी भक्ति का स्वरूप व्यक्त किया है -

मैं बउरी मेरा रामु भतारु । रचि रचि ता कउ करउ सिगारु ।।१।।गु०ग्रं०पृ०११६४

मै बौरी मेरे राम भरतार, ता कारनि रचि करौ स्यागर ।।क०ग्रं०पृ०२०३।।

दुलहनीं गावहु मंगलचार, हम घरि आये हो राजा राम भरतार ।।

कहै कबीर हम ब्याहि चले है पुरिष एकअबिनासी।।१।।क०ग्रं०पृ०८७।।

हम नारी बहु अंग ।दादू पुरिष हमारा एक है ।।५५।।बा०पृ०१८४।।

सगुण भक्तों में तुलसी ने यह तो माना है कि संत या भक्त और राम मे कोई अंतर नहीं है, परन्तु उन्होंने जीव को ईश्वरांश मानने के कारण सेवक का स्वमी के प्रति जो प्रेम होता है प्राय उसी का उपदेश दिया है । फलत निर्गुण भक्त अपनी प्रेमा भक्ति मे दाम्पत्य रति का विकास करते है और सगुण भक्त सेवक और सेव्य भाव के अन्तर्गत जो प्रेम आता है उसका पोषण करते है ।

१- दे० अध्याय ६ ।।

उपासनार्थी निर्गुण भक्त कहते हैं -

हम तो तुम्हरी दासी सजना तुम हमरे भरतार ।

दीनदयाल दया करि आओ, समरथ सिरजनहार ।। ४। शब्दा० भा० २ पृ० ७५।।

सेव न पाव जान दिश धारै । जोपति कहै सु आज्ञा पारै ।।

सदा आग्यां सेवा लावै । सोइ भक्ति अनन्य कहावै।। सु० ग्रं० १४। पृ० ९६।।

सगुण भक्तों में तुलसीदास कहते हैं[1] -

सुनहु लछिमन प्रभु कैरीती । करहिं सदा सेवक पर प्रीती ।। रा० च० पृ० ६९२।।

तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा । जेहि गति मोरि न दूसरि आसा।

पुनि पुनि सत्य कहउँ तोहि पाहीं । मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं ।।

रा-८४।। पृ० ९४७ ।।

सबके प्रिय सेवक यह नीति । मोरे अधिक दास पर प्रीति ।। ४। रा० च० पृ० ८८७।

निर्गुण और सगुण भक्तों के दास्य भाव में यही मुख्य अन्तर है कि निर्गुण भक्त दाम्पत्य रति के अन्तर्गत दास्यभाव को स्थान देते हैं और सगुण भक्त दास्य भाव को ~~स्थान देते हैं~~ सैद्धान्तिक रूप से ग्रहण करते हुए उसी के अन्तर्गत अनन्य अनुराग का विवेचन करते हैं ।

वैसे निर्गुण सन्तों में भी सगुण भक्तों के सदृश सेवक और सेव्य भाव के कहीं कहीं स्थान अवश्य मिलते हैं। निर्गुण संतों में रैदास ने तो सेवक सेव्य भाव को स्पष्ट रूप में माना है -

प्रभु जी तुम स्वामी हम दासा । ऐसी भक्ति करै रैदासा ।। बा० पृ० ४२।।

और सुन्दरदास ने पराभक्ति का विवेचन करते हुए सेवक सेव्य भाव का उल्लेख किया है। सुन्दर के मतानुसार जिस भक्ति में चित्त में विक्षेप नहीं होता, और भक्त भगवान् के निकट सदैव वर्तमान रहता है, तथा सदैव उनके समक्ष भृत्य की भाँति हाथ जोड़ कर खड़ा रहता है, एवं निर्निमेष भाव से भगवान् को देखता रहता है, और जिस भक्ति में सेवक और स्वामी रस पीते हुए अभिन्न भी रहते हैं और सदैव भिन्न भी तथा जिसमें सेवक के मन में सेवा भाव अक्षुण्ण रूप से विद्यमान रहता है, वह पराभक्ति है[2]।

1- सु० ग्रं० पृ० २७-२८

2- सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि ।

भजहु राम पद पंकज अस सिद्धान्त बिचारि।। ११९। रा० च० पृ० ९८६

[illegible] श्रवण, नयन, रसना, चरण, हस्तादि और जीभ के बिना ध्वनि सुनना, रूप देखना, बोलना एवं प्रशंसा करना, नृत्य करना, नाद बजाना, [illegible] करना, और [illegible] भक्त में ऐसा भाव रहता है, उस [illegible] भक्ति पराभक्ति कहलाती है -

कान बिना धुनि सुने, नयनु बिनु रूप निहारै ।
रसना बिनु उच्चरै प्रशंसा बहु बिस्तारै ।।
नृत्य चरन बिन करै हस्त बिनु करै,
[illegible] बिनु नाद बजावै ।।
अंग बिना मिलि संग बहुत आनद बढ़ावै ।
बिन सीस नवैं जहाँ सेवको, सेवक भाव लिये रहै ।
मिलि परमातमसों आत्मा, पराभक्ति सुन्दर कहै ।५०। ज्ञानसमुद्र और ज्ञानविलास
पृ० १८।।

पराभक्ति है ताते आगे सेवक सेव्य न होइ विछेद ।
उत्तम मध्य कनिष्ठ तीन बिधि सुंदर इनिके मिटि है भेद ।।४।सु०ग्र०पृ०१७।।

इस प्रकार निर्गुण भक्तो में भी सगुण भक्तो के समान सेवक सेव्य भाव अवश्य मिलता है परन्तु उनमे सेवक सेव्य भाव की भक्ति का वैसा विकास नहीं हुआ जैसा सगुण भक्तो की भक्ति का हुआ है ।

निर्गुण और सगुण भक्तो की भक्ति मे कर्म की भी समान रूप से व्याख्या हुई है । निर्गुण भक्तो मे रैदास के अनुसार भक्त को लोकाचार का पालन करना चाहिए -

लोक बेद मेरे सुकृत बड़ाई । लोक लीक मोपै तजी न जाई ।।बा०पृ०३८।

नानक के अनुसार भक्ति और कर्म मे विरोध नहीं है क्योंकि कर्म रूपी बेलि पर रामनाम रूपी फल लगता है । नानक के अनुसार भक्त को उन कर्मो कोकरना चाहिए जिनसे सुख प्राप्त होता है -

करम करतूति अमृत फलु लागा हरिनाम रतनु पाइआ ।।७।गु०ग्र०पृ०१०३६।।
करम करतूति बेलि बिस्थारी राम नामु फलु हुआ ।गु०ग्र०पृ०३५१।।
जितु करमि सुखु ऊपजै भाई करम करहु ससारी ।।वही पृ०६३५।।

और नानक के अनुसार जो अध्यात्म कर्म करता है वही सच्चा है -

अधिआतम करम करे दिनु राती ।।६।गु०ग्र०पृ०१०३६।।
अधिआतम करम करे ता साचा ।मुकति भेदु किआ जाणै काचा ।

निर्गुण भक्तों के समान सगुण भक्तों ने भी अपनी भक्ति साधना में कर्म को स्थान दिया है। तुलसी के अनुसार भक्त को शुभ कर्म और आश्रम-धर्म का पालन करते रहना चाहिए क्योंकि इनसे सुख प्राप्त होता है। पर तुलसी का यह कथन है कि भक्त को कर्म का परित्याग नहीं करना चाहिए। तुलसी के अनुसार समस्त शुभ कर्मों का [illegible] फल यही है कि राम के चरणों में सच्चा प्रेम प्राप्त हो -

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग ।

चलहि सदा पावहि सुखहि नहि भय सोक न रोग ।। रा०मा०पृ०८६१।।

सोचिय गृहि जो मोह बस करइ करम पथ त्याग ।१७२। रा०मा०पृ०५७०।।

[illegible] भाग [illegible] न जाही । [illegible] नाना [illegible] ।।

सकल सुकृत कर बड़ फल एहू । राम सीय पद सहज सनेहू ।।२। रा०च० पृ०३६३।।

इस प्रकार निर्गुण भक्तों ने अपनी भक्ति में कर्म की अपेक्षा तो समझी है किन्तु उनके अनुसार भक्त को कर्मों की आवश्यकता तभी तक रहती है जब तक ज्ञान उत्पन्न नहीं होता है। ज्ञानोदय होने पर सम्पूर्ण कर्म नष्ट हो जाते हैं,[1] ऐसी धारणा की प्रतीति निर्गुण और सगुण दोनों निष्ठाओं के भक्त करते हैं -

ज्ञान के कारन करम कमाय । होय ज्ञान तब करम नसाय ।।कबीर की शब्दा०भा०१ पृ० ३१।।

ज्ञानहि कारन करम कराई । उपजै ज्ञान त करम नसाई ।।४।।रैदास की बानी पृ०२१।।

बस बिरह द्विज अनहित कीन्हे । कर्म कि होहि स्वरूपहि चीन्हे ।।रा०च०मा० पृ० ६७५।।

निर्गुण और सगुण संतों ने जहाँ भक्ति में कर्म को स्थान दिया है वहाँ उन्होंने ज्ञान को भी स्थान दिया है। कबीर के अनुसार भक्त को ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, जो ज्ञान प्राप्त नहीं करता, एक प्रकार से उसका जीवन व्यर्थ हो जाता है। अत उसे ऐसा ज्ञान प्राप्त करना चाहिए जिससे भव-बन्धन में न पड़ना पड़े। इस प्रकार कबीर की प्रेम साधना में ज्ञान आवश्यक माना गया है। कबीर ने यह कहा है कि सुन्दरी जीवात्मा को शील सुमति और ज्ञान आदि से अपना शृंगार करना चाहिए -

जो मैं ग्यान बिचार न पाया, तौ मै यौ ही जन्म गंवाया।

निर्गुण संतो मे दादू का मत है कि जीव जब विरह और ज्ञानाग्नि में दग्ध होने लगता है तब उसे राम के दर्शन होते है और जब भक्त को निर्मल ज्ञान प्राप्त हो जाता है तब उसे भक्ति और प्रेम रस की प्राप्ति होती है -

विरह अगिन तन जालिये, ज्ञान अगिनि दौं लाइ ।

दादू नख सिख परजलै, तब राम बुझावै आइ ।।दा०भा०१ पृ०३७।।

निर्मल गुरु का ज्ञान गहि निर्मल भगति विचार ।

निर्मल पाया प्रेम रस छूटै सकल विकार ।।३६।।दा०भा०१।पृ०४।।

और दरिया का यह मत है कि प्रथम भक्ति उत्पन्न होती है और तदनन्तर ज्ञान । ज्ञान पुरुष है और भक्ति नारी -

पुरुष ज्ञान भगति है नारी । ज्ञानहि भगति बीच नहि न्यारी ।।

पहिले भगति तब होखे ज्ञाना । पहिले सत तब पुरुष समाना ।।द०भा०पृ०३३

भक्ति नारी है और ज्ञान पुरुष अत दोनो मे कोईविरोध नही है । जिस प्रकार पत्नी अपने पति से मिल कर एक हो जाती है उसी प्रकार भक्ति और ज्ञान अन्त मे मिल कर एक हो जाते हैं द०एक अनु० पृ०१२७ --

अगर अमर बर मीलेव कन्त । मेटेउ कलपना दुख अनंत ।।

ज्ञान पुर्ख है भक्ति नारि । कहे दरिया तन मनहि वारि ।।शब्द०५३.७।।

जिस प्रकार निर्गुण भक्तो ने ज्ञान और भक्ति मे कोई विरोध नहीं माना है उसी प्रकार सगुण भक्तो ने भी ज्ञान और भक्ति मे कोई विरोध नही माना है । सगुण भक्तो के अनुसार भी भक्ति और ज्ञान परस्पर प्रतिकूल नही है । सगुण भक्तों में तुलसी के अनुसार हरि चरणो मे प्रेम भक्ति का होना ही ज्ञान रूपी फल का रस है । विवेक होने पर जब मोह नष्ट हो जाता है, तब रघुनाथ के चरणों में प्रेम भक्ति उत्पन्न होता है -

भगति निरूपन बिबिध बिधाना । क्षमा दया दम लता बिताना ।।

सम जम नियम फूल फल ग्याना ।हरिपद रति रस बेद बखाना ।।७।।

रा०च०मा० पृ०६६।।

होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा । तब रघुनाथ चरन अनुरागा ।।

सखा परम परमारथु एहू ।मनक्रम बचन रामपद नेहू ।।३।।वही पृ०४०८।

तुलसी के अनुसार यह भक्ति ज्ञान और वैराग्य से युक्त है -

ब्रा निरूपन धरम बिधि बरनहिं तत्व बिभाग ।

कहहिं गति भावत कै राजुन ग्यान विराग ।।९४।वही पृ०७८।।

तुलसी ने ज्ञान को पुरुष और भक्ति को स्त्री माना है किन्तु उन्होंने दरिया की भाँति ज्ञान और भक्ति का पति पत्नी के रूप मे समभाव न दिखाकर माया के प्रभावों की दृष्टि से भक्ति को ज्ञान से उत्कृष्टतर सिद्ध किया है -

ग्यान बिराग जोग बिग्याना । ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना ।।

पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती । अबला अबल सहज जड जाती ।।८।।रा०च०पृ०८६

सोउ मुनि ग्याननिधान मृगनयनी बिधु मुख निरखि ।

बिबस होइ हरिजान नारि बिष्नु माया प्रगट ।।११५।। स ।।

इहाँ न पच्छपात कछु राखउँ ।बेद पुरान संत मत भाषउँ ।।

मोह न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा ।।१।।

माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ । नारि बर्ग जानइ सब कोऊ।।

पनि रघुबीरहि भगति पिआरी। माया खलु नर्तकी बिचारी ।।२।।

भगतिहि सानुकूल रघुराया । ताते तेहि डरपति अति माया ।।

राम भगति निरूपम निरूपाधी । बसई जासु सदा अबाधी ।।३।रा०च०पृ०८६१।

इस प्रकार दोनों निष्ठाओं ज्ञान के स्थान के सम्बन्ध में थोड़ा अन्तर भी है ।

भक्ति के आदर्श

निर्गुण सन्तो ने प्रेमाभक्ति के आदर्श रूप मे भर्तृहरि,गोरखनाथ,जयदेव,गोपीचद ध्रुव,प्रह्लाद,विभीषण,और शुकदेव आदि का उल्लेख किया है । निर्गुण भक्तोने दास्य भक्ति के आदर्श रूप मे शकर का आदर्श प्रतिपादित किया है । निर्गुण भक्त-कवियो के अनुसार ध्रुव,प्रह्लाद,अजामिल,गज, गणिका, और वाल्मीकि ऐसे आदर्श भक्त है जो राम नाम का स्मरण करने मात्र से ब्रह्म को प्राप्त हुए है दे०अ०६ ।

सगुण भक्तो ने प्रेमा भक्ति की दृष्टि से दशरथ, जनक, भरत, लक्ष्मण,कौसल्या विभीषण,विश्वामित्र,अहिल्या,वशिष्ठ,सुग्रीव और जानकी आदि के आदर्श प्रस्तुत किये हैं । सगुण भक्तो के अनुसार हनुमान लक्ष्मण और जाम्बवान् आदि भक्त दास्य भक्ति के आदर्श है, और उनके अनुसार शिव, नारद, ध्रुव, प्रह्लाद, वाल्मीकि, गज,गणिका,गीध,अजामिल, द्रौपदी,पार्वती इत्यादि ऐसे आदर्श भक्त हैं जिन्होंने राम नाम के अवलम्ब से भगवत् तत्व कीप्राप्ति की है । दे०अ० ६ ।

निर्गुण और सगुण भक्त कवियों ने प्रेम, दास्य और नामस्मरण भक्ति की दृष्टि से जिन आदर्श भक्तों का उल्लेख किया है, उनमें नाम स्मरण भक्ति के भक्तों को छोड़कर शेष में भक्तों की नामानुक्रमणिका के विचार से कुछ अन्तर अवश्य है परन्तु भक्ति भाव की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं है। वे विदुर, उग्रसेन सुदामा, अजामिल, अहिल्या, गणिका, कुब्जा, अम्बरीष, विभीषण, ध्रुव, प्रह्लाद, राजा बलि, नृसिंह, भीम, गज, गोपीचन्द, शुकदेव, अक्रूर, शिव, ब्रह्मा, विष्णु, शेष, नारद, सनक, सनन्दन, हनुमान, गोरखनाथ, जयदेव, और रामानन्द इत्यादि जिन भक्तों को निर्गुण सन्तों ने भक्ति के विविध भावों की दृष्टि से प्रतिपादित किया है उनमें से गोरखनाथ आदि योगियों को छोड़कर लगभग उन्हीं भक्तों को सगुण भक्तों ने भी आदर्श रूप में ग्रहण किया है।

निर्गुण रामभक्ति परम्परा का विकास हिन्दी क्षेत्र में सगुण रामभक्ति परंपरा की तुलना में कुछ अधिक वेग से और कुछ पहले हुआ। इसलिए निर्गुणभक्तों ने अपने पूर्ववर्ती सन्तों का भी आदर्श रूप में प्रतिपादन किया है। रामानन्द नामदेव त्रिलोचन, कबीर, रैदास, सेणि, पीपा, और सोभा आदि ऐसे भक्त हैं जिनका उनके परवर्ती सन्तों ने आदर्श रूप में उल्लेख किया है। सगुण राम भक्ति सम्प्रदाय में कदाचित् बाद में इसीलिए जब रसिक सम्प्रदाय का विकास हुआ तब रसिक भक्तों ने अपने पूर्ववर्ती रसिक भक्तों के आदर्शों का प्रतिपादन किया है।

पर सगुण राम भक्तों ने भक्ति के तत्वों का राम कथा को आधार मान कर व्याख्या की है। परिणामतः उनके लिए राम-कथा के ऐसे पात्रों का आदर्श प्रस्तुत करना आवश्यक था जो रामभक्त थे। क्योंकि निर्गुण सन्तों ने राम कथा का अवलम्ब लेकर अपने भक्ति-भाव को व्यक्त नहीं किया है। इसलिए उनके काव्य में रामकथा के उन आदर्श भक्तों का अभाव है जिनका सगुण भक्तों ने उल्लेख किया है।

इस प्रकार निर्गुण और सगुण भक्तों ने जिन भक्तों का उल्लेख किया है, उनमें कुछ अन्तर तो अवश्य है परन्तु दोनों के भावों में कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता। निर्गुण और सगुण भक्त-कवियों ने गीता के इस आदर्श का समान रूप से प्रतिपादन किया है कि भगवान् की शरण लेकर स्त्रियां वैश्य, शूद्र और पापयोनि जीव भी परम गति प्राप्त कर लेते हैं 'गीता ९।३०-३१-३२-३३.। निर्गुण भक्तों में नामदेव, कबीर, रैदास, आदि ने कहा है -

गौतम नारि अहिलिया तारी पावन केतक तारीले ।
ऐसा नाम अजाति नामदेऊ तऊ सरनागति आरजेला।।३५।।
हि०दो०म०उ०की देन पृ० २५३ ।।

जामो गज गनिका, पतित करम कीन्हा ।
तेऊ उतरि पारि गये, राम नाम लीन्हा।।क०ग्रं० पृ०१९६।।
ब्राभन वैरा पूत अरु स्त्री जीम चजाल गलेन्ज क्लिन तोई ।।
और पुनीत भगवंत भजन ते आपु तारि तारे कुल दोई ।।३।।स०मू०नार पृ०१८३।।
ऐसे जानि जपौरे जीव जपि ल्यो राम न भरमो जीव ।
गनिका थी किस करमा जोग । पर पूरुष सो रमती भोग ।।१।।
निसि बासर दुस्करम कमाई । राम कहत वैकुंठे जाई ।।२।।
नामदेव कहिये जाति के ओछ ।जाको जस गावै लोक ।।३।।बा०पृ०३२-३३
आजामिल गज गनिका तारी, काटी कुंजर की पास रे ।
ऐसे दुरमत मुकत कीये तो क्यों न तरे रैदास रे ।।४८।।बा०पृ०२३।।

और सगुण भक्तों में तुलसी ने कहा है -

भगति हीन विरनि दिन होई । सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई ।।
भगतिवंत अति नीचउ प्रानी । मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी ।।५।।
रा०च०मा० पृ० ६४७ ।।

स्वपच सबर खस जमनजड पावँर कोल किरात ।
रामु कहत पावन परम होत भुवन विख्यात ।।१९४।।रा०च०पृ०४८७।।

भक्त का भगवान् के प्रति कैसा प्रेम होना चाहिए इसके लिए निर्गुण और सगुण संतों ने जिन आदर्शों का विवेचन किया है उनमें भी पर्याप्त समानता है।

भक्त को राम से कैसा प्रेम होना चाहिए, इस सम्बन्ध में निर्गुण और सगुण संतों ने समान रूप से यह कहा है कि जैसे कामी को कामिनी, लोभी को धन, भूखेको भोजन, प्यासे कोपानी, मछली को जल और माता को अपना पुत्र प्रिय होताहै वैसे ही भक्त को राम प्रिय लगने चाहिए ।लगभग इन आदर्शों का निर्गुण संतो में नामदेव, कबीर, दादू, और सुन्दरदास तथा सगुण भक्तो मे तुलसी ने उल्लेख किया है -

जैसी भूखे प्रीति अनाज । तृखावंत जल सेती काज ।।
जैसी पर पुरषारत नारी । लोभी नरु धन का हितकारी।।
कामी पुरुष कामनी पिआरी । ऐसी नामे प्रीति मुरारी ।।

जैसे प्रानि बारिक अरु माता । ऐसा हरि सेता मन राता ।

प्रणवै नामदेउ लागी प्रीति। गोविन्दु बसै हमारै चीति ।।गु०ग्र०पृ०११६४।

ज्यूं नामी कौं काम पियारा ; ज्यूं प्यासे कूं नीररे ।

ज्यों प्यारा माहरी ,लोभी प्यारा दाम ।।

माता प्यारा बालक भक्त प्यारा नाम ।।क०ग्र०पृ०१९२।।

ज्यूं नमती है चित अमत ह, सूरे के संग्राम ।

निरधन के चित घनबसै, यौं दादू के राम ।।२०।।बा०पृ०३१।।

निर्धन ज्यों घन चाहै कांमिनी कौ कन्त चाहै ।

ऐसी जाके चाह ताकों कछु न सुहात ह ।सु०ग्रं०पृ०२६।।

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम ।

तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहु मोहि राम ।।१३० ख रा०च०मा०पृ०१००२।

राम कबहुँ प्रिय लागिहौ जैसे नीर मीनको २

सुख जीवन ज्यों जीवको, मनि ज्यो फनिको हित,ज्यों धन लोभ लीन को ।।१।।

ज्यो सुभाय प्रिय लगति नागरी नागर नवीन को ।

त्यो मेरे मन लालसा करिये करुनाकर।पावन प्रेम पीन को ।।२।वि०प०२६६।।

निर्गुण और सगुण भक्तो ने प्रेम की अनन्यता के लिये मृग और नाद, चातक और स्वातिबूँद,सर्प और मणि, चकोर और चन्द्रमा,तथा कमल और सूर्य के आदर्श समान रूप से प्रस्तुत किये है[1]। इस प्रकार प्रेम की अनन्यता की जो भावना निर्गुण संतो में मिलती है, वही सगुण संतों मे मिलती है । प्रेम की अनन्यता और भक्ति के आदर्शों की दृष्टि से निर्गुण और सगुण भक्तों में कोई मतभेद दृष्टिगत नहीं होता । भक्ति भाव की तीव्रता, प्रेम की अनन्यता, और दास्य भाव की गंभीरता की दृष्टि से दोनो प्रकार के भक्त एक ही कोटि में आते हैं ।

भक्ति के साधन

निर्गुण और सगुण भक्तों ने परा भक्ति को साध्य मानकर उसके साधनो का भी लगभग समान रूप से उल्लेख किया है । दोनों ही भक्तों ने साधन भक्ति, नवधा और प्रपत्ति भक्ति आदि का पराभक्ति के साधन रूप मे विवेचन किया है।

१- दे० अ० ६, ६ ।।

कबीर के अनुसार कर्म, ज्ञान, जप, सयम, व्रत, स्नान, योग, तप और दानादि जितने भी साधन भाव भक्ति की प्राप्ति के लिये ही है, क्योंकि यदि भाव भक्ति उत्पन्न नहीं होती तो इन साधनों का कोई उपयोग नहीं है-

क्या जप क्या तप संजमा, क्या तीरथ व्रत अस्नान।
जो पै जुगति न जानियै, भाव भगति भगवान ।। क०ग्र०पृ० १२६।
का जोग जगि तप दांना। जौ तैं रांम नाम नहि जाना।। क०ग्र०पृ० १७८।।

कबीर राम की शरण में जाकर भक्ति करते हैं। उनके अनुसार यह शरणागति पराभक्ति की प्राप्ति में सहायक है। राम की शरण प्राप्त करके जीव उन्हें अपना बना लेता है, और उनकी प्रेमा भक्ति मे निरत रहता है -

नाउ मेरे खेवै नाउं मेरे बारी, भगति करौ मै सरनि तुम्हारी ।। ३३३।।
अब हरि हूँ अपनौ करि लीनौं प्रेम भगति मेरौ मन भीनौं ।। ३३४। क०ग्र०पृ० २०१।

निर्गुण संतों में रैदास ने भी नवधा भक्ति और प्रपत्ति भक्ति का पराभक्ति के साधन रूप में वर्णन किया है --

हम जानौं प्रेम प्रेम रस जाने, नौबिधि भगति कराई।
स्वाँग देखि सब ही जन लटक्यो, फिरियों आन बँधाई ।।४।। पृ०४ बा०
आयौं हौ आयौं देव तुम सरना। जनि कृपा कीजे अपनौं जना।
त्रिबिध जोनि बास जमकी अगम त्रास, तुम्हरे भजन बिन भ्रमत फिरौं ।।
बा०पृ०६।।

सगुण भक्तो में तुलसी के मतानुसार साधन भक्ति साध्य की प्राप्ति के लिए ही है। साध्य की प्राप्ति होने पर साधन भक्ति साध्य में मिल जाती है। इस साधन भक्ति का वर्णन करते हुए तुलसीदास ने राम के चरणों मे उत्पन्न होने वाली निरन्तर प्रीति को उसका सुन्दर फल कहा है -

जप तप नियम जोग निज धर्मा। श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा ।।
ग्यान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन ।। १।।
आगम निगम पुरान अनेका। पढ़े सुने कर फल प्रभु एका ।।
तव पद पंकज प्रीति निरंतर। सब साधन कर यह फल सुंदर ।। २।
रा०च० पृ०६१५ ।।

तुलसी के राम ने नवधा भक्ति के रूप में जितने भी गुणों का उल्लेख किया है वे सब राम-प्रेम की प्राप्ति में साधन माने गये हैं। तुलसी के अनुसार नवधा भक्ति साधाभक्ति के अन्तर्गत ही आती है। तुलसी के राम इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं -

नव महुँ एकउ जिन्ह के होई। नारि पुरुष सचराचर कोई ।।3।।
सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरे। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे।
जोगि बृंद दुरलभ गति जोई। तो कहुँ आजु सुलभ भइ सोई ।।4।।
रा०च० पृ०६४०-४१।।

तुलसी के अनुसार शरणागति भक्ति प्रपत्ति भक्ति भी पराभक्ति की साधन है। तुलसी के विभीषण राम की शरण में जाकर ऐसी ही पवित्र भक्ति की प्राप्ति करता है--

अब कृपाल निज भगति पावनी। देहु सदा सिव मन भावनी ।।
एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा। मागा तुरत सिन्धु कर नीरा ।।4।।
रा०च० पृ० ७२८।।

इस प्रकार निर्गुण और सगुण भक्तों ने साधन भक्तियों का पराभक्ति के साधन रूप में उल्लेख करके उनका फल हरि-भक्ति की प्राप्ति माना है।

निर्गुण भक्तों ने भक्ति की प्राप्ति की दृष्टि से मानव देह का होना आवश्यक माना है। पुनः निर्गुण संतों के अनुसार मानव जीवन का भगवत् भजन के लिए उपयोग करते हुए भगवत्-भक्ति की प्राप्ति की दृष्टि से भक्त में आराध्य में विश्वास, सत्य, शील, संतोष, विवेक, क्षमा, दया, अहिंसा, संयम, सदाचार, दैन्यभाव, सत्व गुण, निर्मल मन, धृति, इन्द्रियज्ञान और एकाग्रता प्रभृति गुणों[1] का होना आवश्यक है। निर्गुण भक्तों के समान[2] ही सगुण भक्तों ने भी भक्त के इन गुणों की आवश्यकता का उल्लेख किया है।

१- दे० अध्याय ६।

२- वि०प० २०५, दे० अ० ६।।

निर्गुण और सगुण भक्तो मे इस प्रकार भक्ति के साधनो की दृष्टि से भी कोई विशेष भेद नहीं है। केवल सगुण भक्तो ने ईश्वर की उपासना और ब्राह्मणो की सेवा को भी भक्ति के साधनो के रूप में स्वीकार किया है जिन्हे निर्गुण भक्त नही स्वीकार करते हैं।

भक्ति के अनुकूल तत्व

निर्गुण और सगुण भक्तो मे भक्ति के अनुकूल तत्वो की दृष्टि से भी कोई भेद नहीं है। निर्गुण और सगुण भक्तो ने समान रूप से गुरु-कृपा, सत्संग, हरिकृपा, प्रेम, नाम, सेवा और भाव आदि भक्ति के अनुकूल तत्वो की व्याख्या की है।

निर्गुण संतो मे कबीर, दादू, जगजीवन साहब, मलूकदास और भक्त दरिया बिहार वाले तथा सगुण भक्तो मे तुलसी ने भक्ति की सिद्धि के लिये राम कृपा का होना आवश्यक माना है[1] -

तह भाव प्रेम की पूजा होइ, जा परि किरपा जानै सोइ।

कृपा करि हरि देइ उमंग, तहं जन पायौ निर्भै संग ।।४।।दादूदयाल की बानी पृ०६७५।।

सो मनि जदपि प्रगट जग अहई। राम कृपा बिनु नहि कोउ लहई।।६।।
रा०च० पृ० ६८८।।

भक्ति के अनुकूल तत्वो में सत्संग का निर्गुण भक्तो मे नामदेव, कबीर, रैदास नानक, दादू, मलूकदास, दरियासाहब मारवाड वाले और संत दरिया बिहारवाले तथा सगुण भक्तो मे तुलसी और सूरदास ने उल्लेख किया है[2] -

साध संगत गुरुदेव, उहाँ चलि जाइये।

भाव भक्ति उपदेश, तहाँ ते पाइये ।।शब्द०भा०२ पृ०१०१।।

साधु संगत बिना भाव नहीं ऊपजै, भाव भगति क्यों होइ तेरी।।रैदास की बानी पृ० २६

साध मिलै तब ऊपजै, हिरदै हरि का भाव।
दादू संगति साधकी, जब हरि करै पसाव।। दादू दयाल की बाणी भा०१ पृ०१५६-६०।।

रामसिन्धु घन सज्जन धीरा। चंदन तरु हरि संत समीरा।

सब कर फल हरि भगति सुहाई। सो बिनु संत न काहूँ पाई ।।६।।

अस बिचारि जोइ कर सतसंगा। राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा ।।१०।।
रा०च० पृ० ६८८।

प्रबल अग्य जनित व्याधि भैषज भगति, भक्त भैषज्य मदत दरस ।
ता भगना अकर निरतर नहीं, किमपि मनि मलिन रह दासानुदास ।।विoपoपृ०७।६।

निर्गुण और सगुण दोनों ही मतों ने भक्ति के लिये ज्ञान की आवश्यकता पर बल दिया है -

विमल ग्यान जल जब सो नहाई ।।तब रह राम भगति उरवाई ।।६।
रा०च०मा०पृ० ६६२।।

भीतर ज्ञान विचारत, भक्ति करह तब नाम ।
सत गुरन सतगुरु सेवा आवागमन मेटाय ।।दरिया रव अनुशीलन पृ०५०।।

निर्गुण और सगुण भक्तों के अनुसार भगवान्भक्ति प्राप्त करने की दृष्टि से भक्त के हृदय मे प्रेम का होना आवश्यक है। उनके अनुसार प्रेम के बिना भक्ति की सिद्धि नहीं होती[1] -

बिणु प्रीति भगति न होवई बिणु सतिगुर न लगै पिआ ।।गु०ग्रं०पृ० १२८६।।
बिना प्रेम नाहि भक्ति बिबेका, और प्रेम रह गुरु सगि मेला ।।द०र०पृ०पृ०५०।।
राम चरण दृढ़ प्रीति बिना नहि दारज सरई ।
कृ स्वामि अनुराग बिनु नहीं धर्म को लेश ।।
जैसे कन्या घर रहयो तैसे गयो विदेश ।।२०।।अग्रदास की कुण्डलिया पृ० ६-८-११।

भक्ति मार्ग मे प्रेम की सर्वाधिक महत्ता है। प्रेम की महिमा का उल्लेख करते हुए सगुण भक्तों मे तुलसी ने और निर्गुण संतों मे दादू ने यह कहा है कि वही सर्वज्ञ, तत्वज्ञ और पंडित है जो राम के चरणारविन्दों में अनुरक्त रहता है -

सोइ सर्वग्य तग्य सोइ पंडित । सोइ गुन गृह विग्यान अखंडित ।।
दच्छ सकल लच्छन जुत सोई । जाके पद सरोज रति होई ।।४।। रा०च० पृ० ६ १६।।
सोइ जन साचे सोइ सती, सोइ साधक सूजान ।
सोइ ज्ञानी सोइ पंडित जे राते भगवान् ।।१७६।।बा० भा०१ पृ०११०।।

1- परिचा प्रथम प्रेम बिनु राम मिलन अति दूरि ।
जद्यपि निकट हृदय निज रहे सकल भरिपूरि ।।२।।
पूनो प्रेम भगति रस हरि रस जानहि दास ।
सम सीतल, गत मान ग्यानरत बिषय उदास ।।१६।।वि०प० पृ०२०३।।

ि ुणा ानी े अनुसार पैमा भक्ति ी प्राप्ति की दृष्टि े ात है न्त रण े
ाा ा ाना भी ावश्यक है-

भय बिनु भक्ति न होय ।।६०२।।

भय बिनु भाव न ऊपजै भय बिन होय न प्रीति ।

जब हृदय े भय गया मिटी सकल रस रीति ।।४२८।।कवि०ग्र०।।

भय से भक्ति करै सबै भय से पूजा होय ।

भय पारस ह जीव को निर्भय होय न कोय ।।४२६।।

रामहि सुमिरु करु राम सो ममता प्रीति प्रतीति ।

तजहि निरुपधि राम जो भएँ काहूँ जीति ।।दो०ग्र० ६५।।

ान भय भक्ति सेव्य-सेवक भाव का आधार ब्रम्ह तथा जीव के संसारी-वंध का एक विकास
मात्र होता है ।

इस प्रकार निर्गुण और सगुण सन्तो मे भक्ति के अनुकूल तत्वो की दृष्टि से लगभग
पूर्ण साम्य है ।

भक्ति के अन्तराय

भक्ति मार्ग के अन्तरायो की दृष्टि से भी निर्गुण और सगुण भक्तो मे कोई
मतभेद प्रतीत नहीं होता । काम क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, हिंसा, आडम्बर पाखंड,
तर्क, कुसंगति, माया, स्त्री, प्रशंसा, अहंकार और विषय वासना इत्यादि भक्ति मार्ग
के अन्तरायो अथवा साधक के मार्ग मे उपस्थित होने वाले प्रतिकूल तत्वो का निर्गुण
और सगुण भक्तो ने समान रूप से वर्णन किया है दे० अ० ६ और ८ । निर्गुण और
सगुण सन्तो में केवल दरिया साहब मारवाड़ वाले एक ऐसे संत है जो स्त्री को भक्ति
का अन्तराय नहीं मानते -

नारी जननी जगत की, पाल पोस दे पोष ।

मूरख राम बिसार कर ताहि लगावै दोष ।।६३।।बा०पृ०३४।।

इसके अतिरिक्त निर्गुण और सगुण संतो ने काम को समान रूप से भक्ति का अन्तराय
तो माना है । किन्तु निर्गुण संतो ने काम की उत्कृष्ट शक्ति का विवेचन करते हुए
यह भी कहा है कि यदि काम को नियंत्रित और सीमा में रखा जाये तो यही काम
भक्त को राम से मिला देता है -

काम मिलावै राम कू जे कोई जाणै राखि ।

कबीर बिचारा क्या करै, जाकी सुखदेव बोलै साखि ।।क०ग्र०पृ०५१।।

यह काम का नियंत्रण पत्नीव्रत और पातिव्रत से होता है और निर्गुण सन्त गार्हस्थ्य के परित्याग का उपदेश नहीं करते हैं इसलिए उनका यह मत उनके सामान्य सिद्धान्तों का विरोधी नहीं है। गार्हस्थ्य के परित्याग का उपदेश तुलसीदास तथा अन्य सगुण रामभक्तों ने भी नहीं किया है, इसलिए कबीर के इस मत से उन्हें भी सहमत माना जा सकता है।

लोकव्यवहार

निर्गुण और सगुण संतों ने अपने दार्शनिक विचारों और भक्ति सिद्धान्तों के अनुरूप ही लोकव्यवहार का भी उपदेश किया है।

जीवन का लक्ष्य

निर्गुण और सगुण भक्तों ने अपने दार्शनिक विचारों के अनुसार सत्य तत्व राम को माना है और उनकी प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन भक्ति को। अत अपने दार्शनिक विचारों और अपनी भक्ति साधना के परिणाम स्वरूप निर्गुण और सगुण संतों ने समान रूप से राम तत्व और भक्ति तत्व की प्राप्ति को हीजीवन का लक्ष्य माना है। जीवन लक्ष्य की दृष्टि से दोनों प्रकार के भक्तों में कोई विरोध प्रतीत नहीं होता। निर्गुण वादी और सगुणवादी सतों ने जीवन लक्ष्य का स्पष्टीकरण करते हुए साथ साथ यह भी कहा है कि भक्ति मोक्ष से उत्कृष्ट है।

निर्गुण सतों में कबीर ने भौतिक विषयों को क्षणभंगुर बताते हुए क०ग्रं० पृ० १९६,१२९ राम-प्रेम की प्राप्ति को ही जीवन का लक्ष्य माना है -

दारा सुत ग्रेह नेह, सपति अधिकाई।
यामैं कछु नाहिं तेरौ काल अवधि आई।।
जरि जाव ऐसा जीवनां, राजा राम सूं प्रीति न होई।
जन्म अमोलिक जात है, चेति न देखै कोई।।
कहै कबीर चित चचला, सुनहू मूढ मति मोरी।
विषिया फिरि फिरि आवई, राजा राम न मिलै बहोरी।।१२७।
क०ग्रं० प० १२८-१२९।।

कबीर के अनुसार राम प्रेम अथवा राम भक्ति और राम नाम का स्मरण, स्मरण-भक्ति मानव जीवन का लक्ष्य है। और राम भक्ति के बिना जीव को सब कुछ खो देना पड़ता है। कबीर के अनुसार यह भक्ति वैकुंठ से भी श्रेष्ठ है -

जाइ रे दिन हीं दिन देहा, करि ले बौरी राम सनेहा।
बालापन गयौ जोबन जासी, जुरा मरण भौ संकट जासी।।
पलटे केस नैन जल छाया, मूरिख चेति बुढापा आया।।
राम कहत लज्या क्यू कीजै, पल पल आउ घटै तन छीजै।।
लज्या कहै हूं जम की दासी, एकैं हाथि मुदिगर दूजै हाथि पासी।।
कहै कबीर तिनहूं सब हार्या, राम नाम जिनि मनहु बिसार्या।।२४२।
क०ग्रं० पृ० १७०।।

जब लग है बैकुंठ की आसा, तब लग नहीं हरि चरन निवासा।।
कहै कबीर यहु कहिये काहि, साध सगति बैकुंठहि आहि।।२४।।क०ग्र०पृ०६६

निर्गुण सन्तों में दादू के अनुसार संसार दुःख रूप है, अतः उनके अनुसार भौतिक सुख जीवन का लक्ष्य नहीं हो सकता। राम सुख सिन्धु है अतः दादू के अनुसार राम प्राप्ति ही जीवन का लक्ष्य है। दादू ने राम के साक्षात्कार को जीवन का लक्ष्य मानते हुए उसे मोक्ष से उत्कृष्ट समझा है। अतः दादू मोक्ष की कामना न करके राम और उनके दर्शन की ही उत्कट इच्छा रखते हैं -

दुखदरिया ससार है सुख का सागर राम।
सुख सागर चलि जाइये दादू तजि बेकाम।।२६।।बा०भा०१ पृ०१६।।
दरसन दे, दरसन दे, हौं तौ तेरी मुकति न माँगौं रे।
सिद्धि न माँगौं रिद्धि न माँगौं तुमही माँगौं गोबिंदा।।१।बा०भा०२पृ०१२३।

कबीर और दादू की भाँति लगभग सभी निर्गुण सन्तों ने राम-प्रेम, राम दर्शन और राम भक्ति की प्राप्ति को ही जीवन का लक्ष्य माना है। और निर्गुण सन्तों में कबीर दादू और सुन्दर[1] आदि ने जीवन के लक्ष्य की दृष्टि से मोक्ष की अपेक्षा राम भक्ति को अधिक महत्व दिया है।

निर्गुण सन्तों के समान ही सगुण भक्तों ने राम प्रेम, रामदर्शन अथवा राम की

१- अलष निरंजन ध्यावउं और न जाचउं रे।
कोटि मुक्ति देइ कोई, तौ त[illegible]

प्राप्ति को ही जीवन का लक्ष्य माना है, और उन्होंने राम-भक्ति को जीवन का लक्ष्य मानते हुए उसे मोक्ष से उत्कृष्ट माना है -[1]

हो॰ बिबेकु मोह भ्रम भागा । तब रघुनाथ चरन अनुरागा ।।
सखा परम परमारथु एहू । मन क्रम बचन राम पद नेहू ।।३।। रा०च०मा०पृ०४०७-४०८
अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान ।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन ।।२०४।। रा०च०पृ०४६६।।
पुरजन परिजन प्रजा गोसाईं । सब सुचि सरस सनेहँ सगाईं ।।
राउर बदि भल भव दुख दाहू । प्रभु बिनु बादि परम यह लाहू ।।१। वही पृ०५८३
सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं। तिन्ह कहुँ राम भगति निज देहीं ।।वही पृ०८५४
अस बिचारि हरि भगत सयाने । मुक्ति निरादर भगति लुभाने ।।
भगति करत बिनु जतन प्रयासा । संसृति मूल अबिद्या नासा।।४।। वही पृ० ८८६

इस प्रकार निर्गुण और सगुण संतों ने भक्ति के सम्मुख मोक्ष को हेय समझते हुए राम भक्ति, राम प्रेम, राम दर्शन अथवा राम की प्राप्ति को समान रूप से जीवन का लक्ष्य माना है ।

समाज का स्वरूप :

निर्गुण और सगुण भक्तों ने यद्यपि दार्शनिक दृष्टि से द्वैत, अद्वैत और अंशांशी भाव का प्रतिपादन किया है तथापि समाज के स्वरूप की दृष्टि से दोनों में कुछ मतभेद है ।

जीव और ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है, सभी मनुष्य एक ही ईश्वर से उत्पन्न हुए हैं, इस मान्यता के आधार पर निर्गुण संतों ने सामाजिक विषमता, वर्गभेद, वर्णभेद, और ऊँच नीच एवं छोटे बड़े के भेद भाव का प्रत्याख्यान करके एक ऐसे समाज की कल्पना की है जो वर्ण रहित वर्गविहीन, छूआछूत के भाव से दूर, एवं पूर्ण साम्यवाद का समर्थक है । निर्गुण भक्तों ने जिस समाज की रूपरेखा निर्धारित की है वह संत समाज है । निर्गुण संतों के अनुसार इस समाज में प्रत्येक मानव को भगवद्भक्ति और अपने गुण कर्मानुसार अपना पूर्ण विकास करने का समानाधिकार प्राप्त है दे०अ०७ ।

१-ईश्वरदास कृत सत्यवती तथा अन्य कृतियाँ पृ०१४० सू०रा०च० २२।पृ० १६, राम चन्द्रिका १६।२१, १८।८ अग्रदास की कुण्डलियाँ पृ०३४-३५, क०रत्ना० ४।५, ५, ७, ५।१२ रामाष्टयाम नाभादास पृ० १६,४६ ।।

सगुण भक्तों ने अंशांशी भाव के आधार पर समाज के स्वरूप का निर्धारण किया है। सगुण भक्तों के अनुसार जीव ब्रह्म का अंश होने के कारण पूर्ण रूप से ब्रह्म के समान नहीं है, वह शक्ति में ब्रह्म से हीन है। जीव ब्रह्म की तुलना में छोटा, अल्प और दुर्बल है। वह अपने कर्मानुसार साधना पथ पर बढ़ता हुआ ब्रह्म के समान बन सकता है। फिर प्रत्येक जीव समान रूप से ब्रह्म की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता नहीं इसलिए प्रत्येक प्राणी को समान मान लेना ठीक नहीं है। शुभ और अशुभ कर्मों के न्यूनाधिक्य के कारण मनुष्य में सहज रूप से भिन्नता उत्पन्न हो जाती है। सम्भवतः इसी दार्शनिक मान्यता के आधार पर सगुण भक्तों ने समाज में वर्ण भेद, वर्ग भेद और जाति भेद का होना स्वीकार किया है। सगुण भक्तों ने अनुमानतः सामाजिक परिस्थिति के कारण वर्णभेद अथवा जाति भेद को जन्मना माना है और ब्राह्मणों को सामाजिक दृष्टि से सर्वोच्च समझा है (दे० अध्याय १०)।

इस प्रकार यद्यपि सगुण भक्तों ने सामाजिक दृष्टि से भेद भाव का यत्र तत्र उल्लेख किया है तथापि भक्ति के क्षेत्र में उन्होंने निर्गुण सन्तों की भाँति जातिवाद को आवश्यक नहीं माना है[1]-

भगति हीन बिरंचि किन होई। सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई।।
भगतिवंत अति नीचउ प्रानी। मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी।।५।।
रा०च०मा० पृ० ६४७।।

अधम ते अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी।।
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता।।२।।
जाँति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई।।
भगतिहीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा।।३।।वही पृ०६३९-६४०।।

निर्गुण संतों के समान सगुण भक्तों ने भी ऐसे समाज की कल्पना की है जिसमें सभी सन्त हों अर्थात् मानव समाज में किसी प्रकार की विषमता न हो और सभी मनुष्य गुण और चारित्र्य सम्पन्न हों।

१- जाति न काहू की प्रभु जानत। भक्ति भाव हरि जुग जुग मानत।।सू०रा०च० पृ०५०।।

फलतः जन्मना वर्ण और जाति भेद को छोड़ कर सगुण भक्तो ने जिस संत-समाज की कल्पना की है वह काफी मात्रा मे निर्गुण सन्तो के समान ही है ।

धर्म का स्वरूप

धर्म के स्वरूप की दृष्टि से भी कुछ बातो को छोड़ कर निर्गुण और सगुण भक्तों में लगभग साम्य है । निर्गुण भक्तो ने धर्मान्तर्गत पाखंड, आडम्बर, मूर्तिपूजा तीर्थपूजा, आदि का खंडन करके एक ऐसे धर्म का प्रतिपादन किया है जो प्रेम सत्य और अहिंसायुक्त है । सगुण भक्तो ने अपने धर्म के अन्तर्गत सत्य, दया, अहिंसा, आदि का तो उल्लेख किया है, किन्तु उन्होने निर्गुण भक्तो की भाँति खंडनात्मक प्रवृत्ति को ग्रहण न करके समन्वयात्मक दृष्टिकोण को अपनाया है । निर्गुण और सगुण भक्तों में वर्णधर्म की मान्यता की दृष्टि सेभी मतभेद मिलता है । निर्गुण भक्तों ने गुणमूलक वर्णधर्म पर बल दिया है और सगुण भक्तों ने जन्मना वर्णधर्म पर। दे० अ० ७ -१० ।-

उपर्युक्त मतभेदों के अतिरिक्त निर्गुण और सगुण रामभक्तों ने धर्म के स्वरूप का जो विवेचन किया है उसमें समानता है । निर्गुण और सगुण भक्तों ने युग धर्म का उल्लेख करते हुए यह कहा है कि कलियुग में केवल एक चरण शेष रह जाता है। निर्गुण भक्तो में नानक ने कहा है -

> सतजुगि साचु कहै सभु कोई । सच वरते साचा सोई ।।
> मनि मुखि साचु कहै सभु कोई । सचि वरतै साचा सोई ।।५।।
> त्रेतै धरम कला इक चूकी । तीनि चरण इक दुबिधा सूकी ।।
> गुरमुखि होवै सुसाचु बखानी मन मुखि पचै अवाई है ।।६।
> दुआपुरि अधी होई । गुरमुखि साचु तिथाई है ।८।
> राजे धरमे काहि परथाए । आसा बंधे दानु कराए ।
> रामनाम बिनु मुकति न होई थाके करम कमाई है ।।६।।
> कली काल महि ईक कल राखी ।बिनु गुर पूरे किनै न माखी ।
> मनमुखी कूडु वरतै करतारा बिनु सति गुर भरमुन जाईऽहे ।।१२
>
> गु०ग्रं० पृ० १०२३-२४।।

तथा सगुण भक्तों में तुलसी ने कहा -

> प्रगट चारि पद धर्म के कलि मुंहु एक प्रधान ।
> जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान ।।१०३।। स रा०च० पृ०६६५।।

निर्गुण संतो के अनुसार कलियुग मे धर्म के शुद्ध स्वरूप का ह्रास हो जाता है। अन निर्गुण और सगुण भक्तो ने कलियुग के लिए भक्ति धर्म का उल्लेख कियाहै। निर्गुण सन्तों में सुन्दर के अनुसार राम नाम के बराबर अन्य कोई धर्म नहीं है, और दरिया के अनुसार राम नाम सर्व-धर्म का मूल है इस धर्म के अतिरिक्त अन्य किसी धर्म से जीव का संशय नहीं मिट सकता। सगुण भक्तो मे तुलसी ने यह कहा है कि राम नाम सर्वधर्ममय है, और सूर के अनुसार राम नाम के दो अक्षर धर्म अंकुर के पावन दल हैं तथा केशव के अनुसार भक्ति ही धर्म है, एवं सेनापति के अनुसार राम नाम धर्म-धाम है -

कलिमल विष जुग जुग के। राम नाउँ लूटे ।।दादू का शब्द० पृ०४६।।
नाम बराबर तोलिया तुलै न कोउ धर्म ।।सुं०ग्र० पृ० ६७७-६४६।।
दरिया दूजे धर्म से, संसय मिटै न सूल।
राम नाम रटता रहै, सबै धर्म का मूल ।।३६।द०पृ० ८।।
कृतजुग त्रेता द्वापर पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहि लोग ।।१०२। रा ।।
कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना। एक अधार राम गुन गाना।।
सब भरोस तजि जो भज रामहि। प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहि ।।३।।
रा०च०पृ०६६६ ।।

कठिन काल मल कोस धर्म न ग्यान न जोग जप।
परिहरि सकल भरोस रामहि भजहि ते चतुर नर ।।६ ख वही पृ०६०३
जथा भूमि सब बीजमय नखत निवास अकास।
राम नाम सब धरममय जानत तुलसीदास ।।दो०व० २६।।
अद्भुत राम नाम के अंक। धर्म अंकुर के पावन द्वै दल ।।सू०वि०प०पृ०१५० ।।
जिय जान यहई योग। सब धर्म कर्म प्रयोग ।।
तेहि ते यही उर लाव। मन अनत कहुं न चलाव ।।३१।रा०च०पृ०२५।।
कामना कौं कामधेनु रसना कौबिसराम
धरम कौं धाम राम नाम जग जान्यौ है ।।क०र० ४।७५।।

इस प्रकार निर्गुण भक्तों की खंडनात्मक प्रवृत्ति और सगुण निर्गुण भक्तो के वर्ण धर्म से सम्बन्धित मतभेद को छोड कर धर्म विषयक शेष बातो मे निर्गुण और सगुण भक्त एकमत हैं। दोनों प्रकार के भक्त मानव धर्म के पक्षपाती और कलि-काल के लि

राम नाम को सबसे अधिक आवश्यक धर्म मानने वाले हैं अर्थात् इनके अनुसार कलियुग में राम नाम अथवा राम भक्ति ही धर्म है।

राजनीति

मध्ययुग में राजनीति के विषयों पर खुल कर विचार प्रकट करना असंभव था। भक्तों का राजनीति से सम्पर्क भी प्रायः कम ही रहता था इसलिए इस विषय को उन्होंने प्रायः छोड़ ही रक्खा है। सगुण रामभक्तों के आराध्य राम राजा थे और सगुण भक्तों ने उनके चरित्र का गान उसी रूप में किया है, इसलिए राम की राजनीति के प्रसंग में सगुण भक्तों के राजनीति विषयक विचार अधिक स्पष्ट और विस्तृत है।

निर्गुण भक्तों के उपास्यदेव निर्गुण राम है। निर्गुण संतो ने राज्य के संबंध मे जो विचार व्यक्त किये है उनके अनुसार ऐसी राज्य व्यवस्था होनी चाहिए, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को कर्मानुसार फल प्राप्त हो सके, और राजा एव प्रजा में समानता का भाव हो। निर्गुण भक्त भौतिक राज्य के पक्ष में न होकर अलौकिक राज्य के पक्ष में हैं।

सगुण भक्तों ने राजा और मंत्री कैसे होने चाहिए इसका उल्लेख करते हुए यह कहा है कि राजा ऐसा होना चाहिए जिसके राज्य में प्रजा को कोई भी कष्ट न हो, तथा राजा को ऐसी कर-नीति का पालन करना चाहिए, जिससे जन समाज को कोई पीड़ा न हो।[1]

सगुण भक्तों के अनुसार राजा एवं प्रजा दोनों ही जिस राज्य मे धर्माचरण करते हैं वह राज्य स्थायी रहते हैं। जो राजा प्रजा के हित की दृष्टि से राज्य सचालन करता है वह इसी कर्म के द्वारा शुभगति प्राप्त करता है।[2]

१- दे० अ० १० तथा दो० व० ३१५, ५०७, ५०८, ५१०, ५१२, रा० च० ५२०

२- दे० अ० १० तथा दो० व० ५१६, ५१८ रामचंद्रिका ४०।प्र०२४।।

इस प्रकार यद्यपि निर्गुण संतों ने सगुण संतों के समान राजनीति का स्पष्ट विवेचन नहीं किया है, तथापि निर्गुण और सगुण संतों का राजनैतिक विचारों की दृष्टि से कोई मतभेद नहीं है। दोनों ही भक्त ऐसे राज्य के पक्ष में हैं, जिसमें राजा न्यायप्रिय तथा सदाचारी हो और प्रत्येक नागरिक कर्तव्य-परायण हो।

अर्थनीति

निर्गुण और सगुण कवि भक्त हैं अतः उन्होंने भक्ति का ही निरूपण किया है, उनके साहित्य में अर्थव्यवस्था का स्पष्ट और विस्तृत विवेचन नहीं हुआ है।

निर्गुण और सगुण भक्तों के अनुसार यद्यपि इस प्रकार के विचार मिलते हैं कि जीव को भगवत् प्राप्ति के अतिरिक्त भौतिक अर्थोपार्जन के लिये उद्योग नहीं करना चाहिए, तथापि उन्होंने यह भी कहा है कि भगवत्सिद्धि के लिए उद्योग आवश्यक है क्योंकि भूखे रह कर भक्ति साधना नहीं होती। फलतः दोनों ही प्रकार के भक्तों ने अर्थव्यवस्था को उसी सीमा तक स्थान दिया है, जहाँ तक वह भगवद्भजन में बाधक नहीं होती।

सगुण संतों ने अपनी अर्थव्यवस्था को जातिवाद का स्वरूप प्रदान किया है। उनके अनुसार प्रत्येक वर्ण को अपने नियत कर्मों को करते हुए ही जीवनयापन करना चाहिए। सगुण भक्तों ने शम्बूक वध की कथा से इस ओर संकेत किया है कि जिस व्यक्ति के लिए सामाजिक दृष्टि से जो वर्ण धर्म अथवा अर्थ व्यवस्था निश्चित है उसे उसका ही पालन करना चाहिए, उदाहरणार्थ शूद्र का जब सेवा धर्म निश्चित है तब उसे अपने कर्म का परित्याग करके ब्राह्मण आदि के कर्मों को नहीं करना चाहिए। निर्गुण भक्त ऐसी जातीय अर्थ व्यवस्था के पक्ष में नहीं हैं।[1]

१- गीतावली उ०कां० २४।

बालकै मृतु सु देखि। धर्मराज सों विशेखि।।
बात या कही निहारि। कर्म कौन को बिचारि।।
निजु शूद्रन की तपसा शिशुघालक। बहुधा भुवदेवन के शव बालक।।
कहि बेगि बिदा सिगरे सुरनायक।
चढ़ि पुष्पकजान चले रघुनायक।।१४।। रामचन्द्रिका ३३, ३४
दे० अ० ७ और १० ।।

कर्मसिद्धान्त

निर्गुण और सगुण भक्तकवियों ने कर्म के सम्बन्ध में भी समान रूप से ही अपनी मान्यताओं का प्रतिपादन किया है।

निर्गुण और सगुण भक्तों ने शुभ और अशुभ कर्मों का समान रूप से उल्लेख किया है -

अरे मन धीरज काहे न धरै।
सुभ औरअसुभ करम पूरवले रती घटै न बढ़ै। कबीर की शब्दावली भा०२ पृ०१।
सुभ अरु अशुभ करम अनुहारी। ईसु देइ फलु हृदयँ बिचारी।।
करइ जो करम पाव फल सोई। निगम नीति असि कह सब कोई।।४।। रा०च० पृ०३६६।।

और कर्म के सम्बन्ध मे दोनों का यह निश्चित मत है कि जीव अच्छे बुरे जैसे कर्म करता है उसको उन्हीं के अनुसार फल मिलता है -

जो जस करि है सो तस परिहै राजा राम नियाइ।। क०ग्रं०पृ०१५६।
जद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहि न पाप पूनु गुन दोषू।।
करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा।।२।।
रा०च० पृ०५०७।।

जीव कर्म करने में तो स्वतंत्र है किन्तु फलोपभोग मे वह परतंत्र है। अर्थात् जीव जैसा कर्म करता है वह उसकी गति फल ' को टाल नहीं सकता -

करम गति टारे नाहिं टरी।
मुनि बसिष्ठ से पंडित ज्ञानी, सोध के लगन धरी।
सीताहरन मरन दसरथ को बन में बिपति परी।।१।। शब्दा०भा०१ पृ० ५७-५८
शब्दा०भा०२ पृ०८३।।

आपन कर्म न मेटो जाई।
कर्म का लिखा मिटै धौं कैसे जो जुग कोटि सिराई।।११। बीजक पृ० ६६।।
मेटि जाइ नहिं राम रजाई। कठिन करम गति कछु न बसाई।।
राम लखन सिय पद सिरु नाई। फिरेउ बनिक जिमि मूर गँवाई।।४।

उद्दिम करि करि जोरी गाया । कै कहू भाग्य लिख्यो सो पाया ।
तऊ तृष्णा अधिक पसारी । कह्या मनुषहु बूझि तुम्हारी ।।२४।
सु०ग्र० पृ० ३२५।।

और सगुण भक्तों मे तुलसी के अनुसार लिलाट पर जो दुख लिखा जा चुका है, उसको देव, दानव, नर, नाग, और मुनि प्रभृति कोई भी नहीं मिटा सकता, तथा भाग्य मे जो सुख दुख लिखा है वह जीव को जहाँ भी वह जाता है, वहाँ पर ही भोगना पड़ता है -

कह मुनीस हिमवंत सुनु जो विधि लिखा लिलार ।
देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेटनिहार ।।६८।। रा०च० पृ०६४।।
जनि सोहू मातु कलंकु करुना परिहरहु अवसर नहीं ।
दुख सुख जो लिखा लिलार हमरें जाब जहँ पाउब तहीं।।वही पृ०११७।।

निर्गुण और सगुण भक्त कवियो ने जहाँ शुभ और अशुभ अथवा पाप और पुण्य दो प्रकार के कर्मों का वर्णन किया है वहाँ उन्होंने समान रूप से शुभ कर्मों को परमार्थ प्राप्ति का और अशुभ कर्मों को भव बन्धन का कारण माना है । निर्गुण संतो मे लगभ सभी ने कर्मों के अनुसार कम फंदा है जिसमें जीवफँसे हुए हैं -

कर्म फंद जिव फंदिया, जप तप पूजा दान ।
जेहि बस्तू जिव काज होय, सो नहिं परै पिछान ।।अगरावती पृ० ११
करम कोटि को ग्रेह रच्यौ रे, नेह गये की आस रे ।
आपहि आप बँधाइआ, द्वै लोचन मरहि पियासा रे ।।क०ग्रं० पृ० ८८।।

सगुण भक्तो में तुलसी ने कर्म को भव-बन्धन का कारण मानते हुए कहा है कि कर्म जाल है -

तू निज करम जाल जहँ घेरो । श्री हरि संग तज्यो नहि तेरो ।।
वि०प० १३६ ।४।।

निर्गुण और सगुण संतों के अनुसार ये अशुभ कर्म जहाँ जीव को भवबन्धन मे डालते हैं व वहाँ ये उसे विविध येनि और बिभिन्न लोकों मे भी भ्रमण कराते है -

पँचवाँ जनम ऊँट के पैहो, बिन तौलै बोझ लदैहौ ।
बैठे से तो उठै न पैहो, घुरच घुरच मरि जैहो ।।५।।
धोबी घर के गदहा होइहौ, कटी घास न पैहौ ।
लादी लादि आपु चढ़ि बैठे लै घाटे पहुँचैहौ ।।६।।

बकि माँ नी काँवा होइहौ, करर करर गुहरैहौ ।

उड़ि के जाय मैला पर बैठौ, गहिरे चोच लगैहौ ।।७।

सतनाम की टेर न करिहौ, मनहीं मन पछितैहौ ।

कहैं कबीर सुनो भाई साधो नरक निसानी पैहौ ।।८।।शब्दा०भा०१ पृ०४१।।

कुटिल करम लै जाहि मोहि जहँ जहँ अपनी बरिआई ।

तहँ तहँ जनि छिन छोह छाँड़ियो कमठ-अण्ड की नाईं ।।३।।वि०प० १०३।३ ।।

जेहि जेहि जोनि करम बस भ्रमहि ।तहँ तहँ ईसु देउ यह हमहीं ।

सेवक हम स्वामी सियनाहू । होउ नात यह ओर निबाहू ।।३।।रा०च०पृ०३५४।।

निर्गुण और सगुण भक्तों ने समानरूप से इसका भी उल्लेख किया है कि शुभ कर्म जीव को भव-बन्धन से पार करते है -

ततरि अगनि चिता बहु जारे । बिणु करमा कैसे उतरसि पारे।।५।।गु०ग्र०पृ०६०३।।

करम धरम की सार न जाणै सुरति मुकति किउ पाईऐ ।।गु०ग्र०पृ०४३७।।

महिमा अमिति बेद नहिं जाना । मै केहि भाँति कहउँ भगवाना ।।

उपरोहित्य कर्म अति मंदा । बेदपुरान सुमृति कर निंदा ।।३।।

तब मैं हृदयँ बिचारा जोग जग्य ब्रत दान ।

जा कहुँ करिअ सो पैहउँ धर्म न एहि सम आन ।।४८।। रा०च०पृ०६१५।।

किन्तु निर्गुण और सगुण राम भक्ति साहित्य में कर्म को जहाँ भवबन्धन का कारण माना है वहाँ उसे परमार्थ साधन भी माना है । राम भक्ति हिन्दी साहित्य मे उन्ही कर्मों से विमुख रहने के लिये कहा गया है जो अशुभ है औरजो शुभ कर्म है उनकी आवश्यकता पर बल दिया गया है । निर्गुण संतों मे सुन्दरदास ने कहा है कि ज्ञानी को लोक आचरण की दृष्टि से शुभ-कर्म करते रहना चाहिए -

ज्ञानी शुभ कर्मनि करै लोक आचरन हेत ।

बहुत भाँति के शब्द कहि सुन्दर सिखया देत ।।३६।।सुं०ग्रं० पृ० ८१०।।

सगुण भक्तों मे तुलसी ने जीव के लिये कर्म या स्वधर्म अथवा वर्णाश्रम धम का पालन आवश्यक है माना है --

सोचिअ गृही जो मोह बस करइ करम पथ त्याग ।

सोचिअ जती प्रपच रत बिगत बिबेक बिराग ।।१७२।।रा०च० पृ०४७०।।

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग ।

चलहिं सदा पावहि सुखहि नहि भय सोक न रोग ।।२०।।रा०च०पृ०८६१।।

इस प्रकार निर्गुण और सगुण राम भक्त कर्म सन्यास के पक्ष मे नहीं है। राम भक्त हिन्दी कवि कर्म सन्यास के पक्ष मे न होने पर भी, वे कर्म की आवश्यकता तभी तक समझते है जब तक ज्ञान उत्पन्न नहीं होता या भक्ति प्राप्त नही होती। निर्गुण संतो में कबीर और रैदास ने यह कहा है कि कर्मकी अपेक्षा तभी तक रहती है जब तक ज्ञानोदय नहीं होता, ज्ञानोदय होने पर कर्म नष्ट हो जाते है -

ज्ञान के कारण करम कमाय। होय ज्ञान तब करम नसाय ।।८।।शब्दा०भा०१ पृ०३१।।

ज्ञानहि कारन करम कराई। उपजै ज्ञान त करम नसाई।।४।।रैदास की बानी पृ० १ ।।

सगुण भक्तो मे तुलसी ने कहा है -

चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरि भगति पाइ श्रम तजहि आश्रमी चारि।।१६।।रा०च०पृ०६७०।।
बस कि रह द्विज अनहित कीन्हे। कर्म कि होहि स्वरूपहि चीन्हे ।।
काहू सुमति कि खल सँग जामी। सुम गति पाव कि परत्रियगामी ।।२।।
रा०च० पृ० ६७५ ।।

परिणाम

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि निर्गुण और सगुण भक्त कवियो के दार्शनिक विचारो, भक्ति साधना और लोक व्यवहार मे असमानताओ की अपेक्षा समानतायें बहुत अधिक हैं। दार्शनिक विचारो की दृष्टि से निर्गुण और सगुण भक्तों में बस मुख्य मतभेद यही है कि निर्गुण भक्त दाशरथि राम को न मानकर अव्यक्त और निराकार राम को मानते है और सगुण भक्त दाशरथि राम को ही निराकार और अव्यक्त ब्रह्म मानते है। वैसे दोनो प्रकार के भक्तो मे सगुण और निर्गुण राम से सम्बन्धित विचार मिलते हैं।

जीव और ब्रह्म में कोई अन्तर नही है, जीव और ब्रह्म मे अन्तर है, और जीव ब्रह्म का अंश है, ये दार्शनिक विचार निर्गुण और सगुण भक्तो मे समान रूप से मिलते हैं। इन दार्शनिक विचारो के अनुरूप ही दोनो प्रकार केभक्तो ने अपनी भक्ति-साधना की व्याख्या की है।

निर्गुण संतो ने दार्शनिक दृष्टि से अद्वैत मत को प्रमुखता दी है और सगुण भक्तो ने व्यापारी मत को। इस दार्शनिक मान्यता के परिणाम स्वरूप निर्गुण संतो ने जीव को स्त्री और राम को पुरुष मान कर प्रेमा भक्ति का विवेचन किया है और सगुण भक्तो ने जीव को सेवक और राम को स्वामी मान कर सव्य सेवक भाव की भक्ति का प्रतिपादन किया है। वैसे सेव्य सेवक भाव की भक्ति निर्गुण संतो के साहित्य मे भी पर्याप्त मात्रा मे मिलती है।

उपर्युक्त दार्शनिक मान्यता के परिणामस्वरूप निर्गुण और सगुण भक्तो मे लोक व्यवहार की दृष्टि से भी कुछ मतभेद है। क्योंकि निर्गुण भक्तो के अनुसार जीव और ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है अतः समाज मे भी जाति, वर्ग, वर्ण और छोटे बड़े की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं होना चाहिए और वर्ण धर्म जन्मना न होकर गुणमूलक होना चाहिए। सगुण भक्तों ने जीव को ब्रह्म की तुलना में अल्प माना है। अतः उन्होंने इसी के अनुरूप समाज में वर्ण-भेद, जाति-भेद और वर्गभेद को मानते हुए वर्ण धर्म को जन्मना माना है।

निर्गुण और सगुण भक्तों की भक्ति साधना में जो कुछ अन्तर मिलता है, वह उनके दार्शनिक विश्वास के कारण है। उपर्युक्त मतभेदो को छोड़ कर भक्ति के आदर्श, साधन, अनुकूल तत्व, प्रतिकूल तत्व और जीवन के लक्ष्य तथा कर्म सिद्धान्त आदि की दृष्टि से निर्गुण और सगुण भक्तो में समानता है।

समाधान :

निर्गुण और सगुण कवि भक्त है। उन्होंने भक्ति ग्रन्थो के मूल भावों और आदर्शों को ग्रहण करते हुए ही अपने भक्ति भाव को व्यक्त किया है। निर्गुण संतों में कबीर ने तो अपनी भक्ति को नारदीय भक्ति कहा भी है।[1]

१- भगति नारदी मगन सरीरा, इहि बिधि भव तिरि कहै कबीरा ।।२७८।।
क०ग्रं० पृ० १८३

सगुण भक्तों ने तो भक्ति की पूर्व परम्परा का पूर्ण रूप से पालन किया ही है। निर्गुण और सगुण भक्त भक्ति की परम्पराओं में आने के कारण ही भक्ति के सिद्धान्तों का समान रूप से प्रतिपादन करते हैं। पुराणों और भक्ति ग्रन्थों में जो भक्त भक्ति के आदर्श माने गये हैं उनका दोनों प्रकार के भक्तों ने समान रूप से आदर्श मानकर उल्लेख किया है। भक्ति की परम्परा में आने के कारण ही निर्गुण और सगुण सन्तों ने समान रूपसे ही भक्ति के साधनों, अनुकूल तत्वों और जीवन के लक्ष्य का विवेचन किया है।

भक्त होने के नाते ही निर्गुण और सगुण भक्तों ने परमार्थ साधनों में भक्ति को सर्वोत्कृष्ट माना है, तथा परमार्थ स्वरूप मोक्ष की अपेक्षा भक्ति को ही प्रमुख स्थान दिया है। अर्थात् निर्गुण और सगुण संतों के अनुसार मोक्ष से भक्ति श्रेष्ठ है। भक्ति मोक्ष से उत्कृष्ट है अतः दोनों भक्तों ने जीवन के लक्ष्य की दृष्टि से भक्ति को ही प्रमुखता दी है और उन्होंने कलियुग के लिये सबसे आवश्यक धर्म भक्ति को ही माना है।

सामाजिक दृष्टि से यद्यपि सगुण भक्तों ने जातिवाद को माना है किन्तु भक्ति के नाते उन्होंने जातिवाद को न मान कर निर्गुण संतों का साथ दिया है।

इस प्रकार भक्त होने के नाते निर्गुण और सगुण संतों में प्राय: सभी विषयों में मतैक्य अधिक है मत-वैभिन्य कम। प्राय दोनों के मत वैभिन्य पर बल दिया जाता रहा है किन्तु अधिकतर वैभिन्य ऊपरी है गहराई में जाने पर दोनों बहुत कुछ एक ही दिखाई पडते हैं।

उपसंहार

भक्ति का लक्ष्य ज्ञान, कर्म और योगादि की जटिल साधनाओं में न उलझ कर, हृदय भाव के माध्यम से भक्त और भगवान् का सीधे सम्बन्ध स्थापित करना है। जब जन जीवन ज्ञान और कर्मकाण्ड के द्वारा अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में असमर्थ होने लगा, तब भक्ति के भावनात्मक मार्ग ने उद्भूत होकर परमार्थ प्राप्ति में योग प्रदान किया।

भक्ति मार्ग भावात्मक है। अत इस मार्ग की साधना मे भक्त अपने हृदय के सभी भावो और प्रवृत्तियो को भगवान् के समक्ष प्रकट करके आनन्द की अनुभूति करने लगता है। भक्त जब अपने भावों को व्यक्त करने के लिये तत्पर होता है तब उसे सर्वप्रथम भगवान् की शरण मे जाने की अपेक्षा का अनुभव होता है। भगवान् की शरण सहज प्राप्त नही होती। उसकी प्राप्ति के लिए भक्त को अपने हृदय को निर्मल करते हुए भगवान् में अनन्य अनुराग की स्थापना करनी पड़ती है, और सेवा व्रत को ग्रहण करना पड़ता है। ईश्वर मे अनुरक्त रहते हुए उनकी सेवा करते रहने की दृष्टि से भक्त को ज्ञान और आवश्यक कर्म की सहायता भी अपेक्षित रहती है।

इस प्रकार शरण, प्रेम, और सेवा के आधार पर भक्ति क्रमश मुख्य रूप से प्रपत्ति भक्ति प्रेमा भक्ति, एवं दास्य भक्ति कहलाती है। भक्ति ग्रन्थो मे शास्त्रीय दृष्टि से प्रपत्ति प्रेमा और दास्य भक्ति का विवेचन किया गया है। उनमे भक्ति के स्वरूप, साधन और अन्तरायो का भी विस्तृत उल्लेख मिलता है। भक्ति ग्रन्थो में भक्ति का केवल शास्त्रीय दृष्टि से ही वर्णन किया गया है। भक्ति जैसे स्वय भावात्मक है, उसका वैसे ही भावात्मक स्वरूप भक्ति ग्रन्थों में उपलब्ध नही होता। भक्ति ग्रन्थो से केवल भक्ति का ज्ञान किया जा सकता है।

राम भक्ति हिन्दी साहित्य से पूर्व भक्ति के भावात्मक स्वरूप का यद्यपि सस्कृत राम काव्य में चित्रण किया गया है किन्तु वह भक्ति के स्वरूप का वैसा चित्र प्रस्तुत नही करता जैसा राम भक्ति का हिन्दी साहित्य करता है। अध्यात्मरामायण को छोड़कर वाल्मीकिरामायण प्रतिमा नाटक, रघुवश महाकाव्य और भट्टिकाव्य आदि शेष सस्कृत राम काव्यो में भक्ति की विभिन्न प्रवृत्तियो की ओर केवल सकेतमात्र ही किये गये हैं। यद्यपि अध्यात्म रामायण में रामकाव्य की भक्तिपरक व्याख्या की गई है किन्तु उसमें

भी भक्ति के विभिन्न भावों का वैसा सर्वांगीण रूप नहीं मिलता जैसा सगुण राम-भक्ति हिन्दी साहित्य मे मिलता है। उसमें ज्ञानपक्ष अधिक प्रमुख है और भक्ति को उसका साधन मात्र स्वीकार किया गया है। राम भक्ति हिन्दी साहित्य से पूर्व राम भक्ति का इस प्रकार यत्र तत्र केवल अस्पष्ट और बिखरा हुआ रूप ही मिलता है।

१२ वीं श०ई० से पूर्व राम भक्ति की दास्य, प्रेमा और प्रपत्ति तथा विनय आदि जो प्रवृत्तियाँ मिलती है उनको आत्मसात् करते हुए, राम भक्ति हिन्दी साहित्य ने उनका सांग और पूर्ण निरूपण किया है। राम भक्ति हिन्दी साहित्य की निर्गुण और सगुण धारा मे प्रेमा भक्ति के सयोग आर वियोग दोनो पक्षो का भावात्मक चित्रण किया गया है। निर्गुण राम भक्तो ने ईश्वर को पुरुष आर आत्मा को स्त्री मान कर राम भक्ति के अन्तर्गत जिस दाम्पत्य रति की व्याख्या को है, वह राम भक्ति साहित्य को निर्गुण भक्तों की अपनी मौलिक देन है। फिर सगुण राम भक्तों में तुलसी ने राम प्रेम का जैसे व्यापक रूप में उल्लेख किया, वैसे व्यापक रूप का उससे पूर्व पता नही चलता। तुलसी के अनुसार राम काव्य के सभी पात्र राम-प्रेम की कामना करते हैं और वे उसी पर आसक्त रहते हैं।

दास्य भक्ति का विवेचन निर्गुण और सगुण दोनों प्रकार के भक्तों ने किया है, परन्तु दास्य भक्ति का जैसा विवेचन तुलसी ने किया है वैसा राम भक्ति साहित्य में उससे पूर्व नहीं हुआ है। सगुण भक्तों की दास्य भक्ति की यह विशेषता है कि वह इस दार्शनिक सिद्धान्त को लेकर विकसित हुई है कि जीव ईश्वर का अंश है। इस दार्शनिक सिद्धान्त का तुलसी ने सबसे अधिक पूर्णता के साथ निर्वाह किया है। लगभग तुलसी के सभी पात्र राम की सेवा करने मे या उनका सेवक बनने में ही गौरव अनुभव करते हैं।

तुलसी की दास्य भक्ति के अन्तर्गत विनय, आत्मनिवेदन और आत्मार्पण का जैसा काव्यात्मक चित्रण हुआ है, वैसा राम भक्ति साहित्य मे अन्यत्र दुर्लभ है। तुलसी की विनयपत्रिका मे विनय से सम्बन्धित दैन्य, आत्मग्लानि, आत्मनिवेदन आदि सभी भाव जितने नि सकोच और आत्मसम्मान के साथ चित्रित हुए है, उतने गौरव के साथ भावात्मक रूप में उससे पूर्व चित्रित नहीं हुए हैं। राम भक्ति साहित्य में प्रपत्ति और आत्मनिवेदन भक्ति की दृष्टि से तुलसी की विनय पत्रिका अद्वितीय है। इस ग्रन्थ मे भाषा और भक्ति भक्त के भावों के साथ साथ प्रवाहित होती चलती है।

राम नाम जप को राम भक्ति हिन्दी साहित्य से पूर्व यद्यपि परमार्थ साधन मानते हुए अत्यधिक महत्त्व दिया गया है, और उसे भक्ति के साधनों मे सर्वश्रेष्ठ माना गया है, तथापि राम भक्ति हिन्दी साहित्य की निर्गुण और सगुण शाखाओ मे उसका जितना अधिक महत्त्व, प्रभाव और उपयोगिता का निरूपण हुआ है उतना उससे पूर्व नहीं हुआ। यद्यपि राम नाम स्मरण हनुमन्नाटक और भागवत आदि सस्कृत ग्रन्थों मे मुख्य रूप से कलि धर्म माना गया है, किन्तु राम भक्ति हिन्दी कवियो ने तो उसे धर्म, भक्ति अथवा साध्य मान कर अपनी भक्ति साधना मे उस पर इतना बल दिया है कि उसे राम नामोपासना के नाम से अभिहित कर सकते हैं। फिर राम नाम को भक्ति का सरल साधन मानते हुए राम भक्ति को जितना अधिक सर्वसुलभ राम भक्त हिन्दी कवि कर पाये, उतना अन्य कोई नही कर पाया। हिन्दी भक्तकवियो ने तो राम नाम के व्यापकप्रचार से राम भक्ति को ही जन प्रिय बना दिया।

राम भक्ति हिन्दी सम्प्रदाय जिस काल मे विकसित हो रहा था वह सघर्ष का काल था। इस समय वैष्णव धर्म पर आक्रमण हो रहा था। ऐसे समय निर्गुण संतो ने हिन्दुओं के राम नाम को ग्रहण करके, उसका व्यापक प्रचार किया और इस्लाम के आक्रमण से वैष्णव धर्म का सरक्षण किया और औपनिषदिक दर्शन तथा वैष्णव-भक्ति साधना को अपनाकर भारतीय अध्यात्म को विदेशी प्रभाव से बचा लिया। निर्गुण संतो ने जहाँ वैष्णव धर्म के विकास मे योगदान किया है, वहाँ उन्होंने तत्कालीन समाज की कुरीतियो, आडम्बर और पाखंड का खडन करते हुए जन जीवन मे साम्यवाद का भी प्रसार किया। राम भक्ति के विकास के साथ साथ समाज में ऊँच-नीच, जाति-पाँति का भेद-भाव भी कम हुआ है। पुन निर्गुण संतो ने अपने भक्ति आन्दोलन के द्वारा हिन्दू और मुसलमानों के पारस्परिक विद्वेष को कम करने का प्रयत्न किया। उन्होंने दार्शनिक दृष्टि से हिन्दुओं के राम और मुसलमानो के रहीम में कोई अन्तर नहीं माना। हिन्दू जिसे राम कहते है उसे मुसलमान रहीम कहते हैं अत: कबीर के अनुसार जब राम रहीम में कोई अन्तर नही है तब हिन्दू और मुसलमान न जाने क्यों एक दूसरे से झगडते हैं। कबीर की दृष्टि मे जो ज्ञानी है, फिर चाहे वह पंडित हो अथवा शेख, उसका धर्म एक ही है[1]। कबीर की भाँति नानक ने भी ससार

---

[1] पद्य समुच्चय श्री क्षितिमोहन सेन प्रथम खण्ड पृ० ६।

के स्वामी सत्पुरुष का एक ही मार्ग है[1] मानता है । नानक के अनुसार दया मस्जिद, सच्चाई आसन और न्यायाचरण ही कुरान है और विनय एवं नम्रता सुन्नत तथा व्रत है ।[2] जहाँ निर्गुण मार्गी सत रूढिग्रस्त और रुग्ण सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था का उच्छेदन कर अधिक बुद्धि संगत और स्वस्थ सामाजिक और धार्मिक व्यवस्थाओं की स्थापना करना चाहते हैं, वहाँ सगुण मार्गी राम भक्त पुराने को छोड कर नये को लेकर ही उसे अधिक उदार बनाने का यत्न करते दिखायी पडते हैं ।

राम भक्ति हिन्दी सम्प्रदाय की सगुण धारा ने भी व्यावहारिक क्षेत्रों मे जाति-पाँति को मानते हुए भी भक्ति के क्षेत्र में जाति-पाँति का भेद नहीं माना है । सगुण राम भक्तों और विशेष रूप से तुलसी ने शैव, वैष्णव, शाक्त आदि विभिन्न धर्मों के समन्वय का प्रयत्न करते हुए सब के लिये समान रूप से केवल एक राम भक्ति का ही उपदेश दिया ।

इस प्रकार भारतीय साहित्य में राम भक्त हिन्दी कवियों के पूर्व इस प्रकार के साहित्य का अभाव था, जिसमें दर्शन, भक्ति और लोकाचरण का समन्वय किया गया हो । रामानन्द तक राम भक्ति का प्रचार संस्कृत भाषा में होता था । मध्यकाल में संस्कृत भाषा लगभग लोकभाषा नहीं रही थी । ऐसे युग में राम भक्ति हिन्दी कवियों ने राम भक्ति के सिद्धान्तों को जनभाषा में प्रतिपादित करके उन्हें सर्वग्राह्य और सुलभ रूप प्रदान किया ।

राम भक्त हिन्दी कवियों का फलतः जहाँ राम भक्ति के स्वरूप के विकास की दृष्टि से बहुत बड़ा योगदान है, वहाँ हिन्दी भाषा के साहित्यिक रूप के विकास की दृष्टि से उनका योग कम महत्व का नही है और शताब्दियों पूर्व राम भक्ति और उसकी हिन्दी साहित्य में जो अभिव्यक्ति हुई, दोनो ने मिल कर भारतीय समाज और साहित्य को जो नवजीवन प्रदान किया वह अद्यावधि देखा जा सकता है ।

सहायक ग्रंथों की सूची

वैदिक साहित्य

१- शतपथ ब्राह्मण सपादक-डा०वेबर सन् १९२४ ई०

२- अथर्ववेदस्य गोपथ ब्राह्मण भाष्यकर्ता श्री पं०क्षेमकरनदास त्रिवेदीनाथ 'नारायण यत्रालय, प्रयाग सन् १९२४ ई०

३- बृहदारण्यकवार्तिक-सार अनु० श्री जी०म०गोयनका 'प०प्रवर श्री हरिहरकृपालु द्विवेदी अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय, काशी स०१९९७

४- निरुक्त भाष्य ले०तथाप्र० श्रीचन्दमणि विद्यालंकार पालीरत्न सन् १९२५

५- शुक्लयजुर्वेदीय, काण्व संहिता स्वाध्याय मंडल द्वाराप्रकाशित -आन्ध्र सं०१९९७

६- मनुस्मृति टी० पं०जनार्दन झा प्र० हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, कलकत्ता सं०१९९३

७- ऋग्वेद | भाष्यकार दयानन्द सरस्वती पं० जयदेव शर्मा स० २००१

८- यजुर्वेद | और भाष्य 'सं०१९७१ अजमेर मैट नगर वैदिक यन्त्रालय

९- अथर्ववेद | पं० रामचंद्र शर्मा पं० दामोदर सातवलेकर

१०-सामवेद | तुलसीराम स्वामी सायण

११- न्यायदर्शनम् वात्स्यायन मुनि कृतभाष्य सहितम् उदयनारायण सिंह शास्त्र पब्लिशिंग आफिस मुधुरापुर,बिधुपुर मुजफ्फरपुर

१२- मीमांसादर्शन श्री प० आर्यमुनि जी देवदत्तशर्मा एंग्लो संस्कृत यन्त्रालय लाहौर स०१९६३

१३- वैशेषिक दर्शन ~~संस्य-दर्शनम~~ आर्यमुनि प्र० पं० देवदत्त शर्मा सं० १९६४

सांख्य दर्शनम् श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई सं० २०१३

१४- योग दर्शन गीता प्रेस गोरखपुर सं० २००७

१५- वेदान्त दर्शन // स० २०१२

१६- कर्ममीमांसादर्शन क्रियापाद और मोदा पाद : महर्षि भरद्वाज कृत भाष्यकार महर्षि स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज सं०१९८२

१७- [illegible] अनु० पं० [illegible]धरलाल त्रिपाठी :वेंकटेश्वरप्रेस बम्बई स०१९८१

१८- [illegible] सूत्रम् पं० श्रीनिवास शास्त्री गवर्नमेण्ट ब्रांच प्रेस सन् १९१७ ई०

१९- महाभारत [illegible] रामचंद्र श

(२०) नारायणोपनिषद्   स्वामी विश्वेश्वरानन्द

(२१) मुक्तिकोपनिषद्   वें० प्रे० बम्बई

(२२) श्री राम तापनीयोपनिषद्   श्री वैष्णव रामदासजी गुरू श्री गोकुलदास जी रणहरपुर स्तकालय डाकोर सं० १९६४

श्री राम तापनीयोपनिषद्   संपा० गोपीनाथ कविराज प्र०जयकृष्ण दास गुप्ता सन् १९२७

(२३) कैवल्योपनिषद्   स्वामी आनन्द आश्रम जी   पं० शीतल प्रसाद जी दुबे द्वारा प्रकाशित   सं० १९८४ वि०

(२४) ईशोपनिषद्   मानवधर्म कार्यालय   पीपल महादेव दिल्ली   सन् १९५६

(२५) मुण्डकोपनिषद्   गीताप्रेस गोरखपुर   सं० २०१४

(२६) माण्डूक्योपनिषद्   ,,   ,,   सं० २०१३

(२७) प्रश्नोपनिषद्   ,,   ,,   सं० २०१४

(२८) कठोपनिषद्   ,,   ,,   सं० २०१४

(२९) तैत्तिरीयोपनिषद्   ,,   ,,   सं० २०१४

(३०) ऐतरेयोपनिषद्   ,,   ,,   सं० २०१३

(३१) बृहदारण्यकोपनिषद्   ,,   ,,   सं० २०१४

(३२) छान्दोग्योपनिषद्   ,,   ,,   सं० २०१३

(३३) श्वेताश्वतरोपनिषद्   गीता प्रेस गोरखपुर   सं० २०००

(३४) गीता   पं०दीनानाथ भार्गव दिनेश   सन् १९५२ मानवधर्म कार्यालय पीपल महादेव देहली

(३५) ,,   रामानुज भाष्य गी प्रे गो स २००८

(३६) गीता रहस्य   लोक मान्य तिलक   सवत् १९७४

पौराणिक साहित्य

(३७) भविष्य पुराण भाषा   अनु० शिव दुलारि जी   सुपरिन्टेन्डेन्ट बाबू मनोहर लाल भार्गव के प्रबन्ध से छपा

अनु०पं०श्याम सुन्दरलाल   वेंकटेश्वर प्रेस बंबई सं० १९६४

(४४) लिंग पुराण भाषा	अनु० दुर्गा प्रसाद जी		सन् १८६७
(४५) देवी भागवत	अनु० पं०ज्वाला प्रसाद मिश्र	वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई	सं०१६५८
(४६) विष्णु पुराण	अनु०मुनिलाल गुप्त	गीता प्रेस गोरख पुर	सं०१६६०
(४७) भागवत महापुराण	गीता प्रेस गोरखपुर		सं०२००८
(४८) अग्निपुराण			
(४६)हरिवंश पुराण			
(५०) वायु पुराण			
(५१) मार्कण्डेय पुराण	हिन्दी भाषानुवाद	पं०अम्बायवट मिश्र पं०कृष्णानन्द द्वारा प्रकाशित	सं०१६६४
(५२) कल्कि पुराण भाषा	पं० बलदेव प्रसाद मिश्र		
(५३) पद्म पुराण			
(५४) वह्नि पुराण			
(५५) शुकोक्ति सुधासागर	पं० रूपनारायण पाण्डेय		
(५६) पारस्करगृह्य सूत्रम्	शुकदेव वर्मा	वैजनाथ प्रसाद काशी	सं० १६७०
(५७) श्री [illegible] सूत्र	ले०प्र०स्वामी [illegible] मुनि	[illegible] हिन्दू सनातन धर्मोपदेशक	१६२३[illegible]
(५८) आपस्तम्बीय गृह्य सूत्रम्			
(५६) मानव गृह्म सूत्रम			सन् १६०५
(६०) गोभिलगृह्म सूत्रम			
(६१) [illegible] सूक्तम्	श्री वेंकटेश्वर प्रेस		सं० १६५८
(६२) व्यास संहिता	----------		सं० १६६२
(६३) [illegible]	पूर्ण प्रेस कलकत्ता		सं० १६३२
(६४) [illegible] शिक्षा			सं० १६५८
(६५) गौतम धर्म सूत्र	संपा० श्री [illegible]चार्य मैसूर		सन् १६१७ (गवर्मेन्ट प्रेस)

(६६) राम गीता — श्री गुमान सिंह — प्र०श्रीचतुरसिंह जी — सं०१६६७

(६७) विष्णु सहस्रनाम — भारत मित्र अध्यक्ष द्वारा प्रकाशित कलकत्ता — शांकरभाष्य गीता प्रेस — सन् १८६६

(६८) उत्तर रामचरितम् — भव भूति श्री शेषराम शर्मा काव्य तीर्थ बनारस चौ०खं०सं०सीरिज सं०२००६

(६९) योगवासिष्ठ भाषा भाग १ — खेमराज श्रीकृष्णदास

(७०) रघुवंशमहाकाव्य — कालिदास पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र — बनारस चौखम्बा संस्कृत सीरिज

(७१) प्रसन्नराघवम् — महाकवि जयदेव — चौखम्बा विद्याभवन बनारस सं०२०१२

(७२) प्रतिमा नाटक — भास-टी०पं०रामचन्द्र मिश्र — चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, बनारस सन् १६५०

प्रतिमा नाटक — भास-संपादक-सी०आर०देवघर एम०ए० ओरियण्टल बुक एजन्सी पूना

(७३) भट्टिकाव्यम् — टी० पं० शेषराज शर्मा — चौखम्बा संस्कृत सीरिज १६५१

(७४) अभिषेक नाटक — भास-अनु०प्रेमनिधि शास्त्री व्यास — स्वाध्याय सदन मोहन लाल रोड लाहौर सन् १६३७

(७५) वाल्मीकीय रामायण — टी०साहित्याचार्य पं० चन्द्र शेखर शास्त्री प्र० सस्ती साहित्य पुस्तकमाला कार्यालय बनारस सिटी सं० १६८८

(७६) गीत गोविन्द — नागार्जुन — १६५५ ई०

(७७) श्रीमद् आलवन्दारस्तोत्रम् — पं० भागवताचार्यकृत — श्री वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई

हनुमन्नाटक — (वे०प्रे० बम्बई)

अध्यात्मरामायण — गीता प्रेस गोरखपुर — सं० २००८

(७८) जैन रामायण — अनु० कृष्ण लाल वर्मा प्रेम

साहित्यिक और सांस्कृतिक ग्रन्थ

ऐतिहासिक ग्रन्थ

(७९) (अयोध्या के सूर्यवंशी राजा)

१९१४ हिन्दु

क्रम	पुस्तक	लेखक	प्रकाशक	वर्ष
	आर्य संस्कृति	बलदेव उपाध्याय	शारदा मन्दिर बनारस	सन् १९५३
(८१)	हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता	डा० बेनी प्रसाद	हिंदुस्तानी एकेडेमी संयुक्त प्रान्त	सन् १९३१
(८२)	आर्य संस्कृति के मूलाधार	आचार्य बलदेव उपाध्याय	शारदा मन्दिर बनारस	सन् १९४७
(८३)	संस्कृत साहित्य का इतिहास	वी वरदाचार्य एम०ए० अनु०डा०कपिलदेव द्विवेदी एम०ए०डी० फिल्	रामनारायण लाल इलाहाबाद	
(८४)	भारतीय इतिहास की रूप रेखा	जयचन्द विद्यालंकार	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग	१९३३ई०
(८५)	आर्य और वेद	पं०जगन्नाथ प्रसाद पंचौली गौड़	सरस्वती साहित्य मंदिर लखनऊ	
(८६)	भारतीय वांगमय भाग १	डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी	राष्ट्र भाषा प्रचार समिति वर्धा (प्रथम संस्करण)	१९५१
(८७)	नारद भक्ति सूत्र		गीता प्रेस गोरखपुर	सं० २०१३
(८८)	शाण्डिल्य भक्ति सूत्र		गीता प्रेस गोरखपुर	सं० २००९
(८९)	हरिभक्ति रसामृत सिन्धु			
(९०)	भक्ति सूत्र वैजयन्ती	भाष्य श्री हरिश चन्द		
(९१)	भक्ति रसायन	मधु सूदन सरस्वती		
(९२)	भक्ति भागीरथी श्री रामार्चन पद्धति	पं० श्री भगवत दास ब्रह्म चारिणा संपा० रामटहलदास वासुदेवदास नयाघाट सरयूभान अयोध्या १९८४वि०	अहमदाबादाबाद्वास्तव्येन महन्तमोहनदासजी आत्मारामजी त्यने प्रकाशिता	
(९३)	अरब और भारत के संबंध	अनु० बाबू राम चन्द्र वर्मा	प्रयाग हिन्दुस्तानी एकेडेमी	सन् १९३०
(९४)	पाणिनिकालीन भारतवर्ष	डा० वासुदेव शरण अग्रवाल	मोतीलाल बनारसीदास नेपाली खपरा बनारस	सं० २०१२
(९५)	पुरातत्व निबन्धावली	राहुल सांकृत्यायन	इंडियन प्रेस लि० प्रयाग	१९३७ ई०
(९६)	भारतीय इतिहास की रूपरेखा भाग१-२	जयचन्द विद्यालंकार	हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग	सन् १९३३

१००- श्री वैष्णव मताब्ज भास्कर सं० रामटहलदास वासुदेवदास सरयूभवन नयाघाट अयोध्या
// // भगवदाचार्य राम रत्नदास अहमदाबाद वि० १९८६
१०१- बृहत्संहिता वराहमिहिर संपा० डा० एच०कीन १८६५ ई०
१०२- आनन्द भाष्य संपा० रघुवरशरण दास वेदान्ती श्री रामानन्दीय वैष्णव महामण्डल
१९८६ वि०
१०३- सत्यार्थ प्रकाश दीफाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस अजमेर सं० १९९२
१०४- ओझा निबन्धसंग्रह डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा साहित्य संस्थान राजस्थान
विश्वविद्यापीठ उदयपुर राजस्थान
१९५४ ई०
१०५- वेद रहस्य श्री अरविन्द प्रतापनिधि द्वारा प्रकाशित सन् १९४८
१०६- धर्म और दर्शन बलदेव उपाध्याय एम०ए० साहित्याचार्य शारदामन्दिर १९४५ ई०
गणेश दीक्षित लेन
बनारस
१०७- संस्कृति के चार अध्याय दिनकर राजपाल एण्ड सन्स कश्मीरी गेट दिल्ली सन् १९५६
१०८- भारतीय ईश्वरवाद श्री पाण्डेय रामावतार शर्मा ग्रन्थमाला कार्यालय बांकीपुर
१९३६ ई०
१०९- भागवत सम्प्रदाय पं० बलदेव उपाध्याय ना०प्र०स० काशी सं० २०१०
११०- हिन्दी विश्वकोष सभी भाग श्री नगेन्द्र नाथ वसु प्र० नगेन्द्रनाथ वसु और विश्वनाथ
वसु कलकत्ता सन् १९२२, सन् १९४८
सन् १९५०
१११- वैदिक सम्पत्ति रघुनन्दन शर्मा प्र० शेठ शूरजी वल्लभदास वर्मा कच्छ केसल संडहर्स्ट
ब्रिज बंबई ४
सं० १९९४
११२- वैष्णव धर्म रत्नाकर गोपालदास वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई सं०२०१४
११३- भारतवर्ष का इतिहास पं० भगवद्दत्त पं० भगवद्दत्त वैदिक रिसर्च इंस्टीट्यूट मोडल टाउन
पंजाब
११४- पूर्व मध्यकालीन- डा० ब्रजबिहारी पाण्डेय गौतम बुक्स कानपुर १९५४ ई०

हिन्दुत्व रामदास गौड़ प्र० शिवप्रसाद गुप्त काशी प्रथम संस्करण
अपरोक्षानुभूति शंकराचार्य गीताप्रेस गोरखपुर सं० २०१४

रामभक्ति शाखा आलोचनात्मक इतिहास श्री अनन्त मराल शास्त्री
वैष्णवधर्म परशुराम चतुर्वेदी विवेक प्रकाशन इलाहाबाद सन् १९५३

कालीन भारतीय संस्कृति डा० ओझा हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद १९४५ ई०

हिन्दी साहित्य पर समालोचनात्मक और ऐतिहासिक ग्रन्थ

(१३७) महाकवि सूरदास आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी आत्मा राम एण्ड संस दिल्ली १९५२ ई०

(१३८) हिन्दी को मराठी संतों की देन आचार्य विनय मोहन शर्मा बिहार राष्ट्र भाषा परिषद पटना सं० २०१४

(१३९) सुन्दर दर्शन डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित किताब महल इलाहाबाद १९५२ ई०

(१४०) तमिल और उसका साहित्य - श्री पूर्ण सोम सुन्दरम् राजकमल प्रकाशन दिल्ली

(१४१) मराठी सन्तों का सामाजिक कार्य डा० विष्णु भिकाजी कोलते हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई ४

(१४२) रामानन्द की हिन्दी रचनाएं प्रथम संपादक डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी नागरी प्रचारिणी सभा काशी

(१४३) हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठ भूमि विश्वम्भरनाथ उपाध्याय साहित्य रत्न भन्डार आगरा सं०२०१२

(१४४) अवधी लोक गीत और परम्परा संपा० प्रो० इन्दुप्रकाश पाण्डेय एम०ए० रामनारायण लाल इलाहाबाद १९५७ ई०

(१४५) राम कथा उत्पत्ति और विकास बुल्के हिन्दी परिषद् प्रयाग विश्वविद्यालय सन् १९५०

(१४६) भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक रेखाएँ परशुराम चतुर्वेदी साहित्य भवन लि० प्रयाग सन् १९५५

(१४९) अपभ्रंश साहित्य — प्रो० हरिवंश कोछड़ — भारती साहित्य मंदिर दिल्ली — सं० २०१३

(१५०) तसव्वुफ अथवा सूफीमत — (चन्द्रबली पांडेय) — सरस्वती मंदिर जतनबर बनारस — सन् १९४८।

(१५१) हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास — डा० अब्राहम जार्ज ग्रियर्सन — किशोरी लाल गुप्त प्र० ओ3म् प्रकाश बेरी हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय पो० ब० नं० ७० वाराणसी सन् १९५७

(१५२) गोस्वामी तुलसीदास जी की समन्वय साधना — व्यौहार राजेन्द्र सिंह

(१५३) तुलसीदास और उनका युग — डा० राजपति दीक्षित — सं० २००९

(१५४) तुलसी साहित्य रत्नाकर — पं० रामचन्द्र द्विवेदी — सं० १९८६

(१५५) तुलसी रसायन — डा० भगीरथ मिश्र लखनऊ विश्वविद्यालय — सन् १९५४

(१५६) गोस्वामी तुलसीदास — रामचन्द्र शुक्ल — सन् १९३५

(१५७) तुलसीदास और उनके ग्रन्थ — भगीरथ प्रसाद दीक्षित — लखनऊ अशोक प्रकाशन सन् १९५५

(१५८) आचार्य केशवदास — डा० हीरालाल दीक्षित — लखनऊ विश्वविद्यालय — सं० २०११

(१५९) महा कवि केशवदास — श्री चन्द्रबली पाण्डेय — नवभारत प्रेस सराफा बाजार लश्कर ग्वालियर — सं० २००७ वि०

केशवदास एक अध्ययन — डा० राम रत्न भटनागर — किताब महल इलाहाबाद — सन् १९४७

(१६०) कबीर — डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी — हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई ४ — सन् १९५५व १९५३

(१६१) कबीर की विचार धारा — डा० गोविन्द त्रिगुणायत, साहित्य निकेतन कानपुर — सं० २००९

(१६२) सिद्ध साहित्य — डा० धर्मवीर भारती — किताब महल, इलाहाबाद — १९५५ ई०

(१६३) [illegible]ानन्द सम्प्रदाय तथा हिन्दी [illegible] पर उसका प्रभाव — डा० ब[illegible]नारायण [illegible]स्तव — हिन्दी पा[illegible] प्रयाग विश्वविद्यालय [illegible]गि — १९५७ ई० (८४०२।ब-२४५२

(१६४) मिश्रबन्धु विनोद — गणेश बिहारी मिश्र — खंडवा व प्रयाग हिन्दी ग्रन्थ प्रसारक मंडली — सं० १९७०

(१६५) हिन्दुई साहित्य का इतिहास — गार्सा द तासी, अनु० डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय

(१६६) राधा वल्लभ सम्प्रदाय डा० विजयेन्द्र स्नातक हिन्दी अनुसन्धान परिषद् दिल्ली सं०२०१४

(१६७) सूरदास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल सरस्वती मंदिर जतनबर बनारस

(१६८) मानस मीमांसा ज्योतिषाचार्य [illegible] रजनी कान्त शास्त्री किताब महल इलाहाबाद सन् १६४६

(१६६) हिन्दी साहित्य डा० श्याम सुन्दरदास इंडियन प्रेस लि० प्रयाग सन् १६४६

(१७०) हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय हरि औध पटना विश्वविद्यालय १६३४ ई

(१७१) हिन्दी साहित्य डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी उत्तर चन्द एण्ड सन्ज दिल्ली सन् १६५:

(१७२) मराठी साहित्य का इतिहास नारायण वासुदेव गोडबोले गया प्रसाद एण्ड सस आगरा सन्१६:

(१७३) तुलसी डा० माता प्रसाद गुप्त साहित्य कुटीर प्रयाग सन् १६४६

(१७४) हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास डा० रामकुमार वर्मा रामनारायण लाल प्रयाग १६३८ई०

(१७५) हिन्दी साहित्य पुस्तक डा० माता प्रसाद गुप्त हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग सन् १६४५

(१७६) हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव डा० सरनाम सिंह शर्मा अरुण रामनारायण लाल इलाहाबाद सन् १६५०

(१७७) राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय डा० भगवती प्रसाद सिंह अवध साहित्य मंदिर बलरामपुर १६५७ ई०

(१७८) हिन्दी साहित्य का इतिहास डा० रसाल रायसाहब रामदयाल अग्रवाल इलाहाबाद १६३१ ई०

(१७६) नाथ सम्प्रदाय डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दुस्तानी एकेडेमी उत्तर प्रदेश १६५० ई०

(१८०) हिन्दी साहित्य की भूमिका डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई प्रथम बार

(१८२) रीतिकालीन कवियों की प्रेमव्यंजना डा० बच्चन सिंह ना०प्र०स० काशी

(१८३) हिन्दी काव्य धारा में प्रेम प्रवाह परशुराम चतुर्वेदी किताब महल इलाहाबाद १६५७ ई०

(१८४) हिन्दी काव्य धारा राहुल सांस्कृत्यायन किताब महल इलाहाबाद सन् १६४५

(१८५) राम भक्ति साहित्य में श्री [illegible]नाथ

१८७- उत्तरी भारत की संत परम्परा परशुराम चतुर्वेदी भारती भण्डार प्रयाग सं० २००८
१८८- संतकाव्य " किताब महल, इलाहाबाद सन् १९५२
१८९- मराठी वाङ्याचा इतिहास लक्ष्मण रामचंद्र पागारकर बी०ए० १९३५ ई०
१९०- तुलसीदास डा० रामरत्न भटनागर किताब महल, इलाहाबाद सं० २००३
१९१- तुलसी दर्शन डा० बलदेव प्रसाद मिश्र सन् १९४२
१९२- भारत का सांस्कृतिक इतिहास हरिदत्त वेदालंकार आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली सन् १९५२
१९३- जैन रहस्यवाद विषयक अपभ्रंश ग्रंथ पाहुड दोहा स० हीरालाल जैन एम०ए०एल०एल०बी०
प्र०गोपाल अम्बादास चवरे कारंजा जैन पब्लिकेशन सोसायटी
कारंजी सन् १९३३
१९४- तुलसी के चार दल सद्गुरुशरण अवस्थी एम०ए० इंडियन प्रेस लि०प्रयाग सन् १९३५
१९५- तुलसीदास डा० माताप्रसाद गुप्त प्रयाग विश्वविद्यालय हिन्दी परिषद १९४२ ई०
१९६- तुलसीदास डा० चन्द्रबली पाण्डेय प्र० शक्ति कार्यालय दारागंज प्रयाग
१९७- असमिया साहित्य की रूपरेखा प्रो० विरिंचि कुमार बरुआ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
गुवाहाटी असम सन् १९४१
१९८- हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय डा० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल अनु०परशुराम चतुर्वेदी
स० डा० भगीरथ मिश्र अवध पब्लिशिंग हाउस
पानदरीबा लखनऊ, प्रथम संस्करण
१९९- योग प्रवाह डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल प्र० काशी विद्यापीठ बनारस स० २००३
२००- श्री तुकाराम श्री लक्ष्मण रामचंद्र पागारकर गीता प्रेस गोरखपुर स०२०११
अवधी और उसका साहित्य डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित
स० क्षेमचन्द्र सुमन राजकमल प्रकाशन
२०१- हिन्दी साहित्य का इतिहास रामचंद्र शुक्ल ना०प्र०स० काशी स० १९८६

हिन्दी काव्य ग्रन्थ

२०२- स्वामी रामदास जी की वाणी मुंशी चरणदास खत्री सरस्वती विलास प्रेस सन् १९०७
२०३- मतिराम रत्नावली संकलनकर्ता शंकरनाथ शुक्ल एम०ए० भारतवासी प्रेस दारागंज इलाहाबाद
सन् १९४३
२०४- भजन संग्रह श्री वियोगी हरि गीता प्रेस गोरखपुर
२०५- रामाश्वमेध नाभादास कृत वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई
२०६- भक्तमाल नाभादास- टी० श्री प्रियादास जी

२०८- विज्ञान गीता केशवदास वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई , सं० १९५१

२०९- वीरसिंह देवचरित // भारत जीवन प्रेस, काशी सं० १९६०

२१०- भक्तमाल टी० हरिप्रपन्न वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई सं० १९६४

२११- कवित्त रत्नाकर सेनापति सं० उमाशंकर शुक्ल एम०ए० हिन्दी परिषद् विश्वविद्यालय प्रयाग १९४९ ई०

२१२- सेनापति रत्नावली सं० प्रतापनारायण चतुर्वेदी भारतवासी प्रेस दारागंज, प्रयाग सन् १९:

२१३- गरीबदास जी की वाणी प्र० स्वरूपानन्द वेलवीडियर प्रेस इलाहाबाद सन् १९२०

// //

२१४- श्री गुरुग्रन्थ साहब गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी- अमृतसर १९५१ -

२१५- वैराग्य सदीपनी गीता प्रेस गोरखपुर सं० २०१३

२१६- तुलसी ग्रंथावली स० १-२ सं० रामचद्र शुक्ल भगवानदीन ब्रजरत्नदास काशी नागरी प्रचारिणी सभा सं०२००४

२१७- रामचरित मानस गीता प्रेस गोरखपुर सं० २०१५

२१८- विनय पत्रिका गीता प्रेस गोरखपुर सं० २००८

२१९- कवितावली अनु० इन्द्रदेव नारायण गीता प्रेस गोरखपुर सं० २००७

२२०- गीतावली गीता प्रेस गोरखपुर सं० २००६

२२१- दोहावली अनु० हनुमान प्रसाद पोद्दार सं० २००४

२२२- तुलसी सतसई प० बिहारीलाल चौबे कलकत्ता प्रिन्टिंग एट दी बाप्टिस्ट मिशन प्रेस सन् १८९७

२२३- हनुमान बाहुक गीता प्रेस गोरखपुर सं० २०१५

२२४- बरवै रामायण // सं० २०१६

२२५- गोविन्द स्वामी सम्पादक- गो०ब्रजभूषण शर्मा विद्या-विभाग अष्टछाप स्मारक समिति कांकरोली सं० २००८ राजस्थान

२२६- मीरां माधुरी सं० ब्रजरत्नदास हिन्दी साहित्य कुटीर काशी सं० २००५

२२७- अनन्य ग्रन्थावली सं० ठा० सूर्यकुमार वर्मा का०ना०प्र० सभा काशी १९१३ ई०

२२८- अकबरी दरबार के हिन्दी कवि . डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल लखनऊ विश्वविद्यालय सं० २००७

२२९- गोरखबानी डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, सं० १९९९

२३०- सूर विनयपत्रिका गीता प्रेस गोरखपुर

२३१- सूर राम चरितावली

२३४- संतबाणी भा० २ बे०वे० इलाहाबाद सन् १९५५

२३५- अग्रदास जी कृत कुण्डलिया खेमराज श्री कृष्णदास वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई सं० १९५४

२३६- छत्र प्रकाश लाल कवि स० श्यामसुन्दरदास

२३७- साहित्य प्रभाकर पहला भाग सपा० महालचन्द बयेद

२३८- सुखमनी सटीक पचम गुरु अर्जुन जी साहिब प्रणीत प्र० स्वामी परमानन्द उदासी
मु० नवलकिशोर सन् १९१३

२३९- हनुमन्नाटक हृदयराम कवि सपा० बाबूराम कृष्ण वर्मा
काशी भारत जीवन यन्त्रालय सन् १८९८ श्री वे०वे० प्रे० बम्बई वाला
संस्करण भी

२४०- ईश्वरदास कृत सत्यवती तथा अन्य कृतियाँ सं० डा० शिवगोपाल मिश्र
रावत् ओम प्रकाश सिंह प्र० विद्यामंदिर प्रकाशन ग्वालियर सं० २०१५

२४१- धरमदास की शब्दावली वे०वे० प्रेस इलाहाबाद १९२३ ई०

२४२- धरनीदास जी की बानी // दूसरा संस्करण

२४३- रहिमन विलास स० बृजरत्नदास रामनारायणलाल प्रयाग सं० १९८७

२४२- छत्रसाल ग्रन्थावली सं० वियोगी हरि श्री छत्रसाल स्मारक समिति स० १९८३
पन्ना मध्य भारत

२४३- सन्तवाणी श्री वियोगी हरि सस्ता साहित्य मण्डल नई दिल्ली

२४४- संतसुधासार वियोगी हरि सस्ता साहित्य मंडल १९५३

२४५- शब्दलीला देवीदास प्र० रतन बन्धु लखीमपुर सं० २०००

२४६- अध्यात्मजन्मसार सकलन कर्ता महात्मा साहब राम जी कृष्णा प्रेस प्रयाग स० १९७८

२४७- हमारे सन्त श्री रघुवीरशरण मित्र विद्या भारतीय साहित्य प्रकाशन
२३२ स्वराज्य पथ सदर मेरठ
प्र० अर्चना पुस्तक मन्दिर १९५७

२४८- अष्टयाम अग्रदास स० रामवल्लभशरण जानकीघाट सं० १९९५ वि०

२४९- संत कबीर डा० रामकुमार वर्मा साहित्य भवन लि० प्रयाग सन् १९४३

२५०- कबीर वचनावली डा० श्यामसुन्दरदास इण्डियन प्रेस लि० प्रयाग

२५१- कबीर ग्रन्थावली सपा० डा० श्यामसुन्दरदास प्र० इण्डियनप्रेस प्रयाग १९२८

२५२- मीन गीता कबीर भार्गव पुस्तकालय गायघाट बनारस

२५३- कबीर साहिब की ज्ञान गुदड़ी बे०वे० प्रेस प्रयाग सन् १९५०

२५४- अखरावती वे० वे० प्रे० प्रयाग

२५६- सतगुरु कबीर साहब बे०वे० प्रे० इलाहाबाद सन् १९५१
का अनुराग सागर

२५७- कबीर साहिब की शब्दावली भाग १ सन् १९५४
// भाग २ सन् १९५६
// भा० ३ सन् १९५१
// भा० ४ सन् १९५१

२५८- कबीर पदावली डा० रामकुमार वर्मा हि०सा० सम्मेलन प्रयाग स० २००१

२५९- दादू दयाल की बानी भा० १ बे० वे० प्रेस प्रयाग
साखी
// भाग २ // सन् १९५८
पद

२६०- दादू दयाल की बानी स० मंगलदास स्वामी प्रका० वैद्य जयरामदास स्वामी जयपुर सन् १९५१

२६१- दादू दयाल का शब्द स० सुधाकर द्विवेदी ना० प्र० सभा काशी सन् १९०७

२६२- सुन्दरग्रन्थावली ख० १-२ सपा० हरिनारायण शर्मा राजस्थान रिसर्च सोसाइटी कलकत्ता स० १९९३

२६३- सुन्दर श्रृंगार भारत जीवन सपा० बाबूराम कृष्ण वर्मा सन् १९९०

२६४- सुन्दर बिलास बे० वे० प्रेस प्रयाग तीसरा संस्करण

२६५- // मु० नवलकिशोर प्रेस लखनऊ सन् १८८४ ई०

२६६- ज्ञानसमुद्र प० श्रीधर शिवलाल जी ज्ञान सागर प्रेस बम्बई स० १९६३

२६७- ज्ञान समुद्र आर ज्ञान विलास कवि हीराचन्द कानडो सोर्टन प्रेस स० १९२३

२६८- विवेक चिंतामणि वेंकटेश्वर प्रेस बंबई स० १९५५

२६९- सुन्दर सार पुरोहित हरिनारायण बी०ए० ना०प्र०सभा काशी १९१८ ई०

२७०- रैदास की बानी बे०वे० प्रेस प्रयाग सन् १९४८ और सन् १९०८

२७१- मूलकदास जी की बानी // सन् १९२० और १९४६

२७२- जगजीवन साहब की बानी पहला भाग // सन् १९२२

२७३- जगजीवन साहब की शब्दावली // दूसरा संस्करण
दूसरा भाग

२७४- दरियासाहब मारवाड़ वाले की बानी

२७५- दरिया सागर बिहार वाले दरिया साहब बे०वे० प्रेस,प्रयाग सन् १९५३

२७६- चुने हुए शब्द // दूसरा संस्करण

२७७- संत कवि दरिया ' एक अनुशीलन डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना १९५४ ई०

हस्तलिखित ग्रन्थ

२७८- हनुमान संकट मोचन सुन्दरदास हिन्दी संग्रहालय हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

२७९- हरिबोल चेतावनी // //

२८०- आत्मानुभव // //

२८१- एकश्लोकी रामायण रामानन्द //

२८२- ज्ञानसमुद्र सुन्दरदास ना० प्र०स० काशी

२८३- राजस्थान में हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज चारों भाग साहित्य संस्थान राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर सन् १९५४ प्र० संस्करण

२८४- राम अष्टक ह०ले०नं० ९५१ ना०प्र०सभा काशी

२८५- विचारमाला अनाथकृत कापी प्रति हस्तलिखित विभाग ना०प्र०स०काशी

२८६- बारहमासो गो०तुलसीदास जी ना०प्र०का०

२८७- योगवासिष्ठसार कवीन्द्र सरस्वती र०का० १७१४ ना०प्र०स०का०

२८८- ध्यान मंजरी अग्रदास जी ह०ले०नं० ३२३।५३ ना०प्र०स०का०

२८९- हनुमन्नाटक उदयकृत ना०प्र०स० का०

२९०- रामकरुणानाटक उदयकृत ना० प्र०स०का०

२९१- रामसुखमा नाथ कृत ह०ले०नं० २४५४।१४१४ ना०प्र०स०का०

२९२- भरतविलाप ईसरदास नं० २७८२। १९८२ ना०प्र०स०का०

२९३- ध्यानमंजरी बालकृष्ण नायक ना०प्र०स० का०

२९४- सीता चरित्र :नं० १५५: रायचन्द रविचन्द श्री दिगम्बर जैन मन्दिर बाराबंकी

२९५- रामायण महानाटक :जीर्ण: प्राणचन्द चौहान .नं० ५२५' ना०प्र०स० का०

२९६- धरनीदास जू के संकट मोचन

२९७- चेतावनी

२९९- हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण अगरचन्द नाहटा ना०प्र०स०का० सन् १९५७

३००- बोधलीला धरनीदास जी सं० ६२३ ना०प्र०स०का०

३०१- रामरक्षा रामानन्द कृत न० ३५३ ना०प्र०स०काशी

३०२- भक्ति ज्ञान के अंग सुन्दरदास न० ४९४९ ना०प्र०स०काशी

३०३- निरगुन उपासना के अंग न० ४९५० सुन्दरदास ना० प्र०स०का०

३०४- सुखमनि नानक नं० १४०३।८७३ ना० प्र०स०का०

३०५- नानक जी का जप न० २४४३।१४०६ ना०प्र०स०काशी

पत्र-पत्रिकायें

१- कल्याण ~~सभी अंक~~
२- मानवधर्म ~~सभी अंक~~
३- सरस्वती ~~सभी अंक~~
४-आलोचना ~~सभी अंक~~
५- कल्पना ~~सभी अंक~~
६- शोध पत्रिका ~~सभी अंक~~
७- साहित्य सन्देश ~~सभी अंक~~
८- सन्तवाणी ~~सभी प्राप्य अंक~~ सं० केशवदास स्वामी
९- नागरी प्रचारिणी पत्रिका ~~सभी अंक~~
१०- खोज-रिपोर्ट ~~सभी अंक~~
११- आर्यमहिला
१२- कलानिधि वर्ष १ अंक ३:
१३- साहित्य पत्रिका : सं० १९७९.

	Title	Author	Publisher	Year
1.	Early-history of Vaishnavism in South -India	S. Krishnaswami Aiyangar. M.A.	The Oxford University Press.	1920
2.	Shri Ram-Chandra The Ideal-king.	Dr. Annie Besant, F.T.S.	Second Edition Benares and London Theorsophical Society Publishing Society	1905
3.	Gorakh-Nath and Mediaeval-Hindu Mysticism.	Dr. Mohan Singh	Dr. Mohan Singh Oriental College Lahore.	
4.	Original and Early history of Saivism in South India	C.Y.Narayana — M,A., L.T.	Ayyar, University of Madrass.	193
5.	History of Bengali Languages and Literature.	Dinesh-Chandra B.A.	Calcutta-University	191
6.	The Modern Vernacular Literature of Hindustan	George A-Brierson	Published by the Asiatic Society	188
7.	A History of Sanskrit Literature	A-Macdonell M.A., Ph.D.	London William	
8.	The Standard Sanskrit English-Dictionary	L.P.Vaidya	Mrs.Radhabai Atmarani Sagoon. Book-sellers and publishers. Kalba Devi Road.	191
9.	Monograph on the Religions - sects in India. Amongs the Hindus.	By Pai, D.A.	Times Press Bombay	1928
10.	A. History of Hindi Liteature	K.B.Jindal	Kitab Mahal, Allahabad,	
11,	A Sixteenth Century India Mystic	W.G.ORR,P.D.	Lutterworth Press London and Redhill.	1947.
12.	Kabir and the Kabir PanthS	Rev. G.H. Westcott, M.A. Fellow of Allahabad University	University Published at the Christ-Church Mission, Press.	1907
13.	Kabir and his followers	By Keay (F.E.)	Oxford.	1931.
14.	The Cultural Heritage of India	- Sri Rama Krishna century Memorial Vol.B	Sri Ram-Krishna Centuary Committee Belur [illegible]	

No.	Title	Author	Publisher	Year
16.	The Foundation of Character (Being a study of the tendencies of the Emotions and Sentiments.)	-Alexander F.Shand M.A.	Macmillan & Co. Ltd. St. Mantins London.	1926
17.	Pathway to God in Hindi-Literature .	R.D.Ranade.	Adhyatma-Vidyamandir Allahabad	1954.
18.	The Punjab Oriental (Sanskrit) Series No. XIV " The Philosophy of Vaishvana Religion- Vol.I)	Brindra Narayana Mallik,M.A.,B.L.	Moti-Lal Banarsidas Punjab Sanskrit Book depot Sadmitha Lahore	1927
19.	Bengal-Vaishnavism Bipin Chandra Pal.	Bipin Chandra Pal	Calcutta-Modern Book-Agency- (10 College-squaie-1933.)	1933.
20.	~~Bengal~~ Calcutta-Oriental Series. No.- E.11 studies in Indian History and Calcutta.	Dr. Narendra Nath.	Luzac & Co. 46, Great Russell street London, W.C.1	
21.	Malaviya-Commenmoration Volume 1932.	Benares Hindu University 1932.		
22.	The Bengali Ramayas -	Rai Saheb Dinesh Chandra Sen, B.A.	Published by the University of Calcutta- 1920.	
23.	History of Indian. Philosophy- Indian. Mysticism, Mysticism in Maharastra.	R.D.Ranade.	Poona-Arya-Bhushan-Press Office-Shanwar Peth	1933
24.	The story of The Ramayana	Madhariab-	Macmillian & Co Limited-London Bombay-Calcutta.	
25.	An Idealist view of Life	Dr.S.Radha-Krishnan.	London-George Allen & Unwin R.t.d. Museum Street. Second-edition-	19[illegible]
26.	Indian- Philosophy Vol. I-II	Sri R.Krishnan		
27.	A History of Sanskrti Literature-classical-period- Vol. I	University of Calcutta. General Editor-Dass-Gupta.		1947.
28.	A History of Ancient sanskrit literature.	Man-Muller.		

No.	Title	Author / Details	Publisher	Year
29.	Rama-Love & Devotion	P & Ananth-Krishnan-Ayar.	Cat-No.420. H.S.S.Prayaga.	1935.
30.	India What can it teach us	Max Muller		
31.	Calcutta Oriental Series	No.E.11 By Dr. Nagendra Nath.		
32.	'Origin of the Aryan -	Taylor		
33.	Journal Royal Asiatic Society	1910-1907-1915		
34.	Saivism and Vaisnavism &	Sri R.G.Bhanderkar.		
35.	List of Brahmi Inscrip-tion.	No. 669		
36.	An out Line of Religious Literature of India'	J.N.Farukubar.		
37.	Encyclopedia of Religion and Ethics.	Vol.2-12-		
38.	Early History of the Vaishnava Sect.	Dr. M.R.Choudhary.		
39.	Collected Works of Sri	Sri P.G.Bhandarkar Vol. IV.		
40.	Philosophy of Ancient India	Garbe.		
41.	History of Mediaeval India Vol. III	By C.R.Vaidya.		
42.	'Attributes of God'	'Luis Richard Farwell'.	The Calendon Press, Oxford,	19
43.	Religions of India	" A Earth Trubner	& Co. London	1882.
44.	Journal of Ganga Nath Jha.	Research Institute Prayag. Vol. 8		1951
45.	Indian in Kali Das	" Bhagavat Sharma Upadhya,		1947.
46.	Indian and Indonesian Art	1928 London Annand Swami.		
47.	Catalogue of the M.	Archiology at Sarnath	Daya Ram Subani	
48.	Hindu Colony of Shiam	" P .An. Bose'	Lahore	1927.
49.	Ancient Indian Historical	Tradition ' Pargitor, M.A.	Oxford Univer-sity Press	